ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क—३२ अ

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति मे आयोजित]

निशीथसूत्र

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद-विवेचन-टिप्पण युक्त]

□

प्रेरणा

(स्व.) उपप्रवर्तक शासनसेवी स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

□

आद्य सयोजक तथा प्रधान सम्पादक

(स्व०) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

□

अनुवादक-विवेचक-सम्पादक

अनुयोग-प्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी म० 'कमल'

गीतार्थ श्री तिलोक मुनिजी म०

□

प्रकाशक

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क ३२ अ

☐ निर्देशन
साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रथम संस्करण
वीर निर्वाण सं० २५१७
विक्रम सं० २०४८
जुलाई १९९१ ई०

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति
श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन,
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
पिन—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य : 75/-

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

NISHITHA SŪTRA

[Original Text with Variant Readings, Hindi Version,
Notes, and Annotations etc]

Proximity
(Late) Up-pravartaka Shasansevi Rev Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator-Annotator-Editor
Anuyoga Pravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Geetarth Shri Tilokmuniji

Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Jinagam Granthmala Publication No. 32 A

☐ **Direction**
Sadhwi Shri Umrav Kunwar 'Archana'

☐ **Board of Editors**
Anuyoga-pravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Upacharya Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni

☐ **Promotor**
Muni Sri Vinayakumar 'Bhima
Sri Mahendra Muni 'Dinakar'

☐ **First Edition**
Vir-Nirvana Samvat 2517
Vikram Samvat 2048, July 1991

☐ **Publishers**
Sri Agam Prakashan Samiti,
Brij-Madhukar Smriti Bhawan,
Pipalia Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305 901

☐ **Printer**
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kaiserganj, Ajmer

☐ **Price . 75/-**

समर्पण

निरतिचार संयम साधना मे
सतत संलग्न रहने वाले
अतीत अनागत और वर्तमान
के सभी श्रुतधर स्थविरो के
कर कमलो मे

समर्पक
अनुयोग-प्रवर्तक मुनि कन्हैयालाल 'कमल'
गीतार्थ तिलोकमुनि

प्रकाशकीय

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अर्थत भाषित देशना का चार विभागो मे वर्गीकरण किया गया है—१ अग, २ उपाग, ३. मूल, ४ छेद। सैद्धान्तिक, दार्शनिक विचारो एव श्रमण, श्रमणोपासक वर्ग के आचार का विस्तार से प्रतिपादन किये जाने मे ये आगम और अर्थगाभीर्य से समन्वित सक्षेप मे लिपिबद्ध होने से सूत्र कहे जाते है।

स्वर्गीय सर्वतोभद्र श्रद्धेय युवाचार्य श्री मधुकरमुनि जी म की भावनानुसार अभी तक साध्वीरत्न श्री उमरावकुवरजी म 'अर्चना' के निर्देशन मे विभिन्न विज्ञ महामना श्रमणो और अन्यान्य विद्वानो व अर्थसहयोगी श्रावको के सहकार से आदि के तीन विभागो क सभी आगमो का प्रकाशन हो गया है। अब चतुर्थ विभाग के आगमो का प्रकाशन निशीथसूत्र से प्रारम्भ कर रहे है।

निशीथसूत्र को आचारागसूत्र की चूलिका रूप माने जाने की मान्यता है। यह मान्यता उचित भी है। क्योकि आचाराग मे श्रमणवर्ग की विधेयचर्या का बहु आयामी विस्तृत विवेचन है और निशीथसूत्र मे उस चर्या मे प्रमादवश होने वाली स्खलनाओ के प्रमार्जन-विधान का प्ररूपण किया गया है। जो चर्या की पवित्रता, प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए मार्गदर्शक है। यह वर्णन इतना विस्तृत है कि एक पृथक् ग्रन्थ के रूप मे मान्य हो गया। एतद्विषयक विशेष विचार प्रस्तावना मे किया गया है।

विभिन्न सस्थाओ की ओर से निशीथसूत्र का प्रकाशन हुआ है। किन्तु वह सर्वजनसुगम बोधगम्य नही है। सामनि ने अपनी निर्धारित नीति के अनुसार मूलपाठ के साथ सरल हिन्दी भाषा मे उसके हार्द को स्पष्ट किया है। जो सर्वसाधारण के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

इस सूत्र का अनुवाद-विवेचन-सम्पादन आगममनीषी अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी म 'कमल' एव गीतार्थ श्री तिलोकमुनिजी म ने किया है तथा समीक्षात्मक प्रस्तावना उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म शास्त्री ने लिखी है। समिति इन श्रमणश्रेष्ठो का कृतज्ञता ज्ञापित करने के साथ अभिनन्दन करती है।

अन्त मे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि शेष दशाश्रुतस्कन्ध आदि तीन छेदसूत्रो का मुद्रणकार्य प्राय पूर्ण हो चुका है। शेष कार्य यथाशीघ्र पूर्ण करने के लिए प्रयत्नशील है। आशा है सम्पूर्ण आगमबत्तीसी के प्रकाशन का निर्धारित लक्ष्य समिति अल्प समय मे प्राप्त कर लेगी। पूर्व प्रकाशित जिन आगमो का प्रथम सस्करण अप्राप्य हो गया है, उनमे से कुछएक के द्वितीय सस्करण प्रकाशित हो चुके है और शेष का भी मुद्रण हो रहा है। जिससे सम्पूर्ण आगम साहित्य पाठको को उपलब्ध हो सकेगा।

हम अपने सभी सहयोगियो का सधन्यवाद आभार मानते है।

रतनचन्द मोदी	सायरमल चोरडिया	अमरचन्द मोदी
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामन्त्री	मन्त्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

अध्यक्ष	श्री किशनलालजी बैताला	मद्रास
कार्यवाहक अध्यक्ष	श्री रतनचन्दजी मोदी	ब्यावर
उपाध्यक्ष	श्री धनराजजी विनायकिया	ब्यावर
	श्री पारसमलजी चोरडिया	मद्रास
	श्री हुक्मीचन्दजी पारख	जोधपुर
	श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया	मद्रास
	श्री जसराजजी पारख	दुर्ग
महामंत्री	श्री जी० सायरमलजी चोरडिया	मद्रास
मंत्री	श्री अमरचन्दजी मोदी	ब्यावर
	श्री ज्ञानराजजी मूथा	पाली
सहमंत्री	श्री ज्ञानचन्दजी विनायकिया	ब्यावर
कोषाध्यक्ष	श्री जवरीलालजी शिशोदिया	ब्यावर
	श्री अमरचन्दजी बोथरा	मद्रास
सदस्य	श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया	मद्रास
	श्री मूलचन्दजी सुराणा	नागौर
	श्री दुलीचन्दजी चोरडिया	मद्रास
	श्री प्रकाशचन्दजी चौपडा	ब्यावर
	श्री मोहनसिंहजी लोढा	ब्यावर
	श्री सागरमलजी बैताला	इन्दौर
	श्री जतनराजजी मेहता	मेडतासिटी
	श्री भवरलालजी श्रीश्रीमाल	दुर्ग
	श्री चन्दनमलजी चोरडिया	मद्रास
	श्री सुमेरमलजी मेडतिया	जोधपुर
	श्री आसूलालजी बोहरा	जोधपुर
परामर्शदाता	श्री जालमसिंहजी मेडतवाल	ब्यावर
	श्री प्रकाशचन्दजी जैन	नागौर

अर्हम्

अप्रकाश्यों का प्रकाशन

प्रायश्चित्त प्ररूपक आगमो को अप्रकाश्य मानने का एव रखने का प्रमुख कारण था, उन्हे अपात्र या कुपात्र न पढे, क्योंकि वे उसका अनुचित उपयोग या दुरुपयोग करते हैं। अत उन्हे अप्रकाश्य रखना सर्वथा उचित था।

आगमो की वाचना के आदान-प्रदान मे जब तक श्रुत-परम्परा प्रचलित रही तब तक सभी आगम अप्रकाश्य रहे।

चाणक्य ने स्वरचित सूत्र मे कहा है—**"न लेख्या गुप्तवार्ता"** जिस बात को गुप्त रखना चाहते हो उसे लिखो मत। तात्पर्य यह है कि जो रहस्य लिखा जाता है वह रहस्य नही रहता, किसी न किसी प्रकार से प्रकट हो ही जाता है।

षटकर्णो भिद्यते मन्त्र—जो बात छ कानो मे चली जाती है वह बात भी सब जगह फैल जाती है। कहने वाला एक और सुनने वाला भी एक हो, इस प्रकार जब बात दो तक सीमित रहती है तब तक वह गुप्त रहती है। जब कहने वाला एक हो और सुनने वाले दो हो या दो से अधिक हो तब कहने वाले की बात गुप्त नही रह पाती है, गुप्त रखने के लिये चाहे जितने प्रयास करें सफल नही होते।

जैनो मे और वैदिको मे जब तक श्रुत परम्परा प्रचलित रही तब तक भी अप्रकाश्य आगम अप्रकाश्य नही रहे थे। क्योंकि उस समय भी स्व-सिद्धान्त और पर (अन्य)। सिद्धान्त के ज्ञाता होते थे।

जैन, जैनेतर दर्शनो का अध्ययन करते थे और जैनेतर, जैनदर्शन का अध्ययन करते थे। अत. यह स्पष्ट है कि जैनो और जैनेतरो मे श्रुत परम्परा प्रचलित थी। उस समय भी आगम अप्रकाश्य नही रह थे।

अवसर्पिणी काल के प्रभाव से धारणा शक्ति या स्मरण शक्ति शनै शनै क्षीण होने लगी तो आगमो और ग्रन्थो का लेखन प्रारम्भ हो गया। ज्यो-ज्यो आगमो का लेखन कार्य प्रगति करने लगा तो प्रायश्चित्त प्रतिपादक आगम भी लिखे जाने लगे, इस प्रकार अप्रकाश्य आगम प्रकाश्य हो गए। मुद्रण युग की प्रगति होने पर तो अप्रकाश्य आगम और अधिक प्रकाश्य हो गए।

सस्कृत या प्राकृत मे रचित प्रायश्चित्त विषयक आगमो का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित न करवाने का प्रमुख कारण यही है कि उन्हे सर्व साधारण से गुप्त रखा जाए। किन्तु जिसकी जिज्ञासा उत्कट होती है वह तो प्रयत्न करके अपनी जिज्ञासा जैसे-तैसे पूरी कर ही लेता है।

अद्यावधि प्रकाशित निशीथादि चारो आगमो के हिन्दी अनुवाद सहित सस्करण वर्तमान मे अनुपलब्ध होने से स्वर्गीय **युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म सा. "मधुकरजी"** की प्रेरणा से आयोजित आगम प्रकाशन समिति द्वारा चारो आगम प्रकाशित किए गए हैं।

युवाचार्यश्री ने मेरे द्वारा सम्पादित दसा, कप्प, व्यवहार को देखकर निशीथादि चारो आगमो का पुन सम्पादन करने के लिए सन्देश भेजा था किन्तु बहुत लम्बे समय से मेरा स्वास्थ्य अनुकूल न रहने से **मैंने श्री तिलोकमुनिजी म** से चारो आगमो का अनुवाद एव विवेचन लिखने के लिए कहा—आपने उदार हृदय से अनुवाद एव विवेचन स्वय की भाषा मे लिखा है —साधारण पढे लिखे भी इनका स्वाध्याय करके प्रायश्चित्त विधानो को आसानी से समझ सकते हैं।

उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी की शारीरिक सेवा मे अहर्निश व्यस्त रहते हुए भी उपाचार्य श्री ने निशीथ की भूमिका लिखकर के जो अनुपम श्रुतसेवा की है, उसके लिए सभी सुज्ञ पाठक तथा आगम समिति के सभी कार्यकर्ता हृदय से आभारी है।

निशीथ आदि चारो आगमो के सशोधन, सम्पादन कार्यों मे **श्री विनयमुनिजी** तथा **महासतीजी श्री मुक्तिप्रभाजी** आदि का निरन्तर यथेष्ट सहयोग प्राप्त होता रहा। अत इन सबका मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

अक्षय तृतीया, २०४८ **—अनुयोग प्रवर्तक मुनि कन्हैयालाल "कमल"**
आबू पर्वत

प्राक्कथन

निशीथसूत्र का स्थान—आगमो मे

उपलब्ध आगमो मे चार आगमो को छेदसूत्र की सज्ञा दी गई है। यह सज्ञा आगमकालीन नही है अर्थात् नन्दीसूत्र आदि किसी भी आगम मे यह सज्ञा, यह नामकरण नही मिलता है। अत यह सज्ञा देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के बाद अर्थात् वीर निर्वाण के हजार वर्ष बाद दी गई है, जो परम्परा से आज तक चली आ रही है।

इन छेदसूत्रो के क्रम मे कई विभिन्नताएँ प्रचलित हैं। कही दशाश्रुतस्कध को तो कही व्यवहारसूत्र को प्रथम स्थान दिया जाता है।

व्यवहारसूत्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इन चार छेदसूत्रो मे निशीथसूत्र का स्थान अध्ययन की अपेक्षा प्रथम है, उसके बाद क्रम से दसा-कप्प-ववहार का स्थान है।

आगम पुरुष की रचना करने वाले पूर्वाचार्यों ने एव ४५ आगमो का सक्षिप्त परिचय लिखने वाले विद्वानो ने भी निशीथसूत्र को छेदसूत्र मे प्रथम स्थान दिया है।

निशीथसूत्र की उत्पत्ति का निर्णय—आगमाधार से

रचनाकाल या रचनाकार की अपेक्षा दशाश्रुतस्कध, बृहत्कल्प और व्यवहारसूत्र के रचयिता (निर्यूढकर्ता) चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहुस्वामी हैं, किन्तु निशीथसूत्र की रचना के विषय मे अनेक विकल्प है। जो इतिहासज्ञो और चितको के भ्रमकारक वातावरण का परिणाम है। उस ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर आज तक भी अन्वेषक विद्वान निश्चित रूप से कहने का अधिकार नही रखते कि "निशीथसूत्र अमुक आचार्य की ही रचना है।"

वस्तुस्थिति कुछ और ही है। इतिहास-परपरा से अलग होकर यदि आगमपाठो के चिंतन से निर्णय किया जाय तो वह ठोस एव प्रामाणिक निर्णय हो सकता है।

इस सूत्र को पूर्वो से उद्धृत कहने की परपरा सूत्रानुकूल नही है। इसका कारण यह है कि चौदह पूर्वी भद्रबाहुस्वामी ने व्यवहारसूत्र की रचना की है, यह निर्विवाद है। उस सूत्र मे उन्होने एक बार भी 'निशीथसूत्र' यह नाम नही दिया है। आचारप्रकल्प या आचारप्रकल्प-अध्ययन यह नाम सोलह बार दिया है। जिसका अध्ययन करना एव कण्ठस्थ धारण करना प्रत्येक योग्य साधु-साध्वी के लिए आवश्यक है। इसे कठस्थ धारण नही करने वाले साधु-साध्वी को सघाडाप्रमुख या आचार्य, उपाध्याय आदि पदो की प्राप्ति का निषेध किया है और उसे भूल जाने वाले युवक सत-सतियो को प्रायश्चित्त का पात्र बताया है।

आगम के अनेक वर्णनो से यह स्पष्ट है कि साध्वियो को पूर्वश्रुत का अध्ययन नही कराया जाता है। जब कि आचारप्रकल्प साध्वियो को कंठस्थ धारण करने का एव याद रखने का आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने व्यवहारसूत्र मे स्पष्ट विधान किया है।

इससे स्पष्ट है कि चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहुस्वामी के पहले भी यह "आचारप्रकल्प" या आचारप्रकल्प-अध्ययन विद्यमान था, जो पूर्वों मे नही किन्तु अगसूत्रो मे था और साध्वियो को कठस्थ रखना भी आवश्यक था। भूल जाने पर उन्हे भी प्रायश्चित्त आता था।

अत इस सूत्र का गणधरग्रथित आचाराग के अध्ययन होने का जो-जो वर्णन सूत्रो मे, उनकी व्याख्याओ मे और ग्रन्थो मे मिलता है, उसे ही सत्य समझना उचित है। अन्य ऐतिहासिक विकल्पो को महत्त्व देना आगम-सम्मत नही है।

आगमों में आचारप्रकल्प

चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहुस्वामी से पूर्व भी जिनशासन के प्रत्येक साधु-साध्वी के लिए आचारप्रकल्प-अध्ययन को कठस्थ धारण करना आवश्यक था, उस आचारप्रकल्प-अध्ययन का परिचय सूत्रो एव उनकी व्याख्याओ मे जो मिलता है, वह वर्तमान मे उपलब्ध इस निशीथसूत्र का ही परिचायक है, यथा—

(१) पचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते त जहा—१ मासिए उग्घाइए, २ मासिए अणुग्घाइए, ३ चाउमासिए उग्घाइए, ४ चाउमासिए अणुग्घाइए, ५ आरोवणा।

टीका—आचारस्य प्रथमागस्य पदविभागसमाचारी लक्षणप्रकृष्टकल्पाऽभिधायकत्वात्प्रकल्प आचार-प्रकल्प निशीथाध्ययनम्। स च पचविध, पचविधप्रायश्चित्ताभिधायकत्वात्। --स्थाना. ५

२ आचार प्रथमाग तस्य प्रकल्पो अध्ययनविशेषो, निशीथम् इति अपराभिधानस्य।

—समवायाग २८

३ अष्टाविंशतिविध आचारप्रकल्प, निशीथाध्ययनम् आचारागम्, इत्यर्थ। स च एव—(१) सत्थ-परिण्णा जाव (२५) विमुत्ती (२६) उग्घाइ (२७) अणुग्घाइ (२८) आरोवणा तिविहमो निसीह तु, इति अट्ठा-वीसविहो आयारपकप्पनामोत्ति।

—राजेन्द्र कोश भा २ पृ ३४९ "आयारपकप्प शब्द

—प्रश्नव्याकरण सूत्र अ १०

(४) आचार आचारागम्, प्रकल्पो—निशीथाध्ययनम्, तस्येव पचमचूला। आचारेण सहित प्रकल्प आचारप्रकल्प, पचविंशति अध्ययनात्मकत्वात् पचविंशति विध आचार १ उद्घातिम २ अनुद्घातिम ३ आरोवणा इति त्रिधा प्रकल्पोमीलने अष्टाविंशतिविध।

—अभि रा को भाग २, पृ ३५० आयारपकप्प शब्द

यहा समवायागसूत्र एव प्रश्नव्याकरणसूत्र के मूल पाठ मे अट्ठाईस प्रकार के आचारप्रकल्प का कथन किया गया है, जिसमे सपूर्ण आचारागसूत्र के २५ अध्ययन और निशीथसूत्र के तीन विभाग का समावेश करके अट्ठाईस का योग बताया है। इससे स्पष्ट है कि आगमो मे निशीथ को आचारागसूत्र का ही विभाग या अध्ययन बताया गया है।

निष्कर्ष यह है कि आगमिक वर्णनो को प्रमुखता देकर ऐतिहासिक उल्लेखो को गौण[1] किया जाय तो यह सहज समझ मे आ सकता है—"निशीथ-अध्ययन" आचारागसूत्र के एक अध्ययन का नाम था। उसमे बीस उद्देशक

---

१ आगम वर्णन से जो निर्णय स्पष्ट हो जाता हो, उस विषय मे इतिहास या परम्परा से उलझना वैधानिक नही होता है। आगमवर्णित विषय के पोषक तत्त्वो से सुलझना ही उपयुक्त होता है।

थे। आज भी आचारांग के अध्ययनो मे अनेक उद्देशक उपलब्ध हैं। उन २० उद्देशक के भी विषयवर्णन की अपेक्षा तीन विभाग थे—(१) लघु (२) गुरु (३) आरोपणा।

इन तीन को आचाराग के २५ अध्ययन के साथ जोडकर ही समवायागसूत्र मे २८ आचारप्रकल्प कहे हैं।

जब इसे अलग किया गया तब आचाराग से अलग किया हुआ होने से इसका नाम आचारप्रकल्प रखा गया। यही नाम आचार्य भद्रबाहु के समय प्रसिद्ध था, इसीलिए उन्होने व्यवहारसूत्र मे अनेको विधान आचार-प्रकल्प के नाम से किए हैं। समवायाग, प्रश्नव्याकरण आदि अग आगमो मे भी "आचारप्रकल्प" के नाम से वर्णन उपलब्ध है।

आचारप्रकल्प और निशीथ: नामपरिवर्तन

नदीसूत्र मे जो आगम गणना दी गई है, उसमे आचारप्रकल्प का नाम नही है, किन्तु निशीथ का नाम है और व्यवहारसूत्र मे निशीथ का नाम ही नही किन्तु आचारप्रकल्प नाम अनेक बार है। व्यवहारसूत्र की रचना पहले हुई है और नदीसूत्र की सैकडो (८००) वर्ष बाद रचना हुई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भद्रबाहुस्वामी के सामने यह सूत्र आचारप्रकल्प नाम से था और उनके बाद देवर्धिगणी तक उस सूत्र का आचारप्रकल्प नाम प्रसिद्धि मे नही रह सका किन्तु आचाराग के अध्ययन का जो मौलिक नाम निशीथ अध्ययन था, वही नाम निशीथ-सूत्र इस रूप से प्रसिद्धि मे आया और नदी-रचनाकार श्री देववाचक पदविभूषित देवर्धिगणी क्षमाश्रमण ने उसी प्रसिद्ध नाम को स्थान दिया।

तात्पर्य यह है कि प्रारम्भ मे यह आचाराग का अध्ययन "निशीथ-अध्ययन" इस नाम से था। भद्रबाहु-स्वामी के सामने आचारप्रकल्प या आचारप्रकल्प-अध्ययन के नाम मे था और उनके बाद कभी यह निशीथसूत्र के नाम से प्रसिद्धि पाया। फिर भी व्यवहारसूत्र के मूलपाठ मे आज भी आचारप्रकल्प के नाम से किये गये अनेक विधान उसी रूप मे विद्यमान है और उसी के आधार पर निर्युक्ति, भाष्य, टीका भी विद्यमान है।

निर्युक्ति, भाष्य, टीका आदि व्याख्याकारो ने निशीथसूत्र को अथवा आचाराग सहित निशीथ-अध्ययन को "आचारप्रकल्प" नाम से ग्रहण किया है।

वैकल्पिक पांच नाम

इसे आचारागसूत्र का अध्ययन कहो, आचारप्रकल्प कहो या आचारप्रकल्प-अध्ययन अथवा निशीथसूत्र कहो, सभी निशीथसूत्र के पर्यायवाची नाम हैं। इनकी सख्या पाच है यथा—

१ आचारागसूत्र का अध्ययन—"निसीहज्झयण," २ आचारप्रकल्प-अध्ययन, ३ आचारप्रकल्प (सूत्र), ४ निशीथसूत्र, ५ आचारागसूत्र की पचम चूला।

इस प्रकार समय-समय पर परिवर्तित नाम वाला यह शास्त्र है। नन्दीसूत्र की रचना के बाद इसका नाम "निशीथसूत्र" यह निश्चित हो गया, जो आज तक चल रहा है।

व्याख्याएं—व्याख्याकार और व्याख्याकाल

इस सूत्र पर द्वितीय भद्रबाहुस्वामी ने निर्युक्ति नामक व्याख्या की है। सूत्र और निर्युक्ति के आधार पर भाष्य नामक व्याख्या आचार्य सिद्धसेनगणी ने की, ऐसा चूर्णिकार ने अनेक बार निर्देश किया है। मतातर से आचार्य सघदासगणी भी कहे जाते है, किन्तु यह कथन चूर्णि के अनुसार इतना महत्त्वपूर्ण नही है।

सूत्र और निर्युक्ति एव भाष्य गाथाओ के आधार पर चूर्णि नामक व्याख्या आचार्य जिनदासगणी महत्तर ने की है। इस निशीथसूत्र का चूर्णि सहित भाष्य, निर्युक्ति का प्रकाशन आगरा से हुआ, जिसके सम्पादक उपाध्याय कवि प रत्न श्री अमरमुनिजी म सा एव प रत्न श्री कन्हैयालालजी म सा "कमल" हैं। उक्त तीनो व्याख्याए प्राकृत भाषा मे हैं। जिसमे चूर्णि गद्यमय व्याख्या है और भाष्य, निर्युक्ति गाथामय व्याख्या हैं।

निर्युक्तिकार वीर निर्वाण की ग्यारहवी शताब्दी मे हुए हैं। इन निर्युक्तिकार के भाई वराहमिहिर थे। उन्होने "वराहीसहिता" ग्रन्थ की रचना की, जिसमे उसका रचना समय अकित है। उसी सवत् के आधार से इन भद्रबाहुस्वामी और वराहमिहिर का समय ज्ञात होता है, जो विक्रम की छट्ठी शताब्दी का और वीर निर्वाण की ग्यारहवी शताब्दी का अर्थात् देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के ३०-४० वर्ष बाद का समय था, जो कि विक्रम सवत् ५६२ का समय है। तदनन्तर विक्रम की सातवी सदी मे भाष्यकार एव करीब आठवी सदी मे चूर्णिकार के होने का समय है।

इस प्रकार इस सूत्र का व्याख्यासाहित्य भी कम से कम १३०० वष प्राचीन है।

इस सूत्र पर सस्कृत व्याख्या इसी इक्कीसवी शताब्दी मे श्रीमज्जैनाचाय आगमोद्धारक प रत्न श्री घासीलालजी म सा ने की है।

मूलस्पर्शी हिन्दी, गुजराती अनुवाद श्रीमज्जैनाचार्य आगमोद्धारक प रत्न श्री अमोलकऋषिजी म सा आदि अनेक विद्वानो द्वारा समय-समय पर हुआ है। किन्तु हिन्दी भाषा मे व्याख्या-विवेचन सहित मूल एव अनुवाद के सम्पादन का यह प्रथम प्रयास है।

विवेचन का आधार एव उससे अतिरिक्त कथन

निशीथसूत्र का यह सपादन निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि के आधार से या प्रमुखता से किया गया है। मूलपाठ के सपादन मे एव सूत्र की अर्थरचना मे उपलब्ध अनेक प्रतियो को गौण करके निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि के आधार को प्रमुखता दी गई है। विवेचन करने मे भी उक्त व्याख्याओ को प्रमुखता दी गई है, तथापि कुछ स्थानो मे आगम-आशयो को प्रमुखता देकर इन व्याख्याओ से भिन्न या विपरीत विवेचन भी किया गया है। इस निशीथसूत्र के अतिरिक्त व्यवहारसूत्र मे भी कुछ स्थानो मे ऐसा किया गया है, वे सभी स्थल निम्न है—

(१)	निशीथसूत्र	उ २	सू १	"पादप्रोछन"
(२)	निशीथसूत्र	उ २	सू ८	"विसूयावेइ"
(३)	निशीथसूत्र	उ ३	सू ७३	"गोलेहणियासु"
(४)	निशीथसूत्र	उ ३	सू ८०	"अणुग्गए सूरिए"
(५-६)	निशीथसूत्र	उ १९	सू १ और ६	"वियड" और "गालेइ"
(७)	व्यवहार	उ २	सू १७	"अट्ठजाय"
(८)	व्यवहार	उ ३	सू १-२	"गणधारण"
(९)	व्यवहार	उ ३१	सू ३१	"सोडियसाला"
(१०)	व्यवहार	उ १०	सू २२	"तिवासपरियाए"
(११)	व्यवहार	उ २	सू १०	"पलासगसि"
(१२-१३)	व्यवहार	उ ३	सू ९-१०	"निरुद्ध परियाए, निरुद्धवास परियाए"

इन शब्दो के अर्थ एव विवेचन को प्राचीन व्याख्याओ से भिन्न करने का प्रमुख कारण आगम-आशय को सही समझाना ही रहा है। विशेष जानकारी के लिए अकित स्थलो का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। वहा विषय और आशय को हेतु एव आगम-प्रमाणो से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

आचारप्रकल्प एवं प्रायश्चित्त की आरोपणा

समवायागसूत्र मे अट्ठाईस प्रकार की प्रायश्चित्त आरोपणा को भी आचारप्रकल्प कहा गया है। उसका कारण भी यही है कि वह २८ प्रायश्चित्त आरोपणा भी आचारप्रकल्प-अध्ययन से ही सम्बन्धित है, अत उसे आचार-प्रकल्प कह दिया गया है।

२८ प्रकार की आरोपणा के मूलपाठ मे वहा लिपिदोष से कुछ विकृति हुई है, जिसकी व्याख्याकारो ने भी चर्चा नही की है।

वहा आरोपणा का प्रारम्भ एक मास और पाच दिन से करके चार मास २५ दिन पर उसका अत किया गया है, इस तरह बीच से प्रारम्भ कर बीच ही मे पूर्ण करना सगत प्रतीत नही होता है।

वास्तव मे पाच रात्रि के प्रायश्चित्त-आरोपणा से प्रारम्भ कर एक मास तक ६ विकल्प और चार मास तक २४ विकल्प करने चाहिए। यही प्रायश्चित्त देने की आरोपणा की विधि एव क्रम भाष्यादि से भी स्पष्ट सिद्ध होता है। किन्तु एक मास पाच दिन से प्रारम्भ करके ४ मास २५ दिन तक ही ले जाकर २४ भग करने की सगति का कोई भी आधार नही है एव उसके कारण का स्पष्टीकरण भी नही हो सकता है। अत पाच दिन से लेकर चार मास तक के २४ विकल्प करना ही उचित है। निशीथ मे भी चार मास तक के ही प्रायश्चित्तस्थान कहे गये है और व्याख्याओ मे पाच दिन से ही आरोपणा प्रारम्भ की जाती है। २४ विकल्प के बाद के अतिम चार विकल्प तो निर्विवाद हैं—(१) लघु (२) गुरु (३) सपूर्ण (४) अपूर्ण। यो कुल अट्ठाईस आचारप्रकल्प कहे हैं। अपेक्षा से आचाराग और निशीथसूत्र के अध्ययन एव विभागो की जोड को भी अट्ठाईस आचारप्रकल्प कहा जाता है।

निशीथसूत्र का प्रमुख विषय

अनिवार्य कारणो से या कारणो के बिना सयम की मर्यादाओ को भग करके यदि कोई स्वय आलोचना करे तब किस दोष का कितना प्रायश्चित्त होता है, यह इस छेदसूत्र का प्रमुख विषय है। जो बीस उद्देशो मे इस प्रकार विभक्त है—

पहले उद्देशक मे गुरुमासिक प्रायश्चित्त योग्य दोषो का प्ररूपण है।
उद्देशक २ से ५ तक मे लघुमासिक प्रायश्चित्त योग्य दोषो का प्ररूपण है।
उद्देशक ६ से ११ तक मे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोषो का प्ररूपण है।
उद्देशक १२ से १९ तक मे लघुचौमासी प्रायश्चित्त योग्य दोषो का प्ररूपण है।
बीसवें उद्देशक मे प्रायश्चित्त देने एव उसे वहन करने की विधि कही गई है।

अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार की शुद्धि आलोचना और मिच्छामि दुक्कड के अल्प प्रायश्चित्त से हो जाती है। अनाचार दोष के सेवन का ही निशीथसूत्रोक्त प्रायश्चित्त होता है। यह स्थविरकल्पी सामान्य साधुओ की मर्यादा है।

जिनकल्पी या प्रतिमाधारी आदि विशिष्ट साधनावालो को अतिक्रम आदि का भी निशीथसूत्रोक्त गुरु प्रायश्चित्त आता है।

१ लघुमासिक प्रायश्चित्त जघन्य एक एकासना, उत्कृष्ट २७ उपवास है।
२ गुरुमासिक प्रायश्चित्त जघन्य एक निवी (दो एकासना), उत्कृष्ट ३० उपवास है।
३ लघुचौमासी प्रायश्चित्त जघन्य एक आयम्बिल (या एक एकासना), उत्कृष्ट १०८ उपवास है।
४ गुरुचौमासी प्रायश्चित्त जघन्य एक उपवास (चार एकासना), उत्कृष्ट १२० उपवास है।
५. उक्त दोषो के प्रायश्चित्तस्थानो का बारम्बार सेवन करने पर अथवा उनका सेवन लम्बे समय तक चलता रहने पर तप-प्रायश्चित्त की सीमा बढ जाती है, जो कभी दीक्षाछेद तक भी बढ़ा दी जा सकती है।
६ कोई साधक बडे दोष को गुप्त रूप मे सेवन करके छिपाना चाहे और दूसरा व्यक्ति उस दोष को प्रकट कर सिद्ध करके प्रायश्चित्त दिलवावे तो उसे दीक्षाछेद का ही प्रायश्चित्त आता है।
७ दूसरे के द्वारा सिद्ध करने पर भी अत्यधिक झूठ-कपट करके विपरीत आचरण करे अथवा उल्टा चोर कोतवाल को डाटने का काम करे किन्तु मजबूर करने पर फिर सरलता स्वीकार करके प्रायश्चित्त लेने के लिए तैयार होवे तो उसे नई दीक्षा का प्रायश्चित्त दिया जाता है।
८. यदि उस दुराग्रह मे ही रहे एव सरलता स्वीकार करे ही नही तो उसे गच्छ से निकाल दिया जाता है।

सूत्रों की गोपनीयता

कोई भी ज्ञान या आगम एकान्त गोपनीय नही होता है, किन्तु उसकी भी अपनी कोई सीमा अवश्य होती है।

मूल आगमो मे कही भी किसी भी सूत्र को गोपनीय नही कहा गया है। केवल इतना अवश्य कहा गया है कि योग्यताप्राप्त शिष्य को क्रम से ही सूत्र एव उनके अर्थ परमार्थ का अध्ययन कराना चाहिए।

अयोग्य को या क्रम-अप्राप्त को किसी भी शास्त्र का अध्ययन नही करना चाहिए, क्योकि उसे अध्ययन कराने पर अध्यापन कराने वाले को निशीथसूत्र उद्देशक १९ के अनुसार प्रायश्चित्त आता है, साथ ही योग्यताप्राप्त और विनीत शिष्यो को यथाक्रम से अध्ययन नही कराने पर भी उन्हे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

इस प्रकार यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि योग्य साधु-साध्वियों की अपेक्षा कोई भी आगम गोपनीय नही होता है।

आगमो मे १२ अगसूत्रो मे से साध्वियो को ग्यारह अगसूत्रो का अध्ययन करने का वर्णन आता है। साधुओ को १२ ही अगो का अध्ययन करने का वर्णन आता है एव श्रावको को भी श्रुत का अध्ययन एव श्रुत के उपधान का वर्णन आता है। तीर्थंकरो की मौजूदगी मे द्वादशागी श्रुत ही था, शेष सूत्रो की सकलना कालातर मे हुई यह निर्विवाद है।

इस प्रकार आगम गोपनीय होते हुए भी तीर्थंकरो के समय भी अग शास्त्रो का साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चतुर्विध सघ अध्ययन करता था।

चौदहपूर्वी भद्रबाहु-रचित व्यवहारसूत्र मे भी आचारप्रकल्प के अध्ययन-अध्यापन को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। प्रत्येक युवक सत सती को इसका कठस्थ होना आवश्यक कहा है, इससे इसकी अतिगोपनीयता का जो वातावरण है, वह आवश्यक प्रतीत नही होता है। इस प्रकार निशीथसूत्र या अन्य सूत्रो का अध्ययन भी चतुर्विध सघ मे प्राचीनकाल से प्रचलित था।

कालातर मे आगमलेखन-युग एव फिर व्याख्यालेखन-युग और अब प्रकाशनयुग आया है। आगमो का लेखन और प्रकाशन समय-समय पर हुआ और हो रहा है। देश-विदेश में भी इनकी लिखित और प्रकाशित प्रतियो

का प्रचार हुआ है। अत गोपनीयता का प्रचलित हुआ कथन अब केवल कथनमात्र रह गया है।

योग्य साधु-साध्वी के लिए अन्य आगम तो क्या छेदसूत्र भी गोपनीय नही है, अपितु यह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही है कि छेदसूत्रो का अध्ययन किए बिना या उनके अर्थ परमार्थ को समझे बिना साधक की साधना अधूरी है, पगु है, परवश है तथा इनके सूक्ष्मतम अध्ययन के बिना सघव्यवस्था तो परिपूर्ण अधकारमय ही होती है।

छेदसूत्रो के अर्थ परमार्थ के अध्ययन के बिना श्रमण श्रमणी जघन्य बहुश्रुत भी नही बन सकते और जघन्य बहुश्रुत के बिना वे हमेशा परवश ही विचरण कर सकते हैं। वे किसी भी प्रकार की प्रमुखता धारण नही कर सकते हैं, स्वतन्त्र विचरण एव गोचरी भी नही कर सकते, सदा दूसरो के निर्णय और आधार पर ही जीवन जीते हैं। सघ-व्यवस्था का भार वहन करने वालो के लिए तो ये छेदसूत्र और इनका अर्थ परमार्थ समझना नितान्त आवश्यक है।

इन्ही अनेक दृष्टिकोणो को नजर मे रखते हुए छेदसूत्रो का यह हिन्दी विवेचनयुक्त सपादन कार्य किया गया है। आशा है इससे सामान्य साधको को और विशेष कर सिंघाडाप्रमुख आदि पदवीधरो को बहुमुखी मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा।

परम पूज्य श्रद्धेय श्री कन्हैयालालजी म सा "कमल" ने अपने इस महत्त्वशील छेदसूत्रो के सम्पादनकार्य मे मेरा सहयोग लिया और मुझे आगमसेवा का अनुपम अवसर दिया, उसके लिए मैं अत करण से उनका महान उप-कार मानता हू। उनके इस उपकार को जीवन भर नही भुलाया जा सकता है।

अत मे इस सपादन-सहयोग मे अनजान मे या समझभ्रम से किसी भी प्रकार की भाषा या प्ररूपणा की स्खलना हुई हो तो अन्त करण से "मिच्छामि दुक्कड" देता हू। विद्वान् पाठको से भी आशा करता हू कि वे "छद्मस्थमात्र भूल का पात्र है" यह मान कर उन भूलो के लिये मुझे क्षमा प्रदान करेंगे एव सही तत्त्व का आगमा-नुसार निर्णय कर उसे ही स्वीकार करेंगे।

श्री मरुधरकेसरी पावनधाम
जैतारण

—तिलोकमुनि

निशीथसूत्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन

—उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि

भारतीय साहित्य मे जैन आगम साहित्य का अपना विशिष्ट स्थान है। आगम शब्द 'आ' उपसर्ग एव गम् धातु से निर्मित हुआ है। 'आ' का अर्थ पूर्ण और गम् का अर्थ गति या प्राप्ति है। आचारागसूत्र[1] मे आगम शब्द जानने के अर्थ मे व्यवहृत हुआ है। भगवती[2] अनुयोगद्वार[3] और स्थानाग[4] मे आगम शब्द शास्त्र के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। मूर्धन्य महामनीषियो ने आगम शब्द की विविध परिभाषाएँ लिखी हैं। उन सभी परिभाषाओ को यहाँ पर उद्धृत करना सम्भव नही है। स्याद्वादमञ्जरी[5] की टीका मे आगम की परिभाषा इस प्रकार की है—'आप्तवचन आगम है। उपचार से आप्तवचन-समुत्पन्न अर्थज्ञान भी आगम है।' आचार्य मलयगिरि[6] ने लिखा है—'जिससे पदार्थों का परिपूर्णता के साथ मर्यादित ज्ञान हो वह आगम है।' रत्नाकरावतारिका[7] वृत्ति मे आगम की परिभाषा यह है—'जिससे पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो वह आगम है।'[8] जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने आगम की परिभाषा देते हुए लिखा है जिससे सही शिक्षा प्राप्त होती है, वह शास्त्र आगम या श्रुतज्ञान कहलाता है।

आगम साहित्य सर्वज्ञ-सर्वदर्शी महापुरुषो के विचारो का नवनीत है। यह आगमसाहित्य अक्षरदेह से जितना विशाल और विराट् है उससे भी अधिक अर्थगरिमा से मण्डित है। उसमे जहाँ दार्शनिक चिन्तन का प्राधान्य है, द्रव्यानुयोग का गम्भीर विश्लेषण है वहाँ उसमे श्रमणो और श्रावको के आचार-विचार, व्रत-सयम, त्याग-तपस्या, उपवास, प्रायश्चित्त आदि का भी विस्तार से निरूपण किया गया है। धर्म और दर्शन के गुरु-गम्भीर रहस्यो को स्पष्ट करने हेतु कथाओ का भी समुचित उपयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त आध्यात्मिक जीवन के जीते-जागते

---

१ (क) "आगमेत्ता आणवेज्जा"—आचारागसूत्र १।५।४
(ख) "लाघव आगममाणे"—आचारागसूत्र १।६।३

२ भगवतीसूत्र ५।३।१९२

३ अनुयोगद्वारसूत्र ४२

४ स्थानागसूत्र ३३८

५ "आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसवेदनमागम, उपचारादाप्तवचन च।" —स्याद्वादमञ्जरी टीका श्लोक ३८

६. "आ—अभिविधिना सकलश्रुतविषयव्याप्तिरूपेण, मर्यादया वा यथावस्थितप्ररूपणारूपया गम्यन्ते—परिच्छिद्यन्ते अर्था येन स आगम।" —आवश्यक (वृत्ति) मलयगिरि

७ "आगम्यन्ते मर्यादयाऽवबुद्ध्यन्तेऽर्था अनेनेत्यागम —रत्नाकरावतारिकावृत्ति

८ "सासिज्जइ जेण तय सत्थ त वा विवेसिय नाण।
आगम एव य सत्थ आगम सत्थ तु सुयनाण ॥ —विशेषावश्यकभाष्य गा ५५९

प्रतीक श्रमण भगवान् महावीर प्रभृति तीर्थंकरो के जन्म, तपस्या, उपदेश और विहारचर्या, शिष्यपरम्परायें, आर्य और अनार्य क्षेत्र की सीमाएँ, तात्कालिक राजा, राजकुमार और मत-मतान्तरो का विशेष निरूपण है। आगम-साहित्य ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे अभिनव चेतना का सचार किया। जीवन का सजीव और यथार्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा कि जीवन का लक्ष्य विषयवासना के दल-दल मे फसने का नही, अपितु त्याग, वैराग्य और सयम से जीवन को चमकाना है। यही कारण है जैन आगमसाहित्य मे सर्वत्र साधक को सयम-साधना तप-आराधना और मनोमन्थन की पावन प्रेरणा प्रदान की गई है।

आचार्य देववाचक ने नन्दीसूत्र मे आगमसाहित्य को दो भागो मे विभक्त किया है[1]—अगप्रविष्ट और अगबाह्य। छेदसूत्र अगबाह्य आगम है। छेदसूत्रो मे जैन श्रमण और श्रमणियो के जीवन से सम्बन्धित आचार विषयक नियमोपनियम का विशद विश्लेषण है। यह विश्लेषण स्वय भ. महावीर के द्वारा निरूपित है। जो बहुत ही अद्भुत और अनूठा है।

उसके पश्चात् उत्तरवर्ती आचार्यों ने भी उसको विकसित किया। छेदसूत्रो मे नियम भग हो जाने पर श्रमण-श्रमणियो द्वारा अनुसरणीय विविध प्रायश्चित्त विधियो का विश्लेषण हुआ है। श्रमणजीवन की पवित्रता—निर्मलता बनाये रखने हेतु ही छेदसूत्रो का निर्माण हुआ। यही कारण है श्रमणजीवन के सम्यक् सचालन के लिए छेदसूत्रो का अध्ययन आवश्यक ही नही, अपितु अनिवार्य माना गया है।

सर्वप्रथम छेदसूत्र शब्द का प्रयोग हमे आवश्यकनिर्युक्ति मे मिलता है।[2] इसके पूर्व किसी भी प्राचीन साहित्य मे 'छेदसूत्र' यह नाम नही आया है। उसके पश्चात् आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक[3] भाष्य मे तथा सघदासगणि ने निशीथभाष्य[4] मे छेदसूत्र का उल्लेख किया है। छेदसूत्रो का पृथक् वर्गीकरण क्यो किया गया ? क्यो निशीथ आदि को छेदसूत्र के अन्तर्गत रखा गया ? इसका स्पष्ट समाधान वहाँ पर नही किया गया है। यह स्पष्ट है कि हम जिन आगमो को छेदसूत्र की सज्ञा प्रदान करते हैं, वे आगम मूलत प्रायश्चित्त सूत्र हैं। व्यवहार, आलोचना, शोधि और प्रायश्चित्त ये चार शब्द व्यवहारभाष्य[5] मे पर्यायवाची माने गये हैं। प्रस्तुत आधार से छेदसूत्रो को व्यवहारसूत्र, आलोचनासूत्र, शोधिसूत्र और प्रायश्चित्तसूत्र कह सकते है। छेदसूत्रो के लिए 'पदविभाग', 'समाचारी' शब्द का प्रयोग आचार्य मलयगिरि ने आवश्यकनिर्युक्ति[6] की वृत्ति मे किया है। पदविभाग और छेद ये दोनो शब्द समान अर्थ को व्यक्त करते है। सम्भव है इस दृष्टि से छेदसूत्र यह नाम रखा गया हो। छेदसूत्रो मे एक सूत्र का दूसरे सूत्र से सम्बन्ध नही है। छेदसूत्र के सभी सूत्र स्वतन्त्र हैं। उन सूत्रो की व्याख्या भी छेददृष्टि से या विभागदृष्टि से की जाती है।

---

१ नन्दीसूत्र ७२

२ ज च महाकप्प सुय, जाणि असेसाणि छेअसुत्ताणि।
चरणकरणाणुओगो त्ति कालियत्थे उवगयाणि॥ —आवश्यकनिर्युक्ति ७७७

३ ज च महाकप्प सुय, जाणि असेसाणि छेअसुत्ताणि।
चरणकरणाणुओगो त्ति कालियत्थे उवगयाणि॥ —विशेषावश्यकभाष्य २२९५

४ छेदसुत्तणिसीहादी अत्थो य गतो य छेदसुत्तादी।
मतनिमित्तोसहिपाहुडे, य गाहेनि अण्णत्थ॥ —निशीथभाष्य ५९४७

५ व्यवहारभाष्य २।९०

६ पदविभाग, समाचारी छेदसूत्राणि। —आवश्यकनिर्युक्ति ६६५ मलयगिरि वृत्ति

हम पूर्व पंक्तियो मे लिख चुके हैं छेद-सूत्रो को प्रायश्चित्तसूत्र कहा गया है। स्थानाग मे श्रमणो के लिए पाच चारित्रो का उल्लेख है—१ सामायिक, २ छेदोपस्थापनीय, ३ परिहारविशुद्धि, ४ सूक्ष्मसपराय, ५ यथाख्यात[1]। इनमे से वर्तमान मे अन्तिम तीन चारित्र विच्छिन्न हो गये है। सामायिक चारित्र स्वल्पकालीन होता है, छेदोपस्थापनिक चारित्र ही जीवनपर्यन्त रहता है। प्रायश्चित्त का सम्बन्ध भी इसी चारित्र से है। सम्भवतः इसी चारित्र को लक्ष्य मे रखकर प्रायश्चित्तसूत्रो को छेदसूत्र की सज्ञा दी गई हो।

दशाश्रुतस्कन्ध, व्यवहार और बृहत्कल्प ये सूत्र नौवें प्रत्याख्यान पूर्व से उद्धृत किये गये है।[2] उससे छिन्न अर्थात् पृथक् करने से उन्हे छेदसूत्र की सज्ञा दी गई हो, यह भी सम्भव है।[3]

निशीथसूत्र के उन्नीसवें उद्देशक के सत्रहवें सूत्र मे छेदसूत्र को 'उत्तमश्रुत' कहा गया है। सघदासगणि ने निशीथभाष्य मे छेदसूत्र को उत्तमश्रुत माना है।[4] जिनदासगणि महत्तर ने निशीथचूर्णि मे यह प्रश्न उपस्थित किया है और पुन उन्होने ही प्रश्न का समाधान करते हुए लिखा है कि छेदसूत्र मे प्रायश्चित्तविधि का निरूपण होने से वह चारित्र की विशुद्धि करता है, तदर्थ ही छेदसूत्रो को उत्तमश्रुत कहा गया है।[5]

उत्तमश्रुत शब्द पर चिन्तन करते हुए एक जिज्ञासा अन्तर्मानस मे उद्बुद्ध होती है कि छेदसूत्र कही 'छेक' सूत्र तो नही है? छेकश्रुत का अर्थ है कल्याणश्रुत और उत्तमश्रुत। दशाश्रुतस्कन्ध की चूर्णि मे दशाश्रुतस्कन्ध को 'छेक' सूत्र का प्रमुख ग्रन्थ माना है।[6] दशाश्रुतस्कन्ध प्रायश्चित्तसूत्र नही है। वह तो आचारसूत्र है। इसीलिए दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि मे दशाश्रुतस्कन्ध को चरणकरणानुयोग मे लिया गया है। यदि छेदसूत्र को छेकसूत्र मान भी लिया जाय तो किसी प्रकार की आपत्ति नही हो सकती। आचार्य शय्यभव के दशवैकालिकसूत्र मे—**ज छेय त समायरे**[7] पद प्राप्त हे। यहाँ पर छेय शब्द से छेक होने की पुष्टि होती है।[8]

षट्खण्डागम,[9] सर्वार्थसिद्धि,[10] तत्त्वार्थराजवार्तिक,[11] गोम्मटसार जीवकाण्ड[12] प्रभृति दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे आगमसाहित्य के दो विभाग किये गये हैं—अगबाह्य और अगप्रविष्ट। पर इनमे छेद इस

---

१ (क) स्थानागसूत्र ५, उद्देशक २, सूत्र ४२८
  (ख) विशेषावश्यकभाष्य गा १२६०-७०
२ कतर सुत्त? दसाउकप्पो ववहारो य। कतरातो उद्धृत? उच्यते पच्चक्खाणपुव्वाओ।
  —दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि, पत्र २
३ निशीथ १९।१७
४ छेयसुयमुत्तमसुय। —निशीथभाष्य, ६१८४
५ छेदसुय कम्हा उत्तमसुत? भण्णति—जम्हा एत्थ सपायच्छित्तो विधि भण्णति, जम्हा ये तेणच्चरणविसुद्धि करेति, तम्हा त उत्तमसुत। —निशीथभाष्य, ६१८४ की चूर्णि।
६ इमं पुण च्छेयसुत्तपमुहभूत। —दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि, पत्र २
७ दशवैकालिक ४।११
८ निसीहज्झयण प्रस्तावना। —आचार्य तुलसी
९ षट्खण्डागम, भाग १ पृ ९६
१०. सर्वार्थसिद्धि पूज्यपाद, १-२०
११ तत्त्वार्थराजवार्तिक अकलक, १-२०
१२. गोम्मटसार जीवकाण्ड नेमीचन्द्र, पृ १३४

प्रकार का विभाग प्राप्त नही है। पर बाद के ग्रन्थो मे छेदशास्त्र और छेदपिण्ड ये नाम प्राप्त होते है। सम्भव है दिगम्बर परम्परा मे भी प्रायश्चित्त के अर्थ मे ही छेद शब्द व्यवहृत रहा हो। छेदशास्त्र और छेदपिण्ड दोनो ही ग्रन्थो मे प्रायश्चित्त का निरूपण है। छेदपिण्ड मे प्रायश्चित्त के आठ पर्यायवाची नामो का उल्लेख है[1]—(१) प्रायश्चित्त, (२) छेद, (३) मलहरण, (४) पापनाशन, (५) बोधि, (६) पुण्य, (७) पवित्र, (८) पावन। छेदशास्त्र मे भी प्रायश्चित्त और छेद इन दोनो शब्दो को पर्यायवाची स्वीकार किया है।[2] साराश यह है कि छेदसूत्र प्रायश्चित्तसूत्र हैं।

समाचारीशतक मे आचार्य समयसुन्दरगणि ने छेदसूत्रो की सख्या छह बतलाई है[3] —(१) दशाश्रुतस्कन्ध, (२) व्यवहार, (३) बृहत्कल्प, (४) निशीथ, (५) महानिशीथ, (६) जीतकल्प। इनमे से पाँच-छह सूत्रो के नाम का उल्लेख आचार्य देववाचक ने नन्दीसूत्र मे किया है।[4] विज्ञो का मन्तव्य है कि जीतकल्प जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण की कृति है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का समय वि स ६५० के लगभग है। जिसका निर्माण नन्दीसूत्र की रचना के पश्चात् हुआ है। अत उसे आगम की कोटि मे स्थान नही दिया जा सकता। महानिशीथसूत्र को दीमक ने खाकर नष्ट कर दिया था। अत वर्तमान मे उसकी मूल प्रति अनुपलब्ध है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने पुन उसका उद्धार किया था।[5] अत वर्तमान मे उपलब्ध महानिशीथ भी आगम की कोटि मे नही आता। इस प्रकार मौलिक छेदसूत्र चार है—(१) दशाश्रुतस्कन्ध, (२) व्यवहार, (३) बृहत्कल्प, (४) निशीथ।

छेदसूत्रो मे निशीथ का प्रमुख स्थान है। निशीथ का अर्थ अप्रकाश्य है।[6] यह सूत्र अपवादबहुल है। अत हर किसी व्यक्ति को नही पढाया जाता था। जिनदासगणि महत्तर ने तीन प्रकार के पाठक बताये हैं—(१) अपरिणामक, (२) परिणामक, (३) अतिपरिणामक। अपरिणामक का अर्थ है जिसकी बुद्धि अपरिपक्व है। परिणामक का अर्थ है जिसकी बुद्धि परिपक्व है। अतिपरिणामक का अर्थ है जिसकी बुद्धि कुतर्क पूर्ण है। अपरिणामक और अतिपरिणामक ये दोनो पाठक निशीथ पढने के अनधिकारी हैं।[7] जो पाठक आजीवन रहस्य को धारण कर सकता है वही प्रबुद्ध पाठक निशीथ पढने का अधिकारी है।[8] यहा पर जो रहस्य शब्द है वह इसकी गोपनीयता को प्रकट करता है। निशीथ का अध्ययन वही साधु कर सकता है जो तीन वर्ष का दीक्षित हो और गाम्भीर्य आदि गुणो से युक्त हो। प्रौढता की दृष्टि से बगल मे बाल वाला सोलह वर्ष का साधु ही निशीथ का वाचक हो सकता है।[9]

---

१ पायच्छित्त छेदो मलहरण पावणासण सोही। पुण्ण पवित्त पावणामिदि पायाच्छित्तनामाइ—छेदपिण्ड, गाथा ३

२ छेदशास्त्र गाथा २

३ समाचारी शतक आगम स्थापनाधिकार।

४ कालिय अणेगविह पण्णत्त, त जहा—दसाओ, कप्पो, ववहारो, निसीह, महानिसीह। —नन्दीसूत्र ७०

५ महानिशीथ अध्ययन ३

६ ज होति अप्पगास त तु णिसीह ति लोग ससिद्ध।
ज अप्पगासधम्म अण्णे पि तय निसीध ति॥ —निशीथभाष्य, श्लोक ६४

७. पुरिसो तिविहो परिणामगो, अपरिणामगो, अतिपरिणामगो, तो
एत्थ अपरिणामग अतिपरिणामगाण पडिसेहो॥ —निशीथचूर्णि, पृ १६५

८ निशीथभाष्य ६७०२-३

९. (क) निशीथचूर्णि, गाथा ६१६५
(ख) व्यवहारभाष्य, उद्देशक ७, गा. २०२-३
(ग) व्यवहारसूत्र, उद्देशक १०, गाथा २०-२१

निशीथ का ज्ञाता हुए बिना कोई भी श्रमण अपने सम्बन्धियो के यहा भिक्षा के लिए नही जा सकता[1] और न वह उपाध्याय आदि पद के योग्य ही माना जा सकता है।[2] श्रमण-मण्डली का अगुआ होने मे और स्वतन्त्र विहार करने मे भी निशीथ का ज्ञान आवश्यक है।[3] क्योकि निशीथ का ज्ञाता हुए बिना कोई साधु प्रायश्चित्त देने का अधिकारी नही हो सकता। इसीलिए व्यवहारसूत्र मे निशीथ को एक मानदण्ड के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

छेदसूत्र दो प्रकार के हैं। कुछ छेदसूत्र अग के अन्तर्गत आते हैं तो और कुछ छेदसूत्र अगबाह्य के अन्तर्गत आते है। निशीथसूत्र अग के अन्तर्गत है और अन्य छेदसूत्र अगबाह्य के अन्तर्गत है। आचार्य देववाचक ने यद्यपि आचाराग और निशीथ के पारस्परिक सम्बन्ध का उल्लेख नही किया है। वहा पर तो केवल आचाराग के पच्चीस अध्ययनो का ही उल्लेख है।[4] समवायागसूत्र मे आचाराग के नौ अध्ययन और आचारचूला के सोलह अध्ययन इस प्रकार आचाराग के पच्चीस अध्ययनो का वर्णन किया है।[5] नन्दीसूत्र मे निशीथ का एक स्वतन्त्र कालिकसूत्र के रूप मे वर्णन किया गया है। किन्तु आचाराग के पच्चीस अध्ययनो मे उसकी गणना नही गई की है।[6] सम्भव है आचार्य देववाचक के सामने निशीथ आचाराग की ही एक चूला है, इस प्रकार की धारणा न रही हो। समवायागसूत्र मे चूलिका के साथ आचारागसूत्र के ८५ उद्देशनकाल बतलाये है।[7] नवाङ्गी टीकाकार आचार्य अभयदेव ने चतुर्थ आचारचूला तक की प्रस्तुत सख्यापूर्ति का सकेत किया है।[8] वह इस प्रकार है—

आचाराग	उद्देशन-काल	आचार-चूला	उद्देशन-काल
१	७	१	११
२	६	२	३
३	४	३	३
४	४	४	२
५	६	५	२
६	५	६	२
७	८	७	२
८	४	८	१
९	७	९	१
		१०	१
		११	१
		१२	१
		१३	१
		१४	१
		१५	१
		१६	१

१ व्यवहारसूत्र, उद्देशक ६, सू २, ३
२ व्यवहारसूत्र, उद्देशक ३, सू ३
३ व्यवहारसूत्र, उद्देशक ३, सू १
४ पणवीस अज्झयणा। —नन्दी, सूत्र ८०
५. आयारस्स ण भगवओ सचूलियायस्स पणवीस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—सत्थपरिण्णा लोगविजओ सीओसणीअ सम्मत्त। आवति धुय विमोह उवहाणसुय महपरिण्णा पिंडेसण सिज्जिरिआ भासज्झयणा य वत्थ पाएसा। उग्गहपडिमा सत्तिक्कसत्तया भावण विमुत्ति॥ —समवायाग, समवाय २५
६ नन्दीसूत्र ७७
७ आयारस्स ण भगवओ सचूलियागस्स पचासीइ उद्देसणकाला पण्णत्ता। —समवायाग, समवाय ८५ वृत्ति
८ तिण्हगणिपिडगाण आयारचूलियावज्जाण सत्तावन अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—आयारे सूयगडे ठाणे। —समवायाग, समवाय ५७

प्रस्तुत अवतरण से यह स्पष्ट है आचाराग और निशीथ मे किसी भी प्रकार का सम्बन्ध प्रतीत नही होता। समवायाग के ५७ अध्ययन मे आचाराग, सूत्रकृतांग, स्थानाग के ५७ अध्ययन प्रतिपादित किये गये हैं।[1] वहां पर भी निशीथ की परिगणना नही की गई है।

आचारागनिर्युक्ति से सर्वप्रथम हमे यह जानकारी प्राप्त होती है कि आचाराग का निशीथ के साथ सम्बन्ध है। आचाराग और पाच चूलाओ की सयुक्त निर्युक्ति बनाकर आचाराग और निशीथ मे परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया गया है। निर्युक्तिकार ने आचाराग की पाचवी चूला के रूप मे निशीथ की स्थापना कर आचाराग और निशीथ दोनो अग हैं यह सिद्ध किया है।

सक्षेप मे साराश यह है कि निशीथ की रचना आचाराग की पाचवी चूला के रूप मे स्थापना नन्दीसूत्र के पश्चात् हुई है और निर्युक्ति की रचना के पूर्व हुई है।

पण्डित दलसुखभाई मालवणिया ने 'निशीथ एक अध्ययन' ग्रन्थ मे प्रस्तुत प्रश्न पर विस्तार से ऊहा-पोह किया है और उन्होने यह विचार प्रस्तुत किया है कि 'निशीथ' किसी समय आचाराग के अन्तर्गत रहा होगा। किन्तु एक समय ऐसा भी आया कि उपलब्ध आचारागसूत्र से निशीथ को पृथक् कर दिया गया। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि निशीथ आचाराग की अन्तिम चूला के रूप मे था, मूल मे नही। सम्भव है, कभी चूला के रूप मे आचाराग मे जोडा गया हो और विशेष कारण उपस्थित होने पर, जो निशीथ मौलिक रूप मे आचाराग का अश नहीं था, वह एक परिशिष्ट रह गया हो जो छेद अगबाह्य था, उसमे निशीथ को सम्मिलित कर दिया गया। अगबाह्य मे निशीथ को सम्मिलित करने से निशीथ का महत्त्व कम नही हुआ। यहा पर भी यह स्मरण रखना होगा कि निशीथसूत्र को आचाराग का अश श्वेताम्बर परम्परा ही मानती है, दिगम्बर परम्परा नही। दिगम्बर परम्परा की दृष्टि से निशीथ अगबाह्य आगम ग्रन्थ ही है।[2] दिगम्बर परम्परा ने चौदह ग्रन्थो को अगबाह्य माना है। उनमे छह तो आवश्यकसूत्र के अध्ययन ही हैं। इससे भी यह स्पष्ट है कि निशीथ कितना प्राचीन आगम है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्परा के भेद होने के पूर्व निशीथसूत्र था यह स्वत सिद्ध होता है।

आचारागनिर्युक्ति मे निम्न गाथा आई है—

णवबंभचेरमइओ अट्ठारसपयसहस्सिओ वेओ।
हवइ य सपंचचूलो बहु-बहुतरओ पयग्गेण ॥[3]

प्रस्तुत गाथा से यह स्पष्ट होता है कि पहले आचाराग के प्रथम स्कन्ध के नौ ब्रह्मचर्य अध्ययन ही थे। उसके पश्चात् उसमे वृद्धि हुई और वह प्रथम बहु हुआ और तदनन्तर बहुतर। आचाराग के आधार पर ही प्रथम चार चूलाए बनी और उन चूलाओ को आचाराग के साथ जोड दिया गया। समवायाग और नन्दी इन दोनो आगमो मे आचाराग का जो परिचय दिया गया है उसमे पच्चीस अध्ययन कहे गये हैं पर निशीथ को उसके साथ नही जोडा गया है। जब निशीथ को आचाराग के साथ जोडा गया तो वह बहु से बहुतर हो गया। नन्दी मे कथित आगमसूची के निर्माण काल और आचारागनिर्युक्ति की रचना के काल, इन दोनो के बीच के काल मे ही निशीथ को आचाराग मे जोडा गया है।

---

१ हवइ सपचचूलो। —आचारागनिर्युक्ति ११

२ (क) षट्खण्डागम भाग १ पृ ९६। (ख) कषायपाहुण भाग १, पृ २५।१२१

३ आचारागनिर्युक्ति गाथा ११

यह सहज जिज्ञासा उद्भूत हो सकती है—पूर्वगत आचार नामक वस्तु के आधार पर निशीथ का निर्माण या निर्यूढ हुआ, उसका नाम आचारप्रकल्प था। विषयसाम्य होने के कारण उसे आचाराग मे जोड दिया गया हो। आचारप्रकल्प मे प्रायश्चित्त का विधान होने से यह अत्यधिक आवश्यक था कि तीर्थंकर की वाणी के समान ही वह भी प्रमाणभूत माना जाय। इसी दृष्टि से आचाराग की चूला के रूप मे उसकी स्थापना की गई हो। आचाराग-निर्युक्ति[1] के आधार से यह स्पष्ट है कि आचाराग की प्रथम चार चूलाए तो आचाराग के आधार पर निर्मित हुई हैं, किन्तु पाचवी चूला निशीथ का निर्माण प्रत्याख्यान नामक 'पूर्व' से हुआ था।[2] निशीथ का एक नाम आचार भी है।

आचाराग निर्युक्ति मे आचाराग की चूलिकाओ के विषय मे स्पष्ट रूप से लिखा है कि आचाराग आचार-चूलिकाओ के विषय को स्थविरो ने आचार मे से ही लेकर शिष्यो के हित के लिए चूलिकाओ मे विभक्त किया।

आचारागनिर्युक्ति गाथा २८७ मे 'थेरेहिं' शब्द का प्रयोग हुआ है। स्थविर शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य शीलाङ्क ने लिखा है कि आचाराग को किसने निर्यूढ किया और वे कौन थे? स्थविर थे या चतुर्दशपूर्वधर थे?[3] किन्तु आचारागचूर्णि मे स्थविर शब्द का अर्थ गणधर किया है।[4] निशीथचूर्णि मे स्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि निशीथसूत्र के कर्त्ता अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर हैं और सूत्र की दृष्टि से गणधर है। निशीथचूर्णि के अनुसार भी निशीथ के कर्ता गणधर माने गये है। इसका मूल कारण निशीथ को अगसाहित्य के अन्तर्गत गिना है। यहा पर स्थविर शब्द के अर्थ को लेकर परस्पर मे मतभेद है। आचार्य शीलाङ्क ने स्थविर शब्द का अर्थ चतुर्दशपूर्वी तो किया है किन्तु गणधर नही किया। जबकि आचारागचूर्णि और निशीथचूर्णि मे स्थविर का अर्थ गणधर किया है। इसका मूल कारण यह हो सकता है कि निशीथ आचाराग का ही अश है। आचाराग अग-आगम है। अगो के अर्थप्ररूपक तीर्थंकर होते है और सूत्ररचयिता गणधर होते है। इस दृष्टि से उन्होने निशीथ को गणधरकृत माना हो।

यहा यह प्रश्न सहज ही समुत्पन्न हो सकता है कि निर्युक्ति तो चूर्णि के पूर्व बनी है। निर्युक्तिकार ने निशीथ को स्थविरकृत और चूर्णिकार ने गणधरकृत लिखा है। उसका प्रमुख कारण यही हो सकता है कि अगो के रचयिता गणधर होते है, इसलिए गणधरकृत लिखा हो।

---

१ (क) "आयारपकप्पो पुण पच्चक्खाणस्स तइयवत्थूओ।
आयारनामधिज्जा वीसइमा पाहुडच्छेया॥ —आचारागनिर्युक्ति गा २८१

(ख) व्यवहारभाष्य गा २००

२ "थेरेहिऽणुग्गहट्ठा सीसहिअं होउ पागडत्थं च।
आयाराओ अत्थो आयारग्गेसु पविभत्तो॥" —आचारागनिर्युक्ति गा २८७

३ स्थविरैः श्रुतवृद्धैश्चतुर्दशपूर्वविद्धि। —आचारागनिर्युक्ति गा २८७

४ एयाणि पुण आयाएगाणि आयार चेव निज्जूढाणि।
केण णिज्जूढाणि २ थेरेहिं २८७ थेरा-गणधरा॥ —आचारागचूर्णि पृ ३३६

निशीथ

प्रस्तुत आगम का नाम निशीथ है। आचाराङ्गनिर्युक्ति मे 'आयारपकप्प' और 'निसीह' ये दो नाम प्राप्त होते है।[1] अन्य कई स्थलो पर ये दो नाम आये है। नन्दीसूत्र[2] और पक्खियसुत्त[3] ग्रन्थ मे 'निसीह' शब्द का प्रयोग प्रस्तुत आगम के लिए हुआ है। धवला और जयधवला मे क्रमश 'णिसिहिय' और 'णिसीहीय' का प्रयोग हुआ है।[4] अग-प्रज्ञप्तिचूलिका मे 'णिसेहिय' शब्द आया है।[5]

निसीह शब्द का सस्कृत रूप निशीथ है। णिसीहिय और णिसीहीय का सस्कृत अर्थ निषिधक है। वेबर[6] ने निसीह शब्द पर चिन्तन करते हुए लिखा है कि निसीह शब्द का अर्थ निषेध होना चाहिए। उन्होने अपने मन्तव्य को सिद्ध करने हेतु उत्तराध्ययन मे व्यवहृत समाचारी प्रकरण मे 'निसीहिया' 'नैषेधिकी' शब्द समुपस्थित किया है और उन शब्दो की परिभाषा देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि निसीह शब्द का अर्थ 'निशीथ' नही 'निषेध' है। दिगम्बर ग्रन्थो मे निसीह के स्थान मे निसीहिया शब्द का व्यवहार किया गया।[7] गोम्मटसार मे भी यही शब्द प्राप्त होता है।[8] गोम्मटसार की टीका मे निसीहिया का सस्कृत रूप निषीधिका किया है।[9] आचार्य जिनसेन ने हरिवशपुराण मे निशीथ के लिए 'निषद्यक' शब्द का व्यवहार किया[10] है। तत्त्वार्थभाष्य मे निसीह शब्द का सस्कृत रूप निशीथ माना है। निर्युक्तिकार को भी यही अर्थ अभिप्रेत है। इस प्रकार श्वेताम्बर साहित्य के अभिमतानुसार निसीह का सस्कृत रूप निशीथ और उसका अर्थ अप्रकाश्य है। दिगम्बर साहित्य की दृष्टि से निसीहिया का सस्कृत रूप निशीधिका है और उसका अर्थ प्रायश्चित्त-शास्त्र या प्रमाददोष का निषेध करने वाला शास्त्र है।

शास्त्रदृष्टि से निसीह शब्द पर चिन्तन किया जाय तो निसीह शब्द के सस्कृत रूप निशीथ और निशीध दोनो हो सकते हैं, क्योकि 'थ' और 'ध' दोनो को प्राकृत भाषा मे हकार आदेश होना है। अत णिसिहिया या णिसीहिया शब्द के सस्कृत निषिधिका और निशीथिका अर्थ की दृष्टि से चिन्तन करें तो निषिध या निषिधिका की अपेक्षा निशीथ या निशीथिका अर्थ अधिक सगत प्रतीत होता है। क्योकि यह आगम विधिनिषेध का प्रतिपादन

---

१ आचारागनिर्युक्ति गा २९१-३४७

२ नन्दीसूत्र, पृ ४४।

३ पक्खियसुत्त, पृ ६६।

४ षट्खण्डागम, भाग १ पृ ९६, कसायपाहुड, भाग १ पृ २५,१२१ टिप्पणो के साथ देखे।

५ अगप्रज्ञप्तिचूलिका गाथा ३४।

६ इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग २१ पृ ९७।
This Name (निसीह) is Explained Strangely Enough By Nishitha Though the Character of the Contents would lead us to Expect Nishitha (निषेध)

७ षट्खण्डागम, प्रथम खण्ड, पृ ९६।

८ गोम्मटसार जीवकाण्ड ३६७

९ निषेधन प्रमाददोषनिराकरण निषिद्धि सज्ञाया 'क' प्रत्यये निषिद्धिका तच्च प्रमाददोषविशुद्धयर्थं बहुप्रकार प्रायश्चित्त वर्णयति। —गोम्मटसार जीवकाण्ड ३६७

१० निषद्यकाख्यमाख्याति प्रायश्चित्तविधि परम्। —हरिवशपुराण १०।१३८

करने वाला नही अपितु प्रायश्चित्त का प्रतिपादन करने वाला है। इस कथन मे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो आचार्य एकमत है।[1]

चूर्णि मे निशीथ को प्रतिषेधसूत्र या प्रायश्चित्तसूत्र का प्रतिपादक बताया है।[2] निशीथभाष्य मे लिखा है कि आयारचूला मे उपदिष्ट क्रिया का अतिक्रमण करने पर जो प्रायश्चित्त आता है उसका निशीथ मे वर्णन है।[3] निशीथसूत्र मे अपवादो का बाहुल्य है। इसलिए सभा आदि मे इसका वाचन नही करना चाहिए। अनधिकारी के सन्मुख उसका प्रकाशन न हो। अत रात्रि या एकान्त मे पठनीय होने से निशीथ का अर्थ सगत होता है। निसिहिया का जो निषेधपरक अर्थ है उसकी सगति भी इस प्रकार हो सकती है कि जो अनधिकारी हैं उनको पढाना निषेध है और जन से आकुल स्थान मे भी पढना निषिद्ध है। यह केवल स्वाध्यायभूमि मे ही पठनीय है।

हरिवशपुराण मे 'निषद्यक' शब्द आया है। सम्भव है कि यह सूत्र विशेष प्रकार की निषद्या मे पढाया जाता होगा। इसलिए इसका नाम निषद्यक रखा गया हो। आलोचना करते समय आलोचक आचार्य के लिए निषद्या की व्यवस्था करता था।[4] सम्भव है प्रस्तुत अध्ययन के समय मे भी निषद्या की व्यवस्था की जाती होगी। इसलिए निशीथभाष्य मे इसका उल्लेख मिलता है।[5]

निशीथ के आचार, अग्र, प्रकल्प, चूलिका ये पर्याय है। प्रायश्चित्तसूत्र का सम्बन्ध चरणकरणानुयोग के साथ है। अत इसका नाम आचार है। आचारागसूत्र के पाँच अग्र हैं। चार आचारचूलाएँ और निशीथ ये पाँच अग्र है इसलिए निशीथ का नाम अग्र है। निशीथ का नौवे पूर्व आचारप्राभृत से रचना की गई है इसलिए इसका नाम प्रकल्प है। प्रकल्पन का द्वितीय अर्थ छेदन करने वाला भी है। आगम साहित्य मे निशीथ का 'आयारपकप्प' यह नाम मिलता है। अग्र और चूला समान अर्थ वाले शब्द हैं।

सक्षेप मे सार यह है कि निशीथ का अर्थ रहस्यमय या गोपनीय है। जैसे रहस्यमय विद्या, मन्त्र, तन्त्र, योग आदि अनधिकारी या अपरिपक्व बुद्धि वाले व्यक्तियों को नही बताते। उनसे छिपाकर गोप्य रखा जाता है। वैसे ही निशीथसूत्र भी गोप्य है। वह भी हर किसी के समक्ष उद्घाटित नही किया जा सकता।

निशीथ का स्थान

चार अनुयोगो मे चरणकरणानुयोग का गौरवपूर्ण स्थान है। चरणानुयोग का अर्थ है आचार सम्बन्धी नियमावली, मर्यादा प्रभृति की व्याख्या। सभी छेदसूत्रो के विषय का समावेश चरणकरणानुयोग मे किया जा सकता

---

१ (क) आयारपकप्पस्स उ इमाइ गोण्णाइ णामधिज्जाइ।
आयारमाइयाइ पायच्छित्तेणउहीगारो॥ —निशीथभाष्य गाथा २
(ख) णिसिहिय बहुविहपायच्छित्तविहाणवण्णण कुणइ। —षट्खण्डागम, भा १ पृ ९८

२ तत्र प्रतिसेध चतुर्थचूडात्मके आचारे यत् प्रतिषिद्ध त सेवतस्स पच्छित भवति त्ति काउ।
—निशीथचूर्णि, भा १, पृ ३

३ आयारे चउसु य, चूलियासु उवएसवितहकारिस्स।
पाच्छित्त मिहज्झयणे भणिय अण्णेसु य पदेसु॥ —निशीथभाष्य ७१

४ आयारे चउसु य, चूलियासु उवएसवितहकारिस्स।
पच्छित्त मिहज्झयणे भणिय अण्णेसु य पदेसु॥ —निशीथभाष्य ६३८९

५ सुत्तत्थतदुभयाण गहण बहुमाणविणयमच्छेर।
उक्कुड-णिसेज्ज-अजलि-गहितागहियाम्मि य पणामो॥ —निशीथभाष्य सूत्र ६६७३

है।[1] श्रमण भगवान् महावीर प्रभु सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने के कारण मानव मन की कमजोरियो को अच्छी तरह से जानते थे। वे अपने श्रमणसघ को उन कमजोरियो से बचाकर रखना चाहते थे, इसलिए उन्होने श्रमणसघ की सुदृढ आचार सहिता पर बल दिया। कभी ज्ञात अवस्था मे और कभी अज्ञातावस्था मे दोष लग जाता है। स्वीकृत व्रत भग हो जाता है। व्रत भग होने पर या दोष का सेवन होने पर उसकी शुद्धि हेतु प्रायश्चित्त सहिता का निर्माण किया। छेदसूत्रो मे उन घटनाओ का निषेध किया है, जो सयमी जीवन को धूमिल बनाने वाली है तथा कुछ प्रायश्चित्त तात्कालिक घटनाओ पर भी आधारित है। पर हम गहराई से छेदसूत्रो का अध्ययन करते है तो लगता है कि वे सारे निषेध अहिंसा और अपरिग्रह को केन्द्र बनाकर समुपस्थित किये गये हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से पर्यवेक्षण करने पर यह भी सहज ज्ञात होता है कि भारतवर्ष मे उस समय जो भिक्षु सघ थे उनमे इस प्रकार की प्रवृत्तिया प्रचलित रही होगी। प्रवृत्तिया श्रमणसघ के श्रमण और श्रमणिया देखादेखी न अपना लेवे इस दृष्टि से श्रमण-श्रमणियो को निषेध किया और कदाचित अपना लें तो उनके प्रायश्चित्त का भी विधान किया। इस प्रकार विविध दृष्टियो से निषेध और प्रायश्चित्त विधियाँ प्रतिपादित की गई है।

छेदसूत्रो मे निशीथ का अपना मौलिक स्थान है। व्यवहारसूत्र मे यह स्पष्ट वर्णन है कि जो श्रमण बहुश्रुत हो, उसे कम से कम आचारप्रकल्प का अध्ययन आवश्यक है। जो आचारप्रकल्प का परिज्ञाता हो उसे ही उपाध्याय पद प्रदान किया जा सकता है।[2] जिस भिक्षु ने गुरु के मुखारविन्द से आचारप्रकल्प का मूल अध्ययन किया हो और अर्थ की दृष्टि से अध्ययन करने का मन मे दृढ सकल्प हो तो आचार्य और उपाध्याय का आकस्मिक स्वर्गवास हो जाने पर उस श्रमण को आचार्यपद या उपाध्यायपद प्रदान किया जा सकता है।[3] यदि युवक श्रमण किसी कारण से आचारप्रकल्प को विस्मृत हो गया है तो पुन स्मरण करने पर उसे आचार्य आदि पद दिया जा सकता है।[4] पर कोई स्थविर सन्त आचारप्रकल्प विस्मृत हो जाय और उसकी स्मरण करने की शक्ति नही है तो भी उसे आचार्य पद दिया जा सकता है।[5] जिस श्रमणी को आचारप्रकल्प याद है उसे प्रवर्तिनी पद दिया जा सकता है। यदि प्रमादवश जो श्रमणी आचारप्रकल्प विस्मृत हो गई है किन्तु वह पुन स्मरण करने का प्रयत्न कर रही हो तो उसे प्रवर्तिनी पद दिया जा सकता है।[6]

जो श्रमण और श्रमणिया स्थविर है। अवस्थाविशेष के कारण यदि वे आचारप्रकल्प विस्मृत हो गये तो वे सोये हुए या बैठे हुए किसी भी अवस्था मे आचारप्रकल्प के सम्बन्ध मे प्रतिप्रश्न कर सकते है और प्रतिस्मृति

---

१ ज च महाकप्पसुय, जाणिय से णाणि छेयसुत्ताणि।
चरणकरणाणुओगोत्ति, कालियत्थे उवगयाइ॥ —आवश्यकनिर्युक्ति, ७७८, निशीथभाष्य ६१९०

२ तिवासपरियाए समणे निग्गन्थे आयारकुसले सजमकुसले पवयणकुसले पणत्तिकुसले सगहकुसले उवग्गहकुसले अक्खयायारे अभिन्नायारे असकिलिट्ठायारचित्ते बहुस्सुए बब्भागमे जहन्नेण आयारपकप्पधरे कप्पइ उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तिए व
—व्यवहार ३।३

३ निरुद्धवासपरियाए समणे निग्गन्थे कप्पइ आयरियउवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए, समुच्छेयकप्पसि। तस्स ण आयारपकप्पस्स देसे अवट्ठिए, से य अहिज्जिस्सामित्ति अहिज्जेज्जा एव से कप्पइ आयरिय-उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए, से य अहिज्जिस्सामित्ति नो अहिज्जेज्जा एव से नो कप्पइ आयरिय-उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।
—व्यवहार ३।१०

४ व्यवहार, ५।१५

५ व्यवहार, ५।१७

६ व्यवहार, ५।१६

भी कर सकते हैं, यह उनके लिए विशेष अनुज्ञा है। इन सभी विधानो से यह स्पष्ट है कि आचारप्रकल्प का कितना अधिक महत्त्व है। आचारप्रकल्पधर बहुश्रुत होता है, वह स्वतन्त्र विहार कर सकता है।

आचारप्रकल्पधर के तीन प्रकार है—(१) कितने ही केवल सूत्र को ही धारण करने वाले होते है। (२) कितने ही केवल अर्थ को धारण करने वाले होते है। (३) कितने ही सूत्र और अर्थ दोनो को धारण करने वाले होते हैं। जो केवल सूत्रधर है वह प्रायश्चित्त देने का अधिकारी नही। प्रायश्चित्त देने का सही अधिकारी वह श्रमण होता है जो सूत्र और अर्थ दोनो का धारक हो। सूत्र और अर्थ का धारक न हो तो जो केवल अर्थ के धारक है उनसे भी प्रायश्चित्त लिया जा सकता है।[1] अतीतकाल मे यह प्रश्न बहुत ही चर्चित रहा कि केवलज्ञानी, मन पर्यायज्ञानी और अवधिज्ञानी, चतुर्दशपूर्वी, दसपूर्वी, नौपूर्वी जब नही होते है तब प्रायश्चित्त कौन दे?[2] इस प्रश्न के उत्तर मे आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने लिखा है कि आज केवलज्ञानी आदि प्रत्यक्षज्ञानियो का अभाव है। पर प्रत्यक्षज्ञानियो के द्वारा पूर्वश्रुत से निबद्ध प्रायश्चित्तविधि आचारप्रकल्प मे उद्धृत है। अत आचारप्रकल्पधर आचार्य प्रायश्चित्त देने का अधिकारी है।[3]

प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट है कि जैन आगम साहित्य मे निशीथ का अपना गौरवपूर्ण स्थान रहा है।

निशीथ के कर्ता

जैन आगमो की रचनाएँ दो प्रकार से हुई है—(१) **कृत** (२) **निर्यूहण**। जिन आगमो का निर्माण सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रूप से हुआ है वे आगम कृत कहलाते है। जैसे गणधरो के द्वारा द्वादशाङ्गी की रचना की गई है और भिन्न-भिन्न स्थविरो के द्वारा उपाङ्ग साहित्य का निर्माण किया गया है। वे सब कृत आगम है। निर्यूहण आगम ये माने गये है—

(१) **दशवैकालिक** (२) **आचारचूला** (३) **निशीथ** (४) **दशाश्रुतस्कन्ध** (५) **बृहत्कल्प** (६) **व्यवहार**। इन छह आगमो मे दशवैकालिक आगम का निर्यूहण चतुर्दशपूर्वधर शय्यंभवसूरि ने किया और शेष पाच आगमो का निर्यूहण भद्रबाहु स्वामी ने किया।[4] आचारागनिर्युक्ति के मन्तव्यानुसार आचार-चूला स्थविरो के द्वारा निर्यूढ है।[5] आचारागवृत्ति मे आचार्य शीलाक ने स्थविर का अर्थ चतुर्दशपूर्वी किया है।[6]

---

१ तिविहो य पकप्पधरो, सुत्ते अत्थे य तदुभए चेव।
सुत्तधरवज्जियाण, तिगदुगपरियट्टणा गच्छे॥ —निशीथभाष्य ६६६७

२ निशीथचूर्णि भाग ४, पृ ४०३

३ उग्घायमणुग्घाया, मासचउमासिया उ पाच्छित्ता।
पुव्वगते च्चिय एते, णिज्जूढा जे पकप्पम्मि॥ —निशीथभाष्य ६६७५

४ आयप्पवायपुव्वा निज्जूढा होइ धम्मपन्नत्ती।
कम्मप्पवायपुव्वा पिंडस्स उ एसणा तिविहा॥
सच्चप्पवायपुव्वा निज्जूढा होइ वक्कसुद्धि उ।
अवसेसा निज्जूढा नवमस्स उ तइयवत्थूओ॥ —दशवैकालिकनिर्युक्ति गाथा १६-१७

५ "थेरेहिऽणुग्गहट्ठा सीसहिअ होउ पागडत्थ च।
आयाराओ अत्थो आयारग्गेसु पविभत्तो॥" —आचारागनिर्युक्ति २८७

६ आचारागवृत्ति, पत्र २१०

प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व से निशीथ का निर्यूहण हुआ है। उस पूर्व मे बीस वस्तु हैं। अर्थात् बीस अर्थाधिकार हैं। उनमे तीसरे वस्तु का नाम आयार है। आयार के भी बीस प्राभृतच्छेद हैं। अर्थात् उपविभाग है। बीसवें प्राभृतच्छेद से निशीथ निर्यूहण किया गया है।[1]

दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि के मतानुसार दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प और व्यवहार ये तीनो आगम प्रत्याख्यान नामक पूर्व से निर्यूढ है[2] और उन तीनो आगमो के निर्यूहक चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहुस्वामी है? यह स्पष्ट उल्लेख प्राप्त है।[3] पञ्चकल्प महाभाष्य मे भी दशा, कल्प और व्यवहार के निर्यूहक भद्रबाहु बतलाये गये है[4] और पञ्चकल्पचूर्णि मे आचारप्रकल्प (निशीथ) दशा, कल्प और व्यवहार इनचारो आगमो के निर्यूहक भद्रबाहुस्वामी माने गये हैं।[5] यहा पर यह प्रश्न चिन्तनीय है कि निर्युक्ति और भाष्य मे आचारप्रकल्प का नाम नहीं आया। पर पञ्चकल्पचूर्णि मे आचारप्रकल्प का नाम कैसे आया? यह भी सम्भव है कि 'कल्प' शब्द से निर्युक्तिकार और भाष्यकार को बृहत्कल्प और आचारप्रकल्प ये दोनो ही ग्राह्य हो। जैसे निशीथभाष्य मे 'कप्प' शब्द से उन्होने दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प और व्यवहार इन तीनो आगमो को ग्रहण किया है।[6] सम्भव है आचारचूला और छेदसूत्रो के निर्माता चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहु हो।

पूर्ववर्ती आचार्यों ने आगम के तीन प्रकार बताये है—सुत्तागम, अत्थागम और तदुभयागम। अन्य दृष्टि से आगम के तीन प्रकार और भी है—आत्मागम, अनन्तरागम और परम्परागम। व्याख्या ग्रन्थो मे इसका विवेचन इस प्रकार प्राप्त होता है। तीर्थंकर के लिए अर्थ आत्मागम है। वही अर्थ गणधरो के लिए अनन्तरागम है। गणधरो के लिए सूत्र आत्मागम हैं और गणधरशिष्यो के लिए सूत्र अनन्तरागम और अर्थ परम्परागम है। गणधर शिष्य के लिए और उसके पश्चात् शिष्यपरम्परा के लिए अर्थ और सूत्र दोनो ही आगम परम्परागम है। इनमे आगम का मूल स्रोत, प्रथम उपलब्धि और पारम्परिक उपलब्धि इन तीन दृष्टियो से चिन्तन किया है। आचार्य जिनदासगणि महत्तर की दृष्टि से तीर्थंकर निशीथ के अर्थप्ररूपक है। उनके अर्थ की प्रथम उपलब्धि गणधरो को हुई और उस अर्थ की पारम्परिक उपलब्धि उनके शिष्य और प्रशिष्यो को हुई और वर्तमान मे हो रही है।

---

१ स्थविरै श्रुतवृद्धैश्चतुर्दशपूर्वविद्भि । —आचारागवृत्ति, पृ २१०

२ णिसीह णवमा पुव्वा पच्चखाणस्स तनियवत्थूओ।
आयार नामधेज्जा, वीसतिमा पाहुडच्छेदा॥ —निशीथभाष्य, ६५००

३ कतर सुत्त? दसाउकप्पो ववहारो य। कतरातो उद्धृत? उच्यते पचक्खाणपुव्वाओ।
—दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि, पत्र २

४ वदामि भद्दबाहु, पाइण चरिमसयलसुयनाणि।
सुत्तस्स कारगमिस, दसासु कप्पे य ववहारे॥ —दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति १।१

५ तत्तोच्चिय णिज्जूढ, अणुग्गहट्ठाए सपयजतीण।
तो सुत्तकारतो खलु, स भवति दसकप्पववहारो॥
—पचकल्पमहाभाष्य ११, बृहत्कल्पसूत्रम् षष्ठ वि प्र पृ २

६ तेण भगवता आयारपकप्प-दसा-कप्प-व्यवहारा य नवमपुव्वनीसदभूता निज्जूढा।
—पचकल्पचूर्णि, पत्र १, बृहत्कल्प सूत्रम् षष्ठ वि प्र पृ ३

कप्प पकप्पा तु सुते ।
चूर्णि—'कप्पो' त्ति दसाकप्पववहारा॥ —निशीथभाष्य, ६३९५

सूत्रागम की दृष्टि से निशीथ के सूत्र रचयिता गणधर हैं। उस सूत्र की प्रथम उपलब्धि गणधर के शिष्यो को हुई और पारम्परिक उपलब्धि गणधर के प्रशिष्यों को हुई।[1]

इस प्रकार आचार्य जिनदासगणि महत्तर के अनुसार निशीथ के कर्त्ता अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर और सूत्र की दृष्टि से गणधर सिद्ध होते है। फिर सहज ही यह प्रश्न उद्बुद्ध होता है कि भद्रबाहु को पञ्चकल्पचूर्णिकार ने निशीथ का कर्ता किस प्रकार माना। प्रस्तुत प्रश्न पर जब हम गहराई से चिन्तन करते है तो हमे दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति मे इसका समाधान मिलता है। वहा पर निर्युक्तिकार ने दशाश्रुतस्कन्ध के सम्बन्ध मे चिन्तन करते हुए लिखा है कि प्रस्तुत दशाएँ अगप्रविष्ट आगमो मे प्राप्त दशाओ से लघु हैं। शिष्यो के अनुग्रह हेतु इन लघु दशाओं का निर्यूहण स्थविरो ने किया। पञ्चकल्पभाष्य चूर्णि के अनुसार वे स्थविर भद्रबाहु है। सक्षेप मे यदि हम कहना चाहे तो यो कह सकते हैं कि अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर हैं। सूत्र के रचयिता गणधर है और वर्तमान सक्षिप्त रूप के निर्माता भद्रबाहु स्वामी है।

निशीथसूत्र के अन्त मे प्रशस्ति मे तीन गाथाए प्राप्त होती हैं।[2] जिनके आधार पर विज्ञो मे एक धारणा यह प्रचलित है कि निशीथ के कर्ता विशाखाचार्य है। श्वेताम्बर परम्परा की जितनी भी पट्टावलियाँ उपलब्ध हैं उनमे कही पर भी विशाखाचार्य का उल्लेख नही है। दिगम्बर परम्परा की पट्टावली मे भद्रबाहु के पश्चात् विशाखाचार्य का नाम आया है। विशाखाचार्य दस पूर्वों के ज्ञाता थे। वीर निर्वाण के एक सौ बासठ वर्ष तक भद्रबाहु स्वामी थे। उसके पश्चात् ही विशाखाचार्य का युग प्रारम्भ हुआ। प्रशस्तिगाथाओ मे विशाखाचार्य के लिए—'**तस्स लिहिय निसीह**' यहा पर लिखित का अर्थ रचयिता और लेखक ये दोनो अर्थ निकल सकते है। पट्टावलियो मे अन्य किसी विशाखाचार्य का उल्लेख नही है। जब प्रशस्ति मे निशीथ के लेखक के रूप मे विशाखाचार्य का नाम स्पष्ट रूप से उल्लिखित था, फिर चूर्णिकार ने निशीथ को गणधरकृत क्यो लिखा और आचार्य शीलाक ने निशीथ के रचयिता स्थविर को चतुर्दश पूर्वविद् क्यो लिखा? इसके उत्तर मे स्पष्ट रूप से कुछ भी कहना सम्भव नही।

एक प्रश्न यह भी समुत्पन्न होता है कि निर्युक्तिकार, भाष्यकार और चूर्णिकार के समक्ष ये प्रशस्ति गाथाएँ थी या नही? यदि यह माना जाय कि निशीथ के लेखक विशाखाचार्य थे तो दूसरा प्रश्न यह है कि क्या प्रशस्ति की गाथाएँ विशाखाचार्य ने बनाई? गाथाओ के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि स्वय विशाखाचार्य अपना परिचय इस प्रकार नही दे सकते, वे अपने गुणो का उत्कीर्तन कैसे कर सकते हैं। यदि विशाखाचार्य ने ये गाथाएँ मूल ग्रन्थ के अन्त मे दी होती तो निर्युक्तिकार को विशाखाचार्य का उल्लेख करने मे क्या आपत्ति हो सकती थी? वे फिर स्थविर शब्द से क्यो उल्लेख करते? अत यह स्पष्ट है कि निर्युक्तिकार के समक्ष प्रशस्ति की ये तीन

---

१ "निसीहचूलज्झयणस्स तित्थगराण अत्थस्स अत्तागमे, गणहराण सुत्तस्स अत्तागमे, गणाण अत्थस्स अणतरागमे। गणहरसिस्साण सुत्तस्स अणतरागमे, अत्थस्स परपरागमे। तेण पर सेसाण सुत्तस्सवि अत्थस्सवि णो अत्तागमे, णो अणन्तरागमे, परपरागमे।" —निशीथचूर्णि भाग १ पृ ४

२ दसणचरितजुओ जुत्तो गुत्तीसु सज्जणहिएसु।
नामेण विसाहगणी महत्तरओ गुणाण मजूसा॥
कित्तीकति पिणाद्धो जसपत्तो पडहो तिसागर निरुद्धो।
पुणरुत्त भमइ सहि ससिव्व गगण गुण तस्स॥
तस्स लिहिय निसीह धम्मधुराधरणपवर पुज्जस्स।
आरोग्ग धारणिज्ज सिस्सपसिस्सोव भोज्ज च॥ —निशीथसूत्र भाग ४ पृ ३९५

गाथाएँ नही थी । ये गाथाएं विशाखाचार्य की होती तो चूर्णिकार भी इन गाथाओ पर चूर्णि अवश्य लिखते औ बीसवें उद्देशक की सस्कृत व्याख्या मे भी इसका मकेत अवश्य करते । इसलिए यह स्पष्ट लगता है कि ये गाथा विशाखाचार्य के द्वारा लिखी हुई नही हैं । यदि यह कल्पना की जाय कि ये गाथाएँ विशाखाचार्य के द्वारा ह लिखित हैं तो यहाँ पर 'लिहिय' शब्द का अर्थ रचना नही अपितु पुस्तक लेखन है । यदि यह माना जाय कि भद्रबा ने निशीथ की रचना की ग्रौर उस रचना को विशाखाचार्य ने लिपिबद्ध किया, यह भी सम्भव नही लगता । य दिगम्बर परम्परा के विशाखाचार्य ने निशीथ को लिपिबद्ध किया होता तो दिगम्बर परम्परा मे निशीथ को मान्यत प्राप्त होती, पर निशीथ की जो मान्यता श्वेताम्बर परम्परा मे है वह दिगम्बर परम्परा मे नही है । इसलिए ऐस लगता है कि निशीथ के लिपिकर्ता विशाखाचार्य दिगम्बर परम्परा के नही, अपितु श्वेताम्बर परम्परा वे आचार्य होने चाहिए । यह ग्रन्वेषणीय है कि वे कौन थे ? कहा के थे ? उनकी परिचय रेखाएँ क्या थी ?[1] प्रशस्ति की इन तीन गाथाओ को किसने बनाया और किसने निशीथ के अन्त मे लिखा । यह सही प्रमाण प्राप नही है । ऐसी स्थिति मे इन गाथाग्रो के ग्राधार पर निशीथ के कर्तृत्व का निर्णय करना उपयुक्त नही है । विशाखा चार्य के गुणो का उत्कीर्तन होने से ये गाथाएँ विशाखाचार्य के द्वारा निर्मित नही हैं । विशाखाचार्य के किसं शिष्य-प्रशिष्य ने ही ग्रन्थ के ग्रन्त मे अकित किया हो ।

हम पूर्व पक्तियो मे यह अकित कर ग्राये हैं कि पञ्चकल्पचूर्णि के ग्रनुसार निर्यूहक भद्रबाहु स्वामी है इस मत का समर्थन आगम-प्रभावक पुण्यविजयजी ने भी किया है । यह आज अन्वेषण के पश्चात् स्पष्ट हो चुका है कि आचारचूला चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहु के द्वारा निर्यूहण की गई है । आचाराग से ग्राचारचूला की रचनाशैल सर्वथा पृथक् है । उसकी रचना आचाराग के पश्चात् हुई है ।

एक शिष्य के ग्रन्तर्मानस मे यह प्रश्न उदभूत हुग्रा कि वर्तमान मे तीर्थंकर प्रभु नही हैं, न श्रुतकेवल ही हैं न दसपूर्वी या नौपूर्वी ही है । ऐसी स्थिति मे यदि कदाचित्त दोष लग जाय तो उसका शुद्धिकरण कैसे होगा ? विशिष्ट ज्ञानी के अभाव मे कौन प्रायश्चित्त देकर साधना को निर्मल बनाएगा । आचार्य न शिष्य के मुर्झाये हुए चेहरे को देखा । उसकी बात सुनी । ग्राचार्य ने बहुत ही मधुर शब्दो मे कहा—'वत्स ! तुम्हारा चिन्तन उपयुक्त है । आज तीर्थंकर ग्रौर चतुर्दश पूर्वी हमारे सामने नही है किन्तु चतुदशपूर्वधर द्वारा निबद्ध आचारप्रकल्प ग्रध्ययन को धारण करने वाले ग्राचार्य विद्यमान है । वे प्रायश्चित्त देकर शुद्धिकरण कर मकते है ।[2]

जिनदासगणि महत्तर ने **'चोद्दसपुव्वणिबद्धो'** शब्द के दो अर्थ किये है—'चतुर्दशपूर्वी द्वारा निबद्ध ग्रथवा चतुर्दश पूर्वों से निर्यूढ' । हम पूर्व पक्तियो मे यह लिख चुके है कि निशीथ नौवे पूर्व से निर्यूढ किया गया है । अत चतुर्दश पूर्वी निर्यूढ से कोई विशेष अर्थ प्रकट नही होता । इसलिए जिनदासगणि महत्तर ने निशिथ के कर्ता चतुर्दश-पूर्वी भद्रबाहु को माना है । यह सगत प्रतीत होता है ।

महामनीषी पण्डित दलसुखभाई मालवणिया ने विस्तार से अपनी प्रस्तावना मे विविध दृष्टियो से चिन्तन किया । पर वे स्वय इस निष्कर्ष पर नही पहुँच सके कि निशीथ के कर्ता कौन हैं । उनका यह मत अवश्य रहा कि भद्रबाहु नही होने चाहिए ग्रौर न विशाखाचार्य ही । निशीथ की रचना श्वेताम्बर और दिगम्बर मतभेद के पूर्व होनी चाहिए । भद्रबाहु के पश्चात् ही श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्पराग्रो मे पार्थक्य हुआ है । निशीथ का

---

१ निशीथ एक ग्रध्ययन प दलसुख मालवणिया से सार ग्रहण —पृ १८-२४

२ काम जिणपुव्वधरा, करिसु सोधि तहा वि खलु एण्हि ।
चोद्दसपुव्विणिबद्धो, गणपरियट्टी पकप्पधरो ।। —निशीथभाष्य, ६६७४

दोनो ही परम्पराओ मे उल्लेख है, इसलिए सघभेद के पूर्व ही इसका निर्माण हो गया होगा। व्यवहारसूत्र जो आचार्य भद्रबाहु की ही कृति मानी जाती है, उसमे आचारप्रकल्प का अनेक बार उल्लेख हुआ है।[1] इससे स्पष्ट है कि भद्रबाहु के समक्ष निशीथ अवश्य था। भले ही आज जो निशीथ का रूप है वह न भी हो। इस आधार से निशीथ को भद्रबाहु के समय से पूर्व की रचना मानना तर्कसगत है। श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण से १५० वर्ष के अन्तर्गत ही निशीथ का निर्माण हो चुका था। पञ्चकल्पचूर्णि के अनुसार आचार्य भद्रबाहु ने निशीथ की रचना की, उनका भी समय यही है। दूसरी परम्परा के अनुसार यदि मानते हैं तो भद्रबाहु के पश्चात् ही विशाखाचार्य होते हैं। तो भी वीर निर्वाण से १७५ वर्ष के बीच निशीथ का निर्माण हो चुका था, ऐसा असदिग्ध रूप से कहा जा सकता है।[2]

पण्डित मुनि श्री कल्याणविजयजी गणि का स्पष्ट मन्तव्य है कि बृहत्कल्प और व्यवहार इन दोनो आगमो को पूर्वश्रुत से निर्यूढ करने वाले भद्रबाहु स्वामी हैं और निशीथाध्ययन के निर्यूढकर्ता भद्रबाहु न होकर आर्यरक्षित-सूरि हैं। भद्रबाहु स्वामी ने कल्प और व्यवहार मे जो प्रायश्चित्त का विधान किया है वह तत्कालीन श्रमण-श्रमणियो के लिए पर्याप्त था किन्तु आर्यरक्षितसूरि के समय तक परिस्थिति मे अत्यधिक परिवर्तन हो चुका था। मौर्यकालीन दुर्भिक्षादि की स्थिति समाप्त हो चुकी थी। राजा सम्प्रति मौर्य के समय श्रमण-श्रमणियो की सख्या मे अत्यधिक वृद्धि हो चुकी थी। श्रमणो की सख्या की अभिवृद्धि के साथ अनेक नवीन समस्याएँ भी उपस्थित हो चुकी थी। अत कल्प और व्यवहार का प्रायश्चित्तविधान अपर्याप्त प्रतीत हुआ। एतदर्थ नवीन स्थितियो पर नियन्त्रण करने के लिए विस्तार से प्रायश्चित्तविधान बनाना आवश्यक था, अत आर्यरक्षित ने पूर्व साहित्य से वह निर्यूढ किया। कल्पाध्ययन मे छह उद्देशक थे, व्यवहार मे दस उद्देशक थे तो निशीथाध्ययन मे बीस उद्देशक हैं और लगभग १४२६ सूत्रो में प्रायश्चित्त का विधान है।

पञ्चकल्पभाष्य चूर्णिकार ने कल्प, व्यवहार आदि के साथ निशीथाध्ययन भी श्रुतधर भद्रबाहु स्वामी द्वारा पूवश्रुत से उद्धृत बताया है किन्तु सत्य-तथ्य यह नही है। बृहत्कल्प की भाषा और प्रतिपादित विषयो तथा निशीथाध्ययन के सूत्रो की भाषा और उसमे प्रतिपादित विषयो मे स्पष्ट रूप से भिन्नता प्रतीत होती है। यह सत्य है कि बृहत्कल्प की भाषा और व्यवहार की भाषा मे भी भिन्नता है पर वह भिन्नता व्यवहार मे बाद मे किये गये परिवर्तनो के कारण है। यही कारण है कि व्यवहारसूत्र मे निशीथाध्ययन का प्रकल्पाध्ययन यह नाम प्राप्त होता है। यह परिवर्तन सम्भव है आर्यरक्षितसूरि के पश्चात् हुआ हो।[3]

निशीथ का आधार और विषय-वर्णन

निशीथ आचाराग की पाचवी चूला है। इसे एक स्वतन्त्र अध्ययन भी कहते है। इसीलिए इसका अपर नाम निशीथाध्ययन भी है। इसमे बीस उद्देशक हैं। पूर्व के उन्नीस उद्देशको मे प्रायश्चित्त का विधान है और बीसवें उद्देशक मे प्रायश्चित्त देने की प्रक्रिया प्रतिपादित की गई है।

उद्देशक प्रथम मे मासिक अनुद्घातिक (गुरु मास) प्रायश्चित्त का उल्लेख है। उद्देशक दूसरे से लेकर पाचवे तक मासिक उद्घातिक (लघु मास) प्रायश्चित्त का उल्लेख है। उद्देशक छह से लेकर ग्यारह तक चातुर्मासिक अनुद्घातिक (गुरु चातुर्मास) प्रायश्चित्त का उल्लेख है। उद्देशक बारह से लेकर बीस तक चातुर्मासिक उद्घा-

१ व्य. उद्देश ३ १०, उद्देश ५, सूत्र १५, उद्देश ६, सूत्र ४-५ इत्यादि।

२ निशीथ एक अध्ययन पृ २४-२५

३ प्रबन्ध पारिजात मे 'निशीथसूत्र का निर्माण और निर्माता' लेख।

तिक (लघु चातुर्मास) प्रायश्चित्त का उल्लेख है। इन उद्देशको का जो विभाजन किया गया है उसका आधार है मासिक उद्घातिक, मासिक अनुद्घातिक, चातुर्मासिक उद्घातिक, चातुर्मासिक अनुद्घातिक और आरोपणा, ये पाँच विकल्प हैं। स्थानांगसूत्र के पाचवे स्थान मे आचारकल्प के पाच प्रकार बताये हैं।[1]

यदि हम गहराई से चिन्तन करें तो प्रायश्चित्त के दो ही प्रकार है—मासिक और चातुर्मासिक। शेष द्विमासिक, त्रिमासिक, पञ्चमासिक और छह मासिक, ये प्रायश्चित्त आरोपणा के द्वारा बनते है। बीसवे उद्देशक का प्रमुख विषय आरोपणा ही है। स्थानागसूत्र के पाचवे स्थान मे आरोपणा के पाच प्रकार बताये हैं। आरोपणा का अर्थ है एक दोष से प्राप्त प्रायश्चित्त मे दूसरे दोष के आसेवन से प्राप्त प्रायश्चित्त का आरोपण करना। उसके पांच प्रकार हैं[2]—

१ **प्रस्थापिता**—प्रायश्चित्त मे प्राप्त अनेक तपो मे से किसी एक तप को प्रारम्भ करना।

२ **स्थापिता**—प्रायश्चित्त रूप से प्राप्त तपो को स्थापित किये रखना, वैयावृत्य आदि किसी प्रयोजन से प्रारम्भ न कर पाना।

३ **कृत्स्ना**—वर्तमान जैन शासन मे तप की उत्कृष्ट अवधि छह मास की है। जिसे इस अवधि से अधिक तप (प्रायश्चित्त रूप मे) प्राप्त न हो उसकी आरोपणा को अपनी अवधि मे परिपूर्ण होने के कारण कृत्स्ना कहा जाता है।

४ **अकृत्स्ना**—जिसे छह मास से अधिक तप प्राप्त हो, उसकी आरोपणा अपनी अवधि से पूर्ण नही होती। प्रायश्चित्त के रूप मे छह मास से अधिक तप नही किया जाता। उमे उसी अवधि मे समाहित करना होता है। इसलिए अपूर्ण होने के कारण इसे अकृत्स्ना कहा जाता है।

५ **हाडहडा**—जो प्रायश्चित्त प्राप्त हो उसे शीघ्र ही दे देना।

प्रायश्चित्त के (१) मासिक और (२) चातुर्मासिक ये दो प्रकार हैं। शेष द्विमासिक, त्रिमासिक, पञ्च-मासिक और षाण्मासिक प्रायश्चित्त आरोपणा से बनते है। निशीथ के बीसवे उद्देशक का मुख्य विषय आरोपणा ही है। स्थानाग मे केवल आरोपणा के पाँच प्रकार ही प्रतिपादित है। वहाँ पर समवायाग मे अट्ठाईस आरोपणा के प्रकार बतलाये है।[3] वे इस प्रकार हैं—(१) एक मास की (२) पैंतीस दिन की (३) चालीस दिन की (४) पैंता-लीस दिन की (५) पचास दिन की (६) सत्तावन दिन की (७) दो मास की (८) पैंसठ दिन की (९) सत्तर दिन की (१०) पचहत्तर दिन की (११) अस्सी दिन की (१२) पचासी दिन की (१३) तीन मास की (१४) सत्तानवे दिन की (१५) सौ दिन की (१६) एक सौ पाँच दिन की (१७) एक सौ दस दिन की (१८) एक सौ पन्द्रह दिन की (१९) चार मास की (२०) एक सौ पच्चीस दिन की (२१) एक सौ तीस दिन की (२२) एक सौ पैंतीस दिन की

---

१ पचविहे आयारकप्पे पण्णत्ते, त जहा—
मासिए उग्घातिए मासिए अणुग्घातिए
चउमासिए उग्घातिए
चउमासिए अणुग्घातिए आरोवणा। —ठाण ५, १४५ पृ ५८८

२. आरोवणा पचविहा पण्णत्ता, त जहा—
पट्ठविया, ठविया, कसिणा,
अकसिणा, हाडहडा। —ठाण ५, १४९ पृ ५८९

३ समवायाग, समवाय २८

(२३) एक सौ चालीस दिन की (२४) एक सौ पैंतालीस दिन की (२५) उद्घातिकी आरोपणा (२६) अनुद्घातिकी आरोपणा (२७) कृत्स्ना आरोपणा (२८) अकृत्स्ना आरोपणा।

जिस तीर्थंकर के शासन मे तीर्थंकर स्वय उत्कृष्ट तप की जितनी आराधना करते है, उससे अधिक तप की आराधना उसके शासन मे अन्य व्यक्ति नही कर पाते। प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने एक सवत्सर तक तप की आराधना की। उनके शासन मे एक सवत्सर से अधिक तपस्या का विधान नही था। भगवान् अजितनाथ से लेकर भगवान् पार्श्वनाथ के शासन तक आठ मास के तप की आराधना साधक कर सकता था। भगवान् महावीर ने उत्कृष्ट तप की आराधना छह मास की की थी, इसलिए उनके शासन मे तपस्या का विधान छह मास का है, उससे अधिक नही। इसलिए भ महावीर के शासन मे आरोपणा प्राप्त प्रायश्चित्त का विधान भी छह मासिक से अधिक नही है।[1] छेद प्रायश्चित्त भी उत्कृष्ट छह मास का होता है। वह अधिक से अधिक तीन बार तक दिया जा सकता है। उसके पश्चात् मूल प्रायश्चित्त दिया जाता है।

दशाश्रुतस्कन्ध, व्यवहार, बृहत्कल्प आदि छेदसूत्रो से निशीथ की रचना शैली पृथक् है। उन्नीस उद्देशको तक प्रत्येक सूत्र साइज्जइ से पूर्ण होता है और प्रायश्चित्त विधान के साथ उद्देशक पूर्ण होता है। किन्तु बीसवें उद्देशक की रचनाशैली उन्नीस उद्देशको से बिल्कुल अलग-थलग है। बीसवें उद्देशक मे अनेक तथ्य दिये गये हैं। किन्तु सूत्र की शैली बहुत ही सक्षिप्त है। अत सूत्र मे रहे हुए गुरु गम्भीर रहस्य को बिना गुरुगम के या बिना व्याख्या साहित्य के समझना बहुत ही कठिन है। यही कारण है प्रस्तुत सूत्र पर अत्यधिक विस्तार से भाष्य चूर्णि आदि का निर्माण हुआ है। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, सुबोध व्याख्या आदि मे उत्सर्ग और अपवाद मार्ग की विस्तार से चर्चा है।

साधना के दो मार्ग : उत्सर्ग और अपवाद

जैनसस्कृति मे साधना का गौरवपूर्ण स्थान है। प्राचीन जैन साहित्य के पृष्ठ साधना के उज्ज्वल समुज्ज्वल आलोक से जगमगा रहे हैं। साधना को जीवन का प्राण कहा है। सम्यक् साधना से ही साधक अपने साध्य को प्राप्त करता है। साधक के जीवन के कण-कण मे त्याग, तप, स्वाध्याय और ध्यान की सरस सरिता बहती है।

उत्सर्ग और अपवाद मार्ग

जैन साधना रूपी सरिता के दो तट हैं—एक 'उत्सर्ग' है और दूसरा 'अपवाद'। उत्सर्ग शब्द का अर्थ 'मुख्य' और अपवाद शब्द का अर्थ 'गौण' है। उत्सर्ग मार्ग का अर्थ है आन्तरिक जीवन, चारित्र और सद्‌गुणो की रक्षा, शुद्धि और अभिवृद्धि के लिए प्रमुख नियमो का विधान और अपवाद का अर्थ है आन्तरिक जीवन आदि की रक्षा

१ सुबहुहिं वि मासेहिं, छण्ह मासाण पर ण दायव्व॥ ६५२४ चूर्णि—तवारिहेहिं बहुहिं मासेहिं छम्मासा पर ण दिज्जइ सव्वस्सेव एस णियमो, एत्थ कारण जम्हा अम्ह वद्धमाणसामिणो एव चेव पर पमाण ठवित॥
(ख) छम्मासोवरि जइ पुणो आवज्जइ तो तिण्णि वारा लहु चेव छेदो दायव्वो। एस अविसिट्ठो वा तिण्णि वारा छल्लहु छेदो।
अहवा—ज चेव तव तिय त छेदतिय पि—मासब्भतर, चउमासब्भतर छम्मासब्भतर च, जम्हा एवं तम्हा भिण्णमासादि जाव छम्मास, तेसु छिण्णेसु छेय तिय अतिक्कत भवति। ततो वि जति पर आवज्जति तो तिण्णि वारा मूल दिज्जति। —निशीथ चूर्णि भाग ४, ५, ३५१-५२

हेतु उसकी शुद्धि वृद्धि के लिए बाधक नियमो का विधान। उत्सर्ग और अपवाद दोनो का लक्ष्य एक है और वह है साधक को उपासना के पथ पर आगे बढाना। सामान्य साधक के मानस मे यह विचार उद्भूत हो सकते है कि जब उत्सर्ग और अपवाद इन दोनो का लक्ष्य एक है तो फिर दो रूप क्यो है ?

उत्तर मे निवेदन है कि जैन सस्कृति के मर्मज्ञ महामनीषियो ने मानव की शारीरिक और मानसिक दुर्बलता को लक्ष्य में रखकर तथा सघ के समुत्कर्ष को ध्यान मे रखकर उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का निरूपण किया है। निशीथभाष्यकार ने लिखा है कि समर्थ साधक के लिए उत्सर्ग स्थिति मे जिन द्रव्यो का निषेध किया गया है, असमर्थ साधक के लिए अपवाद की परिस्थिति मे विशेष कारण से वह वस्तु ग्राह्य भी हो जाती है।[1]

उत्सर्ग और अपवाद, विरोधी नही

आचार्य जिनदासगणि महत्तर[2] ने लिखा है कि जो बाते उत्सर्ग मार्ग मे निषिद्ध की गई हैं वे सभी बाते कारण सन्मुख होने पर कल्पनीय व ग्राह्य हो जाती है। इसका कारण यह है कि उत्सर्ग और अपवाद दोनो का लक्ष्य एक है, वे एक-दूसरे के पूरक है। साधक दोनो के सुमेल से ही साधना पथ पर सम्यक् प्रकार से बढ सकता है। यदि उत्सर्ग और अपवाद दोनों एक-दूसरे के विरोधी हो तो वे उत्सर्ग और अपवाद नही हैं किन्तु स्वच्छन्दता का पोषण करने वाले हैं। आगम साहित्य मे दोनो को मार्ग कहा है। एक मार्ग राजमार्ग की तरह सीधा है तो दूसरा जरा घुमावदार है।

सामान्य विधि : उत्सर्ग

उत्सर्ग मार्ग पर चलना यह साधक के जीवन की सामान्य पद्धति है। एक व्यक्ति राजमार्ग पर चल रहा है, किन्तु राजमार्ग पर प्रतिरोध-विशेष उत्पन्न होने पर वह राजमार्ग को छोडकर सन्निकट की पगडण्डी को ग्रहण करता है। कुछ दूर चलने पर जब अनुकूलता होती है तो पुन राजमार्ग पर लौट आता है। यही स्थिति साधक की उत्सर्ग मार्ग से अपवाद मार्ग को ग्रहण करने के सम्बन्ध मे है और पुन यही विधि अपवाद से उत्सर्ग मे आने की है।

उत्सर्ग मार्ग सामान्य विधि है। इस विधि पर वह निरन्तर चलता है। बिना विशेष परिस्थिति के उत्सग मार्ग नही छोडना चाहिये। जो साधक बिना कारण ही उत्सर्ग मार्ग को छोडकर अपवाद मार्ग को अपनाता है वह आराधक नही, अपितु विराधक है। पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति यदि औषधि ग्रहण करता है या रोग मिट जाने पर भी बीमारी का अभिनय कर औषधि आदि ग्रहण करता है तो वह अपने कर्तव्य से च्युत होता है। विशेष कारण के अभाव मे अपवाद का सेवन नही करना चाहिए। साथ ह जिस कारण स अपवाद का सेवन किया है, उस कारण के समाप्त होते ही उसे पुन उत्सर्ग मार्ग को अपनाना चाहिए।

विशिष्ट विधि : अपवाद

हम पूर्व मे बता चुके हैं कि अपवाद एक विशिष्ट माग है। उत्सर्ग के समान ही वह सयम साधना का ही मार्ग है। पर अपवाद वास्तविक अपवाद होना चाहिए। यदि अपवाद के पीछे इन्द्रियपोषण को भावना है तो वह अपवाद मार्ग नही है। अत साधक को अपवाद मार्ग मे सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है। जितना अति आवश्यक हो, उतना ही अपवाद का सेवन किया जा सकता है, निरन्तर नही। अपवाद मार्ग पर तो किसी विशेष स्थिति

---

१ उस्सग्गेण णिसिद्धाणि जाणि दव्वाणि सथरे मुणिणो।
कारणजाए जाते, सव्वाणि वि ताणि कप्पति ॥ —निशीथभाष्य ५२४५

२. जाणि उस्सग्गे पडिसिद्धाणि उप्पण्णे कारणे सव्वाणि वि ताणि कप्पति। ण दोषो ।—निशीथचूर्णि ५२४५

परिस्थिति मे ही चला जाता है। अपवाद का मार्ग चमचमाती हुई तलवार की तीक्ष्ण धार के सदृश है। उस पर प्रत्येक साधक नही चल सकता। जिस साधक ने आचाराग आदि आगम साहित्य का गहराई से अध्ययन किया है, छेदसूत्रो के गम्भीर रहस्यो को समझा है, उत्सग मार्ग और अपवाद माग का जिसे स्पष्ट परिज्ञान है, वह गीतार्थ महान् साधक ही अपवाद को अपना सकता है। जिसे देश, काल और स्थिति का परिज्ञान नही है, ऐसा अगीतार्थ यदि अपवाद मार्ग को अपनाता है तो यह साधना से च्युत हो सकता है। कुशल व्यापारी आय और व्यय को सम्यक् प्रकार से समझकर ही व्यापार करता है, वह अल्प व्यय कर अधिकाधिक लाभ उठाता है। वैसे ही गीतार्थ श्रमण परिस्थिति विशेष मे दोष का सेवन करके भी अधिक सद्गुणो की वृद्धि करता है।

आचार्य भद्रबाहु[1] ने गीतार्थ के सद्गुणो का विवेचन करते हुए लिखा है—आय-व्यय, कारण-अकारण, आगाढ (ग्लान)-अनागाढ, वस्तु-अवस्तु, युक्त-अयुक्त, समर्थ-असमर्थ, यतना-अयतना का सम्यक् ज्ञान गीतार्थ को रहता है और वह कर्तव्य और कार्य का परिणाम भी जानता है।

गीतार्थ पर जिम्मेदारी होती है कि वह अपवाद स्वय सेवन करे या दूसरो को अपवाद सेवन की अनुमति दे। अगीतार्थ श्रमण अपवाद सेवन करने का स्वय निर्णय नही ले सकता। गीतार्थ को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का परिज्ञान होता है, जिससे वह साधना के पथ पर बढ सकता है।

आचार्य सघदासगणि[2] ने सुन्दर रूपक के द्वारा उत्सर्ग और अपवाद मार्ग को बताया है। एक यात्री अपने लक्ष्य की ओर द्रुत गति मे चल रहा है। वह कभी तेजी से कदम बढाता है तो कभी जल्दी पहुँचने के लिए वह दौडता भी है। पर जब वह बहुत ही थक जाता है और आगे उसे विषम मार्ग दिखाई देता है, तब विश्रान्ति के लिए कुछ क्षणो तक बैठता है, क्योकि बिना विश्राम किये एक कदम भी चलना उसके लिए कठिन है। लेकिन उस यात्री का विश्राम आगे बढने के लिए है। उसकी विश्रान्ति, विश्रान्ति के लिए नही, अपितु प्रगति के लिए है।

साधक भी उसी तरह उत्सर्ग मार्ग पर चलता है, किन्तु कारणवशात् उसे अपवाद मार्ग का अवलम्बन लेना पडता है। वह अपवाद उत्सर्ग की रक्षा के लिए ही है, उसके ध्वस के लिए नही है। कल्पना कीजिए—शरीर मे एक भयकर जहरीला फोडा हो चुका है। शरीर की रक्षा के लिए उस फोडे की शल्यचिकित्सा की जाती है। शरीर का जो छेदन-भेदन होता है वह शरीर के विनाश के लिए नही, अपितु शरीर की रक्षा के लिए है।

यदि साधक पूर्ण समर्थ है और विशिष्ट स्थिति उत्पन्न होने पर वह सहर्ष भाव से मृत्यु का वरण कर सकता हो तो वह समाधिपूर्वक वरण करे। यदि मृत्यु को वरण करने मे समाधिभाव भग होता है तो वह जीवन को बचाने हेतु सयम की रक्षा के लिए प्रयत्न करे।

ओघनिर्युक्ति की टीका मे आचार्य द्रोण[3] ने लिखा है—अपवाद सेवन करने वाले साधक के परिणाम पूर्ण विशुद्ध है और पूर्ण विशुद्ध परिणाम मोक्ष का कारण है, ससार का नही। साधक का शरीर सयम के लिए है।

---

१ आय कारण गाढ वत्थु जुत्त ससत्ति जयण च।
सव्व च सपडिवक्ख फल च विधिव वियाणाह ॥ —बृहत्कल्पनिर्युक्तिभाष्य ९५१

२ धावतो उव्वाओ मग्गन्नू किं न गच्छइ कमेण।
किं वा मउई किरिया, न कीरए असहुओ तिक्ख ॥ —बृहत्कल्पभाष्य पीठिका, ३२०

३ न याऽविरई किं कारण ? तस्याशयशुद्धतया विशुद्धपरिणामस्य च मोक्षहेतुत्वात्।
—ओघनिर्युक्ति टीका गा ४६

यदि शरीर ही नही रहा तो वह सयम की आराधना किस प्रकार कर सकेगा ? सयम की साधना के लिए शरीर का पालन आवश्यक है ।[1] साधक का लक्ष्य न जीवित रहना है और न मरना है । न वह जीवित रहने की इच्छा करता है और न मरने की इच्छा करता है । वह जीवित इसलिए रहना चाहता है कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि हो सके । जिस कार्य से ज्ञान, दर्शन, चारित्र की सिद्धि और वृद्धि हो, सयम-साधना मे निर्मलता आये, उस कार्य को वह करना पसन्द करता है । जब देखता है कि शरीर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि मे बाधक बन रहा है तो वह सस्नेह मरण को स्वीकार कर लेता है ।

स्वस्थान और परस्थान

एक शिष्य ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! बताइए, साधक के लिए उत्सर्ग स्वस्थान है या अपवाद ? समाधान प्रदान किया गया कि जिस साधक का शरीर पूर्ण स्वस्थ है और समर्थ है उसके लिए उत्सर्ग मार्ग ही स्वस्थान है और अपवाद परस्थान है । पर जिसका शरीर रुग्ण है, असमर्थ है, उसके लिए अपवाद स्वस्थान है और उत्सर्ग परस्थान है ।[2]

साधक मे जहाँ सयम का जोश होता है वहाँ उसमे विवेक का होश भी होता है । अपवाद मार्ग का निरूपण सिर्फ स्थविरकल्प[3] की दृष्टि से किया गया है । जिनकल्पी श्रमण तो केवल उत्सर्ग मार्ग पर ही चलते है ।[4]

अपवाद यानी रहस्य

निशीथचूर्णि मे उत्सर्ग के लिए 'प्रतिषेध' शब्द का प्रयोग हुआ है और अपवाद के लिए 'अनुज्ञा' । उत्सर्ग प्रतिषेध है और अपवाद विधि है । सयमी श्रमण के लिए जितने भी निषिद्ध कार्य बताये गये है, वे प्रतिषेध के अन्तर्गत आ जाते है और परिस्थिति-विशेष मे जब उन निषिद्ध कार्यों के करने की अनुज्ञा दी जाती है तब वे निषिद्ध कार्य विधि बन जाते है ।[5] परिस्थिति विशेष से अकर्तव्य भी कभी कर्तव्य बन जाता है । साधारण साधक प्रतिषेध को विधि मे परिणत करने की शक्ति नही रखता । वह औचित्य-अनौचित्य का परीक्षण भी नही कर सकता । इसीलिए अपवाद, अनुज्ञा या विधि प्रत्येक साधक को नही बताई जाती । एतदर्थ ही निशीथचूर्णि मे अपवाद का पर्यायवाची रहस्य भी है ।[6]

जैसे प्रतिषेध (उत्सर्ग) का पालन करने से आचार विशुद्ध रहता है, उसी तरह अपवाद मार्ग का अवलम्बन करने पर भी आचरण विशुद्ध ही मानना चाहिए ।[7]

अपवाद क्यो और किसलिए ?

अपवाद मार्ग ग्रहण करने के पूर्व अनेक शर्तें रखी गई है । उन शर्तों की ओर लक्ष्य न दिया गया तो अपवाद मार्ग पतन का कारण बन जाएगा । एतदर्थ ही प्रतिसेवना के दो भेद है—अकारण अपवाद का सेवन 'दर्पप्रतिसेवना'

---

१ सजमहेउ देहो धारिज्जइ सो कओ उतदभावे ।
सजम फाइनिमित्त, देह परिपालना इट्ठा ॥ —ओघनिर्युक्ति ४७

२ सथरओ सट्ठाण उस्सग्गो अस हुणो परट्ठाण ।
इय सट्ठाण पर वा, न होइ वत्थु-विणा किंचि ॥ —बृहत्कल्पभाष्य पीठिका ३२४

३ निशीथभाष्य गा० ८७

४ निशीथभाष्य गा० ६६९८ उत्थानचूर्णि

५ निशीथभाष्य गा० ५२४५

६ निशीथचूर्णि गा० ४९५

७ निशीथचूर्णि गा० २८७, १०२२, १०६८, ४१०३

है ओर कारण से प्रतिसेवना "कल्प" है। हम पूर्व मे बता चुके हैं कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र की साधना व आराधना करता हुआ साधक मोक्षमार्ग की ओर बढता है। चारित्र का पालन ज्ञान और दर्शन की वृद्धि के लिए है। जिस चारित्र की आराधना से ज्ञान-दर्शन की हानि होती हो, वह चारित्र नही। चारित्र वही है जो ज्ञान-दर्शन को पुष्ट करता हो। ज्ञान-दर्शन के कारण चारित्र मे अपवाद सेवन करने के लिए बाध्य होना पडता है। वे सभी अपवाद कल्पप्रतिसेवना मे इसलिए लिए जाते हैं कि वे साधक को साधना से च्युत नही करते। जो भी अपवाद सेवन किया जाय उसमे ज्ञान और दर्शन ये दो मुख्य लक्ष्य होने चाहिए। यदि उन दोनो मे से कोई भी कारण नही है तो वह प्रतिसेवनादर्प है। साधक का कर्तव्य है कि दर्प का परित्याग कर कल्प को ग्रहण करे। क्योकि दर्प साधक के लिए निषिद्ध माना गया है।[1]

एक जिज्ञासा हो सकती है—निशीथ भाष्य[2] व चूर्णि आदि मे दुर्भिक्ष आदि की स्थिति मे भी अपवाद सेवन किये जाते रहे हैं, ऐसा उल्लेख है। फिर ज्ञान और दर्शन से ही अपवाद सेवन की बात कैसे कही गयी? समाधान है—ज्ञान और दर्शन ये दो मुख्य कारण हैं ही। दुर्भिक्ष आदि मे साक्षात् ज्ञान और दर्शन की हानि नही होती, किन्तु परम्परा से ज्ञान और दर्शन की हानि होने से उन्हे लिया गया है।

दुर्भिक्ष मे आहार की प्राप्ति नही हो सकती और बिना आहार स्वाध्याय आदि नही हो सकता। इसलिए उसे अपवाद के कारणो मे गिना है।

निशीथभाष्य मे दर्पप्रतिसेवना और कल्पप्रतिसेवना को प्रमाद-प्रतिसेवना और अप्रमाद-प्रतिसेवना भी बताया गया है। क्योकि प्रमाद दर्प है और अप्रमाद कल्प है। जिस आचरण मे प्रमाद है वह दर्पप्रतिसेवना है और अप्रमाद है वह कल्पप्रतिसेवना है।[3]

अहिंसा की दृष्टि से उत्सर्ग व अपवाद

जैन आचार की मूल भित्ति अहिंसा पर आधृत है। अन्य चारो महाव्रत अहिंसा के विस्तार हैं। जिस कार्य मे प्रमाद है, वह हिंसा है। सयमी साधक के जीवन मे अप्रमाद का प्राधान्य होता है। अप्रमाद-प्रतिसेवना के भी दो भेद किये गये है—अनाभोग और सहसाकार।[4] अप्रमादी होने पर भी ईर्या आदि समिति की विस्मृति हो जाय, किसी कारण से स्वल्प काल के लिए उपयोग न रहे तो वह अनाभोग है। उसमे प्राणातिपात नही है, पर विस्मृति है। प्रवृत्ति हो जाने के पश्चात् यह ज्ञात हो कि हिंसा की सम्भावना है तो वह प्रतिसेवना सहसाकार है। जैसे सयमी साधक विवेकपूर्वक गमन कर रहा है। पहले जीव दिखाई न दिया हो पर ज्यो ही कदम उठाया कि जीव पर दृष्टि पडी। बचाने का प्रयत्न करने पर भी सहसा जीव के ऊपर पैर पड गया और वह प्राणी मर गया तो यह 'सहसा-प्रतिसेवना' है। अप्रमाद होने के कारण वह कर्मबन्धन नही है। अहिंसा का आराधन करना श्रमण का उत्सर्ग मार्ग है। वह मन, वचन, काया से किसी भी प्रकार की जीव-हिंसा नही करता। आचाराग, दशवैकालिक तथा अन्य आगम साहित्य मे अहिंसा महाव्रत का सूक्ष्म विश्लेषण है। श्रमण किसी भी सचित्त वस्तु का स्पर्श नही कर सकता। पर आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे यह स्पष्ट बताया है। एक श्रमण अन्य रास्ते के अभाव मे किसी

१ निशीथभाष्य गा० ८८ उसकी चूर्णि तथा गा० १४४, ३६३, ४६३।

२ निशीथभाष्य गा० १७५, १६२, १८८, २२०, २२१, २४४, २५३, ३२१, ३४२, ३८४, ३९१, ४१९, ४२५, ४५३, ४५८, ४८१ ४८४, ४८५, आदि।

३ निशीथभाष्य गा० ९१।

४ निशीथभाष्य गा० ९०-९५

ऊँचे-नीचे, टेढे-मेढे, ऊबड-खाबड मार्ग या जहाँ पर सेना के पडाव पडे हो, रथ और गाडियाँ पडी हो, धान्य के ढेर पड़े हो, प्रथम तो ऐसे विषम और सकटापन्न मार्ग से श्रमण को नहीं जाना चाहिए। यदि अनिवार्य कारण-वश ऊँचे-नीचे मार्ग से आवश्यक ही हो तो वनस्पति अथवा किसी पथिक के हाथ का सहारा ले सकता है।

उत्सर्ग मार्ग मे श्रमण हरित वनस्पति को स्पर्श नही कर सकता, पर जो यहाँ पर अपवाद मे हरित वनस्पति आदि पकडने का विधान है, वह विधान वनस्पतिकाय के जीवो की विराधना करने के लिए नही है, अपितु अहिंसा के लिए ही यह विधान है। यदि श्रमण गिर जाता है तो उसका अग भग भी हो सकता है और मन मे सकल्प-विकल्प भी हो सकता है। साथ ही गिरने से दूसरे जीवो की विराधना भी हो सकती है। अत स्व और पर दोनो प्रकार की हिसा को लक्ष्य मे रखकर ही अहिंसा मे अपवाद का उल्लेख किया गया है।[१]

इसी तरह सचित्त पानी को श्रमण स्पर्श नही कर सकता पर उमड-घुमडकर घटाये आ रही हो और जोर से वर्षा हो रही हो, उस समय उच्चार-प्रस्रवण के लिए वह बाहर जा सकता है।[२] बलात् मल-मूत्र का निरोध करना निषिद्ध है। क्योकि मल-मूत्र के निरोध से शरीर मे आकुलता-व्याकुलता पैदा हो सकती है, रोग भी उत्पन्न हो सकते हैं, जो स्वास्थ्य और शरीर तथा सयम के लिए हानिप्रद है।

सत्य व अन्य महाव्रतो की दृष्टि से उत्सर्ग-अपवाद

अहिंसा महाव्रत की भाति ही सत्य भी श्रमण का जीवनव्रत है। आचाराग मे यह भी विधान है कि एक श्रमण विहार करके जा रहा है, सामने से व्याध आदि आ जाय और वह श्रमण से पूछे क्या तुमने इधर किसी पशु आदि को जाते देखा है ? श्रमण ऐसे प्रसग मे मौन रहे। यदि मौन रहने की स्थिति न हो तो जानता हुआ भी नही जानता हूँ, इस प्रकार कहे। यह सत्य का अपवाद मार्ग है।[३]

सूत्रकृतागसूत्र की वृत्ति मे आचार्य शीलाक[४] ने स्पष्ट लिखा है कि जिसमे पर-वचना की बुद्धि नही है, केवल सयम-गुप्ति के लिए कल्याण भावना मे बोला गया असत्य दोष रूप नही है किन्तु जो मृषावाद कपटपूर्वक दूसरो को ठगने के लिए बोला जाता है वह दोष रूप है।[५] अत हेय है।

सत्य की तरह अस्तेय महाव्रत की साधना मे बिना दी हुई वस्तु को श्रमण ग्रहण नही करता। पर इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न हो कि श्रमण किसी ऐसे स्थान पर पहुँचा है जहाँ पर स्थान की सुविधा नही है, भयकर शीत और वर्षा है, ऐसी स्थिति मे श्रमण पहले बिना आज्ञा ग्रहण किये ठहर जाय। उसके पश्चात् आज्ञा प्राप्त करने का प्रयास करे।[६]

इसी तरह श्रमण ब्रह्मचर्य महाव्रत की रक्षा के लिए नवजात कन्या को भी स्पर्श नही कर सकता पर वही श्रमण नदी मे डूब रही भिक्षुणी को पकडकर निकाल सकता है।[७]

---

१ आचाराग २ श्रुत० ईर्याध्ययन उ० २।

२ योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्ति, तीसरा प्रकाश, ८७ वा श्लोक।

३ (क) आचाराग २-१-३-३-१२० वृत्ति भी देखे।
(ख) निशीथ चूर्णि भाष्य, गाथा ३२२

४ सूत्रकृताग वृत्ति १-८-१९

५ सादियं णो मुस बूया, एसधम्मे वुसीमओ। —सूत्रकृताग १-८-१९

६ व्यवहारसूत्र ९-११

७ बृहत्कल्पसूत्र, उ ६ सूत्र—७-१२

इसी तरह अपरिग्रह महाव्रत मे चौदह उपकरणो के अतिरिक्त उपकरण रखना आदि भी परिग्रह मे ही है। किन्तु पुस्तक, लेखन-सामग्री आदि ज्ञान के साधन रूप समझकर ग्रहण किये जाते है।[1] अत उन्हे परिग्रह नही माना जाता।

दशवैकालिक[2] आदि मे यह स्पष्ट विधान है कि श्रमण किसी गृहस्थ के यहाँ पर न बैठे, क्योकि बैठना अनाचार माना गया है, किन्तु दशवैकालिक मे यह भी बताया है कि जो श्रमण अत्यन्त वृद्ध हो चुका है, अस्वस्थ है या जो तपस्वी है वह गृहस्थ के घर पर बैठ सकता है।[3] उसे गृह-निषिद्या का दोष नही लगता।

आगम साहित्य मे श्रमण के आहार की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट विधान किया है कि वह आधाकर्मी आहार ग्रहण नही कर सकता। वह पिण्डैषणा के नियमो का सम्यक् प्रकार से पालन करे। आचार्य शीलाक[4] ने सूत्रकृतागवृत्ति मे लिखा है कि अपवाद स्थिति मे शास्त्र के अनुसार आधाकर्म आहार का सेवन करता है तो वह साधक शुद्ध है। वह कर्म से लिप्त नही होता।

निशीथभाष्य मे ऐसे अनेक प्रसग है जिनमे यह बताया गया है कि दुर्भिक्ष आदि की स्थिति मे अपवाद मार्ग से श्रमण आधाकर्म आदि आहार ग्रहण कर सकता है।[5]

जैन श्रमण के लिए यह विधान है कि वह चिकित्सा की इच्छा न करे।[6] रोग हो जाने पर उसे शान्त भाव से सहन करे। किन्तु जब देखा गया कि श्रमण रोग होने पर समाधिस्थ नही रह सकता तो उसकी चिकित्सा के सम्बन्ध मे भी चिन्तन हुआ। श्रमण किस प्रकार वैद्यो के वहा पर जाये, किस प्रकार औषधि आदि ग्रहण करे, भयकर कुष्ठ आदि रोग होने पर किस तरह उनका उपचार किया जाये आदि पर निर्युक्ति, चूर्णि और भाष्य मे विस्तार मे विवेचन है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि उन अपवादो का सेवन करने पर विरोधियो को टीका-टिप्पणी करने का अवसर न मिले, यदि विरोधी आलोचना-प्रत्यालोचन करेंगे तो उससे जिनधर्म की अवहेलना होगी। अत उसे गुप्त रखने का[7] भी सकेत किया गया है।

अतिचार और अपवाद :

एक बात यहा समझनी चाहिए कि अतिचार और अपवाद मे अन्तर है।[8] यद्यपि अतिचार और अपवाद मे बाह्य दृष्टि से दोष सेवन एक सदृश प्रतीत होता है, पर अतिचार व अपवाद मे बहुत अन्तर है। अतिचार मे मोह का उदय होता है और मोह के उदय से या वासना से उत्प्रेरित होकर तथा कषायभाव के कारण उत्सर्ग मार्ग को छोडकर जो सयमविरुद्ध प्रवृत्ति की जाती है वह अतिचार है और अतिचार से सयम दूषित होता है।

---

१ निशीथचूर्णि भाष्य ३, प्रस्तावना—उपाध्याय अमरमुनिजी।

२ दशवैकालिक ३-४-६, ८

३ तिण्हमन्नयरागस्स, निस्सिज्जा जस्स कप्पइ।
जराए अभिभूयस्स वाहिअस्स तवस्सिणे ॥ —दश ६-६०

४ सूत्रकृताग २-५, ८-९

५ निशीथभाष्य गा २६८४

६ (क) उत्तराध्ययन २-२३ (ख) दशवैकालिक ३-४ (ग) निशीथसूत्र ३-२८-४०, १३।४२-४५

७ निशीथचूर्णि गा ३४५-४७

८ निशीथचूर्णि भा ३ प्रस्तावना (उपा अमरमुनि)

अत साधक को यह ज्ञात हो जाय कि मैंने दोष का सेवन किया है जो अयोग्य था, तो उसे यथाशीघ्र प्रायश्चित्त लेकर उस दोष की विशुद्धि करनी चाहिए। जो उस दोप की विशुद्धि नही करता है वह श्रमण विराधक होता है।

अपवाद मे दोष का सेवन होता है, पर वह सेवन विवशता के कारण होता है। सेवन करते समय साधक यह अच्छी तरह से जानता है कि यदि मैं अपवाद का सेवन नही करूगा तो मेरे ज्ञान आदि गुण विकसित नही हो सकेंगे। उसी दृष्टि से वह अपवाद का सेवन करता है। अपवाद के सेवन करने मे सद्गुणो का अर्जन और सरक्षण प्रमुख होता है। अपवाद मे कषायभाव नही होता, किन्तु सयमभाव प्रमुख होता है। इसलिए वह अपवाद अतिचार की तरह दूषण नही है। अतिचार मे कषाय का प्राधान्य होने से अधिक कर्मबन्धन होता है।

उत्सर्ग और अपवाद मे विवेक आवश्यक

उत्सर्ग मार्ग और अपवाद मार्ग दोनो ही मार्ग साधक के लिए तब तक श्रेयस्कर है जब तक उसमे विवेक की ज्योति जगमगाती हो। मूल आगम साहित्य मे उत्सर्ग मार्ग की प्रधानता रही, अपवाद मार्ग का वर्णन आया किन्तु बहुत ही स्वल्प मात्रा मे। लेकिन ज्यो-ज्यो परिस्थितियो मे परिवर्तन होता गया त्यो-त्यो आचार्यों ने आगम साहित्य के व्याख्या-साहित्य मे अपवादो का विस्तार से निरूपण किया है। अपवादो के निरूपण मे कही पर अति भी हो गई है जो उस युग की स्थिति का प्रभाव है।

हमने बहुत ही सक्षेप मे उत्सर्ग व अपवाद के सम्बन्ध मे विचार प्रस्तुत किया है। उत्सर्ग और अपवाद के मर्म को समझना अत्यन्त कठिन है। जब उत्सर्ग और अपवाद मे परिणामीपना और शुद्ध वृत्ति नष्ट हो जाती है तो वह अनाचार बन जाता है। एतदर्थ ही भाष्यकार ने परिणामी, अपरिणामी और अतिपरिणामी शिष्यो का निरूपण किया है। जो वस्तुस्थिति को सम्यक् प्रकार से समझता है वही साधक उत्सर्ग व अपवाद मार्ग की आराधना कर सकता है और अपने अनुयायी वर्ग को भी सही लक्ष्य पर बढने के लिए उत्प्रेरित कर सकता है। जब परिणामी भाव नष्ट हो जाता है तो स्वार्थ की वृत्ति पनपने लगती है स्वच्छन्दता बढने लगती है, जिससे साधक वीतरागधर्म की आराधना सम्यक् प्रकार से नही कर सकता।

बृहत्कल्पभाष्य मे आचार्य सघदासगणि ने लिखा है कि जितने उत्सर्ग के नियम है उतने ही अपवाद के भी नियम है। उत्सर्ग मार्ग के अधिकारी के लिए उत्सर्ग, उत्सर्ग है और अपवाद, अपवाद है, किन्तु अपवाद मार्ग के अधिकारी के लिए अपवाद उत्सर्ग है और उत्सर्ग अपवाद है। इस प्रकार उत्सर्ग और अपवाद अपनी-अपनी स्थिति और परिस्थिति के कारण श्रेयस्कर, कार्यसाधक और बलवान हैं।

उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का इतना समन्वयपरक सूक्ष्म दृष्टिकोण जैनदर्शन के अनेकान्त की अपनी विशेषता है। उत्सर्ग मार्ग जीवन की सबलता का प्रतीक है तो अपवाद मार्ग जीवन की निर्बलता का प्रतीक है। दोनो ही मार्गों मे साधक को अत्यन्त जागरूकता रखनी चाहिए। आचार्यो ने स्पष्ट कहा है कि अपवाद मार्ग का सेवन करने वाला जैसे कोई फोडा पक गया है, उसमे रस्सी पड चुकी है तो व्यक्ति किस तरह से कम कष्ट हो यह ध्यान रखकर दबाकर मवाद निकालता है और उसी तरह सावधानीपूर्वक अपवाद मार्ग का सेवन किया जाय। सेवन करते समय उसे यह ध्यान रखना होगा कि सयम और व्रत मे कम से कम दोष लगे। विशेष परिस्थिति मे और कोई मार्ग न हो तो अपवाद का सेवन किया जाय, अन्यथा नही। एतदर्थ ही गीतार्थ का उल्लेख है और वही अपवाद का सेवन करने का अधिकारी माना गया है, शेष नही।

प्रायश्चित्त और दण्ड

छेदसूत्र प्रायश्चित्तसूत्र है। प्रायश्चित्त का अर्थ है पाप का विशोधन करना। पाप को शुद्ध करने की क्रिया का नाम प्रायश्चित्त है। अपराध 'प्राय' कहलाता है और 'चित्त' का अर्थ शोधन है, जिस प्रक्रिया से अपराध की शुद्धि हो वह प्रायश्चित्त है। प्राकृत भाषा मे प्रायश्चित्त के लिए "पायच्छित्त" शब्द आया है। 'पाय' का अर्थ 'पाप' है। जो पाप का छेदन करता है वह 'पायच्छित्त' है। साधक छद्मस्थ है, इसलिए ज्ञात और अज्ञात रूप मे उससे भूल हो जाती है। पाप उसके जीवन मे लग जाते है। भूल होना जितना बुरा नही है, उतना बुरा है भूल को भूल न समझना। भूल को भूल समझकर उसकी शुद्धि के लिए प्रयास करना और भविष्य मे पुन उस प्रकार का दोष न लगे, उसके लिए दृढसकल्प करना तथा भूल की शुद्धि के लिए जो प्रक्रिया है, वह प्रायश्चित्त है।

प्रायश्चित्त और दण्ड मे अन्तर है। प्रायश्चित्त मे साधक अपने दोष को अपनी इच्छा से प्रकट कर उसे स्वीकार करता है। प्रमादवश यदि दोष लग गया है तो वह साधक उस दोष को गुरुजनो के समक्ष प्रकट कर देता है और उनसे प्रायश्चित्त प्रदान करने के लिए प्रार्थना करता है। गुरजन उस दोष से मुक्त होने के लिए विधि बताते है। इसके विपरीत व्यक्ति स्वय दण्ड को अपनी इच्छा से नही किन्तु विवशता से स्वीकार करता है। उसके मन मे दुष्कृत्य के प्रति किसी भी प्रकार की ग्लानि नही होती। अपराधी अपराध को स्वेच्छा से नहीं किन्तु दूसरो के भय मे स्वीकार करता है। इस तरह दण्ड ऊपर से थोपा जाता है, किन्तु प्रायश्चित्त अन्तर्हृदय से स्वीकार किया जाता है। इसी कारण राजनीति मे दण्ड का विधान है तो धर्मनीति मे प्रायश्चित्त का विधान है।

जिसका अन्तर्मानस सरल हो, जो पापभीरु हो, जिसके हृदय मे आत्म-शुद्धि की तीव्र भावना हो उसी के मन मे प्रायश्चित्त लेने की भावना जागृत होती है। यदि मन मे माया का साम्राज्य होगा तो प्रायश्चित्त से शुद्धिकरण नही हो सकता। भूले अनेक प्रकार की होती है। कितनी ही भूले सामान्य होती है और कितनी ही असाधारण होती हैं। सामान्य भूले भी देश-काल और परिस्थिति के कारण असामान्य हो जाती है। अत सभी प्रकार की भूलो का प्रायश्चित्त एक-सा नही होता। भूलो और परिस्थितियो के अनुसार प्रायश्चित्त के भी विविध प्रकार बताये गए है।

स्थानाग, निशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार, जीतकल्प प्रभृति ग्रन्थो मे विविध प्रकार के प्रायश्चित्तो का उल्लेख है। समवायाग आदि मे प्रायश्चित्त के प्रकारो का उल्लेख है तो निशीथ आदि आगमो मे प्रायश्चित्त योग्य अपराधो का भी विस्तार से निरूपण है। बृहत्कल्पभाष्य, निशीथभाष्य, व्यवहारभाष्य, निशीथचूर्णि, जीतकल्पभाष्य आदि मे प्रायश्चित्त सम्बन्धी विविध सिद्धान्त और समस्याओ का सटीक विवेचन है। दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ मूलाचार, जयधवला तथा तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओ मे प्रायश्चित्त के विविध प्रकार प्रतिपादित है। सभी प्रकार के प्रायश्चित्तो का समावेश दस प्रकार के प्रायश्चित्तो मे हो जाता है।[1] -(१) आलोचना, (२) प्रतिक्रमण, (३) उभय, (४) विवेक, (५) व्युत्सर्ग, (६) तप, (७) छेद, (८) मूल, (९) अनवस्थाप्य और (१०) पाराचिक। मूलाचार मे प्रथम आठ नाम ये ही हैं, किन्तु अनवस्थाप्य के स्थान पर परिहार और पाराचिक के स्थान पर श्रद्धान शब्द व्यवहृत हुआ है। तत्त्वार्थसूत्र मे पाराचिक प्रायश्चित्त का उल्लेख नही है, उसमे मूल नामक प्रायश्चित्त के स्थान पर उपस्थापन और अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त के स्थान पर परिहार-प्रायश्चित्त का उल्लेख किया है। स्थानाग और जीत-

---

१ (क) स्थानाग १०।७३
(ख) जीतकल्प सूत्र ४
(ग) धवला १३।५, २३।६३।१

कल्प मे जिन दस प्रायश्चित्तो का वर्णन है, वैसा ही वर्णन दिगम्बर ग्रन्थ जयधवला मे भी है। प्रायश्चित्त का जो सर्वप्रथम रूप है उसमे साधक के अन्तर्मानस मे अपराध के कारण आत्मग्लानि समुत्पन्न होती है। अपराध को अपराध के रूप मे स्वीकार कर लेता है। वह विशुद्ध हृदय से अपने द्वारा किये गये अपराध व नियमभग को आचार्य या गीतार्थ श्रमण के समक्ष निवेदन कर उस दोष से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित्त स्वीकार करता है। आलोचना क्यो और कैसे करनी चाहिए और किनके समक्ष करनी चाहिए, स्थानाग आदि मे विस्तार से निरूपण है। "जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप" ग्रन्थ मे मैंने विस्तार से लिखा है, अत विशेष जिज्ञासु उसका अवलोकन करें।

विशिष्ट दोषो की विशुद्धि के लिए तप प्रायश्चित्त का उल्लेख है। निशीथ, बृहत्कल्प, जीतकल्प और उनके भाष्यो मे किस प्रकार का दोष सेवन करने पर किस प्रकार का प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए, यह बताया गया है। प्रस्तुत आगम मे तप प्रायश्चित्त के योग्य सविस्तृत सूची दी गई है, और तप प्रायश्चित्त के विविध प्रकारो की चर्चा करते हुए मास लघु, मास गुरु, चातुर्मास लघु, चातुर्मास गुरु से लेकर षट्मास लघु और षट्मास गुरु प्रायश्चित्तो का उल्लेख है। बृहत्कल्पभाष्य मे मास, दिवस आदि तपो की सख्या के प्रायश्चित्त का विवेचन मिलता है, वह इस प्रकार है—

यथागुरु—छह मास तक निरन्तर पाच-पाच उपवास

गुरुतर—चार मास तक निरन्तर चार-चार उपवास

गुरु—एक मास तक निरन्तर तीन-तीन उपवास (तेले)

लघु—१० बेले १० दिन पारणे (एक मास तक निरन्तर दो-दो उपवास)

लघुतर—२५ दिन तक निरन्तर एक दिन उपवास और एक दिन भोजन

यथालघु—२० दिन निरन्तर आयम्बिल (रूखा-सूखा भोजन)

लघुष्वक—१५ दिन तक निरन्तर एकासन (एक समय भोजन)

लघुष्वकतर—१० दिन तक निरन्तर दो पोरसी अर्थात् १२ बजे के बाद भोजन ग्रहण

यथालघुष्वक—पाँच दिन निरन्तर निर्विकृति (घी, दूध आदि रहित भोजन)

संक्षिप्त सारांश

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशक मे ५८ सूत्र है। ४९७-८१५ गाथाओ तक का सविस्तृत भाष्य भी है। सर्वप्रथम भिक्षु के लिए हस्तकर्म का निषेध किया गया है। काष्ठ, अगुली अथवा शलाका आदि से अगादान के सचालन का निषेध है। अगादान को तेल, घृत, नवनीत प्रभृति से मर्दन करने, शीत या उष्ण जल से प्रक्षालन करने और ऊपर से त्वचा हटाकर उसे सूघने आदि का निषेध किया गया है। इस निषेध के कारण पर चिन्तन करते हुए आचार्य सघदासगणि ने सिंह, आसीविष-सर्प, व्याघ्र और अजगर आदि के दृष्टान्त देकर यह बताने का प्रयास किया है कि जैसे प्रसुप्त सिंह जागृत होने पर जगाने वाले को ही समाप्त कर देता है, वैसे ही अगादान आदि को सचालित करने से तीव्र मोह का उदय हो जाने पर वह साधक भी साधना से च्युत हो सकता है। शुक्र पुद्गल निकालना, सुगन्धित पदार्थों को सूघना, मार्ग मे कीचड आदि से बचने हेतु पत्थर आदि रखवाना, ऊँचे स्थान पर चढने के लिए सीढी रखवाना, पानी को निकालने के लिए नाली आदि बनवाना, सूई आदि को तेज करवाना, कैंची, नखछेदक, कर्णशोधक आदि को साफ करना, निष्प्रयोजन इन वस्तुओ की याचना करना, अविधि पूर्वक सूई आदि की याचना करना, स्वय के लिए लाई हुई वस्तु मे से दूसरो को देना, वस्त्र सीने के लिए लाई हुई सूई आदि से काटा निकालना। पात्रो को गृहस्थो से ठीक करवाना। वस्त्र पर गृहस्थो से कारी लगवाना। वस्त्र पर तीन से अधिक कारी लगवाना।

निर्दोष आहार मे सदोष आहार मिला हो, उसे ग्रहण करना। इस प्रकार प्रथम उद्देशक मे साधक को सतत जागरूक रहने का सन्देश दिया है। प्रतिपल —प्रतिक्षण साधक को उस प्रकार की प्रवृत्ति करनी चाहिये जो विवेक से मण्डित हो। अविवेकयुक्त की गई छोटी-सी-छोटी प्रवृत्ति भी कर्मबन्धन का कारण है। इसलिए सूई आदि नन्ही-सी वस्तु भी अविधि से रखने का निषेध किया है। विवेक मे ही धर्म है। यह इन उल्लेखो से स्पष्ट है।

यह सत्य है कि महाव्रतो की परिगणना मे ब्रह्मचर्य का चतुर्थ स्थान है। पर वह अपनी महिमा और गरिमा के कारण सभी व्रतो मे प्रथम है। प्रश्नव्याकरणसूत्र मे ब्रह्मचर्य के महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि जैसे श्रमणो मे तीर्थंकर श्रेष्ठ है वैसे व्रतो मे ब्रह्मचर्य। एक ब्रह्मचर्य व्रत की जो आराधना कर लेता है वह समस्त नियमोपनियम की आराधना कर लेता है। जितने भी व्रत नियम हैं, उनका मूल आधार ब्रह्मचर्य है। वह व्रतो का सरताज है। मुकुटमणि है। अत ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले साधक को हर क्षण जागरूक रहकर उस नियम का दृढता से पालन करना बहुत ही आवश्यक है। प्रस्तुत आगम के प्रारम्भ मे सर्वप्रथम यह सूचन किया गया है।

दूसरा उद्देशक

दूसरे उद्देशक मे ५७ सूत्र है। किसी-किसी प्रति मे ५९ सूत्र भी मिलते है। जिस पर ८१६ से १४३७ गाथाओ तक का भाष्य है। पादप्रोछन के सम्बन्ध मे प्रथम आठ सूत्रो मे चिन्तन किया गया है। पुराना और फटे हुए कम्बल का एक हाथ लम्बा-चौडा खण्ड पादप्रोछन कहा जाता है। विवेचनकार पण्डित मुनि श्री ने इस पर विस्तार से विवेचन लिखा है और उस विवेचन मे उन्होने स्पष्ट किया है कि पादप्रोछन और रजोहरण ये दोनो पृथक्-पृथक् उपकरण है। रजोहरण से परिमार्जन होता है और पादप्रोछन से केवल पैर आदि पोछे जाते है। दोनो के अर्थ और उपयोगिता भिन्न-भिन्न है। पादप्रोछन से पैर पोछने के अतिरिक्त आवश्यकता पडने पर मलविसर्जन हेतु उस वस्त्र का उपयोग किया जा सकता है। आवश्यकता होने पर उस पर बैठा भी जा सकता है, पर रजोहरण आदि का उपयोग इस प्रकार नही होता। पादप्रोछन आवश्यकता होने पर स्वय के पास न हो तो श्रमण दूसरे से ले सकता है। पर रजोहरण तो स्वय का ही होता है। जिनकल्पी श्रमणो को भी रजोहरण रखना आवश्यक माना गया है। रजोहरण फलियो के समूह मे बना हुआ एक औधिक उपकरण है जबकि पादप्रोछन वस्त्र का एक टुकडा होता है। उसे कभी काष्ठदड मे बाध कर भी रखा जाता है। यह औपग्रहिक उपकरण है। उस काष्ठदड युक्त पादप्रोछन औपग्रहिक उपकरण को जिस क्षेत्र मे और जितने समय के लिए आवश्यकता हो, उतने समय तक रख सकते है। आवश्यकता के अभाव मे काष्ठदण्ड युक्त पादप्रोछन को खोलकर रख लेना चाहिए। जो विधि युक्त बाधा गया हो वही पादप्रोछन सुप्रतिलेख्य होता है। वह पादप्रोछन डेढ मास तक अधिक से अधिक रख सकते है। यदि रखना आवश्यक हो तो खोलकर और परिवर्तन कर रख सकते है।

उसके पश्चात् इत्रादि सुगन्धित पदार्थों को सूघने का निषेध है। पदमार्ग आदि बनाने का निषेध है। पानी निकालने की नाली, छीके का ढक्कन, चिलमिली आदि बनाने का निषेध है। श्रमण को कठोर भाषा का उपयोग नही करना चाहिए। कठोर भाषा के उपयोग से सुनने वाले के अन्तर्मानस मे सक्लेश पैदा होता है। भाषा सत्य भी हो और सुन्दर भी हो। जिस भाषा के प्रयोग से दूसरो का हृदय व्यथित हो तो उस प्रकार की भाषा एक प्रकार से हिंसा है। अल्प-असत्य भाषा का प्रयोग भी श्रमण के लिए निषिद्ध है। अदत्तवस्तु ग्रहण करना भी निषिद्ध है। शरीर को सजाना व सवारना बहुमूल्यवान श्रेष्ठतम वस्तुओ को धारण करना आदि निषिद्ध है। भिक्षुओ को चर्म रखने का निषेध है। तथापि भाष्यकार ने आपवादिक स्थिति मे चर्म धारण करने का जो उल्लेख किया है—

मार्ग कण्टकाकीर्ण हो। सर्प, भयकर सर्दी, रुग्ण अवस्था, अर्स की व्याधि से पीडित, सुकुमाल आदि हो या पैरों मे जखम आदि हो तो विशेष परिस्थिति मे चर्म उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है। पर उत्सर्ग मार्ग मे नही।

नित्य अग्र-पिण्ड, दान-पिण्ड आदि का निषेध है। भिक्षा के पूर्व या बाद मे दाता की प्रशसा करना। भिक्षा के लिए समय से पूर्व गृहस्थो के घरो मे जाना। अन्यतीर्थिक के साथ, गृहस्थ के साथ, पारिहारिक व अपारिहारिक के साथ भिक्षा के लिए जाना। इनके साथ स्वाध्याय भूमि और उच्चार-प्रश्रवण भूमि मे प्रवेश करना। इन तीनो के साथ ग्रामानुग्राम विहार करना। मनोज्ञ आहार पानी का उपयोग करना, अमनोज्ञ को परठना, बचा हुआ आहार साम्भोगिक साधुओ को पूछे बिना ही परठना। सागारिक-पिण्ड ग्रहण करना व उसका उपयोग करना। सागारिक के यहाँ—बिना घर जाने भिक्षा के लिए जाना। शय्या सस्तारक की अवधि का शेषकाल और वर्षाकाल मे उल्लघन करना। वर्षा से भीगते हुए शय्या सस्तारक को छाया मे न रखना। दूसरी बार बिना आज्ञा लिय अन्यत्र ले जाना। प्रात्यहारिक शय्या सस्तारक को बिना लौटाये विहार करना। शय्या सस्तारक गुम हो जाने पर उसकी अन्वेषणा न करना। अल्प उपधि की भी प्रतिलेखना न करना। इस प्रकार दूसरे उद्देशक मे विविध प्रवृत्तियो का लघुमासिक प्रायश्चित्त बतलाया है।

इस उद्देशक मे जिन बातो का निषेध किया गया है उन बाता के निषेध का वर्णन बृहत्कल्प, आचाराग, दशवैकालिक, पिण्डनिर्युक्ति आदि मे भी है। इन सब प्रायश्चित्त के योग्य स्थानो का लघुमास प्रायश्चित्त का निरूपण द्वितीय उद्देशक मे हुआ है। विवेचन मे इन सभी विषयो पर सक्षिप्त और सारगर्भित प्रकाश भी डाला है।

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक मे ८० सूत्र है। जिन पर १४३८-१५५४ तक भाष्य की गाथाएँ है। एक सूत्र से लेकर बारह सूत्र तक धर्मशाला, मुसाफिरखाना, आरामगार या गृहपति के कुल आदि मे उच्च स्वर मे आहार आदि मागने का, गृहस्वामी के मना करने पर पुन पुन उसके घर आहारादि के लिए जाने का, सामूहिक भोज मे जाकर अशन पान ग्रहण करने का, पैरो के परिमार्जन, परिमर्दन, प्रक्षालन आदि का व शरीर के परिमार्जन, परिमर्दन, सवाहन आदि का निषेध है। बढे हुए बाल, नाखून आदि काटने का, विहार करते हुए मस्तक ढकना, श्मशान भूमि मे, खदान मे, जहाँ कोयले आदि निर्मित होते हो उस स्थान मे, फल सग्रह के स्थान मे, सब्जी आदि रखने के स्थान मे, उपवन, धूप न आने के स्थान मे मलविसर्जन का निषेध है और इन प्रवृत्तियो को करने वाले साधक के लिए लघुमासिक प्रायश्चित्त का वर्णन है।

प्रस्तुत आगम के अतिरिक्त आवश्यकसूत्र, आचारागसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, प्रश्नव्याकरण आदि मे भी अनेक कार्य श्रमणो के लिए अकरणीय है ऐसा वर्णन प्राप्त होता है।

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक मे १२८ सूत्र है। इन सूत्रो पर १५५५-१८९४ गाथाओ तक का भाष्य है। इस उद्देशक मे राजा को, राजा के रक्षक को, नगररक्षक को, सर्वरक्षक को, ग्रामरक्षक को, राज्यरक्षक को, देशरक्षक को, सीमारक्षक को वश मे करना और वश मे करने के लिए उनके गुणानुवाद करना। सचित्त धान्य आदि का आहार करना। आचार्य आदि की अनुमति के बिना दूध आदि विकृतियाँ ग्रहण करना। स्थापनाकुल जाने बिना भिक्षा के लिए जाना। अविधि से निर्ग्रन्थियो के उपाश्रय मे प्रवेश करना। निर्ग्रन्थियो के आने के रास्ते मे दण्ड आदि रख देना। नवीन कलह उत्पन्न करना। उपशान्त कलह को पुन जागृत करना। ठहाका मारकर हसना। पार्श्वस्थ,

अवसन्न, कुशील, ससक्त, नित्यक इन पाँच प्रकार के श्रमणो को अपने सन्त को देना और लेना। अप्काय, पृथ्वीकाय प्रभृति सचित्त पदार्थों से लिप्त हाथो द्वारा आहार आदि लेना। शरीर परिकर्म करना। सन्ध्या के समय तीन उच्चार-प्रश्रवण भूमि का प्रतिलेखन न करना। सकीर्ण स्थान मे मल-मूत्र का विसर्जन करना। मल-मूत्र के त्याग करने के पश्चात् उसका शुद्धिकरण न करना। प्रायश्चित्त वहन करने वाले के साथ भिक्षा के लिए जाना इत्यादि विषयो पर प्रायश्चित्त का चिन्तन किया गया है और यह कार्य न करने के लिए निषेध किया गया है। उसके लिए मासिक उद्घातिक परिहारस्थान अर्थात् लघुमासिक (मास-लघु) प्रायश्चित्त का विधान है। श्रमण और श्रमणियो को अपनी साधना के प्रति तल्लीन रहना चाहिए। साधना को विस्मृत कर यदि राजा आदि को वश मे करने के लिए प्रयास करेगा तो साधना मे बाधाएँ उपस्थित होगी। राजा आदि जहाँ प्रसन्न होते हैं वहाँ वे शीघ्र ही नाराज भी हो जाते हैं। इसलिए प्रतिकूल होने पर उपसर्ग भी दे सकते हैं। अत प्रस्तुत आगम मे उन्हे प्रसन्न करने के लिए और आकर्षित करने के लिए निषेध किया गया है। साधक को अपनी मस्ती मे ही रहकर के साधना करनी चाहिए।

प्रस्तुत उद्देशक मे साधक को विवेकयुक्त प्रवृत्ति करने का सकेत किया है। श्रामण्य जीवन का सार क्षमा है। क्रोध मे विचारक्षमता और तर्कशक्ति प्राय शिथिल हो जाती है। क्रोध मानसिक आवेश है। उस आवेश से शत्रुता जन्म लेती है और उससे अनुज्ञा ग्रहण करने का सकल्प होता है। कलह के मूल मे कषाय है। अत कलह करने का और पुराने कलह को पुन जगाने का निषेध किया है। दियासलाई दूसरो को जलाने के पूर्व स्वय जल जाती है। दूसरा जले या न जले पर वह स्वय तो जलती ही है। वैसे ही कलह करने वाला स्वय कर्मबन्धन करता ही है। कलह पाप है अत उससे साधक को बचना चाहिए।

श्रमणो को अट्टहास करने का भी निषेध किया गया है। श्रमण का अनमोल समय स्वाध्याय और ध्यान मे लगाने का है। हसी-मजाक और अट्टहास से कई बार बात-बात मे कलह हो जाता है। द्रौपदी के खिल-खिलाकर हसने का परिणाम ही महाभारत का युद्ध है। इस प्रकार चतुर्थ उद्देशक मे बताया है कि श्रमणो को वे प्रवृत्तियाँ नही करनी चाहिए जिससे साधना का मार्ग धूमिल हो। मल-मूत्र का विसर्जन भी ऐसे स्थान पर नही करना चाहिए जहाँ पर जीवो की विराधना होने की सम्भावना हो। साथ ही लोकापवाद होने की सम्भावना हो।

पाचवा उद्देशक

पाचवे उद्देशक मे ५२ सूत्र है। किन्ही-किन्ही प्रतियो मे ७७ सूत्र भी प्राप्त होते है। जिन पर १८९५-२१९४ गाथाओ मे सविस्तृत भाष्य है। सर्वप्रथम सचित्त वृक्ष के मूल के निकट बैठकर कायोत्सर्ग करना, बैठना, खडा रहना, शयन करना, आहार करना, लघुशका करना, शौच आदि करना और स्वाध्याय आदि करने का निषेध है। अपनी चादर अन्य तीर्थिक या गृहस्थ से सिलाने का, मर्यादा से अधिक लम्बी चादर रखने का भी निषेध है। पलास, नीम आदि के पत्तो को अचित्त पानी या शीत पानी से धोकर रखने का निषेध है। पादप्रोछन, दण्ड, यष्टि, सूई, लौटाने योग्य वस्तुओ को नियत अवधि के भीतर लौटा देने का विधान है। सन, कपास आदि काटने का, सचित्त रगीन और विविध रगो से आकर्षक दण्ड बनाने और रखने का, मुख, दन्त, ओष्ठ, नासिका आदि को वीणा के समान बजाने का निषेध है। औद्देशिक उद्दिष्ट शय्या का उपयोग करने का, रजोहरण प्रमाण से अधिक बडा बनाना, फलियाँ सूक्ष्म बनाना, फलियो को आपस मे सम्बद्ध करना। अविधि से बाँधकर रखना। अनावश्यक एक भी बन्धन कराना और आवश्यक भी तीन बन्धन से अधिक बन्धन करना। पाँच प्रकार के अतिरिक्त अन्य जाति के रजोहरण बनाना दूर रखना। पाँव आदि से दबाना, सिर के नीचे रखना इत्यादि सभी प्रवृत्तियो का लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है। अत साधक को इन सब प्रवृत्तियो से बचना चाहिए।

छठा उद्देशक

छठे उद्देशक मे ७८ सूत्र है। जिन पर २१९५-२२८६ गाथाओ तक का सविस्तृत भाष्य है। कुशीलसेवन की भावना से किसी भी स्त्री का अनुनय-विनय करना, हस्तकर्म करना, अगादान सचालन तथा कलह आदि करना। चित्र-विचित्र वस्त्र रखना, धारण करना। पौष्टिक आहार करना आदि कार्य करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए साधक को सभी प्रवृत्तियो के लिए निषेध किया गया है। दिल मे जब विकार भावनाएँ जागृत होती है तब कामेच्छा से व्यक्ति किस-किस प्रकार की प्रवृत्तियाँ करता है, उसका मनोवैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत अध्याय मे किया गया है।

सातवां उद्देशक

सातवें उद्देशक मे ९२ सूत्र है। जिस पर २२८७-२३४० गाथाओ मे भाष्य लिखा गया है। प्रस्तुत अध्याय मे भी मैथुन सम्बन्धी निषेध बताया गया है। कामेच्छा के सकल्प से उत्प्रेरित होकर विविध प्रकार की मालाएँ, विविध प्रकार के कडे, विविध प्रकार के आभूषण, विविध प्रकार के चर्मवस्त्र बनाना रखना और पहनना, कामेच्छा से स्त्री के अगोपाग का सचालन करना, शरीर-परिकर्म करना, सचित्त पृथ्वी पर सोना बैठना, परस्पर चिकित्सा आदि करना। पशु-पक्षी के अगोपाग को स्पर्श करने का निषेध किया गया है। इन प्रवृत्तियो को करने वालो को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

छठे और सातवें दोनो उद्देशको मे कामेच्छा से किए गये कार्यों के लिए प्रायश्चित्त का विधान है। इनमे कुछ बातें ऐसी भी है जो बिना कामेच्छा के भी करनी नही कल्पती, जैसे सचित्त भूमि आदि पर बैठना।

आठवां उद्देशक

आठवें उद्देशक मे १८ सूत्र है। जिन पर २३४१-२४९५ गाथाओ तक भाष्य है। धर्मशाला, उद्यान, अट्टालिका, दगमार्ग, शून्यगृह, तृणगृह, पानशाला, दुकान, गोशाला मे एकाकी श्रमण, एकाकी महिला के साथ रहे, आहार आदि करे, स्वाध्याय करे, शौचादि साथ जाये, विकारोत्पादक वार्तालाप करे। रात्रि के समय स्त्रीपरिषद् या स्त्री-पुरुषयुक्त परिषद् मे अपरिमित कथा करे तथा श्रमणियो के साथ विहारादि करे। उपाश्रय मे रात्रि के समय मे महिलाओ को रहने देवे, मना न करे। उनके साथ बाहर आना-जाना करे आदि प्रवृत्तियो का निषेध है। स्त्री ससर्ग का निषेध दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदि अन्य आगमो मे भी यत्र-तत्र है। सर्वत्र साधक को यही प्रेरणा दी गई है कि वह महिलाओ का अधिक सम्पर्क न रखे। अधिक सम्पर्क से साधक च्युत हो सकता है।

प्रस्तुत अध्याय मे मूर्द्धाभिषिक्त राजा के अनेक प्रकार के महोत्सवो मे आहार ग्रहण करने का निषेध है। मूर्द्धाभिषिक्त राजा जब उत्तरशाला यानी मण्डप मे रहता हो तब भी आहार ग्रहण करने का निषेध है। इसी प्रकार अश्वशाला, हस्तिशाला, मन्त्रणागृह, गुप्तविचारगृह आदि मे रहे हुए राजा के आहार ग्रहण का निषेध है। पाच सूत्रो मे राजपिण्ड ग्रहण करने का निषेध किया है और ग्रहण करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

आगम साहित्य मे अनेक स्थलो पर राजपिण्ड ग्रहण करने का निषेध है। जिसका राज्याभिषेक हुआ हो वह राजा कहलाता है। उसका भोजन राजपिण्ड है।[१] जिनदासगणि महत्तर के अभिमतानुसार सेनापति,

---

१ (क) दशवैकालिक अगस्त्यसिंहचूर्णि
(ख) दशवैकालिक जिनदासचूर्णि ११२-१३ (ग) कल्पदर्शनम् गा ९ पृ १
(घ) कल्पसूत्र कल्पलता ४ पृ २ समयसुन्दर (ङ) कल्पार्थबोधिनी ४ पृ २

अमात्य, पुरोहित, श्रेष्ठी और सार्थवाह सहित जो राजा राज्य का उपभोग करता है, उसका पिण्ड ग्रहण नही करना चाहिए। अन्य राजाओ के लिए नियम नही है। यदि दोष की सभावना हे तो ग्रहण नही करना चाहिए और निर्दोष है तो ग्रहण किया जा सकता है।[1]

राजपिण्ड का तात्पर्य राजकीय भोजन से है। राजकीय भोजन सरस, मधुर व मादक होता है, जिसके सेवन से रसलोलुपता बढने की सम्भावना रहती है। ऐसा सरस आहार सर्वत्र सुलभ नही होता। अत रसलोलुप बनकर मुनि कही अनेषणीय आहार ग्रहण न करे इसीलिए राजपिण्ड का निषेध किया है। एषणाशुद्धि ही प्रस्तुत विधान की आत्मा है। यदि कोई इस विधान को विस्मृत करके राजपिण्ड को ग्रहण करता है या राजपिण्ड का उपयोग करता है तो श्रमण को चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।[2] राजपिण्ड के निषेध के पीछे अन्य तथ्य भी रहे हुए हैं।[3] जिनका उल्लेख निशीथभाष्य और चूर्णि मे किया गया है। राजभवन मे प्राय सेनापति आदि का आवागमन रहता है। कभी शीघ्रता आदि के कारण श्रमण के चोट लगने की और पात्रादि फूटने की भी सम्भावना रहती है।[4] वे अपशकुन भी समझ सकते है अत राजपिण्ड को अनाचीर्ण माना है।[5]

भगवान् महावीर और ऋषभदेव के श्रमणो के लिए ही राजपिण्ड का निषेध है पर बावीस तीर्थंकरो के श्रमणो के लिए नही।[6] राजपिण्ड मे चार प्रकार के आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण—ये आठ वस्तुए परिगणित की गई हे और आठो ही अग्राह्य मानी है।[7]

नौवां उद्देशक

नौवे उद्देशक मे २५ सूत्र है। जिन पर २४९६-२६०५ गाथाओ मे भाष्य लिखा है। इस उद्देशक मे भी राजपिण्ड ग्रहण करने का निषेध किया गया है। श्रमण को राजा के अन्त पुर मे प्रवेश नही करना चाहिए। भाष्यकार ने तीन अन्त पुरो का उल्लेख किया है—जीर्ण अन्त पुर, नवअन्त पुर और कन्या-अन्त पुर। अन्त पुर मे एक से एक सुन्दर स्त्रियां रहती थी। राजा अन्त पुर को अधिक से अधिक समृद्ध और सुन्दर बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र ग्रन्थ मे वृद्धा स्त्रियो को और नपुसको को अन्त पुर की रक्षा के लिए तैनात रखे ऐसा विधान किया है। अन्त पुर मे सगे-सम्बन्धी या नौकर-चाकर के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति प्रवेश नही करता था। राजा अन्त पुर की सुरक्षा अत्यधिक सावधानी स करता था। श्रमण के अन्त पुर मे जाने से राजा के अन्तर्मानस मे कुशकाएँ उत्पन्न होना स्वाभाविक था, अत श्रमण के लिए अन्त पुर मे जाने का निषेध किया गया है।

स्वय श्रमण तो अन्त पुर मे प्रवेश न करे किन्तु अन्त पुर के द्वार पर जो महिला नियुक्त की गई हो उससे भी आहारादि मगवाना और ग्रहण करना निषिद्ध है। राजा के द्वारपाल, अन्य अनुचर, सैनिक, दास, दासी, घोडो व हाथी के निमित्त, अटवी के यात्रियो के लिए, दुर्भिक्ष और दुष्काल पीडित व्यक्तियो के लिए, गरीब व्यक्तियो के लिए,

१ निशीथभाष्य गा २४८७ चूर्णि

२ निशीथ९।१।२

३ (क) कल्पार्थबोधिनी, कल्प ४, पृ २ (ख) कल्प समर्थन १०।१

४ निशीथभाष्य, गा २५०३-२५१०

५ दशवैकालिक ३।३

६ (क) कल्पलता टीका (ख) कल्पद्रुमकलिका, पृ २

७ कल्पसमर्थन, गा ११, प २

रोगियो के लिए, वर्षा से पीडित व्यक्तियो के लिए व महमानो के लिए जो भोजन राजकुलो मे बनता है उसे लेने के लिए निषेध किया है और लेने पर गुरु चौमासी का प्रायश्चित्त बताया है। दण्डधर, दण्डरक्षक, दौवारिक, वर्षधर, कचुकिपुरुष और महत्तर प्रभृति व्यक्ति अन्त पुर की सुरक्षा के लिए नियुक्त रहते थे। राजा-रानी को देखने के लिए जाने का भी निषेध है। शिकार आदि के लिए गये हुये राजा का आहार ग्रहण न करे। जहा राजा भोजन करने गये हो वहा भिक्षा के लिए भी न जायें। राजा की सर्वालकार विभूषित स्त्रियो के पाव तक भी देखने का विचार नही करना चाहिए। राज्यसभा के विसर्जित होने के पूर्व आहार आदि के लिए गवेषणा नही करना चाहिए। राजा के निवासस्थान के पास स्वाध्याय नही करना चाहिए। प्राचीन काल मे चम्पा, मथुरा, वाराणसी, श्रावस्ती, साकेत, कम्पिल, कोशाम्बी, मिथिला, हस्तिनापुर और राजगृह ये दस राजधानियाँ मानी जाती थी। जहा पर सदैव राज्योत्सव होते रहते थे। इसलिए श्रमणो को बार-बार वहा जाने के लिये प्रस्तुत उद्देशक मे निषेध किया गया है। निषेध की अवहेलना करने पर गुरु चातुर्मासी प्रायश्चित्त का विधान है। विस्तारभय से हम उन राजधानियो का परिचय यहा नही दे रहे है। अतीत काल मे उनकी अवस्थिति कहा थी ? वर्तमान मे उनकी अवस्थिति कहाँ है, प्रस्तुत उद्देशक मे राजपिण्ड के अतिरिक्त राजा से सम्बन्धित अनेक प्रसगो का भी प्रायश्चित्त बताया गया है। इसका मूल कारण यही है कि आज्ञा की अवहेलना के साथ ही अन्य अनेक हानियाँ भी हो सकती है।

दसवां उद्देशक

दसवे उद्देशक मे ४१ सूत्र है। किन्ही-किन्ही प्रतियो मे ४७ सूत्र भी मिलते है। जिन पर २६०६-३२७५ गाथाओ का भाष्य है। आचार्य श्रमण सघ का अनुशास्ता है। अनन्त आस्था का केन्द्र है। तीर्थंकर के अभाव मे आचार्य ही तीर्थ का सचालन करता है। अत उसके प्रति अत्यधिक बहुमान रखना प्रत्येक साधक का परम कर्तव्य है। आचार्य के प्रति बहुमान युक्त शब्दो का ही प्रयोग होना चाहिए। जो भिक्षु आचार्य आदि को रोष युक्त वचन बोलता है, स्नेह रहित रूक्ष वचन बोलता है, आसातना करता है, उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है। दशाश्रुत-स्कन्ध मे ३३ आसातनाओ का निर्देश किया गया है। भाष्य मे आसातनाओ के अपवाद का भी उल्लेख है। जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव विवेक पर आधारित है। अपवाद मे जैसे मार्ग मे अत्यधिक काटे बिछे हुए हो, उन काटो को अलग-थलग करने के लिए शिष्य गुरु से भी आगे चलता है तो आसातना नही है।

प्रस्तुत उद्देशक मे अनन्तकाय सयुक्त आहार ग्रहण करने का निषेध किया गया है। आधाकर्मी आहार का निषेध किया गया है। आधाकर्म उपधि का भी निषेध है। श्रमणो को लाभालाभ निमित्त नहीं बताना चाहिए। किसी भी निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को बहकाना भी नही चाहिए और न उनका अपहरण करना चाहिए। न दीक्षार्थी, गृहस्थ, गृहस्थिनी को बहकाना चाहिए। बाहर से आने वाले श्रमण को आने का कारण जानने के पश्चात् ही आश्रय दे। क्योकि कही से वह लडाई-झगडा आदि करके तो नही आया है, कलह को उपशान्त न करने वाले या प्रायश्चित्त न करने वाले के साथ आहार न करे। उनके साथ आहार करने पर तथा प्रायश्चित्त के सम्बन्ध मे विपरीत प्ररूपणा करने पर, सूर्योदय या सूर्यास्त की सदिग्ध स्थिति मे भी आहार करने पर, रात्रि के समय मुख मे आये हुए उद्गाल को निगल जाने पर, ग्लान की विधिपूर्वक सेवा न करने पर, वर्षावास मे विहार करने पर, निश्चित दिन पर्युषण न करने पर, अनिश्चित्त दिन पर्युषण करने पर, पर्युषण के दिन चौविहार उपवास न करने पर, लोच न करने पर, वर्षावास मे वस्त्र ग्रहण करने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का वर्णन है। दशाश्रुत-स्कन्ध,[1] उत्तराध्ययन,[2] दशवैकालिक[3] और अन्य आगमो मे भी आसातना करने का निषेध किया गया है।

---

१ दशाश्रुतस्कन्ध दशा १ व ३

२ उत्तराध्ययन अ १ व ७

३ दशवैकालिक मे अध्ययन ९

आचाराग[1] के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे अनन्तकाय युक्त आहार आ जाय तो उसे 'परिस्थापन कर दिया जाय' ऐसा कथन है।

आगम साहित्य मे आचाराग[2] सूत्रकृताग[3] आदि मे अनेक स्थानो पर आधाकर्म दोषयुक्त आहार श्रमण ग्रहण न करे, ऐसा विधान है। निमित्त कथन भी इसीलिए वर्ज्य है कि उसमे असत्य लगने की सम्भावना रहती है। महावीर के शासन की अनेक विशेषताओ मे ये दो मुख्य विशेषताएँ है। रात्रिभोजनविरति पर उन्होने अत्यधिक बल दिया और ब्रह्मचर्य की साधना पर भी उनका अत्यधिक बल था।

वैदिक परम्परा मे वानप्रस्थाश्रम आदि मे पत्निया साथ रहती थी पर महावीर ने पूर्ण निषेध किया था। इसका मूल अहिंसा की उदात्त साधना मे रहा हुआ है। आधुनिक वैज्ञानिको ने भी रात्रिभोजन से होने वाली हानियो का उल्लेख किया है।[4] हमने विस्तार के साथ जैन आचार सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण ग्रन्थ मे प्रकाश डाला है। बृहत्कल्प मे वर्षावास मे विहार करने का और वस्त्र ग्रहण करने का निषेध किया है। ग्लान श्रमणो की सेवा पर विशेष बल दिया गया है और न करने पर प्रायश्चित्त का विधान है। पर्युषण महापर्व के सम्बन्ध मे भी विशेष विधान और प्रायश्चित्त प्रस्तुत उद्देशक मे किये गये है। इन सबके लिए चौमासी प्रायश्चित्त का उल्लेख किया गया है।

ग्यारहवा उद्देशक

ग्यारहवे उद्देशक मे ९१ सूत्र है। जिन पर ३२७६-३९७५ गाथाओ का भाष्य है। प्रस्तुत उद्देशक मे लोहे, ताबे, शीशे, सीग, चर्म, वस्त्र प्रभृति के पात्र रखने, उसमे आहार करने का निषेध है। धर्म की निन्दा और अधर्म की प्रशसा करने का निषेध है। गृहस्थ के शरीर का परिकर्म करना। स्वय को या अन्य को डराना, स्वय या अन्य को विस्मृत करना, स्वय को या अन्य को विपरीत दिखाना। जो व्यक्ति सामने है उसके धर्म प्रमुख के सिद्धान्तो की आचारादि की मिथ्या प्रशसा करना। दो विरोधी राज्यो के मध्य पुन पुन गमनागमन करना। दिवस-भोजन की निन्दा, रात्रिभोजन की प्रशसा। मद्य-मास आदि के ग्रहण का निषेध। स्वच्छन्दाचारी की प्रशसा करने का निषेध। अयोग्य व्यक्तियो को दीक्षा देने का निषेध। अयोग्य से सेवा कराने का निषेध। अचेल या सचेल साधु का अचेल या सचेल साध्वियो के साथ रहना निषिद्ध है। चूर्ण नमक आदि को रात्रि मे रखना, आत्मघात करने वालो की प्रशसा करना आदि दोषो के सेवन करने वालो को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है। प्रस्तुत उद्देशक मे जिन-जिन विषयो की चर्चाएँ हुई है, अन्य आगमो मे उसका निर्देश है। विवेचक मुनिप्रवर ने अपने विवेचन मे यत्र-तत्र उन स्थलो का निर्देश किया है। विस्तारभय से उन सभी विषयो पर हम जानकर नही लिख रहे है।

बारहवां उद्देशक

बारहवे उद्देशक मे ४४ सूत्र है और ३९७६-४२७५ गाथाओ मे भाष्य लिखकर उन-उन सूत्रो पर विस्तार से विवेचन किया गया है। पहले सूत्र मे करुणा से उत्प्रेरित होकर श्रमण न त्रस जीवो को रस्सी से बाधे और न बन्धनमुक्त करे। यह सहज जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है कि अनुकम्पा, करुणा यह सम्यक्त्व का लक्षण है फिर इसका निषेध क्यो? उसका मूल कारण है कि उसे निस्पृहभाव से सयमसाधना करनी है। यदि वह सयम साधना

१ आचाराग २, १।१
२ आचाराग २।१।९
३ सूत्रकृताग १।१०।८-१७
४ जैन आचार सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण, पृ. ८।६।६

को विस्मृत कर इस प्रकार की प्रवृत्तियां करेगा तो उसकी साधना मे विघ्न आयेगे। यहा पर करुणाभाव या अनुकम्पाभाव का प्रायश्चित्त नही है अपितु गृहस्थो की सेवा और सयम विरुद्ध प्रवृत्ति का प्रायश्चित्त है।

जो श्रमण पुन पुन प्रत्याख्यान भग करता है और करने वाले का अनुमोदन करता है उसे लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है। भाष्य मे प्रत्याख्यान भग करने से अनेक दोष पैदा होते है। लोम युक्त चर्म रखने का निषेध है। गृहस्थ के वस्त्राच्छादित तृणपीठ आदि पर बैठने का निषेध है। साध्वी की चादर अन्यतीर्थिक या किसी गृहस्थ से सिलवाने का निषेध है। पृथ्वीकाय आदि पाचो स्थावरो के जीवो की किञ्चित् भी विराधना करने का निषेध है। सचित्त वृक्ष पर चढने का निषेध है। गृहस्थ के पात्र मे भोजन करने का निषेध है। गृहस्थ का वस्त्र पहनना और उसकी शैय्या पर सोने का निषेध है। वापी, सर, निर्झर, पुष्करिणी आदि का सौन्दर्यस्थल निरीक्षण करने का निषेध है। सुन्दर ग्राम, नगर, पट्टन आदि को देखने की अभिलाषा रखने का निषेध है। अश्वयुद्ध, हस्तियुद्ध आदि मे सम्मिलित होने का निषेध है। काष्ठकर्म, चित्रकर्म, लेपकर्म, दन्तकर्म आदि देखने का निषेध है। प्रथम प्रहर मे ग्रहण किया हुआ आहार-पानी का उपयोग चतुर्थ प्रहर मे करने का निषेध है। दो कोस के आगे आहार-पानी ले जाने का निषेध है। गोबर या अन्य लेप्य पदार्थ रात्रि मे लगाना या रात्रि मे रखकर दिन मे लगाने का निषेध है। गगा, यमुना, सरयू, ऐरावती और मही नाम की बडी नदियो को महीने मे दो या तीन बार पार करने का निषेध है। इन निषेध प्रवृत्तियो को करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त का उल्लेख है।

प्रस्तुत उद्देशक मे जिन बातो का निषेध किया गया है उनका निषेध दशाश्रुतस्कन्ध आचाराग बृहत्कल्प दशवैकालिक सूत्रकृताग प्रभृति आगमो मे मिलता है। साधक को इस प्रकार की प्रवृत्तिया नही करनी चाहिए जो उसकी साधना को धूमिल करने वाली हो।

तेरहवां उद्देशक

तेरहवे उद्देशक मे ७८ सूत्र है। जिन पर ४२२६-४४७२ गाथाओं का विस्तृत भाष्य है। सचित्त, सस्निग्ध, सरजस्क आदि पृथ्वी पर सोने, बैठने व स्वाध्याय करने का, देहली, स्नानपीठ, भित्ति, शिला आदि पर बैठने का, अन्यतीर्थिक या गृहस्थ आदि को शिल्प आदि सिखाने का, कौतुककर्म, भूतिकर्म, प्रश्न, प्रश्नादि प्रश्न, निमित्त, लक्षण आदि के प्रयोग करने का, गृहस्थ को मार्गभ्रष्ट होने पर रास्ता बताने का, धातुविद्या या निधि बताने का, पानी से भरे हुए पात्र, दर्पण, मणि, तेल, मधु, घृत आदि मे मुह देखने का, वमन, विरेचन तथा बल आदि के लिए व बुद्धि के लिए औषध आदि सेवन का, पार्श्वस्थ आदि शिथिलाचारियो को वन्दन करने का तथा उत्पादन के दोषो का सेवन कर आहार ग्रहण करने का निषेध है, इत्यादि प्रवृत्तियाँ करने वाले साधक को लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

तेरहवे उद्देशक मे जिन-जिन निषेधो की चर्चा की है उनमे से कुछ बातो पर आचाराग सूत्रकृताग दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदि मे भी निषेध है। पिण्डनिर्युक्ति मे उत्पादन दोष आदि पर विस्तार से विवेचन है। साराश यही है कि साधक प्रतिपल प्रतिक्षण जागरूक रहे। दोषयुक्त कोई भी प्रवृत्ति न करे।

चौदहवा उद्देशक

चौदहवे उद्देशक मे ४१ सूत्र है। किन्ही-किन्ही प्रतियों मे ४५ सूत्र भी मिलते है। जिन पर ४४७३-४६८९ गाथाओ का विस्तृत भाष्य है। यहाँ पर पात्र का खरीदने, उधार लेने, पात्र परिवर्तन करने, छीन करके पात्र लेना। पात्र के हिस्सेदार की आज्ञा लिये बिना पात्र लेना। सामने लाया हुआ पात्र लेना। आचार्य की आज्ञा लिये बिना

किसी अन्य को अतिरिक्त पात्र देना। अविकलांग या समर्थ को अतिरिक्त पात्र देना। विकलांग व असमर्थ को अतिरिक्त पात्र न देना। उपयोग मे आने योग्य पात्र को न रखना और उपयोग मे न आने योग्य पात्र को रखना। नवीन सुरभिगन्ध या दुरभिगन्ध युक्त पात्र को विशेष चित्ताकर्षक बनाने का, गृहस्थ से पात्र ग्रहण करते समय उस पात्र मे से त्रस जीव, बीज, कन्दमूल, पुष्प, पत्र आदि निकालकर लेने का, परिषद् से निकलकर पात्र की याचना करने का तथा पात्र के लिए मासकल्प और चातुर्मास रहने का निषेध है, इत्यादि प्रवृत्तियाँ करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त का विधान है।

प्रस्तुत उद्देशक मे विस्तार के साथ पात्र के सम्बन्ध मे विविध दृष्टियो से चिन्तन किया गया है। आचाराङ्गसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे श्रमणो को क्रीत, प्रामृत्य, आच्छेद्य, अनिसृष्ट और अभिहृत पात्र लेने का निषेध किया गया है और यह भी सूचन किया गया है जो पात्र उपयोग मे आवे उसे श्रमण ग्रहण करे और पात्रो को रग-विरगे नही बनावे तथा ऐसे स्थान पर भी पात्रो को नही सुखाना चाहिए जहाँ पर पात्र गिरने की सम्भावना हो।

पन्द्रहवां उद्देशक

पन्द्रहवे उद्देशक मे १५४ सूत्र है। जिन पर ४६९०-५०९४ का विस्तृत भाष्य है। प्रथम चार सूत्रो मे सामान्य श्रमणो की आशातना करने का और आठ सूत्रो मे सचित्त आम्र, आम्रपेशी, आम्रचोयक आदि खाने का लघचातुर्मासिक प्रायश्चित्त बताया है। उसके पश्चात् गृहस्थ से परिकर्म करवाने का, अकल्पनीय स्थानो मे मल-मूत्र परठने का और पार्श्वस्थ आदि को आहार, वस्त्र आदि देने और उनसे लेने का निषेध किया गया है। विभूषा की दृष्टि से शरीर का परिकर्म करना, वस्त्र आदि का परिमार्जन प्रक्षालन करना निषिद्ध है। ये प्रवृत्तियाँ करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त बतलाया गया है।

प्रस्तुत उद्देशक मे जिन-जिन बातो की चर्चा है उसकी चर्चा आचाराङ्ग द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे भी आई है। वहाँ पर भी सचित्त आम आदि फलो को खाने का निषेध किया गया है। गृहस्थ से शरीर परिकर्म करवाने का निषेध किया गया है और अकल्पनीय स्थानो पर मल-मूत्र विसर्जन का भी निषेध किया गया है। उत्तराध्ययन व दशवैकालिक मे विभूषा की दृष्टि से प्रवृत्ति करने का निषेध किया गया है। विभूषावृत्ति को तालपुटविष से उपमित किया गया है।

सोलहवा उद्देशक

सोलहवे उद्देशक मे ५० सूत्र हैं। जिन पर ५०९५-५९०३ गाथाओ का विस्तृत भाष्य है। भिक्षु को सागारिक आदि की शैय्या मे प्रवेश करने का, सचित्त ईख गण्डेरी आदि खाना या चूसने का, अरण्य मे रहने वाले, वन मे जाने वाले, अटवी की यात्रा करने वालो का अशन-पान लेने, असयमी को सयमी, सयमी को असयमी कहने का तथा कलह करने वाले तीर्थिकों से अशन-पान आदि ग्रहण करने का निषेध किया गया है। भाष्यकार ने सप्तनिह्नवो का वर्णन किया है। क्रोध मे आकर जो अपने ही दांतो से दूसरो को काट लेते हो ऐसे दस्यु, अनार्य, म्लेच्छ और प्रत्यन्त देशवासियो के जनपदो मे विहार करने का निषेध किया है। ये देश अनार्य देश थे। मगध, कोशाम्बी, थूणा, कुणाला आदि पच्चीस देशो को आर्य देश माना गया है। जुगुप्सित कुलो से अशन, पान, वस्त्र, कम्बल आदि ग्रहण करने का और वहाँ पर स्वाध्याय आदि करने का भी निषेध है। अन्यतीर्थिक या गृहस्थो के साथ भोजन ग्रहण करने का निषेध है। आचार्य, उपाध्याय आदि के आसन पर पैर लग जाने पर विनय किये बिना चले

जाना। प्रमाण और आगमोक्त परिमाण से अधिक उपधि रखने का निषेध किया गया है। सचित्त भूमि पर और अन्य विराधना वाले स्थानो पर मल-मूत्र विमर्जन करने का निषेध है।

सोलहवे उद्देशक मे जिन-जिन बातो की चर्चा की गई है और जिन-जिन कार्यों का निषेध किया गया है, उसकी चर्चा आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प और दशाश्रुतस्कन्ध मे भी है। आगम-साहित्य मे यत्र-तत्र साधक को सावधान किया गया है कि वह इस प्रकार की प्रवृत्ति न करे जो सयमी जीवन को विकृत बनाये।

सत्रहवां उद्देशक

सत्रहवें उद्देशक मे १५५ सूत्र है। किन्ही-किन्ही प्रतियो मे १५१ सूत्र मिलते है। जिन पर ५९०४-५९९६ गाथाओ का भाष्य है। कुतूहल से त्रस प्राणियो को रस्सी आदि से बाधने और खोलने का निषेध है। कुतूहल से अनेक प्रकार की मालाएँ, विविध प्रकार की मालाए, कडे, आभूषण बनाने रखने का निषेध है। विविध प्रकार के वस्त्रो का भी इसमे उल्लेख हुआ है। श्रमण को कुतूहलवृत्ति से रहित गम्भीर स्वभाव वाला होना चाहिए। कुतूहलवृत्ति से लोकापवाद भी होता है। श्रमण और श्रमणियो का गृहस्थो के द्वारा परिकर्म करवाने का, बन्द बर्तन आदि खुलवाकर आहार लेने का, सचित्त पृथ्वी पर रखे हुए आहार को लेने का, तत्काल बने हुए अचित्त शीतल जल लेने का और आचार्य पद योग्य मेरे शारीरिक लक्षण है, इस प्रकार कहने का निषेध किया गया है। विविध वाद्य बजाना, हसना, नृत्य करना, पशुओ की तरह आवाज निकालना, विविध प्रकार के वाद्यो को सुनने के लिए ललकना, शब्दश्रवण के प्रति आसक्ति रखना इसके लिए प्रस्तुत उद्देशक मे लघुचौमासी प्रायश्चित्त का उल्लेख है।

आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे इस प्रकार की सयमसाधना-विरुद्ध प्रवृत्ति करने का निषेध है। प्रत्येक अध्याय मे इसी बात पर बल दिया गया है। सर्वत्र सयमी साधक के लिए बहुत ही निष्ठा के साथ नियमोपनियम के पालन पर बल दिया गया है।

अठारहवां उद्देशक

अठारहवें उद्देशक मे ७३ सूत्र है। किन्ही-किन्ही प्रति मे ७४ सूत्र भी है। जिन पर ५९९७-६०२७ गाथाओ का भाष्य है। एक से लेकर बत्तीस सूत्र तक नौकाविहार के सम्बन्ध मे विविध दृष्टियो से चिन्तन किया गया है। यो तो श्रमण अप्काय के जीवो की विराधना का पूर्ण रूप से त्यागी होता है फिर वह नौकाविहार कैसे कर सकता है? पर आचारागसूत्र, बृहत्कल्प और दशाश्रुतस्कन्ध मे अपवाद रूप से नौकाविहार करने का भी विधान है। पर यह स्मरण रखना होगा कि वह नौका परमित जलमार्ग के लिए ही है। आगम मे बताये हुए या आगमो मे निर्दिष्ट कारणो से ही वह उसका उपयोग करता है। प्रस्तुत ग्रन्थ के विवेचन मे विवेचनकार ने उस पर विस्तार से चर्चा की है। आचाराग द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे भी नौकाविहार के विधि-निषेध है। सूत्र ३३ से ७३ तक वस्त्र सम्बन्धी दोषो के सेवन का उल्लेख है। इत्यादि प्रवृत्तियो का लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है। नौका और वस्त्र इन दो के सम्बन्ध मे ही प्रस्तुत उद्देशक के चर्चा है।

उन्नीसवां उद्देशक

उन्नीसवें उद्देशक मे ३५ सूत्र हैं। किन्ही-किन्ही प्रतियो मे ४० सूत्र भी मिलते हैं। जिन पर ६०२८-६२७१ गाथाओ का भाष्य है। औषध के लिए क्रीत आदि दोष लगाना, विशिष्ट औषध की तीन मात्रा से अधिक लाना, उसे विहार मे साथ रखना, औषध के परिकर्म सम्बन्धी दोषो का सेवन करना, पूर्व सन्ध्या, पश्चिम सन्ध्या,

अपराह्न मध्याह्न का समय और अर्धरात्रि के समय चार महामहोत्सव और उसके पश्चात् चार प्रतिपदा के दिन स्वाध्याय करने का निषेध है। कालिकसूत्र की चार प्रहरो मे स्वाध्याय करने का वर्णन है। बत्तीस प्रकार के अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय करना। शारीरिक अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय करना। आगमोक्त क्रम से सूत्रो की वाचना न देना, आचाराग आदि की वाचना पूर्ण किये बिना ही निशीथ आदि छेदसूत्रो की वाचना प्रारम्भ करना अपात्र को वाचना देना पात्र को वाचना नही देना समान योग्य व्यक्तियो को वाचना देने मे पक्षपात करना आचार्य, उपाध्याय द्वारा वाचना लिए बिना ही स्वय वाचना ग्रहण करना अन्य मिथ्यात्वियो को अन्य-तीर्थियो को पार्श्वस्थादि को वाचना देने आदि का निषेध किया गया है।

प्रस्तुत उद्देशक के प्रथम सात सूत्रो मे औषध आदि के सम्बन्ध मे बताया है। उसके पश्चात् आठवें सूत्र से पैंतीसवे सूत्र तक स्वाध्याय अध्ययन और अध्यापन के सम्बन्ध मे वर्णन है। स्थानाग, आवश्यकसूत्र, व्यवहारसूत्र और बृहत्कल्प मे भी इन बातो के सम्बन्ध मे विविध स्थानो पर प्रकाश डाला गया है। अदत्त वाचना का इसमे स्पष्ट रूप से निषेध किया गया है। इस प्रकार उन्नीसवें उद्देशक मे केवल दो ही विषयो की चर्चा है।

बीसवा उद्देशक

बीसवें उद्देशक मे ५१ सूत्र है। जिन पर ६२७२-६७०३ गाथाओ मे भाष्य है। कपटयुक्त और निष्कपट आलोचना के लिए विविध प्रकार के प्रायश्चित्तो का विधान है। जो साधक निष्कपट आलोचना करता है उस साधक को जितना प्रायश्चित्त आता है उसमे कपटयुक्त आलोचना करने वाले को एक मास अधिक प्रायश्चित्त आता है। भगवान् महावीर के शासन मे उत्कृष्ट छह मास के प्रायश्चित्त का ही विधान है। इन सूत्रो मे प्रथम बीससूत्र-व्यवहारसूत्र स मिलते-जुलते है। इसमे विविध भग बताकर प्रायश्चित्त का निरूपण किया है। प्रायश्चित्त स्थानो की आलोचना प्रायश्चित्त देने पर और उसके वहन काल मे सानुग्रह निरनुग्रह स्थापित और प्रस्थापित का स्पष्ट निरूपण किया गया है।

यह स्मरण रखना होगा कि निशीथ निर्युक्ति और भाष्य के अनुसार निशीथ की सूत्र सख्या २०२२ है। पर प्रस्तुत सस्करण मे सम्पूर्ण सूत्र सख्या १४०१ है। निशीथसूत्र की जितनी भी प्रतिया उपलब्ध होती है उनमे सूत्र सख्या एक सदृश नही है। ६२१ सूत्रो का निर्युक्ति और भाष्य की प्रति मे जो अन्तर है, वह शोधार्थियो के लिए अन्वेषणीय है।

अपराध व प्रायश्चित्त विधान—बौद्धदृष्टि से

श्रमणसस्कृति की दो धाराएँ है—एक जैनसस्कृति और दूसरी बौद्धसस्कृति। हम उपर्युक्त पक्तियो मे यह बता चुके हैं कि जैन साधनापद्धति मे स्खलनाएँ होने पर उस स्खलना से मुक्त होने के लिए निशीथ आदि छेदसूत्रो मे प्रायश्चित्त आदि का निरूपण है। सर्वप्रथम जिन स्खलनाओ की सम्भावना है उनकी एक लम्बी सूची दी गई है और फिर उन स्खलनाओ की शुद्धि हेतु प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। जैन परम्परा मे जो स्थान निशीथ का है वैसा ही स्थान बौद्धपरम्परा मे विनयपिटक का है। विनयपिटक मे बौद्ध भिक्षुसघ का सविधान दिया गया है। भिक्षु जीवन मे आचार का गौरवपूर्ण स्थान है। तथागत बुद्ध ने समय-समय पर भिक्षु और भिक्षु-णियो के पालन योग्य नियमो का उपदेश दिया। प्रस्तुत सन्दर्भ मे अपराधो, दोषो और प्रायश्चित्तो का भी वर्णन है। समाज और जीवन का दिग्दर्शन करने हेतु प्रस्तुत ग्रन्थ का अपना महत्त्व है। विनय पिटक मे विनयवस्तु की दृष्टि से वह तीन विभागो मे विभक्त है—(१) सुत्तविभग, (२) खन्धक, (३) परिवार।

सुत्तविभग मे दोषो का निरूपण है। उन नियमो के उल्लघन का भी उल्लेख है जिन्हे भिक्षु प्रत्येक महीने की अमावस्या और पूर्णिमा के दिन स्मरण करता था। इसे दूसरे शब्द मे प्रातिमोक्ष भी कहा जाता है। भिक्षु और भिक्षुणी की दृष्टि से प्रातिमोक्ष के दो विभाग है। इनमे भिक्षु और भिक्षुणी के द्वारा नियमोल्लघन का वर्णन है। जब प्रातिमोक्ष का पाठ प्रारम्भ होता है तब उनमे जिन-जिन अपराधो का वर्णन आता है, उन अपराधो मे से सभा मे उपस्थित भिक्षु और भिक्षुणी ने जो-जो अपराध किये है, वे भिक्षु और भिक्षुणी अपने स्थान से खडे होकर उन अपराधो को स्वीकार करते है। अपराध स्वीकार करने के पीछे यही उद्देश्य रहा हुआ है कि भविष्य मे वह पुन इस प्रकार के अपराध की पुनरावृत्ति नही करेगा। मज्झिमनिकाय मे तथागत बुद्ध ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि प्रातिमोक्ष कुशलधर्मो का आदि है अर्थात् मुख है।[1] प्रातिमोक्ष शब्द पर टीका करते हुए एक आचार्य ने लिखा है कि जो उस प्रातिमोक्ष की रक्षा करता है, उसके नियमो का परिपालन करता है, वह (प्रातिमोक्ष) उसे अपाय असद्गति आदि दु खो से मुक्त करता है अत वह प्रातिमोक्ष है।

खन्धक भी दो भागो मे विभक्त है ? एक महावग्ग और दूसरा चुल्लवग्ग। भिक्षु का सघीय जीवन किस प्रकार का होना चाहिए, उसे किन-किन नियमो का पालन करना चाहिए, यह महावग्ग मे वर्णन है। सुत्तविभग मे मुख्य रूप से निषेधात्मक शैली है तो महावग्ग मे विधेयात्मक शैली है। उपसम्पदा, वर्षावास, प्रातिमोक्ष (पातिमोक्ख), प्रवारणा, चिवररगता आदि विधि क्रम और नियमो का विस्तार से वर्णन है।

चुल्लवग्ग मे दैनन्दिन अर्थात् प्रतिदिन क्या करने योग्य है ? क्या करने योग्य नही है ? किस प्रकार चलना, किस प्रकार बोलना आदि का विवेचन है। इसके अतिरिक्त बौद्ध इतिहास की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओ का भी सकलन है।

प्रारम्भ मे विनयपिटक मे वर्णित विषयो की अनुक्रमणिका दी गई है।

तथागत बुद्ध ने अपने प्रधान शिष्य आनन्द को कहा था कि छोटी-छोटी गलतियो को क्षमा कर दिया जाय पर आनन्द बुद्ध से यह पूछना भूल गये कि छोटी-छोटी गलतियाँ कौन-सी है ? तथागत बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् सघ विच्छिन्न न हो जाय, धर्मसघ की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने की दृष्टि से प्रथम बौद्धसगति मे कठोर नियमो का गठन किया गया। इसका मूल उद्देश्य भिक्षु-भिक्षुणी बुरे कार्यो से दूर रहेगे। बौद्धसघ मे दो प्रकार के दण्ड थे— कठोर दण्ड और नरम दण्ड। कठोर दण्ड मे पाराजिक एव सघादि शेष दण्ड आते थे। यह दुट्ठुलापत्ति, गरुकापत्ति, अदेसनागामिनी आपत्ति, थुल्लवज्जा आपत्ति, अनवसेसापत्ति विविध नामो से जाना और पहचाना जाता है।

नरम दण्ड, इसमे पूर्वापेक्षया नरम दण्ड दिया जाता है। इसे अदुट्ठुल्लापत्ति, लहुकापत्ति, अथुल्लवज्जा आपत्ति, सावसेसापत्ति, देसनागामिनी आपत्ति आदि नामो से जानते-पहचानते है।

यहाँ यह एक विशेष रूप से बात स्मरण मे रखनी होगी कि जैन परम्परा मे हर स्थान पर भिक्षु और भिक्षुणी निग्गन्थ या निग्गन्थिनी के लिए विभिन्न प्रायश्चित्तो का विधान है और इसी प्रकार बौद्ध परम्परा मे भी दोनो के लिए अलग-अलग विधान है। बौद्ध सघ मे भिक्खुपाति मोक्ख और भिक्खुनीपाति मोक्ख ये दो विभाग है। भिक्खुपाति मोक्ख के नियमो की सख्या अधिक है। वर्तमान मे हमारे सामने भिक्खुपाति मोक्ख के सम्बन्ध मे ग्रन्थ उपलब्ध न होने से भिक्खुनीपाति मोक्ख के आधार से ही यहा चर्चा कर रहे है।

---

१ पातिमोक्ख ति आदिमेत मुखमेत पामुखमेत कुसलान धम्मान तेन वुच्चति पातिमोक्ख ति।
—गोपक मोग्गलानसुत्त मज्झिमनिकाय ३।१।८

भिक्षु-भिक्षुणियो को जिस अपराध के कारण दण्ड दिया जाता है वह आपत्ति के नाम से विश्रुत है। भिक्षुणीपातिमोक्ष के अनुसार पाँच प्रकार की आपत्तियाँ हैं—(१) पाराजिक, (२) सघादिदेस, (३) निस्सग्गिय पाचित्तिय, (४) पाचित्तिय, (५) पाटिदेसनीय। इनके अतिरिक्त तीन आपत्तियो का वर्णन और मिलता है। (१) थुल्लच्चय, (२) दुक्कट, (३) दुब्भासित।

पाराजिक यह सबसे कठोर अपराध है। प्रस्तुत अपराध करने वाले को सघ स बहिष्कृत कर दिया जाता था। सघ मे प्रवेश करने का उसे पुन अधिकार नही था।[1] जो सद्धर्म के मार्ग मे च्युत हो गया है उस अपराधी की तुलना उस वृक्ष के मुर्झाये हुये पत्ते से की गई है जिसका सम्बन्ध वृक्ष से कट गया हो।[2] पाराजिक का अपराधी धर्म ज्ञान से च्युत माना जाता था।[3] पाराजिक आठ प्रकार के है—(१) मैथुन सेवन करना (२) चोरी करना (३) मानव की हत्या करना, शस्त्र की अन्वेषणा करना, मृत्यु की प्रशसा करना (४) दिव्य शक्ति प्राप्त न होने पर भी दिव्य शक्ति मुझे प्राप्त है इस प्रकार दावा करना (५) कामासक्त होकर भिक्षुणी का कामुक पुरुष के जानू भाग के ऊपर और कटिभाग से निचले भाग का स्पर्श करना (६) पाराजिक दोष वाले को जानते हुए भी न स्वय उसे रोकना और न गण को सूचित करना (७) जो समग्र सघ के द्वारा निष्कासित धर्म विनय और बुद्ध के उपदेश पर जो श्रद्धा रहित है उसका अनुगमन करना, तीन बार मना करने पर भी नही मानना (८) कामासक्त होकर भिक्षुणी का कामुक पुरुष का हाथ पकडना और उसके सकेत के अनुसार स्थान पर जाना। इसी प्रकार भिक्षुणी या महिला का हाथ पकडना और उसके सकेतानुसार कार्य करना।

इन आठ पाराजिक मे गम्भीरतम अपराध मैथुन का है। बिना रागभाव के मैथुन नही हो सकता। इसलिए सतत सघ सावधान रहता था।

पाराजिक अपराध के सदृश सघादिदेस अपराध भी है। इसमे भी मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए ही विशेष सावधानी हेतु निर्देश दिया गया है। साथ ही सघभेद न करना, दुर्वचन न बोलना, सघ की निन्दा न करना, एक दूसरे का उपहास नही करना, एक दूसरे के अपराध को जो गोपनीय हैं उन्हे प्रकट न करना। सघादिदेस के अपराधी को मानत नामक दण्ड दिया जाता था। सघादिदेस अपराध करने पर भिक्षु को शीघ्र ही सघ को सूचित करता होता था। जो शीघ्र सूचित करता था उसे छह रात का मानत दण्ड दिया जाता था। और जो अपराध को छिपाता था उसके लिए परिवास का दण्ड अर्थात् निष्कासित का विधान था। जितने दिन छिपाता उतने दिन उसे परिवास का दण्ड दिया जाता था।[4] परिवास के पश्चात् उसे पुन छह रात का मानत प्रायश्चित्त करना पडता था। इस प्रकार के अपराधी भिक्षु को सघ से बाहर रहने का विधान था और प्रायश्चित्त काल तक उसे अन्य अधिकारो से वञ्चित कर दिया जाता था।

जो भिक्षु परिवास दण्ड का प्रायश्चित्त कर रहा हो उसके लिए कुछ विशेष नियम थे। वह उपसम्पदा और निस्सय प्रदान नही कर सकता था। भिक्षुणियो को उपदेश भी नही दे सकता था। वह भिक्षुओ के साथ भी

---

१ समन्तपासादिका भाग तृतीय पृ १४५

२ पाचित्तिय पालि पृ २८७, २९१

३ "पाराजिकेति पार नामोच्यते धर्मज्ञानम्। ततोजीना ओजीना सजीना परिहीणा तेनाह पाराजिकेति।"
—भिक्षुणी विनय, १२३

४. चुल्लवग्ग पाट्टि पृ ४००

नही रह सकता था । उपोसथ और प्रवारणा को रोक नही सकता था और न वह किसी पर दोष लगा सकता था और न किसी को दण्ड भी दे सकता था ।[१] भिक्षुणी के लिए परिवास दण्ड का विधान नही था । ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी के अशोक के अभिलेखो मे सघभेद करने पर भिक्षु और भिक्षुणी दोनो को आनावासस्थान मे प्रेषित कर देने का वर्णन है ।[२] बुद्धघोष[3] के मन्तव्यानुसार चेतियघर (श्मशान-स्थल), बोधिघर (बोधिगृह), सम्मज्जनी-अट्टक (स्नानगृह) दारू-अट्टक (लकडी बनाने का स्थान), पानीयमाल (छज्जा), वच्चकुटी (शौचालय) तथा द्वार-कोट्टक (द्वारकोष्ठक) ये अनावासस्थान था ।[४]

डॉ. अरुणप्रतापसिह की यह कल्पना है कि बौद्धसघ मे पहले भिक्षुणियो के लिए भी परिवास दण्ड का विधान था । यह सम्राट् अशोक के अभिलेखो से स्पष्ट होता है । पर बाद मे सघ ने देखा होगा अनावास स्थान मे रहने से भिक्षुणियो की शीलरक्षा की समस्या उपस्थित होगी । इसलिए उस विधान मे परिवर्तन किया गया हो ।

थेरवादीनिकाय मे भिक्षुणियो के लिए १६६ पाचित्तिय (प्रायश्चित्त) नियम बताये गये है, तो महासाधिकनिकाय मे पाचित्तिय धर्म की सख्या १४१ है । वहाँ पर उसे शुद्ध पाचत्तिक धर्म कहा गया है । दोनो मे ही पाचित्तय नियम प्राय समान है । इन नियमो मे कुछ नियम दुष्कृत्य से सम्बन्धित हैं । अन्तर्मानस मे बुरी भावना आने पर या बुरे कार्य करने पर प्रायश्चित्त दिया जाता था । कुछ नियम बुद्ध धर्म और सघ या अन्य किसी भी व्यक्ति को कटुवचन कहने पर प्रायश्चित्त देने के थे । कुछ नियम मैथुन सम्बन्धी अपराध के लिए प्रायश्चित्त देने के थे । हस्तकर्म करना, गुप्तेन्द्रिय को तेल घृत आदि लगाकर सचालिन करना, कृत्रिम मैथुन आदि से सम्बन्धित अपराध करने पर प्रायश्चित्त दिये जाते थे । कुछ नियम हिंसा सम्बन्धी अपराधो के प्रायश्चित्त देन के थ । कुछ नियम किसी को मारना, पीटना तथा ताडना, तर्जना, आत्मघात करना और शस्त्र आदि से सम्बन्धित थे । कुछ नियम चोरी सम्बन्धी अपराध के लिये प्रायश्चित्त देने के थे । कुछ नियम सघ सबधित अपराधों के प्रायश्चित्त देने के थे । सघ से निष्कासित व्यक्ति के साथ सम्बन्ध करना । सघीय आचारसहिता का पालन न करता । कितने ही नियम आहार सम्बन्धी अपराध से सम्बन्धित है । रात्रिभोजन करना । स्वस्थ भिक्षुणी का घृत, तेल, मधु, मास, मछली, मक्खन लहसुन का सेवन करना । कच्चे अनाज को भूनकर खाना । गृहस्थ या परिव्राजक को अपने हाथ से खिलाना । विकाल मे भोजन करना, स्वादिष्ट भोजन के लिए गृहस्थो के यहाँ भटकना । कुछ नियम वस्त्रो से सम्बन्धित है । वस्त्रो को नाप से अधिक बडा या छोटा रखना । सूत कातना आदि का निषेध है और कुछ नियम स्वाध्याय से सम्बन्धित है ।

मन्त्र आदि विद्याओ को सीखने का निषेध किया गया है । उसे धर्म के सार को ही ग्रहण करना है अन्य निरर्थक बातें नही ।

साराश यह है कि चाहे जैन परम्परा रही हो, चाहे बौद्ध परम्परा रही हो, चाहे वैदिक परम्परा रही हो, सभी ने मैथुन, चोरी और हिंसा को गम्भीरतम अपराध माना है। जैन और बौद्ध दोनो परम्पराओ ने सघ को अत्यधिक महत्त्व

---

१ चुल्लवग्ग पाट्टि पृ ६७-८१

२ ए चु खो भिखु वा भिखुनि वा सघ भाखति से ओदातानि दुसानि
सन धापयिया अनावाससि आवासमिये ।

3 Corpus Inscriptionum Indicarum Vol I P 161

४ समन्तपासादिका भाग तृतीय पृ १२४४

दिया। सघ और सघनायक की अवहेलना करना भी महान् अपराध है। एक जैनाचार्य ने तो यहाँ तक लिखा है कि जब तीर्थंकर समवसरण मे विराजते हैं तब 'नमो सघस्स' कहकर सघ की अभिवन्दना करते हैं। जैन और बौद्ध दोनो ही परम्पराओ ने बहुत ही सतर्कता रखी है कि कोई भी अयोग्य पात्र दीक्षा ग्रहण न करे। क्योकि अयोग्य पात्र के सघ मे प्रवेश हो जाने से दुराचार बढ सकता है। जैन और बौद्ध श्रमण और श्रमणियो की आचारसहिता मे अनेक स्थानो पर समानता है और प्रायश्चित्त-व्यवस्था मे भी अनेक स्थानो पर समानता है। प्रायश्चित्त की जो सूचियाँ दोनो परम्पराओ मे है उसमे भी काफी समानता है। यह सत्य है कि बौद्ध परम्परा मध्यममार्गीय रही इसलिए उसकी आचारसहिता भी मध्यम मार्ग पर ही आधारित है। जैन परम्परा उग्र और कठोर साधना पर बल देती रही है। इसलिए उसकी आचारसहिता भी कठोरता को लिये हुए है।

विशेषता यह है कि जैनशासन मे परिस्थिति के अनुसार अपराध को देखकर प्रायश्चित्त दिया जाता है। यदि कोई साधक स्वेच्छा से अपराध करता है, बार-बार अपराध करता है, अपराध करके भी गुरुजनो के समक्ष उस अपराध को स्वीकार नही करता या माया का सेवन करता है तो उसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था थी और वही अपराध अनजान मे या परिस्थिति विशेष के कारण हो गया है। गुरुजनो के समक्ष निष्कपट भाव से यदि वह आलोचना करता है। अपराध को स्वीकार करता है तो उसको प्रायश्चित्त कम दिया जाता है। पर बौद्धशासन मे इस प्रकार प्रायश्चित्त की व्यवस्था नही थी। जैनशासन मे जो दस प्रायश्चित्त है उनमे से आलोचना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग आदि ऐसे प्रायश्चित्त हैं जो साधक को प्रात काल और सन्ध्याकाल करने होते हैं। गुरु के समक्ष उन पापो को निवेदन करने होते है। पर बौद्धशासन मे इस प्रकार प्रतिदिन आलोचना, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग करने का और प्रायश्चित्त से मुक्त होने का आवश्यक नियम नही था। वहाँ तो पन्द्रहवें दिन उपोसथ के समय पातिमोक्ख नियमो का वाचन होता था अत. बौद्धसघ मे अपराध की सूचना पन्द्रह दिन के पश्चात् मिलती थी और वर्ष मे एक बार प्रवारणा के समय देखा हुआ, सुना हुआ और शका किये हुए अपराध की अन्वेषणा होती थी।

इस प्रकार हम देखते है कि अपराध करना मानव का स्वभाव है। जरा-सी असावधानी से स्खलनाएँ हो जाती है पर उन स्खलनाओ की विशुद्धि हेतु जैन और बौद्ध परम्परा मे जो प्रायश्चित्तविधान हैं उनमे सहजता है, सुगमता है। पर वैदिक परम्परा के प्रायश्चित्तविधानो मे दण्डव्यवस्था भी सम्मिलित हो गई। जिसके फलस्वरूप अगछेदन आदि का भी विधान हुआ। जबकि जैन और बौद्ध परम्परा मे इस प्रकार के विधान नही है।

अपराध व प्रायश्चित्त विधान : वैदिक दृष्टि से

भारतीय सस्कृति की एक धारा वैदिक परम्परा है। एक ही धरती पर श्रमणसस्कृति और वैदिकसस्कृति धाराएँ प्रवाहित हुई हैं। वैदिकसस्कृति के महामनीषियो ने भी पापपक से मुक्त होने के लिए विविध विधान किये है। ऋग्वेद के महर्षियो के अन्तर्मानस मे भी पापरहित होने की प्रबल भावना पाई जाती है। पापो की सख्या, उनके विविध प्रकारो के सम्बन्ध मे विभिन्न दृष्टियो से चिन्तन किया गया है। ऋग्वेद मे कहा गया कि बुद्धिमान या विज्ञो के लिए सात मर्यादाएँ बताई गई हैं। उनमे से किसी एक का भी जो अतिक्रमण करता है वह पापी है।[1] तैत्तिरीयसहिता[2] शतपथब्राह्मण और अन्य ब्राह्मण ग्रन्थो मे ब्राह्मणहत्या को सबसे बडा पाप माना है।[3] काठक[4]

---

१ ऋग्वेद १०/५/६

२ तैत्तिरीयसहिता (२/५/१/२, ५/३/१२/१-२)

३ शतपथब्राह्मण (१३/३/१/१)

४ काठक (१३/७)

मे भ्रूणहत्या को ब्रह्महत्या से भी विशेष पाप माना है। बृहदारण्यकोपनिषद् मे[1] चोर और भ्रूण-हत्यारे को महापापी मे गिना है। वसिष्ठसूत्र ने पापियो को तीन कोटि मे बाटा है—१ एनस्वी, २ महापातकी, ३ उपपातकी। एनस्वी साधारण पापी को कहते हैं। उसके लिए विशिष्ट प्रायश्चित्त की व्यवस्था की गई है। वसिष्ठ के मतानुसार महापातक पाँच हैं (१) गुरु की शय्या को अपवित्र करना (२) सुरापान (३) भ्रूण की हत्या (४) ब्राह्मण के हिरण्य की चोरी (५) पतित का ससर्ग। उपपातकी वह है जो अग्निहोत्र का त्याग कर देता है। अपने अपराध से गुरु को कुपित करता है। नास्तिको के यहाँ जीविका का अर्जन करता है। यह सत्य है इन पापो की कोटियो के सम्बन्ध मे भी विभिन्न मत रहे है, विस्तारभय से हम उन सबकी चर्चा और मतो का उल्लेख यहाँ नही कर रहे है। ब्रह्महत्या, सुरापन, चोरी, गुरु की पत्नी के साथ सम्भोग आदि के वर्णन अग्निपुराण, प्रायश्चित्तविवेक, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनुस्मृति आदि मे विस्तार से है।[2] नारद का कथन है कि यदि व्यक्ति माता, मौसी, सास, मामी, फूफी, चाची, मित्रपत्नी, शिष्यपत्नी, बहिन, बहिन की सखी, पुत्रवधू, आचार्यपत्नी, सगोत्रनारी, दाई, व्रतवती नारी एव ब्राह्मणनारी के साथ सम्भोग करता है वह गुरुतल्प नामक व्यभिचार के पाप का अपराधी हो जाता है। ऐसे दुष्कृत्य के लिए शिश्न-कर्तन के अतिरिक्त कोई और दण्ड नही है।

विभिन्न प्रकार के पाप करने के पश्चात् उस पाप से अपने आपको बचाने के लिए अदिति, मित्र, वरुण आदि की स्तुतियाँ करने का क्रम चालू हुआ। अपने अपराध के परिणामो से भयभीत होकर उन्होने विविध प्रकार के व्रत आदि भी करने प्रारम्भ किये। ऋग्वेद[3] के अनुसार सर्वप्रथम पाप के फल को दूर करने हेतु दया के लिए प्रार्थना पाप से बचने के लिए स्तुतियाँ तथा गम्भीर पापो के फल से छुटकारा पाने हेतु यज्ञ का विधान किया। तैत्तिरीयसहिता[4] शतपथब्राह्मण[5] का मन्तव्य है कि अश्वमेध करने से देवतागण राजा को पाप मुक्त कर देते थे। पाप से मुक्त होने का एक अन्य साधन था पाप की स्वीकारोक्ति।

गौतम धर्मसूत्र,[6] वसिष्ठस्मृति[7] का कथन है—जप-तप-होम-उपवास एव दान ये दुष्कृत्य के प्राय-श्चित्त हैं। आचार्य मनु[8] ने लिखा है कि अपराध को स्वीकार कर पश्चात्ताप तप, गायत्री मन्त्रो के जाप से पापी अपराध से मुक्त हो जाता है। यदि वह यह कार्य न कर सके तो दान से मुक्त हो जाता है। यही बात पाराशर[9] शातातपस्मृति[10] भविष्यपुराण[11] मे बताई गई है। शतपथब्राह्मण[12] मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो

---

१ बृहदारण्यकोपनिषद् ४/३/२२
२ नारदस्मृति श्लोक ७३-७५
३ ऋग्वेद ७/८६/४-५, ८/८८/६-७, ७/८९/१-४
४ तैत्तिरीयसहिता ५/३/१२/१-२
५ शतपथब्राह्मण १३/३/१/१
६ गौतमधर्मसूत्र १९/११
७ वसिष्ठस्मृति २२/८
८ मनुस्मृति ३/२२७
९ पराशर माधवीय १०/४०
१०. शातातपस्मृति १/४
११ भविष्यपुराण प्राय० विवेक पृ० ३१
१२ शतपथब्राह्मण २/५/२/२०

व्यक्ति पाप को स्वीकार कर लेता है उसका पाप कम हो जाता है। पापमोचन के लिए आत्मापराध को स्वीकार करना सर्वप्रथम आवश्यक था। इसे ही जैनपरम्परा मे आलोचना कहा है। गौतमधर्मसूत्र और मनुस्मृति मे लिखा है कि ब्रह्मचर्याश्रम मे विद्यार्थी के द्वारा सम्भोग का अपराध होने पर सात घरो मे भिक्षा मागते समय अपने दोष की घोषणा करनी चाहिए।

पाप होना उतना बुरा नही जितना पाप को पाप न समझना। मनुस्मृति[1] विष्णुधर्मोत्तर[2] और ब्रह्मपुराण[3] मे स्पष्ट रूप से लिखा है कि व्यक्ति का मन जितना ही अपने दुष्कर्म को घृणित समझता है उतना ही उसका शरीर पाप से मुक्त हो जाता है। यदि व्यक्ति पापकृत्य करने के पश्चात् भी पश्चात्ताप नही करता है तो पाप से मुक्त नही हो सकता। उसे मन मे यह सकल्प करना चाहिए कि मै पुन यह कार्य नही करूगा। प्रायश्चित्त-विवेक ग्रन्थ[4] मे अगिरा की एक युक्ति दी है—पापो को करने के उपरान्त यदि व्यक्ति अनुताप मे डूबा हुआ हो और रातदिन पश्चात्ताप कर रहा हो तो वह प्राणायाम से पवित्र हो जाता है। प्रायश्चित्तप्रकाश[5] का मत है केवल पश्चात्ताप पापो को दूर करने के लिए पर्याप्त नही, अपितु उससे पापी प्रायश्चित्त करने के योग्य हो जाता है।

मनुस्मृति,[6] बोधायनधर्मसूत्र,[7] वसिष्टस्मृति,[8] अभिशखस्मृति[9] आदि मे कहा है यदि प्रतिदिन व्यक्ति ओकार के साथ सोलह प्राणायाम करे तो एक मास के उपरान्त भ्रूणहत्या के पाप से मुक्त हो जाता है। विष्णुधर्मसूत्र[10] मे यह भी लिखा है कि तीन प्राणायामो के सम्यक् सम्पादन से रात या दिन मे किये गये सभी पाप नष्ट हो जाते है। छान्दोग्योपनिषद्[11], मुण्डकोपनिषद्[12] मे तप को यज्ञ से ऊपर माना है। गौतम[13] ने पाप के स्वरूप के अनुसार तप की निम्न अवधियाँ बताई हैं—एक वर्ष, छह मास, तीन मास, दो मास, एक मास, चौबीस दिन, बारह दिन, छह दिन, तीन दिन और एक रात। आचार्य मनु[14] ने घोषणा की

---

१ मनुस्मृति ११/२२९-३०
२ विष्णुधर्मोत्तर २/७३/२३१-३३
३ ब्रह्मपुराण २१८/५
४ प्रायश्चित्तविवेक ग्रन्थ, पृ० ३०
५ प्रायश्चित्तविवेक, पृ० ३०
६ मनुस्मृति ११/२४८
७ बोधायनधर्मसूत्र ४/१/३१
८ वसिष्ठस्मृति २६/४
९ अभिशखस्मृति२/५, १२/१८-१९
१० विष्णुधर्मसूत्र ५५/२
११ छान्दोग्योपनिषद् ५/१०/१-२
१२ मुण्डकोपनिषद् १०/१५४/२
१३ गौतमधर्मसूत्र १७/१७
१४ मनुस्मृति ११/२३९-२४१

कि जो महापातकी एव अन्य दुष्कर्मों के अपराधी होते हैं वे सम्यक् तप से पापमुक्त हो जाते है। जैन साधना[१] पद्धति मे भी पाप से मुक्त होने के लिए विविध प्रकार के तपो का उल्लेख किया गया है।

वैदिक ऋषियों ने पाप से मुक्त होने के लिए होम, जप की साधना, दान, उपवास, तीर्थयात्रा आदि अनेक प्रकार बताये है।

वैदिक साहित्य मे प्रायश्चित्ति और प्रायश्चित्त ये दो शब्द व्यवहृत हुए हैं। तैत्तिरीयसहिता[२] मे प्रायश्चित्ति शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। यह शब्द वहाँ पर पाप के प्रायश्चित्त के अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद[३] वाजसनेयीसहिता,[४] ऐत्तिरीयब्राह्मण,[५] शतपथब्राह्मण[६] कौषीतकिब्राह्मण[७] मे प्रायश्चित्त शब्द का प्रयोग हुआ है। आपस्तबश्रौतसूत्र[८] शाखायनश्रौतसूत्र[९] मे प्रायश्चित्ति और प्रायश्चित्त ये दोनो शब्द दिये है। प्रायश्चित्तविवेक[१०] ग्रन्थ मे प्रायश्चित्त की व्युत्पत्ति प्राय—तप और चित्त—सकल्प अर्थात् प्रायश्चित्त का सम्बन्ध पापमोचन हेतु तप का सकल्प करना। बाग्भट्टो याज्ञवल्क्यस्मृति[११] मे प्राय का अर्थ पाप और चित्त का अर्थ शुद्धिकरण है। हेमाद्रि[१२] ने एक अज्ञात भाष्यकार की व्याख्या को उद्धृत कर लिखा है प्राय का अर्थ विनाश है और चित का अर्थ सधान है। अर्थात् प्रायश्चित्त का अर्थ हुआ जो नष्ट हो गया है उसकी पूर्ति करना। अत पापक्षय के लिए नैमित्तिक कार्य है।

बृहस्पति[१३] आदि विज्ञो ने पाप के दो प्रकार किये है। एक कामकृत है अर्थात् जो जान-बूझकर किया जाता है। दूसरा अकामकृत है जो बिना जाने-बूझे हो जाय। अकामकृत पापो प्रायश्चित्त के द्वारा नष्ट किया जा सकता है। पर कामकृत पाप को प्रायश्चित्त के द्वारा नष्ट किया जा सकता है या नही ? इस सम्बन्ध मे विज्ञो मे अत्यधिक मतभेद रहा है। मनुस्मृति[१४] मे और याज्ञवल्क्यस्मृति[१५] मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रायश्चित्त या विद्याध्ययन से अनजान मे किये गये पापो का विनाश होता है। याज्ञवल्क्यस्मृति[१६] मे लिखा है कि जान-

१ उत्तराध्ययन ३७/२७
२ तैत्तिरीयसहिता २/१/२/४, २/१/२/६, ३/१/३/२-३, ५/१/९/३, एव ५/३/१२/१
३ अथर्ववेद १४/१/३०
४ वाजसनेयीसहिता ३९/१२
५ ऐत्तिरीयब्राह्मण ५/२७
६ शतपथब्राह्मण ४/५/७/१, ७/१/४/९, ९/५/३/८ एव १२/५/१/६
७ कौषीतकिब्राह्मण ५/९/६/१२
८ आपस्तबश्रौतसूत्र ३/१०/३८
९ शाखायनश्रौतसूत्र ३/१९/१
१० प्रायश्चित्तविवेक पृ० २
११ याज्ञवल्क्यस्मृति ३/२०६
१२ हेमाद्रि प्रायश्चित्तविवेक पृ० ९९९
१३ धर्मशास्त्र का इतिहास भाग ३ पृ० १०४५
१४ मनुस्मृति ११/४५
१५ याज्ञवल्क्यस्मृति ३/२२६
१६ याज्ञवल्क्यस्मृति ३/२२६

बूझकर किये गये पापो को प्रायश्चित्त नष्ट नही करना अपितु पापी प्रायश्चित्त कर लेता है तो अन्य व्यक्तियो के सम्पर्क मे आ जाने के योग्य हो जाता है। मनु[1] ने भी लिखा है—जब तक प्रायश्चित्त नही कर लेता तब तक उसे विज्ञजनो के सम्पर्क मे नही आना चाहिए। स्मृतियो मे यत्र-तत्र पापमोचन के लिए प्रायश्चित्तो की व्यवस्था दी है। गौतमधर्मसूत्र,[2] वसिष्ठस्मृति,[3] मनुस्मृति,[4] याज्ञवल्क्यस्मृति[5] मे उन महामनीषियो ने माता, बहिन, पुत्रवधू आदि के साथ व्यभिचार सेवन करने वाले को अण्डकोष एव लिंग काट दिये जाने पर दक्षिण-दिशा मे या दक्षिण-पश्चिम दिशा मे तब तक चलते रहना है जब तक उसका शरीर भूमि पर लुढक न पडे। आचार्य मनु[6] ने लिखा है कि चोर को कोई मूसल या गदा या दुधारी-शक्ति जो एक प्रकार की बरछी होती थी अथवा लोहदण्ड लेकर राजा के पास जाना चाहिए और अपने अपराध की घोषणा करे। राजा के एक बार मारने से वह मृत हो जाय या अर्धमृत होकर जीवित रहे तो वह चोरी के अपराध से मुक्त हो जाता है।

वैदिक परम्परा मे प्रायश्चित्त सम्बन्धी साहित्य अत्यधिक विशाल रहा है। इसका कारण यह था कि प्राचीन युग मे प्रायश्चित्तो का जन-साधारण मे बडा महत्त्व था। देखिए, गौतमधर्मसूत्र के २८ अध्यायो मे से १० अध्याय मे प्रायश्चित्त का वर्णन है। वसिष्ठधर्मसूत्र मे जो ३० अध्याय मुद्रित हुए हैं, उनमे से ९ अध्याय प्रायश्चित्त सम्बन्धी वर्णन से भरे पडे है। मनुस्मृति मे कुल २२२ श्लोक प्रायश्चित्त के सम्बन्ध मे है। याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय ३ मे १००९ श्लोक है। उसमे १२२ श्लोक प्रायश्चित्त पर आधारित है। शातातपस्मृति के २७४ श्लोकों मे केवल प्रायश्चित्त का ही वर्णन है। उतने ही पुराणो मे भी प्रायश्चित का उल्लेख हुआ है। जैसे—अग्निपुराण (अध्याय १६८-१७४) गरुडपुराण ५२, कूर्मपुराण (उत्तरार्ध ३०-३४), वराहपुराण (१३१-१३६), ब्रह्माण्डपुराण (उपसहारपाद अध्याय ९), विष्णुधर्मोत्तरामृत (२, ७३, ३/२३४-२३७) मे प्रायश्चित्तो का वणन है। मिताक्षर, अपरार्क पाराशरमाधवीय प्रभृति टीकाओ मे भी विस्तार से प्रायश्चित्त के ऊपर चिन्तन किया गया है। इनके अतिरिक्त प्रायश्चित्तप्रकरण, प्रायश्चित्तविवेक, प्रायश्चित्ततत्त्व, स्मृतिमुक्ताफल (प्रायश्चित्त वाला प्रकरण), प्रायश्चित्तसार, प्रायश्चित्तमयूख, प्रायश्चित्तप्रकाश, प्रायश्चित्तेन्दुशेखर मे प्रायश्चित्त के सम्बन्ध मे विस्तार से वर्णन है।

यह भी स्मरण रखना होगा कि सभी व्यक्तियो के लिए एक समान प्रायश्चित्त नही था। समान अपराध होने पर भी प्रायश्चित्त देने मे अन्तर था। प्रायश्चित्तो की कठोरता और अवधि व्यक्ति के द्वारा प्रथम बार अपराध करने पर या अनेक बार अपराध करने पर प्रायश्चित्त प्रदान करने वाली एक परिषद् होती थी। जो अपराधी के अपराध की गुरुता एव स्वभाव को देखकर उसके अनुसार प्रायश्चित्त की व्यवस्था करते। प्रायश्चित्त के मुख्य चार स्तर थे। (१) परिषद् के पास जाना या (२) परिषद् द्वारा उचित प्रायश्चित्त उद्घोष, (३) प्रायश्चित्त का सम्पादन, (४) पापी के पाप की मुक्ति का प्रकाशन।

१ ममुस्मृति ११/४७
२ गौतमधर्मसूत्र २३/१०-११
३ वसिष्ठस्मृति २०/१३
४ मनुस्मृति ९१/१०४
५ याज्ञवल्क्यस्मृति ३/२५९
६ मनुस्मृति ८/३१४-३१५

वैदिक ग्रन्थो मे अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तो के नाम भी आये हैं और उन ग्रन्थो मे प्रायश्चित्तो की विधि भी बताई गई है। हम उनमे से कुछ प्रायश्चितो का सकेत कर रहे हैं। यह प्रायश्चित्त जल मे खडे रहकर दिन मे तीन बार अघमर्षण मन्त्रो का पाठ किया जाता है। इस प्रायश्चित्त का उल्लेख ऋग्वेद,[1] बोधायकधर्मसूत्र,[2] वसिष्ठस्मृति,[3] मनुस्मृति,[4] याज्ञवल्क्यस्मृति,[5] विष्णुपुराण,[6] शखास्मृति[7] आदि मे हुआ है।

दूसरा अतिकच्छ्र प्रायश्चित्त का उल्लेख है। आचार्य मनु[8] के अभिमतानुसार तीन दिन तक केवल प्रात -काल एक कौर भोजन और सन्ध्याकाल भी एक कौर भोजन और बिना मागे पुन तीन दिन तक एक कौर भोजन और अन्त मे तीन दिन तक उपवास करने का उल्लेख है।

अतिसान्तपन[9] इस प्रायश्चित्त की अवधि अठारह दिनो की है। इसमे छह दिनो तक गोमूत्र और अन्य पाच वस्तुओ का भोजन करते हैं।

अर्धकृच्छ्र[10] यह छह दिनो का प्रायश्चित्त है। जिसमे एक दिन मे केवल एक बार भोजन, एक दिन सन्ध्या-काल और दो दिन तक बिना मागे भोजन और फिर पूर्ण उपवास।

गोमूत्रकृच्छ्र[11] एक गाय को जौ और गेहू खिलाया जाता है, फिर गाय के गोबर मे से जितने दाने निकलें, गोमूत्र मे उसके आटे की लापसी और माडें बनाकर पीना चाहिए।

चान्द्रायण[12] चन्द्र के बढ़ने और घटने के अनुरूप जिसमे भोजन किया जाय उसे चान्द्रायण-व्रत कहते है। चान्द्रायण-व्रत के यवमध्य जौ के समान बीच मे मोटा और दोनो छोरो से पतला, पीपिलिकामध्य चीटी के सदृश बीच मे पतला और दोनो छोर मे मोटा ये दो प्रकार बोधायनधर्मसूत्र मे दिए है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और वसिष्ठस्मृति मे चान्द्रायण यवमध्य की परिभाषा इस प्रकार की है—शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन एक ग्रास,

---

१ ऋग्वेद १०/१९०/१-३
२ बोधायनधर्मसूत्र ४/२/१९/२०
३ वसिष्ठस्मृति २६/८
४ मनुस्मृति ११/२५९-२६०
५ याज्ञवल्क्यस्मृत्ति ३/३०१
६ विष्णुपुराण ५५/७
७ शखस्मृति १८/१-२
८ मनुस्मृति ११/२१३
९ विष्णुपुराण ४६/२१
१० आपस्तबस्मृति ९/४३-४४
११ प्रायश्चित्तसार पृ १८७
१२ (क) मिताच्छरा याज्ञवल्क्यस्मृति टीका ३/३२३
(ख) बोधायनधर्मसूत्र ३/८/३३
(ग) वसिष्ठस्मृति २७/१
(घ) मनुस्मृति ११/२७

दूसरे दिन दो, इस प्रकार क्रमश पूर्णिमा को पन्द्रह ग्रास का भोजन लिया जाता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष मे प्रथम दिन चौदह ग्रास, एक-एक ग्रास कम करते हुए चतुर्दशी को एक ग्रास खाया जाता है और अमावस्या को उपवास किया जाता है। यदि कोई कृष्णपक्ष की प्रथम तिथि से व्रत प्रारम्भ करता है तो प्रथम दिन चौदह ग्रास खाता है और क्रमश ग्रासो को कम करता जाता है। चतुर्दशी को एक ग्रास खाता है और अमावस्या को एक ग्रास भी नही खाता, फिर शुक्लपक्ष के प्रथम दिन एक ग्रास लेता है और बढता-बढता पूर्णमासी को पन्द्रह ग्रास खाता है। इस स्थिति मे मास पूर्णिमान्त होता है। इस क्रम मे व्रत के मध्य मे एक भी ग्रास नही होता। अधिक ग्रासो की सख्या प्रारम्भ और अन्त मे होती है। इससे यह प्रायश्चित्त पीपिलिकामध्य चन्द्रायन कहा जाता है। चन्द्रायन-व्रत के सम्बन्ध मे विविध प्रकारो का उल्लेख है।

इस प्रकार विविध प्रायश्चित्त उतारने हेतु विविध प्रकार के तपो का उल्लेख ग्रन्थो मे प्रतिपादित है। हम उन सबका यहाँ उल्लेख न कर डॉ पाण्डुरग वामन काणे के द्वारा लिखित धर्मशास्त्र का इतिहास भाग ३ को पढने का कष्ट करे, यह सकेत कर रहे हैं। जहा इस पर विस्तार मे विवेचन और चर्चा है।

व्याख्या साहित्य

निशीथनिर्युक्ति

छेदसूत्रो मे निशीथ का बहुत ही गौरवपूर्ण स्थान रहा है। उसमे रहे हुए रहस्यो को व्यक्त करने हेतु समय-समय पर इस पर व्याख्या साहित्य का निर्माण हुआ है। सर्वप्रथम इस पर प्राकृत भाषा मे पद्यबद्ध टीका लिखी गई। वह टीका निशीथनिर्युक्ति के नाम से विश्रुत है। इसमे मूल ग्रन्थ के प्रत्येक पद पर व्याख्या न कर मुख्य रूप से पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या की गई है। यह व्याख्याशैली निक्षेपपद्धतिपरक है। निक्षेपपद्धति मे किसी एक पद के सम्भावित अनेक अर्थ करने के पश्चात उनमे से अप्रस्तुत अर्थो का निषेध कर प्रस्तुत अर्थ को ग्रहण किया जाता है। न्यायशास्त्र मे यह पद्धति अत्यन्त प्रिय रही है। भद्रबाहुस्वामी ने निर्युक्ति के लिए यह पद्धति उपयुक्त मानी है। उन्होने आवश्यकनिर्युक्ति मे लिखा है कि एक शब्द के अनेक अर्थ होते है पर कौनसा अर्थ किस प्रसग के लिए उपयुक्त है। श्रमण भगवान् महावीर के उपदेश के समय कौनसा अर्थ किस शब्द से सम्बद्ध रहा है प्रभृति सभी बातो को ध्यान मे रखते हुए सही दृष्टि से अर्थ निर्णय करना। और उस अर्थ का मूल सूत्र के शब्दो के साथ सम्बन्ध स्थापित करना निर्युक्ति का प्रयोजन है।[1] अपर शब्दो मे कहा जाय तो सूत्र और अर्थ का निश्चित सम्बन्ध बताने वाली व्याख्या निर्युक्ति है[2] अथवा निश्चय से अर्थ का प्रतिपादन करने वाली युक्ति निर्युक्ति है।[3] सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् सारपेण्टियर ने निर्युक्ति की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'निर्युक्तियाँ अपने प्रधान भाग के केवल इडेक्स का काम करती है। वे सभी विस्तारयुक्त घटनावलियो का सक्षेप से उल्लेख करती है।[4]

निशीथनिर्युक्ति मे भी सूत्रगत शब्दो की व्याख्या निक्षेपपद्धति से की गई है। प्रस्तुत निर्युक्ति की गाथाएँ

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति, गा ८८

२ सूत्रार्थयो परस्पर निर्योजन सम्बन्धन निर्युक्ति ।
—आवश्यकनिर्युक्ति गा ८३

३ निश्चयेन अर्थप्रतिपादिकयुक्ति निर्युक्ति ।
—आचारागनि १/२/१

४. उत्तराध्ययन की भूमिका, पृ ५०-५१

भाष्य से मिल गई हैं। जहाँ पर चूर्णिकार यह सकेत करते है वही पर यह पता चलता है कि यह निर्युक्ति की गाथा है और यह भाष्य की गाथा है। इस निर्युक्ति मे श्रमणाचार का ही निरूपण हुआ है।

निशीथभाष्य

निर्युक्तियो की व्याख्याशैली अत्यन्त गूढ और सक्षिप्त थी। उसका मुख्य लक्ष्य पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या करना था। निर्युक्तियो के गम्भीर रहस्यो को प्रकट करने हेतु निर्युक्तियो की तरह ही प्राकृत भाषा मे पद्यात्मक व्याख्या लिखी गई जो भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। निर्युक्तियो के शब्दो मे छिपे हुए अर्थबाहुल्य को अभिव्यक्त करने का सर्वप्रथम श्रेय भाष्यकारो को है। निशीथ के भाष्य-रचयिता श्री सघदासगणि है। प्रस्तुत भाष्य की अनेक गाथाएँ बृहत्कल्प और व्यवहारभाष्य मे है। अनेक रसप्रद सरस कथाएँ भी हैं। विविध दृष्टियो से श्रमणाचार का निरूपण हुआ है। जैसे पुलिंद आदि अनार्य अरण्य मे जाते हुए श्रमणो को आर्य समझ कर मार देते थे। सार्थवाह व्यापारार्थ दूर-दूर देशो मे जाते थे। उस युग मे अनेक प्रकार के सिक्के प्रचलित थे। भाष्य मे बृहत्कल्प, नन्दीसूत्र, सिद्धसेन और गोविन्द-वाचक आदि के नामो का उल्लेख हुआ है।

निशीथचूर्णि

भाष्य के पश्चात् जैनाचार्यों ने गद्यात्मक व्याख्या साहित्य लिखने का निश्चय किया। उन्होने शुद्ध प्राकृत मे और सस्कृत मिश्रित प्राकृत मे व्याख्याओ की रचना की। जो व्याख्या चूर्णि के नाम से विश्रुत है। निशीथ पर दो-दो चूर्णिया निर्मित हुई, किन्तु वर्तमान मे उस पर एक ही चूर्णि उपलब्ध है। निशीथचूर्णि के रचयिता जिनदास-गणि महत्तर हैं। इस चूर्णि को विशेष चूर्णि कहते हैं। इस चूर्णि मे मूल सूत्र, निर्युक्ति व भाष्य गाथाओ का विवेचन है। इस चूर्णि की भाषा सस्कृत मिश्रित प्राकृत है।

हमने पूर्व पक्तियो मे निशीथ के बीस उद्देशको का सक्षिप्त सार प्रस्तुत किया है। वह सार निशीथ मूल आगम के अनुसार दिया गया है। निशीथचूर्णि मे निशीथ के मूल भावो को स्पष्ट करने के लिए कुछ नये तथ्य चूर्णिकार ने अपनी ओर से दिये है। अत हम प्रबुद्ध पाठको को निशीथचूर्णि मे जो वर्णन आया है उसका सार यहाँ दे रहे है, इसलिए यह पुनरावृत्ति नही है। पाठक स्वय अनुभव करेंगे कि चूर्णिकार ने किस प्रकार विषय को स्पष्ट किया है।

चूर्णिकार ने सर्वप्रथम अरिहन्त, सिद्ध और साधुओ को नमस्कार किया है और अथप्रदाता प्रद्युम्न महाश्रमण को भी नमस्कार किया है। आचार्य, अग्र, प्रकल्प, चूलिका और निशीथ इन सबका निक्षेपपद्धति से चिन्तन किया गया है। निशीथ का अथ है अप्रकाश-|-अन्धकार। अप्रकाशित वचनो क सही निर्णय हेतु निशीथसूत्र है। लोक-व्यवहार मे निशीथ का प्रयोग रात्रि के अन्धकार के लिये होता है। निशीथ के अन्य अर्थ भी दिये गये है। जिससे आठ प्रकार के कर्मपक नष्ट किये जायँ वह निशीथ है।

प्रथम पुरुष प्रतिसेवक का वर्णन है। उसके पश्चात् प्रतिसेवना और प्रतिसेवितव्य का स्वरूप बताते हुए अप्रमाद-प्रतिसेवना, सहसात्करण, प्रमादप्रतिसेवना, क्रोध आदि कषाय, ज्ञान-दर्शन-चारित्र की विराधना, विकथा, इन्द्रिय, निद्रा आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयो का विवेचन किया गया है। आलस्य, मैथुन, निद्रा, क्षुधा और आक्रोश इन पाँचो का जितना सेवन किया जाय, उतना ही वे द्रौपदी के दुकूल की तरह बढते रहते हैं।

स्त्यानर्द्धिनिद्रा वह है जिसमे तीव्र दर्शनावरणकर्म का उदय होता है, जिस निद्रा मे चित्त स्त्यान कठिन या जम जाय वह स्त्यानर्द्धि है। उसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए चूर्णिकार ने पुद्गल, मोदक, कुम्भकार और हस्तीदन्त के उदाहरण दिये हैं।

षट्जीवनिकाय की यतना, उसमे लगने वाले दोष, अपवाद और प्रायश्चित्त का पीठिका मे विवेचन किया गया है। अशन, पान, वसन, वसति, हलन-चलन-शयन, भ्रमण, भाषण, गमन, आगमन आदि पर विचार किया गया है।

प्राणातिपात का विवेचन करते हुए मृषावाद को लौकिक और लोकोत्तर इन दो भागो मे विभक्त किया गया है। लौकिक मृषावाद मे शशक, एलाषाढ मूलदेव, खिण्डपाणा इन चार धूर्तो के आख्यान हैं। इस धूर्ताख्यान का मूल आधार आचार्य हरिभद्रकृत धूर्ताख्यान की प्राचीन कथा है। इसके बाद लोकोत्तर मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह और रात्रिभोजन का वर्णन है, जो दर्पिका सम्बन्धी और कल्पिका सम्बन्धी दो भागो मे विभक्त है। दर्पिका मे उन विषयो मे लगने वाले दोषो का वर्णन है और उन दोषो के सेवन का निषेध किया गया है। कल्पिका मे उनके अपवादो का वर्णन है। मूलगुणप्रतिसेवना के पश्चात् उत्तरगुणप्रतिसेवना का वर्णन है। उसमे पिण्डविशुद्धि आदि का वर्णन है। पीठिका के उपसहार मे इस बात पर प्रकाश डाला है कि निशीथपीठिका का सूत्रार्थ बहुश्रुत को ही देना चाहिए, अयोग्य पुरुष को नही।

प्रथम उद्देशक मे चतुर्थ महाव्रत पर विस्तार से विश्लेषण है। इसमे पाच प्रकार की चिलिमिलिकाओ को ग्रहण करना, उसका प्रमाण और उपयोग पर प्रकाश डाला है। लाठी और उसकी उपयोगिता पर भी विचार किया गया है। वस्त्र फाडने, सीने आदि के नियमोपनियम भी बताये है।

द्वितीय उद्देशक मे पादप्रोछन के ग्रहण, सुगन्धित पदार्थों के सूघने, कठोर भाषा का उपयोग करने तथा स्नान आदि करने का निषेध है और दाता की पूर्व व पश्चात् स्तुति का भी निषेध किया गया है। द्रव्यसस्तव ६४ प्रकार का है। उसमे जव, गोधूम, शालि आदि २४ प्रकार के धान्य, सुवर्ण, तब, रजत, लोह, शीशक, हिरण्य, पाषाण, वेर, मणि, मौक्तिक, प्रवाल, शख, तिनिश, अगरु, चन्दन, अभिलात वस्त्र, काष्ठ, दन्त, चर्म, बाल, गन्ध, द्रव्य औषध ये २४ प्रकार के रत्न, भूमि, घर, तरु ये तीन प्रकार के स्थावर, शकट आदि और मनुष्य ये दो प्रकार के द्विपद, गौ, उष्ट्री, महिषी, अज, मेष, अश्व, अश्वतर, घोटक, गर्दभ, हस्ती ये दस प्रकार के चतुष्पद और ६४वा कुप्य उपकरण है।

शय्यातर का पिण्ड अग्राह्य है। उसे ग्रहण करने पर मासलघु का प्रायश्चित्त आता है। (१) सागारिक कौन होता है, (२) वह शय्यातर कब बनता है, (३) उसके पिण्ड के प्रकार, (४) अशय्यातर कब बनता है, (५) सागारिक किस सयत द्वारा परिहर्तव्य है, (६) सागारिक-पिण्ड के ग्रहण से दोष, (७) किस परिस्थिति मे सागारिक-पिण्ड ग्रहण किया जा सकता है, (८) यतना से ग्रहण करना, (९) एक या अनेक सागारिको से ग्रहण करना आदि विषयो पर चिन्तन किया गया है। सागारिक के सागारिक, शय्यातर, दाता, घर तर ये पाच प्रकार है। शय्या और सस्तारक का अन्तर बताते हुए कहा है कि शय्या पूरे शरीर के बराबर होती है और सस्तारक ढाई हाथ लम्बा होना है। उसके भी भेद-प्रभेद का विस्तार से वर्णन है।

उपधि का विवेचन करते हुए उसके अवधियुक्त और उपगृहीत ये दो प्रकार बताये है। जिनकल्पिकों के लिए बारह प्रकार की, स्थविरकल्पिको के लिए चौदह प्रकार की और साध्वियो के लिए पच्चीस प्रकार की उपधि अवधियुक्त है। जिनकल्पिक पाणिपात्र भोजी और प्रतिग्रहधारी ये दो प्रकार के होते है। जिनकल्पिक की अवधि की आठ कोटिया है। उनके दो, तीन, चार, पाच, नौ, दस, ग्यारह, बारह ये भेद है। निर्वस्त्र पाणिपात्र की जघन्य

उपधि रजोहरण और मुखवस्त्रिका ये दो होती हैं। यदि पाणिपात्र-सवस्त्र है और एक कपड़ा ग्रहण करता है तो उसके तीन प्रकार हैं।

तृतीय उद्देशक मे भिक्षाग्रहण मे लगने वाले दोषो और उनकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का विधान है। अन्य दोषो के सम्बन्ध मे भी चिन्तन किया है।

चतुर्थ उद्देशक मे अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग, कायोत्सर्ग के विविध प्रकार, समाचारो, निर्ग्रन्थी के स्थान पर श्रमण का प्रवेश, राजा, अमात्य, श्रेष्ठि, पुरोहित, सार्थवाह, ग्राममहत्तर, राष्ट्रमहत्तर, गणधर के लक्षण, ग्लान श्रमणी की सेवा, सरभ, समारभ और आरम्भ के भेद-प्रभेद, हास्य और उसके उत्पन्न होने के विविध कारणो का वर्णन है।

पचम उद्देशक मे प्राभृतिका शय्या, छादन आदि भेद, सपरिकर्मशय्या, उसके चौदह प्रकारो का वर्णन है। जैन श्रमणो मे परस्पर आहार आदि का जो व्यवहार होता है वह जैन पारिभाषिक शब्द मे सभोग कहलाता है और उस सम्बन्ध को साभोगिक सम्बन्ध कहते है। चूर्णिकार ने साभोगिक सम्बन्ध को समझाने के लिए कुछ ऐतिहासिक आख्यान दिये है, यथा—भगवान महावीर, उनके शिष्य सुधर्मा, उनके जम्बू, उनके प्रभव, उनके शय्यभव, उनके यशोभद्र, उनके सभूत, उनके स्थूलभद्र, स्थूलभद्र के आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती ये दो युगप्रधान शिष्य हुए। चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार, उसका अशोक और उसका पुत्र कुणाल हुआ।

छठे उद्देशक मे गुरुचातुर्मासिक का वर्णन है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय मैथुन सम्बन्धी दोष और प्रायश्चित्त है।

सप्तम उद्देशक विकृत आहार, कुण्डल, गुण, मणि तुडिय, तिमरिय, वालभा, पलबाहार, अर्धहार, एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, पट्ट, मुकुट आदि आभूषण का स्वरूप बताकर उनको धारण करने का निषेध है व आलिङ्गनादि का निषेध किया गया है।

अष्टम उद्देशक मे उद्यान, उद्यानगृह, उद्यानशाला, निर्याण, निर्याणगृह, निर्याणशाला, अट्ट, अट्टालक, चरिका, प्राकार, द्वार, गोपुर, दक, दकमार्ग, दकपथ, दकतीर, दकस्थान, शून्यगृह, शून्यशाला, भिन्नगृह, भिन्नशाला, कूटागार, कोष्ठागार, तृणगृह, तृणशाला, तुषगृह, तुषशाला आदि का अर्थ स्पष्ट कर श्रमण को सूचित किया है कि इन सभी स्थानो मे अकेली महिला के साथ विचरण न करे।

निशा मे स्वजन-परिजन आदि के साथ भी न रहे और रहने पर प्रायश्चित्त का विधान है। साथ ही रात्रि मे भोजन आदि की अन्वेषणा करना, ग्रहण करना आदि के लिए भी प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।

नौवे उद्देशक मे बताया है कि जो मूर्धाभिषिक्त है अर्थात् अभिषेक हो चुका है, जो सेनापति, अमात्य, पुरोहित, श्रेष्ठी और सार्थवाह सहित राज्य का उपभोग करता है, उसका पिण्ड श्रमण के लिए वर्ज्य है। जो मूर्धाभिषिक्त नही है उसके लिए यह नियम नही है। अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोञ्छन ये आठ वस्तुएँ राजपिण्ड मे आती है।

श्रमण को जीर्णान्त पुर, नवान्त पुर और कन्यकान्त पुर मे नही जाना चाहिए। कोष्ठागार, भाण्डागार, पानागार, क्षीरगृह, गजशाला, महानसशाला आदि का भी स्वरूप बताया गया है।

दसवें उद्देशक मे भाषा की अगाढ़ता, परुषता आदि का विवेचन कर उसके प्रायश्चित्त का वर्णन किया है। आधाकर्मिक आहार के दोष व प्रायश्चित्त, रुग्ण की वैयावृत्य, उसकी यतना, उपेक्षा करने पर प्रायश्चित्त का विधान है। वर्षावास पर्युषणा के एकार्थक शब्द दिये गये हैं। आर्य कालक की भगिनी सरस्वती जो अत्यन्त रूपवती थी—उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल द्वारा उसके अपहरण आदि की कथा दी गई है।

ग्यारहवें उद्देशक मे पात्र-ग्रहण की चर्चा है। भय के पहले चार भेद किये हैं—(१) पिशाच आदि से उत्पन्न भय (२) मनुष्यादि से उत्पन्न भय, (३) वनस्पति से उत्पन्न भय और (४) अकस्मात् उत्पन्न होने वाला भय। फिर इहलोक, परलोक आदि सात भय बताये है।

अयोग्यदीक्षा का निषेध करते हुए कहा है कि अठारह प्रकार के पुरुष, बीस प्रकार की स्त्रियाँ और दस प्रकार के नपुसक ये अयोग्य हैं। बालदीक्षा के तीन भेद किये है—(१) सात-आठ वर्ष का बालक उत्कृष्ट बाल है, (२) पाँच-छह वर्ष की आयु वाला मध्यम बाल है और (३) चार वर्ष तक की आयु वाला जघन्य बाल है। ये सभी दीक्षा के अयोग्य है। आठ वर्ष से अधिक आयु वाला बालक ही दीक्षा के योग्य माना गया है। वृद्ध, रोगी, उन्मत्त, मूढ आदि जो दीक्षा के अयोग्य हैं, उनका भी विविध भेदो से वर्णन किया है। प्रसगानुसार सोलह प्रकार के रोग, आठ प्रकार की व्याधियो का भी निरूपण है। व्याधि और रोग मे यही अन्तर है कि व्याधि का नाश शीघ्र होता है, किन्तु रोग का नाश लम्बे समय मे होता है। बालमरण और पण्डितमरण पर भी विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

बारहवे उद्देशक मे त्रसप्राणी सम्बन्धी बन्धन व मुक्ति, प्रत्याख्यान, भग आदि का वर्णन हुआ है।

तेरहवें उद्देशक मे स्निग्ध पृथ्वी, शिला आदि पर कायोत्सग, गृहस्थ को कटुक वचन, मन्त्र, लाभ व हानि, धातु का स्थान आदि बताना, वमन विरेचन प्रतिकर्म करना, पार्श्वस्थ कुशील की प्रशसा व वन्दन, धात्रीपिण्ड, दूती-पिण्ड, निमित्तपिण्ड, चिकित्सापिण्ड, क्रोधादिपिण्ड का भोग करना ये सभी चतुर्लघु प्रायश्चित्त के योग्य है।

चौदहवें उद्देशक मे पात्र सम्बन्धी दोषो का निरूपण कर उससे मुक्त होने के लिए प्रायश्चित्त का विधान है।

पन्द्रहवें उद्देशक मे श्रमण-श्रमणियो को सचित्त आम खाने का निषेध किया है। द्रव्य आम के उस्सेतिम, ससेतिम, उवक्खड और पालिय ये चार भेद है और पलित आम के चार प्रकार बताये है। श्रमण-श्रमणियो की दृष्टि से तालप्रलम्ब के ग्रहण की विधि पर भी प्रकाश डाला है।

सोलहवें उद्देशक मे श्रमण को देहविभूषा और अतिउज्ज्वल उपधि धारण का निषेध किया है। श्रमण-श्रमणियो को ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जहाँ पर रहने से उनके ब्रह्मचर्य की विराधना न हो।

जुगुप्सित यानि घृणित कुल मे आहार ग्रहण नही करना चाहिए। जुगुप्सित इत्वरिक और यावत्कथिक रूप मे दो प्रकार है। सूतक आदि वाले घर कुछ समय के लिए जुगुप्सित होते हैं। लुहार, कलाल, चर्मकार, ये यावत्क-थिक-जुगुप्सित कुल हैं।

पूर्व मे मगध से लेकर पश्चिम मे स्थूणा पर्यन्त और दक्षिण मे कौशाम्बी से लेकर उत्तर मे कुणाला पर्यन्त आर्यदेश है, जहाँ पर श्रमण को विचरना चाहिए। भाष्यकार की भी यही मान्यता रही है।

सत्रहवें उद्देशक मे गीत, हास्य, वाद्य, नृत्य, अभिनय आदि का स्वरूप बताकर श्रमण के लिए उनका आचरण करना योग्य नही माना गया है और प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।

अठारहवें उद्देशक मे नौका सम्बन्धी दोषो पर चिन्तन किया गया है। नौका पर आरूढ होना, नौका खरीदना, नौका को जल से स्थल और स्थल से जल मे लेना, नौका मे पानी भरना या खाली करना, नौका को खेना, नाव से रस्सी बाधना आदि के प्रायश्चित्त का वर्णन है।

उन्नीसवें उद्देशक मे स्वाध्याय और अध्यापन के सम्बन्ध मे चिन्तन किया है। स्वाध्याय का काल, अकाल, विषय, अस्वाध्यायकाल मे स्वाध्याय करने से लगने वाले दोष, अयोग्य व्यक्ति को, पार्श्वस्थ व कुशील को अध्ययन कराने से लगने वाले दोष और योग्य व्यक्ति को न पढाने से लगने वाले दोषो पर प्रकाश डाला है।

बीसवें उद्देशक मे मासिक आदि परिहारस्थान, प्रतिसेवन, आलोचन, प्रायश्चित्त आदि पर चिन्तन किया गया है।

चूर्णि के उपसहार मे लेखक ने अपना नाम जिनदासगणि महत्तर बताया है और चूर्णि का नाम विशेष-चूर्णि लिखा है।

प्रस्तुत चूर्णि का चूर्णिसाहित्य मे एक विशिष्ट स्थान है। इसमे आचार के नियमोपनियम की सविस्तृत व्याख्या है। भारत की सास्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक प्राचीन सामग्री का इसमे अनूठा सग्रह है। अनेक ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओ का सुन्दर सकलन है। धूर्ताख्यान, तरगवती, मलयवती, मगधसेन, आर्यकालक आदि की कथाएँ प्रेरणात्मक है।

निशीथचूर्णिदुर्गपदव्याख्या

जैन परम्परा मे श्री चन्द्रसूरि नाम के दो आचार्य थे। एक मलधारी हेमचन्द्रसूरि के शिष्य थे तो दूसरे चन्द्रकुली श्री शीलभद्रसूरि और धनेश्वरसूरि गुरु युगल के शिष्य थे। जिनका दूसरा नाम पार्श्वदेवगणि भी था। उन्होने निशीथचर्णि के बीसवे उद्देशक पर निशीथचूर्णिदुर्गपदव्याख्या नामक टीका लिखी है। चूर्णि के कठिन स्थलो को सरल व सुगम बनाने के लिए इसकी रचना की गई है, जैसा कि व्याख्याकार ने स्वय स्वीकार किया है। पर यह वृत्ति महिनो के प्रकार, दिन आदि के सम्बन्ध मे विवेचन करने से नीरस हो गई है।

निशीथसूत्र भाष्य, चूर्णि और परिशिष्ट के साथ उपाध्याय श्री अमर मुनिजी म और पण्डित मुनि श्री कन्हैया-लालजी म 'कमल' द्वारा सम्पादित चार भागो का प्रकाशन सन्मति ज्ञानपीठ आगरा से हुआ है। उसका द्वितीय सस्करण भी पुन आगरा से ही प्रकाशित हुआ है। निशीथ एक अध्ययन नाम से पण्डित दलसुखभाई मालवणिया ने उस पर सविस्तृत प्रस्तावना भी लिखी, जो उनके गम्भीर अध्ययन की परिचायिका है। डबल्यू शूब्रिग मूलसूत्र लाइ-प्तिसग १९१८ जैन साहित्य सशोधक समिति पूना मे प्रकाशित हुआ। निशीथसूत्र का सर्वप्रथम मूलपाठ के साथ हिन्दी अनुवाद आचार्य अमोलकऋषिजी म ने किया, जिसका प्रकाशन सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद जौहरी हैदरा-बाद वीर स २४४६ मे हुआ। आचार्यप्रवर श्री घासीलालजी म ने निशीथ पर सस्कृत भाषा मे टीका लिखी है और वह जैन शास्त्रोद्धार समिति राजकोट से प्रकाशित हुआ। सुत्तागमे के दो भाग मे धर्मोपदेष्टा फूलचन्दजी म 'पुप्फभिक्खू' ने बत्तीस आगमो के मूलपाठ प्रकाशित किये। उसमे निशीथ का मूल पाठ प्रकाशित हुआ है। नव-सुत्ताणि नामक ग्रन्थ मे आचार्य श्री तुलसीजी के नेतृत्व मे युवाचार्य महाप्रज्ञजी ने जो सम्पादन किया, उसमे मूलपाठ के रूप मे निसीहज्झयण भी प्रकाशित है। इसमे पाठान्तर भी दिये गये है। इस प्रकार निशीथ पर आज दिन तक विभिन्न स्थानों से प्रकाशन हुए है। पर निशीथ पर विवेचन युक्त कोई भी सस्करण नही निकला, जो निशीथ मे रहे हुए रहस्यो को उद्घाटित कर सके। इसका मूल कारण गोपनीयता ही है।

प्रस्तुत सस्करण

चिरकाल से निशीथसूत्र पर हिन्दी अनुवाद और विवेचन की अपेक्षा थी। स्वर्गीय युवाचार्य महामनीषी श्री मधुकर मुनिजी ने जीवन की सान्ध्यवेला मे आगम प्रकाशन योजना प्रस्तुत की। अनेक मनीषीप्रवरो के सहयोग के कारण इस योजना ने शीघ्र ही मूर्त्तरूप ग्रहण किया। उनके जीवन काल मे और स्वल्प समय मे अनेक आगम प्रकाशित हो गये। युवाचार्य मधुकर मुनिजी के अनन्य मित्र आगमसाहित्य के मर्मज्ञ सन्तरत्न अनुयोग प्रवर्तक पण्डितप्रवर श्री कन्हैयालालजी म 'कमल' से उन्होने योजना के प्रारम्भ मे ही सहज रूप से कहा कि मुनिप्रवर छेदसूत्रो का सम्पादन और विवेचन आपको लिखना है। स्नेहमूर्ति मधुकर मुनिजी की बात को कन्हैयालालजी म कैसे टाल सकते थे। उन्होने स्वीकृति प्रदान की पर किसे पता था कि युवाचार्यश्री का आकस्मिक स्वर्गवास हो जाएगा। उनके स्वर्गवास से कुछ व्यवधान अवश्य आया पर सम्पादक मण्डल और प्रकाशन समिति ने यह दृढ सकल्प किया कि यह कार्य अवश्य ही सम्पन्न करेगे। परिणामस्वरूप बत्तीस आगमो का प्रकाशन हो सका है।

मुनि श्री कन्हैयालालजी म 'कमल' जीवन के ऊषाकाल से ही श्रुतसेवा मे समर्पित रहे हैं। उन्होने कठिन श्रम कर गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग, और चरणकरणानुयोग के विराट्काय ग्रन्थ कई जिल्दो मे प्रकाशित कर दिये है। द्रव्यानुयोग का प्रकाशन भी कई जिल्दो मे होने जा रहा है। उन्होने हर एक आगमो का शानदार सम्पादन भी किया है। उन्ही के कठिन श्रम के फलस्वरूप ही निशीथभाष्य व विशेषचूर्णि सहित आगरा से प्रकाशित हुआ था। आगमसाहित्य के मर्मज्ञ मनीषी के द्वारा निशीथ का अनुवाद और विवेचन लिखा गया है। विवेचन मे लेखक की प्रकृष्ट प्रतिभा सहजरूप से प्रकट हुई है। प्राचीन ग्रन्थों के आलोक मे उन्होने बहुत ही सक्षिप्त मे सारपूर्ण विवेचन लिखा है। विषय के तलछट तक पहुंचकर विषय को बहुत ही सुन्दर सरस शब्दावली मे प्रस्तुत करना उनका स्वभाव है।

निशीथसूत्र का मूलपाठ शुद्ध है। अनुवाद इतना अधिक सुन्दर हुआ है कि पाठक पढते-पढते विषय को सहज ही हृदयगम कर लेता है। अनुवाद की सबसे बडी विशेषता है कि वह प्रवाहपूर्ण है। निशीथ जैसे गुरु-गम्भीर रहस्य भरे आगम पर विवेचन लिखना हसी-मजाक का खेल नही है। उनमे उनकी सहज बहुश्रुतता के दर्शन होते है। प्रस्तुत अनुवाद और विवेचन आदि के कार्य मे पण्डितप्रवर श्री तिलोकमुनिजी का स्नेहपूर्ण सहकार भी मिला है। कन्हैयालालजी म 'कमल' के नेतृत्व मे रहकर उनके स्वास्थ्य की प्रतिकूलता होने से उन्होने समर्पित होकर इस सम्पादन कार्य के लिए सहयोग प्रदान किया। कन्हैयालालजी म 'कमल' की प्रकृष्ट प्रतिभा और तिलोकमुनिजी का कठिन श्रम, इस प्रकार मणि-काञ्चन सयोग से ग्रन्थ का सम्पादन सुन्दर और शीघ्र हो सका है।

—उपाचार्य देवेन्द्रमुनि

जैन स्थानक, पाली (राज०)
होली पर्व, वि २८-२-९१

विषय-सूची

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
—	**प्रायश्चित्त तालिका**	१-२
	१ पराधीनता मे २ आतुरता से ३ आसक्ति मे । उपवास के समकक्ष तप विकल्प ।	

उद्देशक १

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१	**वेदमोहृदय-प्रायश्चित्त**	३-८
	मगलाचरण विचारणा, लिपि नमस्कार, उत्थानिकाओ के मौलिकता की विचारणा, भिक्षु शब्द मे भिक्षुणी भी, दो करण से तीन करण, अनुमोदन की क्रिया ।	
२-९	**अगादान सचालन आदि का प्रायश्चित्त**	८-१२
	सात दृष्टात, अगादान व्याख्या, अभ्यगन आदि शब्दो का विश्लेषण, सक्षिप्त पाठ सूचन, शिक्षा-वचन, "अचित्त श्रोत" का प्रासगिक अर्थ ।	
१०	**फूल आदि सचित्त पदार्थ सू घने का प्रायश्चित्त**	१२
११-१४	**गृहस्थ द्वारा पदमार्ग आदि बनवाने का प्रायश्चित्त**	१३
	पदमार्ग, सक्रमणमाग, अवलबन, दगवीणिका, छीका एव चिलिमिलिका का विश्लेषण ।	
१५-१८	**सूई आदि के सुधार-सस्कार कराने का प्रायश्चित्त**	१४-१७
	उत्तरकरण का अर्थ, दो प्रकार के उपकरण, सधातुक उपकरण रखना, परिग्रह स्वरूप, अन्यतीर्थिक गृहस्थ के भेद-प्रभेद एव क्रम, प्रासगिक अर्थ की सूचना ।	
१९-२२	**सूई आदि के निष्प्रयोजन लाने का प्रायश्चित्त**	१७
२३-२६	**सूई आदि अविधि से लेने का प्रायश्चित्त**	१८
२७-३०	**सूई आदि से अनिर्दिष्ट कार्य करने का प्रायश्चित्त**	१८
३१-३४	**सूई आदि अन्य को देने का प्रायश्चित्त**	१९
३५-३८	**सूई आदि अविधि से लौटने का प्रायश्चित्त**	२०
३९	**पात्र सुधरवाने का प्रायश्चित्त**	२०

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
४०	**दंड आदि सुधरवाने का प्रायश्चित्त**	२१
४१-४६	**पात्र सीने जोडने का प्रायश्चित्त**	२२-२४
	एक या तीन थगली, विधि-अविधि की व्याख्या, बंधन संख्या स्वरूप, तीन से अधिक बंधन की परिस्थिति।	
४७-५६	**वस्त्र सीने जोडने का प्रायश्चित्त**	२४-२७
	थेगली की आवश्यकता, अविधि सीवन, गांठ कब और कैसी लगाना, सीने की आवश्यकता, अविधि के प्रायश्चित्त, अधिक जोड, सारांश।	
५७	**गृहस्थ से धूआ उतरवाने का प्रायश्चित्त**	२७
	धूआ उतारने की विधि, धूए का औषध रूप उपयोग	
५८	**पूतिकर्म दोष का प्रायश्चित्त**	२८
	तीन प्रकार के पूतिकर्म, उपसंहार वाक्य, परिहारट्ठाण का अर्थ।	
——	**उद्देशक का सूत्र क्रमांक युक्त सारांश**	२९-३०
-	**किन-किन सूत्रों का विषय अन्य आगमों में है अथवा नहीं है**	३०

उद्देशक २

१-८	**दंडयुक्त पादप्रोंछन सम्बन्धी प्रायश्चित्त**	३१-३४
	पादप्रोंछन का अर्थ, आगमों में इसके विभिन्न उपयोग, काष्ठदंड कब, रजोहरण एवं पादप्रोंछन सम्बन्धी भ्रम, आगमों से इनकी भिन्नता सिद्धि, काष्ठदंड युक्त पादप्रोंछन की काल मर्यादा, औपग्रहिक उपकरण।	
९	**इत्रादि सूंघने का प्रायश्चित्त**	३५
१०-१३	**पदमार्ग आदि स्वयं बनाने का प्रायश्चित्त**	३५
	मच्छरदानी बनाना प्रायश्चित्त कार्य है, रखना प्रायश्चित्त कार्य नहीं।	
१४-१७	**सूई आदि को स्वयं सुधारने का प्रायश्चित्त**	३६
१८	**अल्पतम कठोर भाषा बोलने का प्रायश्चित्त**	३६
	अल्पतम कठोर भाषा का स्वरूप, कठोर भाषा के पांच उदाहरण, कठोर भाषा का अपवाद एवं विकल्प।	
१९	**अल्पतम झूठ बोलने का प्रायश्चित्त**	३७
	अल्प झूठ के उदाहरण।	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठां
२०	**अल्प अदत्त लेने का प्रायश्चित्त**	३
	अदत्तनिषेध के आगमस्थल ।	
२१	**अगोपाग प्रक्षालन का प्रायश्चित्त**	३
२२	**अखण्ड चर्म रखने का प्रायश्चित्त**	३
	"कसिण" शब्द से चार प्रकार के चर्म उपकरण ।	
२३	**बहुमूल्य वस्त्र रखने का प्रायश्चित्त**	४
	कृत्स्न के विकल्प एव प्रायश्चित्त, अल्पमूल्य-बहुमूल्य ।	
२४	**अभिन्न वस्त्र रखने का प्रायश्चित्त**	४
	अभिन्न वस्त्र रखने के दोष ।	
२५-२६	**पात्र, दण्ड आदि के सुधार कार्य स्वय करने का प्रायश्चित्त**	४
२७-३१	**अन्य की गवेषणा के पात्र लेने का प्रायश्चित्त**	४
३२	**निमन्त्रित पिंड ग्रहण करने का प्रायश्चित्त**	४
	नियागपिड के रूपान्तरित शब्द, विशेषार्थ, दो-चार दिन लगातार गोचरी का कल्प ।	
३३-३६	**दानपिड ग्रहण करने का प्रायश्चित्त**	४३-४
	शब्दार्थ, दान कुलो के प्रकार, वहा जाने मे दोष, नित्यपिड' के गवेषणा दोष होने का भ्रम, आगम प्रमाणो से सिद्धि ।	
३७	**नित्य निवास का प्रायश्चित्त**	४६
	कालातिक्रात क्रिया, उपस्थानक्रिया, नित्य निवास से दोष, कल्प उपरात ठहरने का अपवाद ।	
३८	**दाता की प्रशसा करने का प्रायश्चित्त**	४६-४७
	पूर्वसस्तव, पश्चात्सस्तव की व्याख्या, प्रशसा करने के हेतु, दान की प्रशसा का विवेक ।	
३९	**अनुरागी कुलो मे दुबारा भिक्षार्थ जाने का प्रायश्चित्त**	४७
	दुबारा जाने के दोष एव हेतु ।	
४०-४२	**अन्य भिक्षाचरो के साथ गमनागमन का प्रायश्चित्त**	४८
	शब्दार्थ, किसके साथ जाना, सूत्रोक्त व्यक्तियो के साथ जाने मे सभावित दोष ।	
४३	**मनोज्ञ जल पीने और अमनोज्ञ परठने का प्रायश्चित्त**	४९
	अचित्त जल की गवेषणा विधि, योग्यायोग्य जल की परीक्षा के लिए चखना, विभिन्न रस के पानी और उनके लेने रखने के विवेक, परठने मे अपवाद ।	
४४	**मनोज्ञ भोजन खाने, अमनोज्ञ परठने का प्रायश्चित्त**	५
	मुख्य शब्दो के अर्थ एव पर्यायवाची शब्द, आहार परठने मे अपवाद ।	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
४५	**अधिक आहार अन्य श्रमणों को बिना पूछे परठने का प्रायश्चित्त**	५१
	शब्दार्थ, गोचरी लाने वाले की कुशलता, परिष्ठापन के पूर्व की क्रमिक विधि ।	
४६-४७	**शय्यातर पिंड सम्बन्धी प्रायश्चित्त**	५२-५३
	विशिष्ट दोष, पर्याय शब्द, शय्यातर कौन होता है ? शय्यातर पिंड वस्तुएँ, शय्यातर पिंड मे नही आने वाली वस्तुएँ, शय्यातर पिंड की वस्तुएं लेने का विकल्प, शय्यातर कब से, शय्यातर कब तक, अनेक साधुओं का पारस्परिक शय्यातर, शय्यातर पिंड ग्रहण से होने वाले दोष, परिस्थितिक अपवाद ।	
४८	**शय्यातर का घर जाने बिना गोचरी जाने का प्रायश्चित्त**	५३-५४
	शब्दार्थ, व्यक्ति को जानने का तरीका ।	
४९	**शय्या की सक्रिय दलाली से आहार लेने का प्रायश्चित्त**	५४
	दलाली का स्वरूप, शय्यातर सूत्र सख्या विचारणा ।	
५०-५१	**शय्यातर सस्तारक के याचना काल के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त**	५५-५६
	क्षम्य अतिक्रमण काल, शेष काल एव चातुर्मास मे घास पाट ग्रहण करना, आवश्यक कारण एव उपयोगिता ।	
५२	**वर्षा से भीगते पाट आदि को न हटाने का प्रायश्चित्त**	५६
	सूत्रोच्चारण का हेतु, लाक्षणिक अर्थ, हटाने एव नही हटाने के दोषो की तुलना ।	
५३	**शय्या-सस्तारक मालिक की बिना आज्ञा अन्यत्र ले जाने का प्रायश्चित्त**	५७
	सूत्र का आशय, अन्यत्र ले जाने की विधि, बिना आज्ञा से ले जाने के दोष, सूत्र सख्या विचारणा ।	
५४-५५	**शय्या-सस्तारक विधिवत् न लोटाने का प्रायश्चित्त**	५८
५६	**खोये गये शय्या-सस्तारक की खोज नहीं करने पर प्रायश्चित्त**	५८
५७	**प्रतिलेखन नहीं करने का प्रायश्चित्त**	५९-६०
	सभी उपकरणो का दो वक्त प्रतिलेखन, प्रतिलेखन के समय की विचारणा, दो बार पात्र-प्रतिलेखन के समय का निर्धारण ।	
—	**उद्देशक का सूत्र क्रमांक युक्त साराश**	६०-६१
—	**किन-किन सूत्रो का विषय अन्य आगमो मे है अथवा नहीं है**	६२

उद्देशक ३

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-१२	**अविधि के आहार की याचना करने का प्रायश्चित**	६३-६६
	दीन वृत्ति एव अदीन वृत्ति, बारह सूत्रो का सार ।	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१३	**गृहस्थ के मना करने के बाद भी उनके घर गोचरी जाने का प्रायश्चित्त**	६६
१४	**बड़े जीमनवार मे भिक्षार्थ जाने का प्रायश्चित्त**	६७
१५	**अभिहड दोष सेवन का प्रायश्चित्त** गृहस्थ के घर मे प्रवेशभूमि, कितने दूर से लाया गया आहार कैसे लेना, सूत्र मे "तीन" शब्द क्यो ?	"
१६-२१	**पात्र परिकर्म का प्रायश्चित्त** शब्दार्थ, परिकर्म प्रवृत्ति मे दोष, "फूमेज्ज रएज्ज" पद की विचारणा ।	६८-६९
२२-२७	**शरीर परिकर्म का प्रायश्चित्त**	७०
२८-३३	**व्रण चिकित्सा का प्रायश्चित्त**	७०
३४-३९	**घूमड़े आदि की शल्य-चिकित्सा का प्रायश्चित्त** शब्दो की व्याख्या, छहो सूत्रो का सम्बन्ध क्रम, सकारण अकारण चिकित्सा स्वरूप, स्थविरकल्पी भिक्षु को चिकित्सा का अपवाद, उत्सर्ग अपवाद का स्वरूप, उत्सर्ग अपवाद कब और कब तक, पथभ्रष्ट साधको का कलकित अपवाद, अपवाद से पतन भी, एक ऋषि के दृष्टात से अपवाद की मात्रा का विवेक ज्ञान, उत्सर्ग-अपवाद का अधिकारी कौन ?	७०-७५
४०	**अपानद्वार से कृमियां निकालने का प्रायश्चित्त** कृमियो का स्वरूप एव उत्पति का कारण ।	७५-७६
४१	**नख काटने का प्रायश्चित्त** नख काटने का एकात अनेकात सिद्धात विचारणा, विभिन्न आगम स्थलो का सकेत-सकलन, अकारण सकारण स्थिति का ज्ञान ।	७६
४२-४७	**दाढ़ी मूछ एव काख आदि के रोम काटने का प्रायश्चित्त**	७७
४८-५०	**दतमजन आदि करने का प्रायश्चित्त** आगमिक विधान, दतक्षय रोग, दात स्वस्थ रखने हेतु सावधानिया, अदतधावन का इन्द्रियनिग्रह और सयम समाधि से सम्बन्ध, दातो की रुग्णता एव कभी दतमजन करना भी अनाचार नही, विवेक ज्ञान ।	७७-७९
५१-५६	**ओष्ठ परिकर्म का प्रायश्चित्त**	७९
५७-६३	**चक्षु परिकर्म का प्रायश्चित्त**	७९
६४-६६	**मस्तक आदि के केश काटने का प्रायश्चित्त** प्रासगिक ५१ सूत्रो की सख्या एव क्रम का निर्णय, चूर्णि मे सूचित १३ पद और २६ सूत्रो का आशय एव उनकी तालिका ।	८०-८१

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
६७	**शरीर से पसीना-मैल हटाने का प्रायश्चित्त**	८२
	शब्द व्याख्या, समर्थ-असमर्थ साधक की अपेक्षा विवेक ।	
६८	**आंख, कान, नाक और नख का मैल निकालने का प्रायश्चित्त**	८२-८३
	कारण-अकारण का विवेक ज्ञान, मैल निकालने के अपवाद ।	
६९	**मस्तक ढांक कर कहीं भी जाने का प्रायश्चित्त**	८३-८६
	लिंग विपरीतता, अपवाद वर्णन, प्रचलित परम्परा, शरीर परिकर्म के कुल ५४ सूत्रो की तालिका, अन्य उद्देशको मे नव बार ५४ सूत्र, सकारण-अकारण मे प्रायश्चित्त विकल्प, शरीर उपकरण सम्बन्धी आगम प्रमाणो से विश्लेषण, सकारण के निर्णय के अधिकारी की योग्यता एव उसका स्वतन्त्र विचरण ।	
७०	**वशीकरण करने का प्रायश्चित्त**	८६-८७
७१-७९	**अकल्पनीय स्थानो मे मल-मूत्र परठने का प्रायश्चित्त**	८७-९०
	सूत्र का मुख्य विषय, शब्दो के अर्थ, "गोलेहणिया" का विशिष्टार्थ, मूल पाठ की विचारणा, परठने के अविवेक से दोषोत्पत्ति, विवेक ज्ञान ।	
८०	**धूप न आने वाले स्थान मे मल-विसर्जन करने का प्रायश्चित्त**	९१
	"अणुग्गए सूरिए" शब्द का सही आशय, उपाश्रय मे या स्थडिलभूमि मे मल-त्याग का विवेक-ज्ञान, कृमिविवेक ।	
—	**उद्देशक का सूत्र क्रमाक युक्त साराश**	९२-९३
—	**किन-किन सूत्रो का विषय अन्य आगमो मे है अथवा नहीं है**	९३-९४

उद्देशक—४

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-५	**राजा आदि को वश मे करने का प्रायश्चित्त**	९५-९६
	प्रशस्त-अप्रशस्त प्रयत्न, हानि और लाभ, इस विषय मे सूत्रकृतागसूत्र का विधान ।	
६-१०	**राजा आदि की प्रशसा करने का प्रायश्चित्त**	९६
	पूर्व सूत्रो मे सम्बन्ध एव किसी को वश मे करने का एक तरीका ।	
११-१५	**राजा आदि को आकर्षित करने का प्रायश्चित्त**	९७-९८
	'अत्थीकरेइ' अनेक अर्थों मे, प्रासगिक अर्थ, अन्य शब्दार्थ ।	
१६-३०	**ग्राम-रक्षक आदि को वश मे करने आदि का प्रायश्चित्त**	९८-१००
	शब्दार्थ, सूत्र सख्या एव क्रम की विचारणा ।	
३१	**सचित्त धान्य या बीज आदि खाने का प्रायश्चित्त**	१००-१०१
	"कसिण" शब्द की व्याख्या, अचित्त अखण्ड धान्य खाने के आगम प्रमाण ।	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
३२	**गुरु आदि की आज्ञा बिना विगय खाने का प्रायश्चित्त** आज्ञा लेने का विवेक ज्ञान, विगय महाविगय का परिचय, विगयनिषेध के आगम पाठो का सकलन। एक प्रक्षिप्त सूत्र सकेत।	१०१-१०३
३३	**स्थविरो द्वारा स्थापित कुलो को जाने बिना गोचरी जाने का प्रायश्चित्त** स्थापनाकुल के विभिन्न अर्थ एव प्रासगिक अर्थ, अन्य शब्दो का स्पष्टार्थ एव पारस्परिक अतर, इन कुलो मे जाने से क्या दोष ?	१०३-१०४
३४	**साध्वी के उपाश्रय मे अविधि से जाने का प्रायश्चित्त** विधि-अविधि का ज्ञान, आगम आशय।	१०४
३५	**साध्वी के आने के मार्ग मे उपकरण रखने का प्रायश्चित्त** अविवेक, कुतूहल या मलिन विचार	१०४-१०५
३६	**नया कलह करने का प्रायश्चित्त**	१०५
३७	**उपशात कलह को उभारने का प्रायश्चित्त** कलहउत्पत्ति के मुख्य कारण और विवेक।	१०५
३८	**मुह फाड कर या आवाज करते हुए हसने का प्रायश्चित** अन्य सूत्रो के उद्धरण, उत्पन्न दोष, एक दृष्टात द्वारा विषय का स्पष्टीकरण।	१०६
३९-४८	**पार्श्वस्थ आदि को साधु देने या उनसे लेने का प्रायश्चित्त** "सघाटक" का प्रासगिक अर्थ, उत्पन्न होने वाले दोष, विवेकज्ञान। पार्श्वस्थ आदि पाचो का भाष्य चूणि के उद्धरण युक्त विस्तृत स्वरूप, सूत्रक्रम व्यत्यय की भूल, पार्श्वस्थ आदि के स्वरूप मे बताई गई प्रवृत्तियो का अपवाद सेवन एव उसकी शुद्धि का विवेक ज्ञान, पार्श्वस्थ आदि कौन और कहा हो सकते ? ज्ञानविवेक।	१०६-११२
४९-६२,६३	**सचित पदार्थों से लिप्त (खरडे) हाथादि से आहार लेने का एव बिना खरडे हाथ आदि से आहार लेने का प्रायश्चित्त** पृथ्वीकाय की विराधना, अप्काय की विराधना, वनस्पति की विराधना एव पश्चात् कर्म दोष, प्रथम पिडेषणा, शब्दो की व्याख्या, सूत्रसख्या की विचारणा, "पिट्ठ" शब्द की विशेषता, तत्सबधी भ्रान्ति और उसका तर्क एव प्रमाणो द्वारा सशोधन, दशवैकालिक के शब्दो मे तुलना एव समन्वय, "उक्कट्ठ" शब्द की विचारणा, इक्कीस कहने का प्रक्षिप्त पाठ एव पाच अतिरिक्त शब्द और उनकी अनावश्यकता।	११२-११६
६४-११७	**साधुओ द्वारा परस्पर शरीरपरिकर्म करने का प्रायश्चित्त** ५४ सूत्रो का अतिदेश, चूर्णि मे ४१ सख्या कहने का तात्पर्य, ५४ सूत्रो की तालिका।	११७-११८

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
११८-१२७	**मल-विसर्जन सम्बन्धी विधि भग करने के प्रायश्चित्त**	११८-१२१
	दस सूत्रो का सक्षिप्त आशय, इनका सम्बन्ध मल-त्याग से है, लघुनीत की अपेक्षा नही है, सूत्रो के मुख्य शब्दो की व्याख्या एव विचारणा ।	
१२८	**प्रायश्चित्त वहन करने वाले के साथ भिक्षार्थ जाने का प्रायश्चित्त**	१२१-१२४
	उद्देशक २ सूत्र ४० और प्रस्तुत सूत्र मे परिहारिक अपरिहारिक शब्द के अर्थ करने की भिन्नता, पारिहारिक साधु का परिचय एव तत्सम्बन्धी विभिन्न जानकारी के लिये प्रश्नोत्तर ।	
—	**उद्देशक का सूत्र क्रमाक युक्त सारांश**	१२४-१२५
—	**किन-किन सूत्रो का विषय अन्य आगमो मे है अथवा नहीं है**	१२६-१२७

उद्देशक ५

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-११	**वृक्षस्कध के निकट बैठने आदि का प्रायश्चित्त**	१२८-१२९
	शब्दो की व्याख्या, उद्देशक, समुद्देश के वैकल्पिक अर्थ ।	
१२	**गृहस्थ से चद्दर सिलवाने का प्रायश्चित्त**	१२९
	गृहस्थ के आठ प्रकार, सिलाई करने के कारण एव क्रमिक विधि ।	
१३	**चादर के लम्बी डोरिया बाधने का प्रायश्चित्त**	१२९-१३०
	किसके कब और कितनी डोरिया बाधना ? डोरियो की कितनी लम्बाई ? लबी डोरियो के दोष ।	
१४	**पत्ते धोकर खाने का प्रायश्चित्त**	१३०
	गवेषणा विवेक, धोने के दोष, "पडोल" की अर्थ विचारणा ।	
१५-१८	**लौटाने योग्य पादप्रोछन सम्बन्धी प्रायश्चित्त**	१३१
	प्रायश्चित्त पादप्रोछन का नही किन्तु भाषा के अविवेक का है ।	
१९-२२	**लौटाने योग्य दड आदि सम्बन्धी प्रायश्चित्त**	१३१-१३२
२३	**लौटाने योग्य शय्या-सस्तारक सम्बन्धी प्रायश्चित्त**	१३२
	शब्द व्याख्या, बाहर से लाये शय्या-सस्तारक उपाश्रय मे छोडना, पुन आज्ञा लेना, अन्त मे यथा-स्थान पहुँचाना ।	
२४	**सूत कातने का प्रायश्चित्त**	१३२-१३३
	कातने के साधन, दोषोत्पत्ति ।	
२५-३०	**सचित्त, रगीन या आकर्षक दड बनाने का प्रायश्चित्त**	१३३-१३४
	दंड बनाने मे कारण, बनाने मे ध्यान रखने योग्य मुद्दे, शब्दो की व्याख्या, सूत्रसख्या विचारणा ।	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
३१	**नवनिर्मित ग्राम, उपनगर आदि मे प्रवेश करने का प्रायश्चित्त** ग्रामादि शब्दो की व्याख्या, शब्दो की सख्या एव क्रम का विचारणा, निर्णीत क्रम, नवनिर्मित का आशय एव दोष ।	१३५-१३६
३२	**नवनिर्मित खान मे प्रवेश करने का प्रायश्चित्त** सूत्र का आशय, दोष विराधना एव विवेक ।	१३७
३३-३५	**वीणा बनाने एव बजाने का प्रायश्चित्त** वीणा स्वरूप, बजाने का हेतु, विराधना, सूत्र सख्या निणय ।	१३७-१३८
३६-३८	**दोष वाली शय्या मे प्रवेश करने का प्रायश्चित** उद्देश, पाहुड और परिकर्म शब्द का सामान्य परिचय, भाष्य के आधार मे विशेष व्याख्या, सक्षिप्त साराश, वर्तमान मे उपलब्ध शय्याओ के सदोष निर्दोष की गवेषणा का शिक्षण तीन विभागो से, पाठ की गवेषणा का शिक्षण तीन विभागो द्वारा । पाठ की गवेषणा के सम्बन्ध मे उपलब्ध आगम विषय उसकी कालातर से कल्पनीयता, वर्तमान जैन फिरको की अपेक्षा से गवेषणा-ज्ञान ।	१३८-१४४
३९	**'सभोग-प्रत्ययिक-क्रिया' नहीं मानने का प्रायश्चित्त** इस क्रिया का स्वरूप और कर्मबध एव विवेक ज्ञान ।	१४४
४०-४२	**उपधि परठने के अविवेक का प्रायश्चित्त** अल, थिर, ध्रुव, धारणिज्ज का व्याख्यार्थ, पादप्राछन एव रजोहरण की भिन्नता परठने सम्बन्धी विवेक ज्ञान, सूत्र-विचारणा, क्रिया-विचारणा ।	१४४-१४६
४३-५२	**रजोहरण सम्बन्धी विधि-विधान भग करने के प्रायश्चित्त** रजोहरण स्वरूप, परिमाण कैसा, सूक्ष्म शीर्ष, कडूसग बधन आदि प्रमुख शब्दो की व्याख्या, दसो सूत्रो के स्पष्टार्थ, ग्यारहवे सूत्र का भ्रम ।	१४६-१४९
—	**उद्देशक का सूत्र क्रमाक युक्त साराश**	१५०
-	**उपसहार**	१५०-१५१

उद्देशक ६

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-७८	**अब्रह्म के सकल्प से किए जाने वाले कृत्यो के प्रायश्चित्त** "माउग्गाम" का अर्थ, "विण्णवण" स्वरूप, ब्रह्मचर्यव्रत की दुष्करता के आगम वर्णन, व्रत मे उत्साहित करने के आगम वर्णन, शिक्षा, सूत्राशय, गोपनीयता और वर्तमान युग, विवेक, लेखन पद्धति की आगम मे सिद्धि ।	१५२-१५७
—	**उद्देशक का सूत्र क्रमांक युक्त साराश**	१५७

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक

उद्देशक—७

१-३	**मैथुनसंकल्प से माला बनाने पहनने का प्रायश्चित्त** माला बनाने का हेतु, सूत्र के शब्दो की विचारणा, क्रियाओ का अर्थ।	१५८-१५९
४-६	**"कडा" बनाने पहनने का प्रायश्चित्त** कडा बनाने का सही अर्थ, उससे होने वाले दोष, 'पिणद्धेई' और 'परिभुजई' क्रिया का लिपि दोष।	१५९-१६०
७-९	**आभूषण बनाने का प्रायश्चित्त** सूत्रपाठ की विचारणा।	१६०-१६१
१०-१२	**विविध वस्त्र निर्माण एव उपयोग का प्रायश्चित्त**	१६२-१६३
१३	**अगो के सचालन का प्रायश्चित्त**	१६३
१४-६७	**शरीर परिकर्म के ५४ प्रायश्चित्त**	१६३
६८-७५	**सचित्त पृथ्वी आदि पर बैठने बैठाने का प्रायश्चित्त** सूत्र के शब्दो का आशय।	१६३-१६५
७६-७७	**गोद मे बैठाने आदि का प्रायश्चित्त**	१६५
७८-७९	**धर्मशाला आदि स्थानो मे बैठने आदि का प्रायश्चित्त**	१६५-१६६
८०	**चिकित्सा करने का प्रायश्चित्त**	१६६
८१-८२	**मनोज्ञ पुद्गल प्रक्षेपण आदि का प्रायश्चित्त**	१६६-१६७
८३-८५	**पशु-पक्षियो के अगसचालनादि का प्रायश्चित्त**	१६७-१६८
८६-८९	**आहार-पानी लेने देने का प्रायश्चित्त**	१६८
९०-९१	**वाचना लेने देने का प्रायश्चित्त**	१६८
९२	**विकारवर्धक आकार बनाने का प्रायश्चित्त**	१६९
—	**उद्देशक का सूत्र क्रमाक युक्त साराश**	१६९
—	**उपसहार**	१६९-१७०

उद्देशक—८

१-९	**अकेली स्त्री के साथ सपर्क करने का प्रायश्चित्त** स्त्रीससर्ग निषेध एव उपमा, कठिन शब्दो की व्याख्या, निष्कर्ष।	१७१-१७४
१०	**रात्रि मे स्त्री परिषद मे अपरिमित कथा करने का प्रायश्चित्त** सूत्र का आशय एव प्रतिपक्ष तात्पर्य, अपरिमाण का स्पष्टीकरण।	१७४-१७५

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
११	**निर्ग्रन्थी से अतिसंपर्क का प्रायश्चित्त** निर्ग्रन्थी से कितना सम्पर्क, उत्सर्ग और अपवाद के कर्तव्य।	१७५-१७
१२	**उपाश्रय में रात्रि के समय स्त्रीनिवास का प्रायश्चित्त** सूत्र का प्रसग, अर्द्धरात्रि का तात्पर्य, 'सवसावेइ'' क्रिया का विशेषार्थ, अतिरिक्त सूत्र विचारणा।	१७६
१३	**स्त्री के साथ रात्रि मे गमनागमन का प्रायश्चित्त** साथ जाने की परिस्थिति एव कारण।	१७७
१४-१८	**मूर्द्धाभिषिक्त राजाओ के महोत्सव आदि स्थलो से आहार लेने का प्रायश्चित्त** सूत्र परिचय, राजा के तीन विशेषण का तात्पर्य, कठिन शब्दो की व्याख्या।	१७७-१८०
—	**उद्देशक का सूत्रक्रमाक युक्त साराश**	१८०
—	**उपसहार—उद्देशक का विषय अन्य आगमो मे है या नही ?**	१८०-१८१

उद्देशक—९

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-२	**राजपिंड ग्रहण करने का प्रायश्चित्त** राजपिंड के आठ पदार्थ, तीर्थंकरो के शासन की अपेक्षा विचारणा।	१८२
३-५	**राजा के अत.पुर मे प्रवेश एव भिक्षाग्रहण सम्बन्धी प्रायश्चित्त** तीन प्रकार के अत पुर, ''अत पुरिया'' शब्द के अर्थविकल्प, द्वारपाल से आहार मगवाकर लेने के दोषो का वर्णन।	१८२-१८३
६	**राजा का दानपिंड ग्रहण करने का प्रायश्चित्त**	१८३-१८४
७	**राजा के कोठार आदि को जाने बिना गोचरी जाने का प्रायश्चित्त** शब्दो की व्याख्या, वहा जाने के दोष।	१८४-१८५
८-९	**राजा या रानी को देखने के लिए जाने का प्रायश्चित्त**	१८५-१८६
१०	**शिकार के लिए गये राजा से आहार लेने का प्रायश्चित्त**	१८६
११	**राजा जहां मेहमान हो वहा गोचरी जाने का प्रायश्चित्त** अल्पाहार या भोजन मे राजा निमत्रित, कठिन शब्दव्याख्या, सूत्राशय।	१८६-१८७
१२	**राजा के उपनिवासस्थान के निकट मे ठहरने का प्रायश्चित्त** राजाओ का ससर्गनिषेध सूत्रकृतागसूत्र मे।	१८७-१८८
१३-१८	**यात्रा मे गये राजा का आहार लेने का प्रायश्चित्त**	१८८-१८९
१९	**राज्याभिषेक के समय गमनागमन का प्रायश्चित्त**	१८९
२०	**किसी भी राजधानी मे बारबार जाने का प्रायश्चित्त** बारबार जाने से शका आदि दोष।	१८९-१९०

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
२१-२७	**राजकर्मचारी के निमित्त बना आहार लेने का प्रायश्चित्त** दोषो की सभावना, कब तक अकल्पनीय, कठिन शब्दो की व्याख्या, सूत्राशय शब्दो की हीनाधिकता की विचारणा, सूत्र की हीनाधिकता ।	१९०-१९४
—	**उद्देशक का सूत्रक्रमाक युक्त साराश**	१९४
--	**उपसहार—अन्य आगामो मे उक्त-अनुक्त विषय**	१९५

उद्देशक—१०

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-४	**आचार्य गुरु आदि की अविनय आशातना का प्रायश्चित्त** आचार्य को कठोर बोलने के प्रकार, शब्दो की व्याख्या, आशातना म अपवाद ।	१९६-१९७
५	**अनतकाय सयुक्त आहार करने का प्रायश्चित्त** अनन्तकाय के लक्षण, साराश ।	१९८-१९९
६	**आधाकर्मी दोष के सेवन का प्रायश्चित्त** आधाकर्म शब्द की वैकल्पिक व्याख्याए, आधाकर्म के तीन प्रकार, आधाकर्म के दो विभाग ।	१९९-२००
७-८	**गृहस्थ को निमित्त बताने का प्रायश्चित्त** निमित्त के प्रकार, बताने के हेतु, बताने के तरीके, वर्तमान का निमित्त बताना कैसे ? निमित्तकथन का निषेध आगमो मे, निमित्तकथन से दोष, निमित्त की सत्यासत्यता ।	२००-२०२
९-१०	**दीक्षित शिष्य के अपहरण का प्रायश्चित्त** शिष्य के दो प्रकार, अपहरण एव विपरिणमन का तरीका और दोनो म अन्तर ।	२०२
११-१२	**दीक्षार्थी के अपहरण करने का प्रायश्चित्त** "दिस" शब्द की व्याख्या एव सही अर्थ ।	२०३
१३	**अज्ञात आगतुक भिक्षु को कारण जाने बिना रखने का प्रायश्चित्त**	२०३-२०४
१४	**कलह करके आये भिक्षु के साथ आहार-सभोग रखने का प्रायश्चित्त—**	२०४
१५-१८	**विपरीत प्रायश्चित्त कहने एव देने का प्रायश्चित्त**	२०४-२०५
१९-२४	**प्रायश्चित्तयोग्य भिक्षु के साथ आहार करने का प्रायश्चित्त** शब्दो की व्याख्या, सूत्राशय, सूत्रसख्या निर्णय ।	२०५-२०६
२५-२८	**रात्रिभोजन दोष सम्बन्धी प्रायश्चित्त** प्रमुख शब्दो की व्याख्या एव सूत्राशय, विवेकज्ञान ।	२०६-२०८
२९	**रात्रि मे आहार-पानी के उद्गाल को निगलने का प्रायश्चित्त** विवेकज्ञान, तवे और पानी की बूद का दृष्टात ।	२०९

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
८०	**नैवेद्यपिंड खाने का प्रायश्चित्त**	२३४-२३५
	निश्राकृत-अनिश्राकृत दो भेद, प्रस्तुत प्रायश्चित्त निश्राकृत का, अनिश्राकृत का प्रायश्चित्त दूसरे उद्देशक मे, प्राचीन दान पद्धतिया ।	
८१-८२	**यथाछंद (स्वछद साधु) की वदना प्रशसा करने का प्रायश्चित्त**	२३५
	उत्सूत्र प्ररूपक पासत्थादि का वर्णन अन्यत्र ।	
८३-८४	**अयोग्य को दीक्षा या बडी दीक्षा देने का प्रायश्चित्त**	२३६-२३९
	सूत्राशय का स्पष्टीकरण, दीक्षा के अयोग्य २०, दीक्षा के अयोग्य तीन, अयोग्य को दीक्षा देने की आपवादिक छूट और विवेकज्ञान, दीक्षा के योग्य व्यक्ति के गुण १५, दीक्षादाता गुरु के गुण, दीक्षार्थी (वैरागी) के प्रति दीक्षादाता के कर्तव्य, नवदीक्षित के प्रति कर्तव्य, परीक्षणविधि ।	
८५	**असमर्थ से सेवा कराने का प्रायश्चित्त**	२३९-२४०
	अयोग्यता के लक्षण एव विवेकज्ञान ।	
८६-८९	**साधु-साध्वियो के एक स्थान पर ठहरने का प्रायश्चित्त**	२४०-२४१
	इस विषयक अन्य आगमस्थल, सूत्र-आशय, ठाणाग का आपवादिक विधान एव विवेक, उत्सर्ग-अपवाद एव प्रायश्चित्त का समन्वय ।	
९०	**रात्रि मे बासी रखे संयोज्य पदार्थ खाने का प्रायश्चित्त**	२४१-२४२
	प्रस्तुत सूत्र का आशय, शब्दो की व्याख्या, दो अचित्त नमक की विचारणा, आहार-अणाहार योग्य पदार्थ, अणाहार भी रात्रि मे खाने का निषेध ।	
९१	**बालमरण (आत्मघात) की प्रशसा करने का प्रायश्चित्त**	२४२-२४४
	बालमरण के बीस प्रकार, अपेक्षा से १२ प्रकार, दो मरण का ठाणाग मे विधान भी है, शब्दो की व्याख्या, प्रशसा से हानि, पडितमरण की प्रेरणा, शीलरक्षा हेतु वैहायसमरण आचाराग मे ।	
—	**उद्देशक का सूत्रक्रम युक्त सारांश**	२४४-२४५
—	**किन-किन सूत्रों का विषय अन्य आगमो मे है या नहीं है**	२४५-२४६

उद्देशक—१२

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-२	**त्रस प्राणियो के बन्धन विमोचन का प्रायश्चित्त**	२४७-२४८
	शय्यातर के प्रति करुणाभाव, पशु के प्रति करुणाभाव, श्रमण समाचारी, उक्त प्रवृत्ति से हानिया, मोह और अनुकपा के प्रायश्चित्त मे अन्तर, सयम की विधिए, नमिराजर्षि का उत्तर, परिस्थिति एव प्रायश्चित्त विवेक, केवल आलोचना प्रायश्चित्त, खोलना, बाधना आदि	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
	प्रवृतियो से तप प्रायश्चित्त, भगवान महावीर स्वामी की अनुकम्पा प्रवृत्ति का उदाहरण, भगवतीसूत्र शतक १५ से, प्रस्तुत सूत्र का सार ।	
३	**प्रत्याख्यानभंग करने का प्रायश्चित्त**	२४९-२५०
	शबलदोष, उत्तरगुण के पच्चक्खाण, प्रत्याख्यान भग करने से सभावित दोष, सूत्राशय, गीतार्थ की आज्ञा से आगारसेवन, विवेकज्ञान, दृढता की प्रेरणा ।	
४	**सचित्त नमक पानी आदि से सयुक्त आहार खाने का प्रायश्चित्त**	२५०
	मिश्रित आहार के उदाहरण सूत्राशय एव विवेकज्ञान, गृहस्थो के रिवाज, प्रायश्चित्त-विवेक ।	
५	**सरोमचर्म के उपयोग करने का प्रायश्चित्त**	२५१-२५५
	सूत्राशय का स्पष्टीकरण, सरोमचर्म उपयोग करने के दोष, परिस्थितिक विधान, निषेध का कारण, प्रायश्चित्तविवेक, रोमरहित चम का कल्प, अप्रतिलेख्यता से सम्बन्धित अन्य पुस्तक, तृण आदि, पुस्तक रखने के दोष, चार दृष्टान्त, तृण पचक के दोष, अपवादिक स्थिति मे ये उपकरण ग्रहण एव प्रायश्चित्त, आगम वर्णनो से फलित आशय, पुस्तक उपयोग करने रखने का विवेक ।	
६	**वस्त्राच्छादित पीढे पर बैठने का प्रायश्चित्त**	२५५
	"अहिट्ठेइ" क्रिया का विशाल अर्थ, पीढो की कल्प्याकल्प्यता, सूत्राशय एव दोष ।	
७	**निर्ग्रन्थी की चद्दर सिलवाने का प्रायश्चित्त**	२५५-२५६
	चद्दर के प्रकार, क्रमिक विवेक एव प्रायश्चित्त, दोषो की सभावना, सिलाई करने का प्रसग ।	
८	**पाच स्थावरकाय की विराधना का प्रायश्चित्त**	२५६-२६१
	अस्तित्व एव विराधना न करने के आगमस्थल, पृथ्वीकाय के सचित्त-अचित्त का परिचय एव विराधनास्थल गोचरी मे, मार्ग मे । अप्काय का परिचय और विराधना स्थल गोचरी और मार्ग, अग्नि की विराधना गोचरी या उपाश्रय मे, वायु की विराधना, हवा करने या अयतना मे कार्य करने मे, सूक्ष्म दृष्टि से विराधना, दशवैकालिक का विधान और अयतना का अर्थ, वनस्पति की विराधना मार्ग मे, गोचरी मे, परिष्ठापन मे । इनके अलग-अलग प्रायश्चित्त । त्रस की विराधना मार्ग मे, गोचरी मे, शय्या मे, उपधि मे । गवेषणा के साथ पदार्थों के परीक्षण मे भी कुशलता होना, विवेक और परिष्ठापन, जीवरहित मकान गवेषणा का विवेकज्ञान, उपधि का उभयकाल प्रतिलेखन एव धूप लगाना आदि, प्रायश्चित्त ।	
९	**वृक्ष पर चढने का प्रायश्चित्त**	२६१-२६२
	वृक्षो के तीन प्रकार एव प्रायश्चित्त, परिस्थितिया, सकारण का सूत्रोक्त प्रायश्चित्त, वृक्ष पर चढ़ने के दोष, अनन्तकायिक वृक्ष का सहारा ।	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१०	**गृहस्थ के बर्तनो मे आहार करने का प्रायश्चित्त** मुनि जीवन का ध्रुवाचार, दशवैकालिक अ ६ मे बताये दोष, अनाचार, सूयगडाग मे वर्णित निषेध, भाष्योक्त दोष एव विवेकज्ञान, वस्त्रप्रक्षालन सम्बन्धी पात्र उपयोग मे सूत्रोक्त दोष का अभाव ।	२६२-२६३
११	**गृहस्थ के वस्त्र उपयोग मे लेने का प्रायश्चित्त** सूत्राशय, दोषकथन, मुनि आचार ।	२६३
१२	**गृहस्थ के शय्या आसन को उपयोग मे लेने का प्रायश्चित्त** दशवैकालिक के आधार से सूत्राशय, परिस्थितिक विधान एव विवेक, सुप्रतिलेख्य ग्रहण, दुष्प्रतिलेख्य अप्रतिलेख्य का निषेध ।	२६४
१३	**गृहस्थ की चिकित्सा करने का प्रायश्चित्त** साधु का आचार एव आगम स्थल सकलन, चिकित्सा करने के दोष, परिस्थिति एव प्रायश्चित्त ।	२६४-२६५
१४	**पूर्वकर्म दोषयुक्त आहार लेने का प्रायश्चित्त** दोष का स्वरूप, गोचरी मे विचक्षणता, दायक दोष, आचाराग एव दशवैकालिक मे वर्णन, विवेकज्ञान एव प्रायश्चित्त विचारणा, पूर्वकर्म दोष वाले के अतिरिक्त व्यक्ति से अन्य पदार्थ लेना कल्पनीय ।	२६५-२६६
१५	**सचित्त जल मे उपयुक्त बर्तन या हाथ आदि से आहार लेने का प्रायश्चित्त** सूत्राशय, विराधना दोष, पश्चात् कर्म, चौथे उद्देशक से तुलना, "सीओदग परिभोगेण" की व्याख्या ।	२६६-२६७
१६-३१	**रूप की आसक्ति से विभिन्न स्थल देखने जाने का प्रायश्चित्त** शब्दो की व्याख्या, हीनाधिकता एव निर्णय, विविध व्याख्याए, सूत्रक्रम, आचाराग से तुलना एव उत्क्रम, आसक्ति निषेध के आगम स्थलो का सकलन, देखने जाने का प्रतिफल एव दोष, विवेकज्ञान ।	२६७-२७६
३२	**प्रथम प्रहर के आहार की मर्यादा उल्लघन का प्रायश्चित्त** तीसरे प्रहर की गोचरी, किसी भी एक तीसरे भाग की गोचरी, बृहत्कल्पसूत्र के विधान, निष्कर्ष और विवेक, सग्रह रखने के दोष, विवेकज्ञान एव प्रायश्चित्त विकल्प, पोरिसी माप का ज्ञान ।	२७६-२७७
३३	**दो कोस से आगे आहार ले जाने का प्रायश्चित्त** सूत्राशय, आगे ले जाने के दोष, अर्द्ध योजन का स्वरूप, मूल स्थान रूप उपाश्रय से क्षेत्रसीमा मापने का प्रमाण ।	२७८

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
३४-४१	**रात्रि में विलेपन करने का प्रायश्चित्त**	२७९-२८१
	सूत्राशय और तुलना, गोबर सम्बन्धी ज्ञान और विवेक । अन्य विलेपन के पदार्थ, आवश्यक परिस्थिति मे रात्रि उपयोग का सूत्रोक्त प्रायश्चित्त, विलेप्य पदार्थों के चार प्रकार ।	
४२-४३	**गृहस्थ से उपधि वहन कराने का प्रायश्चित्त**	२८१
	सयम विधि और अविधि का ज्ञान, हानिया एव दोष परम्परा, आहार देने के दोष, शुल्क-चिन्ता, विवेकज्ञान एव प्रायश्चित्त ।	
४४	**महानदी पार करने का प्रायश्चित्त**	२८२-२८३
	अन्य सूत्रो के वर्णन से सूत्राशय की स्पष्टता, दुक्खुत्तो तिक्खुत्तो दो शब्द क्यो ? "उत्तरण सतरण" की व्याख्या, पाच महानदियो के कथन से अन्य का ग्रहण, एरावती नदी मे कही अल्प पानी भी, उत्सर्ग-अपवाद का विवेकज्ञान ।	
—	**उद्देशक का सूत्रक्रमाकयुक्त साराश**	२८३-२८४
—	**किन-किन सूत्रो का विषय अन्य आगमो मे है अथवा नहीं है**	२८४-२८५

उद्देशक १३

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-८	**सचित पृथ्वी आदि पर खड़े रहने आदि का प्रायश्चित्त**	२८६-२८७
९-११	**अनावृत ऊचे स्थानो पर खड़े रहने आदि का प्रायश्चित्त**	२८७-२८८
	शब्दार्थ, स्थान-शय्या-निषद्या की विचारणा, निषेध का कारण, आचारांग मे विधान एव विराधनाओ का स्पष्टीकरण, 'अन्तरिक्षजात' का अर्थभ्रम एव सही अर्थ ।	
१२	**गृहस्थ को शिल्पकला आदि सिखाने का प्रायश्चित्त**	२८९
	शब्दो की व्याख्या, उपलक्षण से ७२ कला, सयम मे दोष ।	
१३-१६	**गृहस्थ को कठोर शब्द आदि से आशातना करने का प्रायश्चित्त**	२९०
	भिक्षु का भाषाविवेक, अविवेक से कलह एव कर्मबध, अन्य सूत्रो मे भाषाविवेकज्ञान ।	
१७-२७	**कौतुककर्म आदि के प्रायश्चित्त**	२९१-२९३
	शब्दो की व्याख्या युक्त स्पष्टार्थ, विशेष जानकारी हेतु दसवें उद्देशक की भलावण ।	
२८	**मार्गादि बताने का प्रायश्चित्त**	२९३
	शब्दार्थ, दोष की परिस्थितिया, आचाराग का विधान, सूत्र का तात्पर्य, परिस्थिति मे विवेक-पूर्ण भाषा एव प्रायश्चित्त ग्रहण ।	
२९-३०	**धातु एवं धन बताने का प्रायश्चित्त**	२९४
	धातु के तीन प्रकार, बताने पर दोष एव प्रायश्चित्त, निधि निकालने मे भी अनेक दोष ।	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
३१-४१	**पात्र आदि मे प्रतिबिम्ब देखने का प्रायश्चित्त**	२९४-२९६
	सूत्रोक्त विषयो की सगति, अनाचार, दोषो की सभावनाए, विवेकज्ञान ।	
४२-४५	**वमन आदि औषध प्रयोग करने के प्रायश्चित्त**	२९६-२९७
	चारो सूत्रों का आशय, बिना रोग के औषध प्रयोग से नुकसान, अपवाद सेवन सम्बन्धी विवेकज्ञान ।	
४६-६३	**पार्श्वस्थ आदि की वदना प्रशसा करने का प्रायश्चित्त**	२९७-३०५
	सूत्रक्रम विचारणा, अवदनीय कौन, अपवादिक वदन के कारण, न करने पर दोष, उत्सर्ग से वदनीय-अवदनीय, प्रशसा नही करने का सूत्राशय, चौथे उद्देशक की भलावण, काथिक, प्रेक्षणिक, मामक, साप्रसारिक का विश्लेषण भाष्यधार से, पासत्थादि कुल १० की तीन श्रेणी एव तुलनात्मक परिचय, सामान्य दोष का भी महत्त्व उपमा द्वारा, शुद्धाचारी और शिथिलाचारी की वास्तविक परिभाषा, प्रचलित समाचारियो के आगम से अतिरिक्त नये नियमो की सूची, इनसे शुद्धाचारी शिथिलाचारी की कसौटी करना उचित नही ।	
६४-७८	**उत्पादना के दोषो का प्रायश्चित्त**	३०५-३०७
	उत्पादनादोष का स्वरूप, व्याख्याए, उद्गमदोष की सम्भावना दीनवृत्ति, भिक्षु का विवेक, दोषो के प्रायश्चित्त ।	
—	**उद्देशक का सूत्रक्रमांकयुक्त साराश**	३०७-३०८
—	**किन-किन सूत्रो का विषय अन्य आगमो मे है या नही है**	३०८-३०९

उद्देशक १४

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-४	**क्रीत आदि छह उदगमदोषयुक्त पात्र लेने का प्रायश्चित्त**	३१० ३१३
	क्रीत आदि के अर्थ, क्रय-विक्रय वृत्ति के विषय मे आगमस्थल, अनुमोदन के तीन प्रकार, गृहस्थ के उपयोग मे आने के बाद क्रीतपात्र कल्पनीय, किन्तु आहार नही । सर्वभक्षी अग्नि की उपमा, प्रामृत्य आदि सभी दोषो का विवेचन, अनाचार, सबलदोष, विवेक और प्रायश्चित्त ।	
५	**अतिरिक्त पात्र गुरु आदि की आज्ञा बिना देने लेने का प्रायश्चित्त**	३१३ ३१४
	पात्रो की दुर्लभता, दूर से लाना, गीतार्थ को अधिकार, आज्ञाप्राप्ति का विवेक, व्यवहार-सूत्र का विधान ।	
६-७	**अतिरिक्त पात्र देने, न देने का प्रायश्चित्त**	३१४-३१६
	शब्दो की व्याख्या, सूत्रार्थ दो प्रकार से, विकलाग को अतिरिक्त पात्र देने का कारण, यह प्रायश्चित्त गणप्रमुख के लिए ।	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
८-९	**अयोग्य पात्र रखने का एव योग्य पात्र परठने का प्रायश्चित्त**	३१६
	सूत्राशय, परठने रखने मे हेतु, प्रायश्चित्त विधान ।	
१०-११	**पात्र को सुन्दर या खराब करने का प्रायश्चित्त**	३१६-३१७
	उपयोग मे आने योग्य पात्र होना चाहिए, सुन्दर खराब का लक्ष्य नही होना ।	
१२-१९	**पात्रपरिकर्म करने का प्रायश्चित्त**	३१७-३१९
	उपयोग मे ग्राने योग्य हो तो परिकर्म नही करना, बहुदेसिक और बहुदेवसिक शब्द का स्पष्टार्थ, परिस्थितिक छूट, कारण ग्रकारण, सूत्र सख्या विचारणा एवं निर्णय ।	
२०-३०	**अकल्पनीय स्थानो मे पात्र सुखाने का प्रायश्चित्त**	३१९-३२१
	निषेध का कारण —जीव विराधना ग्रौर गिरने फूटने का भय ।	
३१-३६	**त्रसप्राणी, जाले आदि निकाल कर पात्र लेने का प्रायश्चित्त**	३२१-३२३
	पात्र की गवेषणा मे ध्यान रखने योग्य सूत्राशय की सूची, सूत्र सख्या व क्रम मे भिन्नता, अग्निकाय पात्र मे कैसे ? दोष और विवेक ।	
३७	**पात्र मे कोरणी (चित्र) करने का प्रायश्चित्त**	३२३
	विभूषावृति, झूषिरदोष, प्रमादवृद्धि ।	
३८	**मार्ग आदि मे पात्र की याचना करने का प्रायश्चित्त**	३२३
	सूत्राशय, याचना करने मे विवेक, अविवेक करने मे होने वाले दोष ।	
३९	**परिषद मे से उठाकर पात्र की याचना करने का प्रायश्चित्त**	३२४
४०-४१	**पात्र के लिए निवास करने का प्रायश्चित्त**	३२४-३२५
	गृहस्थ को सकल्पबद्ध करना, दोषोत्पत्ति, विवेकज्ञान ।	
—	**उद्देशक का सूत्रक्रमांकयुक्त साराश**	३२५
—	**किन-किन सूत्रो के विषय का वर्णन आगमो मे है या नहीं है**	३२६

उद्देशक १५

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-४	**सामान्य साधु की आशातना करने का प्रायश्चित्त**	३२७
	स्वगच्छ या ग्रन्यगच्छ के साधु-साध्वियो के साथ सद्व्यवहार, अन्य उपदेशको से तुलना ।	
५-१२	**सचित्त आम्र खाने-चूसने सम्बन्धी प्रायश्चित्त**	३२७-३२९
	एक फल से अनेक फलो का कथन, शब्दो की तुलना आचाराग से, व्याख्या मे भी तुलना, पुन प्रयुक्त "अब" के अनेक ग्रर्थ, ग्राचाराग का पाठ शुद्ध एव विस्तृत ।	
१३-६६	**गृहस्थ से शरीरपरिकर्म कराने का प्रायश्चित्त**	३२९

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
६७-७५	**अकल्पनीय स्थानो मे परठने का प्रायश्चित्त**	३३०-३३२
	शब्द सख्या, सूत्र सख्या एव स्थानो का परिचय, दोषोपत्ति, अपेक्षा से इन स्थानो मे परठना कल्पनीय भी, तीसरे उद्देशक से समानता, सूत्रो का आशय मल-त्याग से है। साधु का ठहरने का मकान परिष्ठापनभूमि से युक्त होना, "जुग्ग-जाण" शब्द की विचारणा, परिव्राजक के आश्रम, शाला, गृह की विचारणा।	
७६	**गृहस्थ को आहार देने का प्रायश्चित्त**	३३२-३३३
	साधु का आचार, तीसरा महाव्रत दूषित एव अन्य दोष, आचाराग मे परिस्थिति से पुन देने का विधान।	
७७-८६	**पार्श्वस्थ आदि के साथ आहार लेन-देन का प्रायश्चित्त**	३३३-३३४
	आहार-पानी साभोगिक के साथ ही।	
८७	**गृहस्थ को वस्त्रादि देने का प्रायश्चित्त**	३३५
८८-९७	**पार्श्वस्थ आदि से वस्त्रादि के लेन-देन करने का प्रायश्चित्त**	३३५-३३६
९८	**गवेषणा किए बिना वस्त्र-ग्रहण करने का प्रायश्चित्त**	३३७-३३८
	सूत्रोक्त शब्दो का स्पष्टार्थ एव सूत्राशय, गवेषणाविधि।	
९९-१५२	**विभूषा के लिए शरीरपरिकर्म करने का प्रायश्चित्त**	३३८
१५३-१५४	**विभूषा के लिए उपकरण रखने एव धोने का प्रायश्चित्त**	३३८-३४०
	उपधि रखने का सूत्रोक्त प्रयोजन, दोनो सूत्रो का तात्पर्य, बिना विभूषावृत्ति से धोना कल्पनीय, विशिष्ट साधन मे धोना अकल्पनीय, अन्य आगमो के विभूषानिषेध सूचक स्थलो की सूची, सूत्र का सारांश।	
—	**उद्देशक का सूत्रक्रमांकयुक्त साराश**	३४०-३४१
—	**किन-किन सूत्रो के विषय का कथन** अन्य आगमो मे है या नहीं	३४१

उद्देशक १६

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-३	**निषिद्ध शय्या मे ठहरने का प्रायश्चित्त**	३४२-३४४
	ससागारिक शय्या का विस्तृत अर्थ एव दोष, विवेक एव प्रायश्चित्त, जलयुक्त शय्या की विचारणा, अग्नियुक्त शय्या की विचारणा, विराधना आदि दोष, वर्तमान मे उपलब्ध विद्युत, गीतार्थ-अगीतार्थ, मेन स्वीच एव क्वाट्ज की घडिया।	
४-११	**इक्षु खाने चूसने सम्बन्धी प्रायश्चित्त**	३४४-३४५
	यह फल से भिन्न विभाग है, आचाराग मे निषेध एव विधान भी, खाने एव परठने का विवेक, शब्दो की हीनाधिकता एव निर्णय।	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१२	**जंगलवासी एवं जंगल में भ्रमणशील व्यक्तियों का आहार लेने का प्रायश्चित्त** शब्दों के अर्थ एवं सूत्राशय ।	३४५
१३-१४	**शुद्धाचारी और शिथिलाचारी के अयथार्थ कथन का प्रायश्चित्त** साधक की भिन्न-भिन्न अवस्था, शब्दों की व्याख्या, यथार्थ जानकारी, अयथार्थ कथन के दोष, वचनविवेक ।	३४६-३४७
१५	**शुद्धाचारी गण से शिथिलाचारी गण में जाने का प्रायश्चित्त** गणपरिवर्तन, कारण, विधि, गणपरिवर्तन का प्रमुख आशय, सूत्राशय, गण-सक्रमण में भविष्य का पूर्ण विचार करना आवश्यक, पापश्रमण, सबल दोष ।	३४७-३४८
१६-२४	**कदाग्रही के साथ लेन-देन करने का प्रायश्चित्त** 'वुग्गह वक्कताण'' की व्याख्या और सूत्राशय, दोषों की संभावनाएं, अशिष्ट एव असभ्य व्यवहार भी नहीं करना, परिस्थिति में गीतार्थ को अधिकार एव प्रायश्चित्त, सूत्रों की हीनाधिकता ।	३४८-३५०
२५-२६	**अनार्यक्षेत्र एवं लम्बे मार्गों में विहार करने का प्रायश्चित्त** आने वाली आपत्तियां एव दोष, परिस्थिति में छूट, सार एव विवेक ।	३५०-३५१
२७-३२	**जुगुप्सित कुलों से सम्बन्धित प्रायश्चित्त** वर्जनीय अवर्जनीय कुल, सूत्र का आशय, उदारता, विचारों की साम्यता, सामाजिक मर्यादा ।	३५१-३५२
३३-३५	**आहार रखने के स्थान सम्बन्धी प्रायश्चित्त** पृथ्वी, छींका आदि पर आहार नहीं रखने के कारण, परिस्थिति से छूट, विवेकज्ञान ।	३५३-३५४
३६-३७	**गृहस्थ के सामने बैठकर आहार करने का प्रायश्चित्त** सूत्राशय का स्पष्टीकरण, उत्पन्न होने वाले दोष, तप में आगार, विवेकज्ञान ।	३५४-३५५
३८	**आचार्य उपाध्याय की सम्यक् आराधना न करने का प्रायश्चित्त** अविनय एव विवेकज्ञान, प्रायश्चित्त और सभवित दोष, आसन को वदन क्यों ?	३५५
३९	**मर्यादा से अधिक उपकरण रखने का प्रायश्चित्त** आगमों में उपकरण वर्णन एव उनकी किंचित् मर्यादा, चादर एव उसके माप, चोलपट्टक माप एव सख्या, मुखवस्त्रिका का ज्ञान-विज्ञान, कबलविवेक विचारणा, आसन, पात्र के वस्त्र, पादप्रोंछन, निशीथिया, साध्वी के विशेष वस्त्रोपकरण, पात्र की जाति सख्या की आगमों से विचारणा एव वर्तमान परम्पराएं, रजोहरणस्वरूप, सपूर्ण उपकरणज्ञान की तालिका, औपग्रहिक उपकरण आगम में और व्याख्या में, प्रवृत्ति में प्रचलित अतिरिक्त उपकरण, उपकरण भी परिग्रह, प्रायश्चित्तविवेक ।	३५६-३६८

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
४०-५०	विराधना वाले स्थानो मे मल-मूत्र परठने का प्रायश्चित्त	३६८-३६९
—	उद्देशक का सूत्रक्रमाकयुक्त साराश	३६९
—	किन-किन सूत्रो के विषय का वर्णन अन्य आगमो मे है या नहीं है	३६९-३७०

उद्देशक १७

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-१४	कुतूहल की अनेक प्रवृत्तियो का प्रायश्चित्त	३७२-३७५
१५-१२२	श्रमण-श्रमणी का परस्पर गृहस्थ द्वारा शरीरपरिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त	३७५-३७६
१२३-१२४	सदृश निर्ग्रन्थ निर्ग्रंथी को स्थान न देने का प्रायश्चित्त	३७६
१२५-१२७	मालोपहृत और मट्टिओपलिप्त दोष का प्रायश्चित्त मालोपहृत का सही अर्थ एव दोष, मट्टिओपलिप्त का अर्थविस्तार।	३७६-३७८
१२८-१३१	सचित्त पृथ्वी, पानी आदि पर से आहार लेने का प्रायश्चित्त	३७८-३८०
१३२	वायुकाय की विराधना से आहार लेने का प्रायश्चित्त	३८०-३८१
१३३	तत्काल धोये धोवण लेने का प्रायश्चित्त धोवण अनेक प्रकार के, विभिन्न आगमो मे धोवण वर्णन, उदाहरण रूप मे सूचित आगम के कल्प्य-अकल्प्य धोवण की नामावलि, गर्म जल, धोवण को चख कर लेना, सोवीर और आम्लकाजिक विचारणा, शुद्धोदक का भ्रमित अर्थ एव समाधान, साधु का स्वय ही पानी लेना, अचित्त पानी पुन सचित्त कब अर्थात् धोवण और गर्म पानी का अचित्त रहने का काल और उसके प्राचीन प्रमाण, तपस्या मे भी धोवण पानी का विधान, साराश।	३८१-३८६
१३४	स्वय को आचार्य लक्षणो से युक्त होने का प्रचार करने का प्रायश्चित्त शारीरिक लक्षण कथन, अभिमान से हानि, विवेकज्ञान।	३८६-३८७
१३५	गायन आदि करने का प्रायश्चित्त	३८७-३८८
१३६-१५५	विभिन्न शब्द श्रवणार्थ गमन एव आसक्ति का प्रायश्चित्त तत, वितत आदि का अर्थ, विवेकज्ञान, १२वे उद्देशक की भलावण।	३८८-३९०
—	उद्देशक का सूत्रक्रमाकयुक्त सारांश	३९०
—	किन-किन सूत्रो का विषय अन्य आगमो मे है या नही है	३९०-३९१

उद्देशक १८

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-३२	नौकाविहार सम्बन्धी प्रायश्चित्त नौकाविहार के कारण अकारण, "जोयण-मेरा" का अर्थ, बत्तीस सूत्रो का अलग-अलग	३९२-३९९

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
	आशय, नौका विहार का विवेकज्ञान, प्रवचन-प्रभावना व नौकाविहार, उत्सर्ग-अपवाद-विवेक, अन्य वाहन और नौकाप्रयोग की तुलना, गीतार्थ का अधिकार, प्रायश्चित्त ।	
३३-७३	**वस्त्र सम्बन्धी विभिन्न प्रायश्चित्त**	३९९-४००
	१४वें उद्देशक की भलावण एव सूत्रसख्या विचारणा ।	
—	**उद्देशक का सूत्रक्रमांकयुक्त सारांश**	४००
—	**किन-किन सूत्रो का विषय अन्य आगमो मे है या नहीं है**	४००-४०१

उद्देशक १९

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-७	**औषध सम्बन्धी क्रीतादि दोषो का प्रायश्चित्त**	४०२-४०५
	आगमो मे "वियड" शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थो म, प्रासगिक अर्थ-निष्कर्ष, सूत्रो के आशय, "वियड" का "मद्य" परक अर्थ आगमसम्मत नही, औषध सेवन-असेवन का क्रमिक विवेक, औषध की मात्रा का विवेक, विहार मे औषध कूटना पीसना आदि क्रियाए ।	
८	**चार सध्याकाल मे स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त**	४०५-४०७
	चार सध्या का परिचय, अस्वाध्याय के कारण, सध्याओ का समय निर्धारण, प्रायश्चित्त ।	
९-१०	**उत्काल मे कालिकश्रुत के उच्चारण का प्रायश्चित्त**	४०७-४०९
	सूत्राशय का स्पष्टीकरण, कालिक उत्कालिक क स्वरूप की विचारणा एव सूची, कुल आगामो की सख्या विचारणा, आगम की परिभाषा, नन्दीसूत्र मे मान्य आगम, उसके रचनाकारो की विचारणा, आगम मानने का सही निष्कर्ष, सूत्रोक्त प्रायश्चित्त का तात्पर्य ।	
११-१२	**महा-महोत्सवो मे स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त**	४१०-४१२
	आठ दिन और उनकी विचारणा, देवो से सम्बन्ध, स्वाध्याय निषेध का कारण, "आषाढी प्रतिपदा" आदि शब्दो का सही अर्थ एव अमान मान्यता की आगम से विचारणा, १० दिन मानने की परम्परा भ्रम से, सूत्रोक्त प्रायश्चित्त ।	
१३	**स्वाध्यायकाल मे स्वाध्याय नहीं करने का प्रायश्चित्त**	४१२-४१४
	सूत्राशय, स्वाध्याय न करने से हानि, स्वाध्याय करने के लाभ, स्वाध्याय के लिए प्रेरक आगमवाक्यसग्रह, स्वाध्याय सम्बन्धी दिनचर्या, सूत्र कठस्थ करना और याद रखना आवश्यक, भिक्षु का विवेकज्ञान ।	
१४	**अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त**	४१४-४१८
	अस्वाध्याय सम्बन्धी आगमस्थल, कुल ३२ अस्वाध्याय, २० अस्वाध्याय स्थान की व्याख्या और उनका कालमान भाष्य के आधार से, इन अस्वाध्यायो सम्बन्धी विभिन्न दोष, अस्वा-	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
	ध्याय का प्रमुख कारण और स्वाध्याय पद्धति, आवश्यक सूत्र एव उसके पाठ नमस्कार मन्त्र आदि, अस्वाध्याय स्वाध्याय की प्रतिलेखन विधि एव उपसहार ।	
१५	**स्वशरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय मे स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त**	४१८-४१९
	स्वकीय अस्वाध्याय के दो प्रकार और उनका विवेक, मासिकधर्म, देव-वाणी, सवर-प्रवृत्ति, स्मरण स्तुति आदि की विचारणा, भ्रति प्ररूपण दोष, विवेकज्ञान ।	
१६-१७	**विपरीत क्रम से आगमो की वाचना देने का प्रायश्चित्त**	४१९-४२२
	शब्दो की व्याख्या, सूत्राशय का स्पष्टीकरण, व्यवहारसूत्रोक्त क्रम, "नव बभचेर" का तात्पर्य, "उत्तमसुय" का तात्पर्य, दोनो सूत्रो के सम्बन्ध से उत्सर्ग-अपवाद, व्युत्क्रम वाचना के दोष, सार रूप वाचनाक्रम की सूत्रसूची ।	
१८-२१	**अयोग्य को वाचना देने और योग्य को वाचना न देने का प्रायश्चित्त**	४२२-४२५
	योग्य अयोग्य के लक्षण, वाचनाविधि, भाष्योक्त अयोग्य, हानि-लाभ । व्यक्त की परिभाषा, कच्चे घडे का दृष्टात, सूत्र सख्या वृद्धि विचारणा, छह सूत्रो का सम्बन्धित अर्थ, प्रायश्चित्त ।	
२२	**वाचना देने मे पक्षपात करने का प्रायश्चित्त**	४२५
	सूत्राशय का स्पष्टीकरण, राग-द्वेष के भाव, हानि एव प्रायश्चित्त ।	
२३	**अदत्त वाचना ग्रहण करने का प्रायश्चित्त**	४२५-४२६
	अदत्त वाचन के कारण, परिस्थिति गम्भीर विवेक, "गिर" का अर्थ, आचार्य-उपाध्याय दो शब्द क्यो ? वर्तमान मे गच्छ एव आचार्य-उपाध्यायो की स्थिति, शिष्य का विवेकयुक्त कर्तव्य ।	
२४-२५	**गृहस्थ के साथ वाचना के आदान-प्रदान करने का प्रायश्चित्त**	४२६-४२७
	मिथ्यात्वभावित गृहस्थ, भाष्योक्त दोष, श्रमणोपासक गृहस्थ को शास्त्रवाचना सिद्धि आगामो से, लाभ की अपेक्षा से गीतार्थ का अपवाद आचरण ।	
२६-३५	**पार्श्वस्थ आदि के साथ वाचना के आदान-प्रदान का प्रायश्चित्त**	४२७-४२८
	पूर्व के उद्देशो की भलावण एव आपवादिक छूट ।	
—	**उद्देशक का सूत्रक्रमांकयुक्त साराश**	४२९
—	**उपसंहार—उद्देशक की विशेषता**	
—	**किन-किन सूत्रो का विषय अन्य आगमो मे है या नहीं है**	४२९-४३०

उद्देशक २०

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१-१४	**सकपट निष्कपट आलोचक के प्रायश्चित्त**	४३१-४३९
	सूत्राशय, आलोचना सुनने वाले की योग्यता सूत्रो मे, आलोचना के दोष, आलोचनाक्रम,	

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
	आलोचना नही करने की अज्ञानदशा, मायावी, आलोचना का महत्त्व, प्रतिसेवना के १० कारण, दस प्रकार के प्रायश्चित्त का विश्लेषण, अतिक्रम आदि चार का विश्लेषण, "तेण पर" का आशय, तप या छेद का प्रायश्चित्त ६ मास के आगे नही, उत्कृष्ट प्रायश्चित्त देने का विवेकज्ञान ।	
१५-१८	**प्रायश्चित्त की प्रस्थापना मे पुन· प्रतिसेवना के आरोपण**	४४०-४४५
	सूत्राशय, तपवहनविधि के विच्छेद की विचारणा ।	
१९-२४	**दो मास के प्रायश्चित्त की स्थापित आरोपणा**	४४५-४४७
	सानुग्रह-निरनुग्रह प्रायश्चित्त, दो मास बीस दिन का तात्पर्य, सानुग्रह के दिन निकालने की गणित, ठाणाग कथित पाच प्रकार की आरोपणा एव उसका यहा प्रसग ।	
२५-२९	**दो मास प्रायश्चित्त की प्रस्थापिता, आरोपणा एव क्रमिकवृद्धि**	४४८-४४९
	सूत्राशय, सानुग्रह प्रायश्चित्त अनेक बार भी, "तेण पर" की अर्थविचारणा ।	
३०-३५	**एक मास प्रायश्चित्त की स्थापित आरोपणा**	४४९-४५१
३६-४४	**एक मास प्रायश्चित्त की प्रस्थापिता, आरोपणा एव क्रमिकवृद्धि**	४५१-४५३
४५-५१	**मासिक और दो मासिक प्रायश्चित्त की प्रस्थापिता, आरोपणा एव क्रमिकवृद्धि**	४५३-४५५
—	**उद्देशक का सूत्रक्रमाकयुक्त साराश**	४५५-४५६
—	**उपसहार**	४५६-४५८
	शुद्ध तप के अनेक विकल्प गीतार्थ से समझना एव दी गई तालिका से विस्तृत प्रायश्चित्त अनुभव के लिए भाष्य आदि का अध्ययन, निशीथसूत्र की सम्पूर्ण सूत्र सख्या विचारणा एव निष्कर्ष, बीस उद्देशक की क्रम से सूत्रसख्यातालिका, प्रस्तुत सपादन एव भाष्यसूचित सूत्रसख्या की तुलनात्मक तालिका ।	

णिसीहसुत्तं

निशीथसूत्र

प्राथमिक

प्रायश्चित्त स्वरूप तालिका

पराधीनता में या असावधानी में होनेवाले अतिचारादि का प्रायश्चित्त–

क्रम	प्रायश्चित्तनाम	जघन्य तप	मध्यम तप	उत्कृष्ट तप
१	लघुमास	चार एकाशना	पन्द्रह एकाशना	सत्तावीस एकाशना
२	गुरुमास	चार निर्विकृतिक	पन्द्रह निर्विकृतिक	तीस निर्विकृतिक
३	लघु चौमासी	चार आयबिल	साठ निर्विकृतिक	एक सौ आठ उपवास
४	गुरु चौमासी	चार उपवास	चार छट्ठ (बेला)	एक सौ बीस उपवास या चार मास दीक्षा पर्याय छेद

आतुरता से लगनेवाले अतिचारादि का प्रायश्चित्त–

क्रम	प्रायश्चित्तनाम	जघन्य तप	मध्यम तप	उत्कृष्ट तप
१	लघुमास	चार आयबिल	पन्द्रह आयबिल	सत्तावीस आयबिल
२	गुरुमास	चार आयबिल एव पारणे मे धार विगय का त्याग	पन्द्रह आयबिल एव पारणे मे धार विगय का त्याग	तीस आयबिल, पारणे मे धार विगय का त्याग
३	लघु चौमासी	चार उपवास	चार छट्ठ (बेले)	एक सौ आठ उपवास
४.	गुरु चौमासी	चार छट्ठ या चार दिन का छेद	चार अट्ठम या छह दिन का छेद	एक सौ बीस उपवास या चार मास का छेद

तीव्र मोहोदय से (आसक्ति से) लगने वाले अतिचारादि के प्रायश्चित्त–

क्रम प्रायश्चित्तनाम	जघन्य तप	मध्यम तप	उत्कृष्ट तप
१. लघुमास	चार उपवास	पन्द्रह उपवास	सत्तावीस उपवास
२ गुरुमास	चार उपवास, चौविहार त्याग	पन्द्रह उपवास, चौविहार त्याग	तीस उपवास, चौविहार त्याग
३ लघु चौमासी	चार बेले, पारणे में आयबिल	चार तेले, पारणे मे आयबिल	एक सौ आठ उपवास, पारणे में आयबिल
४ गुरु चौमासी	चार तेले, पारणे मे आयबिल या ४० दिन का दीक्षाछेद	पन्द्रह तेले, पारणे मे आयबिल या ६० दिन का दीक्षाछेद	एक सौ बीस उपवास, पारणे मे आयबिल या पुन दीक्षा या १२० दिन का दीक्षाछेद ।

सामान्य विवक्षा से जघन्य और उत्कृष्ट दो प्रकार के प्रायश्चित्तो मे भी सभी प्रकार के प्रायश्चित्त समाविष्ट हो जाते हैं ।

भाष्यकार ने विशेष विवक्षा से तीन प्रकार के प्रायश्चित्त कहे हैं—१. जघन्य, २ मध्यम, ३ उत्कृष्ट ।

प्रतिसेवी की वय, सहिष्णुता और देश-काल के अनुसार गीतार्थ मुनि तालिका मे कहे प्रायश्चित्त से हीनाधिक तप-छेद आदि दे सकते हैं ।

एक उपवास के समकक्ष तप—

१. अडतालीस नवकारसी	[४८]	=	एक उपवास
२. चौवीस पोरसी	[२४]	=	,,
३ सोलह डेढ पोरसी	[१६]	=	,,
४ आठ पुरिमार्ध (दो पोरसी)	[८]	=	,,
५. चार एकाशन	[४]	=	,,
६. निवी तीन	[३]	=	,,
७ दो आयबिल	[२]	=	,,
८ दो हजार गाथाओ का स्वाध्याय	[२०००]	=	,,

□

प्रथम उद्देशक

वेद-मोहोदय का प्रायश्चित्त–

१. जे भिक्खू हत्थकम्मं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१. जो भिक्षु हस्तकर्म करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन

इस सूत्र को पढते ही जिज्ञासु स्वाध्यायी के हृदय मे सहसा एक जिज्ञासा जागृत होती है कि इस आगम के प्रारम्भ मे ही यह सूत्र कैसा है ?

प्रारम्भ मे तो मगलाचरण या उत्थानिका ही होनी चाहिए । यह सूत्र तो अन्यत्र भी कही लिया जा सकता था ।

इसका समाधान यह है कि आगमो की सकलनशैली ही ऐसी है कि उनमे **'अथ से इति'** तक अभीष्ट विषयो का सकलन किया गया है ।

उदाहरण के लिए आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायाग तथा बृहत्कल्प, व्यवहार आदि सूत्र देखें ।

इनमें न मगलाचरण सूत्र है और न उत्थानिका है । क्योकि आगमो में प्रतिपादित श्रुतधर्म और चारित्रधर्म स्वय मगल है, अतएव आगम और उनके प्रत्येक सूत्र मगल रूप है, फिर अतिरिक्त मगलाचरण की आवश्यकता ही क्या है ?

अथवा—प्रायश्चित्त तप है, दशवैकालिक सूत्र के अनुसार तप मगल है, अतएव प्रायश्चित्त-प्ररूपक पूर्ण निशीथसूत्र मगल रूप ही है—इसलिए अतिरिक्त मगलाचरण अनावश्यक है ।

इस सम्बन्ध के चिन्तनशील आगम स्वाध्यायियो का अभिमत यह है कि जिन आगमो के प्रारम्भ मे या अन्त में जो मगलाचरण सूत्र है या उत्थानिकायें है, वे सब लिपिककाल में या अन्य किसी अज्ञात काल मे किसी भावुक आगमानुरागी ने भक्तिवश बाद मे जोड दिए है ।

प्रमाणरूप में प्रस्तुत है—

लिपि-नमस्कार

भगवतीसूत्र के प्रारम्भ मे **"नमो बंभीए लिवीए"** जो नमस्कार रूप मंगलाचरण है वह लिपिककाल से प्रचलित हुआ है, क्योकि जब तक श्रुतपरम्परा कठस्थ रही तब तक लिपि को नमस्कार करने की उपादेयता ही क्या थी ?

श्रुतदेवता नमस्कार

इसी प्रकार भगवतीसूत्र के अन्त मे श्रुतदेवता आदि अनेक देव-देवियो को नमस्कार रूप अन्तिम मगल भी किसी युग मे जुडा है। टीकाकार श्री अभयदेवसूरि ने भी इन्हे लिपिकर्ता के "मगल" कहकर व्याख्या नही की है।

व्रती श्रमण अव्रती श्रुतदेवता यक्ष को नमस्कार करे यह सगत नही होता, कुछ आगमज्ञ श्रुतदेवता गणधर को ही मानते है किन्तु गणधर तो सूत्रागम के स्वय स्रष्टा हैं, अत वे अपने आपको नमस्कार करे यह भी युक्तिसगत प्रतीत नही होता है।

जब लिपिक आगमो की प्रतिलिपियाँ करने लगे तो उनमें से किसी एक लिपिक ने भगवती के प्रारम्भ में **"नमो बंभीए लिवीए"** लिखकर नमस्कार रूप मगलाचरण किया होगा, जिससे भगवती की प्रतिलिपि निर्विघ्न पूर्ण हो। क्योकि भगवती ही सबसे बडा आगम सदा रहा है। उस प्रति की जितनी प्रतिलिपियाँ हुईं, उनमे यह लिपि नमस्कार का मगलाचरण सूत्र स्थायी हो गया।

यद्यपि लिपिक ब्राह्मी लिपि मे नही लिखते थे फिर भी उनकी यह श्रद्धा थी कि आदि लिपि "ब्राह्मी लिपि" है, उसे नमस्कार करने पर लिपि का व्यवसाय हमे समृद्धि देगा।

प्रारम्भ मे प्रयुक्त उत्थानिकायें

उपलब्ध आगमो की वाचना सुधर्मास्वामी की वाचना मानी जाती है, उनकी ही वाचना मे उनका परिचय और उनके विहार का वर्णन जिस प्रकार इन उत्थानिकाओ मे वर्णित है उसे देखते हुए सामान्य पाठक भी यह समझ सकता है कि ये उत्थानिकाये किसी अन्य की ही कृति है।

उत्थानिकाओ की रचनाशैली से ही यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है—

उदाहरण के लिए प्रस्तुत है—उत्थानिका का एक अश—

"तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मे णामं थेरे जाइसंपन्ने जाव गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपाणयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणामेव उवागच्छइ " —ज्ञाताधर्मकथा अ १, सू १

उस काल उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी आर्य सुधर्मा नाम के स्थविर जातिसम्पन्न 'यावत्' एक ग्राम से दूसरे ग्राम विचरते हुए सुखे सुखे विहार करते हुए जहाँ चम्पा-नगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था वहाँ आए ।

उत्थानिका के इस अश को पढकर सुज्ञ पाठक स्वय निर्णय करें कि क्या ये उत्थानिकाए स्वय सुधर्मास्वानी द्वारा सकलित हैं ? यदि नही तो यह निश्चित है कि बाद में ये जोडी गई है। इसलिए सूत्रों मे मंगलाचरण सूत्र और उत्थानिकाए मौलिक रचना नही हैं।

इसीलिए इस निशीथसूत्र मे मगलाचरण सूत्र और उत्थानिका सूत्र कहे बिना ही वेदमोहनीय के उदय का प्रायश्चित्त सूत्र कहा गया है।

अनगार धर्म की आराधना मे ब्रह्मचर्य महाव्रत की आराधना अति कठिन है। इस एक के पूर्ण पालन से सभी महाव्रतो का पूर्ण पालन सम्भव है और इस एक के भग होने पर सभी महाव्रतो का भग होना सुनिश्चित है।

इस महाव्रत का महत्त्व इतना है कि इसके पूर्ण पालक के सामने देव, दानव, मानव आदि सभी नतमस्तक रहते हैं ।

इसके माहात्म्य का और इसकी साधना के साधक बाधक कारणो का आगमो मे विस्तृत वर्णन है ।

इसके पालक साधु-साध्विया वेदमोहनीय के आकस्मिक प्रबल उदय से होने वाले अतिक्रमादि के आचरणो से सतत सजग रहकर इस महाव्रत की सुरक्षा करते रहे, इसी भावना से इस आगम मे यह प्रथम प्रायश्चित्त सूत्र प्रस्तुत किया गया है ।

जे भिक्खू—बृहत्कल्प सूत्र उद्देशक ३-४-५ के किसी-किसी सूत्र मे केवल "भिक्षु या श्रमण निर्ग्रंथ" इस तरह पुरुष प्रधान शब्द का प्रयोग हुआ है । तथापि ये विधान भिक्षु, भिक्षुणी दोनो के लिये उपयुक्त हैं । आचारागसूत्र मे भिक्षु, भिक्षुणी तथा बृहत्कल्पसूत्र मे निर्ग्रंथ, निर्ग्रन्थी दोनो पदो का प्रयोग है, रचनापद्धति के अनेक प्रकार हो सकते है, फिर भी जहाँ जो अर्थ सगत होता है, वह समझा जाता है ।

निशीथसूत्र मे सत्रहवे उद्देशक के कुछ सूत्रो को छोडकर प्राय सर्वत्र "भिक्षु" शब्द के प्रयोग से ही प्रायश्चित्त कथन हुआ है, फिर भी उपलक्षण से साध्वी के लिए यथायोग्य प्रायश्चित्त-विधान समझ लेने चाहिए ।

हत्थकम्म—वेद-मोहोदय से प्रादुर्भूत विभावदशाजन्य विकृत विचारो से हस्तकर्म का सकल्प क्रियान्वित होता है ।

इसके दुष्परिणामो का विस्तृत वर्णन एव इससे मुक्ति पाने के उपायो को जानने के लिये भाष्य एव चूर्णि का विवेकपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिये ।

करेइ, करेंतं वा साइज्जइ—सूत्र मे कराने की क्रिया नही दी गई है । "कराना" भी एक प्रकार का अनुमोदन ही है, क्योंकि कराने मे अनुमोदन निश्चित है जिससे कराने की क्रिया का भी ग्रहण हो जाता है । चूर्णिकार ने भी—

"साइज्जणा दुविहा—कारावणे, अनुमोदने"

इस प्रकार व्याख्या की है तथा आदि और अत के कथन से मध्य का ग्रहण भी हो सकता है । अत. जहाँ पर भी "करेइ, करेत वा साइज्जइ पाठ है, वहाँ यह अर्थ समझ लेना चाहिये कि "करता है या करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।"

किन्तु जहाँ पर "कारेइ कारेत वा साइज्जइ" पाठ हो वहाँ "अन्य से करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है," इस प्रकार अर्थ समझना चाहिये ।

वर्तमान में उपलब्ध निशीथसूत्र की प्रतियो में प्रत्येक सूत्र के साथ प्रायश्चित्त सूचक पाठ नही है, किन्तु प्राचीन काल मे प्रत्येक सूत्र के साथ प्रायश्चित्त पाठ रहा होगा । चूर्णिकार प्राय अनेक सूत्रों के शब्दार्थ और विवेचन में प्रायश्चित्त का कथन करते है ।

उदाहरण के रूप मे—प्रथम उद्देशक के द्वितीय सूत्र की, द्वितीय उद्देशक के प्रथम सूत्र की, तृतीय उद्देशक के प्रथम सूत्र की चूर्णि देखे, इन सूत्रो मे—**"तस्स मासगुरुपच्छित्तं, तस्स मासलहु-पच्छित्तं "तस्स मासलहुं"** इत्यादि प्रकार से व्याख्या की गई है। किन्तु उद्देशक के अतिम सूत्र के साथ संलग्न उपलब्ध प्रायश्चित्त पाठ की व्याख्या प्राय नही की गई है। अन्य सूत्रो की व्याख्या मे "तस्स मासलहु" आदि प्रायश्चित्त सूचक वाक्यो की क्रिया-व्याख्या जिस प्रकार है, अतिम सूत्रों मे भी प्राय उसी प्रकार है।

अत· प्रत्येक सूत्र का अतिम वाक्य "करेत वा साइज्जइ **आवज्जइ से मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं"**। (करने वाले का अनुमोदन करता है उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।) ऐसा होना चाहिये।

कभी मूल पाठ का सक्षिप्तीकरण किया गया, उस समय सब सूत्रो के साथ प्रायश्चित्त पाठ न लिखकर उद्देशक के अतिम सूत्र के साथ **"तं सेवमाणे"** इतना पाठ सबध जोडने के लिये अधिक लगा कर लिख दिया गया हो। ऐसा चूर्णिकारकृत शब्दार्थ और व्याख्या से ज्ञात हो जाता है।

साइज्जइ—किसी भी निषिद्ध कार्य के होने में अभिरुचि रखना "साइज्जणा" है। वह दो प्रकार की है—

१ निषिद्ध कृत्य दूसरे से करवाना।
२ निषिद्ध कृत्य करते हुये का अनुमोदन करना।

दूसरे से करवाना भी दो प्रकार का है—
१ जिसकी इच्छा निषिद्ध कार्य करने की है, उससे करवाना।
२ जिसकी इच्छा निषिद्ध कार्य करने की नही है, उससे बलपूर्वक करवाना।

अनुमोदन भी दो प्रकार का है—
१. निषिद्ध कार्य की व करने वाले की सराहना करना।
२ अकृत्य करने वाले को गणप्रमुख द्वारा मना न करना।

प्र —गुरुतर दोष किसमे है, किसी अन्य से निषिद्ध कृत्य करवाने मे या निषिद्ध कृत्य का अनुमोदन करने मे?

उ —अनुमोदन मे लघुतर दोष है और करवाने मे गुरुतर दोष है।

—नि. चू भा २ पृष्ठ-२५, गाथा ५८८

अंगादान के संचालनादि का प्रायश्चित्त

२. जे भिक्खू अंगादाणं कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, अंगुलियाए वा, सलागाए वा सचालेइ, संचालेंतं वा साइज्जइ।

३. जे भिक्खू अंगादाणं संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा, संबाहंत वा, पलिमद्दंत वा साइज्जइ।

४. जे भिक्खू अंगादाणं तेल्लेण वा, घएण वा, वसाए वा, णवणीएण वा, अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा साइज्जइ।

५. जे भिक्खू अगादाणं कक्केण वा, लोद्धेण वा पउमचुण्णेण वा, ण्हाणेण वा, सिणाणेण वा, चुण्णेहिं वा, वण्णेहिं वा, उव्वट्टेज्ज वा, परिवट्टेज्ज वा उव्वट्टेंतं वा परिवट्टेंत वा साइज्जइ ।

६. जे भिक्खू अंगादाण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंत वा पधोवेंत वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू अंगादाणं णिच्छलेइ, णिच्छलेंतं वा साइज्जइ ।

८. जे भिक्खू अंगादाणं जिघइ, जिघत वा साइज्जइ ।

२ जो भिक्षु "अगादान" को काष्ठ से, बास आदि की खपच्ची से, अगुली से या बेत आदि की शलाका से सचालन करता है या सचालन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३ जो भिक्षु "अगादान" का मर्दन करता है या बार-बार मर्दन करता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४ जो भिक्षु "अगादान" का तेल, घी, वसा या मक्खन मे मालिश करता है या बार-बार मालिश करता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५ जो भिक्षु "अगादान" का कल्क--अनेक द्रव्यो के सयोग से निर्मित लेप्य पदार्थ से, लोध्र—सुगधित द्रव्य से, पद्मचूर्ण से, ण्हाण—उडद आदि के चूर्ण से, सिणाण—सुगन्धित चूर्ण आदि से, चदनादि के चूर्ण से, वर्धमान चूर्ण से उबटन—लेप या पीठी एक बार या बार-बार करता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६ जो भिक्षु "अगादान" का प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से प्रक्षालन [धोना] एक बार या बार-बार करता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

७ जो भिक्षु "अगादान" के अग्रभाग की त्वचा को ऊपर की ओर करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

८ जो भिक्षु "अगादान" को सूघता है या सूघने वाले का अनुमोदन करता है । [उसे गुरु मासिक प्रायश्चित्त आता है ।]

विवेचन—सूत्र सख्या २ से ८ तक के प्रत्येक विषय के स्पष्टीकरण के लिए भाष्यकार ने सात दृष्टात दिये है, वे इस प्रकार है—

दृष्टांत सप्तक—

१. सचालन सूत्र का दृष्टात—जिस प्रकार सोए हुये सिह को जगाने पर वह सिह जगाने वाले के जीवन का नाश कर देता है उसी प्रकार जो उपशात "अगादान" का सचालन करता है उसका ब्रह्मचर्य खडित हो जाता है ।

२. सबाधन सूत्र का दृष्टांत—जिस प्रकार शात सर्प का कोई अग किसी के पैर आदि से दब जाने पर वह उसे डस लेता है उसी प्रकार उपशात अगादान का मर्दन करने से ब्रह्मचर्य खडित हो जाता है ।

३. **अभ्यंगन सूत्र का दृष्टांत**—जिस प्रकार अग्नि को "घी" से सिंचने पर वह अत्यधिक प्रज्वलित होती है उसी तरह अगादान का तैलादि से मालिश करने पर कामाग्नि अत्यधिक प्रदीप्त होती है।

४. **उबटन सूत्र का दृष्टांत**—जिस प्रकार भाले की धार को तीक्ष्ण करने पर वह अत्यधिक घातक होती है उसी तरह अगादान का उबटन ब्रह्मचर्य का अत्यधिक घातक होता है।

५. **उत्क्षालन सूत्र का दृष्टांत**—जिस प्रकार सिह की आखो मे पीडा होने पर किसी वैद्य के द्वारा औषध प्रयोग से शुद्धि कर देने पर वह भूखा सिह उसे ही खा जाता है। उसी प्रकार जो अगादान का "प्रक्षालन" करता है उसका ब्रह्मचर्य खडित हो जाता है।

६. **निश्छलन सूत्र का दृष्टांत**—जिस प्रकार सोये हुये अजगर का कोई मुख खोलता है तो वह उसे खा जाता है उसी तरह जो अगादान के त्वचा-आवरण को ऊपर करता है उसका ब्रह्मचर्य विचलित हो जाता है।

७. **जिघ्रण सूत्र का दृष्टांत**—एक राजा वैद्य के मना करने पर आम्र सू घता रहा, उसका परिणाम यह हुआ कि वह अम्बष्ठी व्याधि से मर गया। उसी तरह जो "अगादान का मर्दन करके हाथ को सू घता है। उसका ब्रह्मचर्य वेद-मोहोदेय से विनाश को प्राप्त होता है।

"अंगादान"—यह शब्द जननेन्द्रिय का सूचक है। ऐसे प्रसगो मे आगमकार अप्रसिद्ध पर्यायवाची शब्दो का प्रयोग भी करते है। जिनमे कुछ शब्द रूढ अर्थवाले भी होते है। व्याख्याकार उन्हे "सामयिकी सज्ञा या सैद्धान्तिक प्रयोग विशेष" से सूचित करते है। फिर भी उन शब्दो से प्रासगिक अर्थ भी ध्वनित हो जाता है। कुछ शब्द यौगिक व्युत्पत्तिपरक होते है, वे स्पष्ट रूप से उसी अर्थ को कहते हैं।

इस शब्द की व्याख्या मे कहा गया है कि यह शरीरावयव अगो के उत्पादन मे हेतुभूत है। अत. उसकी उत्पत्ति का कारण होने से यह अगादान कहा जाता है। अग, उपाग आदि के नाम इस प्रकार है—

१. **अग**—आठ हैं—मस्तक, हृदय, उदर, पीठ, दो भुजा, दो उरु [घुटनो के ऊपर का भाग]।

२. **उपांग**—कान, नाक, आख, जघा [घुटने के नीचे का भाग] हाथ, पाव आदि।

३. **अंगोपांग**—नख, केश, मू छ, दाढी, अगुलिया, हस्ततल, हस्तउपतल [हथेली का उभरा हुआ भाग]।।

अब्भंगेज्ज-मक्खेज्ज—निशीथसूत्र मे तीन शब्दो का प्रयोग तैल आदि से मालिश करने के अर्थ मे हुआ है—"अब्भगेज्ज, मक्खेज्ज, भिलिंगेज्ज", इन तीनो का अर्थ मालिश करना है।

एक सूत्र मे इन तीन शब्दो मे से जहा दो शब्दो का प्रयोग है वहाँ उनमे से प्रथम शब्द "एक बार" और दूसरा शब्द "अनेक बार" अर्थ का द्योतक है।

"मक्खेज्ज" शब्द जब "अब्भगेज्ज" के साथ प्रयुक्त होता है तो वह अनेक बार के अर्थ का वाचक होता है, वही मक्खेज्ज जब "भिलिगेज्ज" के साथ प्रयुक्त होता है तब वह एक बार के अर्थ को प्रकट करता है।

'उव्वट्टेज्ज परिवट्टेज्ज'—कल्क आदि पदार्थों से उबटन [लगाना, चुपडना, लेप करना, पीठी करना आदि] करने के अर्थ मे भी तीन शब्दो का प्रयोग होता है—"उल्लोलेज्ज, उव्वट्टेज्ज, परिवट्टेज्ज", उनका भी अर्थ अब्भगेज्ज-मक्खेज्ज के समान है।

मालिश और उबटन में अन्तरः—मालिश के योग्य पदार्थ स्निग्ध होते है। उनसे मालिश करने मे विशेष शक्ति व श्रम का उपयोग होता है। इस तरह की गई मालिश त्वचा से लेकर अस्थि तक लाभप्रद होती है।

उबटन की वस्तुए रूक्ष और कोमल होती हैं। उनके लगाने मे विशेष शक्ति व श्रम की अपेक्षा नही होती है। उबटन के पदार्थ प्राय त्वचा के लिये लाभप्रद होते हैं।

कक्केण:—क्षेत्र काल के अतर से पदार्थों के प्रयोग मे परिवर्तन हो जाता है। कल्कादि शब्द भी प्राय ऐसे ही हैं। चूर्णि के आधार से इनका अर्थ किया है—

१ कक्केण, २ लोद्धेण, ३ पउमचुण्णेण, ४ ण्हाणेण,
५ सिणाणेण, ६ चुण्णेहिं, ७ वण्णेहिं।

इन सात शब्दो का प्रयोग शरीर परिकर्म के प्रसग मे अनेक स्थलो पर हुआ है। लिपिकारो ने ऐसे समान पाठो के प्रसग मे बिंदी लगाकर पाठ सक्षिप्त किये हैं। सक्षिप्तीकरण मे समान पद्धति नही रखने से कही दो, कही तीन, कही चार शब्द रह गये हैं। आगे के उद्देशो की व्याख्या मे चूर्णिकार प्रथम उद्देशक का निर्देश कर पुन व्याख्या नही करते हैं। अत आगम-स्वाध्यायी को ऐसे स्थलो मे विवेकपूर्वक निर्णय करना चाहिये।

९. जे भिक्खू अगादाणं अण्णयरंसि अचित्तंसि सोयंसि अणुप्पवेसेत्ता सुक्कपोग्गले णिग्घाएइ, णिग्घाएतं वा साइज्जइ।

९ जो भिक्षु "अगादान" को किसी अचित छिद्र मे प्रविष्ट करके शुक्र-पुद्गलो को निकालता है या निकालने वाले का अनुमोदन करता है (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—ब्रह्मचर्य की ९ वाड मे से एक का भी पालन नही करने से तथा वेदमोहनीय के तीव्र उदय होने पर ऐसी अवस्था प्राप्त होती है। उत्तराध्ययन अ० १६ मे ब्रह्मचर्यव्रत की समाधि के लिए दस स्थान बताए हैं। उत्त० अ० ३२ मे और दशवैकालिक अ० ८ मे भी इस विषय के शिक्षावचन कहे गए हैं।

कतिपय स्थल यहा उद्धृत किये जाते हैं—

१. **विभूसा इत्थिसंसग्गो, पणीयं पाण-भोयण।**
नरस्सत्तगवेसिस्स, विस तालउडं जहा॥ —दश अ ८, गा ५६

२. **चित्तभित्तिं ण णिज्झाए, णारिं वा सुअलंकियं।**
भक्खरं पि व दट्ठूण, दिट्ठि पडिसमाहरे॥ —दश अ ८, गा. ५४

३. **विवित्त-सेज्जासणजंतियाणं ओमासणाणं दमिइन्दियाणं।**
ण रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवोसहेहिं॥ —उत्त अ. ३२, गा. १२

४. जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे, समारुओ नोवसमं उवेइ ।
एविंदियग्गी वि पगामभोइणो, न बभयारिस्स हियाय कस्सइ ।।

—उत्त अ ३२, गा ११

५. रसा पगामं न निसेवियव्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणं ।
दित्तं च कामा समभिद्दवंति, दुमं जहा साहुफलं व पक्खी ।।

—उत्तरा अ ३२, गा १०

संक्षिप्त सार—विभूषा, स्त्रीससर्ग व प्रणीत रस भोजन को ब्रह्मचर्य के लिए तालपुट विष के समान समझना चाहिये । स्त्री एव स्त्रियो के चित्र पर यदि दृष्टि पहुचे तो शीघ्र हटा लेनी चाहिये । ठहरने का स्थान स्त्री आदि से रहित होना, शयन-आसन अल्प होना, प्रकामभोजी न होकर भिक्षु को सदा ऊनोदरी युक्त ही आहार करना चाहिये । इन्द्रियो के विषयो मे राग द्वेष न रखते हुए प्रवृत्ति करना चाहिये, इत्यादि सावधानिया रखने पर औषध से उपशात बने हुए रोग के समान वेदमोह भी उपशात रहता है, ब्रह्मचर्य मे समाधि रहती है, जिससे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त स्थानो से आत्मा दूर रहती है ।

नव वाडो एव दश समाधिस्थानो का विवेचन अन्य आगमो से जान लेना चाहिए ।

'अचित्तसि सोयंसि'—'श्रोत' शब्द 'छिद्र' अर्थ मे प्रयुक्त होता है । तथापि मार्ग, स्थान आदि अर्थ मे भी इसका प्रयोग आगम मे हुआ है ।

यहा प्रासगिक अर्थ 'छिद्र' की अपेक्षा 'स्थान' विशेष सगत है । व्यवहारसूत्र उद्देश ६ मे इस विषय के दो सूत्र है, दोनो मे 'अचित्तसि सोयसि' शब्द का प्रयोग है । अन्तर इतना ही है कि मैथुन के भाव युक्त प्रवृत्ति होने पर गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है और हस्तकर्म के भाव युक्त प्रवृत्ति होने पर गुरु मासिक प्रायश्चित्त आता है । इस भिन्नता का कारण यह है कि अचित्त स्थान मे की गई प्रवृत्ति हस्तकर्म है और अचित्त छिद्र मे की गई प्रवृत्ति मैथुन है । अत यहा पर 'अचित्तसि सोयसि' से 'अचित्त स्थान' समझना चाहिए ।

सचित्त पदार्थ सूंघने का प्रायश्चित्त—

१०. जे भिक्खू सचित्त पइट्ठिय गधं जिघइ जिघंतं वा साइज्जइ ।

१० जो भिक्षु सचित्त पदार्थ मे स्थित सुगध को सू घता है या सू घने वाले का अनुमोदन करता है (उसे गुरु मासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—इस सूत्र मे इच्छापूर्वक सुगधित सचित्त फूल आदि सू घने का प्रायश्चित्त कहा गया है । आचा श्रु २, अ १५ मे पाचव महाव्रत की भावना मे स्वाभाविक आने वाली गध मे राग-द्वेष की परिणति से मुक्त रहने की प्रेरणा की गई है । **आचा. श्रु. २. अ. १, उ. ८** मे कहा है कि स्वाभाविक सुगध आने पर **'अहो गधो-अहो गंधों, त्ति नो गंधमाधाइज्जा'** अर्थात् अहो ! क्या बढिया सुगध आ रही है, ऐसा सोच कर उस सुगध को सू घने मे आसक्त न हो ।

जब स्वाभाविक रूप से आई हुई गध से भी साधक को उदासीन रहने को कहा गया है तो इच्छापूर्वक सू घना तो स्पष्ट अनाचार है और उसका ही यहा प्रायश्चित्त कहा गया है ।

सचित्त पदार्थ से हरी या सूखी वनस्पतिया, फल, फूल, बीज आदि सभी सचित्त पदार्थों का ग्रहण हो जाता है ऐसा समझना चाहिए तथा इत्रादि समस्त अचित्त पदार्थ सू घने का प्रायश्चित्त दूसरे उद्देशक मे कहा गया है ।

गृहस्थ द्वारा पदमार्गादि निर्माणकरण प्रायश्चित्त–

११. जे भिक्खू पदमग्गं वा, संकमं वा, अवलंबण वा, अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेइ कारेंतं वा साइज्जइ ।

१२. जे भिक्खू दगवीणियं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेइ कारेंतं वा साइज्जइ ।

१३. जे भिक्खू सिक्कगं वा, सिक्कगणंतगं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेइ कारेंतं वा साइज्जइ ।

१४. जे भिक्खू सोत्तिय वा रज्जुय वा चिलमिलिं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेइ कारेंत वा साइज्जइ ।

११ जो भिक्षु पदमार्ग = चलने का रास्ता, सक्रमण मार्ग = जल कीचड आदि को उल्लघन करने का पाषाणादिमय मार्ग, अवलबन = चढने, उतरने, चलने मे सहारा लेने का साधन, अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के द्वारा निर्माण करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१२ जो भिक्षु पानी के निकलने की नाली अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से बनवाता है या बनवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१३ जो भिक्षु छीका या उसका ढक्कन अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से बनवाता है या बनवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१४ जो भिक्षु सूत की या डोरियो की चिलिमिलिका (पर्दा-यवनिका-मच्छरदानी) अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से बनवाता है या बनवाने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—**१ पदमार्ग** -वर्षा आदि के कारण से मार्ग मे जल या कीचड हो जाने पर उस मार्ग से जाना-आना कठिन हो जाता है और जाने-आने मे जीवो की विराधना होती है । अत सुविधा के लिये उपाश्रय मे या उसके पास चलने का जो मार्ग ईट, पत्थर आदि रखकर बनाया जाता है उसे पदमार्ग कहते है ।

२. सक्रमणमार्ग—पत्थर आदि रखकर भूमि से कुछ ऊपर पुल के समान जो मार्ग बनाया जाता है उसे सक्रमणमार्ग कहते है । इस प्रकार जल नीचे बहता रहता है और ऊपर से जाने-आने की सुविधा हो जाती है ।

३. अवलम्बन—पुल आदि पर दोनो ओर कोई सहारे की आवश्यकता हो या कही चढने-उतरने मे सहारे की आवश्यकता हो तो उसके लिए रस्सी, थभा आदि का जो साधन बनाया जाता है वह "अवलबन" कहा जाता है ।

४. **दगवीणिका**—कई स्थानो पर वर्षा आदि से पानी इकट्ठा हो जाता है, उसे निकालने का जो मार्ग बनाया जाता है, उसे "दगवीणिक" कहते हैं ।

५. **सिक्कग**—कीडी, चूहा, कुत्ते आदि जीवो से खाद्य सामग्री की सुरक्षा के लिए छीका और छीके का ढक्कन रखना भी कभी आवश्यक हो जाता है उसे, "सिक्कग" कहा जाता है ।

६. **चिलिमिलिका**– शील रक्षा के योग्य सुरक्षित स्थान न मिलने पर, आहार करने योग्य सुरक्षित स्थान न मिलने पर, मक्खी, मच्छर आदि सपातिम जीवो के अधिक हो जाने पर, उनकी रक्षा के लिये एक दिशा मे यावत् पाच दिशाओ मे जो पर्दा, यवनिका या मच्छरदानी आदि बनाये जाते है, उसे "चिलिमिलिका" कहा जाता है ।

इन चारो सूत्रो मे कहे गये कार्य साधु को गृहस्थी से नही कराना चाहिए । यदि किसी विशेष परिस्थिति मे गृहस्थ से कराना पडे तो वह प्रायश्चित्त का पात्र होता है ।

उत्तरकरण कराने के प्रायश्चित्त

१५. जे भिक्खू "सूईए" उत्तरकरणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेइ कारेंतं वा साइज्जइ ।

१६. जे भिक्खू "पिप्पलगस्स" उत्तरकरणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेइ कारेंत वा साइज्जइ ।

१७. जे भिक्खू "णहच्छेयणगस्स" उत्तरकरणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेइ कारेंत वा साइज्जइ ।

१८. जे भिक्खू "कण्णसोहणगस्स" उत्तरकरणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेइ कारेंत वा साइज्जइ ।

१५. जो भिक्षु सूई का उत्तरकरण अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१६ जो भिक्षु कतरणो का उत्तरकरण अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१७. जो भिक्षु नखछेदनक का उत्तरकरण अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१८. जो भिक्षु कर्णशोधनक का उत्तरकरण अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—१. **"उत्तरकरणं"**—उत्तरकरण का अर्थ है—परिष्कार करना अर्थात् आवश्यकतानुसार उपयागी बनाना, सुधारना ।

१. सूई की अणी व छिद्र को सुधारना ।

२ कतरणी की धार तेज करना ।

३. नखछेदनक को नख काटने के योग्य बनाना।

४. कर्णशोधनक को मृदुस्पर्शी बनाना।

इस प्रकार चारो उपकरणो का उत्तरकरण होता है।

२. **उपकरणचतुष्टय**—शरीर व सयम के उपयोगी उपकरणो को साधु अपने पास रख सकता है। जो उपकरण सभी साधुओ के लिए सदा आवश्यक होते है वे "औघिक उपकरण" कहे जाते हैं। ऐसे सभी उपकरणो को सदा साथ मे रखने की आज्ञा है। यथा—वस्त्र, पात्र, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि। वस्त्र, पात्र शरीर के लिए उपयोगी है और मुखवस्त्रिका, रजोहरण सयम के उपयोगी हैं।

कुछ उपकरण विशेष परिस्थिति के कारण रखे जाते हैं, वे "औपग्रहिक उपकरण" कहे जाते है।

वे भी दो तरह के होते है—

१ सदा काम में आने वाले, २. कभी-कभी काम मे आने वाले।

१ चश्मा, लाठी आदि प्राय सदा काम आते हैं। अत ये सदा साथ में रखे जा सकते हैं।

२. कभी-कभी काम मे आने वाले उक्त चारो उपकरणो का तो उपरोक्त सूत्रो में कथन है ही, अन्य उपकरणो (छत्र, चर्म आदि) का कथन भी आगमो मे प्रसगानुसार हुआ है। उनमे से सर्वत्र सुलभ उपकरण प्रत्यर्पणीय रूप मे लाये जाते है, जो कार्य हो जाने पर उसी दिन या कुछ दिनों से लौटा दिये जाते है।

यद्यपि साधु के लिए अत्यल्प उपधि रखने का विधान है, फिर भी क्षेत्र काल के अनुसार या परिवर्तित शारीरिक स्थितियो के अनुसार कब, कहाँ, किन उपकरणो की आवश्यकता हो जाए और उस समय कदाचित् वहाँ वे उपकरण न मिले, इस आशय से काटा निकालने के उपकरण या दत-शोधनक आदि अन्य उपकरण वर्तमान मे भी साथ मे रखे जाते है।

इसी प्रकार सूत्रोक्त सूई, कतरणी आदि उपकरण भी काल आदि की परिस्थिति से रखे जा सकते हैं, ऐसा इन उत्तरकरण सूत्रो से प्रतीत होता है।

निशीथभाष्य गा० १४१३-१४१६ तथा बृहत्कल्पभाष्य गा० ४०९६-४०९९ तक आपवादिक परिस्थिति मे रखे जाने वाले अनेक औपग्रहिक उपकरण सूचित किये हैं, वे गाथाए अर्थ सहित उद्दे० १६ सू० ३९ के विवेचन मे देखे। उन उपकरणो मे सूई, कतरणी आदि भी है, चर्म-छत्र दड भी हैं एव पुस्तके आदि भी कही गई है।

ये उत्तरकरण के सूत्र भी परिस्थिति से साथ मे रखे हुए औपग्रहिक उपकरण रूप सूई आदि से ही सबधित हैं। क्योकि एक दिन के लिये प्रत्यर्पणीय उपकरण तो देखकर और उपयोगी होने पर ही लाया जाता है। कदाचित् भूल हो भी जाय तो उसे लौटाकर अन्य लाया जा सकता है।

किन्तु प्रत्यर्पणीय सूई, कैंची आदि की नोक या धार गृहस्थ से करवाना और गुरुमासिक प्रायश्चित्त का पात्र बनना, ऐसी प्रवृत्ति किसी भी भिक्षु के द्वारा करने की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

जितने उपकरण सदा पास मे रहते है वे काम लेते-लेते जब खराब हो जाते है तब उनका परिष्कार या सुधार स्वय करना अथवा कभी अन्य से करवाना आवश्यक हो जाता है, उस समय ही गृहस्थ से उत्तरकरण करवाने की सम्भावना होती है ।

अत सूत्रनिर्दिष्ट उत्तरकरण क्षेत्र काल आदि की अपेक्षा से पास मे रखे गये—सूई, कतरणी, नखछेदक व कर्णशोधनक सम्बन्धी ही समझने चाहिए ।

वर्तमान मे सूई, कतरणी व नखछेदनक रखने की परिपाटी नही है । क्योकि ये धातु-निर्मित होने के कारण रखना अकल्पनीय माना जाता है ।

प्रस्तुत सूत्रो मे वर्णित सूई, कतरणी, नखछेदनक तथा आचारागसूत्र और व्यवहारसूत्र मे वर्णित-चर्मछेदनक आदि उपकरण धातुनिर्मित ही सर्वत्र उपलब्ध होते है तथा आगमो मे पात्र के सिवाय धातु युक्त उपकरण की अकल्पनीयता का कोई पाठ नही मिलता है ।

परिग्रह का मूल ममत्व है—बहुमूल्य वस्तुओ पर ही प्राय ममत्व अधिक होता है—अतएव सयमी-श्रमण धन (प्रचलित सिक्के), स्वर्ण, रजत (चाँदी) तथा उनसे निर्मित वस्तुएँ न रखे, ऐसे निषेध आगमो मे अनेक जगह मिलते हैं, देखिए दशवैकालिक अ० १० गा० ६ मे "अहणे णिज्जायरूवरयए" तथा उत्तराध्ययन अ० ३५ गा० १३ मे "हिरण्ण जायरूव च मणसा वि न पत्थए" इत्यादि, किन्तु लोहे की सूई, कैची, नखछेदनक, कर्णशोधनक और चर्मछेदनक आदि रखने का सर्वथा निषेध किसी आगम मे उपलब्ध नही है । अत इनका एकान्त निषेध करना उचित प्रतीत नही होता है ।

आगमो मे केवल पात्र के प्रसग मे तीन जाति के सिवाय अन्य अनेक जाति के पात्र ग्रहण करने का निषेध है । उसमे केवल धातु के ही निषेध का वर्णन नही है किन्तु पत्थर, काँच, दाँत, सीग, चर्म, वस्त्र, सख आदि अनेक जाति का निषेध है, जो केवल पात्र के लिए समझना ही उपयुक्त है । सभी उपकरणो के लिए वह विधान उपयुक्त नही हो सकता । अन्यथा वर्तमान मे रखे जाने वाले काँच, दाँत, आदि के अनेक उपकरणो का निषेध हो जाएगा ।

अत कभी औपग्रहिक उपधि या अध्ययन मे सहायक सामग्री धातु (लोहे आदि) की भी रखी जा सकती है । यह इन उत्तरकरण सूत्रो और अन्य आगम स्थलो की विचारणा से स्पष्ट होता है ।

३. अण्णउत्थिय गारत्थिय

भिक्षु अपना कार्य स्वय कर सकता है या अन्य शिष्य आदि से करा सकता है तथा साधु के अभाव मे किसी कारण से वह न कर सके तो साध्वी से भी करवा सकता है, ऐसा करने से वह प्रायश्चित्त का भागी नही होता है किन्तु गृहस्थ से कराने पर प्रायश्चित्त आता है ।

प्रस्तुत सूत्र मे गृहस्थ के लिए "अण्णउत्थिय-गारत्थिय" शब्द का प्रयोग हुआ है । जिसके लिए भाष्य मे आठ प्रकार के गृहस्थ कहे गये है । उन गृहस्थो से भी किस क्रम से कार्य कराना चाहिए, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

"तेसिं गिहत्थाण कारावणे इमो कमो—

पच्छाकड, साभिग्गह, निरभिग्गह भद्दए वा असण्णी ।
गिहि अण्णतित्थिए वा, गिहि पुव्वं एतरे पच्छा ।।

—भा गा. ६२९ तथा १९२९ ।।

चूर्णि—"पच्छाकडो=पुराणो, पढम ता तेण कराविज्जति । तस्स अभावे साभिग्गहो=अणुव्वयसंपन्नो, सावओ । ततो निरभिग्गहो दंसणसावओ । ततो भद्दओ=असण्णी । एते चउरो गिहिभेदा । अण्णउत्थिए वि एते चउरो भेदा पच्छाकडादि । एक्केके असोय-सोय भेया कायव्वा । पुव्वं गिहि असोएसु पच्छा सोयवादीसु, पच्छा अण्णतित्थिएसु ।

परिस्थितिवश अपना कार्य गृहस्थ से कराना हो तो यह क्रम है—

१ श्रमण वेश त्यागी अथवा वृद्ध अनुभवी मे कार्य करावे,

२ वह न मिले तो अणुव्रतधारी श्रावक से,

३ वह न मिले तो श्रद्धावान् श्रावक से,

४ वह न मिले तो भद्र परिणामी से । ये चार स्वमत के गृहस्थ है ।

अन्यतीर्थिक=परमत के गृहस्थ के भी इसी तरह चार भेद व क्रम समझना चाहिए । अर्थात् उपर्युक्त चार प्रकार के गृहस्थ के अभाव मे—

५ सन्यासत्यागी अथवा वृद्ध अनुभवी से कार्य करवावे,

६ वह न मिले तो अन्यमत के व्रतो का पालन करने वाले से,

७ वह न मिले तो अन्यमत के श्रद्धालु से,

८ वह न मिले तो सरल स्वभाव वाले से ।

इस प्रकार यहाँ "अण्णउत्थिय" से अन्यमत के गृहस्थ तथा "गारत्थिय" से स्वमत के गृहस्थ का कथन किया गया है । यही पद्धति आगे के सभी उद्देशो मे भी समझनी चाहिये । किन्तु उद्देशक दो मे तथा १९ मे इन दोनो शब्दो के प्रयोग से क्रमश अनेक प्रकार के भिक्षाचरो का एव मिथ्यामत-भावित गृहस्थो का कथन किया गया है, अन्य गृहस्थो का नही, इसका स्पष्टीकरण वही से जान लेना चाहिए ।

निष्प्रयोजन याचना का प्रायश्चित्त—

१९. जे भिक्खू अणट्ठाए सूइ जायइ, जायंत वा साइज्जइ ।

२०. जे भिक्खू अणट्ठाए पिप्पलगं जायइ, जायत वा साइज्जइ ।

२१. जे भिक्खू अणट्ठाए णहच्छेयणग जायइ, जायत वा साइज्जइ ।

२२. जे भिक्खू अणट्ठाए वण्णसोहणग जायइ, जायंत वा साइज्जइ ।

१९ जो भिक्षु बिना प्रयोजन सूई की याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२०. जो भिक्षु बिना प्रयोजन कतरणी की याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२१ जो भिक्षु बिना प्रयोजन नखछेदनक की याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२२. जो भिक्षु बिना प्रयोजन कर्णशोधनक की याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—स्वय के लिए आवश्यक होने पर या अन्य के मगवाने पर भी बडो की आज्ञा लेकर के ही सूई आदि की याचना करनी चाहिये।

क्योकि इनके खो जाने, टूट जाने, चुभ जाने, लग जाने की या वापिस देना भूल जाने की सम्भावना रहती है, अत इन्हे बिना प्रयोजन ग्रहण नही करना चाहिये।

अविधि याचना प्रायश्चित्त—

२३. जे भिक्खू अविहीए सूइं जायइ, जायंतं वा साइज्जइ।

२४. जे भिक्खू अविहीए पिप्पलगं जायइ, जायत वा साइज्जइ।

२५. जे भिक्खू अविहीए णहच्छेयणग जायइ, जायंतं वा साइज्जइ।

२६. जे भिक्खू अविहीए कण्णसोहणगं जायइ, जायंतं वा साइज्जइ।

२३. जो भिक्षु अविधि से सूई की याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४ जो भिक्षु अविधि से कतरणी की याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जो भिक्षु अविधि से नखछेदनक की याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६ जो भिक्षु अविधि से कर्णशोधनक की याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—साधु का प्रत्येक कार्य विवेकपूर्वक व विधियुक्त होना चाहिये। सूई, कतरणी आदि तीक्ष्ण होते हैं, उनके ग्रहण करने मे विवेक आवश्यक है जिससे शारीरिक क्षति न हो। अविवेकपूर्वक ग्रहण करते देखकर गृहस्थ को अपने उपकरण की सुरक्षा मे शका हो सकती है। जिससे देने की भावना मे कमी आ सकती है।

कुछ विशेष प्रकार की अविधियो का कथन आगे के सूत्रो मे है।

अनिर्दिष्ट उपयोगकरण प्रायश्चित्त—

२७. जे भिक्खू पाडिहारियं सूइं जाइत्ता वत्थं सिव्विस्सामि त्ति पायं सिव्वइ सिव्वंतं वा साइज्जइ।

२८. जे भिक्खू पाडिहारियं पिप्पलग जाइत्ता वत्थं छिंदिस्सामि त्ति पायं छिंदइ छिंदंतं वा साइज्जइ।

२९. जे भिक्खू पाडिहारियं नहच्छेयणगं जाइत्ता नहं छिंदिस्सामि त्ति सल्लुद्धरणं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

३०. जे भिक्खू पाडिहारियं "कण्णसोहणगं जाइत्ता" कण्णमलं णीहरिस्सामि त्ति दंत-मलं वा, णह-मलं वा णीहरइ, णीहरंतं वा साइज्जइ ।

२७. जो भिक्षु लौटाने योग्य सुई की याचना करके "वस्त्र सीऊगा" ऐसा कह कर उससे पात्र सीता है या सीने वाले का अनुमोदन करता है ।

२८ जो भिक्षु लौटाने योग्य कतरणी की याचना करके "वस्त्र काटू गा" ऐसा कहकर उससे पात्र काटता है या काटने वाले का अनुमोदन करता है ।

२९ जो भिक्षु लौटाने योग्य नखछेदनक की याचना करके "नख काटू गा" ऐसा कह कर उससे काटा निकालता है या निकालने वाले का अनुमोदन करता है ।

३०. जो भिक्षु लौटाने योग्य कर्णशोधनक की याचना करके "कान का मैल निकालू गा" ऐसा कहकर उससे दात या नख का मैल निकालता है या निकालने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरु मासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—लौटाने योग्य वस्तु के लिये आगम मे "पाडिहारिय" शब्द का प्रयोग होता है । लौटाने योग्य सूई आदि ग्रहण करने के समय किसी एक कार्य का निर्देश नही करना चाहिए ।

यदि किसी एक कार्य को करने का स्पष्ट निर्देश करके सूई आदि ग्रहण किये गये हो तो उन्हे अन्य काम मे नही लेना चाहिये ।

अन्य काम करने पर दूसरा और तीसरा महाव्रत दूषित होता है । ज्ञात होने पर गृहस्थ उस साधु पर या साधुसमाज पर अविश्वास करता है, उनकी निदा करता है तथा भविष्य में आवश्यक उपकरणो के अलाभ आदि होने की सभावना रहती है ।

अन्योन्य प्रदान प्रायश्चित्त—

३१. जे भिक्खु अप्पणो एक्कस्स अट्ठाए सूइं जाइत्ता अण्णमण्णस्स अणुप्पदेइ, अणुप्पदेंतं वा साइज्जइ ।

३२. जे भिक्खू अप्पणो एक्कस्स अट्ठाए पिप्पलगं जाइत्ता अण्णमण्णस्स अणुप्पदेइ, अणुप्पदेंतं वा साइज्जइ ।

३३. जे भिक्खू अप्पणो एक्कस्स अट्ठाए णहच्छेयणग जाइत्ता अण्णमण्णस्स अणुप्पदेइ, अणुप्पदेंतं वा साइज्जइ ।

३४. जे भिक्खू अप्पणो एक्कस्स अट्ठाए कण्णसोहणगं जाइत्ता अण्णमण्णस्स अणुप्पदेइ, अणुप्पदेंतं वा साइज्जइ ।

३१. जो भिक्षु केवल अपने लिये सूई की याचना करके लाता है और बाद में अन्य किसी साधु को देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

३२ जो भिक्षु केवल अपने लिये कतरणी की याचना करके लाता है और बाद मे अन्य किसी साधु को देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

३३ जो भिक्षु केवल अपने लिये नखछेदनक की याचना करके लाता है और बाद मे अन्य किसी साधु को देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

३४ जो भिक्षु केवल अपने लिये कर्णशोधनक की याचना करके लाता है और बाद मे अन्य किसी साधु को देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—साधु समुदाय मे भिन्न-भिन्न साधुओ के भिन्न-भिन्न आवश्यक कार्य होते है, अत सूई आदि ग्रहण करते समय भाषा का विवेक रखना चाहिये । अर्थात् किसी कार्य या व्यक्ति का निर्देश नही करना चाहिये । निर्देश करे तो उसी के अनुसार व्यवहार करना चाहिये, शेष सूत्र २६ से ३० तक के विवेचन के समान समझना चाहिये ।

अविधि प्रत्यर्पण का प्रायश्चित्त—

३५. जे भिक्खू सूइं अविहीए पच्चप्पिणेइ, पच्चप्पिणेंत वा साइज्जइ ।

३६. जे भिक्खू पिप्पलग अविहीए पच्चप्पिणेइ, पच्चप्पिणेंत वा साइज्जइ ।

३७. जे भिक्खू णहच्छेयणगं अविहीए पच्चप्पिणेइ, पच्चपिणेंतं वा साइज्जइ ।

३८ जे भिक्खू कण्णसोहणगं अविहीए पच्चप्पिणेइ, पच्चप्पिणेत वा साइज्जइ ।

३५ जो भिक्षु अविधि से सूई लौटाता है या लौटाने वाले का अनुमोदन करता है ।

३६ जो भिक्षु अविधि से कतरणी लौटता है या लौटाने वाले का अनुमोदन करता है ।

३७ जो भिक्षु अविधि से नखछेदनक लौटाता है या लौटाने वाले का अनुमोदन करता है ।

३८ जो भिक्षु अविधि से कर्णशोधनक लौटाता है या लौटाने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—लौटाने का कहकर लाई हुई सूई आदि विवेकपूर्वक ही देनी चाहिये जिससे उपकरण की और स्व-पर के शरीर की क्षति न हो । अर्थात् भूमि आदि पर रखकर लौटाना चाहिये ।

पात्र-परिष्कार कराने का प्रायश्चित्त—

३९. जे भिक्खू लाउयपायं वा, दारुपायं वा, मट्टियापाय वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिघट्टावेइ वा, संठावेइ वा, जमावेइ वा, "अलमप्पणो करणयाए सुहुमवि नो कप्पइ", जाणमाणे सरमाणे अण्णमण्णस्स वियरइ, वियरत वा साइज्जइ ।

३९ "पात्र परिष्कार का कार्य स्वय करने मे समर्थ होते हुए गृहस्थ से किंचित् परिष्कार कराना भी नही कल्पता है" यह जानते हुए, स्मृति मे होते हुए या करने मे समर्थ होते हुए भी जो भिक्षु तुम्बे का पात्र, लकडी का पात्र व मिट्टी का पात्र अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से—बनवाता है, उसका मुख ठीक करवाता है, विषम को सम करवाता है या अन्य साधु को कराने की आज्ञा देता है अथवा इस

तरह कराने वाले का या आज्ञा देने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—जो भिक्षु पात्र-परिष्कार का कार्य जानता हो तो उसे स्वय ही कर लेना चाहिए तथा आवश्यक हो तो अन्य भिक्षु का कार्य भी कर देना चाहिए। किन्तु गृहस्थ से नही कराना चाहिए तथा किसी साधु को गृहस्थ से कराने की आज्ञा भी नही देनी चाहिए।

परिघट्टावेइ आदि—"परिघट्टण-निम्मावण, सठवण-मुहादीण, जमावण-विसमाण समीकरण,"

१ परिघट्टावेइ—निर्माण कराना अर्थात् काम आने लायक बनवाना।

२ सठावेइ—मुख ठीक कराना—योग्य व मजबूत कराना।

३ जमावेइ—विषम को सम कराना।

काष्ठ पात्र के मुख पर डोरे आदि बाधना 'सठवण' है, तेल, रोगन, सफेदा, आदि लगाना "परिघट्टण" है।

कही खड्डा हो उसे भरना, खुरदरापन हो उसे घिसना "जमावण" है।

इसी प्रकार मिट्टी के पात्र का तथा तु बे के पात्र का परिकर्म भी समझ लेना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे केवल "पात्र" शब्द का कथन न करके तीन प्रकार के पात्रो का निर्देश होने से यह स्पष्ट होता है कि साधु को तीन प्रकार के ही पात्र रखना कल्पता है। ऐसा ही कथन आचाराग सूत्र, बृहत्कल्पसूत्र एव ठाणागसूत्र मे भी है।

शुभाशुभ पात्रो के फलो का विधान आदि वर्णन भाष्य मे देखना चाहिए।

भिक्षु को ऐसे पात्र की ही गवेषणा करनी चाहिये कि जिसमे किसी भी प्रकार का परिकर्म न करना पडे।

दडादि के परिष्कार कराने का प्रायश्चित्त—

४०. जे भिक्खू दडय वा, लट्ठिय वा, अवलेहणिय वा, वेणुसूइयं वा, अण्णउत्थिएणं वा गारत्थिएण वा, परिघट्टावेइ वा, सठावेइ वा, जमावेइ वा, अलमप्पणो करणयाए सुहुमवि नो कप्पइ, जाणमाणे, सरमाणे, अण्णमण्णस्स वियरइ वियरंतं वा साइज्जइ।

४०. स्वय करने मे समर्थ हो तो किचित् भी गृहस्थ से कराना नही कल्पता है, यह जानते हुए, स्मृति मे होते हुए या करने मे समर्थ होते हुए भी जो भिक्षु दण्ड, लाठी, अवलेहनिका और बास की सूई का परिघट्टण, सठवण और जमावण अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से करवाता है या अन्य साधु को करवाने की आज्ञा देता है अथवा गृहस्थ से करवाने वाले का या आज्ञा देने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—सूत्र ३९ के विवेचन के अनुसार इस सूत्र का विवेचन भी जानना कितु पात्र साधु की "औघिक उपधि" है, उनको सभी साधु हमेशा के लिये अपने पास रखते है।

इस सूत्र मे कथित उपकरण "औपग्रहिक उपधि" है अर्थात् इन्हे जिस साधु को जितने समय के लिये आवश्यक हो उतने समय के लिये गुरु की आज्ञा लेकर रख सकता है। बिना विशेष परिस्थिति के ये औपग्रहिक उपकरण नही रखे जाते है।

दंड, लाठी—शारीरिक परिस्थिति व क्षेत्रीय परिस्थिति से रखी जाती है।

अवलेहनिका—पैरो में लगे कीचड आदि को साफ करने के लिये रखी जाती है।

रजोहरण या पू जणी की फलियो मे डोरी डालने के लिए बास की सूई उपयोग मे आती है, यदा कदा वस्त्र पात्रादि के सिलाई के काम मे भी आ सकती है।

दंड आदि का परिघट्टण—ऊपर से सफाई करना।

सठवण—गाठो आदि की सफाई करना।

जमावण—वक्र भाग को सीधा करना।

इन उपकरणो के प्रकार, परिमाण, माप आदि की विशेष जानकारी भाष्य मे दी गई है।

पात्रसंधान बंधन प्रायश्चित्त—

४१. जे भिक्खू पायस्स एक्कं तुडियं तड्डेइ, तड्डेंतं वा साइज्जइ।

४२. जे भिक्खू पायस्स परं तिण्हं तुडियाणं तड्डेइ, तड्डेंत वा साइज्जइ।

४३. जे भिक्खू पायं अविहीए बंधइ, बंधंतं वा साइज्जाइ।

४४. जे भिक्खू पायं एगेण बंधेण बंधइ बंधंतं वा साइज्जइ।

४५. जे भिक्खू पायं परं तिण्हं बंधाणं बधइं, बंधतं वा साइज्जइ।

४६. जे भिक्खू अइरेग बंधण पायं, दिवड्ढाओ मासाओ परेण धरेइ, धरेत वा साइज्जइ।

४१ जो भिक्षु पात्र के एक थेगली देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

४२ जो भिक्षु पात्र के तीन थेगली से अधिक देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

४३ जो भिक्षु पात्र को अविधि से बाधता है या बाधने वाले का अनुमोदन करता है।

४४. जो भिक्षु पात्र को एक बधन से वाधता है या बाधने वाले का अनुमोदन करता है।

४५ जो भिक्षु पात्र को तीन बधन से अधिक बाधता है या बाधने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जो भिक्षु तीन से अधिक बधन का पात्र डेढ मास से अधिक रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—थेगली—टूटे भाग को ठीक करने के लिए या छिद्र को बद करने के लिए लगाई जाती है।

४१-४२ सूत्रो का सयुक्त भाव यह है कि साधु एक भी थेगली न लगावे। अत्यन्त आवश्यक हो तो एक पात्र के एक, दो या तीन थेगली तक लगाई जा सकती है। तीन से अधिक थेगली लगाना सर्वथा निषिद्ध है।

थेगली दो प्रकार की होती है—१. सजातीय, २. विजातीय। जिस जाति का पात्र हो उसी जाति की थेगली लगाना "सजातीय" है, अन्य जाति की थेगली लगाना "विजातीय" है। पात्र के थेगली लगाना आवश्यक हो तो सजातीय थेगली ही लगाई जाए, विजातीय नही। यह नियम लकडी, तुम्बा, मिट्टी आदि की अपेक्षा से समझना चाहिए। किन्तु साथ मे कपडे का या धागे का जो उपयोग किया जाता है वह सजातीय या विजातीय नही कहा जाता है। तथा सेल्यूशन से जोडने को थेगली लगाना नही कहा जाता।

अविधि—सूत्र ४४-४५ मे पात्र के बधन का कथन है अत पात्र विषयक अविधि का कथन इन सूत्रो के बाद में होना चाहिए था किन्तु यहाँ ४३वे सूत्र मे अविधि का यह विधानसूत्र ४१-४२ और ४४-४५ इन चारो सूत्र से सम्बन्धित है।

इसका फलितार्थ यह है कि थेगली भी अविधि से नही लगानी चाहिए और बधन भी अविधि से नही बाँधना चाहिए[1]।

विधि और अविधि की व्याख्या—

१ बधन और थेगली के बाद तथा सिलाई आदि के बाद वह स्थान प्रतिलेखन करने योग्य हो जाना चाहिए।

२ जहाँ बधन, थेगली आदि लगाये गए हो, वहाँ से आहार आदि का अश सरलता से साफ हो जाए ऐसा हो जाना चाहिए।

३ बधन आदि लगाने का कार्य कम से कम समय मे हो जाए।

ये ही विधि या विवेक समझने चाहिए और इसके विपरीत अविधि समझना चाहिए।

बधन

साधु का लक्ष्य तो यह रहे कि जिस पात्र का सुधार या उसके बधन आदि कार्य न करना पडे, ऐसे पात्र की ही याचना करे। ४१-४२ व ४४-४५ इन दो-दो सूत्रो का भाव यही है कि "जो भी पात्र मिले वह ऐसा हो कि कुछ भी सस्कार किए बिना सीधा उपयोग मे आवे। यदि ऐसा न हो तो आवश्यकतानुसार जघन्य एक और उत्कृष्ट तीन बधन लगाये जा सकते है।"

बधन का अर्थ है—पात्र की गोलाई को धागे आदि से बाधकर मजबूत करना जिससे अधिक समय सुरक्षित रह सके।

एक स्थान पर बधन लगाना एक बधन कहलाता है और तीन स्थानो पर बाधना तीन बधन कहलाता है।

मिट्टी के पात्र मे बिना बधन के काम चल सकता हो तो एक भी जगह बाधने की आवश्यकता नही होती है।

लकडी के अत्यन्त छोटे पात्र मे एक भी बधन की आवश्यकता नही होती है।

लकडी के बडे पात्र मे एक बधन आवश्यक होता है।

---

१. कुछ प्रतियो मे निम्न सूत्र अधिक मिलता है, जो भाष्यचूर्णि मे नही है—
"जे भिक्खू पाय अविहीए तड्डेइ तड्डेंत वा साइज्जई।"

तुम्बे का पात्र आवश्यकतानुसार दो या तीन जगह बधन लगाने से सुरक्षित रहता है।

साधु का मुख्य लक्ष्य सदा यह रहे कि अधिक प्रमाद न हो और स्वाध्याय बढे।

साधु का प्रमाद शरीर और उपधि सबधी कार्य करना होता है, सावद्य योगरूप प्रमाद का तो वह त्यागी ही होता है।

अइरेग बंधण—आवश्यक होने पर बधन लगाने की अनुज्ञा है, उत्कृष्ट तीन बधन लगाने की भी अनुज्ञा है। तीन बधन वाला पात्र जब तक उपयोग मे आवे तब तक रखा जा सकता है। सामान्यत तीन से ज्यादा बधन की आवश्यकता या उपयोगिता किसी भी प्रकार के पात्र मे कम संभव है। यह सूत्र ४४-४५ से स्पष्ट होता है, तथापि सूत्र ४६ मे विकट परिस्थिति की सभावना के आशय से उसकी भी सीमित अनुज्ञा दी गई है। अर्थात्—किसी क्षेत्र या काल की परिस्थिति मे लकडी या तु बा का पात्र जिसमे कि पहले से एक या तीन बध लगे है और टूट फूट जाय तो जब तक अन्य पात्र न मिले तब तक ४-५ बधन लगाकर के भी चलाना पडे तो यथासभव शीघ्रातिशीघ्र मिट्टी आदि के पात्र की याचना कर लेना चाहिए और अधिक बधन वाले पात्र को परठ देना चाहिये। उसे डेढ महीने के बाद रखने पर इस (४६वें) सूत्र से प्रायश्चित्त आता है।

वस्त्र-संधान-बंधन प्रायश्चित्त—

४७. जे भिक्खू वत्थस्स एगं पडियाणियं देइ देंत वा साइज्जइ।

४८. जे भिक्खू वत्थस्स परं तिण्हं पडियाणियाणं देइ देंत वा साइज्जइ।

४९. जे भिक्खू वत्थं अविहीए सिव्वइ, सिव्वंत वा साइज्जइ।

५०. जे भिक्खू वत्थस्स एग फालिय-गठियं करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

५१. जे भिक्खू वत्थस्स परं तिण्हं फालिय-गंठियाणं करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

५२. जे भिक्खू वत्थस्स एग फालिय गण्ठेइ, गंठेंत वा साइज्जइ।

५३. जे भिक्खू वत्थस्स परं तिण्ह फालियाणं गंठेइ, गंठेंतं वा साइज्जइ।

५४. जे भिक्खू वत्थं अविहीए गंठेइ, गठेंतं वा साइज्जइ।

५५. जे भिक्खू वत्थं अतज्जाएण गहेइ, गहेत वा साइज्जइ।

५६. जे भिक्खू अइरेग-गहिय-वत्थ परं दिवड्ढाओ मासाओ धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

---

१. ५२-५३-५४ तीन सूत्रो का चूर्णिकार ने कोई अर्थ नही किया है, किन्तु भाष्यकार ने इनके विषय को स्पर्श करने वाली गाथा दी है—

तिण्हुवरि फालियाण वत्थ, जो फालियपि ससिव्वे।

पचण्ह एगतरे सो पावति आणमादीणि ॥७८७॥

इस गाथा के आधार से सूत्रो का पाठ व अर्थ किया गया है।

४७. जो भिक्षु वस्त्र मे एक थेगली लगाता है या लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जो भिक्षु वस्त्र के तीन से अधिक थेगली लगाता है या लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

४९ जो भिक्षु वस्त्र को अविधि से सीता है या सीने वाले का अनुमोदन करता है।

५० जो भिक्षु फटे वस्त्र के एक गाठ लगाता है या लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

५१ जो भिक्षु फटे वस्त्र के तीन से अधिक गाठ लगाता है या लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

५२ जो भिक्षु फटे वस्त्र को एक सिलाई से जोडता है या जोडने वाले का अनुमोदन करता है।

५३ जो भिक्षु फटे वस्त्रों को तीन सीवण से अधिक जोडता या जोडने वाले का अनुमोदन करता है।

५४ जो भिक्षु वस्त्र को अविधि से जोडता है या जोडने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जो भिक्षु एक जाति के कपड़े को दूसरी जाति के कपडे से जोडता है या जोडने वाले का अनुमोदन करता है।

५६. जो भिक्षु अतिरिक्त जोड आदि के वस्त्र को डेढ मास से अधिक काल तक रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—थेगली—चूहे, कुत्ते आदि के द्वारा छेद कर दिये जाने पर या अग्नि की चिनगारियो से क्षत-विक्षत हो जाने पर यदि उसका शेष भाग उपयोग मे आने योग्य हो तो वस्त्र मे थेगली देने की आवश्यकता होती है तथा अन्य भी ऐसे कारण समझ लेना चाहिये। एक थेगली व तीन थेगली सबधी विवेचन पूर्ववत् समझ लेना चाहिये।

अविधि सीवन—वस्त्र के थेगली लगाने मे सिलाई करना आवश्यक है किन्तु सिलाई मे कम से कम समय लगे और अच्छी तरह प्रतिलेखन हो सके यह ध्यान रखना चाहिये। सीने के अनेक प्रकार भाष्य, चूर्णि मे बताये है, जिनका अर्थ गुरुगम से समझ लेना चाहिये।

गांठ लगाना—जो वस्त्र जीर्ण नही हो और कही उलझकर या दबकर फट गया हो तो ऐसे वस्त्र की सिलाई के लिए सूई आदि तत्काल उपलब्ध न होने पर उस वस्त्र के दोनो किनारो को पकडकर गांठ लगा दी जाती है, ऐसे गाठ लगाना जघन्य एक स्थान पर तथा उत्कृष्ट तीन स्थानो पर किया जा सकता है। यदि तीन स्थानो में गाठ देने पर भी काम आने लायक न हो सके तो सूई आदि उपलब्ध कर उसकी सिलाई कर लेना चाहिये। किन्तु तीन से अधिक गाठ नही लगाना चाहिये।

ऊपर के सूत्र ५० से 'अविधि' शब्द को यहा भी ग्रहण करके उसका अर्थ समझ लेना चाहिये कि गाठ देने में भी दिखने की अपेक्षा या प्रतिलेखन की अपेक्षा अविधि न हो। इससे यह भी स्पष्ट

होता है कि विधिपूर्वक लगाई हुई किसी भी गाठ को प्रतिलेखन के लिये पुन खोलना आवश्यक नही होता है क्योंकि वह सुप्रतिलेख्य होती है। बार बार गाठ खोलना एव देना अनावश्यक प्रमाद है।

वस्त्र खंड जोड़ना—थेगली व गाठ के दो दो सूत्र दिए गए हैं, उनके समान वस्त्रो को जोडने सबधी ये दो (५२-५३) सूत्र है। अत यहा पर भी एक सीवण और तीन सीवण का प्रसग घटित होता है।

फालियं—फटे हुए। इसका दो प्रकार से अर्थ हो सकता है—

१. नया ग्रहण करते समय, २ लेने के बाद कभी फट जाने पर।

नया वस्त्र ग्रहण करते समय यदि वह चौडाई मे कम हो या कम लम्बाई के छोटे छोटे टुकडे हों तो चद्दर आदि के योग्य बनाने के लिये जोडना पडता है, जिसका निर्देश आचारागसूत्र श्रु २ अ ५, उ. १ में हुआ है।

यथासभव एक भी जगह जोड लगाना न पड़े ऐसा ही वस्त्र लेना चाहिये। आवश्यक होने पर भी तीन से अधिक जोड नही लगाना चाहिए, इतने जोड से साधु-साध्वी दोनो का निर्वाह हो सकता है।

साध्वी को चार हाथ विस्तार की चद्दर की जरूरत हो और एक हाथ के विस्तार का कपडा मिले तो तीन जोड से पूरी हो सकती है। कभी आवश्यकता से कम लम्बे टुकडे मिले तो भी तीन जोड से साधु व साध्वी दोनो का निर्वाह हो सकता है।

पूर्वोक्त सूत्र ५०, ५१ मे **'गंठियं करेइ'** का प्रयोग है। इसमे फटे हुए वस्त्र को गाठ देकर जोडने सबधी प्रायश्चित्त है।

सूत्र ५२-५३-५४ मे **'गंठेइ'** क्रिया का प्रयोग है। इसमे एक सरीखे भिन्न-भिन्न वस्त्रखण्डो को सिलाई करके जोडने का प्रायश्चित्त है।

सूत्र ५५ मे **"गहेइ"** क्रिया का प्रयोग है। इसमे विजातीय वस्त्रखण्डो को जोडने का प्रायश्चित्त है।

इस प्रकार इन सूत्रो मे फटे वस्त्रो को या वस्त्रखण्डो को जोडने के प्रायश्चित्त है।

एक सरीखे वस्त्रखण्डो को जोडने का प्रायश्चित्त नही है और वस्त्र जैसे धागे से सिलाई करने का भी प्रायश्चित्त नही है, क्योकि यह विधि है।

असमान वस्त्रखण्डो को जोडने का प्रायश्चित्त है और वस्त्र से भिन्न प्रकार के धागे से सिलाई करने का प्रायश्चित्त है, क्योकि यह अविधि है।

अविधि से जोडने का और अविधि से सिलाई करने का प्रायश्चित्त विवेचन सूत्र ४९ के समान है।

विजातीय वस्त्र जोड़ना—इस सूत्र मे प्रयुक्त जाति शब्द से वस्त्रो की अनेक जातिया ग्रहण की जा सकती है। यथा—ऊनी, सूती, सणी, रेशमी आदि।

ऊनी और सूती वस्त्रो की अनेकानेक जातिया है। ऊनी वस्त्र—भेड, बकरी, ऊँट आदि की ऊन से बने हुए कम्बल आदि वस्त्र। सूती वस्त्र—मलमल, लट्ठा, रेजा आदि विविध प्रकार के वस्त्र।

रंगभेद से भी वस्त्रो के और धागो के अनेक प्रकार हैं। अत. भिक्षु वस्त्रखण्डो को जोडते या जुडवाते समय ऐसा विवेक रखे कि जुडे हुए वस्त्रखण्ड और सिलाई के धागे भिन्न भिन्न न दिखे।

वस्त्र के अधिक जोड़—भाष्य चूर्णिकार ने "अइरेग गहिय" का सबध ऊपर के ५२-५३-५४-५५वे सूत्रो के "गहेइ" (गठेइ) विषय से जोडा है तथा सूत्र ५०-५१ से भी जोडा है और कहा है कि साधु साध्विया यदि अधिक जोड का, अधिक गाठ का वस्त्र डेढ मास से अधिक रखे तो वे प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं। जैसा पात्र के सूत्रो मे अधिक बधन के पात्र को डेढ महीने से अधिक रखने सबधी विवेचन किया गया है उसी आशय का विवेचन यहा भी समझना चाहिये।

मर्यादा उपरात एक भी जोड किया हो तो सूत्रपोरिसी और अर्थपोरिसी करने के बाद अन्य वस्त्र को गवेषणा कर लेना चाहिये। दो तीन जोड किये हो तो केवल सूत्रपोरिसी करके वस्त्र की गवेषणा करना और तीन से ज्यादा जोड किये हो तो सूत्र व अर्थ दोनो पोरिसी न करे, पहले वस्त्र की गवेषणा करे। सूत्र-अर्थ पोरिसी का आशय है—'स्वाध्याय व ध्यान करने की पोरिसी।'

सारांश—पूर्वोक्त पात्र विषयक ६ सूत्रो का और वस्त्र विषयक १० सूत्रो का सार यह है कि वस्त्र के थेगली लगाना, गाठ देना, वस्त्रखण्ड जोडना तथा पात्र के टिकडी लगाना, बन्धन लगाना आदि कार्य साधु-साध्वियो को यथासभव नही करने चाहिये।

वस्त्र पात्र विषयक उक्त कार्य करने यदि आवश्यक हो तो उन्हे तीन से अधिक नही करने चाहिये।

उक्त कार्य तीन से अधिक करने जैसी स्थिति यदि हो गई हो तो सूत्रपौरुषी, अर्थपौरुषी न करके भी उस काल मे नये वस्त्र की याचना कर लेनी चाहिए। इसमे डेढ मास की मर्यादा का उल्लघन नही होना चाहिये।

गृहधूम-परिसाटन प्रायश्चित्त—

५७. जे भिक्खू गिहधूम अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिसाडावेइ, परिसाडावेंतं वा साइज्जइ।

५७ जो भिक्षु गृहधूम अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से उतराता है या उतराने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—इस सूत्र मे गृहधूम उतरवाने का प्रायश्चित्त विधान है, रसोई घर की दिवाल पर या छत के नीचे चूल्हे का जमा धुआ 'गृहधूम' कहा जाता है।

रसोईघर के स्वामी से रसोईघर मे प्रवेश की आज्ञा प्राप्त करके छत की ऊचाई तक हाथ पहुच सके ऐसा साधन लेकर साधु यदि धुआ उतार ले तो उसे किसी प्रकार का प्रायश्चित्त नही आता है।

रसोईघर मे प्रवेश की आज्ञा न मिलने से अथवा शारीरिक असामर्थ्य से साधु स्वय गृहधूम न उतार सके तो अन्य से गृहधूम उतरवाने पर उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

साधु किस कार्य के लिए स्वय गृहधूम उतारे या अन्य से उतरवाये, इसका समाधान चूर्णिकार ने इस प्रकार किया है—

साधु के दाद खुजली आदि किसी प्रकार का चर्मरोग हो जाए तो वह गृहधूम से उसकी चिकित्सा स्वय करे, किन्तु चूर्णिकार ने यह नही बताया कि 'गृहधूम' का प्रयोग किस प्रकार किया जाय। अत· किसी कुशल वैद्य से या चर्मरोग विशेषज्ञ से गृहधूम के प्रयोग की विधि जान लेनी चाहिए।

पूतिकर्म-प्रायश्चित्त—

५८. जे भिक्खू पूइकम्म भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

५८ जो भिक्षु पूतिकर्म दोष से युक्त आहार, उपधि व वसति का उपयोग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भाष्यकार ने पूतिकर्म दोष तीन प्रकार का कहा है—

१ आहारपूतिकर्म, २ उपधिपूतिकर्म, ३ शय्यापूतिकर्म।

आहार-पूतिकर्म दो प्रकार का है—

१ दूषित पदार्थों से सस्कृत आहार, २ दूषित उपकरण प्रयुक्त आहार।

आधाकर्मादि दोषयुक्त हीग, नमक आदि से मिश्रित निर्दोष आहार भी पूतिकर्म-दोषयुक्त हो जाता है।

आधाकर्मादि दोषयुक्त आहार से लिप्त चम्मच आदि से दिया जाने वाला निर्दोष आहार भी पूतिकर्म दोषयुक्त हो जाता है।

२. उपधि-पूतिकर्म

गृहस्थ द्वारा आधाकर्मादि दोषयुक्त धागे से निर्दोष वस्त्र की सिलाई करने पर अथवा थेगली लगाने पर वह पूतिकर्म दोषयुक्त हो जाता है।

गृहस्थ द्वारा आधाकर्मादि दोषयुक्त टिकडी लगाने से अथवा बन्धन लगाने से निर्दोष पात्र भी पूतिकर्म-दोषयुक्त हो जाता है।

३. शय्या-पूतिकर्म

निर्दोष शय्या के किसी भी विभाग मे आधाकर्मादि दोषयुक्त बास और काष्ठ आदि का उपयोग हुआ हो तो वह शय्या भी पूतिकर्म-दोषयुक्त हो जाती है।

पूतिकर्म दोष वाला आहार भी शुद्ध आहार मे मिल जाये तो भी पूतिकर्म-दोषयुक्त हो जाता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासिय परिहारट्ठाण अणुग्घाइयं।

इन उपर्युक्त ५८ सूत्रो में कहे गये किसी भी प्रायश्चित्तस्थान के सेवन करने वाले को गुरु-मासिक प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—अंतिम सूत्र के साथ या अंत मे इस सूत्र की व्याख्या प्राय नही मिलती है ।

मूलपाठ मे प्राय सभी प्रतियों मे अंतिम सूत्र के साथ इस पाठ को रखा गया है । इस विषय की विशेष जानकारी के लिये प्रथम सूत्र का विवेचन देखे ।

सूत्र मे 'परिहारट्ठाण' शब्द केवल सामान्य प्रायश्चित्त अर्थ मे प्रयुक्त है । इसी प्रकार अन्य उद्देशको में भी 'मासिक' और चातुर्मासिक शब्द के साथ इसी अर्थ मे समझ लेना चाहिये । किन्तु विशेष प्रकार के परिहारतप रूप प्रायश्चित्त के अर्थ मे नही समझना चाहिये ।

प्रथम उद्देशक का सारांश—

सूत्र १ हस्तकर्म करना ।
सूत्र २-८ अगादान का १ सचालन २ सबाधन ३ अभ्यगन ४ उबटन ५ प्रक्षालन ६ त्वचा अपवर्तन और ७ जिघ्रण क्रियाए करना ।
सूत्र ९ शुक्र पुद्गल निकालना ।
सूत्र १० सचित्त पदार्थ सू घना ।
सूत्र ११ पदमार्ग बनवाना, सक्रमण (पुल) मार्ग बनवाना, अवलम्बन का साधन बनवाना ।
सूत्र १२ पानी निकलने की नाली बनवाना ।
सूत्र १३ छीका और उसका ढक्कन बनवाना ।
सूत्र १४ सूत की या रज्जु की चिलमिली बनवाना ।
सूत्र १५-१८ सूई, कैंची, नखछेदनक और कर्णशोधनक सुधरवाना ।
सूत्र १९-२२ सूई आदि की बिना प्रयोजन याचना करना ।
सूत्र २३-२६ सूई आदि की अविधि से याचना करना ।
सूत्र २७-३० जिस कार्य के लिए सूई आदि की याचना की है, उससे भिन्न कार्य करना ।
सूत्र ३१-३४ अपने कार्य के लिए सूई आदि की याचना करके अन्य को उसके कार्य के लिए दे देना ।
सूत्र ३५-३८ सूई आदि अविधि से लौटाना ।
सूत्र ३९ पात्र का परिकर्म करवाना ।
सूत्र ४० दण्ड, लाठी, अवलेखनिका और बास की सूई का परिकर्म करवाना ।
सूत्र ४१ अकारण पात्र के एक थेगली लगाना ।
सूत्र ४२ सकारण पात्र के तीन से अधिक थेगलिया लगाना ।
सूत्र ४३ पात्र के अविधि से बधन बाधना ।
सूत्र ४४ पात्र के एक बधन लगाना ।
सूत्र ४५ पात्र के तीन से अधिक बधन लगाना ।
सूत्र ४६ तीन से अधिक बन्धन वाला पात्र डेढ मास से अधिक रखना ।
सूत्र ४७ फटे हुए वस्त्र के एक थेगली लगाना ।
सूत्र ४८ फटे हुए वस्त्र के तीन से अधिक थेगली लगाना ।
सूत्र ४९ अविधि से वस्त्र सीना ।
सूत्र ५० फटे हुए वस्त्र के एक गाठ देना ।
सूत्र ५१ फटे हुए वस्त्र के तीन से अधिक गांठ देना ।

सूत्र ५२ फटे हुए वस्त्र के साथ एक वस्त्रखण्ड जोडना।
सूत्र ५३ फटे हुए वस्त्र के साथ तीन से अधिक वस्त्रखण्ड जोडना।
सूत्र ५४ अविधि से वस्त्रखण्ड जोडना।
सूत्र ५५ विभिन्न प्रकार के वस्त्रखण्ड जोडना।
सूत्र ५६ तीन से अधिक वस्त्रखण्ड जुडे हुए वस्त्र को डेढ मास से अधिक रखना।
सूत्र ५७ गृहस्थ से गृहधूम उतरवाना।
सूत्र ५८ पूतिकर्म दोष युक्त आहार उपधि तथा शय्या का उपयोग करना।
इत्यादि प्रवृत्तियो का गुरु मासिक प्रायश्चित्त आता है।

इस उद्देशक के २० सूत्रो के विषय का कथन निम्न आगमों मे है, यथा—

सूत्र १-९ हस्तकर्म करना सबल दोष कहा है। दशा द २ १
सूत्र १० सुगध मे आसक्त होने का निषेध। आ श्रु २ अ १ उ ८, आ श्रु २ अ १५
सूत्र १४ चेल-चिलिमिलिका रखना एव उसके उपयोग का विधान। बृह उ १
सूत्र ३१-३८ अपने कार्य के लिए प्रातिहारिक ग्रहण की गई सूई आदि अन्य को देने का निषेध तथा उनके लौटाने की विधि। आ श्रु २ अ ७ उ १
सूत्र ५८ पूतिकर्मदोष का वर्णन। सूत्रकृ श्रु १ अ १ उ ३

इस उद्देशक के ३८ सूत्रो के विषय का कथन अन्य आगमों मे नहीं है, यथा—

सूत्र ११-१३ पदमार्ग का अन्य (गृहस्थ) के द्वारा निर्माण करवाना।
सूत्र १५-३० सूई आदि सुधरवाना। सूई आदि बिना प्रयोजन ग्रहण करना। सूई आदि अविधि से ग्रहण करना।
सूत्र ३९-४० पात्र तथा दण्ड आदि का निर्माण करवाना तथा सुधरवाना,
सूत्र ४१-४६ पात्र के थेगली लगाना। पात्र के बधन लगाना।
सूत्र ४७-५६ वस्त्र के थेगली लगाना,
वस्त्र के गाठ लगाना,
वस्त्र खण्ड जोडना।
सूत्र ५७ औषधि के लिए गृहस्थ से गृहधूम उतरवाना।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥ □□

दूसरा उद्देशक

दंडयुक्त पादप्रोंछन ग्रहण करने आदि का प्रायश्चित्त–

१. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

२. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं गेण्हइ, गेण्हंतं वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

४. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं वियरइ, वियरेंतं वा साइज्जइ ।

५. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं परिभाएइ, परिभाएंतं वा साइज्जइ ।

६. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं परिभुंजइ, परिभुंजंतं वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं परं दिवड्ढाओ मासाओ धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

८. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं विसुयावेइ विसुयावेंतं वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु काष्ठदंडयुक्त "पादप्रोंछन" बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

२ जो भिक्षु काष्ठदंडयुक्त "पादप्रोंछन" ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३ जो भिक्षु काष्ठदंडयुक्त "पादप्रोंछन" धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४ जो भिक्षु काष्ठदंडयुक्त "पादप्रोंछन" ग्रहण करने की आज्ञा देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

५ जो भिक्षु काष्ठदंडयुक्त "पादप्रोंछन" वितरण करता है या वितरण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६ जो भिक्षु काष्ठदंडयुक्त "पादप्रोंछन" का उपयोग करता है या उपयोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जो भिक्षु काष्ठदंडयुक्त "पादप्रोंछन" को डेढ मास से अधिक रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

८ जो भिक्षु काष्ठदंडयुक्त "पादप्रोंछन" को पृथक् करता है या पृथक् करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—

प्रथम सूत्र मे—काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन बनाने का,

द्वितीय सूत्र में—उसे ग्रहण करने का,

तृतीय सूत्र में—उसके रखने का,

चतुर्थ सूत्र में—उसके ग्रहण करने की ग्राज्ञा देने का,

पंचम सूत्र में—उसके वितरण करने का,

छठे सूत्र में—उसके उपयोग करने का,

सप्तम सूत्र मे—किसी कारण विशेष से काष्ठ दण्डयुक्त पादप्रोञ्छन रखना पडे तो डेढ मास से अधिक रखने का, और

ग्रष्टम सूत्र मे—काष्ठदण्ड को खोलकर पादप्रोञ्छन से अलग करने का प्रायश्चित्त विधान है।

इस सूत्राष्टक मे से प्रथम सूत्र के भाष्य एव चूर्णि मे काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन की उपयोगिता का सूचक "रजोहरण" शब्द अकित है। इससे भ्रान्ति उत्पन्न होती है कि रजोहरण "तो ग्रौधिक उपधि है—जिसे सभी प्रव्रजित भिक्षु यावज्जीवन साथ रखते है, अत "काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन (रजोहरण)" किस प्रकार का होता है और उसका उपयोग क्या है ? इत्यादि जिज्ञासाओं का समाधान इस प्रकार है—

१. पादप्रोंछन—

जीर्ण या फटे हुए कम्बल का एक हाथ लम्बा-चौडा खण्ड "पादप्रोञ्छन" कहा जाता है।

बृह० उद्दे० १, सूत्र ४० मे वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोञ्छन, इन चार उपकरणो के नाम है।

इसी प्रकार अन्य आगमो मे भी अनेक जगह ये चारो नाम एक साथ मिलते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि यह पादप्रोञ्छन भी वस्त्र, पात्र और कम्बल जितना ही आवश्यक एव उपयोगी उपकरण है।

ग्रौपग्रहिक उपधि होते हुए भी पादप्रोंछन का उपयोग प्राचीन काल मे अधिक प्रचलित था।

श्रमण रजोहरण से पादप्रोंछन को पूंजकर उसपर बैठ सकते है, ऐसा उल्लेख उत्त० अ० १७, गाथा ७ मे है, यहाँ उसे "पायकबल" कहा गया है, टीकाकार ने पायकबल का अर्थ 'पादप्रोंछन' किया है।

रात्रि में या विकाल मे श्रमण को दीर्घ शका का वेग यदि प्रबल हो और प्रतिलेखित उच्चार-प्रश्रवण भूमि तक पहुचना शक्य न हो तो उपाश्रय के किसी एकान्त विभाग मे मल विसर्जन करने के समय भी पादप्रोंछन का उपयोग करे। यदि उस समय अपना पादप्रोंछन न हो तो अपने साथी श्रमण से पादप्रोञ्छन लेकर भी उस का उपयोग करे, ऐसा आचा० श्रु० २, अ० १० मे विधान है।

इस प्रकार पादप्रोंछन से पैरों पर लगी हुई अचित्त रज पोछना, रजोहरण से पादप्रोछन का प्रमार्जन कर उस पर बैठना-तथा मलविसर्जन के समय पादप्रोञ्छन का उपयोग करना इत्यादि कार्य आगमो मे विहित हैं, अत रजोहरण और पादप्रोछन भिन्न-भिन्न उपकरण हैं क्योकि रजोहरण से तो प्रमार्जन होता है और पादप्रोछन से पैर आदि पोछे जाते है। इस प्रकार दोनो के अर्थ और उपयोग भिन्न-भिन्न है।

२. **काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन**—

रजोहरण से उपाश्रय के जिस स्थल का प्रमार्जन करना शक्य न हो और उस स्थल का प्रमार्जन करना किसी विशेष कारण से अनिवार्य हो तो पादप्रोछन के मध्य मे काष्ठ दण्ड बाधकर उसका उपयोग किया जाता है ऐसा बृहत्कल्प उ ५ से स्पष्ट होता है।

व्याख्या ग्रथो के अवलोकन से प्रतीत होता है कि व्याख्याकारों ने कही कही रजोहरण और पादप्राछन को एक ही उपकरण मान लिया है किन्तु बृहत्कल्प उ० २, सु० ३० तथा स्थानांग अ० ५, उ० ३ मे कहे गए पाच प्रकार के रजोहरणो से पादप्रोछन और काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन भिन्न उपकरण है।

रजोहरण से प्रादप्रोछन की भिन्नता—

रजोहरण प्रातिहारिक नही लिया जाता किन्तु निशीथ उद्दे० ५, सू० १५-१८ मे प्रातिहारिक पादप्रोछन निश्चित समय पर न लौटाने का प्रायश्चित्त विधान होने से उसका प्रातिहारिक लेना सिद्ध है।

रजोहरण के काष्ठदण्ड पर वस्त्र लपेटा हुआ रहता है और पादप्रोछन युक्त काष्ठदण्ड पर वस्त्र लपेटा हुआ नही रहता है।

पादप्रोछन का उपयोग पैर पोछने के अतिरिक्त मलविसर्जन के समय भी किया जाता है और यदा कदा उस पर बैठ भी सकते है किन्तु उक्त दोनो कार्य रजोहरण से होना सम्भव नही हैं अपितु रजोहरण पर बैठना, सोना, सिरहाने रखना आदि कार्यों का निशीथ उ० ५ मे प्रायश्चित्त कहा गया है।

निशीथ उद्देशक ४ सूत्र ३० मे निर्ग्रन्थियो के आगमन पथ पर रजोहरण आदि रखने पर प्रायश्चित्त विधान है किन्तु वहाँ पादप्रोछन का कथन नही है।

निर्ग्रथ काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन अनिवार्य-आपवादिक स्थिति मे डेढ मास रख सकता है और निर्ग्रथी अपनी विशेष समाचारी के अनुसार अनिवार्य आपवादिक स्थिति मे भी काष्ठदडयुक्त पादप्रोछन नही रख सकती है किन्तु काष्ठदडयुक्त रजोहरण तो दोनो को रखना अनिवार्य होता है।

इस प्रकार पादप्रोछन, काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन और रजोहरण, इन तोनो का अन्तर स्पष्ट है।

दश० अ० ४ मे तथा प्रश्न० श्रु० २, अ० ५ मे श्रमणो के उपकरण कहे है, उनमे रजोहरण और पादप्रोछन के अलग अलग नाम है।

प्रश्नव्याकरण के टीकाकार ने उक्त पाठ की टीका मे श्रमणो के उपकरणो की सख्या जो चौदह कही है वह भी रजोहरण और पादप्रोछन को भिन्न-भिन्न मानने पर ही होती है।

आचा० श्रु० २, अ० १० मे कहा है मल का प्रबल वेग आने पर किसी के पास स्वय का पादप्रोछन न हो तो साथी श्रमण से पादप्रोछन की याचना करे। किन्तु रजोहरण तो स्वय का नही हो ऐसा विकल्प ही नही होता है, क्योकि अचेल जिनकल्पी भिक्षु को भी रजोहरण रखना आवश्यक है।

इन आगमप्रमाणो से रजोहरण और पादप्रोछन भिन्न-भिन्न उपकरण सिद्ध होते है, अत दोनो को एक नही मानना चाहिए।

रजोहरण फलियो के समूह से बना हुआ औधिक उपकरण है।

पादप्रोछन वस्त्रखड होता है और वह औपग्रहिक उपकरण है।

काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन डडे से बाधा हुआ वस्त्रखड है। जो सातवे सूत्र मे काष्ठदण्ड, युक्त पादप्रोछन डेढ मास से अधिक रखने का प्रायश्चित्त कहा है, भाष्यकार ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जो पादप्रोछन अपरिकर्म वाला हो अर्थात् नया हो उसे चार मास तक रख सकते है, जो पादप्रोछन अल्प परिकर्म वाला (पुराना) हो उसे दो मास तक रखा जा सकता है और जो पादप्रोछन सपरिकर्म (जीर्ण) है वह डेढ मास तक रखा जा सकता है। उसके बाद आवश्यक हो तो अन्य पादप्रोछन की याचना कर लेनी चाहिए या नया बना लेना चाहिए।

इसका कारण यह है कि—१ काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन की किसी स्थान मे २-४ दिन या उत्कृष्ट किसी क्षेत्र में काल-स्वभाव के कारण डेढ मास तक उपयोगिता रहती है। बाद मे मकान के कई भागो मे मकडी आदि छोटे-मोटे जीवो का प्रचार-प्रसार नही रहता है। अथवा—

२ काष्ठदण्ड के साथ लगा हुआ पादप्रोछन का वस्त्र डेढ मास के बाद अति मलिन एव नमी आदि के कारण उसमे जीवोत्पति हो जाती है या जीर्ण वस्त्र हो तो वह दुष्प्रतिलेख्य हो जाता है, अत उसे खोलकर अन्य वस्त्र लगाया जा सकता है। इसीलिए डेढ मास की मर्यादा का उल्लघन करने का सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा है। डेढ मास के पूर्व कभी भी आवश्यक हो तो खोलकर परिवर्तन किया जा सकता है। किन्तु अकारण खोलने पर या प्रतिदिन खोलने पर प्रमादवृद्धि होती है। इस कारण आठवे सूत्र मे अकारण दण्ड से वस्त्र को खोलने एव अलग करने का प्रायश्चित्त कहा गया है।

काष्ठदण्ड के पादप्रोछन को ऐसी विधि से बाधना चाहिए कि जिससे उसकी प्रतिलेखना सुविधापूर्वक हो सके। जिस प्रकार वस्त्र को विधि-युक्त सीने एव विधियुक्त गाठ देने से वह सुप्रतिलेख्य होता है उसी प्रकार काष्ठदण्ड के साथ विधि युक्त बाधा गया पादप्रोछन भी सुप्रतिलेख्य होता है। उसे अकारण खोलने की आवश्यकता नही होती है।

भाष्य गा १४१३ मे पादप्रोछन को औपग्रहिक उपकरण कहा है अत जिस क्षेत्र मे और जिस काल मे जितने समय आवश्यक हो उतने समय तक रखना एव उपयोग मे लेना कल्पता है। जब आवश्यकता न रहे तब उसे छोड देना या परठ देना चाहिए।

साराश यह है कि भिक्षु आवश्यक होने पर सुप्रतिलेख्य काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन उत्कृष्ट डेढ मास तक रख सकता है। उसके बाद भी कभी रखना आवश्यक हो जाय तो खोलकर परिवर्तन कर लेना चाहिये।

इत्रादि सूंघने का प्रायश्चित्त—

९. जे भिक्खू अचित्तपइट्ठियं गंधं, जिघइ जिघंतं वा साइज्जइ ।

९ जो भिक्षु अचित्त पदार्थ (चदन-इत्रादि) मे रही हुई सुगध को सूघता है या सूघने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

पदमार्ग आदि बनाने का प्रायश्चित्त—

१०. जे भिक्खू पदमग्गं वा, संकम वा, अवलंबणं वा सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

११. जे भिक्खू दगवीणियं सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१२. जे भिक्खू सिक्कग वा, सिक्कगणंतगं वा सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१३. जे भिक्खू सोत्तियं वा, रज्जुयं वा चिलिमिलिं सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१० जो भिक्षु पदमार्ग, सक्रमणमार्ग या अवलबन का साधन स्वय करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

११ जो भिक्षु पानी निकलने की नाली स्वय करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१२ जो भिक्षु छीका या छीके का ढक्कन स्वय करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१३ जो भिक्षु सूत की या रस्सी की चिलमिली का निर्माण स्वयं करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है)

विवेचन—इन सूत्रो मे कहे गए कार्य यद्यपि साधु के करने योग्य नही हैं फिर भी परिस्थिति-वश ये कार्य करने आवश्यक हो तो गृहस्थ से करवाने पर अधिक प्रायश्चित्त और स्वय करने पर अल्प प्रायश्चित्त का विधान है, क्योकि गृहस्थ की अपेक्षा स्वय विवेकपूर्वक कर सकता है । अत अल्प जीवविराधना का प्रायश्चित्त भी अल्प ही कहा गया है तथा गृहस्थ से कोई भी कार्य करवाना भिक्षु के लिये दशवै. अ ३ मे अनाचार कहा गया है । इस कारण से भी यह अधिक प्रायश्चित्त योग्य है ।

सूत्र पाठ मे चिलमिलिका निर्माण योग्य सामग्री केवल दो प्रकार की कही गई है किन्तु भाष्यकार ने पाच प्रकार की सामग्री से निर्मित चिलमिलिकाए कही है । विशेष जिज्ञासा वाले भाष्य देखे ।

बृहत्कल्प उद्दे १ सू १८ से तथा निशीथ के इस सूत्र से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि साधु-साध्वियो को जब कभी चिलिमिली की आवश्यकता अनुभव हो तो उन्हे रखना या उपयोग मे लेना कल्पता है । किन्तु पूर्वनिर्मित न मिलने पर सूत से या डोरियो से चिलमिली का स्वय निर्माण करना लघुमासिक प्रायश्चित्त योग्य कार्य है और गृहस्थ से निर्माण करवाना गुरुमासिक प्रायश्चित्त योग्य कार्य है । इनका विवेचन प्रथम उद्देशक सूत्र ११-१४ में देखे ।

उत्तरकरण करने का प्रायश्चित्त—

१४. जे भिक्खू सूईए उत्तरकरणं सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१५. जे भिक्खू पिप्पलगस्स उत्तरकरण सयमेव करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

१६. जे भिक्खू णहच्छेयणगस्स उत्तरकरण सयमेव करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

१७. जे भिक्खू कण्णसोहणगस्स उत्तरकरणं सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१४ जो भिक्षु सूई का उत्तरकरण—सुधार परिष्कार स्वय करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५ जो भिक्षु कतरणी का उत्तरकरण—सुधार परिष्कार स्वय करता है या करने वाले का अनुमोदत करता है।

१६ जो भिक्षु नखछेदनक का उत्तरकरण—सुधार परिष्कार स्वय करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७ जो भिक्षु कर्णशोधनक का उत्तरकरण—सुधार परिष्कार स्वय करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

नोट—उपरोक्त सूत्रो का विवेचन प्रथम उद्देशक के सूत्र १५-१८ मे देखें।

प्रथम महाव्रत के अतिचार का प्रायश्चित्त—

१८. जे भिक्खू लहुसग फरुसं वयइ, वयंत वा साइज्जइ ।

१८ जो भिक्षु अल्प कठोर वचन कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघु-मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—परुष भाषा मे कर्कश शब्दो का प्रयोग होता है, भाषासमिति का पालन करने वाले साधु-साध्वी ऐसी परुष भाषा का प्रयोग न करे क्योकि यह भाषा सावद्य होती है।

परिस्थितिवश यदि आवेश आ जाये तो वचनगुप्ति का पालन करते हुए मौन रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

स्नेह रहित शब्द युक्त उपालम्भ, आदेश, शिक्षा तथा प्रेरणा देने के वचन, ये सब चूर्णिकार के अनुसार 'अल्प परुष वचन' हैं। यहाँ यह प्रायश्चित्त विधान ऐसे ही परुष वचनो का है।

उदाहरण

१ एक साधु अपना उपकरण जहाँ पर रखकर गया था उसे वह वहाँ नही मिला, अत उसने वहाँ बैठे साधु से पूछा—"यहाँ मै अपना उपकरण रख कर गया था, वह कहाँ गया?"

वह बोला "मुझे मालूम नही है।"

साधु ने कहा—"अरे प्रमादी ! तू यहाँ बैठा-बैठा क्या नीद ले रहा है ? सच बता किसने उठाया और कहाँ रखा ।"

२ अपने आसन पर किसी अन्य साधु को बैठा देखकर एक साधु ने कहा—"अरे ! यह कौन बैठा है ? उठ यहाँ से, क्या इसे अपना आसन समझ रखा है ।"

३ नीद ले रहे किसी साधु को किसी अन्य साधु ने किसी कारण से जगाया तो वह बोला---"कौन है यह दुष्ट जिसने मेरे आराम मे बाधा डाली है ।"

४ किसी रुग्ण साधु ने किसी अन्य साधु से कहा --"मै कितनी बार कह चुका हूँ—तुम मेरे लिए दवाई नही ला रहे हो ।"

उसने रुग्ण साधु से कहा —"क्यो हाय हाय कर रहे हो ! थोडा धैर्य नही रख सकते ?"

५ किसी गणप्रमुख ने कुछ साधुओ से एक दुर्लभ वस्तु लाने के लिए कहा, कईयो ने गवेषणा की किन्तु उनकी गवेषणा निष्फल गई, केवल एक की गवेषणा सफल रही ।

निष्फल गवेषको मे से किसी एक ने पूछा—"किस को मिली वह दुर्लभ वस्तु" ?

जिसको मिली थी उसने कहा "मुझे मिली है । तुम्हे क्या मिले, तुम्हारे भाग्य मे तो भटकना लिखा है सो भटकते फिरो ।"

इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करने से दूसरो को दु ख होता है, इसलिये परुष भाषण सूक्ष्महिसा है । जिससे प्रथम महाव्रत मे अतिचार लगता है ।

परुस होते हुए भी परुष नहीं

केशीकुमार श्रमण ने राजा प्रदेशी को तथा राजीमति ने रहनेमि को जो कुछ परुष वाक्य कहे थे वे परुष (कठोर) होते हुए भी परुष नही थे । क्योकि उन्होने जो परुष भाषा कही थी वह उन आत्माओ के हित के लिए कही थी अत उस परिस्थिति मे कहे गए कषायभाव-रहित परुष वचन प्रायश्चित्त योग्य नही होते है ।

इसी प्रकार शिष्य को हितशिक्षा हेतु कहे गए गुरु के कठोर वचन भी प्रायश्चित्त योग्य नही होते है ।

क्रोध, मान, ईर्षा या द्वेषवश कहे गए परुष वचनो का प्रायश्चित्त सूत्र मे कहा है ।

आत्मीयता एवं पवित्र हृदय मे कहे गये परुष वचनो का प्रायश्चित्त नही है ।

द्वितीय महाव्रत के अतिचार का प्रायश्चित्त—

१९. जे भिक्खू लहुसगं मुसं वयइ, वयत वा साइज्जइ ।

१९ जो भिक्षु अल्प मृषावाद बोलता है या बोलने वाले का अनुमोदन करता है (उसे लघु-मासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—बिना विचारे या भय से कहे गए वचन अल्प मृषावाद के वचन माने गए है ।

१ जो कार्य किया है उसके सम्बन्ध में पूछने पर भयभीत होकर कह दे—मैंने नही किया। जो कार्य नही किया है उसके सम्बन्ध मे पूछने पर बिना विचारे कह दे—मैंने किया है।

२ ऊघते हुए को पूछने पर कह दे—मैं नही ऊंघ रहा हूँ।

३. अंधेरे में किसी अन्य की वस्तु को अपनी वस्तु कहना। इस प्रकार के मृषावाद के प्रायश्चित्तविधान इस सूत्र में हैं। वंचकवृत्ति से या किसी का अहित करने के लिए कहे गए असत्य वचनो को यहाँ नही समझना चाहिये।

तृतीय महाव्रत के अतिचार का प्रायश्चित्त—

२०. जे भिक्खू लहुसगं अदत्तं आइयइ, आइयंतं वा साइज्जइ।

२० जो भिक्षु अल्प अदत्त-ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन--भिक्षु को प्रत्येक वस्तु याचना करके ही ग्रहण करनी चाहिए।

दश. अ. ६ मे कहा है कि "दाँत शोधन करने के लिए तिनका (तृण) भी आज्ञा लिए बिना नही लेना चाहिए।"

व्यव उ. ७ में कहा है कि "मार्ग में बैठना हो तो वहाँ भी आज्ञा ग्रहण करनी चाहिए।"

आचा. श्रु २, अ १५, मे कहा है कि "भिक्षु बारबार (सदा) आज्ञा लेने की वृत्ति वाला होना चाहिए अन्यथा कभी अदत्त भी ग्रहण किया जाना सभव है।"

भग श १६, उ. २ मे वर्णन है कि अवग्रह ग्रहण के प्रकारो को जानकर तीर्थकर के शासन के सम्पूर्ण भिक्षुओ को भरतक्षेत्र में विचरने की और स्वामी रहित पदार्थों व स्थानो के उपयोग मे लेने की शक्रेन्द्र आज्ञा देता है।

इसीलिए ऐसे पदार्थों व स्थलो की आज्ञा ग्रहण करने की समाचारिक विधि है। जिसके लिए "शक्रेन्द्र की आज्ञा" अथवा "अणुजाणह जस्सुग्गहो" ऐसा उच्चारण किया जाता है।

आचा श्रु २, अ ७ मे कहा है—अपने सभोगी साधु के उपकरण भी आज्ञा प्राप्त कर के ही ग्रहण करना चाहिए।

सूय श्रु १, अ ३, प्रश्न श्रु २, अ ३, उत्त अ १९ तथा अ २५ आदि अनेक आगम पाठो मे अदत्त ग्रहण करने का निषेध है।

चतुर्थ महाव्रत के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त—

२१. जे भिक्खू लहुसएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा हत्थाणि वा, पायाणि वा, कण्णाणि वा, अच्छीणि वा, दंताणि वा, णहाणि वा, मुह वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा साइज्जइ।

२१ जो भिक्षु अल्प अचित्त शीत या उष्ण जल से हाथ, पैर, कान, आँख, दाँत, नख या मुँह आदि को प्रक्षालित करता है, धोता है या प्रक्षालन करने वाले का या धोने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—सूत्र १८-१९-२० मे क्रमश प्रथम, द्वितीय व तृतीय महाव्रत सम्बन्धी दोषो का प्रायश्चित्त कहा है। आगे के सूत्र २२-२३-२४ मे पाँचवे महाव्रत सम्बन्धी दोषो का प्रायश्चित्त कहा है। अत इस सूत्र मे चौथे महाव्रत सम्बन्धी दोष का प्रायश्चित्त समझना चाहिए क्योकि स्नान को 'कामाग' और ब्रह्मचर्य का दूषण कहा गया है अत यहाँ देश-स्नान रूप प्रवृत्ति का प्रायश्चित्त है।

भोजन करने के बाद मणिबन्ध पर्यंत लिप्त हाथो को धोना यहाँ प्रायश्चित्त योग्य नही है तथा मल-मूत्रादि के लेप युक्त पाव आदि को धोकर साफ करना भी कल्प्य है।

ये सामान्य कारण है। इसके सिवाय निष्कारण प्रक्षालन की प्रवृत्तियाँ निषिद्ध समझनी चाहिए। वे प्रवृत्तियाँ बाकुशी प्रवृत्तियाँ कही जाती है, उन्ही का इस सूत्र से प्रायश्चित्त समझना चाहिए।

कृत्स्न चर्म धारण का प्रायश्चित्त—

२२. **जे भिक्खू कसिणाइं चम्माइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।**

२२ जो भिक्षु अखण्ड चर्म धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भाष्यकार ने "कसिण के चार प्रकार बताये है। वे साधु को नही कल्पते हैं, प्रस्तुत सूत्र मे" सकल-कसिण का प्रायश्चित्तविधान है, जिसका अर्थ अखण्ड पूर्ण चर्म होता है।

शेष तीन प्रकार

१. **प्रमाण "कसिण"**—जूता आदि।

२. **वर्ण "कसिण"**—उज्ज्वल (सुन्दर वर्ण वाला) पाँचो वर्ण मे से किसी एक वर्ण युक्त।

३. **बंधण "कसिण"**—आधा पाँव, पूरा पाँव, जघा, घुटने, अगुलियाँ आदि को बाँधने या सुरक्षा करने का चर्ममय उपकरण। इन तीन प्रकार के 'कसिण चर्मों' का प्रायश्चित्त विधान करना इस सूत्र का विषय नही है अर्थात् इनका प्रायश्चित्त गुरुमासिक आदि है। प्रस्तुत उद्देशक लघु मासिक प्रायश्चित्त का है।

फिर भी भाष्यकार ने सभी विकल्प कह कर उनके प्रायश्चित्त के प्रकारो का भी विस्तृत वर्णन किया है। उसका पूर्ण परिशीलन करना प्रायश्चित्तदाता गीतार्थों के लिए बहुत उपयोगी है। किस आपवादिक परिस्थिति में औपग्रहिक उपकरण रूप मे किन-किन चर्म-उपकरणो का उपयोग किया जा सकता है, इसकी जानकारी भी भाष्य से करनी चाहिए।

जिज्ञासु पाठक भाष्य चूर्णि से अधिक समझ सकते हैं। यहाँ सामान्य जिज्ञासुओ के लिए सूत्रोक्त विषय का उपयोगी अश ही अकित किया है।

कृत्स्न वस्त्र धारण का प्रायश्चित्त—

२३. जे भिक्खू कसिणाइं वत्थाइं धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ ।

२३ जो भिक्षु 'कृत्स्न' वस्त्र धारण करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—इस सूत्र के भाष्य मे **'कृत्स्न'** शब्द का विस्तृत अर्थ एव विविध प्रकार के प्रायश्चित्त विधानो का कथन करके यह कहा है कि—

सुत्तनिवातो कसिणे, चउव्विधे मज्झियम्मि वत्थम्मी ।
जहण्णे य मोल्लकसिणे, तं सेवतम्मि आणादी ।।९६९।।

चार प्रकार के कृत्स्न वस्त्र

१ द्रव्यकृत्स्न, २ क्षेत्रकृत्स्न, ३ कालकृत्स्न, ४ भावकृत्स्न ।

द्रव्यकृत्स्न—श्रेष्ठ सुकोमल सूत्रो से बना वस्त्र,

क्षेत्रकृत्स्न—जिस क्षेत्र मे जो वस्त्र बहुमूल्य होने से दुर्लभ हो,

कालकृत्स्न—जिस काल मे जो बहुमूल्य वस्त्र दुर्लभ हो,

भावकृत्स्न—वर्ण से सुन्दर वर्ण वाला अथवा बहुमूल्य वस्त्र ।

प्रत्येक के तीन-तीन प्रकार है—जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट, यो बारह प्रकार के वस्त्र होते हैं—

जघन्य भावकृत्स्न का तथा जघन्य, मध्यम द्रव्य-क्षेत्र-काल कृत्स्न का सूत्रोक्त प्रायश्चित्त है ।

उत्कृष्ट द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकृत्स्न का लघु चौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

अठारह रुपये से कम मूल्य का वस्त्र जघन्य भावकृत्स्न है, अत अठारह रुपये से कम मूल्य का वस्त्र साधु-साध्वियो को लेना कल्पता है ।

अठारह रुपये से लेकर एक लाख रुपये तक के मूल्य के सभी वस्त्र बहुमूल्य माने गए है । जो बहुमूल्य होता है वही वर्ण से अत्यन्त सुन्दर और मृदु स्पर्श वाला होता है ।

चारो प्रकार के कृत्स्न वस्त्र ग्रहण करने पर जो दोष लगते हैं, वे भाष्यकार ने इस प्रकार कहे हैं—

कसिणे चउव्विहम्मि जइ दोसा एवमाइणो होंति ।
उप्पज्जंते तम्हा, अकसिणगहणं ततो भणित ।।९७२।।
भिण्ण, गणणाजुत्त च, दव्वतो खेत्त कालतो उ चित्त ।
मोल्ललहु वण्णहीणं च भावतो तं अणुण्णातं ।।९७३।।

चार प्रकार के अकृत्स्न वस्त्र

साधु—साध्वियो को अकृत्स्न-वस्त्र ही ग्रहण करना चाहिए ।

द्रव्य से अकृत्स्न—फलियों रहित वस्त्र,

अग्रपिंड ग्रहण प्रायश्चित्त—

३२. जे भिक्खू नितिय अग्गपिंडं भुंजइ भुंजतं वा साइज्जइ ।

३२ जो भिक्षु नित्य—अग्र-पिड-प्रधानपिड अर्थात् निमन्त्रण देकर नित्य दिया जाने वाला आहार भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—दशवैकालिक अ ३ मे 'नियागपिंड' नामक जो अनाचार कहा गया है उसी का प्रायश्चित्त इस सूत्र मे कहा है।

नियागपिंड के पर्यायवाची शब्द

१ नितिय अग्गपिड २ निइय अग्गपिंड,
३ निइयग्ग पिंड, ४ नियाग्गपिड,
५ नियागपिड।

नियागपिड को व्याख्या के अनुसार १. निमन्त्रणपिंड, २ निकायणापिड ३ नित्याग्रपिड, ४ नित्य अग्रपिड, ये सब नियागपिड के समानार्थक हैं। इन सबका अर्थ है—'नित्य नियमित निमन्त्रण पूर्वक दिया जाने वाला आहार।'

"आप प्रतिदिन मेरे घर पर भिक्षा लेने के लिए नियमित पधारे।" जो गृहस्थ साधु-साध्वियो को इस प्रकार निमत्रण देता है उसके यहाँ से आहार लेने पर उन्हे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है। भले ही वह आहार उसके निजी उपयोग के लिए ही बना हो। यह भाष्य और चूर्णिकार का अभिप्राय है।

जिस गृहस्थ के यहाँ प्रतिदिन नियमित रूप से श्रेष्ठ सरस आहार का दान दिया जाता है वह गृहस्थ निमन्त्रण दे या न दे उसके यहाँ से आहार लेने पर भी सूत्रोक्त लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

अग्रपिण्ड का भी चूर्णिकार नित्य निमन्त्रितपिण्ड अर्थ करते है तथा उसके अनेक विकल्प एव उससे होने वाले दोषो को समझाकर कहते हैं कि **"तस्मान्निमंत्रणादि पिंडो वर्ज्यः कारणे पुण निकायणा पिंड गेण्हेज्ज" । गीतत्थो पणग परिहाणिए जाहे मासलहुं पत्ते ताहे णीयग्गपिंडं गेण्हति ।।**

व्याख्याकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि गवेषणा के सभी दोष टालकर निमत्रण व नियमितता के अभाव मे दो चार दिन लगातार भी एक घर से आहार लेना दोष नही है। अर्थात् वह नियागपिड नाम का अनाचार नही है।

दानपिंड प्रायश्चित्त—

३३. जे भिक्खू नितिय पिंड भुंजइ भुंजतं वा साइज्जइ ।

३४. जे भिक्खू नितियं-अवड्ढभागं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

३५. जे भिक्खू नितियं भागं भुंजइ, भुंजत वा साइज्जइ ।

३६. जे भिक्खू नितियं उवड्ढभागं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

३३. जिन कुलो मे तैयार किया गया सम्पूर्ण आहार प्रतिदिन दान मे दिया जाता है, उस आहार को लाकर जो भिक्षु भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

३४ जिन कुलो मे तैयार किये गये आहार का आधा भाग प्रतिदिन दान मे दिया जाता है, उस आहार को लाकर जो भिक्षु भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जिन कुलो मे तैयार किये गये आहार का तीसरा भाग प्रतिदिन दान में दिया जाता है, उस आहार को लाकर जो भिक्षु भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

३६ जिन कुलो मे तैयार किये गये आहार का छट्ठा भाग प्रतिदिन दान मे दिया जाता है, उस आहार को लाकर जो भिक्षु भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—इन सूत्रों के शब्दार्थ की सूचक भाष्य गाथा—

पिंडो खलु भत्तट्ठो अवड्ढ पिंडो तस्स जं अद्धं ।

भागो तिभागमादि, तस्सद्धमुवड्ढभागो य ।। १००९ ।।

इस गाथा के आधार से ही यहा मूल पाठ का अर्थ दिया गया है।

पुरोहितादि विशिष्ट व्यक्तियो के लिए नित्य निमन्त्रणपूर्वक दिया जाने वाला विशिष्ट आहार यदि साधु-साध्वी ले तो उन्हे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है। यह विधान ३२ वे सूत्र मे किया गया है और इन चारो सूत्रो मे नित्य दान देने वाले कुलो से दान का आहार लेने का कथन है।

साधारण व्यक्तियो के लिए दिया जाने वाला साधारण आहार यदि साधु-साध्वी ले तो उन्हे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

आचारागसूत्र श्रु २ अ १ उ १ मे प्रतिदिन भोजन का कुछ भाग दान दिए जाने वाले कुलो मे साधु-साध्वियो को आहार के लिए जाने का सर्वथा निषेध है और यहाँ उसी के ये चार प्रायश्चित्त सूत्र हैं। आचाराग का पाठ इस प्रकार है—

'से जाइं पुण कुलाइं जाणेज्जा, इमेसु खलु कुलेसु नितिए पिंडे दिज्जइ, नितिए अग्गपिंडे दिज्जइ, नितिए भाए दिज्जइ, नितिए अवड्ढभाए दिज्जइ, तहप्पगाराइ कुलाइं नितियाइं नितियो-वमाणाइं, णो भत्ताए वा पाणाए वा, पविसेज्ज वा निक्खमेज्ज वा'।

ऐसे कुलो मे आहार के लिए जाने से दान मे अन्तराय आती है तथा पश्चात्कर्म दोष लगता है क्योकि दूसरी बार आहार बनाया जाने पर आरम्भजा हिसा होती है।

प्रतिदिन पूर्ण भोजन का दान करने वाले कुलो का आहार 'नित्यपिड' कहा जाता है। इस प्रकार का नित्यपिण्ड लेने वाले साधु-साध्वियो को सूत्रोक्त लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

इस आचारागसूत्र वर्णित "नित्य-पिड" से दशवैकालिकसूत्र वर्णित 'नियागपिड अनाचार' भिन्न है। नियागपिड अनाचार को आचारागसूत्र तथा निशीथसूत्र मे 'नित्य अग्रपिड' कहा गया है। व्याख्याकारो ने नियागपिड और नित्य अग्रपिड को एकार्थक बताया है।

वर्तमान प्रणाली में नित्यदान पिड दोष से तथा नियागपिड अनाचार से भिन्न 'नित्यपिंड

क्षेत्र से अकृत्स्न—सर्वत्र सुलभ वस्त्र,
काल से अकृत्स्न—सर्वजनभोग्य वस्त्र,
भाव से अकृत्स्न—अल्पमूल्य वाला और आकर्षक वर्ण रहित वस्त्र ।

अभिन्न वस्त्र धारण का प्रायश्चित्त–

२४. जे भिक्खू अभिण्णाइं वत्थाइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

२४ जो भिक्षु अभिन्न वस्त्र धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—पूर्व सूत्र मे "कृत्स्न वस्त्र लेने का तथा रखने का प्रायश्चित्त कहा है, इस सूत्र मे अभिन्न" वस्त्र लेने व रखने का प्रायश्चित्त कहा है ।

यहा अभिन्न का अर्थ 'अखण्ड' है । अखण्ड वस्त्र लेने से तथा रखने से निम्न दोष होते हैं—

१ विधिपूर्वक वस्त्र की प्रतिलेखना न होना ।
२ अधिक भार वाला वस्त्र होना ।
३ वस्त्र का चुराया जाना आदि ।

इसलिए साधु-साध्वियो को आगमोक्त प्रमाणानुसार आवश्यक वस्त्र लेने चाहिये ।

पात्रपरिकर्म-प्रायश्चित्त–

२५. जे भिक्खू लाउयपायं वा, दारुपायं वा, मट्टियापायं वा, सयमेव परिघट्टेइ वा, संठवेइ वा जमावेइ वा परिघट्टेंतं वा संठवेंतं वा जमावेंतं वा साइज्जइ ।

२५ जो भिक्षु तुबपात्र, काष्ठपात्र, मृत्तिकापात्र का परिघट्टन, सठवण और "जमावण" स्वय करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—शब्दार्थ आदि प्रथम उद्देशक सूत्र ३० मे देखें ।

साधु-साध्वियो का स्वाध्याय ध्यानादि सभी प्रकार की आराधनाए यथासमय करने में सलग्न रहना चाहिए, अनिवार्य परिस्थिति के बिना सभी प्रकार के पात्रपरिकर्म नही करने चाहिए, क्योंकि परिकर्म करना भी एक प्रकार का प्रमाद ही है ।

अत्यावश्यक परिकर्म विवेक पूर्वक करना चाहिए, अविवेक से परिकर्म करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है ।

दण्ड आदि के परिकर्म करने का प्रायश्चित्त–

२६. जे भिक्खू दंडयं वा, लट्ठियं वा, अवलेहणियं वा, वेणुसूइयं वा, सयमेव परिघट्टेइ वा, संठवेइ वा, जमावेइ वा, परिघट्टेंतं वा, संठवेंतं वा जमावेंतं वा साइज्जइ ।

२६ जो भिक्षु दण्ड, लाठी, अवलेहनिका और वास की सूई का "परिघट्टण" "सठवण" "जमावण" स्वय करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—परिघट्टण आदि का विवेचन उद्दे० १ सु० ४० मे देखें।

अन्य-गवेषित-पात्र ग्रहण का प्रायश्चित्त–

२७. जे भिक्खू नियगगवेसियं पडिग्गहं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

२८. जे भिक्खू परगवेसियं पडिग्गहं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

२९. जे भिक्खू वरगवेसियं पडिग्गहं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

३०. जे भिक्खू बलगवेसियं पडिग्गहं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

३१. जे भिक्खू लवगवेसियं पडिग्गहं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

२७ जो भिक्षु स्वजन गवेषित पात्र को धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८ जो भिक्षु अस्वजन गवेषित पात्र को धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९ जो भिक्षु प्रधान पुरुष द्वारा गवेषित पात्र को धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३० जो भिक्षु बलवान् गवेषित पात्र को धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१ जो भिक्षु लव गवेषित पात्र को धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—१ नियग—पारिवारिक सदस्यो के द्वारा।

२ पर—अन्य श्रावक आदि के द्वारा।

३ वर—प्रधान व्यक्ति—ग्राम, नगर आदि के प्रमुख व्यक्ति, प्रसिद्ध व्यक्ति या पदवीप्राप्त—सरपच आदि के द्वारा।

४ बलवान्—शरीर से या प्रभुत्व से शक्तिसम्पन्न के द्वारा।

५ लव—दान का फल आदि बताकर प्राप्त किया गया।

साधु-साध्वियो को पात्र आदि स्वय गवेषणा करके प्राप्त करना चाहिए, अन्य से गवेषणा करवाकर के प्राप्त करने मे अनेक दोष लगने की सम्भावना रहती है। अत दाता की भावना को समझकर अदीनवृत्ति से स्वय विधिपूर्वक गवेषण करे। अन्य की गवेषणा का पात्र ग्रहण करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

दोषो की और प्रायश्चित्तो की विस्तृत जानकारी के लिए निशीथचूर्णि देखें।

विवेचन—पूर्व-पश्चात्संस्तव दोष, उत्पादन के सोलह दोषो मे है। इस दोष को सेवन करने वाले साधु-साध्वियो को लघुमास का प्रायश्चित्त आता है।

पूर्वसंस्तव—भिक्षा ग्रहण करने से पूर्व भिक्षादाता की प्रशसा करना 'पूर्वसस्तव' दोष है। इसके पीछे साधु का सकल्प यह होता है कि 'प्रशसा करने से वह श्रेष्ठ सरस आहार देगा'।

कई साधु-साध्विया दाता की प्रशसा न करके अपनी ही प्रशसा करते है। वे अपने जाति-कुल की, ज्ञान, ध्यान की या तप आदि की चमत्कार भरी गरिमा बताकर दाता को प्रभावित करते हैं जिससे उन्हे सदा सम्मानपूर्वक यथेष्ट आहार मिलता रहे और परिचय बना रहे।

पश्चात्संस्तव

भिक्षा ग्रहण करने के बाद दाता की प्रशसा करना 'पश्चात्सस्तव' दोष है। ऐसा करने मे साधु का तात्पर्य यह होता है कि 'बाद मे जब कभी भिक्षा के लिए आवे तब भक्तिभाव पूर्वक आहार मिलता रहे। इस प्रकार आहारप्राप्ति के लिए दाता की प्रशसा करना साधु की निस्पृहवृत्ति को दूषित करना है इसलिए दाता की ऐसी प्रशसा न करे।

धार्मिक सस्कार वृद्धि हेतु सुपात्र दान का स्वरूप, विधि तथा उसका फल बताना, धर्म-जागृति बढाना जिससे भक्तिभाव बढे तो वह दोष रूप नही होकर गुण रूप ही होना है, उससे तो धर्मप्रभावना तथा निर्जरा होती है।

भिक्षाकालपूर्व स्वजन-गृहप्रवेश प्रायश्चित्त—

३९. जे भिक्खू समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं वा दूइज्जमाणे पुरे संथुयाणि वा, पच्छा संथुयाणि वा कुलाइ पुव्वामेव भिक्खायरियाए अणुप्पविसइ अणुपविसंतं वा साइज्जइ।

३९ जो भिक्षु स्थिरवास रहा हुआ हो, मासकल्प आदि रहा हुआ हो या ग्रामानुग्राम विहार करते हुए कही पहुँचा हो, वहा पर अपने पूर्व परिचित या पश्चात् परिचित कुलो मे भिक्षा काल के पूर्व ही प्रवेश करता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—जिस क्षेत्र मे किसी स्थिरवासी स्थविर भिक्षु के, किसी मासकल्पवासी भिक्षु के या किसी ग्रामानुग्रामविहारी भिक्षु के पितृ-मातृ पक्ष के अथवा श्वसुर पक्ष के स्वजन परिजन रहते हों तो उसे वहा भिक्षाकाल के पूर्व भिक्षा के लिए नही जाना चाहिए। यदि जावे तो लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

भिक्षाकाल के पूर्व जाकर पुन भिक्षाकाल मे जाने से औद्देशिक, क्रीत आदि दोषो के लगने की सम्भावना रहती है।

इसी प्रकार वहा कही साधु-साध्वियो के रागानुबन्ध वाले गृहस्थ रहते हो तो वहा भी भिक्षा-काल के पूर्व जाकर पुन भिक्षाकाल मे जाने से पूर्वोक्त दोष लगने की सम्भावना रहती है।

भिक्षु भिक्षाकाल के पूर्व उक्त कुलो मे जाता है तो उसके मन मे यह सकल्प रहता है कि "पहले जाने से ये लोग मेरे लिए कुछ विशेष सामग्री बनाएगे और मैं पुन भिक्षाकाल मे जाकर

यथेष्ट आहारादि ले आऊंगा", इस तथ्य को लक्ष्य में रखकर ही सूत्रोक्त प्रायश्चित्त का विधान है तथा इस विषय का निषेध आचा श्रु २, अ १, उ ९ मे किया गया है।

अन्यतीर्थिक आदि के साथ भिक्षाचर्यादि-गमन-प्रायश्चित्त—

४०. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ वा अपरिहारिएण सद्धि-गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविसइ, अणुपविसतं वा साइज्जइ।

४१. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ वा अपरिहारिएण सद्धि बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा निक्खमइ वा पविसइ वा णिक्खमतं वा पविसंतं वा साइज्जइ।

४२. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ वा अपरिहारिएण सद्धि गामाणुगामं दूइज्जइ, दूइज्जंतं वा साइज्जइ।

४० जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक साधु अपारिहारिक साधु के साथ गाथापति कुल मे आहारप्राप्ति के लिये निष्क्रमण-प्रवेश करता है या निष्क्रमण-प्रवेश करने का अनुमोदन करता है।

४१ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक साधु अपारिहारिक साधु के साथ विहारभूमि या विचारभूमि मे निष्क्रमण-प्रवेश करता है या निष्क्रमण-प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।

४२ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक साधु अपारिहारिक साधु के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—१ अन्यतीर्थिक—आजीवक, चरक परिव्राजक शाक्य आदि।

२ गृहस्थ—भिक्षाजीवी गृहस्थ अर्थात् शनिवार आदि निश्चित दिन भिक्षा करने वाला।

३ पारिहारिक—गवेषणा-दोषो का पूर्ण ज्ञाता और गवेषणा के दोष न लगाने वाला।

४ अपारिहारिक—गवेषणा-दोषो का ज्ञाता होते हुए भी प्रमादवश दोष लगाने वाला।

भिक्षाकाल मे भिक्षु के साथ उसी भिक्षु का जाना उचित है जो गवेषणा के सभी दोषो का पूर्ण ज्ञाता हो, अन्य व्यक्तियो का साथ मे जाना सर्वथा अनुचित है।

इसी आशय को लक्ष्य मे रखकर यहाँ अन्यतीर्थिक के साथ, भिक्षाजीवी गृहस्थ के साथ तथा स्वलिगी अपारिहारिक के साथ जाने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त विधान किया गया है।

अन्यतीर्थिक आदि के साथ जाने से भिक्षादाता के मन मे भी अनेक विकल्प उत्पन्न होते है।
वह सोचता है—पहले श्रमण निर्ग्रन्थ को भिक्षा दूँ या जिनके साथ ये आए हैं इन्हे पहले दूँ?
श्रमण निर्ग्रन्थ को कैसा आहार दूँ और इन्हे कैसा आहार दूँ?
अन्यतीर्थिक आदि के साथ श्रमण निर्ग्रन्थ क्यो आये?
श्रमण निर्ग्रन्थ तो स्वय महान् हैं। ये स्वय आते तो क्या मैं इन्हे भिक्षा नही देता? इत्यादि।

अनाचार' माना जाता है। उसका अर्थ भी दोनो के अर्थ से भिन्न किया जाता है, जिसका कि कोई प्राचीन आधार नही है।

नियागपिंड की व्याख्या के विषय में आचारांग, दशवैकालिक तथा निशीथसूत्र के व्याख्याकार एक मत हैं। यथा—

नियागं-प्रतिनियतं जं निबंधकरणं, ण तु जं अहासमावत्तीए दिणेदिणे भिक्खागहणं।
—दश. अ. ३ चूर्णि [अगस्त्यसिंहसूरि]

"नियागं" नित्यामंत्रितस्य पिंडस्य ग्रहणं न तु नित्यं अनामंत्रितस्य।"
—दश अ ३ टीका—हरिभद्रीय

"आमंत्रितस्य पिंडस्य ग्रहणम्।" —आचा श्रु २, अ १ उ १ दीपिका

नित्यपिण्ड की प्रचलित मान्यता यह है कि "आज जिस घर से साधु या साध्वियाँ आहार-पानी ले उस घर से दूसरे दिन वे और उनके साम्भोगिक साधु-साध्वी आहार पानी न ले" किन्तु आगमो के वर्णको मे वर्णित 'समूह विहार' तथा प्रत्येक सघाडे की विभक्त गोचरी के वर्णनो से भी वर्तमान मे प्रचलित नित्यपिण्ड की व्याख्या सगत सिद्ध नही होती।

प्राचीन काल मे पाच सौ या हजार साधुओ के साथ श्रमणो का समूह-विहार होता था।

यथा—रायपसेणी में वर्णित—केशीकुमार श्रमण का विहार **"पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे"** पाच सौ अणगारो के साथ होता था।

ज्ञाताधर्मकथा अ ५ मे वर्णित थावच्चापुत्र अणगार का विहार **"सहस्सेणं अणगारेणं सद्धिं पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे"** एक हजार अणगारो के साथ होता था।

उनमे से दो-दो साधु के सौ सघाडे भी यदि आहार-पानी करने वाले हो तो किस गृहस्थ के घर से किस अणगार ने किस दिन आहार-पानी लिया है, यह सबकी स्मृति मे रहना सम्भव नही लगता।

जिस दिन जिस सघाडे ने जिस घर से आहार-पानी लिया है दूसरे दिन उसी घर से अन्य सघाडे द्वारा आहार-पानी लेना प्राय सम्भव है बल्कि अतगडसूत्र वर्णित अनीकसेन आदि के समान उसी दिन भी लेना सम्भव रहता है।

ऐसी स्थिति मे दश अ ३, गाथा २ की टीका में उक्त नियागपिण्ड की तथा निशीथ उद्दे. २ मे उक्त नित्यअग्रपिण्ड की चूर्णि एव भाष्य की व्याख्या के अनुसार—"आदर पूर्वक निमत्रण पाकर साधु यदि प्रतिदिन एक ही घर से आहार-पानी ले तो नियागपिण्ड है और निमत्रण बिना कई दिन लगातार एक घर से शुद्ध गवेषणा पूर्वक आहार-पानी ले तो नियागपिण्ड नही है" यह व्याख्या ही उपयुक्त है और प्राचीन काल के समूह विहार तथा प्रत्येक सघाडे की विभक्त गोचरी और ग्रहीत आहार अन्य को निमत्रण करने की पद्धति से भी उचित एव सगत होती है।

नित्य निवास प्रायश्चित्त—

३७. जे भिक्खू "नितियं वासं" वसइ वसंतं वा साइज्जइ ।

३७. जो भिक्षु मासकल्प व चातुर्मासिकल्प की मर्यादा को भग करके नित्य एक स्थान पर रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—कल्प-मर्यादा के सम्बन्ध मे आचा श्रु २, अ २, उ २ के अनुसार दो क्रियायें दोषरूप कही गई हैं—१ कालातिक्रान्त क्रिया २ उपस्थान क्रिया ।

कालातिक्रान्त क्रिया

एक क्षेत्र मे एक मासकल्प (२९ दिन) रहने के बाद भी वहा से विहार न करे तथा एक क्षेत्र मे चातुर्मासकल्प (आषाढ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक) रहने के बाद भी वहा से विहार न करे तो 'कालातिक्रान्त क्रिया' नामक दोष लगता है ।

उपस्थान क्रिया

एक क्षेत्र मे एक मासकल्प रहने के बाद दो मास अन्यत्र बिताये बिना वही आकर रहे तो तथा एक क्षेत्र मे चातुर्मासकल्प रहने के बाद आठ मास अन्यत्र बिताये बिना वही आकर रहे तो 'उपस्थान क्रिया' नामक दोष लगता है ।

इन दोनो क्रियाओ का सेवन करना ही 'नित्यवास' माना गया है, इसी नित्यवास का सूत्रोक्त लघुमास प्रायश्चित्त है ।

नित्यवास-निषेध एव उसके प्रायश्चित्त-विधान का मूल हेतु यह है कि अकारण निरन्तर नित्यनिवास से अतिपरिचय होता है, उससे अवज्ञा या अनुराग दोनो हो सकते हैं और रागवृद्धि से चारित्र की स्खलना होना अनिवार्य है । इसलिए मासकल्प या चातुर्मासकल्प से दुगुना काल अन्यत्र विचरना अत्यावश्यक है ।

दशवैकालिक द्वितीय चूलिका गाथा ११ के अनुसार चातुर्मासकल्प वाले क्षेत्र मे एक वर्ष पर्यन्त पुन न जाने की कालगणना इस प्रकार है -

चातुर्मासकल्प के चार मास, उससे दुगुना आठ मास बीतने पर पुन चातुर्मासकल्प आ जाने से तिगुना काल हो जाता है । इस कल्पमर्यादा का पालन आवश्यक है ।

आगमो मे कल्प उपरात रहने का कही भी आपवादिक विधान उपलब्ध नही है, किन्तु यहा भाष्य गाथा १०२१-१०२४ तक ग्लान अवस्था आदि परिस्थितियो मे तथा ज्ञानादि गुणो की वृद्धि हेतु नित्यवास को दोष रहित कहा है तथा उस भिक्षु को जिनाज्ञा एव सयम मे स्थित माना है ।

नित्यनिवास की विस्तृत व्याख्या जानने के लिए भाष्य देखें ।

पूर्व-पश्चात् संस्तव-प्रायश्चित्त—

३८. जे भिक्खू पुरेसथवं वा, पच्छासथव वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु भिक्षा लेने के पहले या पीछे दाता की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

ऊपर कहे गए इन तीनो सूत्रो का भाव यह है कि लोकव्यवहार या लोकापवाद को लक्ष्य में रखकर श्रमण को अन्यतीर्थिक, गृहस्थ या अपारिहारिक के साथ नही आना-जाना चाहिए ।

हर जगह इनके साथ जाने-आने से देखने वालो के मन में कई विकल्प उत्पन्न होते है ।

कुछ लोग सोचते है—"निर्ग्रन्थ श्रमणो की चर्या और अन्यतीर्थिकादि की चर्या भिन्न-भिन्न है फिर भी इनके साथ क्यो आते-जाते है ?"

कुछ लोग सोचते हैं--"ये श्रमण और ये अन्यतीर्थी केवल वेष से भिन्न-भिन्न दिखाई देने है, अन्तरग तो इनका समान प्रतीत होता है अतएव ये सदा साथ रहते है ।"

अपारिहारिक प्राय दोषसेवी होता है इसलिए जन साधारण मे इसकी श्रमणचर्या प्रसशनीय नही होती अत उसके साथ आने जाने मे पारिहारिक श्रमण की प्रतिष्ठा भी धूमिल हो जाती है ।

इन कारणो से ही अन्यतीर्थिकादि के साथ श्रमण का आना-जाना लघुमासिक प्रायश्चित्त योग्य कहा है ।

मनोज्ञ जल पीने और अमनोज्ञ जल परठने का प्रायश्चित्त—

४३. **जे भिक्खू अण्णयरं पाणगजाय पडिगाहित्ता पुप्फ पुप्फं आइयइ कसायं कसायं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ ।**

४३ जो भिक्षु अनेक प्रकार के प्रासुक पानी को ग्रहण करके अच्छा-अच्छा पीता है और खराब-खराब परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—साधु साध्वियाँ एषणा के सभी दोष टालकर प्राप्त किये गए निर्दोष पानी का ही उपयोग करते है । आगमो मे ऐसे पानी को अचित्त एषणीय या प्रासुक कहा गया है । साधारण भाषा में धोवन पानी, गरम पानी, या प्रासुक पानी भी कहते है ।

आचाराग आदि में ऐसे पानी अनेक प्रकार के कहे गए है । गृहस्थो के घरो मे पानी लेते समय लेने वालो को विवेक पूर्वक पानी सम्बन्धी पूरी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए ।

यथा—"यह पानी अब तक अचित्त हुआ या नही ? अर्थात् कितने देर पहले का बना हुआ है ?

यह पानी किस प्रकार बना है ? अर्थात् किन पदार्थों के प्रयोग से अचित्त बना है ?

यह पानी किसने किस कार्य के लिए बनाया है ? यह पीने योग्य है ? इसके पीने से प्यास शान्त होगी ?

यह पानी मेरी शारीरिक स्थिति के अनुकूल है या नही ?" इत्यादि विवेकपूर्वक जानकारी आवश्यक है ।

दश. अ ५ उ १, गा ८१ मे बताया है कि पानी देखने पर कुछ प्रतिकूल लगे तो परखने के लिए अजलि मे थोडा सा पानी ले और उसे मुँह मे लेकर चखे, यदि पीने योग्य प्रतीत हो तो और ले ले । पीने योग्य न हो तो न ले । ऐसा पानी भूल से ग्रहण हो जाय तो परठ देना चाहिए ।

प्रस्तुत सूत्र में दो विशेष शब्द है—

१ पुप्फ, २ कसाय ।

जिस पानी का वर्ण, गध, रस और स्पर्श प्रशस्त हो उसकी यहाँ "पुष्प" सज्ञा है ।

जिस पानी का वर्ण, गध, रस और स्पर्श अप्रशस्त हो उसकी यहाँ "कषाय" सज्ञा है ।

जो पानी पुष्प—मधुर है उसे अलग पात्र मे लेना चाहिए और जो कसैला हो उसे अलग लेना चाहिए ।

ऐसे विभिन्न प्रकार के पानी अलग-अलग पात्रो मे लाना और छानना चाहिए ।

पहले कसैले पानी को पीना चाहिए बाद मे अच्छे पानी को ।

रसासक्ति से मनोज्ञ पानी पी लेने पर और अमनोज्ञ को परठ देने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

जो पानी केर, करेला, मैथी, बेसन आदि से निष्पन्न हो वह कसैला होता है ।

दूध आदि सुस्वादु तथा सुगन्धी पदार्थों का पानी मनोज्ञ होता है तथा शुद्धोदक एव उष्णोदक भी मनोज्ञ होता है ।

स्वस्थ साधु को अनेक प्रकार के प्रासुक जल पीने मे अग्लान भाव रखना चाहिए ।
अति कसैला पानी न पिया जा सके तो उसे परठने का प्रायश्चित्त नही है ।

मनोज्ञ भोजन खाने और अमनोज्ञ परठने का प्रायश्चित्त—

४४ जे भिक्खू अण्णयरं भोयणजाय पडिगाहित्ता सुब्भि सुब्भि भु जइ, दुब्भि दुब्भि परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ ।

४४ जो भिक्षु विविध प्रकार का आहार ग्रहण करके सरस-सरस खाता है और नीरस-नीरस परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—पूर्व सूत्र के अनुसार इस सूत्र मे भी आगमिक शैली से 'सुब्भि दुब्भि' शब्द का प्रयोग है ।

चूर्णि मे—सुब्भि—सुभ, दुब्भि—असुभ अर्थ किया है ।

भाष्य गाथा मे—

वण्णेण य गधेण य, रसेण फासेण ज तु उववेतं ।
त भोयण तु सुब्भि, तव्विवरीय भवे दुब्भि ।। ११९२ ।।

वर्ण, गध, रस और स्पर्श मे युक्त आहार को 'सुब्भि' समझना और इससे विपरीत-वर्ण, गध, रस, स्पर्श से हीन आहार को 'दुब्भि' समझना चाहिए ।

१ पुप्फ—अच्छ—वण्णगंधरसोपपेत—पहाण—सुब्भि—शुभ—भद्दगं—मणुण्ण ।

२ कसाय—कलुषं—स्पर्शप्रतिलोम—अप्पहाण—बहल—दुब्भि—दुगध—अशुभ—विवण्ण—अमणुण्ण ।

इस प्रकार से पर्यायवाची शब्दो के प्रयोग समझना चाहिये। शेष विवेचन सूत्र ४३ के समान है। आहार की आसक्ति मे आहार सबंधी अनेक दोष लगने की सम्भावना रहती है।

विषमिश्रित, अभिमंत्रित और दोषयुक्त आहार का ज्ञान होने पर परठने का प्रायश्चित्त नही है।

भाष्य मे दोनो [४३-४४] सूत्रो की व्याख्या मे दृष्टात देकर सूत्रोक्त भाव समझाये गये है।

अवशिष्ट आहार-अनिमंत्रण-प्रायश्चित्त—

४५. जे भिक्खू मणुण्णं भोयणजाय पडिगाहेत्ता बहुपरियावण्णं सिया, अदूरे तत्थ साहम्मिया, सभोइया, समणुण्णा, अपरिहारिया संता परिवसंति, ते अणापुच्छिय अणामंतिय परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

४५ मनोज्ञ आहार-ग्रहण कर लेने के बाद ज्ञात हो जाए कि अधिक है, इतना नही खाया जा सकता किन्तु परठना पडेगा, ऐसी स्थिति मे यदि अन्यत्र समीप मे ही कोई साधर्मिक, सभोगी, समनोज्ञ या अपरिहारिक साधु हो तो उनको पूछे बिना और निमन्त्रित किये बिना परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—१ मनोज्ञ—यहा मनोज्ञ का आशय है मधुर तथा रुचिकर आहार।

२ भोयणजाय—सभी प्रकार के भोज्य पदार्थ।

३. बहुपरियावण्ण—आहार करने के बाद बचा हुआ आहार।

४ अदूरे—समीप के उपाश्रय मे अथवा उपनगर के उपाश्रय मे।

५ साहम्मिया—समान श्रुत एव चारित्र धर्म वाले अथवा—समान अनगार धर्म वाले—समान लिग एव समान प्ररूपणा वाले।

६ सभोइया—परस्पर आहार-पानी का आदान-प्रदान करने वाले।

७ समणुण्णा—समान समाचारी वाले एव परस्पर स्नेह सद्भाव वाले या शुद्ध व्यवहार वाले—समाज से अवहिष्कृत भिक्षु।

८ अपरिहारिया—जो प्रायश्चित्तप्राप्त न हो।

जो भिक्षु भिक्षाचर्या मे गवेषणा-कुशल होता है, समयज्ञ होता है, स्वय तथा साथी मुनि की आहार की मात्रा जानने वाला होता है—उसे ही गोचरी जाने की आज्ञा दी जाती है।

मनोज्ञ आहार हो, पर्याप्त हो, दाता हो, फिर भी वह अपनी और साथी साधुओ की आवश्यकता के अनुसार तथा सयमी जीवन के अनुकूल आहार ग्रहण करता है, लोभ, आसक्ति या अविवेक से आहारादि ग्रहण नही करता है, तो भी आहार कर लेने के बाद कभी कुछ आहार बच जाए तो उस आहार का उपयोग करने की विधि इस सूत्र मे कही गई है।

समीप के किसी उपाश्रय मे जहा साधर्मिक साभोगिक या समनोज्ञ साधु हो वहा वह बचा आहार लेकर जावे और उन्हे कहे कि हमारे यह बचा हुआ आहार है, आप इसका उपयोग करे।

यदि वे न ले तो उसे एकान्त मे ले जाकर प्रासुक भूमि पर परठ दे।

समीप के उपाश्रय मे विद्यमान साधुओ को बचा हुआ आहार दिखाये बिना तथा उपयोग मे लेने का कहे बिना यदि कोई परठ दे तो उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

सूत्र मे सांभोगिक आदि तीन विशेषण प्रयुक्त है तथापि यहाँ साभोगिक की प्रमुखता है। अत यदि निकट मे असाभोगिक साधु हो तो उन्हे निमत्रण किये बिना अशनादि के परठ देने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है।

शय्यातर पिंड-प्रायश्चित्त—

४६. जे भिक्खू सागारियपिंडं गिण्हइ, गिण्हंतं वा साइज्जइ।

४७. जे भिक्खू सागारियपिंडं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

४६. जो भिक्षु शय्यातर पिड ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७ जो भिक्षु शय्यातरपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—आगमो मे तथा व्याख्याग्रन्थो मे अनेक दोषो की सम्भावना से शय्यातरपिड के निषेध पर विशेष बल दिया है। यहा भी विशेषता व्यक्त करने के लिये इन दोनो सूत्रो मे प्रायश्चित्त-विधान किया गया है और कुल ४ सूत्रो (४६-४९) मे इसके प्रायश्चित्त का प्ररूपण किया गया है तथा—ठाणागसूत्र के पाचवे स्थान मे गुरु प्रायश्चित्त स्थान के सग्रहीत बोलो मे भी इसका कथन है।

अर्थभेद या प्रयोगभेद से शय्यादाता के ५ पर्यायवाची शब्द है, यथा—१ सागारिक, २ शय्याकर, ३ शय्यादाता, ४ शय्याधर, ५ शय्यातर।

प्रस्तुत सूत्र मे "सागारिक" शब्द का प्रयोग हुआ है। अन्य आगमो मे शय्यातर व सागारिक शब्द का प्रयोग भी हुआ है।

भाष्य मे इस विषय का विभाजन नव द्वारो मे करके विस्तारपूर्वक कहा गया है, जिनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. शय्यातर कौन होता है ?

'प्रभु और प्रभुसदिष्ट, शय्यातर होता है। इसी आशय का कथन **आचारागसूत्र** मे भी है यथा—**'जे तत्थ ईसरे जे तत्थ समहिट्ठाए'** जो मकान का मालिक है या जिस के अधिकार मे मकान है अर्थात् जो अधिष्ठाता है। उसकी आज्ञा लेकर ठहरना चाहिए।

बृहत्कल्पसूत्र उ. २ मे बताया है कि मालिक भी अनेक हो सकते है और अधिष्ठाता भी अनेक हो सकते है। उनमे से किसी एक की आज्ञा लेकर उसे शय्यातर मानना और उसकी वस्तु को शय्यातरपिड समझ कर ग्रहण नही करना। अन्य अधिष्ठाताओं या मालिको के यहा से आहारादि लिये जा सकते है।

२ शय्यातरपिड १२ प्रकार का होता है

१ अशन, २ पान, ३ खाद्य, ४ स्वाद्य, ५ वस्त्र, ६ पात्र, ७ कबल, ८ रजोहरण, ९ सूई, १० कतरणी, ११ नखछेदनक, १२ कर्णशोधनक। यहा औषध भेषज की अलग विवक्षा नही की

गई है। अत: दो और जोडने से १४ भेद होते है। इन भेदो के सक्षेप मे दो भेद होते है—१ आहार, २ उपधि।

आहार के ६ भेद और उपधि के आठ भेद करने से कुल चौदह भेद होते है और एक अपेक्षा से १२ प्रकार होते है तब औषध-भेषज शय्यातरपिंड नही होते हैं।

३ तृण, डगल, राख, मल्लग (मिट्टी का सिकोरा), शय्या, सस्तारक, पीढा और पात्रलेपादि वस्तु शय्यातरपिंड नही कहलाती है।

उपलक्षण से अन्य उपकरणो को भी शय्यातरपिंड समझ लेना चाहिए, यथा—चश्मा, पेंसिल, पेंसिल छीलने का साधन, पेन आदि तथा पढने के लिये पुस्तक या फर्नीचर की सामग्री आदि को शय्यातरपिंड नही समझना चाहिये।

४ शय्यातर का कोई सदस्य दीक्षा ग्रहण करने के लिये आवश्यक उपधि एव आहार लेकर आवे तो वह शिष्य शय्यातर के परिवार का होते हुए भी ग्रहण किया जा सकता है।

शय्यातर कब होता है—आज्ञा ग्रहण करने के बाद उपाश्रय मे आहार, उपकरण रखने पर शय्यातर कहलाता है अर्थात् उसके बाद उसका आहारादि ग्रहण नही किया जा सकता है।

शय्यातर का मकान छोड़ने के बाद कब तक शय्यातर समझना?

१ यदि एक रात्रि भी नही रहे केवल दिन मे ही कुछ समय रहना हुआ तो मकान छोडने के बाद शय्यातर नही रहता।

२ यदि एक या अनेक रात्रि रहने के बाद मकान छोडा हो तो आठ प्रहर तक उसे शय्यातर समझकर उसके यहा से आहारादि नही लेना चाहिये।

३ एक मडल मे बैठकर आहार करनेवाले श्रमण यदि अनेक मकानो मे ठहरे हो तो उनके सभी मालिक शय्यातर समझने चाहिए।

यदि कोई श्रमण स्वय का लाया हुआ आहार करनेवाले हो तो वे अपने शय्यातर को और आचार्य के शय्यातर को अपना शय्यातर समझे।

४ शय्यातरपिंड ग्रहण करने से तीर्थंकर भगवान् की आज्ञाभग का दोष लगता है, लौकिक व्यवहार मे यह रूढ है कि जिसके घर पर अतिथि ठहरते है वे उसी के यहा का भोजन करते है। साधु भी यदि ऐसा करे तो उद्गम आदि दोषो की सभावना दृढ हो जाती है। शय्यातर की दान भावना मे कमी आ सकती है। क्योकि शय्या मिलना वैसे ही दुर्लभ होता है तब ऐसा करने से शय्या की दुर्लभता और भी बढ सकती है।

५ आपवादिक परिस्थिति मे किस क्रम से शय्यातरपिंड ग्रहण करना आदि शेष विवेचन जानने के लिए भाष्य का अवलोकन करना आवश्यक है।

शय्यातर के घर की जानकारी नही करने का प्रायश्चित्त—

४८. जे भिक्खू सागारियकुलं अजाणिय अपुच्छिय अगवेसिय पुव्वामेव पिंडवाय-पडियाए अणुपविसइ अणुपविसंतं वा साइज्जइ।

४८ जो भिक्षु शय्यातर का घर जाने बिना, पूछे बिना या गवेषणा किये बिना ही गोचरी के लिए घरो मे प्रवेश करता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—१. सागारियकुल—शय्यातर का घर ।

२. अजाणिय—साधारण जानकारी अर्थात् शय्यातर का नाम क्या है तथा उसका घर किधर है ऐसा जाने बिना ।

३. अपुच्छिय—विशेष जानकारी करना अर्थात् शय्यातर के गौरव की जानकारी करना, शय्यातर के नाम वाला एक ही है या अनेक है, यह जानना और उसके घर का पता जानना पृच्छना है । ऐसी पूछताछ किये बिना ।

४. अगवेसिय—घर को प्रत्यक्ष देखे बिना, शय्यातर को भी प्रत्यक्ष देखे बिना उसे वय, वर्ण, चिह्न आदि से पहिचाने बिना ।

परिचित क्षेत्र मे नाम गोत्र व घर की जानकारी केवल पूछने मे हो जाती है किन्तु अपरिचित क्षेत्र मे व्यक्ति को प्रत्यक्ष देखकर उसके वय, वर्ण, आकृति को तथा मकान के आसपास का स्थल देखकर उसे स्मृति मे रखना आवश्यक होता है, उसके बाद ही कोई भी भिक्षु गोचरी लेने जा सकता है ।

शब्दार्थ—गाहावई—गृहस्वामी,
गाहावइ-कुल—पत्नी पुत्र आदि से युक्त गृहस्थ का घर,
पिड—अशनादि,

पिडवायपडियाए—गृहिणा दीयमाणस्य पिडस्य पात्रे पात अनया **'प्रज्ञया'** अर्थात् गृहस्थ के द्वारा दिये जाने वाले आहार को पात्र मे ग्रहण करने की बुद्धि से ।

शय्यातर की नेश्राय से आहारग्रहण का प्रायश्चित्त—

जे भिक्खू सागारियणीसाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

४९ जो भिक्षु शय्यातर की नेश्राय से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य माग-माग कर याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—इस सूत्र मे शय्यातर के सहयोग से आहार प्राप्त करने का प्रायश्चित्त कहा गया है । अर्थात् शय्यातर को गोचरी मे घर बताने के लिए साथ ले जाना, घरो मे 'यह वस्तु बहराओ, यह वस्तु बहराओ' इस तरह बोलना, खुद के हाथ से बहराना या साधु के मागने पर प्रेरणा करके दिलवाना इत्यादि शय्यातर की दलाली से आहार प्राप्त करने का यह प्रायश्चित्तविधान है ।

सूत्र न ४५-४६-४७-४८ ये चार सूत्र शय्यातर सम्बन्धी है । चूर्णि तथा भाष्य मे तीन सूत्रो का ही कथन है । सभवत "गिण्हइ" का एक सूत्र लिपि प्रमाद मे मूल पाठ मे आ गया लगता है । विषयानुसार इसकी विशेष आवश्यकता भी प्रतीत नही होती है ।

तीनो सूत्रों का भावार्थ यह कि शय्यातर को तथा उसके घर को जाने बिना खुद की मुख्यता से गोचरी नही जाना, शय्यातर की दलाली से आहार प्राप्त नही करना अथवा उसके हाथ से आहारादि नही लेना तथा शय्यातर पिंड नही भोगना। चौथा सूत्र मानने पर ग्रहण भी प्रायश्चित्त योग्य होता है।

शय्या-सस्तारक के कालातिक्रमण का प्रायश्चित्त–

५०. जे भिक्खू उउबद्धियं सेज्जासथारयं परं पज्जोसवणाओ उवाइणावेइ, उवाइणावेंत वा साइज्जइ।

५१. जे भिक्खू वासावासिय सेज्जासंथारयं पर दस रायकप्पाओ उवाइणावेइ, उवाइणावेंतं वा साइज्जइ।

५० जो भिक्षु शेष काल अर्थात् मासकल्प के लिये ग्रहण किये हुए शय्या-सस्तारक को पर्युषण (सवत्सरी) के बाद रखता है या रखनेवाले का अनुमोदन करता है।

५१ जो भिक्षु वर्षावास चौमासे के लिये ग्रहण किये हुये शय्या-सस्तारक को चौमासे के बाद दस दिन से अधिक रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन--आषाढ महीने मे कुछ दिन रहने के लिये जिस क्षेत्र मे साधु ने मकान या पाट आदि ग्रहण किये हो और कारणवश उसे उसी क्षेत्र मे चातुर्मास के निमित्त रहना पडे तो चौमासे के लिये उनकी पुन आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये या मालिक को लौटा देने चाहिये। यदि सवत्सरी तक भी पुन उनकी आज्ञा प्राप्त न करे और न लौटावे तो उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसी तरह चातुर्मास के लिये शय्या-सस्तारक ग्रहण किये हो और चातुर्मास के बाद किसी शारीरिक कारण से विहार न हो सके तो दस दिन के अन्दर उन शय्या-सस्तारको की पुन आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये या लौटा देना चाहिये।

विभिन्न आगमो के अनेक स्थलो मे "अल्प उपधि" का निर्देश मिलता है। अत यथाशक्य शरीर या सयम सम्बन्धी अत्यन्त आवश्यकता के बिना पाट-घास आदि ग्रहण नही करने चाहिये, क्योकि लाना, देना, प्रतिलेखन करना, प्रमार्जन करना आदि कार्यों से स्वाध्याय की हानि होती है।

आवश्यकता होने पर शेष काल मे या चातुर्मास मे कभी भी पाट, घास आदि उपकरण ग्रहण किये जा सकते हैं। उसका कोई प्रायश्चित्त नही है किन्तु जितनी अवधि के लिये ग्रहण हो उस अवधि का उल्लघन नही होना चाहिये तथा सूत्रनिर्दिष्ट समय के पूर्व पुन आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये।

भाष्य चूर्णि मे पाट, घास आदि ग्रहण करने के आवश्यक कारण कहे हैं। उनका साराश इस प्रकार है।

मकान की भूमि गीली या नमी युक्त हो, जिससे कि उपधि के बिगडने की और शरीर के अस्वस्थ होने की सभावना हो।

चीटिया, कुथुवे आदि जीवो की विराधना होती हो।

कानखजूरा, चूहे, बिच्छू, सर्प आदि की अधिक उत्पत्ति हो तो पाट-घास आदि अवश्य ग्रहण करने चाहिये। अन्यथा जीवविराधना, सयमविराधना व आत्मविराधना हो सकती है।

चातुर्मास मे गीली या नमी वाली जमीन पर सोने से उपधि अधिक मलीन होगी। जिससे गोचरी आदि प्रसगो मे वर्षा आ जाने पर अप्काय की विराधना होगी, अन्यथा उपधि के अधिक मलीन होने पर जीवो की उत्पत्ति होगी। मलिनता के कारण उपधि के शीतल और जू ओ से युक्त होने से निद्रा नही आएगी। अनिद्रा से अजीर्ण होगा और अजीर्ण होने पर रोग उत्पन्न होगे। अत गीली या नमी युक्त भूमि होने पर पाट, घास आदि अवश्य ग्रहण करने चाहिये।

यहा विवेचन मे जू ओ की उत्पत्ति का निर्देश किया गया है। आगमो मे साधु को 'जल्ल परिषह' सहन करने का तथा स्नान न करने का कथन है। प्रतिक्रमण मे निद्रा-दोषशुद्धि के पाठ मे "छप्पइसघट्टणाए" का निर्देश भी है। फिर भी उपरोक्त विवेचन से समझना यह है कि चातुर्मास मे वर्षा होने के प्रसग के कारण व वस्त्रो को धूप न लगने से जू ओ की उत्पत्ति की विशेष सभावना रहती है, इसलिये ऐसे समय मे उपधि को मलिन न रखना और मलिन न हो इसका भी ध्यान रखना उचित है। अत आवश्यक शय्या-सस्तारक ग्रहण कर लेने चाहिये।

वर्षा से भीगते हुए शय्या-सस्तारक के न हटाने का प्रायश्चित्त–

५२. जे भिक्खू उउबद्धिय वा वासावासियं वा सेज्जासथारय उवरि सिज्जमाण पेहाए न ओसारेइ, न ओसारेंतं वा साइज्जइ।

५२ जो भिक्षु शेषकाल या वर्षावास के लिये ग्रहण किये हुए शय्या-सस्तारक को वर्षा से भीगता हुआ देखकर भी नही हटाता है या नही हटाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघु-मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—"उवरि सिज्जमाणं"— वर्षा से भीगते हुओ को।

इस सूत्र का आशय यह है कि शय्या-सथारा आदि प्रत्यर्पणीय कोई भी उपधि वर्षा आदि से भीग रही है, ऐसी जानकारी होते ही उसे हटाकर सुरक्षित स्थान मे रखना कल्पता है और नही हटाना यह प्रायश्चित्त का कारण है।

स्वय की उपधि को तो कोई भी भीगने देना नही चाहता किन्तु पुन लौटाने योग्य शय्या-सस्तारक आदि को भीगते हुए देखकर भी हटाने मे उपेक्षा होने की ज्यादा सभावना होने से उसका निर्देश सूत्र मे किया गया है। फिर भी उपलक्षण से सभी प्रकार की उपधि के विषय मे समझ लेना चाहिये।

यद्यपि वर्षा मे जाना विराधना का कारण है, किन्तु नही हटाने मे अनेक अन्य दोषो की सभावना होने से उसकी उपेक्षा करने का प्रायश्चित्त बताया है।

भीग जाने से उपधि का कुछ समय अनुपयुक्त हो जाना, प्रतिलेखन के अयोग्य हो जाना, फूलन हो जाना, कु थुवे आदि जीवो की उत्पत्ति हो जाना, अप्काय की विराधना भी होना, जिसकी वस्तु है उसे मालूम पडने पर उसका नाराज होना, निदा करना आदि दोष सभव है तथा इस प्रकार उपेक्षा करने से शय्या-सस्तारक मिलना भी दुर्लभ हो जाता है।

शय्या-संस्तारक बिना आज्ञा अन्यत्र ले जाने का प्रायश्चित्त—

५३. जे भिक्खू पाडिहारियं वा सागारियसंतियं वा सेज्जा-संथारय दोच्चंपि अणणुण्णवेत्ता बाहिं णीणेइ, णीणेंतं वा साइज्जइ ।

५३. जो भिक्षु प्रत्यर्पणीय [अन्य किसी से लाये गये] या शय्यातर से ग्रहण किये गये शय्या-सस्तारक को पुन आज्ञा लिये बिना कही अन्यत्र ले जाता है या ले जाने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—साधु के ठहरने के स्थान मे जो शय्या-सस्तारक हो, उसके लिए "सागारियसतिय" शब्द का प्रयोग हुआ है और अन्यत्र से लाये जाने वाले शय्या-सस्तारक के लिये "पाडिहारिय" शब्द का प्रयोग हुआ है । ये दोनो ही प्रत्यर्पणीय है ।

जो शय्या-सस्तारक जिस मकान मे रहने की अपेक्षा ग्रहण किया है, उसे किसी कारण से अन्य मकान मे ले जाना हो तो उसके मालिक की आज्ञा पुन लेना आवश्यक है । अन्यत्र से लाये गये शय्या-सस्तारक का मालिक भी प्राय साधु के ठहरने के स्थान को ध्यान मे रख कर ही देता है तथा शय्यातर भी अपने मकान मे उपयोग लेने की अपेक्षा से ही देता है । इसलिये पुन आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है ।

बिना आज्ञा लिये अन्यत्र ले जाने मे अदत्त दोष लगता है तथा उसके मालिक का नाराज होना, निदा करना, शय्या-सस्तारक का दुर्लभ होना आदि दोषो की सभावना भी रहती है । इसलिए इसका लघुमासिक प्रायश्चित्त कहा गया है ।

उपलब्ध मूल पाठ मे इस सूत्र के स्थान पर तीन सूत्र मिलते है, जिनमे यह तीसरा सूत्र है ।

भाष्य चूर्णिकार के समय यह एक सूत्र ही था ऐसा प्रतीत होता है । वह इस प्रकार है—

"नो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पडिहारियं वा सागारियसंतियं वा सेज्जासंथारयं दोच्चं पि ओग्गहं अणणुण्णवेत्ता बहिया-नीहरित्तए ।"

इस पाठ से भी एक सूत्र का होना ही उचित प्रतीत होता है । इस कारण मूल मे एक ही सूत्र दिया है । शेष दो सूत्र ये है—

जे भिक्खू पाडिहारियं सेज्जा-संथारयं अणणुवेत्ता बाहिं णीणेइ, णीणेंत वा साइज्जइ । ५३ ।।

जे भिक्खू सागारियसंतियं सेज्जा-संथारयं अणणुण्णवेत्ता बाहि णीणेइ, णीणेंत वा साइज्जइ । ५४ ।।

तीन सूत्र होने पर अर्थ इस प्रकार होता है—

१. अशय्यातर का शय्या-सस्तारक अन्यत्र से लाया हो ।
२ शय्यातर का शय्या-सस्तारक उसी स्थान से लिया हो ।
३. शय्यातर का शय्या-सस्तारक अन्यत्र से लाया हो ।

इनको पुन आज्ञा लिये बिना अन्य मकान में ले जाए तो लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

शय्या-संस्तारक विधिवत न लौटाने का प्रायश्चित्त–

५४. जे भिक्खू पाडिहारिय सेज्जा-सथारयं आयाए अपडिहट्टु सपव्वयइ सपव्वयंतं वा साइज्जइ ।

५५. जे भिक्खू सागारियसंतिय सेज्जा-सथारय अविगरण कट्टु अणप्पिणित्ता सपव्वयइ, संपव्वयंतं वा साइज्जइ ।

५४ जो भिक्षु प्रत्यर्पणीय [अन्य किसी से लाया] शय्या-सस्तारक ग्रहण करके उसे लौटाये बिना ही विहार करता है या विहार करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५५ जो भिक्षु शय्यातर के शय्या-सस्तारक का ग्रहण कर लौटाते समय पूर्ववत् रखे बिना तथा सभलाए बिना विहार करता है या विहार करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—साधु का कर्तव्य है कि प्रत्यर्पणीय शय्या-सस्तारक [या अन्य वस्तु] विहार करने के पूर्व उसके स्वामी को लौटा दे ।

शय्यातर के मकान मे से जो शय्या-सस्तारक लिया है, वह तो वही रहता है । किन्तु अपनी आवश्यकतानुसार उसके जो बाँस कबिया आदि बाधे हो, उन्हे बिखेर कर अलग कर देना "विकरण" कहलाता है और न बिखेरना "अविकरण" कहलाता है । अत पूर्ववत् करके तथा मालिक को सम्भलाकर के ही विहार करना चाहिये । अन्यथा अनेक दोषो की सभावना रहती है । जो पूर्व सूत्र [५२-५३] के विवेचन से समझ लेना चाहिये ।

खोये गये शय्या–संस्तारक की गवेषणा नही करने का प्रायश्चित्त–

५६. जे भिक्खू पाडिहारिय वा, सागारियसतिय वा सेज्जासथारय विप्पणट्ठ ण गवेसइ, ण गवेसंत वा साइज्जइ ।

५६ जो भिक्षु खोए गए प्रत्यर्पणीय शय्या-सस्तारक की या शय्यातर के शय्या-सस्तारक की खोज नही करता है या खोज नही करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—ये सूत्रोक्त दोनो प्रकार के शय्या-सस्तारक कोई जानकर के या भ्रातिवश उठाकर ले जाये तो साधु को उनकी पूछताछ करना, खोज करना एव मालिक को सूचना देने मे उपेक्षा नही करनी चाहिये, उपेक्षा करने से अनेक दोषो की सम्भावना रहती है, उन्हे पूर्व सूत्र मे समझ लेना चाहिये ।

इन [५४-५५-५६] तीनो सूत्रो मे कहे गये प्रायश्चित्त विषयक विधि-निषेध का कथन बृहत्कल्पसूत्र, उद्देशक तीन के तीन सूत्रो मे है । भाष्य चूर्णि मे भी इनकी व्याख्या अलग-अलग की गई है ।

भाष्य मे सस्तारक के प्रकार, दोषो के प्रकार, प्रायश्चित्त के प्रकार एव खोजने के तरीको का विस्तृत वर्णन है । जिज्ञासु वही से विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते है ।

५७. जे भिक्खू इत्तरियं पि उवहिं ण पडिलेहेइ, ण पडिलेहेंतं वा साइज्जइ ।

५७ जो भिक्षु स्वल्प उपधि की भी प्रतिलेखना नही करता है या नही करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—साधु को अपने सभी उपकरणो की उभयकाल प्रतिलेखना करना आवश्यक है । छोटे से उपकरण की भी प्रतिलेखना मे उपेक्षा करे तो उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

चूर्णिकार ने प्रतिलेखन नही करने से जीवो की विराधना एव बिच्छू आदि से आत्म-विराधना आदि अनेक दोष कहे है ।

जम्हा एते दोसा तम्हा सव्वोवहि दुसक्ष पडिलेहियव्वो ।

नि भाष्य गा १४३६ के अनुसार भिक्षु को सभी उपकरणो की दोनो समय प्रतिलेखना करनी चाहिये ।

भाष्यकार ने प्रतिलेखन का समय जिनकल्पी के लिए सूर्योदय के बाद का ही कहा है किन्तु स्थविरकल्पी सूर्योदय के कुछ समय पूर्व भी प्रतिलेखना कर सकते है, ऐसा कहा है ।

गाथा १४२५ मे कहा गया है कि सूर्योदय से पूर्व निम्नोक्त दस प्रकार की उपधियो का प्रतिलेखन किया जा सकता है —

मुहपोत्तिय-रयहरणे कप्पतिग णिसेज्ज चोलपट्टे य ।
सथारुत्तरपट्टे य, पेक्खिते जहुग्गमे सूरे ।।

मुहपत्ति, रजोहरण, तीन चद्दर, दो निषद्या, चोलपट्ट, सथारा व उत्तरपट्ट, इन दस की प्रतिलेखना होने पर सूर्योदय हो ।

चूर्णि मे "अण्णे भणति" ऐसा कहकर ग्यारहवा 'दड' भी कहा गया है ।

सम्भव है कि यह गाथा तेरहवी शताब्दी के बाद रचे गये धर्मप्रज्ञप्ति आदि किसी ग्रथ से यहाँ ली गई हो ।

क्योकि उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन २६ गा ८ व २१ मे सूर्योदय होने पर प्रतिलेखन करने का स्पष्ट विधान है तथा उपरोक्त गाथा १४२५ के पूर्व स्वय भाष्यकार ने दो गाथाओ मे कहा है कि रात्रि मे प्रतिलेखना नही हो सकती है । वे गाथाए ये है—

पडिलेहण पप्फोडण पमज्जणा चेव दिवसओ होति ।
पप्फोडणा पमज्जण रत्ति पडिलेहणा णत्थि ।। १४२२ ।।

पडिलेहणा पमज्जण पायादीयाण दिवसओ होइ ।
रत्ति पमज्जणा पुण, भणिया पडिलेहणा णत्थि ।। १४२३ ।।

राओ य पप्फोडण पमज्जणा य दो सभवंति, पडिलेहणा न सम्भवति अचक्खुविसयाओ ।

यहाँ अत्यधिक स्पष्ट किया गया है कि प्रतिलेखना दिन मे ही होती है, रात्रि मे नही। अतः सूर्योदय पूर्व १० प्रकार की उपधि की प्रतिलेखना का उपरोक्त भाष्य गा १४२५ का निर्देश सदेहास्पद है।

उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन २६ गा २३ मे मु हपत्ति-प्रतिलेखना के बाद गोच्छग की प्रतिलेखना करने का स्पष्ट निर्देश है, जब कि इस १० उपधि मे गोच्छग का कथन नही किया गया है किंतु उसे पौन पौरुषी बाद पात्र के प्रतिलेखन के साथ रखा है। इस तरह उत्तराध्ययनसूत्र के मूल पाठ से गाथा १४२५ की सगति नही होती है।

उत्तराध्ययन अ २६ व भाष्य गाथा १४२६ मे बताया है कि पात्र-प्रतिलेखना दिन की प्रथम पौरुषी के चतुर्थ भाग के अवशेष रहने पर करना चाहिये और चरम पौरुषी के प्रारम्भ मे ही पात्र प्रतिलेखन करके बाध कर रख देना चाहिए उसके बाद शेष उपकरणो की प्रतिलेखना करके स्वाध्याय करना चाहिये।

एस पढम-चरमपोरिसीसु कालो, तव्विवरीओ अकालो पडिलेहणाए ॥

इस तरह दिन की प्रथम चतुर्थ पौरुषी प्रतिलेखन का काल है और शेष ६ पौरुषी [४ रात्रि की व दो दिन की] अकाल है। इस व्याख्या से भी सूर्योदय के पूर्व रात्रि की अतिम पौरुषी का समय प्रतिलेखन का अकाल सिद्ध होता है।

उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन २६ मे आये प्रतिलेखना के दोषो का व विधि का विश्लेषण भाष्य मे किया गया है तथा अविधि का अलग-अलग प्रायश्चित्त भी कहा है। जिज्ञासु पाठक भाष्य देखे।

त सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइय।

इन उपरोक्त ५७ सूत्रो मे कहे गये किसी भी प्रायश्चित्तस्थान के सेवन करने वाले को लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है। इसका विवेचन प्रथम उद्देशक के समान समझना चाहिये।

द्वितीय उद्देशक का सारांश—

सूत्र १	काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन बनाना।
सूत्र २-८	काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन ग्रहण करना, रखना, ग्रहण करने की आज्ञा देना, वितरण करना, उपयोग करना, डेढ मास से अधिक रखना एव काष्ठदण्ड मे पादप्रोछन को खोल कर अलग करना।
सूत्र ९	अचित्त पदार्थ सू घना।
सूत्र १०	पदमार्ग आदि स्वय बनाना।
सूत्र ११-१३	पानी निकलने की नाली, छीका और छीके का ढक्कन, चिलमिली स्वय बनाना।
सूत्र १३-१७	सूई आदि को स्वय सुधारना।
सूत्र १८	कठोर भाषा बोलना।
सूत्र १९	अल्प मृषा—असत्य बोलना।
सूत्र २०	अल्प अदत्त लेना।
सूत्र २१	अचित्त शीत या उष्ण जल से हाथ, पैर, कान, आख, दात, नख और मु ह धोना।

सूत्र २२ कृत्स्न चर्म धारण करना ।
सूत्र २३ कृत्स्न वस्त्र धारण करना ।
सूत्र २४ अभिन्न वस्त्र धारण करना ।
सूत्र २५ तुम्बे के पात्र का, काष्ठ के पात्र का और मिट्टी के पात्र का स्वय परिकर्म करना ।
सूत्र २६ दण्ड आदि को स्वय सुधारना ।
सूत्र २७ स्वजन-गवेषित पात्र ग्रहण करना ।
सूत्र २८ परजन-गवेषित पात्र ग्रहण करना ।
सूत्र २९ प्रमुख-गवेषित पात्र ग्रहण करना ।
सूत्र ३० बलवान-गवेषित पात्र ग्रहण करना ।
सूत्र ३१ लव-गवेषित पात्र ग्रहण करना ।
सूत्र ३२ नित्य अग्रपिण्ड लेना ।
सूत्र ३३-३६ दानपिड लेना ।
सूत्र ३७ नित्यवास वसना ।
सूत्र ३८ भिक्षा के पूर्व या पश्चात् दाता की प्रशसा करना ।
सूत्र ३९ भिक्षाकाल के पहले आहार के लिए घरो मे प्रवेश करना ।
सूत्र ४० अन्यतीर्थिक के साथ, गृहस्थ के साथ, पारिहारिक का अपारिहारिक के साथ भिक्षा के लिए प्रवेश करना ।
सूत्र ४१ इन तीनो के साथ उपाश्रय से बाहर की स्वाध्यायभूमि मे या उच्चार-प्रस्रवणभूमि मे प्रवेश करना ।
सूत्र ४२ इन तीनो के साथ ग्रामानुग्राम विहार करना ।
सूत्र ४३ मनोज्ञ पानी पीना, कषैला पानी परठना ।
सूत्र ४४ मनोज्ञ आहार खाना, अमनोज्ञ आहार परठना ।
सूत्र ४५ खाने के बाद बचा हुआ आहार साभोगिक साधुओ को पूछे बिना परठना ।
सूत्र ४६ सागारिक पिण्ड ग्रहण करना ।
सूत्र ४७ सागारिक पिण्ड खाना ।
सूत्र ४८ सागारिक का घर आदि जाने बिना भिक्षा के लिए जाना ।
सूत्र ४९ सागारिक की निश्रा से आहार प्राप्त करना या उसके हाथ से लेना ।
सूत्र ५० शेष काल के शय्या-सस्तारक की अवधि का उल्लघन करना ।
सूत्र ५१ चातुर्मास काल के शय्या-सस्तारक की अवधि का उल्लघन करना ।
सूत्र ५२ वर्षा से भीजते हुए शय्या-सस्तारक को छाया मे न रखना ।
सूत्र ५३ शय्या-सस्तारक को दूसरी बार आज्ञा लिए बिना अन्यत्र ले जाना ।
सूत्र ५४ प्रातिहारिक शय्या-सस्तारक लौटाये बिना विहार करना ।
सूत्र ५५ शय्यातर का शय्या-सस्तारकपूर्व स्थिति मे किये बिना विहार करना ।
सूत्र ५६ शय्या-सस्तारक खोये जाने पर न ढूँढना ।
सूत्र ५७ अल्प उपधि की भी प्रतिलेखना न करना, इत्यादि प्रवृत्तियो का लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

इस उद्देशक के ३८ सूत्रों के विषय का कथन निम्न आगमो मे है, यथा—

सूत्र १-७ काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन रखने के विधि-निषेध —बृहत्कल्प उद्दे० ५ ।
सूत्र ९ सुगध सू घने का निषेध —आ० श्रु २, अ० १, उ० ८ तथा आचा० श्रु० २ अ० १५ ।
सूत्र १३ चिलमिली प्ररूपण —बृहत्कल्प० उद्दे० ५ ।
सूत्र १८-२० तीन महाव्रत वर्णन —दश० अ० ४ तथा आ० श्रु० २ अ० १५ ।
सूत्र २१ स्नाननिषेध, प्रक्षालननिषेध —दश० अ० ४, गा० २६ तथा अ० ६, गा० ६२ ।
सूत्र २२-२४ कृत्स्न चर्म निषेध, कृत्स्न वस्त्र तथा अभिन्न वस्त्र निषेध —बृह० उद्दे० ३ ।
सूत्र ३२-३६ नित्यदान दिये जाने वाले कुलो म भिक्षार्थ जाने का निषेध —आ० श्रु० २ अ० १, उ० १ ।
सूत्र ३७ नित्यवास निषेध —आ० श्रु २, अ० २, उ० २ ।
सूत्र ३८ दाता की या अपनी प्रशसा का निषेध —पिडनिर्युक्ति ।
सूत्र ३९ भिक्षाकाल के पहले भिक्षार्थ जाने का निषेध —आ० श्रु० २, अ० १, उद्दे० ९ ।
सूत्र ४०-४२ भिक्षाचरो के साथ भिक्षा आदि जाने का निषेध —आ० श्रु २, अ० १, उद्दे० १ ।
सूत्र ४३-४५ मनोज्ञ आहार पानी खाना, पीना, अमनोज्ञ परठना —आ० श्रु० २, अ० १, उ० १० ।
सूत्र ४६-४८ शय्यातर पिण्ड लेने का निषेध-दश० अ० ३ तथा —आ० श्रु २ अ० २ उद्दे० ३ ।
सूत्र ५३ शय्या-सस्तारक अन्यत्र ले जाने के लिए दूसरी बार स्वामी से आज्ञा लेना —व्यव० उद्दे० ८ ।
सूत्र ५४-५६ शय्या-सस्तारक स्वामी को सभलाकर विहार करने का विधान —बृहत्कल्प उद्दे० ३ ।
सूत्र ५७ उपधि-प्रतिलेखन —उत्त० अ० २६ तथा आव० अ० ४ ।

इस उद्देशक के निम्न १९ सूत्रो के विषय का कथन अन्य आगमो मे नहीं है, यथा—

सूत्र ८ काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोछन को खोलना ।
सूत्र १०-१२ पदमार्ग आदि स्वय बनाना ।
सूत्र १४-१७ सूई आदि स्वय सुधारना ।
सूत्र २५-२६ पात्र, दण्ड आदि स्वय सुधारना ।
सूत्र २७-३१ स्वजनादि गवेषित पात्र ग्रहण करना ।
सूत्र ४९ शय्यातर की प्रेरणा से प्राप्त आहार लेना ।
सूत्र ५०-५१ निर्धारित अवधि के बाद भी पुन आज्ञा लिए बिना शय्या-सस्तारक रखना ।
सूत्र ५२ वर्षा से भीगते हुए शय्या-सस्तारक को छाया मे न रखना ।

।। दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

तृतीय उद्देशक

अविधि-याचना प्रायश्चित्त

१. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, 'अण्ण-उत्थियं वा गारत्थियं वा' असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

२. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, 'अण्णउत्थिया वा गारत्थिया वा' असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, 'अण्णउत्थिणीं वा गारत्थिणीं वा' असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

४. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा परियावसहेसु वा, 'अण्णउत्थिणीओ वा गारत्थिणीओ वा' असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

५. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा परियावसहेसु वा कोउहलवडियाए पडियागयं समाणं 'अण्णउत्थियं वा, गारत्थियं वा' असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

६. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा कोउहलवडियाए पडियागय समाणं 'अण्णउत्थिया वा गारात्थिया वा' असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, कोउहलवडियाए पडियागयं समाणं, 'अण्णउत्थिणिं वा गारत्थिणिं वा' असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

८. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा कोउहलवडियाए पडियागयं समाणं 'अण्णउत्थिणीओ वा गारत्थिणीओ वा' असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

९ जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा 'अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण' वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अभिहडं आहट्टु देज्जमाणं पडिसेहेत्ता, तमेव अणुवत्तिय-अणुवत्तिय, परिवेढिय-परिवेढिय, परिजविय-परिजविय, ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

१०. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा 'अण्णउत्थिएहिं वा गारत्थिएहिं वा' असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अभिहड आहट्टु देज्जमाणं पडिसेहेत्ता, तमेव अणुवत्तिय-अणुवत्तिय, परिवेढिय-परिवेढिय, परिजविय-परिजविय, ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

११. जे भिक्खू आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा 'अण्णउत्थिणीए वा गारत्थिणीए वा' असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा अभिहड आहट्टु देज्जमाणं पडिसेहेत्ता, तमेव अणुवत्तिय-अणुवत्तिय, परिवेढिय-परिवेढिय, परिजविय-परिजविय, ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ ।

१२. जे भिक्खू आगतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, 'अण्णउत्थिणीहिं वा गारत्थिणीहिं वा' असण वा पाणं वा खाइम वा साइमं वा अभिहड आहट्टु देज्जमाणं पडिसेहेत्ता तमेव अणुवत्तिय-अणुवत्तिय, परिवेढिय-परिवेढिय, परिजविय-परिजविय, ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायत वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे अथवा आश्रमो मे अन्य-तीर्थिक से या गृहस्थ से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य माग-माग कर याचना करता है या माग-माग कर याचना करने वाले का अनुमोदन करता हे ।

२. जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे अथवा आश्रमो मे अन्य-तीर्थिको से या गृहस्थो से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य माग-माग कर याचना करता है या माग-माग कर याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३ जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे अथवा आश्रमो मे अन्य-तीर्थिक या गृहस्थ स्त्री से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य माग-माग कर याचना करता है या माग-माग कर याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४ जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहा मे, गृहस्थो के घरो मे अथवा आश्रमो मे अन्य-तीर्थिक या गृहस्थ स्त्रियो से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य माग-माग कर याचना करता है या माग-माग कर याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५ जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे या आश्रमो मे कौतूहलवश अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य माग-माग कर याचना करता है या माग-माग कर याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६. जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे या आश्रमो मे कौतूहलवश अन्यतीर्थिको से या गृहस्थो से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य माग-माग कर याचना करता है या माग-माग कर याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

७ जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे या आश्रमो मे कौतूहलवश अन्यतीर्थिक या गृहस्थ स्त्री से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य माग-माग कर याचना करता है या माग-माग कर याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

८ जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे या आश्रमो मे कौतूहलवश अन्यतीर्थिक या गृहस्थ स्त्रियो से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य माग-माग कर याचना करता है या माग-माग कर याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

९ जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे अथवा आश्रमो मे अन्य-तीर्थिक या गृहस्थ द्वारा अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य सामने लाकर दिये जाने पर निषेध करके फिर उसके पीछे-पीछे जाकर, उसके आसपास व सामने आकर तथा मिष्ट वचन बोलकर माग-माग कर याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१० जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे अथवा आश्रमो मे अन्य-तीर्थिको या गृहस्थो द्वारा अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य सामने लाकर दिये जाने पर निषेध करके फिर उसके पीछे-पीछे जाकर, उसके आसपास व सामने आकर तथा मिष्ट वचन बोलकर माग-माग कर याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

११. जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे अथवा आश्रमो में अन्य-तीर्थिक या गृहस्थ स्त्री द्वारा अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य सामने लाकर दिये जाने पर निषेध करके फिर उसके पीछे-पीछे जाकर, उसके आसपास व सामने आकर तथा मिष्ट वचन बोलकर माग-माग कर याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१२ जो भिक्षु धर्मशालाओ मे, उद्यानगृहो मे, गृहस्थो के घरो मे अथवा आश्रमो मे अन्य-तीर्थिक या गृहस्थ स्त्रियो द्वारा अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य सामने लाकर दिये जाने पर निषेध करके फिर उसके पीछे-पीछे जाकर, उसके आसपास व सामने आकर तथा मिष्ट वचन बोलकर माग-माग कर याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—इन बारह सूत्रो मे धर्मशाला आदि स्थानो के कथन से भिक्षा ग्रहण के सभी स्थानो का ग्रहण किया गया है तथा दो प्रकार के भिक्षादाता कहे गये है ।

'अन्यतीर्थिक' अर्थात् अन्य मत के गृहस्थ और 'गृहस्थ'—अर्थात् स्वमत के गृहस्थ ।

प्रथम सूत्रचतुष्क मे खाद्य पदार्थ का नाम ले-लेकर याचना करने का प्रायश्चित्त कहा है ।

आवश्यक सूत्र के भिक्षादोषनिवृत्ति पाठ मे भी "माग-माग कर लेना" अतिचार कहा है । ऐसा करने पर लोग सोचते है कि ये भिखारी की तरह क्यो मागते है इत्यादि ।

सहज भाव से गृहस्थ जो अशनादि देना चाहे उसमे से आवश्यक कल्प्य पदार्थ ग्रहण करना **"अदीन वृत्ति"** है और माग-माग कर याचना करना **"दीन वृत्ति"** है । दीन वृत्ति से भिक्षा ग्रहण करना दोष है अत इन सूत्रो मे उसका प्रायश्चित्त कहा गया है ।

गीतार्थ साधु विशेष कारण से अशनादि का नाम निर्देश करके विवेकपूर्वक याचना कर सकता है । यहा अकारण माग कर याचना करने का प्रायश्चित्त विधान है ।

इस सूत्रचतुष्क में एक पुरुष या अनेक पुरुष, तथा एक स्त्री या अनेक स्त्रियो की विवक्षा है ।

द्वितीय सूत्रचतुष्क मे "कौतुक वश" माग-माग कर याचना करने का प्रायश्चित्त कहा है ।

"कौतुक" मे—हास्य, कौतूहल, जिज्ञासा या परीक्षा करने के सकल्प आदि भावो का समावेश समझ लेना चाहिये । यथा--

"देखे— यह दाता देता है या नही" । इस प्रकार की कौतूहल बुद्धि से भी नाम निर्देश पूर्वक वस्तु का मागना भिक्षावृत्ति मे अविधि है । अत उसका इस सूत्रचतुष्क से प्रायश्चित्त समझना चाहिये ।

दशवैकालिक सूत्र अध्ययन १० गाथा १३ मे कहा है—

"अनियाणे अकोउहले जे स भिक्खू"—जो निदान-सकल्प रहित एव कौतूहल वृत्ति रहित होता है वह भिक्षु है ।

साधु अदीन वृत्ति से भिक्षाचरी करे, यह पूर्वोक्त चार सूत्रो का सार है और अकौतूहल वृत्ति से भिक्षाचरी करे यह इन सूत्रो का सार है ।

तृतीय सूत्रचतुष्क मे पूर्व निर्दिष्ट दीन वृत्ति व कौतूहल वृत्ति के साथ चित्त की चचलता व खुशामदी वृत्ति का निर्देश किया गया है । इसे कौतूहल वृत्ति की अत्यधिकता भी कह सकते है ।

सूत्रोक्त स्थानो मे भिक्षा हेतु प्रविष्ट भिक्षु गृहस्थ को घर के किसी अन्य कक्ष मे या अदृष्ट स्थान से या अति दूर स्थान से अशनादि लाकर देने पर निषेध कर देता है कि मुझे नही कल्पता है, जिससे दाता लौट जाता है किन्तु विचार बदल जाने पर भिक्षु पुन उसे कहे कि—"लाओ तुम्हारी भावना व श्रम निष्फल न हो इसलिये ले लेता हूँ" इत्यादि भाव इन चार सूत्रो मे समाविष्ट है ।

ऐसी अविधि से की गई याचना मे भाषा समिति भी दूषित होती है । इस प्रकार इन १२ सूत्रो मे—

१ मागकर याचना करने का,
२ कौतूहल से माग कर याचना करने का और
३ अत्यधिक कौतूहल वृत्ति से याचना करने का प्रायश्चित्त कहा गया है ।

निषिद्ध गृहप्रवेश–प्रायश्चित्त–

१३. जे भिक्खू गाहावइकुल पिंडवाय-पडियाए पविट्ठे पडियाइक्खए समाणे दोच्चपि तमेव कुल अणुप्पविसइ, अणुप्पविसत वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु गाथापति कुल मे आहार के लिये प्रवेश करने पर गृहस्थ के मना करने के बाद भी पुन उसी घर मे प्रवेश करता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन-पूर्व सूत्र मे स्वय भिक्षु के द्वारा निषिद्ध आहार का पुन अविधि से याचना करने का प्रायश्चित्त कहा गया है । इस सूत्र मे गृहस्थ निषेध कर दे कि-'जाओ, अन्यत्र जाओ, यहा कुछ नही है' "इत्यादि कहने पर भी पुन उसी घर मे कुछ समय बाद जाए । अथवा जो गृहस्थ यह कह दे कि" "हमारे घर कभी नही आना" फिर भी उसके घर जाए तो यह भिक्षु का अविवेक है । इसी अविवेक का इस सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा गया है । इस अविवेक से दाता का रुष्ट होना, शकित होना व अनुचित व्यवहार करना आदि दोषो की सभावना रहती है ।

संखडी गमनप्रायश्चित्त—

१४. जे भिक्खू संखडि--पलोयणाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेइ पडिगाहेतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु जीमनवार के लिये बनी खाद्य सामग्री को देखते हुये अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन--"सखडि-पलोयणा-" **सखडिसाभिणा अणुण्णातो तम्मि रसवईए अणुप्पविसित्ता ओदणादि पलोइउ भणति-'इतो य इतो पयच्छाहि "त्ति एस पलोयणा" जो एवं असणादि गिण्हति तस्स मास लहु** ।। चूर्णि पृष्ठ–२०६ ।।

रसोई घर मे पहुँच कर चावल आदि वस्तुओ को देखकर "यह दो या इसमे से दो" इस प्रकार कहना सखडिप्रलोकन पूर्वक आहार ग्रहण करना कहा गया है ।

सखडि –जीमनवार— जहा पर अत्यधिक आरभ से सैकडो व्यक्तियो के लिये आहार बना हो ऐसे जीमनवार मे भिक्षा के लिये जाने का या उस दिशा मे जाने का बृहत्कल्प सूत्र उद्देशा १ तथा आचा श्रु २ अ १ उ २-३ मे निषेध किया है व उससे होने वाले अनिष्टो का कथन भी मूल पाठ मे है । अत यहाँ प्रायश्चित्त कहा गया है ।

जीमणवार मे अनेक प्रकार की खाद्य सामग्री बनती देखना व इच्छित वस्तु लेना, इस विषय का स्पष्टीकरण करने के लिये इस सूत्र मे "सखडी-पलोयणाए" शब्द का प्रयोग किया गया है । अत सखडी मे भिक्षा के लिये जाने का और वहा से आहार ग्रहण करने का इस सूत्र मे प्रायश्चित्त है, ऐसा समझना चाहिये ।

अभिहृत आहार ग्रहण प्रायश्चित्त—

१५. जे भिक्खू गाहावइकुलं पिडवायपडियाएअणपविट्ठे समाणे पर ति-घरतराओ असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा अभिहड आहट्टु दिज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु गाथापति कुल मे आहार के लिये प्रवेश करके तीन घर अर्थात् तीन कमरे से अधिक दूर से सामने लाकर देते हुए अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य को ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन– जिस कमरे से आहारादि ग्रहण करना हो, उसी मे या उसके बाहर खडा रह कर ही आहारादि ग्रहण करना चाहिये । किन्तु दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ५ उद्देशक १ मे कहा है कि **"कुलस्स भूमि जाणित्ता, मियं भूमि परक्कमे"** अर्थात् जिन कुलो मे साधु को जितनी सीमा तक प्रवेश अनुज्ञात हो उस मर्यादित स्थान तक ही जाना चाहिये । इस कारण से तथा अन्य किसी विशेष कारण से उस स्थान तक जाना न हो सके तो तीन कमरे जितनी दूरी से गृहस्थ लाकर दे तो एषणा दोषो को टालकर ग्रहण किया जा सकता है ।

तीन घर [कमरे] जितने दूर स्थल से लाये गये आहार ग्रहण की अनुज्ञा के साथ "अदिट्ठ-हडाए" दोष युक्त ग्रहण की अनुज्ञा नही है, यह भी ध्यान मे रखना चाहिये ।

तीन घर (कमरे) से अधिक दूरी के स्थान से लाकर दिये जाने वाले अशनादि ग्रहण करने पर लघु मासिक प्रायश्चित्त आता है।

सख्यावाची "तीन" शब्द का प्रयोग लोकव्यवहार मे तथा आगम मे अनेक स्थलो पर होता है। किसी विषय की सीमा करने मे या उसे निश्चित करने मे इसका प्रयोग होता है। यहा तीन शब्द से सीमा की गई है। इससे ज्यादा दूर की वस्तु सामने लाकर देने मे दोष लगने की सभावना रहती है।

पांव परिकर्म प्रायश्चित्त–

१६. जे भिक्खू अप्पणो "पाए" आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जत वा पमज्जत वा साइज्जइ।

१७. जे भिक्खू अप्पणो "पाए" सबाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, सबाहेतं वा पलिमद्देंत वा साइज्जइ।

१८. जे भिक्खू अप्पणो "पाए" तेल्लेण वा जाव णवणीएण वा अब्भगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भगेंत वा मक्खेंत वा साइज्जइ।

१९. जे भिक्खू अप्पणो "पाए" कक्केण वा जाव वण्णेहिं वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंत वा उव्वट्टेंत वा साइज्जइ।

२०. जे भिक्खू अप्पणो 'पाए' सीओदगवियडेग वा, उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंत वा पधोवेंत वा साइज्जइ।

२१ जे भिक्खू अप्पणो 'पाए' फुम्मेज्ज वा, रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएतं वा साइज्जइ।

१६. जो भिक्षु अपने पैरो का एक बार या बार-बार 'आमर्जन' करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७ जो भिक्षु अपने पैरो का 'सवाहन'—मर्दन, एक बार या बार-बार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८ जो भिक्षु अपने पैरो की तेल **यावत्** मक्खन से एक बार या बार-बार मालिश करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९ जो भिक्षु अपने पैरो का कल्क **यावत्** वर्णो से एक बार या बार-बार उबटन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

२० जो भिक्षु अपने पैरो को अचित्त शीतल जल से या अचित्त उष्ण जल से एक बार या बार-बार धोता है या धोने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जो भिक्षु अपने पैरो को (लाक्षारस, मेहदी आदि से) रगता है अथवा (तेल आदि से) उस रग को चमकाता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन-इन सूत्रो मे एक ही क्रिया के लिये दो दो पद दिये गये है। उनका अर्थ एक बार करना और बार बार करना इस तरह किया गया है। चूर्णी व भाष्य मे दूसरी तरह से भी अर्थ दिया गया है। यथा—

१. **थोवेण अब्भंगण, बहुणा मक्खण** ।—चूर्णी पृ २७, सूत्र ४ ।।

२. **अब्भगो थोवेण, बहुणा मक्खण** ।—चूर्णी पृ २१२, पक्ति २ ।।

३. **एतेसि पढम पदा सइ तु, बितिया तु बहुसो बहुणा वा** ।। गा १४९६ ।।

आमज्जण—पावो पर हाथ फेरना या राथो से घर्षण करना ।

सबाहण—मर्दन करना—हाथ से पाव को दबाना ।

थकान या वात आदि रोग के बिना, आमर्जन सवाहन करने पर यह प्रायश्चित्त समझना चाहिए। विशेष कारण मे अथवा सहनशीलता के अभाव मे स्थविरकल्पी को शरीर का परिकर्म करने की और औषध के सेवन की अनुज्ञा समझनी चाहिये।

नि भाष्य गा १४९१—१४९२
व्यव उ ५, नि उ १३

परिकर्म की प्रवृत्ति मे दोषो की सभावना बताते हुये भाष्यकार कहते है—

सघट्टणा तु वाते, सुहुमे यऽण्णे विराधए पाणे ।
बाउस दोस विभूसा, तम्हा ण पमज्जए पाए ।। १४९३ ।।

गाथा १४९८ मे भी दोषो का वर्णन किया है। दोनो गाथाओ का सयुक्त **भावार्थ यह है**—वायुकाय की विराधना, मच्छर पतगा आदि छोटे बडे सपातिम जीवो की विराधना, बकुशता, ब्रह्मचर्य की अगुप्ति, सूत्र-अर्थ (स्वाध्याय) की परिहानि तथा लोकापवाद आदि दोष होते है। अत विशेष कारण के बिना ये प्रवृत्तिया नही करनी चाहिये।

फुमेज्ज वा रएज्ज वा—मेहदी आदि लगाने के बाद रूई के फोहे मे (रग को चमकीला बनाने के लिये) तेल आदि लगाने की क्रिया को यहा "फुमेज्ज" कहा गया है, यथा—

फुमते लग्गते रागो—अलत्तगरगो फुमिज्जंतो लग्गति । —१४९६

अर्थ—फूमित करने पर रग लगता है-अलक्तक का रग फूमित करने से ही लगता है।

सूत्र मे "फुमेज्ज" पद पहले दिया गया है, जो पद व्यत्यय आदि कारण से भी होना सभव है अथवा क्वचित् तेल लगाकर फिर रग के पदार्थ भी लगाये जाते हो, इस अपेक्षा से भी यह कथन हो सकता है।

काय-परिकर्म-प्रायश्चित्त-

२२-२७ **जे भिक्खू अप्पणो काय आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा आमज्जंत वा पमज्जंतं वा साइज्जइ एव पायगमेण णेयव्वं जाव जे भिक्खू अप्पणो काय फुमेज्ज वा रएज्ज वा फुमंतं वा रयंतं वा साइज्जइ ।**

जो भिक्षु अपने शरीर का एक बार या बार बार आमर्जन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, **इस प्रकार पैर के आलापक के समान जानना यावत्** जो भिक्षु अपने शरीर को रगता है या उस रग को चमकीला बनाता है, अथवा ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन–अनेक अगो सबधी ६ सूत्रो के आलापको का स्वतत्र कथन है । अत यहा शरीर के कथन से अवशेष अग-हाथ, पेट, पीठ आदि के लिए ६ सूत्र समझ लेने चाहिए, तथा सपूर्ण विवेचन पैर के सूत्रो के विवेचन के समान यहा भी विषयानुसार समझ लेना चाहिये ।

व्रण-चिकित्सा-प्रायश्चित्त–

२८-३३ जे भिक्खू अप्पणो कायसि वण आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा आमज्जत वा पमज्जंतं वा साइज्जइ एव पायगमेण णेयव्व जाव जे भिक्खू अप्पणो कायसि वण फुमेज्ज वा रएज्ज वा फुमंतं वा रयत वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अपने शरीर मे हुए घाव का एक बार या अनेक बार आमर्जन करता है या आमर्जन करने वाले का अनुमोदन करता है, **इस प्रकार पैर के आलापक के समान जानना यावत्** जो भिक्षु अपने शरीर पर हुए घाव को रगता है या चमकीला बनाता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—व्रण—घाव । यह दो प्रकार का होता है—

१ शरीर पर स्वत उत्पन्न-दाद खुजली, कोढ आदि ।

२ बाह्य उपक्रम से उत्पन्न—शस्त्र, काटा, कील आदि के लगने से, साप, कुत्ता आदि के काटने से, ठोकर लगने से या गिरने-पडने से उत्पन्न घाव ।

भिक्षु को यदि सहन करने की क्षमता हो तो कर्म-निर्जरार्थ इन परिस्थितियो मे भी समभाव से उत्पन्न दु ख को सहन करना चाहिये किन्तु परिकर्म नही करना चाहिये ।

अनेक प्रकार से प्रमादवृद्धि, रोगवृद्धि आदि की सभावना होने के कारण इनके परिकर्म का प्रायश्चित्त कहा गया है । 'असह्य स्थिति के बिना परिकर्म नही करना' इस लक्ष्य की स्मृति बनी रहे इसलिये इनका लघुमासिक प्रायश्चित्त कहा गया है ।

गंडादि-शल्य-चिकित्सा-प्रायश्चित्त—

३४. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि गड वा, पिलग वा, अरइय वा, अंसिय वा, भगदल वा अण्णयरेण तिक्खेण सत्थजाएणं आच्छिदेज्ज वा विच्छिदेज्ज वा, आच्छिदत वा विच्छिदत वा साइज्जइ ।

३५. जे भिक्खू अप्पणो कायसि गड वा, पिलग वा, अरइय वा, असिय वा, भगदल वा, अण्णयरेण तिक्खेण सत्थजाएण आच्छिदित्ता विच्छिदित्ता पूय वा सोणिय वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंत वा विसोहेत वा साइज्जइ ।

३६. जे भिक्खू अप्पणो कायसि गडं वा, पिलगं वा अरइयं वा असियं वा, भगदलं वा, अण्णयरेण तिक्खेण सत्थजाएण, आच्छिंदित्ता विच्छिंदित्ता पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता विसोहित्ता, सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा साइज्जइ ।

३७. जे भिक्खू अप्पणो कायसि गडं वा, पिलगं वा, अरइयं वा, असियं वा, भगदलं वा, अण्णयरेण तिक्खेण सत्थजाएण आच्छिंदित्ता विच्छिंदित्ता पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता विसोहित्ता, सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलित्ता पधोवित्ता अण्णयरेण आलेवण-जाएण आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ ।

३८. जे भिक्खू अप्पणो कायसि गडं वा, पिलगं वा, अरइयं वा, अंसियं वा, भगदलं वा, अण्णयरेण तिक्खेण सत्थजाएण आच्छिंदित्ता विच्छिंदित्ता पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता विसोहित्ता, सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलित्ता पधोवित्ता, अण्णयरेण आलेवणजाएण आलिंपित्ता-विलिंपित्ता तेल्लेण वा जाव णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा साइज्जइ ।

३९ जे भिक्खू अप्पणो कायसि गडं वा, पिलगं वा, अरइयं वा असियं वा, भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेण सत्थ-जाएण, आच्छिंदित्ता विच्छिंदित्ता, पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता-विसोहित्ता, सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलित्ता पधोवित्ता, अण्णयरेणं आलेवण-जाएणं आलिंपित्ता-विलिंपित्ता तेल्लेण वा जाव णवणीएण वा अब्भंगेत्ता मक्खेत्ता, अण्णयरेणं धूवजाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा धूवेंतं वा पधूवेंतं वा साइज्जइ ।

३४ जो भिक्षु अपने शरीर पर हुए गडमाल, पैरो आदि पर हुए गुमडे, छोटी-छोटी फुंसिया (अलाइयाँ) मसा तथा भगदर आदि को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से एक बार काटता है या बार-बार काटता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३५ जो भिक्षु अपने शरीर के गडमाल, गूमडे, फुंसियो मसे या भगदर को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से काटकर पीप या रक्त निकालता है या शोधन करता है, या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३६ जो भिक्षु अपने शरीर के गडमाल, गूमडे, फुंसियो, मसे या भगदर को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से काटकर, पीप, खून निकालकर, शीतल या उष्ण अचित्त जल से एक बार या बार-बार धोता है या धोने वाले का अनुमोदन करता है ।

३७ जो भिक्षु अपने शरीर के गडमाल, गूमडे, फुंसियो, मसे या भगदर को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से काटकर, पीप, खून निकालकर, शीतल या उष्ण अचित्त जल से धोकर किसी भी प्रकार का लेप—मलहम लगाता है या बार-बार लगाता या लगाने वाले का अनुमोदन करता है ।

३८ जो भिक्षु अपने शरीर के गडमाल, गूमड, फुंसिया, मसे या भगदर को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से काटकर, पीप, खून निकालकर, शीतल या उष्ण अचित्त जल से धोकर किसी भी प्रकार का

मलहम लगाकर, तेल यावत् मक्खन से एक बार या बार-बार मालिश करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

३९ जो भिक्षु अपने शरीर के गंडमाल, गूमडे, फुंसियों, मसे या भगंदर को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से काटकर, पीप, खून निकालकर, शीतल या उष्ण जल से धोकर किसी भी प्रकार का मलहम लगाकर, तेल यावत् मक्खन से मालिश करके किसी सुगंधित पदार्थ से एक बार या बार-बार सुवासित करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—१. गच्छतीति गंड, त च गंडमाला ।। नि चू ।।

"उच्चप्रदेशात् नीचप्रदेशं गच्छति" सः गंडमाला "कंठमाला" इति लोकप्रसिद्ध । नि. घा. ।। —कान के नीचे व कंठ और गर्दन से सम्बन्धित व्याधिविशेष।

२. पिलग तु पादगत गडं । ।। नि चू ।। यहाँ पाँव के गूमडे से पूरे शरीर में होने वाले गूमडे समझ लें क्योंकि सूत्र में **"पिलग"** शब्द ही है।

३. "अरइय वा" अरतितो जं न पच्चति ।। नि. चू ।।

रक्तविकारेण जायमाने लघु व्रणपुंजरूपे । यस्या खर्जने तत्समये सुखमिव जायते पश्चात्—दुःखाधिक्यम् "फुन्सीति" लोकप्रसिद्धम् ।। नि घा. ।।

जिनके द्वारा शरीर अरतिकर हो जाता है, ऐसी साधारण गर्मी की फुंसियां या विशिष्ट (चेचक-ओरी-अचपडा आदि) फुंसी समूह।

४. असियं—अहिट्ठाणे णासाए व्रणेसु वा भवति।" ।। नि चू ।।

अर्शो वा, गुदागतो रोगः "बवासीर" इति लोकप्रसिद्ध ।" ।। नि घा. ।।

५ भगंदर—गुह्य स्थान गत रोग विशेष।

एक्कसि ईषद् वा आच्छिंदणं, बहुवार सुट्ठु वा छिंदण विच्छिंदणं । ।। नि चू. ।।

इस सूत्र षट्क के प्रत्येक सूत्र की चूर्णी में बताया है कि पूर्वोक्त सूत्र का पूरा आलापक कह करके बाद में विशेष आलापक कहना चाहिए।

"पुव्वसुत्त सव्व उच्चारेऊण इमे अइरित्ता आलावगा।"

अतः यहाँ पूर्व सूत्र का पूरा पाठ स्वीकार किया गया है और अर्थ संक्षिप्त किया है।

यहाँ शस्त्र के आलेवण के और धूव के साथ अण्णयरं या जात शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका आशय यह है कि ये अनेक प्रकार के होते हैं उनमें से किसी भी एक प्रकार का यहाँ विवक्षित है।

पूर्व के अनेक आलापकों में पहले अभ्यंगन सूत्र आया है, बाद में उबटन सूत्र। किन्तु यहाँ पर पहले आलेपन सूत्र है फिर अभ्यंगन सूत्र है। इससे यह समझना चाहिए कि इन गंड आदि में ये ६ सूत्रगत क्रियाएँ इस क्रम से होती हैं। इन सूत्रों को क्रमिक व सम्बन्धित सूत्र समझना चाहिए। किन्तु पूर्व के आलापकों में वर्णित क्रियाएँ अक्रमिक व स्वतंत्र हैं तथा दोनों आलापकों में आलेपन और उबटन ये भिन्न-भिन्न क्रियाएँ हैं ऐसा समझना चाहिए।

पूर्व आलापकों की क्रियाएँ	**गंडादि आलापक की क्रियाएँ—**
१. **आमर्जन**—हाथ से घर्षण,	१ शस्त्र से काटना व काटकर,
२ **मर्दन**—हाथ से दबाना,	२ पीप खून निकालना व निकालकर,
३ **मालिश**—तेलादि से,	३ अचित्त जल से धोना और धोकर,
४ **उबटन**—लोधादि से,	४ मलहम लगाना व लगाकर,
५. **प्रक्षालन**-अचित्त जल से,	५ तेलादि से मालिश करना, करके,
६. **रंगना**-मेहंदी आदि से,	६ सुगंधित द्रव्य से सुवासित करना।

सूत्र संख्या १६ से ६९ तक शरीरपरिकर्म प्रायश्चित्त के कुल ५४ सूत्र है। व्याख्याकार ने इन सूत्रो का भाव यह बताया है कि-'कारण से करने मे अनुज्ञा व अकारण से करने पर प्रायश्चित्त है' ऐसा समझना चाहिये। किन्तु व्रण के ६ सूत्र और गडादि के ६ सूत्र है। इन १२ सूत्रो मे तो कारण स्पष्ट है फिर भी प्रायश्चित्त क्यो कहा गया है ?

इस प्रश्न के उत्तर मे व्याख्याकार कहते है कि-'रोग को असातावेदनीय से उत्पन्न हुआ जानकर अदीन भाव से प्रसन्नचित्त रहकर निर्जरार्थ समभाव से सहन करना चाहिये, किन्तु आर्तध्यान या असमाधि भाव नही करना चाहिये। जिनकल्पी आमरणात इसी अवस्था से रहते है। किन्तु स्थविरकल्पी द्वारा वेदना असह्य होने पर १ सूत्र अर्थ के विच्छेद न होने के लिये २ सयमी जीवन के लिये, ३ समाधिभाव पूर्वक मरण की प्राप्ति के लिये तथा ४ ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की वृद्धि करने के लिये, इन क्रियाओ को करना वह "सकारण करना" कहलाता है।

१ सहनशीलता आदि का विचार किये बिना, २ क्षमता बढाने का लक्ष्य रखे बिना, ३ साधारण कारण से ही शीघ्र उपचार करने की आदत मात्र से ये प्रवृत्तिया करना "अकारण करना" कहलाता है, इस अपेक्षा से यह प्रायश्चित्तविधान है।

इस भावार्थ की सूचक तीन गाथाये इस प्रकार है—

णिक्कारणे ण कप्पति, गडादीएसु छेअ-धुवणादी।
आसज्ज कारण पुण, सो चेव गमो हवइ तत्थ ॥ १५०७

णच्चुपतित दुक्ख, अभिभूतो वेयणाए तिव्वाए।
अद्दीणो अव्वहिओ, तं दुक्ख अहियासए सम्म ॥ १५०८ ॥

अव्वोच्छित्तिणिमित्तं, जीवट्ठिए समाहिहेउं वा।
पमज्जणादि तु पदे, जयणाए समायरे भिक्खू ॥ १५०९ ॥ नि. चू.

निशीथ सूत्र उद्देशक १३ मे बिना रोग के [रोग के पूर्व या पश्चात्] चिकित्सा करे तो प्रायश्चित्त कहा गया है। उसके फलितार्थ से भी यह भाव निकलता है कि स्थविरकल्पी अपने समाधि भाव का विचार करके आवश्यक हो तो गीतार्थ व गीतार्थ की निश्रा से क्रमिक विवेकपूर्वक उपचार तथा शरीरपरिकर्म की क्रियाए कर सकता है। अपवाद प्रसग का निर्णय गीतार्थ के तत्त्वावधान मे होता है।

उत्सर्ग व अपवाद के निर्णय को समझने के लिए निशीथचूर्णी भाग-३ की प्रस्तावना से कुछ आवश्यक अश उद्धृत करना यहा प्रासगिक होगा ।

उत्सर्ग और अपवाद—

उत्सर्ग और अपवाद दोनो का लक्ष्य है—जीवन की शुद्धि, आध्यात्मिक विकास, सयम की सुरक्षा, ज्ञानादि सद्‌गुणो की वृद्धि ।

जैसे राजपथ पर चलने वाला पथिक यदा कदा विशेष बाधा उपस्थित होने पर राजमार्ग का परित्याग कर पास की पगडडी पकड लेता है और कुछ दूर जाने के बाद किसी प्रकार की बाधा दिखाई न दे तो पुन राजमार्ग पर लौट आता है । यही बात उत्सर्ग से अपवाद मे जाने और अपवाद से उत्सर्ग मे आने के सबध मे समझ लेनी चाहिए । दोनो का लक्ष्य प्रगति है । अत दोनो ही मार्ग है, अमार्ग या उन्मार्ग नही है । दोनो के समन्वय से साधक की साधना सिद्ध एव समृद्ध होती है ।

उत्सर्ग और अपवाद कब और कब तक ?—

प्रश्न वस्तुत महत्व का है । उत्सर्ग साधना की सामान्य विधि है । अत उस पर साधक को सतत चलना होता है । उत्सर्ग छोडा जा सकता है किन्तु अकारण नही । किसी विशेष परिस्थितिवश ही उत्सर्ग का परित्याग कर अपवाद अपनाया जाता है, पर सदा के लिए नही ।

जो साधक अकारण उत्सर्ग मार्ग का परित्याग कर देता है अथवा सामान्य कारण उपस्थित होने पर उसे छोड देता है, वह साधक सच्चा साधक नही है, वह जिनाज्ञा का आराधक नही अपितु विराधक है ।

जो व्यक्ति अकारण औषध सेवन करता है अथवा रोग न होने पर भी रोगी होने का अभिनय करता है वह धूर्त है, कर्तव्यविमुख है । ऐसे व्यक्ति स्वय पथभ्रष्ट होकर समाज को कलकित करते है । यही दशा उन साधको की है जो साधारण कारण से उत्सर्ग मार्ग का परित्याग कर देते है या अकारण ही अपवाद का सेवन करते रहते है, कारणवश एक बार अपवाद सेवन के बाद, कारण समाप्त होने पर भी अपवाद का सतत सेवन करते रहते है । ऐसे साधक स्वय पथभ्रष्ट होकर समाज मे भी एक अनुचित उदाहरण उपस्थित करते है । ऐसे साधको का कोई सिद्धान्त नही होता है और न उनके उत्सर्ग अपवाद की सीमा होती है । वे अपनी वासनापूर्ति के लिए या दुर्बलता छिपाने के लिए विहित अपवाद मार्ग को बदनाम करते है ।

अपवाद मार्ग भी एक विशेष मार्ग है । वह भी साधक को मोक्ष की ओर ही ले जाता है, ससार की ओर नही । जिस प्रकार उत्सर्ग सयम मार्ग है उसी प्रकार अपवाद भी सयम मार्ग है । किन्तु वह अपवाद वस्तुत अपवाद होना चाहिये । अपवाद के पवित्र वेष मे कही भोगाकाक्षा (व कषाय वृत्ति) चकमा न दे जाय, इसके लिये साधक को सतत, सजग, जागरूक एव सचेष्ट रहने की आवश्यकता है ।

साधक के सन्मुख वस्तुत कोई विकट परिस्थिति हो, दूसरा कोई सरल मार्ग सूझ ही न पडता हो, फलत अपवाद अपरिहार्य स्थिति मे उपस्थित हो गया हो तभी अपवाद का सेवन धर्म होता है और ज्यो ही समागत तूफानी वातावरण साफ हो जाय, स्थिति की विकटता न रहे, त्यो ही उत्सर्ग मार्ग पर आरूढ हो जाना चाहिये । ऐसी स्थिति मे क्षण भर का विलब भी (सयम) घातक हो सकता है ।

और एक बात यह भी है कि जितना आवश्यक हो उतना ही अपवाद का सेवन करना चाहिये। ऐसा न हो कि जब यह कर लिया तो अब इसमे क्या है ? यह भी कर ले। जीवन को निरन्तर एक अपवाद से दूसरे अपवाद पर शिथिल भाव से लुढकाते जाना, अपवाद नही है। जिन लोगो की मर्यादा का भान नही हैं, अपवाद की मात्रा एव सीमा का परिज्ञान नही है, उनका अपवाद के द्वारा उत्थान नही है अपितु शतमुख पतन होता है। एक बहुत सुन्दर पौराणिक दृष्टात है। उस पर से सहज समझा जा सकता है कि उत्सर्ग और अपवाद की अपनी क्या सीमाए होती है और उसका सूक्ष्म विश्लेषण किस ईमानदारी से करना चाहिये।

"एक विद्वान् ऋषि कही से गुजर रहे थे। भूख और प्यास से अत्यन्त व्याकुल थे। द्वादश-वर्षी भयकर दुर्भिक्ष था। राजा के कुछ हस्तीपक (पीलवान) एक जगह साथ मे बैठकर भोजन कर रहे थे। ऋषि ने भोजन मागा। उत्तर मिला-'भोजन तो जूठा है'। ऋषि बोले—"जूठा है तो क्या, आखिर पेट तो भरना है" "आपत्काले मर्यादा नास्ति" भोजन लिया, खाया और चलने लगे तो जल लेने को कहा, तब ऋषि ने उत्तर दिया-'जल जूठा है, मैं नही पी सकता'। लोगो ने कहा कि मालूम होता है कि-'अन्न पेट मे जाते ही बुद्धि लौट आई है'। ऋषि ने शात भाव से कहा बधुओ! तुम्हरा सोचना ठीक है किन्तु मेरी एक मर्यादा है। अन्न अन्यत्र मिल नही रहा था और मै भूख से इतना आकुल-व्याकुल था कि प्राण कठ मे आ रहे थे और अधिक सहने की क्षमता समाप्त हो चुकी थी। अत मैने जूठा अन्न भी अपवाद की स्थिति मे स्वीकार कर लिया। अब जल तो मेरी मर्यादा के अनुसार अन्यत्र शुद्ध मिल सकता है। अत मैं व्यर्थ ही जूठा जल क्यो पीऊँ।"

सक्षेप मे सार यह है कि जब तक चला जा सकता है उत्सर्ग मार्ग पर ही चलना चाहिये, जब चलना सर्वथा दुस्तर हो जाय, दूसरा कोई इधर-उधर बचाव का मार्ग न रहे तब अपवाद मार्ग का सेवन करना चाहिये और ज्यो ही स्थिति सुधर जाय पुन तत्क्षण उत्सर्ग मार्ग पर लौट आना चाहिये।

उत्सर्ग मार्ग सामान्य मार्ग है। यहा कौन चले कौन नही चले, इस प्रश्न के लिये कुछ भी स्थान नही है। जब तक शक्ति रहे, उत्साह रहे, आपत्ति काल मे भी किसी प्रकार का ग्लानिभाव न आवे, धर्म एव सघ पर किसी प्रकार का उपद्रव न हो अथवा ज्ञान दर्शन चारित्र की क्षति का कोई विशेष प्रसग उपस्थित न हो, तब तक उत्सर्ग मार्ग पर ही चलना है, अपवाद मार्ग पर नही।

अपवाद मार्ग पर कभी कदाचित् ही चला जाता है। इस पर हर कोई साधक हर किसी समय नही चल सकता है। जो साधक आचारागसूत्र आदि आचारसहिता का पूर्ण अध्ययन कर चुका है, गीतार्थ है, निशीथ सूत्र आदि छेद सूत्रो के सूक्ष्मतम मर्म का भी ज्ञाता है, उत्सर्ग-अपवाद पदो का अध्ययन ही नही अपितु स्पष्ट अनुभव रखता है, वही अपवाद के स्वीकार या परिहार के सबध मे ठीक ठीक निर्णय दे सकता है। अत सभी आपवादिक विधान करने वाले सूत्रो मे कही गई प्रवृत्तियो के करने मे इस उत्सर्ग-अपवाद के स्वरूप सबधी वर्णन को ध्यान मे रखना चाहिये।

कृमि-नीहरण प्रायश्चित्त—

४०. जे भिक्खू अप्पणो पालु-किमियं वा, कुच्छिकिमियं वा, अगुलीए णिवेसिय-णिवेसिय णीहरइ, णीहरंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अपने अपानद्वार की कृमियो को और कुक्षि की कृमियो को अगुली डाल-डालकर निकालता है या निकालने वाले का अनुमोदन करता है (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पाचन की विकृति से पेट मे कृमियो की उत्पत्ति होती है जो प्राय अपानद्वार—गुदा भाग से अशुचि के साथ बाहर निकलती है। ये कृमिया कभी अपानद्वार के मुख पर या कभी कुछ अन्दर भाग मे रुक जाती हैं। उन्हे अगुली के द्वारा निकालने मे विराधना सभव होती है अत प्रायश्चित्त कहा है।

कुक्षि—अपान द्वार का ३-४ अगुल तक का भीतरी भाग।

पालु—अपान द्वार का बाह्य मुखस्थान।

किमियं—कृमि छोटी बडी अनेक प्रकार की होती है। जो बाहर निकलने के बाद अल्प समय तक ही जीवित रहती है। वे बारीक लट जैसी **यावत्** सर्प के छोटे बच्चे जैसी भी हो सकती है।

नख-परिकर्म प्रायश्चित्त—

४१. जे भिक्खू अप्पणो दीहाओ णहसीहाओ' कप्पेज्ज वा, सठवेज्ज वा, कप्पेंत वा सठवेंत वा साइज्जइ।

४१ जो भिक्षु अपने बढे हुये नखो के अग्रभागो को काटता है या सुधारता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—आगामो मे **"दीहरोमनहसिणो"**—दीर्घ रोम नखो वाला—दश अ ६ गा ६४

तथा "धुत्तकेसमंसुरोमणहे"—केश, मू छ, रोम और नखो के सस्कार नही करने वाला,
—प्रश्न श्रु २, अ १, सू, ४

इत्यादि पाठो के होते हुए भी नख काटने का एकात निषेध नहीं समझना चाहिये क्योकि आचा श्रु २, अ ७, उ १, मे स्वय के लिये ग्रहण किये नखछेदनक को अन्य भिक्षु को नही देने का तथा स्वय के लौटाने की विधि का कथन है।

निशीथ उ १, सूत्र ३२ मे नख काटने के लिए ग्रहण किये नखछेदनक से अन्य कार्य करने का प्रायश्चित्त है। तथा सूत्र १७, २१, २५, २९, ३७ मे अविधि से ग्रहण करने, अविधि से लौटाने, बिना प्रयोजन ग्रहण करने आदि के प्रायश्चित्त विधान है। इन आचाराग तथा निशीथसूत्र के पाठो से स्वत सिद्ध है कि साधु नखछेदनक आवश्यक होने पर विधि से ग्रहण कर सकता है, नख काट सकता है और विधि से लौटा सकता है।

किन्तु प्रस्तुत सूत्र मे नख काटने का प्रायश्चित्त कथन है, इससे यह स्पष्ट होता है कि अकारण नख काटने का निषेध और प्रायश्चित्त है एव सकारण नख काटने पर प्रायश्चित्त नही है।

सेवाकार्यो के करने मे बढे हुए नख यदि बाधा रूप हो तो नख काटना "सकारण" है।

नियत दिन से नख काटने का सकल्प रख कर नख काटना "अकारण" है।

रोम-परिकर्म प्रायश्चित्त—

४२. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइ जंघ—रोमाइ कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंत वा साइज्जइ।

४३. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइ वत्थि-रोमाइ कप्पेज्ज वा सठवेज्ज वा, कप्पेंत वा संठवेंतं वा साइज्जइ।

४४. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइ "रोमराइं" कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंत वा सठवेंतं वा साइज्जइ।

४५. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइ कक्ख-रोमाइं कप्पेज्ज वा सठवेज्ज वा कप्पेंतं वा संठवेंत वा साइज्जइ

४६. जे भिक्खू अप्पणो दोहाइ "उत्तरोट्ठ-रोमाइं" कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा सठवेंत वा साइज्जइ।

४७ जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं "मंसुरोमाइ" कप्पेज्ज वा सठवेज्ज वा, कप्पेंत वा संठवेंतं वा साइज्जइ।

४२. जो भिक्षु अपने बढे :हुए "जघा" के रोमो को काटता है या सुधारता है (संवारता है) या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४३ जो भिक्षु बढे हुए गुह्य देश के रोमो को काटता है, सुधारता है, या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४४ जो भिक्षु अपने बढे हुए पेट, छाती व पीठ भाग के रोमो को काटता है या सुधारता है—सवारता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४५ जो भिक्षु अपने चढे हुए आख के रोमो को काटता है या मुधारता है—सवारता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६ जो भिक्षु अपनी बढी हुई "दाढी" को काटता हे या सुधारता—सवारता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७ जो भिक्षु अपनी बढी हुई "मूँछो" को काटता है या सुधारता—सवारता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

दंत-परिकर्म-प्रायश्चित्त—

४८. जे भिक्खू अप्पणो "दते" आघंसेज्ज वा पघसेज्ज वा, आघसतं वा पघसत वा साइज्जइ।

४९. जे भिक्खू अप्पणो "दते" सीओदगवियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंत वा पधोवेतं वा साइज्जइ।

५०. जे भिक्खू अप्पणो "दंते" फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा साइज्जइ ।

अर्थ--४८. जो भिक्षु दाँत (मजन आदि से) घिसता है या बार-बार घिसता है या घिसने वाले का अनुमोदन करता है ।

४९. जो भिक्षु अपने दाँत शीतल या उष्ण अचित्त जल से एक बार या बार-बार धोता है या धोने वाले का अनुमोदन करता है ।

५० जो भिक्षु अपने दाँत मिस्सी आदि से रगता है या तेल आदि पदार्थ लगाकर चमकीले बनाता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन--दशवैकालिक अ ३, गा ३, मे दतप्रक्षालन को अनाचार कहा है तथा उववाई आदि अन्य आगमो में अनेक स्थानो पर श्रमण-चर्या मे "अदत-धावण" भी एक चर्या कही गई है । वर्तमान युग मे साधु-साध्वियो की आहार पानी की सामग्री प्राचीन काल जैसी न रहने के कारण दत-प्रक्षालन आदि न करने पर दाँतो मे दन्तक्षय या "पायरिया" आदि रोग होने की सम्भावना रहती है । अत· जिन साधु-साध्वियो को उक्त जिनाज्ञा का पालन करना हो तो उन्हे नीचे लिखी सावधानियाँ रखनी चाहिए--

१ पौष्टिक पदार्थों का सेवन नही करना, यदि सेवन किया जाए तो उपवास आदि तप अवश्य करना,

२ सदा ऊनोदरी तप करना,

३ अत्यन्त गर्म या अत्यन्त ठण्डे पदार्थो का सेवन नही करना,

४. भोजन करने के बाद या कुछ खाने-पीने के बाद दाँतो को साफ करते हुए कुछ पानी पी लेना चाहिए । शाम को चौविहार का त्याग करते समय भी इसी प्रकार दाँतो को अच्छी तरह साफ करते हुए पानी पी लेना चाहिए ।

५ चाकेलेट गोलियाँ आदि नही खाना चाहिए ।

उक्त सावधानियाँ रखने पर "अदतधावण" नियम का पालन करते हुए भी दात स्वस्थ रह सकते हैं एव इन्द्रिय-निग्रह, ब्रह्मचर्य-पालन आदि मे भी समाधि भाव रह सकता है ।

आगमोक्त अदतधावन, अस्नान, ब्रह्मचर्य, ऊनोदरी तप तथा अन्य बाह्य आभ्यन्तर तप एव अन्य सभी नियम परस्पर सम्बन्धित है, अत आगमोक्त सभी नियमो का पूर्ण पालन करने पर ही स्वास्थ्य एव सयम की समाधि कायम रह सकती है ।

तात्पर्य यह है कि अदतधावन नियम के पालन के साथ खान-पान के विवेक मे ही इन्द्रिय-निग्रह मे सफलता प्राप्त हो सकती है । इन्द्रियनिग्रह की सफलता मे ही सयमाराधन की सफलता रही हुई है । इन्ही कारणो से आगमो मे अदतधावन को इतना महत्त्व दिया गया है ।

सामान्यत मजन करना और दतधावन सम्बन्धी क्रियाएँ करना, ये सब सयम जीवन के अयोग्य प्रवृत्तियाँ है । किन्तु असावधानी से या अन्य किसी कारण से दाँतो के रुग्ण हो जाने पर चिकित्सा के लिए मजन करना एव दतप्रक्षालन सम्बन्धी क्रियाएँ करना अनाचार नही है । एव उसका प्रस्तुत सूत्र से प्रायश्चित्त नही आता है ।

दाँतो की रुग्णता ज्ञात होने के बाद भी उपर्युक्त सावधानियाँ रख कर शीघ्र ही चिकित्सा के निमित्त किये जाने वाले दतप्रक्षालन से मुक्त हो जाना चाहिए, अर्थात् सदा के लिए दतप्रक्षालन प्रवृत्ति को स्वीकार न करके खान-पान का विवेक करके अदतधावन चर्या को स्वीकार कर लेना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्रो मे अकारण मजन करने का एव प्रक्षालन करने का या अन्य कोई पदार्थ लगाने का प्रायश्चित्त कहा गया है ऐसा समझना चाहिए।

विभूषा के सकल्प से मजन आदि करने का लघु चौमासी प्रायश्चित्त आगे पन्द्रहवे उद्देशक मे कहा गया है।

ओष्ठ-परिकर्म-प्रायश्चित्त—

५१-५६ जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा साइज्जइ, एवं पायगमेण णेयव्वं जाव जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे फुमेज्ज वा रएज्ज वा फुमंतं वा रयंतं वा साइज्जइ।

५१-५६—जो भिक्षु अपने होठो का एक बार या बार-बार आमर्जन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, **इस प्रकार पैर के आलापक के समान जानना यावत्** जो भिक्षु अपने होठो पर रग लगाता है या उसे चमकीला बनाता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघु-मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पैर के सूत्रों के समान यहा भी विषयानुसार विवेचन जान लेना चाहिये।

चक्षु.परिकर्म-प्रायश्चित्त—

५७ जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं "अच्छिपत्ताइं" कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा कप्पेंतं वा संठवेंतं वा साइज्जइ।

५८-६३. जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा साइज्जइ एवं पायगमेण णेयव्वं जाव जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि फुमेज्ज वा रएज्ज वा फुमंतं वा रयंतं वा साइज्जइ।

५७ जो भिक्षु अपने अक्षिपत्र--चक्षु रोमो को काटता है या सुधारता-सवारता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

५८-६३ जो भिक्षु अपनी आखो का एक बार या बार-बार आमर्जन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, **इस प्रकार पैर के समान जानना यावत्** जो भिक्षु अपनी आखो को रगता है या उसे चमकीला बनाता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पैरो के ६ सूत्रो के समान आख के ६ सूत्रो का विवेचन विषयानुसार समझ लेना चाहिए। अर्थात् वहाँ घर्षण—मलना व मर्दनादि क्रियाएँ करने मे और आख ओष्ठ सबधी ये क्रियाए

करने मे न्यूनाधिकता समझ लेना चाहिये, तथा 'फुमेज्ज रएज्ज' के प्रसग मे मेहदी आदि के स्थान पर अजन आदि के लगाने की भिन्नता समझ लेनी चाहिये ।

रोम-केश-परिकर्मप्रायश्चित्त–

६४. जे भिक्खू अप्पणो—"नासा-रोमाइ" कप्पेज्ज वा सठवेज्ज वा, कप्पेंत वा सठवेंतं वा साइज्जइ ।

६५. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं "भमुग-रोमाइ" कप्पेज्ज वा सठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा सठवेंतं वा साइज्जइ ।

६६. जे भिक्खू अप्पणो "दीहाइ-केसाइ" कप्पेज्ज वा सठवेज्ज वा, कप्पेंत वा सठवेत वा साइज्जइ ।

६४ जो भिक्षु अपनी नासिका के रोमो को काटता है या सुधारता—सवारता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६५ जो भिक्षु अपने बढे हुए भौहो के केशो को काटता है या सुधारता—सवारता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६६ जो भिक्षु अपने बढे हुए मस्तक के केशो को काटता है या सुधारता—सवारता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—सूत्र १६ से ४० तक २५ सूत्रो का क्रम तथा मूल पाठ भाष्य चूर्णी से स्पष्ट हो जाता है । ६+६+६+६+१=२५ सूत्र । प्रस्तुत ४१ मे ६६ तक के २६ सूत्रो की सख्या का निर्देश एव प्रथम व अतिम सूत्र का विषयनिर्देश भी चूर्णिकार ने किया है और शेष २४ सूत्रो का अर्थ निर्युक्ति सयुक्त करने का निर्देश किया है । ऐसा करने मे इन २६ सूत्रो के मूल पाठ सुरक्षित नही रहे । क्योकि निर्युक्तिगाथा मे पद्यरचना के कारण सभी सूत्रो के शब्दो का निर्देश व क्रम नही रह सका यह स्पष्ट है । मस्तक के बालो सबधी सूत्र को चूर्णिकार स्वय अतिम कहते है और वे ही उसे निर्युक्तिगाथा मे बीच मे दिखा कर वहा भी उसकी चूर्णी करते है ।

चूर्णी और निर्युक्ति मे सब मिलाकर भी २६ सूत्रो की जगह १८ सूत्रो की ही व्याख्या है । एक काख का सूत्र, ओष्ठ के ६ सूत्र, एक अक्षिपत्र का सूत्र इन आठ सूत्रो का उस व्याख्या मे कोई स्पष्ट निर्देश नही हुआ है । जिन १८ सूत्रो की व्याख्या की है उनके उपलब्ध पाठ भी विभिन्न है । यथा "नासा" की जगह "पास" सबधी सूत्र मिलता है । वह न आवश्यक है और न उसकी व्याख्या हुई है । रोमराजि की व्याख्या की है तो उसका सूत्र ही नही है उसकी जगह "अक्षिपत्र" सूत्र से आख के रोम का कथन दुबारा हो गया है ।

इन सब स्थितियो का विवेचन मे ध्यानपूर्वक अनुप्रेक्षण किया गया है । तथा २६ सूत्रो और १३ पदो का जो निर्देश चूर्णी की गा १५१८ मे हुआ है, उसके आधार मे व शरीर के नीचे से ऊपर के क्रम का मिलान करते हुए (जैसा कि आचा श्रु १, अ १, उ २, मे है) चूर्णि-निर्युक्ति मूल पाठ एव आदि अत के सूत्रो की तथा २६ व १३ की सख्या की सगति मिलाते हुए सूत्रो को उनके क्रम को एव अर्थ को इस तरह व्यवस्थित किया है—

सूत्र-क्रम	सूत्र-विषय	सूत्र-संख्या	पद-संख्या
४१	नख का सूत्र (आदि सूत्र)	१	१
४२	जघा—रोम सूत्र	१	१
४३	वत्थि—रोम सूत्र	१	१
४४	रोमराजि सूत्र	१	१
४५	कक्ख—रोम सूत्र	१	१
४६	दाढी का सूत्र	१	१
४७	मू छ का रोम सूत्र	१	१
४८—५०	दात के सूत्र	३	१
५१—५६	होठ के सूत्र	६	१
५७—६३	आख के सूत्र	७	१
६४	नासा—रोम का सूत्र	१	१
६५	भमुग—रोम का सूत्र	१	१
६६	मस्तक के बाल का सूत्र (अतिम सूत्र)	१	१
		२६	१३

अन्य किसी सूत्र को बढाने—घटाने मे या क्रमभग करने मे चूर्णिकारनिर्दिष्ट १३ पदो का या २६ सूत्रो का विवक्षित क्रम नही बनता है, जब कि उपर्युक्त क्रम निर्विरोध है ।

रोमराजि—तीर्थकर, युगलिक आदि के शरीरवर्णन मे गुह्य प्रदेश के बाद रोमराजि का वर्णन आता है । यहा भी भाष्य चूर्णी मे रोमराजि की व्याख्या है तथा "रोमाइ" ऐसा पाठ अन्य प्रतियो मे उपलब्ध भी होना है । अत "रोमाराइ" शब्दयुक्त सूत्र रखा गया है किन्तु "चक्षुरोम" का सूत्र रखने से १३ व २६ की सख्या में तथा व्याख्या एव अर्थसगति मे विरोध आता है । पुनरुक्ति भी होती है अत उस सूत्र को नही रखा है ।

नासा-पास—रोमराजि से पेट और पीठ के रोमो का ग्रहण हो जाता है इसलिए "पासरोम" सबधी सूत्र अनावश्यक है । वास्तव मे "पासरोम" का शरीर मे अलग अस्तित्व भी नही है । तथा "पास" करने से "नासा"—सबधी सूत्र घट जाता है । प्रकाशित चूर्णी के मूल पाठ मे भी 'नासा' नही है जब कि इस "नासा रोम" की चूर्णी विद्यमान है और शरीर मे नाक के बालो का अलग अस्तित्व भी है तथा उसके काटने की प्रवृत्ति भी होती है ।

ओष्ठ कांख और अक्षिपत्र—सबधी आठ सूत्रो का मूल पाठ प्राय सभी प्रतियो मे समान उपलब्ध होने से तथा चूर्णी निर्दिष्ट १३ पद—२६ सूत्र सख्या मे सगत होने से और शरीर की रचना के अनुसार क्रम हो जाने से इन आठ सूत्रों की व्याख्या नही होते हुए इनका मूल पाठ मे स्वीकार करना आवश्यक होने से क्रमप्राप्त स्थान पर इनको रखा गया है ।

"कारण—अकारण" का वर्णन तथा बिना कारण इन सूत्रो मे कही गई प्रवृत्तिया करने की अपेक्षा ही ये प्रायश्चित्त-कथन है, इत्यादि विवेचन इसी उद्देशक के सूत्र ३४ के विवेचन से समझ लेना चाहिये ।

प्रस्वेदनिवारण-प्रायश्चित्त-

५७. जे भिक्खू अप्पणो कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा नीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरतं वा विसोहंतं वा साइज्जइ।

६७ जो भिक्षु अपने शरीर का पसीना, जमा हुआ मैल, गीला मैल और ऊपर से लगी हुई रज आदि को निवारण करता है या विशोधन करता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—

सेयं वा—'सेयो-प्रस्वेदः'– स्वल्प मलः—थोडा सूखा मैल।

जल्लं वा—'थिगलं जल्लो भणति'।– मैल का थेगला—ज्यादा मैल।

पंकं वा--'एस एव प्रस्वेद उल्लितो पंको भण्णति' –यही (ऊपर कथित) सूखा मैल पसीना आदि से गीला हो जाने पर "पंक" कहलाता है।

अथवा—**'अण्णो वा जो कद्दमो लग्गो'**– अथवा अन्य कोई कीचड आदि लग जाय उसे भी "पंक" कहते है। यहाँ पहला अर्थ ही प्रसंगसगत है।

मलं वा—'मलो पुण उत्तरमाणो अच्छो, रेणू वा'—जो स्वत स्पर्शादि से उतरने जैसा हो और उतर कर साथ हो जाय। अथवा ऊपर से लगी हुई धूल आदि। नि चूर्णी पृष्ठ २२१

णीहरण—अल्प या अधिक निकालना, दूर करना हटाना।

विशोधन – 'असेसविसोहणं'— पूर्ण विशुद्ध कर देना।

इस सूत्र के प्रायश्चित्त-विधान मे यह सूचित किया गया है कि स्वस्थ या समर्थ साधक जल्ल परिषह को अग्लान भाव से सतत सावधानी पूर्वक सहन करे।

अल्प सामर्थ्य वाला साधक भी सामर्थ्यानुसार परीषह सहन करने की भावना रखे तथा अकारण परिकर्म करने की प्रवृत्ति न करे। अकारण प्रवृत्ति करने पर ही सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है। प्रत्येक व्यक्ति की सहनशक्ति के अनुसार ही 'अकारण सकारण' का निर्णय होता है। अथवा उसके समाधि या असमाधि भाव पर निर्भर करता है।

चक्षु-कर्ण-दंत-नहमलनीहरण-प्रायश्चित्त—

६८. जे भिक्खू अप्पणो अच्छिमलं वा, कण्णमलं वा, दंतमलं वा णहमलं वा, णीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा, णीहरंतं वा, विसोहंतं वा साइज्जइ।

अर्थ—जो भिक्षु अपने आँख का मैल, कान का मैल, दाँत का मैल या नख का मैल निकालता है या उन्हें विशुद्ध करता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन--शब्दो का अर्थ स्पष्ट है। शेष विवेचन सूत्र ६७ के समान समझ लेना चाहिए। ये कार्य अकारण करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

अल्पाधिक चक्षु रोग हो जाने के कारण आँख का मैल निकालना 'सकारण' है और वह प्रायश्चित्त योग्य नही है ।

दाँतों में से अन्न आदि का कण निकालना तथा अल्पाधिक दत-रोग हो जाने पर दाँतो का मैल निकालना भी 'सकारण' समझना चाहिए ।

नखो में प्रविष्ट अशुचिमय पदार्थों का निकालना तथा प्रविष्ट अन्नकणो को निकालना प्रायश्चित्त योग्य नही है, तथा बाल ग्लान वृद्ध आदि की वैयावृत्य सम्बन्धी कार्यों के लिए अथवा सामूहिक सेवा कार्यों के लिए नखो का मैल निकालना 'सकारण' है ।

जो आत्मलब्धिक आहार करने वाले या एकाकी आहार करने वाले गच्छवासी धर्मरुचि अनगार या अर्जुनमाली के समान साधक हो तथा गच्छनिर्गत साधक हो या गच्छगत होते हुए भी सेवा सम्बन्धी कार्यों से पूर्ण निवृत्त साधक हो या समान रुचि वाले सहयोगी साधक हो तो उन्हे अशुचि व आहार कणो के निकालने के सिवाय नख का मैल निकालने की आवश्यकता नही रहती है ।

खाज खुजलाने आदि की प्रवृत्ति कम करने से या स्वावलंबी व सेवानिष्ठ जीवन होने से नखो मे मल के रहने की सभावना भी कम रहती है । ५' ५

सूत्र ६७ और ६८ के इस प्रायश्चित्तविधान मे जल्ल परीषह को जीतने के लिए बल दिया गया है । जो भिक्षु सामर्थ्य या क्षेत्र काल की दृष्टि से जल्ल परीषह जीतने मे सफल न हो सके तो भी उसे इन परीषहजय के विधानो मे विपरीत प्ररूपणा तो नही करनी चाहिए ।

विहार मे मस्तक ढांकने का प्रायश्चित्त—

६९. जे भिक्खू गामाणुगामं दूइज्जमाणे अप्पणो सीस-दुवारियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

६९ जो भिक्षु ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपना मस्तक ढंकता है या ढँकने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—"सीसस्स आवरण—सीसदुवार"—विहार मे तथा गोचरी जाते समय या अन्य कार्यवश अन्यत्र जाना हो तो मस्तक पर वस्त्रादि ओढ कर जाना 'लिग—विपर्यास' है क्योकि मस्तक ढँक कर अन्यत्र जाना स्त्री की वेशभूषा है । अत जो साधु अकारण या साधारण स्थिति मे मस्तक ढँक कर अन्यत्र जावे—आवे या विहार करे तो प्रायश्चित्त आता है । वृद्ध या रुग्ण होने पर अथवा असह्य गर्मी सर्दी मे मस्तक ढँक कर जाना सकारण है । लिंग विपर्यास के कारण साध्वी के लिये मस्तक नही ढँकना प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिये । उपाश्रय मे मस्तक ढँककर बैठने आदि का प्रायश्चित्त नही समझना चाहिये । रात्रि मे मल-मूत्र परित्याग के लिये मस्तक ढँक कर बाहर जाने की परंपरा है अत उसका भी प्रायश्चित्त नही समझना चाहिये । किन्तु इस परपरा के लिये आगम मे कोई स्पष्ट विधान नही मिलता है ।

सूत्र न. १६ से ६९ तक ५४ सूत्रो मे "स्वय" शरीर के परिकर्म करने का प्रायश्चित्त कहा गया है, उनका भावार्थ यह है कि इन्हे अकारण [प्रवृत्ति मात्र से] करने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

छ. सूत्र "व्रण" के व छ सूत्र 'गडमाल' आदि के यो १२ सूत्रो की सकारणता अकारणता में, अन्य ४२ सूत्रो से कुछ भिन्नता है; जिसका स्पष्टीकरण यथास्थान कर दिया गया है। उसका साराश यह है कि—

१ ४२ सूत्रो मे—अकारण करना प्रायश्चित्त योग्य है।

२ १२ सूत्रो मे यथाशक्ति सहन करने का लक्ष्य न रख कर शीघ्र उपचार करना प्रायश्चित्त योग्य है।

यह ५४ सूत्रो का समूह रूप एक आलापक या गमक है जिसका अन्यान्य अपेक्षा से उद्देशक ४-६-७-११-१५-१७ में भी कथन है। सर्वत्र इसी उद्देशक के मूल पाठ व अर्थ--विवेचन की सूचना की गई है। अत इनको सक्षिप्त तालिका से पुन समझ लेना चाहिये।

१६—२१	पैर परिकर्म के सूत्र	६
२२—२७	काय परिकर्म के सूत्र	६
२८—३३	व्रण चिकित्सा के सूत्र	६
३४—३९	गडादि की शल्य चिकित्सा के सूत्र	६
४०	कृमिनीहरण का सूत्र	१
४१	नख परिकर्म का सूत्र	१
४२—४७	रोम परिकर्म के सूत्र (जघ, वत्थि, रोमराइ, कक्ख, उत्तरोट्ठ और मसु)	६
४८—५०	दत परिकर्म के सूत्र	३
५१—५६	ओष्ठ परिकर्म के सूत्र	६
५७—६३	चक्षु परिकर्म के सूत्र	७
६४—६६	रोम केश परिकर्म के सूत्र (नासा, भमुग, केसाइ)	३
६७	प्रस्वेद निवारण का सूत्र	१
६८	चक्षु, कर्ण, दत नख, मल नीहरण सूत्र	१
६९	मस्तक ढकने का सूत्र	१
		५४

इस तीसरे उद्देशक मे अकारण स्वय करने का प्रायश्चित्त बताया है।

चौथे उद्देशक मे अकारण साधु-साधु परस्पर मे करने का प्रायश्चित्त बताया है।

छट्ठे सातवे उद्देशक मे मैथुन भाव मे क्रमश स्वय करने व साधु-साधु परस्पर करने का प्रायश्चित्त है।

ग्यारहवे उद्देशक मे साधु के द्वारा गृहस्थ के ये कार्य करने का प्रायश्चित्त है।

पद्रहवे उद्देशक मे गृहस्थ से ये कार्य कराने का व स्वय विभूषा वृत्ति से करने का दो आलापको द्वारा प्रायश्चित्त कहा है।

सत्रहवे उद्देशक मे साधु गृहस्थ के द्वारा साध्वी के कराने का तथा साध्वी गृहस्थ के द्वारा साधु के कराने का प्रायश्चित्त कथन हुआ है ।

इस प्रकार इन ५४ सूत्रो का निशीथ सूत्र मे कुल नव बार पुनरावर्तन अन्यान्य अपेक्षाओ से हुआ है ।

जिस प्रकार इस उद्देशक मे इन ५४ सूत्रो का प्रायश्चित्तविधान अकारण से ये प्रवृत्तिया करने का है उसी प्रकार अन्य उद्देशो मे भी जहा कही शरीर और उपकरण के परिकर्म सबधी अन्य सामान्य (विभूषा, मैथुन, गृहस्थसेवा आदि के निर्देश बिना) सूत्र हैं वहा भी अकारण करने का ही प्रायश्चित्त समझना चाहिये ।

इस सम्बन्ध मे चूर्णी भाष्य के अतिरिक्त निम्न आगम प्रमाण भी हैं—

उपधिविषयक— १ अपनी उपधि उपयोग मे आने योग्य होते हुये भी यदि उसे परठ दे तो प्रायश्चित्त—नि उ ५ ।

२ गृहस्थ को उपधि देवे तो भी प्रायश्चित्त—नि उ. १५ ।

३ वस्त्र पात्र के थेगली, सधान, बधन, सीवण आदि कार्य के प्रायश्चित्त-सूत्रो में जघन्य एक का उत्कृष्ट तीन-तीन सख्या से ज्यादा करने का प्रायश्चित्त—नि उ १ ।

४ अविधि से सीवण आदि कार्य करने का प्रायश्चित्त—नि उ १ ।

सकारण या अकारण किसी भी रूप से ये कार्य करने का आगम का आशय होता तो उपरोक्त सूत्रों के स्थान पर ऐसे कथन होते कि—"वस्त्रादि के सीने के कार्य, बाधने के कार्य, थेगली लगाने का कार्य, साधने का कार्य, विधि से या अविधि से किसी भी तरह करे तो भी प्रायश्चित्त ।" किन्तु ऐसा न होकर ऊपर निर्दिष्ट सूत्रो से प्रायश्चित्त-कथन हुआ है । अत सकारण अवस्था मे ये प्रायश्चित्त नही है यह स्पष्ट होता है ।

शरीरविषयक—

१ कान का मैल निकाले तो प्रायश्चित्त, नख काटे तो प्रायश्चित्त । नि उ ३ ।

२ सूई, कतरनी, नखशोधनक, कर्णशोधनक ग्रहण करते समय जिस कार्य के लिए लेने का कहा उससे भिन्न कार्य करे तो प्रायश्चित्त अर्थात् वही कार्य करे तो प्रायश्चित्त नही । नि उ १ ।

३ परिवासित (बासी) तेल आदि या कल्क लोध्र आदि लेप्य पदार्थो को उपयोग मे लेने का निषेध । **बृहत्कल्प** उ ५ ।

४ दिन मे ग्रहण किये लेप्य पदार्थ व गोबर को रात्रि मे उपयोग लेने के प्रायश्चित्त की दो चौभगी । नि. उ १२ ।

५ स्वस्थ होते हुए भी शरीर का परिकर्म या औषध-उपचार करे तो प्रायश्चित्त । नि. उ १३ ।

यदि शरीर के समस्त परिकर्मों का सकारण अकारण की विवक्षा के बिना निषेध या प्राय-श्चित्त कहने का आगमकार का आशय होता तो नखशोधनक आदि ग्रहण करने मात्र का स्पष्ट

प्रायश्चित्त कहा जाता, लेप्य पदार्थ ग्रहण करने मात्र का प्रायश्चित्त होता व औषधसेवन मात्र का प्रायश्चित्तकथन होता अन्य विकल्पो से युक्त उपर्युक्त प्रकार के सूत्र नही होते ।

इस प्रकार के इन सूत्रो का आशय यह है कि ये प्रायश्चित्तसूत्र शरीर और उपकरणो के अकारण परिकर्म के हैं । अकारण सकारण का निर्णय गीतार्थ ही कर सकते है । गीतार्थ हुए बिना या गीतार्थ की निश्रा के बिना किसी को भी विचरण करना नही कल्पता है । **बृहत्कल्प भाष्य गा. ६८८ ।।**

गीतार्थ और बहुश्रुत ये दोनो शब्द एक ही भाव के सूचक है । आगमो मे प्राय बहुश्रुत शब्द का प्रयोग है और व्याख्या ग्रथो मे "गीतार्थ" शब्द का प्रयोग है । गीतार्थ की व्याख्या **बृहत्कल्प** भाष्य पोठिका गा ६९३ मे है ।

बहुश्रुत की व्याख्या **निशीथ भाष्य पीठिका** गा ४९५ में है । दोनो व्याख्याओ मे एकरूपता है । वह व्याख्या इस प्रकार है—

आचारनिष्ठ व अनेक आगमो के अभ्यास के साथ "जघन्य आचाराग सूत्र और निशीथ सूत्र को अर्थ सहित कठस्थ धारण करने वाला हो ।"

'उत्कृष्ट १४ पूर्व का धारी हो ।'

और मध्यम मे कम से कम आचाराग, निशीथ, सूयगडाग, दशाश्रुतस्कध, बृहत्कल्प व व्यवहार सूत्र का धारण करने वाला हो ।

यही व्याख्या बहुश्रुत के लिये और यही व्याख्या गीतार्थ के लिये की गई है । आगम मे आये 'धारण करने' का आशय यह है कि मूल और अर्थ कण्ठस्थ धारण करना । क्योकि इन आगमो के भूल जाने का भी प्रायश्चित्त कथन है, तथा स्थविर को भूलने पर कोई प्रायश्चित्त नही है । ऐसा वर्णन व्यव. उ ५ मे है ।

अत इस योग्यता वाले गीतार्थ (या बहुश्रुत) की नेश्राय से ही विचरना और उनकी नेश्राय से अपवादो का निर्णय करना योग्य होता है । अयोग्य को प्रमुख बनकर विचरण करने का निषेध व्यव उ ३ सूत्र १ मे है ।

वशीकरणसूत्र-करण प्रायश्चित्त—

७०. जे भिक्खू सण—कप्पासओ वा, उण्ण—कप्पासओ वा, पोड—कप्पासओ वा, अमिल-कप्पासओ वा वसीकरणसुत्ताइं करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु सन के कपास से, ऊन के कपास से, पोड के कपास से अथवा अमिल के कपास से वशीकरण सूत्र (डोरा) बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्राय-श्चित्त आता है ।)

विवेचन—

१. **सण**—प्रसिद्ध वनस्पति ।
२. **ऊन**—भेड के रोम ।

३ **पोंड**—सूती कपास ।

पोंडा-वमणी, तस्स फलं, तस्स पम्हा रेसे कच्चणिज्जा"

४. **अमिल**—इसकी व्याख्या प्राय नही मिलती है। आक (आकडा) या ऊन विशेष ऐसे अर्थ क्वचित् मिलते हैं।

५ **कप्पास**—कातने के योग्य स्थिति में जो ऊन, रूई आदि हो उनको यहाँ 'कप्पास' कहा है।

६ **वसीकरण—'अवसा वसे कीरंति जेणं तं वसीकरण-सुत्तयं'**—कपास से डोरा बनाकर या डोरो को बटकर मंत्र से भावित करना, जिसके प्रयोग से किसी को वशीभूत किया जा सके।

गृहादि विभिन्न स्थलो में मल-मूत्र परिष्ठापन प्रायश्चित्त—

७१. जे भिक्खू गिहंसि वा, गिहमुहंसि वा, गिह-दुवारियंसि वा, गिहपडिदुवारियंसि वा, गिहेलुयंसि वा, गिहंगणंसि वा, गिहवच्चंसि वा उच्चार—पासवण परिट्ठवेइ परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७२. जे भिक्खू मडग-गिहंसि वा, मडग-छारियंसि वा, मडग-थूभियंसि वा, मडग-आसयंसि वा, मडग-लेणंसि वा, मडग-थंडिलंसि वा, मडग-वच्चंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७३. जे भिक्खू इंगाल-दाहंसि वा, खार- दाहंसि वा, गायदाहंसि वा, तुसदाहंसि वा, भुस-दाहंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।

७४. जे भिक्खू अभिणवियासु वा, गोलेहणियासु, अभिणवियासु वा मट्टियाखाणिसु, अपरिभुज्जमाणियासु वा, अपरिभुज्जमाणियासु वा उच्चारपासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७५. जे भिक्खू सेयाययणंसि वा, पंकंसि वा, पणगंसि वा, उच्चारपासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।

७६. जे भिक्खू उंबरवच्चंसि वा, णग्गोहवच्चंसि वा, आसोत्थवच्चंसि वा, पिलक्खुवच्चंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७७. जे भिक्खू डागवच्चंसि वा, सागवच्चंसि वा, मूलगवच्चंसि वा, कोत्थुंबरिवच्चंसि वा, खारवच्चंसि वा, जीरयवच्चंसि वा, दमणगवच्चंसि वा, मरुगवच्चंसि वा, उच्चारपासवण, परिट्ठवेइ परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।

७८. जे भिक्खू इक्खुवणंसि वा, सालिवणंसि वा, कुसभवणंसि वा कप्पास-वणंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७९. जे भिक्खू असोगवणंसि वा, सत्तिवण्णवणंसि वा, चपगवणंसि वा, चूय— वणंसि वा, अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु, पत्तोववेएसु, पुप्फोववेएसु, फलोववेएसु, बीओववेएसु उच्चार—पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७१. जो भिक्षु घर मे, घर के "मुख" स्थान में, घर के प्रमुख द्वारा स्थान मे, घर के उपद्वार

स्थान मे, द्वार के मध्य के स्थान मे, घर के आगन मे, घर की परिशेष भूमि अर्थात् आसपास की खुली भूमि में उच्चार प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

७२ जो भिक्षु मृतकगृह में, मृतक की राख वाले स्थान मे, मृतक के स्तूप पर, मृतक के आश्रय-स्थान पर, मृतक के लयन में, मृतक की स्थल-भूमि अथवा श्मसान की चौतरफ की सीमा के स्थान मे उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

७३ जो भिक्षु कोयले बनाने के स्थान मे, सज्जीखार आदि बनाने के स्थान मे, पशुओ के डाम देने के स्थान मे, तुस जलाने के स्थान मे, भूसा जलाने के स्थान मे उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

७४ जो भिक्षु नवीन हल चलाई हुई भूमि मे या नवीन मिट्टी की खान मे, जहाँ लोग मल-मूत्रादि त्यागते हो या नही त्यागते हो, वहाँ उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

७५ जो भिक्षु कर्दमबहुल अल्प पानी के स्थान मे, कीचड के स्थान मे या फूलन युक्त स्थान मे उच्चार-प्रश्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

७६ जो भिक्षु गूलर, बड, पीपल व पीपली के फल सग्रह करने के स्थान पर उच्च-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

७७ जो भिक्षु पत्ते वाली भाजी, अन्य सब्जिया, मूलग, कोस्तुभ, वनस्पति, धना, जीरा, दमनक व मरुक वनस्पति विशेष के सग्रह स्थान या उत्पन्न होने की वाडियो मे उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

७८ जो भिक्षु इक्षु, चावल, (आदि धान्य) कुमभ व कपास के खेत मे उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

७९ जो भिक्षु अशोक वृक्षो के वन, शक्तिपर्ण (सप्तवर्ग) वृक्ष के वन, चपक वृक्षो के वन और आम्रवन या अन्य भी ऐसे वन, जो पत्र, पुष्प, फल, बीज आदि से युक्त हो, वहाँ उच्चार प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—उच्चार—बडी नीत, मल, अशुचि, सण्णा, वच्च, पासवण--लघुनीत, मूत्र, कायिकी, मुत्त, आदि इन पर्यायवाची शब्दो का प्रयोग किया जाता है ।

यहाँ पर बडी नीत की मुख्यता का प्रसग है और बडी नीत के साथ लघुनीत का आना प्राय निश्चित्त है अत "उच्चार-पासवण" उभय शब्द का एक साथ प्रयोग हुआ है । व्याख्याकार ने भी बड़ीनीत की मुख्यता से व्याख्य की है ।

१. **घर**—समुच्चय रूप से सभी विभाग व खुली जमीन युक्त घर ।

विशेष सभवित ६ स्थानो का तो अलग निर्देश किया ही है अत परिशेष कमरे, रसोई घर आदि "समुच्चय घर" मे समाविष्ट समझना ।

गृहमुख—घर के आगे चबूतरे (चौकी) या घिरा हुआ स्थल ।

घर का **प्रमुख द्वार**—बडी पोल, इसमे पोल जितनी चौडी व कुछ लबी जगह होती है ।

घर का उपद्वार—मुख्य द्वार-पोल से प्रवेश कर अदर चलने पर छोटा दरवाजा होता है ।

गृह-एलुका—दरवाजे मे दोनो तरफ ऊँची बनी हुई "साल" अर्थात् प्रमुख द्वार से प्रवेश करने पर दोनो ओर बना हुआ स्थल ।

गृह-आगन—घर के अदर, कमरो के बीच का चौक ।

गृह-वच्च—मकान के पीछे व आस पास की खुली भूमि या घर वालो के मलमूत्र त्यागने की भूमि ।

२ मृतक-गृह—श्मसान मे जलाने के पूर्व मृतक को रखे जाने का स्थान ।

मृतक क्षार—दाहक्रिया के बाद जहाँ राख पडी रहे वह स्थान । अर्थात् दाहक्रियास्थल ।

मृतक-स्तूप—स्मृति के लिये बना चबूतरा आदि ।

मृतक-आश्रय—श्मशान क्षेत्र मे प्रवेश करने से पूर्व मृतक को आश्रय देने का अर्थात् थोडी देर ठहराने का स्थान ।

मृतकलयन—दाहक्रिया स्थल पर स्मृति के लिये बना हुआ चैत्यालय या चबूतरा ।

मृतकस्थडिल—मृतक की जली हुई हड्डिया आदि डालने का स्थान ।

मृतकवच्च—श्मशान की अन्य खुली भूमि जो कभी किसी को जलाने या गाडने के उपयोग मे आ सकती है ।

३. **गायदाहंसी**—पशुओ के रोगोपशम के लिये जहाँ डाम देकर उपचार किया जाता है, ऐसा नियत स्थल ।

तुसदाहसि-भुसदाहसि-तुस—धान्य के ऊपर का छिल्का या तुस युक्त धान्य । भुस—धान्य के पूलो का सपूर्ण कचरा ।

इनको को जलाने के स्थान दो प्रकार के हो सकते है—

१ खेत के पास ही अनुपयोगी तुस-भुस को जलाने का स्थान ।

२ कु भकार आदि का तुस-भुस को इधन रूप मे जलाने का स्थान ।

निशीथ भाष्य मे तथा आचाराग सूत्र श्रु २, अ १० की चूर्णी मे इन दोनो शब्दो की व्याख्या नही है "इगालदाहसि, खारदाहसि तथा गातदाहसि" इन तीन शब्दो की व्याख्या है ।

ये दोनो शब्द आचाराग सूत्र मे नही हैं ।

निशीथ मे इन दोनो शब्दो के पाठातर रूप मे **"तुसठाणसि वा भुसठाणंसि वा"** ऐसा पाठ भी मिलता है । इनका अर्थ यह है कि खेत के पास इनके सग्रह करने या रखने के स्थान—"खलिहान" ।

इस प्रकार सूत्रोक्त पाचो स्थान जब रिक्त हो तो भी वहा मल-मूत्र का त्याग नही करना चाहिये ।

४. अभिणवियासु गोलेहणियासु—पृथ्वी की विराधना के प्रसग मे दशवै अ ४, मे "न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा" पाठ आता है । उसका अर्थ पृथ्वी मे खीला शस्त्र आदि से लकीर करना होता है । यहाँ 'गो' शब्द युक्त लिह शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ होता है कि—'बैल आदि के द्वारा हल से जोती हुई भूमि ।' वह भूमि नूतन तत्काल की हो अर्थात् १-२ दिन की हो तो सचित्त होती है । अत उसका वर्जन आवश्यक है । उस तत्काल की नूतन खुदी भूमि का गृहस्थ उपयोग ले रहे हो तो भी सचित्त होने से अकल्पनीय है और उसका उपयोग नही ले रहे हो तो भी अकल्पनीय है ।

वर्षा होने के कुछ समय पूर्व किसान भूमि पर हल चलाकर छोड देते है । वहाँ लोग शौच के लिये जाते हो या नही भी जाते हो किन्तु जब तक वह नवीन है सचितत्ता या मिश्रता की सभावना है तो वहाँ साधु को नही जाना चाहिये । जब अचित्त हो जाये तब वह नवीन नही कहलाती है ।

इस तरह अर्थ करने पर 'मट्टिया खाणी और गोलेहणिया' दोनो पदो का विषय समान हो जाता है जिसमे "अभिणवियासु" व "परिभुज्जमाण अपरिभुज्जमाण" ये विशेषण सार्थक एव सगत हो जाते है ।

५. कद्दमबहुल पाणीय—सेओभण्णति, तस्स आयतण—सेयायण ।।

कीचड अधिक हो पानी कम हो ऐसा स्थान "सेयायण" कहलाता है । वर्षा हो जाने पर इस प्रकार का कीचड हो जाता है, तथा वहाँ फूलण (कोई) भी आ जाती है । अत विराधना के कारण वहाँ पर परठने से प्रायश्चित्त आता है ।

६ बड, पीपल आदि कुछ फलो के सग्रहस्थानो का कथन सूत्र मे है इसी प्रकार अन्य भी फलसग्रह के स्थान समझ लेना चाहिये ।

७ सूत्र ७७-७८-७९ की व्याख्या चूर्णीकार ने नही की है । मात्र यह कह दिया है कि—'ये जनपद प्रसिद्ध शब्द है' ।

सूत्र ७१ से ७९ तक कथित स्थानो मे मल-मूत्र परठने पर दोष बताते हुए भाष्यकार ने बताया है कि गृह आदि के मालिक रुष्ट होकर तिरस्कार करते हुए अशुचि पर ही धक्का देकर गिरा सकते हैं या साधु पर अशुचि फेक सकते है । श्मसान आदि मे व्यतर देवता के कुपित होने की सभावना रहती है । सचित्त पृथ्वीकाय आदि के स्थानो मे जीव विराधना होती है ।

जीव विराधना के सिवाय अचित्त स्थानो मे जहाँ अन्य लोग साधारणतया शौचनिवृत्ति करते हो या जहाँ मालिक की आज्ञा हो वहाँ परठने पर प्रायश्चित्त नही आता है ।

सूत्र ७४ मे पृथ्वीकाय की विराधना, सूत्र ७५ मे अपकाय की विराधना, सूत्र—७२ मे देवछलना और शेष सूत्रो मे (७१, ७३, ७६, ७७, ७८, ७९) मे उसके स्वामी से तिरस्कार व अपवाद होने की सभावना रहती है ।

अविधि-परिष्ठापन प्रायश्चित्त—

८०. जे भिक्खू दिया वा राओ वा वियाले वा उच्चार-पासवणेण उब्बाहिज्जमाणे सपायं गहाय, परपायं वा जाइत्ता, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता अणुग्गए सूरिए एडेइ, एडतं वा साइज्जइ ।

त सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

जो भिक्षु दिन मे, रात्रि मे, या विकाल मे उच्चार—प्रस्रवण के वेग से बाधित होने पर अपना पात्र ग्रहण कर या अन्य भिक्षु का पात्र याचकर उसमे उच्चार—प्रस्रवण का त्याग करके जहा सूर्य का प्रकाश (ताप) नही पहुँचता है ऐसे स्थान मे परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

इन ८० सूत्रगत दोषस्थानो का सेवन करने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

विवेचन—"अणुग्गए सूरिए"—इसका सीधा अर्थ "सूर्योदय के पूर्व नही परठना" ऐसा भी किया जाता है किन्तु यह अर्थ आगमसम्मत नही होने से असगत है। उसके कारण इस प्रकार हैं—

सूत्र मे प्रयुक्त 'दिया वा' शब्द निरर्थक हो जाता है। क्योकि १ दिन मे जिसने मल त्याग किया है उसकी अपेक्षा से "अणुग्गए सूरिए" इस वाक्य की सगति नही हो सकती है ।

२ रात मे मल-मूत्र पडा रखने से सम्मूर्च्छिम जीवो की विराधना होती है और अशुचि के कारण अस्वाध्याय भी रहता है ।

३ रात्रि मे परठने का सर्वथा निषेध हो जाता है ।

४ उच्चार-प्रश्रवण भूमि का चौथे प्रहर मे किया गया प्रतिलेखन भी निरर्थक हो जाता है ।

५ अनेक आचार सूत्र गत निर्देशो से भी यह अर्थ विपरीत हो जाता है ।

अत "जहा पर सूर्य नही उगता" अर्थात् जहा पर दिन या रात मे कभी भी सूर्य का प्रकाश (ताप) नही पहुँचता है ऐसे छाया के स्थान मे परठने का यह प्रायश्चित्त सूत्र है, ऐसा समझना युक्ति-सगत है ।

उच्चार-प्रस्रवण को पात्र मे त्यागकर परठने की विधि का निर्देश आचाराग श्रु २, अ १० मे तथा इस सूत्र मे है। फिर भी अन्य आगम स्थलो का तथा इस विधान का सयुक्त तात्पर्य यह है कि—योग्य बाधा, योग्य समय व योग्य स्थडिल भूमि सुलभ हो तो स्थडिल भूमि मे जाकर ही मल—मूत्र त्यागना चाहिये। किन्तु दीर्घशका का तीव्र वेग हो या कुछ दूरी पर जाने आने योग्य समय न हो, यथा—सध्या काल या रात्रि हो, ग्रीष्म ऋतु का मध्याह्न हो या मल मूत्र त्यागने योग्य निर्दोष भूमि समीप मे न हो, इत्यादि कारणो से उपाश्रय मे ही जो एकान्त स्थान हो वहा जाकर पात्र मे मल त्याग करके योग्य स्थान मे परठा जा सकता है ।

सूत्र ७१ से ७९ तक अयोग्य स्थान मे परठने का प्रायश्चित्त कहा गया है जिसमे पृथ्वी, पानी की विराधना व देव छलना, स्वामी के प्रकोप लोक-अपवाद होने की सभावना रहती है। इस सूत्र ८० के अनुसार उपरोक्त अयोग्य स्थानो का वर्जन करने के साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि परठने के स्थान पर सूर्य की धूप आती है या नही, धूप न आती हो तो जल्दी नही सूखने से सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की उत्पत्ति होकर ज्यादा समय तक विराधना होती रहती है। इस हेतु से अविधि परिष्ठापन का सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा गया है ।

यदि किसी के अशुचि मे कृमियाँ आती हो तो छाया मे बैठना चाहिये या कुछ देर (१०-२० मिनट) बाद परिष्ठापन करना चाहिये ।

तृतीय उद्देशक का सारांश–

सूत्र १ धर्मशाला आदि स्थानो मे एक पुरुष से माग-माग कर याचना करना ।
सूत्र २ धर्मशाला आदि स्थानो मे अनेक पुरुषो से माग-माग कर याचना करना ।
सूत्र ३ धर्मशाला आदि स्थानो मे एक स्त्री से माग-माग कर याचना करना ।
सूत्र ४ धर्मशाला आदि स्थानो मे अनेक स्त्रियो से माग-माग कर याचना करना ।
सूत्र ५-८ धर्मशाला आदि स्थानो मे कौतुकवश माग-माग कर याचना करना ।
सूत्र ९-१२ धर्मशाला आदि स्थानो मे अदृष्ट स्थान से आहार लाकर देने पर एक बार निषेध करके पुन उसके पीछे-पीछे जाकर याचना करना ।
सूत्र १३ गृहस्वामी के मना करने पर भी पुन उसके घर आहार आदि लेने के लिये जाना ।
सूत्र १४ सामूहिक भोज (बडे जीमनवार) के स्थान पर आहार के लिये जाना ।
सूत्र १५ तीन गृह (कमरे) के अन्तर से अधिक दूर का लाया हुआ आहार लेना ।
सूत्र १६ पैरो का प्रमार्जन करना ।
सूत्र १७ पैरो का मर्दन करना ।
सूत्र १८ पैरो का अभ्यगन करना ।
सूत्र १९ पैरो का उबटन करना ।
सूत्र २० पैरो का प्रक्षालन करना ।
सूत्र २१ पैरो को रगना ।
सूत्र २२-२७ काया का प्रमार्जन आदि करना ।
सूत्र २८-३३ व्रण का प्रमार्जन आदि करना ।
सूत्र ३४ गडमाला आदि का छेदन करना ।
सूत्र ३५ गडमाला आदि का पीव व रक्त निकालना ।
सूत्र ३६ गडमाला आदि का प्रक्षालन करना ।
सूत्र ३७ गडमाला आदि पर विलेपन करना ।
सूत्र ३८ गडमाला आदि पर तैलादि का मलना ।
सूत्र ३९ गडमाला आदि पर सुगधित पदार्थ लगाना ।
सूत्र ४० गुदा के बाह्य भाग या भीतरी भाग के कृमि निकालना ।
सूत्र ४१ नख काटना ।
सूत्र ४२ जघा के बाल काटना ।
सूत्र ४३ गुह्य स्थान के बाल काटना ।
सूत्र ४४ रोमराजि के बाल काटना ।
सूत्र ४५ बगल—काँख के बाल काटना ।
सूत्र ४६ दाढी के बाल काटना
सूत्र ४७ मू छ के बाल काटना ।
सूत्र ४८-५० दातो को घिसना, धोना, रगना ।
सूत्र ५१-५६ होठो का प्रमार्जन आदि करना ।

सूत्र ५७ आखो के बाल काटना ।
सूत्र ५८-६३ आखो का प्रमार्जन आदि करना ।
सूत्र ६४ नाक के बाल काटना ।
सूत्र ६५ भौहो के बाल काटना ।
सूत्र ६६ मस्तक के बाल काटना ।
सूत्र ६७ शरीर पर जमा हुआ मैल हटाना ।
सूत्र ६८ आख-कान-दात और नखो का मैल निकालना ।
सूत्र ६९ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मस्तक ढॅकना ।
सूत्र ७० वशीकरण सूत्र बनाना ।
सूत्र ७१ घर के विभागो मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र ७२ श्मशान के विभागो मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र ७३ नवीन मिट्टी की खान आदि मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र ७४ कोयले बनाने आदि स्थानो मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र ७५ कीचड आदि के स्थानो मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र ७६ फल सग्रह करने के स्थानो मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र ७७ वनस्पति [सब्जी] के स्थानो मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र ७८ इक्षु, शालि आदि के वन मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र ७९ अशोक वृक्ष आदि के वन मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र ८० धूप न आने के स्थान मे मल-मूत्र त्यागना ।
इत्यादि प्रवृत्तियो का लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

इस उद्देशक के ६५ सूत्रों के विषय का कथन निम्न आगमो मे है यथा—

सूत्र १-८ माग-माग कर लेने का निषेध —आव अ ४
सूत्र १४ सखडी गमन निषेध —आचा श्रु २, अ १, उ २, ३
सूत्र १५ सामने लाया हुआ आहार आदि ग्रहण करना अनाचार है । —दश अ ३, गा ३
सूत्र १६-३९ शरीर परिकर्म निषध —दश अ ३, गा ३, ५, ९, ६, १४, १५
सूत्र ४१-४७ भिक्षु लम्बे नख और केश वाला होता है । —दश. अ ६, गा ६५
सूत्र ४८-६३ दन्तादि परिकर्म निषेध —दश अ ३, गा ३ तथा ९ १
सूत्र ६४-६६ रोम-केश परिकर्म निषेध —प्रश्न श्रु २, अ १, सु ४ दश अ ६, गा ६५
सूत्र ६७ जल्ल परीषह वर्णन मे पसीना निवारण निषेध —उत्त २, गा ३७
सूत्र ७२-७९ श्मशान आदि मे मल मूत्र त्यागने का निषेध —आचा श्रुत २, अ १०

इस उद्देशक के निम्न १५ सूत्रों के विषय का कथन अन्य आगमो मे नहीं है, यथा—

सूत्र ५-८ कौतूहल से याचना,
सूत्र ९-१२ अदृष्ट स्थान से लाये हुए आहार का निषेध करके पुन लेना,
सूत्र १३ मना किये जाने पर उस घर मे गोचरी जाना ।

सूत्र ४०   कृमि निकालना,
सूत्र ६८   आँख, कान, दाँत और नखो मे से मैल निकालना ।
सूत्र ६९   मस्तक ढँकना,
सूत्र ७०   वशीकरण सूत्र बनाना ।
सूत्र ७१   घर मे और घर के विभागो मे मलमूत्रादि परठना ।
सूत्र ८०   जहाँ सूर्य का ताप न हो ऐसे स्थान मे मल-मूत्र परठना ।

।। तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

□□

चतुर्थ उद्देशक

राजा आदि को अपने वश मे करने का प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू "राय" अत्तीकरेइ, अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ ।

२. जे भिक्खू "रायारक्खिय" अत्तीकरेइ, अत्तीकरेंत वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू "नगरारक्खिय" अत्तीकरेइ, अत्तीकरेंत वा साइज्जइ ।

४ जे भिक्खू "निगमारक्खिय" अत्तीकरेइ, अत्तीकरेंत वा साइज्जइ ।

५ जे भिक्खू "सव्वारक्खिय" अत्तीकरेइ, अत्तीकरेंत वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु राजा को वश मे करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२ जो भिक्षु राजा के अगरक्षक को वश मे करता है या वश मे करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३ जो भिक्षु नगररक्षक को वश मे करता है या वश मे करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४ जो भिक्षु निगमरक्षक को वश मे करता है या वश मे करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५ जो भिक्षु सर्वरक्षक को वश मे करता है या वश मे करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—अत्तीकरेइ—अपने अनुकूल बनाना या वश मे करना ।

वश मे करने के प्रशस्त और अप्रशस्त कारण तथा उपाय होते है, यहाँ प्रशस्त कारण से और प्रशस्त प्रयत्न से वश मे करने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त कहा गया है । शेष विवेचन भाष्य से जाने ।

राजा आदि के वश में करने से होने वाली हानियाँ बताते हुए भाष्य मे कहा गया है कि राजा तथा उसके स्वजन अनुकूल होने पर सयम-साधना मे बाधक बन सकते है और प्रतिकूल होने पर उपसर्ग भी कर सकते है ।

विशेष सकट आने पर सघ हित के लिए राजा आदि को यदि अनुकूल करना आवश्यक हो तो यह प्रशस्त कारण है तथा अपने सयम एव तपोबल से प्राप्त लब्धि द्वारा इन्हे वश मे करना प्रशस्त प्रयत्न है ।

झूठ कपट आदि पाप युक्त प्रवृत्तियो से इन्हे वश मे करना अप्रशस्त प्रयत्न है ।

किसी की प्रतिष्ठा बढाने के लिए या किसी का अहित करने के लिए या स्वार्थ से व
करना अप्रशस्त कारण है। इसका प्रायश्चित्त अधिक है।

सूयगडाँग सूत्र श्रु० १, अ० २, उ० २, गा० १८ मे भी यह बताया है कि—

"संसग्गि असाहु राईहि, असमाही उ तहागयस्स वि ।"

'सयम साधना मे लगे हुए साधक के लिए राजाओ का परिचय तथा उनकी सगति ठीक
है क्योकि इनका परिचय या सगति सयम मे असमाधि पैदा करने का कारण है।' अत साधक को
विशिष्ट व्यक्तियो के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क नही करना चाहिए।

धर्मश्रवण आदि के लिए राजा आदि स्वत आवे तो उन्हे धर्मानुरागी बनाने मे
दोष नही है।

राजा आदि की प्रशसा करने का प्रायश्चित्त—

६. जे भिक्खू "रायं" "अच्चीकरेइ" अच्चीकरेंत वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू "रायारक्खियं" अच्चीकरेइ, अच्चीकरेंत वा साइज्जइ ।

८. जे भिक्खू "नगरारक्खियं" अच्चीकरेइ, अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ ।

९. जे भिक्खू "निगमारक्खियं" अच्चीकरेइ, अच्चीकरेंत वा साइज्जइ ।

१०. जे भिक्खू "सव्वारक्खियं" अच्चीकरेइ, अच्चीकरेंत वा साइज्जइ ।

६. जो भिक्षु राजा की प्रशसा—गुण-कीर्तन करता है या करने वाले का अनुमे
करता है।

७. जो भिक्षु राजा के अगरक्षक की प्रशसा—गुणकीर्तन करता है या करने वाले
अनुमोदन करता है।

८ जो भिक्षु नगररक्षक की प्रशसा—गुणकीर्तन करता है या करने वाले का अनुम
करता है।

९ जो भिक्षु निगमरक्षक की प्रशसा—गुणकीर्तन करता है या करने वाले का अनुम
करता है।

१० जो भिक्षु सर्वरक्षक की प्रशसा—गुणकीर्तन करता है या करने वाले का अनुम
करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—अच्चीकरेइ—राजा के सामने या पीछे उसके वीरता आदि गुणो की प्रशसा कर
ये सूत्र अत्तीकरेइ सूत्रो से सम्बन्धित है। अर्थात् वश मे करने के एक तरीके का कथन इस सू
हुआ है। वस्तुत किसी भी व्यक्ति को अपना बनाने का सबसे सरल तरीका यह है कि उसके स
या पीछे उसकी प्रशसा की जाय। अत ये "अच्चीकरेइ के प्रायश्चित्त सूत्र भी" अत्तीकरेइ सू
पूरक है, ऐसा समझना चाहिए।

राजा आदि को आकर्षित करने का प्रायश्चित्त—

११. जे भिक्खू "रायं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ ।

१२. जे भिक्खू "रायारक्खियं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ ।

१३. जे भिक्खू "नगरारक्खियं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ ।

१४. जे भिक्खू "निगमारक्खियं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ ।

१५. जे भिक्खू "सव्वारक्खियं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ ।

११ जो भिक्षु राजा को अपना अर्थी बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१२ जो भिक्षु राजा के अगरक्षक को अपना अर्थी बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१३ जो भिक्षु नगररक्षक को अपना अर्थी बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१४ जो भिक्षु निगमरक्षक को अपना अर्थी बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१५ जो भिक्षु सर्वरक्षक को अपना अर्थी बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—अत्थीकरेइ के तीन अर्थ किये गये है—

१ साधु राजा की प्रार्थना करे,

२ साधु ऐसे कार्य करे जिससे राजा साधु की प्रार्थना करे,

३ राजा का कोई कार्य सिद्ध कर दे । ये अर्थीकरण के प्रकार है । अथवा राजा को कहे कि "मेरे पास ऐसी विद्याए है, निमित्तज्ञान है या विशिष्ट अवधि आदि ज्ञान है । ये सब राजा को अर्थी (आकर्षित) करने के उपाय है ।

अर्थीकरण भी अत्तीकरण का ही एक प्रकार है । अत अच्चीकरण के सूत्रो के समान अर्थीकरण के सूत्र भी अत्तीकरण के ही पूरक है, ऐसा समझना चाहिए ।

अर्थीकरण के तीन अर्थो मे से प्रथम अर्थ की अपेक्षा पीछे के दोनो अर्थ विशेष सगत प्रतीत होते है । पहला अर्थ है राजा की प्रार्थना करना, उसका भावार्थ तो "अच्चीकरेइ" के सूत्रो मे समाविष्ट है तथा अपने तपोबल से प्राप्त लब्धि द्वारा राजा को वश मे करना अर्थात् अपनी तरफ आकृष्ट करना यह अर्थ प्रसग सगत होता है । अत. "अत्थीकरेइ" का अर्थ हुआ कि इनको अपनी ओर आकृष्ट करना ।

इस प्रकार इन सभी (१५) सूत्रो का सक्षिप्त सार यह है कि राजा आदि को अपना बनाने की कोई प्रवृत्ति नही करना चाहिए । शेष शब्दो की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

१ **रायारक्खियं**—रायाण जो रक्खति सो रायरक्खिओ-सिरोरक्ष —राजा का अगरक्षक ।

२ **नगरारक्खियं**—नगर रक्खति जो सो नगररक्खिओ-कोट्टपाल —कोतवाल ।

३ **निगमारक्खियं**—सव्वपगइओ जो रक्खइ सो निगमरक्खिओ-सेट्ठी—नगरसेठ ।

४ **सव्वारक्खियं**—एताणि सव्वाणि जो रक्खइ सो सव्वारक्खिओ—एतेषु सर्वकार्येषु आपृच्छनीय स च महाबलाधिक इत्यर्थ —सभी कार्यो मे सलाहकार ।

ग्राम-रक्षक आदि को अपने वश में करने का प्रायश्चित्त—

१६. जे भिक्खू "गामारक्खिय" अत्तीकरेइ, अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ ।

१७. जे भिक्खू "देसारक्खियं" अत्तीकरेइ, अत्तीकरेत वा साइज्जइ ।

१८. जे भिक्खू "सीमारक्खिय" अत्तीकरेइ, अत्तीकरेत वा साइज्जइ ।

१९. जे भिक्खू "रण्णारक्खियं" अत्तीकरेइ अत्तीकरेत वा साइज्जइ ।

२०. जे भिक्खू "सव्वारक्खियं" अत्तीकरेइ, अत्तीकरेत वा साइज्जइ ।

१६ जो भिक्षु ग्रामरक्षक को अपने वश मे करता है या वश मे करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१७ जो भिक्षु देशरक्षक को अपने वश मे करता है या वश मे करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१८ जो भिक्षु सीमारक्षक को अपने वश मे करता है या वश मे करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१९ जो भिक्षु राजरक्षक को अपने वश मे करता है या वश मे करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२०. जो भिक्षु सर्वरक्षक को अपने वश मे करता है या वश मे करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

ग्रामरक्षक आदि की प्रशंसा करने का प्रायश्चित्त–

२१. जे भिक्खू "गामारक्खियं" अच्चीकरेइ अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ ।

२२. जे भिक्खू "देसारक्खिय" अच्चीकरेइ अच्चीकरेत वा साइज्जइ ।

२३. जे भिक्खू "सीमारक्खियं" अच्चीकरेइ अच्चीकरेंत वा साइज्जइ ।

२४. जे भिक्खू "रण्णारक्खियं" अच्चीकरेइ अच्चीकरेत वा साइज्जइ ।

२५. जे भिक्खू "सव्वारक्खियं" अच्चीकरेइ अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ ।

२१ जो भिक्षु ग्रामरक्षक की प्रशसा –गुणकीर्तन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२ जो भिक्षु देशरक्षक की प्रशसा—गुणकीर्तन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३ जो भिक्षु सीमारक्षक की प्रशसा—गुणकीर्तन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४ जो भिक्षु राजरक्षक की प्रशसा—गुणकीर्तन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५ जो भिक्षु सर्वरक्षक की प्रशसा—गुणकीर्तन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

ग्रामरक्षक आदि को आकर्षित करने का प्रायश्चित्त–

२६ जे भिक्खू "गामारक्खियं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

२७. जे भिक्खू "देसारक्खियं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

२८. जे भिक्खू "सीमारक्खियं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

२९. जे भिक्खू "रण्णारक्खियं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

३०. जे भिक्खू "सव्वारक्खियं" अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

२६ जो भिक्षु ग्रामरक्षक को अपनी तरफ आकृष्ट करता है या आकृष्ट करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७ जो भिक्षु देशरक्षक को अपनी तरफ आकृष्ट करता है या आकृष्ट करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८ जो भिक्षु सीमारक्षक को अपनी तरफ आकृष्ट करता है या आकृष्ट करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९ जो भिक्षु राजरक्षक को अपनी तरफ आकृष्ट करता है या आकृष्ट करने वाले का अनुमोदन करता है।

३० जो भिक्षु सर्वरक्षक को अपनी तरफ आकृष्ट करता है या आकृष्ट करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—इन सूत्रो के विषय का भाष्य चूर्णी मे सकेत मात्र है, यथा—

चूर्णी—एव पण्णरस्स सुत्ता उच्चारेयव्वा। अर्थ. पूर्ववत्।

भाष्यगाथा—अत्तीकरणादीसु, रायादीण तु जो गमो भणिओ।

सौ चेव निरवसेसो, गामादारक्खिमादीसु १८५४ ॥

१ ग्रामरक्षक—गाव की देख-रेख करने वाले -सरपच आदि ।

२ देशरक्षक—विभाग विशेष यथा—जिला आदि के रक्षक—जिलाधीश आदि अथवा चोर आदि से देश की रक्षा करने वाले ।

३ सीमारक्षक—राज्य की सीमा-किनारे के विभागो की रक्षा - देख-रेख करने वाले ।

४. रण्णारक्षक—राज्य की रक्षा करने वाले राज्यपाल आदि ।

५ सव्वारक्षक—इन सभी क्षेत्रो मे आपृच्छनीय—प्रधानवत् ।

पूर्व के १५ सूत्र राजा और राजधानी सबधी हैं और ये १५ सूत्र सपूर्ण राज्य की अपेक्षा वाले हैं। इन १५—१५ सूत्रो के अलग-अलग दो विभाग करने का यही करण है। "सर्वरक्षक" दोनो विभागो में कहा गया है। १—प्रथम विभाग के सभी कार्यों में सलाह लेने योग्य २—द्वितीय विभाग के सभी कार्यों मे अनुमति लेने योग्य, ऐसा अर्थ समझ लेने से दोनो की भिन्नता समझ मे आ जाती है।

इन सूत्रो की सख्या में व क्रम मे अनेक प्रतियो मे भिन्नता है, वह सख्या २४, २७, ३०, ४० आदि हैं। क्रम कही एक साथ ४०, कही एक साथ २४, कही उद्देशक की आदि मे कुछ सूत्र है व कुछ उद्देशक के बीच मे आये है। कही ५ या ६ अत्तीकरेइ के सूत्र है तो कही केवल राजा सबधी तीन सूत्र देकर उसके बाद राजारक्षक के तीन सूत्र दिए है। इस तरह अनेक क्रम है। ये विभिन्नताए लिपिको के प्रमाद से हुई है, किसी प्रकार का अनौचित्य न होने से एक साथ ३० सूत्र वाला पाठ यहाँ लिया गया है और क्रम एव सख्या चूर्णी और भाष्य के अनुसार दी गई है।

तेरापथी महासभा से प्रकाशित "निसीहज्झयण" मे १५-१५ सूत्रो के दो विभाग किये है और द्वितीय विभाग के लिए टिप्पण दिया है—

"एतानि सूत्राणि उद्देशकादिसूत्रेभ्य किमर्थ पृथक्कृतानि इति न चर्चितमस्ति भाष्य-चूर्ण्यादौ"—पृष्ठ २८ ॥

कृत्स्न धान्य खाने का प्रायश्चित्त—

३१. जे भिक्खू "कसिणाओ" ओसहिओ आहारेइ, आहारतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु "कृत्स्न" औषधियो (सचित्त धान्य आदि) का आहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—"कसिण"—द्रव्यकृत्स्न और भावकृत्स्न इन दो भेदो के चार भाग होते है। द्रव्यकृत्स्न का अर्थ है अखड और भावकृत्स्न का अर्थ है सचित्त। यहाँ प्रायश्चित्त का विषय है इसलिए "भावकृत्स्न" (सचित्त) अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये।

"ओसहिओ"—धान्य और उपलक्षण से अन्य प्रत्येक जीव वाले बीजो को ग्रहण करना चाहिये।

अत सूत्र का अर्थ यह है कि सचित्त धान्य एवं बीज का आहार करने से लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

द्रव्य और भाव की चौभगी मे सचित्त सबधी प्रथम और द्वितीय दो भग है उनका ही यह प्रायश्चित्त है, अचित्त सबधी दो भगो मे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही है।

व्याख्याकार ने "अचित्त अखड" मे भी प्रायश्चित्त कहा है किन्तु सूत्रकार का आशय यह नही हो सकता। इसके लिए निम्न स्थल देखने चाहिये—

१. अदु जावइत्थ लूहेण, आयणं मंथुकुम्मासेणं। आ सु १, अ ९, उ ४, गा ४

२. अवि सूइयं व सुक्कं वा, सीयपिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु बुक्कसं व पुलाग वा, लद्धे पिडे अलद्धे दविए॥ आ. सु १, अ ९, उ ४, गा १३

३. आयामगं चेव जवोदणं च, सीयं सोवीर-जवोदगं च। उत्त अ १५, गा १३

४. पताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिड पुराणकुम्मास।
अदु बुक्कस पुलाग वा, जवणट्ठाए णिसेवए मंथु॥ उत्त अ ८, गा १२

५. दशवै. अ. ५. उ १, गा. ९८ मे 'मंथुकुम्मासभोयणं'।

उपरोक्त स्थलो से स्पष्ट सिद्ध है कि भगवान् महावीर स्वामी ने अचित्त अखड धान्य—चावल, उडद आदि का आहार किया था तथा उत्तराध्ययन सूत्र मे "जव" के ओदन का व उडद के बाकले आदि के सेवन का कथन है। वर्तमान मे भी चावल, बाजरा, जौ आदि का ओदन व अखड मूग, चणा आदि का व्यजन होता है।

अत अचित्त अखड धान्यादि खाने का प्रायश्चित्त न समझ कर सचित्त धान्य बीज के आहार का प्रायश्चित्त है यह समझना ही आगमसम्मत है।

सचित धान्य जानकर खाने का प्रायश्चित्त और अनजाने मे खाने का प्रायश्चित्त भिन्न-भिन्न होता है। उसे प्रथम उद्देशक के प्रारभ मे दी गई प्रायश्चित्त-तालिका से समझ लेना चाहिये।

आज्ञा लिए बिना विगय खाने का प्रायश्चित्त—

३२. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झाएहिं अविदिण्णं अण्णयरं विगइ आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु आचार्य या उपाध्याय की विशेष आज्ञा के बिना किसी भी विगय का आहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—**१. आयरिय-उवज्झाय**—आचार्य विद्यमान हो तो उनकी अन्यथा उपाध्याय की और उपलक्षण से जिस प्रमुख या स्थविर की अधीनता मे या सान्निध्य मे रहकर विचरण कर रहा हो उसी की आज्ञा लेनी चाहिये।

२. **अविदिण्ण**—साधु गोचरी के लिये तो आज्ञा लेकर जाता ही है। किन्तु उस आज्ञा से तो विगय रहित आहार ही ग्रहण कर सकता है। यदि विगय—घी, दूध लेना आवश्यक हो तो विशेष स्पष्ट कहकर आज्ञा लेनी चाहिये।

सामान्य विधान के अनुसार साधु विगयरहित आहार ही ले सकता है। विशेष कारण से विगययुक्त आहार लेना आवश्यक हो तो आचार्य की आज्ञा प्राप्त किये बिना विगय नही ले सकता

है। वे भी आवश्यकता का औचित्य समझकर और परिमाण का निर्णय करके विगय सेवन की आज्ञा देते है। आचार्य की अनुपस्थिति मे उपाध्याय की भी आज्ञा ले सकते है। क्योकि ये दोनो पदवीधर गीतार्थ ही होते है। इन दोनो की अनुपस्थिति मे जो प्रमुख गीतार्थ हो उसकी भी आज्ञा ले सकते है। गीतार्थ की अधीनता या सान्निध्य के बिना किसी भी साधु को विचरण करना भी नही कल्पता है।

३. **अण्णयरं विगइ**—पाच विगय मे से कोई भी विगय।

पाच विगय निम्न है - १ दूध, २. दही, ३ घृत, ४ तैल और ५ गुड-शक्कर।

ठाणाग सूत्र के नवमे ठाणे मे ९ विगय कहे है और उनमे से चार विगयों को चौथे ठाणे मे महाविगय कहा है। अत अर्थापत्ति से शेष ५ ही विगय कही जाती है। चार महाविगय हे—

१ मक्खन, २ मधु, ३ मद्य, ४ मास। इनमे से दो मद्य-मास अप्रशस्त महाविगय तो साधक के लिए सर्वथा वर्ज्य हे, क्योंकि मद्य-मास के आहार को ठाणाग सूत्र के चौथे ठाणे मे नरक गति का कारण कहा गया हैं।

दशवै चू २, गा ७ मे साधु को "अमज्जमसासि" कहा है। अर्थात् साधु मद्य मास का आहार नही करने वाला होता है।

साधारणतया पाच विगयो का सेवन वर्ज्य है तो महाविगय के सेवन का तो प्रश्न ही नही रहता। फिर भी मधु, मक्खन महाविगय सर्वथा अग्राह्य नही है।

अनिवार्य आवश्यकता होने पर ही आज्ञा लेकर पाचो विगयो का सेवन किया जा सकता है और दो प्रशस्त महाविगयो का सेवन रोगातक आदि के बिना नही किया जा सकता हे। आगमो मे विगयनिषेध के निम्न पाठ है—

१. **लूहवित्ती सुसतुट्ठे।** —दशवै अ ८, गा २५

२. **पणीयरसभोयणं विस तालउड जहा।** दशवै अ ८, गा ५७

३. **पंताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिडपुराणकुम्मास।**
अदु बुक्कसं पुलाग वा, जवणट्ठाए निसेवए मंथु। --उत्तरा अ ८, गाथा १२

४. **णो हीलए पिडं नीरसं तु, पंतकुलाइ परिव्वए स भिक्खू।** —उत्तरा अ १५, गा १३

५. **पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढण।**
बंभचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए। उत्तरा अ १६ गा ७

६. **दुद्ध दही विगइओ, आहारेइ अभिक्खण।**
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चइ। —उत्तरा अ १७, गा १५

७. **अभिक्खणं णिव्विगइं गया य।** – दश चू २ गा ७

८. **रसा पगामं न निसेवियव्वा, पाय रसा दित्तिकरा णराणं।** —उत्तरा अ ३२, गा १०

९. **विगई णिज्जूहणं करे।** —उत्तरा अ ३६, गा २५५

१०. **तओ नो कप्पति वाइत्तए-अविणीए,**
विगइपडिबद्धे, अविओसविअ पाहुडे। —बृहत् उ ४

११. पंच ठाणाइं समणेण भगवया महावीरेण समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णियाइं, णिच्चं कित्तियाइं, णिच्चं बुइयाइं, णिच्चं पसत्थाइं, णिच्चं अब्भणुण्णायाइं भवंति ।

तं जहा—१. अरसाहारे, २. विरसाहारे, ३. अंताहारे, ४. पंताहारे, ५. लूहाहारे ।

—ठाण अ ५

इस सूत्र के पूर्व कई प्रतियो मे अदत्त आहार लेने के प्रायश्चित्त का एक सूत्र है जो भाष्य और चूर्णिव्याख्या के बाद लिपिदोष या अन्य किसी प्रकार से आ गया है। तेरापथ महासभा से प्रकाशित "निसीहज्झयण" मे भी यह सूत्र नही लिया गया है।

स्थापनाकुल की जानकारी किये बिना भिक्षार्थ प्रवेश करने पर प्रायश्चित्त–

३३. जे भिक्खू 'ठवणाकुलाइं' अजाणिय, अपुच्छिय, अगवेसिय, पुव्वामेव गाहावइ कुलं पिंडवाय पडियाए अणुप्पविसइ, अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु "स्थापनाकुलो" की जानकारी किये बिना, पूछे बिना या गवेषणा किये बिना ही आहार के लिये गृहस्थ के घरो मे प्रवेश करता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन "स्थापनाकुल" भिक्षा के लिये नही जाने योग्य कुल। वे कुल कई प्रकार के होते है

१ अत्यन्त द्वेषी कुल सर्वथा त्याज्य होते है।

२ अत्यन्त अनुराग वाले कुल,

३. उपाश्रय के निकट रहने वाले कुल,

४ बहुमूल्य पदार्थ या विशिष्ट औषधिया की उपलब्धि वाले कुल साधारण साधुओ के लिये वर्ज्य होते है। बाल, ग्लान, वृद्ध, आचार्य, अतिथि आदि के लिये आवश्यक होने पर विशिष्ट अनुभवी गीतार्थ साधु ही इन घरो मे भिक्षा के लिये जा सकते है।

विशाल साधुसमूह के साथ-साथ विचरण करते समय या वृद्धावास मे रहे हुए साधुओ मे से पृथक्-पृथक् गोचरी लाने वालो की अपेक्षा से यह कथन है।

अजाणिय अपुच्छिय अगवेसिय –बिना पूछे स्वत ही किसी के कह देने से या प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान से "जानकारी" होती है। जानकारी न हो तो पूछकर जानकारी करना चाहिये। नाम गोत्र जाति आदि पूछना "पृच्छा" कही जाती है। चिह्नो मे या सकेतो से घर का ठिकाना समझना— "गवेषणा" कही जाती है।

अथवा पूर्व परिचित के लिये "पृच्छा" होती है और अपरिचित की अपेक्षा "पृच्छा युक्त गवेषणा" होती है।

जानकारी किये बिना गोचरी के लिये जाने पर स्थापनाकुलो मे जाने की संभावना रहती है, जिससे अव्यवस्था और अदत्त दोष के साथ आवश्यकता के समय विशिष्ट पदार्थ की प्राप्ति दुर्लभ हो सकती है।

व्याख्या मे लौकिक वर्ज्य कुल और शय्यातर कुल का भी वर्णन है किन्तु उनका प्रायश्चित्त अन्यत्र कहा गया है ।

अतः यहा अनिवार्य आवश्यकता के समय मे भिक्षार्थ जाने के लिये स्थविरो के द्वारा स्थापित कुलो को ही स्थापनाकुल समझना चाहिये ।

साध्वी के उपाश्रय में अविधि से प्रवेश करने पर प्रायश्चित्त—

३४. जे भिक्खू णिग्गंथीण उवस्सयंसि अविहीए अणुप्पविसइ, अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ ।

३४. जो भिक्षु निर्ग्रन्थियो के उपाश्रय मे अविधि से प्रवेश करता है या अविधि से प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—साध्वी के उपाश्रय मे साधु किन-किन कारणो से जा सकता है, भाष्यकार ने इसका वर्णन किया है तथा अविधि से प्रवेश करने पर अनेक दोषो की सभावनाए कही है ।

"अविधि" प्रवेश करने मे पूर्व सूचना दिये बिना प्रवेश करना अर्थात् मौन रहकर प्रवेश करना अविधि-प्रवेश कहलाता है ।

साध्वी के उपाश्रय के बाहर अर्थात् मुख्य प्रवेशद्वार के बाहर ठहर कर सबोधन के शब्दो से अपने आने की सूचना देना और साध्वियो को जानकारी हो जाने के कुछ समय बाद प्रवेश करना अथवा सूचना देने के बाद साध्वियो के सावधान हो जाने पर किसी साध्वी के द्वारा "पधारो" इस तरह सकेत रूप शब्द के कहने पर प्रवेश करना "विधि-प्रवेश" कहलाता है ।

प्रवेश करते समय "णिसीहि" शब्दोचारण करने की व्याख्या भी मिलती है किन्तु यह व्याख्या उपयुक्त नही लगती, क्योकि उपाश्रय मे प्रवेश करते समय प्रत्येक साध्वी के इस शब्द का उच्चारण करने की विधि होती है अत साधु के प्रवेश करने का योग्य भिन्न शब्द सकेत रूप होना चाहिये अथवा श्रावक या श्राविका के द्वारा सूचना करवा देने के बाद प्रवेश करना चाहिये ।

तात्पर्य यह है कि साधु के प्रवेश की जानकारी साध्वी को हो जानी चाहिए । आगमोक्त कारण बिना प्रवेश करना भी अविधि-प्रवेश ही है । विशेष जानकारी के लिए भाष्य का अध्ययन करना चाहिए ।

साध्वी के आगमन-पथ मे उपकरण रखने का प्रायश्चित्त—

३५. जे भिक्खू णिग्गथीणं आगमणपहंसि, दंडगं वा, लट्ठियं वा, रयहरणं वा, मुहपोत्तियं वा अण्णयरं वा उवगरणजाय ठवेइ, ठवेंत वा साइज्जइ ।

३५ जो भिक्षु साध्वी के आने के मार्ग मे दड, लाठी, रजोहरण या मुखवस्त्रिका आदि कोई भी उपकरण रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—जब साधुओं के उपाश्रय मे साध्वियो के आने का समय हो उस समय उनके आने के मार्ग मे कोई उपकरण नही रखना चाहिए । रास्ते के सिवाय आचार्य आदि के पास पहुँचने तक का

स्थान भी यहाँ मार्ग ही समझ लेना चाहिए। अविवेक या कुतूहल से मार्ग मे उपकरण रखने पर यह प्रायश्चित्त आता है।

आचार्यादि के सन्मुख बैठते समय आहार दिखाते समय या अन्य कार्य करते समय असावधानी से मार्ग में उपकरण रखना अविवेक से रखना कहा जाता है।

अन्य मीलिन विचारो से रखने पर गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

नया कलह करने का प्रायश्चित्त—

३६. जे भिक्खू णवाइ अणुप्पण्णाइं अहिगरणाइ उप्पाएइ, उप्पाएत वा साइज्जइ।

३६ जो भिक्षु नये-नये झगडे उत्पन्न करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—उग्र प्रकृति से अतिवाचालता से या निरर्थक भाषण से कलह होते है। हास्य या कुतूहल से भी कलह हो सकता है। अत साधु को विवेक रखना चाहिए।

सूयगडाग सूत्र अ० २, उ० २, गा० १९ मे शिक्षा देते हुए कहा गया है कि—

"अहिगरणकडस्स भिक्खुणो, वयमाणस्स पसज्झ दारुणं।
अट्ठे परिहाई बहु, अहिगरण न करेज्ज पडिए॥"

क्लेश करने से सयम की अत्यधिक हानि होती है, कटुक वचन कहने से आपस मे असमाधि व अशाति की वृद्धि हो जाती है। अत साधु अधिकरण से व अधिकरण की उत्पत्ति के कारणो से सदा दूर रहे।

उपशात कलह को उभारने का प्रायश्चित्त—

३७. जे भिक्खू पोराणाइ अहिगरणाइं खामिय विओसमियाइ पुणो उदीरेइ उदीरेंत वा साइज्जइ।

३७ जो भिक्षु क्षमायाचना से उपशात पुराने झगडो को पुन उत्पन्न करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—१ **खामिय**—**"खामिय-वायाए"**—विधिपूर्वक वचन से क्षमायाचना करना।

२ **विओसमिय**—**"मणसा विओसमिय व्युत्सृष्ट"**—चूर्णी। मन से कलह हटा देना, त्याग देना, उपशात कर देना।

जिस व्यक्ति से या जिस प्रसग के निमित्त से क्लेश उत्पन्न हुआ हो या हो सकता हो उसके लिए पूर्ण विवेक रखना चाहिए। यथासभव अपनी प्रकृति को शात रखना चाहिए, अन्यथा उन विषयो से या उन प्रसगो से अलग रहना चाहिए। विवेक रखते हुए भी क्लेश होने की सभावना रहे तो उस व्यक्ति के सम्पर्क से ही अलग रहना चाहिए। अपने कर्मोदय के प्रभाव को एव व्यक्तिविशेष की प्रकृति को या उदयभाव को समझ कर यथावसर विवेक करना चाहिए।

हास्य-प्रायश्चित्त—

३८. जे भिक्खू मुहं विप्फालिय-विप्फालिय हसइ, हसंत वा साइज्जइ ।

३८ जो भिक्षु मुँह, फाड-फाड कर हँसता है या हँसने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—मुँह को अधिक खोल कर या विकृत कर अमर्यादित हँसने का यहाँ प्रायश्चित्त कहा गया है । दशवैकालिक सूत्र मे कहा गया है कि आपस मे बाते करने व हँसी ठट्ठा करने मे समय खर्च न करते हुए साधु को सदा स्वाध्याय ज्ञान ध्यान में लीन रहना चाहिए ।

यथा— **"णिद्दं च ण बहु मणेज्जा, सप्पहासं विवज्जए ।**
मिहो कहाहि न रमे, सज्झायम्मि रओ सया ।।"

— दशवै० अ० ८, गा० ४२

आचाराग सूत्र मे कहा है कि "हास्य का त्याग करने वाला भिक्षु है, अत साधु को हास्य करने वाला नही होना चाहिए ।" यथा—

"हासं परिजाणइ से णिग्गथे, णो हासणए सिया ।

—आचा० श्रु० २, अ० १६

साधु को कुतूहल वृत्ति रहित एव गम्भीर स्वभाव वाला होना चाहिए और कुतूहलवृत्ति वाले की सगति भी नही करनी चाहिए ।

इस तरह का हँसना मोह का कारण होता है अथवा दूसरो को हँसी उत्पन्न कराने वाला होता है । लोकनिदा भी होती है । वायुकाय की तथा सपातिम जीवो की विराधना भी होती है । दूसरे के अपमान, रोष या वैर का उत्पादक भी हो सकता है । भाष्यकार ने यहाँ एक दृष्टात दिया है—

"एक राजा रानी ने साथ झरोखे मे बैठा था । उसे राजपथ की ओर देखते हुए रानी ने कहा —"मृत मनुष्य हस रहा है ।" राजा के पूछने पर रानी ने साधु की तरफ इशारा किया और स्पष्टीकरण किया कि इहलौकिक सपूर्ण सुखो का त्याग कर देने से यह मृतक के समान है, फिर भी हस रहा है ।" अत साधु को मर्यादित मुस्कराने के अतिरिक्त हा-हा करते हुए नही हसना चाहिये ।

पार्श्वस्थ आदि को संघाटक के आदान-प्रदान का प्रायश्चित्त—

३९ जे भिक्खू 'पासत्थस्स' सघाडय देइ, देंत वा साइज्जइ ।

४०. जे भिक्खू 'पासत्थस्स' संघाडयं पडिच्छइ, पडिच्छत वा साइज्जइ ।

४१. जे भिक्खू 'ओसण्णस्स' संघाडयं देइ, देंत वा साइज्जइ ।

४२. जे भिक्खू 'ओसण्णस्स' संघाडयं पडिच्छइ, पडिच्छतं वा साइज्जइ ।

४३ जे भिक्खू 'कुसीलस्स' संघाडयं देइ, देंतं वा साइज्जइ ।

४४. जे भिक्खू 'कुसीलस्स' संघाडयं पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

४५. जे भिक्खू 'ससत्तस्स' संघाडयं देइ, देंतं वा साइज्जइ।

४६. जे भिक्खू 'ससत्तस्स' संघाडयं पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

४७. जे भिक्खू 'नितियस्स' संघाडयं देइ, देंतं वा साइज्जइ।

४८. जे भिक्खू 'नितियस्स' संघाडयं पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

३९. जो भिक्षु 'पार्श्वस्थ' को संघाडा देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जो भिक्षु 'पार्श्वस्थ' से संघाडा ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जो भिक्षु 'अवसन्न' को संघाडा देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

४२. जो भिक्षु 'अवसन्न' से संघाडा ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४३. जो भिक्षु 'कुशील' को संघाडा देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

४४. जो भिक्षु 'कुशील' से संघाडा ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४५. जो भिक्षु 'संसक्त' को संघाडा देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जो भिक्षु 'संसक्त' से संघाडा ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७. जो भिक्षु 'नित्यक' को संघाडा देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जो भिक्षु 'नित्यक' से संघाडा ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—'संघाडय'—दो या दो से अधिक साधुओं का समूह 'संघाटक' (संघाडा) कहलाता है तथा अनेक संघाटको के समूह को गण या गच्छ कहा जाता है। आगम में कहीं कहीं संघाटक के लिये भी गण शब्द का प्रयोग किया गया है।

संघाटक रूप में विचरने के लिये किसी को एक साधु देना भी संघाडा देना कहलाता है।

इन सूत्रों में पासत्था आदि को विचरने के लिये अपना साधु देने का अर्थात् संघाडा देने का प्रायश्चित्त कहा गया है।

पासत्था आदि के साथ में रहने में तथा गोचरी जाने के समय साथ-साथ जाने से आचार-भेद अथवा गवेषणाभेद के कारण क्लेश पैदा होने की सम्भावना रहती है अथवा धर्म में भिन्नता दिखने से जिनशासन की अनेक प्रकार से अवहेलना भी हो सकती है तथा उस पासत्था आदि की

अशुद्ध गवेषणा व आचार का अनुमोदन तथा तन्निमित्तक कर्मबध का कारण भी होना है। अत इनको सघाडा अर्थात् एक साधु या अनेक साधु देना या उनमे साधु लेना नही कल्पता है।

तात्पर्य यह है कि बाह्य व्यवहार मे जो समान आचार विचार वाले है, उनके ही साथ रहने से सयमसाधना शातिपूर्वक सम्पन्न हो सकती है और व्यवहार भी शुद्ध रहता है।

पासत्था आदि का स्वरूप—

१. पासत्थो-पार्श्वस्थः--

प्रत्येक पदार्थ के दो पार्श्व भाग होते है—एक सुल्टा, दूसरा उल्टा। उद्यत विहार सयमी जीवन का सुल्टा पार्श्वभाग है और शिथिलाचार रूप असयमी जीवन सयमी जीवन का उल्टा पार्श्वभाग है।

दसण-णाणचरित्ते, तवे य अत्ताहितो पवयणे य।
तेसि पासविहारी, पासत्थ त वियाणाहि ॥ ४३४ ॥

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और प्रवचन मे जिन्होने अपनी आत्मा को स्थापित किया है ऐसे उद्यत विहारियो का जो पार्श्वविहारी है अर्थात् उनके समान आचार पालन नही करता है उसे पार्श्वस्थ जानना चाहिये।

पासोत्ति बधण तिय, एगट्ठ बधहेतवो पासा।
पासत्थिय पासत्था, एसो अण्णोवि पज्जाओ ॥ ४३४३ ॥

पाश और बधन ये दोनो एकार्थक है। बधन के जितने हेतु है वे सब पाश है। उनमे जो स्थित है वे पार्श्वस्थ हैं, यह भी पार्श्वस्थ का अन्य पर्याय (एक अर्थ) है।

दुविधो खलु पासत्थो, देसे सव्वे य होइ नायव्वो।
सव्वे तिण्णि विगप्पा देसे सेज्जातरकुलादी ॥ ४३४० ॥

पार्श्वस्थ दो प्रकार के जानने चाहिए -
१ देशपार्श्वस्थ, २ सर्वपार्श्वस्थ,

देशपार्श्वस्थ शय्यातर कुलादि मे एषणा करता है। सर्वपार्श्वस्थ के तीन विकल्प है।

सर्वपार्श्वस्थ—

दसण-णाण-चरित्ते, सत्थो अच्छति तहि ण उज्जमति।
एतेण उ पासत्थो, एसो अण्णोवि पज्जाओ ॥ ४३४२ ॥

१ दर्शन, २ ज्ञान, ३ चारित्र की आराधना मे जो आलसी होता है अर्थात् उनकी आराधना मे उद्यम नही करता है तथा उनके अतिचार अनाचारो का सेवन करता है वह सर्वपार्श्वस्थ है।

वह सर्वपार्श्वस्थ सूत्रपौरुषी, अर्थपोरुषी नही करता है, सम्यग्दर्शन के अतिचार शका, काक्षा आदि करता रहता है। सम्यक्चारित्र के अतिचारो का निवारण नही करता है। इसलिए वह सर्वपार्श्वस्थ है।

देश-पार्श्वस्थ—

१ सेज्जायर कुल, २ निस्सित, ३ ठवणकुल, ४ पलोयणा, ५ अभिहडेय।
६ पुव्वि पच्छा सथुत, ७ णितियग्गपिडभोति पासत्थो ॥ ४३४४ ॥

१ जो शय्यादाता के घर से भिक्षा लेता है।
२ जो श्रद्धालु गृहस्थो के सहयोग से जीवननिर्वाह करता है।
३ जो स्थापनाकुलो मे अकारण एषणा करता है।
४ बडे सामूहिक भोज मे आहार की एषणा करता है या काच मे अपना प्रतिबिब देखता है।
५ जो सम्मुख लाया हुआ आहार लेता है।
६ जो भिक्षा लेने के पहले या पीछे अपनी बडाई या दाता की प्रशसा करता है।
७ जो निमत्रण स्वीकार करके प्रतिदिन निमत्रक के घर से आहारादि ग्रहण करता रहता है।

इस प्रकार के दोषो का आचरण करता है वह देश-पार्श्वस्थ है।

२. ओसण्णो—अवसन्न—

यह देश्य विशेषण है, इस के तीन समानार्थक पर्याय है-

१ अवसण्ण, २ ओसण्ण, ३ उस्सण्ण।

तीनो के तीन अर्थ—

१ अवसण्ण—आलसी
२ ओसण्ण—खण्डितचारित्र
३ उस्सण्ण—सयम से शून्य

चूर्णि—ओसण्णो दोसो—अधिकतर दोषो वाला,
ओसण्णो बहुतरगुणावराही—अनेक गुणो को दूषित करने वाला,

उयो (गतो-चुओ) वा सजमो तम्मि सुण्णो उस्सण्णो—सयम से च्युत-सयम शून्य अवसन्न होता है।

समायारि वितह ओसण्णो पावती तत्थ। —गाथापूर्वार्ध ॥ ४३४९ ॥

सयम समाचारी से विपरीत आचरण करने वाला 'अवसन्न' कहा जाता है।

गाथा—**आवासग-सज्झाए, पिडलेहज्झाण भिक्ख भत्तट्ठे।**
काउस्सग्ग—पडिक्कमणे, कितिकम्म णेव पडिलेहा ॥ ४३४६ ॥
आवासग अणियत करेति, हीणातिरित्त विवरीयं।
गुरुवयण—णिओग—वलयमाणे, इणमो उ ओसण्णे ॥ ४३४७ ॥

१ आवासग—आवस्सही आदि दस प्रकार की समाचारी।
२ सज्झाए—स्वाध्याय-सूत्र पौरुषी, अर्थ पौरुषी करना।
३. पडिलेह—दोनो समय वस्त्र पात्रादि का प्रतिलेखन करना।

४ झाण—ध्यान—पूर्व रात्रि या पिछली रात्रि मे ध्यान करना ।
५ भिक्ख—दोष रहित गवेषणा करना ।
६ भत्तट्ठे— आगमोक्त विधि से आहार करना ।
७ काउसग्ग—गमनागमन, गोचरी, प्रतिलेखन आदि के बाद कायोत्सर्ग करना ।
८ पडिक्कमणे—प्रतिक्रमण करना ।
९ कितिकम्म—कृतिकर्म-वन्दन करना ।
१० पडिलेहा —प्रतिलेखन-बैठना आदि प्रत्येक कार्य देखकर करना तथा प्रत्येक वस्तु देख-कर या प्रमार्जन कर उपयोग मे लेना ।

जो ओसण्ण—अवसन्न होता है वह आवस्सही आदि दस प्रकार की समाचारियो को कभी करना है, कभी नही करता है, कभी विपरीत करता है । इस प्रकार स्वाध्याय आदि भी नही करता है या दूषित आचरण करता है तथा शुद्ध पालन के लिये गुरुजनो द्वारा प्रेरणा किये जाने पर उनके वचनो की उपेक्षा या अवहेलना करता है । वह "अवसन्न" कहा जाता है ।

३. कुसील—कुशील—

जो निन्दनीय कार्यो मे अर्थात् सयम-जीवन मे नही करने योग्य कार्यो मे लगा रहता है वह "कुशील" कहा जाता है ।

कोउय भूतिकम्मे, पसिणापसिण णिमित्तमाजीवी ।

कक्क—कुरूय—सुमिण—लक्खण—मूल मंत—विज्जोवजीवी कुसीलो उ ।। ४३४५ ।।

१ जो कौतुककर्म करता है ।
२ भूतिकर्म करता है ।
३ अगुष्ठप्रश्न या बाहुप्रश्न का फल कहता है अथवा आखो मे अजन करके प्रश्नोत्तर करता है ।
४ अतीत की, वर्तमान की और भविष्य की बाते बताकर आजीविका करता है ।
५ जाति, कुल, गण, कर्म और शिल्प से आजीविका करता है ।
६ लोध्र, कल्क आदि से अपनी जघा आदि पर उबटन करता है ।
७ शरीर की शुश्रुषा करता है अर्थात् वकुश भाव का सेवन करता है ।
८ शुभाशुभ स्वप्नो का फल कहता है ।
९ स्त्रियो के या पुरुषो के मस—तिल आदि लक्षणो का शुभाशुभ फल कहता है ।

१० अनेक रोगो के उपशमन हेतु कदमूल का उपचार बताता है अथवा गर्भ गिराने का महापाप मूलकर्म दोष करता है ।

११ मत्र या विद्या से आजीविका करता है ।

वह "कुशील" कहा जाता है ।

४—संसत्त—सखेवो इमो—जो जारिसेसु मिलति सो तारिसो चेव भवति एरिसो संसत्तो णायव्वो-चूर्णि ।।

जो जैसे साधुओ के साथ रहता है वह वैसा ही हो जाता है । अत वह ससक्त कहा जाता है ।

गाथा—पासत्थ अहाछंदे, कुसील ओसण्णमेव ससत्ते ।
पियधम्मो पियधम्मेसु चेव इणामो तु ससत्तो ।। ४३५० ।।

जो पासत्थ, अहाछद, कुशील और ओसण्ण के साथ मिलकर वैसा ही बन जाता है तथा प्रियधर्मी के साथ में रहता हुआ प्रियधर्मी बन जाता है इस तरह की प्रवृत्ति करने वाला "ससक्त" कहलाता है ।

गाथा— पंचासवपवत्तो, जो खलु तिहि गारवेहि पडिबद्धो ।
इत्थि – गिहि सकिलिट्ठो, संसत्तो सो य णायव्वो ।। ४३५१ ।।

जो हिंसा आदि पाच आश्रवो मे प्रवृत्त होता है । ऋद्धि, रस, साता इन तीन गर्वों मे प्रतिबद्ध अर्थात् भाव प्रतिबद्ध होता है । स्त्रियो के साथ सश्लिष्ट अर्थात् प्रतिसेवी होता है । गृहस्थो से सश्लिष्ट होता है अर्थात् प्रत्यक्ष रूप मे या परोक्ष रूप मे गृहस्थ के परिवार, पशु आदि के सुख-दु ख सबधी कार्य करने मे प्रतिबद्ध हो जाता है, इस प्रकार जैसा चाहे वैसा बन जाता है वह 'ससक्त' है ।

चूर्णि—'**अहवा – संसत्तो अणेगरूवी नटवत् एलकवत् ।**

जहा णडो पट्टवसा अणेगाणि रूवाणि करेति, ऊरणगो वा जहा हालिद्दरागेण रत्तो, धोविउ पुणो गुलिगगेरुगादिरागेण रज्जते एवं पुणो वि धोविउ अण्णोण्णेण रज्जति एवं एलगादिवत् बहुरूवी ।

भावार्थ—जो नट के समान अनेक रूप और भेड के समान अनेक रगो को धारण कर सकता है एव छोड सकता है, ऐसा बहुरुपिया स्वभाव वाला "ससक्त" कहा जाता है ।

५. **नितिय**—जो मासकल्प व चातुर्मासिककल्प की मर्यादा का उल्लघन करके निरतर एक ही क्षेत्र मे रहता है, वह "कालातिक्रात—नित्यक" कहलाता है, तथा मासकल्प और चातुर्मासिक कल्प पूरा करके अन्यत्र दुगुणा समय बिताये बिना उसी क्षेत्र मे पुन आकर निवास करता है वह "उपस्थाननित्यक" कहलाता है । आचा श्रु २ अ २, उ २ मे कही गई उपस्थान क्रिया का तथा कालातिक्रात क्रिया का सेवन करने वाला "नित्यक"—"नितिय" कहलाता है । अथवा जो अकारण सदा एक स्थान पर ही स्थिर रहता है, विहार नही करता है वह नित्यक कहा जाता है । विशेष वर्णन के लिये भाष्यकार ने दूसरे उद्देशक के "नितियावास" सूत्र का निर्देश कर दिया है ।

इन १० सूत्रो का क्रम भिन्न-भिन्न प्रतियो मे भिन्न-भिन्न है । किन्तु भाष्य चूर्णि के अवलोकन से उपरोक्त क्रम ही उचित प्रतीत हुआ है । यथा—

गाथा "पासत्थोसण्णाणं, कुसील संसत्त नितियवासीणं ।
जे भिक्खू सघाडं, दिज्जा अहवा पडिच्छेज्जा ।।" १८२८ ।।

इन दस सूत्रो की यह प्रथम भाष्य गाथा है । इसमे तथा इसके पूर्व सूत्रस्पर्शी चूर्णि है, दोनो मे सूत्रक्रम समान है तथा भाष्य गाथा १८३० मे भी यही क्रम है ।

चूर्णि के साथ के मूल पाठ मे तथा तेरापथी महासभा द्वारा सपादित "णिसीहज्झयण" मे णितियस्स के बाद "ससत्तस्स" के सूत्रो को रखा है । इसके कारणो का स्पष्टीकरण वहा नही किया

गया है। किन्तु इन सूत्रो की चूर्णि व भाष्य मे तो उपर्युक्त क्रम को ही स्वीकार किया गया है। फिर भी निशीथ के सभी प्रकाशनो मे "नितियस्स" के बाद "ससत्तस्स" के सूत्र है। जो परम्परा से चली आई भूल मात्र है, ऐसा समझकर भाष्यसम्मत क्रम स्वीकार किया है।

पासत्था आदि की व्याख्या करते हुए सयमविपरीत जितनी प्रवृत्तियो का यहा कथन किया गया है, उनका विशेष परिस्थितिवश अपवाद रूप मे गीतार्थ या गीतार्थ की नेश्राय से सेवन किया जाने पर तथा उनकी श्रद्धा प्ररूपणा आगम के अनुसार रहने पर एव उस अपवाद स्थिति से मुक्त होते ही प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध सयम आराधना मे पहुँचने की लगन (हार्दिक अभिलाषा) रहने पर वह पासत्था आदि नही कहा जाता है। किन्तु प्रतिसेवी निर्ग्रंथ कहा जाता है।

शुद्ध सस्कारो के अभाव मे, सयम के प्रति सजग न रहने से, अकारण दोष सेवन से, स्वच्छद मनोवृत्ति से, आगमोक्त आचार के प्रति निष्ठा न होने से, निषिद्ध प्रवृत्तियाँ चालू रखने से तथा प्रवृत्ति सुधारने व प्रायश्चित्त ग्रहण का लक्ष्य न होने से, उन सभी दूषित प्रवृत्तियों को करने वाले 'पासत्था' आदि कहे जाते है।

इन पासत्था आदि का स्वतत्र गच्छ भी हो सकता है, कही वे अकेले-अकेले भी हो सकते है। उद्यत विहारी गच्छ मे रहते हुए भी कुछ भिक्षु या कोई भिक्षु व्यक्तिगत दोषो से पासत्था आदि हो सकते है तथा पासत्था आदि के गच्छ मे भी कोई कोई शुद्धाचारी हो सकता है। यथार्थ निर्णय तो स्वय की आत्मा या सर्वज्ञ सर्वदर्शी ही कर सकते है।

पासत्था आदि के इन लक्षणो के ज्ञाता होकर सयमसाधना के साधको को दूषित प्रवृत्तियो से सावधान रहना चाहिये।

सचित्त-लिप्त हस्तादि से आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त–

४९. जे भिक्खू "उदउल्लेण" हत्थेण वा मत्तेण वा, दव्वीए वा, भायणेण वा, असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

५०. जे भिक्खू "मट्टिया-ससट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

५१. जे भिक्खू "ऊस-ससट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

५२. जे भिक्खू "हरियाल-संसट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

५३. जे भिक्खू "हिंगुल-ससट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

५४. जे भिक्खू "मणोसिल-ससट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

५५. जे भिक्खू "अजण-ससट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

५६. जे भिक्खू "लोण-ससट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

५७. जे भिक्खू "गेरुय-ससट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

५८. जे भिक्खू "वण्णिय-संसट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

५९. जे भिक्खू "सेढिय संसट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

६०. जे भिक्खू "सोरट्ठियपिट्ठससट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

६१. जे भिक्खू "कुक्कुस-ससट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

६२. जे भिक्खू "उक्कुट्ठ-संसट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

६३ जे भिक्खू "असंसट्ठेण" हत्थेण वा "जाव" पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

४९ जो भिक्षु पानी से गीले हाथ से मिट्टी के बर्तन (सरावला प्याला आदि) से, कुडछी से या किसी धातु के बर्तन से दिया जाने वाला अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५० जो भिक्षु सचित्त मिट्टी से लिप्त, हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५१ जो भिक्षु उस—पृथ्वी-खार से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५२ जो भिक्षु हडताल-चूर्ण से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५३ जो भिक्षु हिंगुल-चूर्ण से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५४ जो भिक्षु मैनशिल-चूर्ण से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५५ जो भिक्षु अजन-सुरमा से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५६ जो भिक्षु नमक-चूर्ण से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५७ जो भिक्षु गेरु—गैरिका-चूर्ण से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५८ जो भिक्षु वर्णिक—पीली-मिट्टी के चूर्ण से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५९ जो भिक्षु खडिया (खड्डी)चूर्ण से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६० जो भिक्षु फिटकरी के चूर्ण से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६१ जो भिक्षु हरी-वनस्पति के छिलके, भूसे आदि से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६२ जो भिक्षु हरी-वनस्पति के चूर्ण से लिप्त हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६३ जो भिक्षु अलिप्त --बिना खरडे--हाथ से यावत् ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन--सूत्र ४९ मे अप्काय की विराधना, सूत्र ५० से ६० तक पृथ्वीकाय की विराधना और सूत्र ६१-६२ मे वनस्पतिकाय की विराधना की अपेक्षा से ये प्रायश्चित्त कहे गये है। अत यहा ये सब पदार्थ सचित्त की अपेक्षा से गृहीत है। यदि किसी भी प्रयोगविशेष मे ये वस्तुए शस्त्र-परिणत होकर अचित्त हो गई हो और उनसे हाथ आदि लिप्त हो तो उन हाथो मे आहार ग्रहण करने का कोई प्रायश्चित्त नही समझना चाहिये। यथा --"उदउल्ल" गर्म पानी से भी गीले हाथ हो सकते है। नमक कभी अचित्त भी हो सकता है इत्यादि। इसी प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिये।

सूत्र ६३ मे पश्चात्कर्म की अपेक्षा प्रायश्चित्त कहा गया है। यदि पश्चात्कर्म दोष न हो ऐसा खाद्य पदार्थ हो अथवा दाता विवेक वाला हो जो पश्चात्कर्म दोष न लगावे तो असंसृष्ट हाथ आदि से भिक्षा लेने का प्रायश्चित्त नही है। दशवै-अ ५ उ १ गा ३५ मे कहा है--**पच्छाकम्म जहि भवे'** अर्थात् जहा पश्चात्कर्म हो ऐसा दिया जाता हुआ आहार भिक्षु ग्रहण न करे।

आचा श्रु २ अ १ उ ११ मे सात पिडेषणा मे प्रथम पिडैषणा अभिग्रह का कथन है। उस अभिग्रह को धारण करने वाला भिक्षु असंसृष्ट (अलिप्त) हाथ आदि से ही भिक्षा ग्रहण करता है, ससृष्ट हाथ आदि से नही। इस प्रतिज्ञा वाला भिक्षु लेप्य अलेप्य दोनो प्रकार के खाद्य पदार्थ ग्रहण कर सकता है क्योकि केवल अलेप्य (रूक्ष) पदार्थ ग्रहण करने की 'अलेपा' नामक चौथी पिडेषणा (प्रतिज्ञा) कही है। अत यह असंसृष्ट का प्रायश्चित्त उपर्युक्त अपेक्षा से है, ऐसा समझना आगम सम्मत है।

शब्दार्थ--१. **"मट्टिया"**--साधारण मिट्टी--चिकनी मिट्टी, काली मिट्टी लाल मिट्टी आदि जो कच्चे मकान बनाने, बर्तन माजने--साफ करने, घडे आदि बर्तन बनाने के काम मे आती है।

२. **"ऊस"**--साधारण भूमि पर अर्थात् ऊपर भूमि पर खार जमता है, उसे खार या 'पाशु-खार' कहते हैं। **"ऊषः--पांशुक्षारः"। दशवै. चूर्णि व टीका।**

३. **"मणोसिल"**--मैनशिल--एक प्रकार की पीली कठोर मिट्टी।

४. **"गेरुय"**--कठोर लाल मिट्टी।

५. **"वण्णिय"**--पीली मिट्टी-'जेण सुवण्ण वण्णिज्जति'।

६ **"सेडिय"**--सफेद मिट्टी--खडिया मिट्टी।

७. **"सोरट्ठिय"** -फिटकरी--**"सोरट्ठिया तूवरिया जीए सुवण्णकारा उप्प करेंति सुव्वण्णस्स पिंडं"** ।

८ **उक्कुट्ठ**- "सचित्त वणस्सइचुण्णो ओक्कुट्ठो भण्णति" प्राकृत भाषा मे अनेक विकल्प होते है, इसलिये--'उक्कट्ठ, उक्किट्ठ-उक्कुट्ठ' तीनो ही शुद्ध है तथा मेढिय मेडिय' दोनो शुद्ध है । दोनो चूर्णि मे मिलते है ।

इन १५ सूत्रो मे जो प्रायश्चित्तविधान है इनका निर्देश आचाराग श्रु २, अ १, उ ६ व दशवैकालिक अ ५, उ १ मे हुआ है । दशवैकालिक सूत्र मे इस विषय की दो गाथाएँ है, जिनमे १६ प्रकार से हाथ आदि लिप्त कहे है । वहा "सोरट्ठिय" के बाद जो "पिट्ठ" शब्द है वह "सोरट्ठिय" पर्यंत कही गई सभी कठोर पृथ्वियो का विशेषण मात्र है । क्योकि उन कठोर पृथ्वियो के चूर्ण से ही हाथ लिप्त हो सकता है । अत पृथ्वी सबधी शब्दो के समाप्त होने पर इस शब्द का प्रयोग गाथा मे हुआ है किन्तु उसे भी स्वतत्र शब्द मान कर १७ प्रकार से लिप्त हाथ आदि है ऐसा अर्थ किया जाता है । वह तर्कसगत नही है अपितु केवल भ्रान्ति है ।

"अगस्त्य चूर्णि मे व जिनदासगणी की चूर्णि मे "पिट्ठ" शब्द को स्वतत्र मान कर जो अर्थसगति की गई है वह इस प्रकार है--

"अग्नि की मद आच से पकाया जाने वाला अपक्व पिष्ट (आटा) एक प्रहर से शस्त्रपरिणत (अचित्त) होता है और तेज आच से पकाया जाने वाला शीघ्र शस्त्रपरिणत होता है ।

यहा पिष्ट (धान्य के आटे) को अग्नि पर रखने के पहले और बाद मे सचित्त बताया है वह उचित नही है ।

धान्य मे चावल तो अचित्त माने गये है और शेष धान्य एकजीवी होते है, वे धान्य पिस कर आटा बन जाने के बाद भी घटो तक आटा सचित्त रहे यह व्याख्या भी "पिट्ठ" शब्द को अलग मानने के कारण ही की गई है ।

गोचरी के समय घर मे आटे से भरे हाथ दो प्रकार के हो सकते है—
१ आटा छानते समय या बर्तन मे परात मे लेते समय, २ धान्य पीसते समय ।

धान्य पीसने वाले से तो गोचरी लेना निषिद्ध है ही और छानते समय तक सचित्त मानना सगत नही है । अत "पिट्ठ" शब्द को सूत्रोक्त पृथ्वीकाय के शब्दो का विशेषण मानकर उनके चूर्ण से लिप्त हाथ आदि ऐसा अर्थ करने मे मूल पाठ एव अर्थ दोनो की सगति हो जाती है ।

दशवैकालिक सूत्र मे इस विषय के १६ शब्द है । यहा उनका १८ सूत्रो मे प्रायश्चित्त कहा है । "उदउल्ल" मे "ससिणिद्ध" का प्रायश्चित्त समाविष्ट कर दिया गया है और 'ससरक्ख' का प्रायश्चित्त मट्टियाससट्ठ' मे समाविष्ट कर दिया गया है । अत १४ सूत्र ही होते है और एक सूत्र "गससट्ठ" का होने से कुल १५ सूत्र होते है । भाष्य गाथा से इनका क्रम स्पष्ट ज्ञात हो जाता है ।

चूर्णिकार ने कुछ शब्दो के ही अर्थ किये है ।

भाष्य गाथा—"उदउल्ल, मट्टिया वा, ऊसगते चेव होंति बोधव्वे ।
हरिताले हिंगुलए, मणोसिला अंजणे लोणे ।। १८४८ ।।

गेरुय वण्णिय सेडिय, सोरट्ठिय पिट्ठ कुक्कुसकए य ।
उक्कट्ठमससट्ठे, णेयव्वे आणुपुव्वीए ।। १८४९ ।।

यहा पर निशीथ चूर्णिकार ने भी "पिट्ठ" शब्द को स्वतत्र मानकर "तदुलपिट्ठ आम असत्थोवहत" व्याख्या की है । यही अर्थ उपब्ध अनुवादो मे किया जाता हे ।

"तंदुल" से सूखे चावल अर्थ किया जाए तो वे अचित्त ही होते है और हरे चावल अर्थ किया जाय तो उसके लिये "उक्कुट्ठ" शब्द का आगे स्वतत्र सूत्र है जिसका अर्थ चूर्णिकार स्वय **सचित्त-वणस्सईचुण्णो ओकुट्ठो भण्णति** ऐसा करते है । जिसमे सभी हरी वनस्पतियो के कूटे व चटनी आदि का समावेश हो सकता है ।

भाष्य, चूर्णि एव दशवैकालिक की अपेक्षा निशीथ के मूल पाठ मे कुछ भिन्नता है । कई प्रतियो मे तो 'सोरट्ठिय' शब्द नही है किन्तु अन्य 'कतव, लोद्ध, कदमूल, सिगबेर, पुप्फग' ये शब्द बढ गये है तथा **'एवं एक्कवीसं हत्था भाणियव्वा', 'एगवीसभेएण हत्थेण'** आदि पाठ बढ गये हैं तो किसी प्रति मे २३ सख्या भी हो गई है ।

वनस्पति से ससट्ठ की अपेक्षा यहा दो शब्द प्रयुक्त है—

१ वनस्पति का कूटा पीसा चूर्ण चटनी, २ वनस्पति के छिलके भूसा आदि । इन मे हाथ आदि ससृष्ट हो सकते है और इनमे सभी प्रकार की वनस्पति का समावेश भी हो जाता है । अत॰ लोध्र, कद, मूल, सिगबेर, पुप्फग के सूत्रो की अलग कोई आवश्यकता नही रहती है । भाष्य, चूर्णि तथा दशवैकालिक आदि से भी ये शब्द प्रामाणित नही है । 'कतव' शब्द तो अप्रसिद्ध ही है । अत ये पाच शब्द और २१ **हत्था** आदि पाठ बहुत बाद मे जोडा गया है । क्योकि उसके लिये कोई प्राचीन आधार देखने मे नही आता है ।

अन्योन्य शरीर का परिकर्म करने का प्रायश्चित्त—

६४. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जत वा पमज्जत वा साइज्जइ । एवं तइयउद्देसगमेण णेयव्व जाव जे भिक्खू गामाणुगाम दूइज्जमाणे अण्णमण्णस्स सीसदुवारियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

६४ जो भिक्षु आपस मे एक दूसरे के पावो का एक बार या अनेक बार 'आमर्जन' करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । इस प्रकार तीसरे उद्देशक के (सूत्र १६ से ६९ तक के) समान पूरा आलापक जान लेना चाहिये यावत् जो भिक्षु आपस मे एक दूसरे का ग्रामानुग्राम विहार करते समय मस्तक ढाकता है या ढाकने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—ये कुल ५४ सूत्र है । आवश्यक कारण के बिना, केवल भक्ति या कुतूहलवश आपस मे शरीर का परिकर्म करने पर इन सूत्रो के अनुसार प्रायश्चित्त आता है । तीसरे उद्देशक मे ये कार्य स्वय करने का प्रायश्चित्त कहा गया है और यहा साधु-साधु आपस मे परिकर्म करे तो प्रायश्चित्त कहा गया है । इतनी विशेषता के साथ यहा भी ५४ ही सूत्र समझ लेना चाहिए और उनका अर्थ एव विवेचन भी प्राय वैसा ही समझ लेना चाहिए ।

चूर्णिकार ने यहा ४१ सूत्र-सख्या का निर्देश किया है वह इस प्रकार है--

"इत्यादि एक्कतालीस सुत्ता उच्चारेयव्वा जाव अण्णमण्णस्स सीसदुवारिय करेइ इत्यादि अर्थ· पूर्ववत् ।

गाथा—पादादि तु पमज्जण, सीसदुवारादि जो गमो ततिए ।
अण्णोण्णस्स तु करणे सो चेव गमो चउत्थम्मि ।। १८५५ ।।
तृतीय उद्देशगमेन नेय । चूर्णि ।

इस व्याख्या मे किसी भी सूत्र को कम करने का निर्देश नही होते हुए भी चूर्णि मे सूत्र सख्या ४१ कहने का कारण यह है कि तीसरे उद्देशक मे २६ सूत्रो के लिये सूत्रसख्या २६ कह कर भी पद सख्या १३ कही है । उसी पद सख्या को सभवत यहा सूत्रसख्या गिन ली गई है । जिससे ५४ मे से १३ की सख्या कम होने पर ४१ सूत्रसख्या कही गई है । अत उपर्युक्त ५४ सूत्रो का मूल पाठ इस उद्देशक मे होने पर भी चूर्णिकारकथित ४१ की सख्या मे कोई विरोध नही होता है । केवल विवक्षा भेद ही है ।

सूत्र ६४ से ११७ तक अन्योन्य शरीर-परिकर्म सूत्र तीसरे उद्देशक के समान है । इनकी तालिका इस प्रकार है—

		संख्या
६४ से ६९	पैर-परिकर्म	६
७० से ७५	काया-परिकर्म	६
७६ से ८१	व्रण-चिकित्सा	६
८२ से ८७	गडमाल आदि की शल्य-चिकित्सा	६
८८	कृमि निकालना	१
८९	नख काटना	१
९० से ९५	रोम-परिकर्म	६
९६ से ९८	दत-परिकर्म	३
९९ से १०४	होठ-परिकर्म	६
१०५ से १११	चक्षु-परिकर्म	७
११२ से ११४	रोम-केश परिकर्म	३
११५	प्रस्वेद निवारण	१
११६	चक्षु आदि का मैल निकालना	१
११७	मस्तक ढाक कर विहार करना	१
		५४

परिष्ठापना समिति के दोषों का प्रायश्चित्त–

११८. जे भिक्खू साणुप्पए उच्चार-पासवणभूमिं ण पडिलेहेइ, ण पडिलेहंत वा साइज्जइ ।

११९. जे भिक्खू तओ उच्चार-पासवणभूमिओ न पडिलेहेइ, न पडिलेहंत वा साइज्जइ ।

१२०. जे भिक्खू खुड्डागंसि थंडिलंसि उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ ।

१२१. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं अविहीए परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ ।

१२२. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता ण पुंछइ, ण पुंछंत वा साइज्जइ ।

१२३. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, अंगुलियाए वा, सलागाए वा पुंछइ, पुंछंतं वा साइज्जइ ।

१२४. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता णायमइ, णायमंत वा साइज्जइ ।

१२५. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता तत्थेव आयमइ, आयमंत वा साइज्जइ ।

१२६. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता अइदूरे आयमइ आयमंत वा साइज्जइ ।

१२७. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता परं तिण्हं णावापूराणं आयमइ, आयमंतं वा साइज्जइ ।

११८. जो भिक्षु चौथी पोरिसी के चौथे भाग में उच्चार-प्रस्रवण की भूमि का प्रतिलेखन नहीं करता है या नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

११९. जो भिक्षु तीन उच्चार-प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना नहीं करता है या नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२०. जो भिक्षु एक हाथ से भी कम लंबी-चौड़ी जगह में उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

१२१. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण को अविधि से परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

१२२. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण को परठ कर मलद्वार को नहीं पोंछता है या नहीं पोंछने वाले का अनुमोदन करता है।

१२३. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण को परठ कर मलद्वार को काष्ठ से, बांस की खपच्ची से, अंगुली से या बेंत आदि की शलाका से पोंछता है या पोंछने वाले का अनुमोदन करता है।

१२४. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण को परठ कर आचमन नहीं करता है या नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२५. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण को परठ कर वहीं उसके ऊपर ही आचमन करता है या आचमन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२६ जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण को परठकर अति दूर जाकर आचमन करता है या आचमन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१२७. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण को परठकर तीन से अधिक पसली में आचमन करता है या आचमन करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—इन दस सूत्रों का संक्षिप्त भाव यह है कि संध्या समय में तीन उच्चार-प्रस्रवण परठने की भूमियों का प्रतिलेखन करना चाहिये । बैठने के लिये जीवरहित भूमि कम से कम एक हाथ लंबी चौडी होनी ही चाहिये । दिशावलोकन आदि विधि का पालन करना चाहिये । मल-निवृत्ति के बाद वस्त्रखंड से मलद्वार को पोंछ कर साफ करना चाहिये । फिर कुछ दूर हट कर मर्यादित जल से शुद्धि कर लेनी चाहिये ।

पोंछना और आचमन आदि का कथन बडी नीत से ही संबंधित है । बडी शंका की बाधा कभी कभी होती है । अत तीन भूमियों का प्रतिलेखन भी उसके लिये उपयुक्त है ।

लघुशंका से निवृत्त होने के बाद पोंछना या आचमन करना आवश्यक नहीं है तथा प्राय तीन से अधिक बार भी लघुशंका के लिये जाना होता है । इसलिए इन दस सूत्रों का अर्थ मल-त्याग की मुख्यता से समझना उचित है ।

१ खुड्डागंसि" -**रयणिपमाणातो ज आरतो त खुड्ड ।"**

गाथा वित्थारायामेण, थंडिल्ल ज भवे रयणिमित्त ।
चउरंगुलोवगाढं, जहण्णय त तु वित्थिण्णं ।। १८६४ ।।

लंबाई-चौडाई में एक हाथ से कम विस्तार वाली भूमि "खुड्डग" कही जाती है और एक हाथ विस्तार वाली 'जघन्य विस्तीर्ण' भूमि कही जाती है ।

२. **"साणुप्पए"—"साणुप्पओ णाम चउभागावसेस चरिमाए"** चौथी पौरुषी के चौथे भाग में अर्थात् स्वाध्याय से निवृत्त होने के बाद संध्या समय के अस्वाध्याय काल में शय्याभूमि व उच्चार-प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना करनी चाहिये ।

हरी वनस्पति, कीडियों आदि के बिल, खड्डे, विषम भूमि आदि की जानकारी प्रतिलेखन करने से ही होती है । प्रतिलेखन करने पर अनेक दोषों से बचा जा सकता है । किन्तु प्रतिलेखन न करने पर अचानक हुए दीर्घ शंका के वेग को रोकने पर रोग या मृत्यु भी होना संभव है ।

३. **'तओ'** –तीन जगह प्रतिलेखन करने का कारण यह है कि एक ही जगह देखने पर वहां यदि अन्य कोई मल त्याग कर दे या पशु आकर बैठ जाय तो अनेक दोषों की संभावना रहती है । अत तीन भूमियों का प्रतिलेखन करना चाहिये ।

४ **"अविहीए**—मल त्याग के पूर्व बैठने की भूमि का प्रतिलेखन या प्रमार्जन करना, 'कोई आसपास में है या नहीं' यह जानने के लिए दिशावलोकन करना, जल्दी सूख जाय ऐसे स्थान पर विवेकपूर्वक परठना, मल में कृमि आते हों तो धूप में मलत्याग नहीं करना इत्यादि समाचारी का पालन करना विधि कहलाता है । उससे विपरीत करना अविधि है ।

भाष्यकार ने विधि के वर्णन मे कहा है कि **"अणुजाणह जस्सुग्गहो"** ऐसा बोलकर फिर परठना चाहिये जिससे देव दानव का उपद्रव न हो तथा दिन मे उत्तर दिशा की ओर तथा रात्रि मे दक्षिण दिशा की ओर मुख करना चाहिये। हवा, बस्ती व सूर्य की तरफ भी पीठ नही करना आदि वर्णन किया है।

५. **"पुंछइ"**—मलद्वार को कपड़े से पोछ लेने के बाद थोडे पानी से आचमन करने पर भी शुद्धि हो सकती है। जीर्ण कपडा भी साधु के पास प्राय मिल जाता है। काष्ठ आदि से पोछने का निषेध करने का कारण यह है कि कोमल अग मे किसी प्रकार का आघात न लगे। अगुली या हाथ से पौछने पर स्वच्छता नही रहती तथा बहुत समय तक हाथ मे गध आती रहती है अत इनसे पोछने का प्रायश्चित्त कहा है।

६. **'आचमन'—उच्चारे वोसिरिज्जमाणे अवस्सं पासवण भवति त्ति तेण गहितं। पासवण पुण काउ सागारिए (अंगादाण णायमइ जहा उच्चारे'**—मल त्यागने के समय मूत्र अवश्य आता है इसलिये ही सूत्र मे मल के साथ मूत्र का कथन है। किन्तु मल त्यागने के बाद मलद्वार का आचमन (प्रक्षालन) किया जाता है, वैसे मूत्रेद्रिय का आचमन करना नही समझना चाहिये। मलद्वार को वस्त्रखड से पोछ लेने पर भी पूर्ण शुद्धि नही होती है तथा उसकी अस्वाध्याय रहती है। अत आचमन करना भी आवश्यक होता है, आचमन नही करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

मल त्यागने के बाद उसके ऊपर ही आचमन करने से गीलापन अधिक बढता है जिससे सूखने मे अधिक समय लगने से विराधना की सभावना रहती है। अत कुछ दूरी पर आचमन करना उचित है। वही पर आचमन करने से हाथ के मल लगने की भी सभावना रहती है। अधिक दूर जाकर शुचि करने से लोगो मे आचमन न करने की भ्राति भी हो सकती है।

७. **णावापूराण—"णाव" त्ति पसतो, ताहिं आयमियव्व।**

गाथा—उच्चारमायरित्ता, परेण तिण्ह तु णावपूरेण।
जे भिक्खू आयमति, सो पावति--आणमादीणि ॥ १८८० ॥

तीन पसली से ज्यादा पानी का उपयोग करने पर निम्न दोषो की प्राप्ति होती है—

उच्छोलणा पधोइयस्स, दुल्लभा सोग्गतो तारिसगस्स उच्छोलणा दोसा भवति, पिपीलियादीणं वा पाणाणं उप्पिलावणा भवइ, खिल्लरधे तसा पडंति, तरुगणपत्ताणि वा, पुप्फाणि वा, फलाणि वा पडंति कुरुकयकरणे बाउस्सत्त भवति। भाष्य गाथा ॥ १८८१ ॥

दश अ ४ मे कहा है--जो वार-बार प्रक्षालन करता है, धोता है ऐसे भिक्षु की सुगति दुर्लभ है, प्रक्षालन से अन्य अनेक दोष लगते है। अधिक पानी के रेले से कीडी आदि अनेक प्राणियो को पीडा होती है। किसी खड्डे मे पानी भरने पर उसमे त्रस जीव पडते है तथा वृक्ष के पत्ते, पुष्प, फल आदि पडते हैं।

अधिक प्रक्षालन करने से सयम मलीन होता है।

नावापूरक-नाव जैसी आकृति वाली पानी भरी एक हाथ की अजली (पसली) को नावापूरक कहा गया है, मल-मूत्र त्यागने के बाद ऐसे तीन नावापूरको से मलद्वार की शुद्धि करनी चाहिए।

जो भिक्षु मल त्याग करके तीन से अधिक नावापूरको द्वारा यदि शुद्धि करता है तो वह वीत-राग की आज्ञाभग आदि दोषो का पात्र होता है ।

तीसरे उद्देशक के अत मे मल-मूत्र त्यागने योग्य और अयोग्य भूमियो का कथन है । योग्य स्थडिल के अभाव मे दिन व रात्रि मे अपने स्थान पर अपने ही भाजन मे मल त्याग की विधि का निर्देश किया गया है ।

इस चतुर्थ उद्देशक के भी इन अतिम १० सूत्रो मे उच्चार-प्रस्रवण-परिष्ठापन के विषय मे कहा है । किन्तु यहाँ योग्य स्थडिलभूमि मे ही जाकर मलत्याग की विधि सबधी सूचना देते हुए प्रायश्चित्त कहा गया है ।

पारिहारिक सह भिक्षार्थ गमन प्रायश्चित्त–

१२८. जे भिक्खू अपरिहारिए ण "परिहारियं" वएज्जा—एहि अज्जो ! तुम च अह च एगओ असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा पडिग्गाहेत्ता तओ पच्छा पत्तेय पत्तेय भोक्खामो वा पाहामो वा, जो त एव वयइ, वयत वा साइज्जइ । त सेवमाणे आवज्जइ मासिय परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

१२८ जो भिक्षु अपारिहारिक है, वह पारिहारिक से यह कहे कि हे आर्य ! आओ तुम और मै एक साथ जाकर अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करके उसके बाद दोनो अलग-अलग खायगे पीयेंगे, इस प्रकार जो पारिहारिक से कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है । उपर्युक्त १२८ सूत्रो मे कहे गये दोषस्थानो का सेवन करने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

विवेचन—उद्देशक २ सूत्र ४० मे पारिहारिक और अपारिहारिक शब्द का प्रयोग हुआ है । वहा इनका अर्थ क्रमश दोष न लगाने वाला और दोष लगाने वाला है ।

किन्तु यहा क्रमशः जिसका आहार अलग है, ऐसा प्रायश्चित्त वहन करने वाला साधु और प्रायश्चित्त रहित शुद्ध साधु, ये अर्थ है

चूर्णि—"पायच्छित्त अणावण्णो अपरिहारिओ, आवण्णो—मासिय जाव छम्मासियं सो परिहारिओ ।"

प्रायश्चित्त के निमित्त तपश्चर्या करने वाला साधु "पारिहारिक" कहा जाता है, आचार्य के अतिरिक्त गच्छ के सभी साधुओ द्वारा वह परिहार्य होता है, उसके साथ केवल आचार्य ही वार्तालाप आदि व्यवहार करते है, गच्छ के अन्य साधु उसके साथ किसी प्रकार का व्यवहार नही कर सकते, इस प्रकार वह गच्छ के लिये परिहरणीय है, अत वह **पारिहारिक** कहा जाता है ।

प्रश्न—यह प्रायश्चित्त वहन कौन कर सकता है ?

उत्तर—१ सुदृढ सहनन वाला हो, २ धैर्यवान् हो, ३ गीतार्थ हो, ४ समर्थ हो—पूर्व के तीन गुण होते हुए भी बाल वृद्ध या रोगी हो तो वह असमर्थ कहलाता है । अत जो तरुण एव स्वस्थ हो उसे ही समर्थ समझना चाहिये ।

प्रश्न—वह कौन-सा प्रायश्चित्त वहन करता है ?

उत्तर—एकमासिक यावत् छःमासिक प्रायश्चित्त वहन करता है ।

प्रश्न—वह क्या तपस्या करता है ?

उत्तर—कम से कम एकांतर उपवास करता है और पारणे के दिन आयबिल करता है।

प्रश्न—इस सूत्र मे तो गोचरी साथ जाने का प्रायश्चित्त कहा है तथा और भी उसके साथ अन्य अनेक प्रकार के व्यवहार करने पर प्रायश्चित्त आता है ?

उत्तर—उसके साथ आठ कार्य करने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है, जिसमे आठवा साथ मे गोचरी जाने का है। अत पूर्व के सात कार्य भी उसके साथ अतर्भावित है, ऐसा समझ लेना चाहिये। इनके अतिरिक्त दो कार्य और है जिनके करने पर गुरुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

प्रश्न—वे दस कार्य कौन से है ?

उत्तर—१ आपस मे वार्तालाप करना।
२ सूत्रार्थ पूछना।
३ स्वाध्याय आदि कठस्थ ज्ञान सुनना और सुनाना।
४ साथ मे उठना बैठना आदि।
५ वदन-व्यवहार।
६ पात्र आदि उपकरण देना लेना।
७ प्रतिलेखन आदि कार्य करना।
८ दोनो का सघाडा बना कर गोचरी आदि जाना।
९ आहार देना लेना।
१० एक मण्डली मे बैठकर आहार करना अर्थात् साथ मे खाना।

प्रश्न—कुछ भी कहना हो, पूछना हो, आलोचना करना हो तो वह (पारिहारिक) साधु किसके पास करे ?

उत्तर—उसे कुछ भी काम करना हो तो आचार्य की आज्ञा लेकर करे, उनके पास आलोचना करे, उनसे ही प्रश्न पूछे और उन्हे ही आहार बतावे, कष्ट आने पर या रोग आदि होने पर भी आचार्य से ही कहे। दूसरे साधु का उसके पास जाना, कहना या पूछना आदि नही हो सकता।

प्रश्न—यदि कोई उसे रुग्ण अवस्था मे देखे तो किसे सूचना दे ?

उत्तर—उपाश्रय मे किसी समय उसे असह्य तकलीफ हो तो वह स्वय आचार्य से कहे। यदि वह असह्य वेदना के कारण आचार्य को न कह सके तो अन्य साधु जाकर उसकी वेदना के सबध मे आचार्य को जानकारी दे, बाद मे उसकी सेवा के लिये आचार्य जिसे नियुक्त करे वह उसकी सेवा करे।

प्रश्न—गोचरी आदि के लिये गया हुआ वह भिक्षु मार्ग मे कही गिर जाये तो उसकी सेवा के लिए आचार्य की आज्ञा लेना आवश्यक है ?

उत्तर—नही, ऐसी परिस्थिति मे कोई भी साधु उसकी सेवा कर सकता है। स्थान पर ले आने के बाद आचार्य को जानकारी देना और आलोचना करना आदि कार्य किये जाते है और स्वस्थ न हो तब तक उसकी सेवा भी की जाती है। जितना कार्य वह स्वय कर सकता हो उतना वह स्वय करे। और जो कार्य वह न कर सके वह अन्य साधु आचार्य की आज्ञानुसार करे।

प्रश्न—उसके साथ ऐसा व्यवहार क्यो किया जाता है, यदि कोई उसकी सेवा सदा करे तो क्या दोष है ?

उत्तर—इसका समाधान दृष्टात द्वारा समझाया जाता है।

जिस प्रकार पशु स्वय चरने जाने के लिये समर्थ होता है तब तक उसे जाने के लिये गाव के बाहर निकाल दिया जाता है। यदि वह अशक्त होता है तो गोपालक उसे घर पर ही घास आदि लाकर देता है। इसी प्रकार पारिहारिक की सेवा के सबध मे समझना चाहिये।

प्रश्न—इस प्रकार का कठोर तप और कठोर व्यवहार उसके साथ क्यो किया जाता है?

उत्तर—जो जैसा दोष सेवन करता है उसे वैसा ही प्रायश्चित्त दिया जाता है। दोषशुद्धि एव आत्मशुद्धि के लिये स्वेच्छा से स्वीकार करने पर परिहार तप दिया जाता है। इससे अन्य साधुओ को भी यह ध्यान रहे या भय रहे कि इस तरह के दोष का ऐसा प्रायश्चित्त होता है। इसके अतिरिक्त इस तप के करने पर कर्मों की निर्जरा भी होती है।

प्रश्न—आलोचना प्रायश्चित्त तो एकात मे किया जाता है अत स्पष्ट जानकारी कैसे हो सकती है। जिससे दूसरे साधु भयभीत बन कर वैसे दोषो से सावधान रहे?

उत्तर—इस प्रायश्चित्त वहन रूप स्थापना मे स्थापित करने के पूर्व सामूहिक रूप से श्रमण समुदाय को सूचना दी जाती है और दोषसेवन की पूरी जानकारी दी जाती है, पूर्ण स्पष्टीकरण करने के बाद उसके साथ व्यवहार बद करके उसे आत्मशुद्धि के लिये निवृत्त किया जाता है। वह आचार्य की अधीनता मे व आज्ञा मे गिना जाता है। तप वहन के एक दिन पूर्व स्वय आचार्य उसके साथ जाकर उसे (मनोज्ञ-विगय युक्त) आहार दिलवाते है।

इस प्रकार आदर पूर्वक चतुर्विध सघ को जानकारी देकर यह प्रायश्चित्त देकर इस प्रायश्चित्त के निमित्त तप प्रारम्भ किया जाता है। उस पारिहारिक के आचार की तप की तथा कब किस परिस्थिति मे क्या क्या व्यवहार किया जा सकता है, इत्यादि की पूरी जानकारी श्रमणसमुदाय को दी जाती है।

प्रश्न—पारणे मे भी विगय न लेने से तप करने का उत्साह मद हो जाए तो बिना इच्छा के भी वह तप करना जरूरी होता है?

उत्तर—आचार्य सारी स्थिति की जानकारी करके यथायोग्य कर सकते हैं। उसकी सारणा, वारणा करना या प्रायश्चित्त करने के लिए उत्साह बढाना आदि सारा उत्तरदायित्व आचार्य का होता है। आवश्यक समझे तो वे विगय की छूट भी दे सकते है और विशेष सतुष्टि के लिए साथ मे जाकर आहार भी दिलाते हैं।

प्रश्न—छोटे-मोटे सभी दोषो का ऐसा ही प्रायश्चित्त होता है?

उत्तर—नही, उत्तरगुण सम्बन्धी दोषो के प्रायश्चित्त मे तथा मूलगुण सम्बन्धी जघन्य, मध्यम प्रायश्चित्त मे केवल तप प्रायश्चित्त दिया जाता है। मूलगुण सम्बन्धी उत्कृष्ट दोष सेवन के प्रायश्चित्त मे मासिक यावत् छमासी "परिहार तप" का प्रायश्चित्त दिया जाता है। वह भी योग्य को दिया जाता है। योग्य न होने पर साधारण तप दिया जाता है, तथा साध्वी को साधारण तप का ही प्रायश्चित्त दिया जाता है। परिहार तप का प्रायश्चित्त नही। दिया जाता है।

प्रश्न—क्या छेद प्रायश्चित्त से भी यह प्रायश्चित्त बडा है?

उत्तर—नही, किसी अनाचार का अनेक बार सेवन करने पर, ज्यादा लम्बे समय तक दोष सेवन करने पर, लोकापवाद होने पर अथवा तपस्या करने की शक्ति न होने पर छेद प्रायश्चित्त दिया जाता है। यह परिहार तप से भिन्न प्रकार का प्रायश्चित्त है।

छेद प्रायश्चित्त जघन्य एक दिन का, उत्कृष्ट छह मास का दिया जा सकता है। इससे ज्यादा प्रायश्चित्त आवश्यक होने पर आठवाँ "मूल" (नई दीक्षा का) प्रायश्चित्त दिया जाता है। किन्तु केवल तप, परिहार तप या दीक्षाछेद का प्रायश्चित्त छह मास से अधिक देने का विधान नही हे।

प्रश्न—क्या वर्तमान मे किसी को इस विधि से प्रायश्चित्त दिया जाता है ?

उत्तर—विशिष्ट सहनन आदि के अभाव के कारण वर्तमान मे साधारण तप का प्रायश्चित्त दिया जाता है और उसके आगे छेद और मूल (नई दीक्षा) प्रायश्चित्त भी दिया जाता है किन्तु उक्त परिहार तप का प्रायश्चित्त नही दिया जाता है।

वीर निर्वाण के बाद सैकडो वर्षो तक परिहार तप प्रायश्चित्त दिया जाता रहा। छेद सूत्रो के मूल पाठ मे अनेक जगह पारिहारिक साधु सम्बन्धी अनेक विधान है तथा भाष्य ग्रन्थो मे भी विस्तृत वर्णन मिलता है।

पारिहारिक व अपारिहारिक का कदाचित् एक साथ गोचरी निकलने का योग बन जाय तो एक को रुक कर दूसरे को अलग हो जाना चाहिए।

सूत्र मे अपारिहारिक के लिए प्रायश्चित्त कहा गया है। पारिहारिक भी यदि ऐसा करे तो उसे भी प्रायश्चित्त आता है, यह भी समझ लेना चाहिए।

चतुर्थ उद्देशक का सारांश—

सूत्र १ राजा को वश मे करना।
सूत्र २ राजा के रक्षक को वश मे करना।
सूत्र ३ नगररक्षक को वश मे करना।
सूत्र ४ निगमरक्षक को वश मे करना।
सूत्र ५ सर्वरक्षक को वश मे करना।
सूत्र ६-१० राजा आदि के गुणग्राम करना।
सूत्र ११-१५ राजा आदि को अपनी ओर आकर्षित करना।
सूत्र १६ ग्रामरक्षक को आकर्षित करना।
सूत्र १७ देशरक्षक को आकर्षित करना।
सूत्र १८ सीमारक्षक को आकर्षित करना।
सूत्र १९ राज्यरक्षक को आकर्षित करना।
सूत्र २० सर्वरक्षक को आकर्षित करना।
सूत्र २१-२५ ग्रामरक्षक आदि के गुणग्राम करना।
सूत्र २६-३० ग्रामरक्षक आदि को अपनी ओर आकर्षित करना।
सूत्र ३१ सचित्त धान्य का आहार करना।

सूत्र ३२ आचार्यादि की आज्ञा के बिना दुग्धादि विकृतियाँ लेना ।
सूत्र ३३ स्थापनाकुलो को जाने बिना भिक्षाचर्या के लिए जाना ।
सूत्र ३४ निर्ग्रन्थियो के उपाश्रय मे अविधि से प्रवेश करना ।
सूत्र ३५ निर्ग्रन्थियो के आगमनपथ मे दण्डादि रख देना ।
सूत्र ३६ नये कलह उत्पन्न करना ।
सूत्र ३७ उपशान्त कलह को पुन उत्पन्न करना ।
सूत्र ३८ मुँह फाड-फाडकर हंसना ।
सूत्र ३९-४८ पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, ससक्त, नित्यक इन पाँच को अपना सघाडा देना या उनका सघाडा लेना ।
सूत्र ४९-६३ अप्काय, पृथ्वीकाय और वनस्पतिकाय आदि सचित्त पदार्थों से लिप्त हाथो द्वारा आहारादि लेना ।
सूत्र ६४-११७ साधु-साधु का परस्पर शरीरपरिकर्म करना ।
सूत्र ११८-११९ सध्या समय तीन उच्चार-प्रस्रवणभूमि का प्रतिलेखन न करना ।
सूत्र १२० कम लम्बी-चौडी भूमि मे मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र १२१ अविधि से मल-मूत्र त्यागना ।
सूत्र १२२ मल-मूत्र त्याग कर मलद्वार न पौछना ।
सूत्र १२३ मलद्वार को काष्ठादि से पौछना ।
सूत्र १२४ मलद्वार की शुद्धि नही करना ।
सूत्र १२५ मल पर ही शुद्धि करना ।
सूत्र १२६ अधिक दूरी पर शुद्धि करना ।
सूत्र १२७ तीन पसली से अधिक पानी से शुद्धि करना ।
सूत्र १२८ प्रायश्चित्त वहन करने वाले के साथ भिक्षाचर्या जाना ।
इत्यादि प्रवृत्तियो का लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

इस उद्देशक के ५५ सूत्रों के विषयो का कथन निम्न आगमो मे है, यथा—

सूत्र ३१ सचित्त बीज आदि का आहार करना अनाचार है । —दशा० अ० ३, गा० ७
सूत्र ३२ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो के लिए विकृतियाँ लेना अकल्पनीय है । —दशा० द० ८, सु० ६२
सूत्र ३६-३७ नया कलह उत्पन्न करना या उपशान्त कलह को पुन उत्तेजना देना असमाधि स्थान कहा है । —दशा० द० १
सूत्र ४९-६३ सचित्त पानी, मिट्टी, वनस्पति आदि से लिप्त हाथ वालो से आहार लेने का निषेध—
—(क) दश अ ५, उ १, गा ३३-३४
—(ख) आचा श्रु २, अ १, उ ६,

सूत्र ६४ से ८७, ८९ से ९५, ११२ से ११६
साधु-साधु के परस्पर शरीर-परिकर्म का निषेध । —आचा श्रु २, अ १४
सूत्र ११८ उच्चार-प्रस्रवणभूमि का प्रतिलेखन करना । -उत्त अ २६, गा ३९
सूत्र १२० विस्तीर्ण उच्चार-प्रस्रवणभूमि मे मल-मूत्र त्यागना । —उत्त अ २४, गा. १८

इस उद्देशक के निम्न ३७ सूत्रों के विषयो का कथन अन्य आगमो मे नहीं है, यथा—

सूत्र १-३० राजा आदि को वश मे करना ।
सूत्र ३३ स्थापनाकुलो को जाने बिना भिक्षाचर्या के लिए जाना ।
सूत्र ३४ निर्ग्रन्थियो के उपाश्रय मे अविधि से प्रवेश करना ।
सूत्र ३५ निर्ग्रन्थियो के आगमनपथ मे दण्डादि रख देना ।
सूत्र ३८ मुँह फाड-फाडकर हँसना ।
सूत्र ३९-४८ पासत्थादि को अपना सघाडा देना या उनका सघाडा लेना ।
सूत्र ८८ मलद्वार से कृमि निकालना ।
सूत्र ८९ परस्पर एक दूसरे के अकारण नख काटना ।
सूत्र ९६-९८ दाँतो का परिकर्म करना ।
सूत्र ९९-१०५ होठो का परिकर्म करना ।
सूत्र १०५-१११ चक्षु का परिकर्म करना ।
सूत्र ११७ ग्रामानुग्राम विहार करते समय परस्पर एक दूसरे का मस्तक ढँकना ।
सूत्र ११९ तीन उच्चार-प्रस्रवणभूमियो का प्रतिलेखन न करना ।
सूत्र १२१ मल-मूत्र अविधि से त्यागना ।
सूत्र १२२ मल-मूत्र त्याग कर मल द्वार न पोंछना ।
सूत्र १२३ मलद्वार को काष्ठ आदि से पोंछना ।
सूत्र १२४ मलद्वार की शुद्धि न करना ।
सूत्र १२५ मल-मूत्र पर ही शुद्धि करना ।
सूत्र १२६ मल-मूत्र त्यागने के स्थान से अधिक दूर जाकर शुद्धि करना ।
सूत्र १२७ मल-मूत्र त्यागकर तीन पसली से अधिक पानी लेकर शुद्धि करना ।
सूत्र १२८ पारिहारिक के साथ गोचरी जाना ।

।। चौथा उद्देशक समाप्त ।।

पांचवां उद्देशक

वृक्षस्कन्ध के निकट ठहरने आदि का प्रायश्चित्त--

१. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा आलोएज्ज वा, पलोएज्ज वा, आलोएंत वा पलोएंत साइज्जइ ।

२. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेएइ, चेएत वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसिठिच्चा असण वा, पाणं वा, खाइम वा, साइम वा आहारेइ, आहारेंत वा साइज्जइ ।

४ जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा उच्चार वा, पासवणं वा परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

५ जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झायं करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

६. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झाय उद्दिसइ, उद्दिसतं वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झाय समुद्दिसइ, समुद्दिसत वा साइज्जइ ।

८. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झाय अणुजाणइ, अणुजाणंतं वा साइज्जइ ।

९. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झाय वाएइ वायत वा साइज्जइ ।

१०. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झाय पडिच्छइ, पडिच्छंत वा साइज्जइ ।

११. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झाय परियट्टेइ, परियट्टंतं वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे (वृक्षस्कध के पास की सचित्त पृथ्वी पर) खड़ा रहकर या बैठकर एक बार या अनेक बार (इधर उधर) देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

२ जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर कायोत्सर्ग, शयन करता है या बैठता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३ जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर अशन पान खाद्य या स्वाद्य का आहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४ जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

५ जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर स्वाध्याय करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

६. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर स्वाध्याय का उद्देश करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

७ जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर स्वाध्याय का समुद्देश करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

८ जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर स्वाध्याय की आज्ञा देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

९ जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर सूत्रार्थ की वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

१० जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर सूत्रार्थ की वाचना ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

११ जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल मे ठहरकर स्वाध्याय का पुनरावर्तन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—

'सचित्त रुक्खमूलंसि'—"जस्स सचित्त रुक्खस्स हत्थि-पय-पमाणो पेहुल्लेण खधो तस्स सव्वतो जाव रयणिप्पमाणा ताव सचित्तभूमि।" —चूर्णि

जिस वृक्ष के स्कध की मोटाई हाथी के पैर जितनी हो तो उसके चारो ओर एक हाथ प्रमाण भूमि सचित्त होती है। इससे अधिक मोटाई होने पर उसी अनुपात से स्कध के पास की भूमि सचित्त होती है। अत उतने स्थान पर खडा रहने से, बैठने से या शयनादि करने मे पृथ्वीकाय की विराधना होती है तथा असावधानी से वृक्षस्कध का स्पर्श होने पर वनस्पतिकाय की विराधना होती है।

'ठाण-सेज्ज-णिसीहियं'—"ठाण-काउस्सग्गो, वसहि णिमित्त सेज्जा, विसम-ठाण णिमित्त-णिसीहिया।"—चूर्णि

"सचित्त-रुक्खमूले, ठाण-णिसीयण-तुयट्टण वावि" ॥१९०९॥

वृक्षस्कध के समीप भूमि पर खडे होने को स्थान, सोने को शय्या और बैठने को निषद्या करना कहा गया है।

"सज्झायं"—"अणुप्पेहा, धम्मकहा, पुच्छाओ सज्झायकरण।"—चूर्णि

"सज्झाय" शब्द से अनुप्रेक्षा, धर्मकथा और प्रश्न पूछना, इनका ग्रहण हुआ है।

"उद्देस"—"उद्देसो अभिनव अधीतस्स"—नये मूलपाठ की वाचना देना।

"समुद्देस"—"अथिरस्स समुद्देसो"—कण्ठस्थ किये हुए को पक्का व शुद्ध कराना।

"**अणुण्णा**"—"थिरीभूयस्स अणुण्णा"—स्थिर एव शुद्ध कण्ठस्थ हो जाने पर दूसरे को सिखाने की आज्ञा देना। —नि चूर्णि।

उद्देश, समुद्देश और अणुण्णा का अन्य अर्थ भी अनुयोगद्वार सूत्र की हरिभद्रीय टीका मे किया है, यथा—

१ उद्देश—सूत्र पढने के लिये आज्ञा देना।

२ समुद्देश—स्थिर करने के लिए आज्ञा देना।

३ अणुण्णा—अन्य को पढाने की आज्ञा देना।

"**वायणा**"—सूत्रार्थ की वाचना देना।

"**पडिच्छणा**"—सूत्रार्थ की वाचना ग्रहण करना।

यहाँ वृक्ष-स्कध के पास ठहरने के निषेध और प्रायश्चित्त के विधान से अन्य सभी कार्यों का निषेध और प्रायश्चित्त स्वत सिद्ध हो जाता है। फिर भी ग्यारह सूत्रो द्वारा अनेक कार्यो का तथा स्वाध्यायादि करने का निषेध और प्रायश्चित्त विधान विस्तृत शैली की अपेक्षा से कहा गया है।

गृहस्थ से चद्दर सिलवाने का प्रायश्चित्त—

१२. **जे भिक्खू अप्पणो सघाडि अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा सिव्वावेइ, सिव्वावेत वा साइज्जइ।**

१२ जो भिक्षु अपनी चादर को अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से सिलवाता है या सिलवाने वाले का अनुमोदन करता है।

विवेचन -जइ णिक्कारणे अप्पणा सिव्वेति, कारणे वा अण्णउत्थिय-गारत्थिएहि सिव्वावेति तस्स मासलहु।' —१९२१ चूर्णि।

स्वतीर्थिक और परतीर्थिक चार-चार प्रकार के गृहस्थ होने से कुल आठ प्रकार के गृहस्थ प्रथम उद्देशक सूत्र ग्यारह के विवेचन के अनुसार यहाँ समझ लेना चाहिए।

आवयकतानुसार लम्बा चौडा कपडा न मिलने पर या 'अणल, अथिर अधारणीय' होने के पूर्व किसी कारण से फट जाने पर सीना आवश्यक हो तो स्वय सीवे या अन्य साधु से सिलावे और कोई भी साधु सीने वाला न हो तो साध्वी से सिला लेने पर प्रायश्चित्त नही आता है, किन्तु गृहस्थ से सिलाने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

चादर के दीर्घसूत्र करने का प्रायश्चित्त—

१३. **जे भिक्खू अप्पणो संघाडीए दीह—सुत्ताइं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।**

१३ जो भिक्षु अपनी चादर के लम्बी डोरियाँ बाँधता है या बाँधने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—चादर या गाती लम्बाई मे छोटी हो और बाँधना आवश्यक हो तो चार या उत्कृष्ट छ स्थानो पर डोरियाँ बाँधी जा सकती है, जिसमे एक, दो या उत्कृष्ट तीन बँधन हो जाते है।

"जे ते संघाडिबधणसुत्ता ते दीहा ण कायव्वा"

ये डोरियाँ बाँध लेने के बाद चार अँगुल से ज्यादा न बचे, इतनी ही लम्बी करनी चाहिए। क्योंकि अधिक लम्बी होने से उठाने-रखने मे अयतना होती है,

'समद्दा व "अणेगरूवधुणा" नामक प्रतिलेखना दोष लगता है,

अल्पबुद्धि या कुतूहलवृत्ति वाले के उपहास का निमित्त हो जाता है।

अथवा डोरियो के उलझ जाने पर सुलझाने में समय लगने के कारण सूत्रार्थ की हानि होती है।

अत आवश्यक हो तो **"चउरंगुलप्पमाण, तम्हा संघाडि-सुत्तगं कुज्जा"** चार अँगुल लम्बे बधन सूत्र बनाने चाहिए, ज्यादा बडे बनाने पर प्रायश्चित्त आता है।

पत्ते खाने का प्रायश्चित्त—

१४ जे भिक्खू पिउमद-पलासयं वा, पडोल-पलासयं वा, बिल्लपलासय वा, सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा सफाणिय-सफाणिय आहारेइ, आहारत वा साइज्जइ।

१४ जो भिक्षु नीम के पत्ते, पडोल—परवल के पत्ते, बिल्व के पत्ते, अचित्त शीतल या उष्ण जल मे डुबा-डुबा कर—धो-धो कर खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—ये सूत्र-निर्दिष्ट सूखे पत्ते औषध रूप मे लेना आवश्यक हो तो गृहस्थ के यहाँ स्वय के लिए सुकाकर स्वच्छ किये हुए मिल जाएँ ऐसी गवेषणा करनी चाहिए।

उन्हे भिक्षु स्वय धोवे और धोया हुआ पानी फेके तो जीव-विराधना व प्रमाद-वृद्धि होने से प्रायश्चित्त कहा गया है।

अन्य भी औषध-योग्य अचित्त पत्र-पुष्प आदि का धोना भी इसमे समाविष्ट है, ऐसा समझ लेना चाहिए।

यहाँ "पडोल" का अर्थ चूर्णि एव भाष्य मे नही किया है। अन्यत्र कोष आदि मे 'वेली विशेष' तथा "परवल के पत्ते" अर्थ किया गया है।

प्रत्यर्पणीय पादप्रोंछन सम्बन्धी प्रायश्चित्त—

१५. जे भिक्खू पाडिहारिय पायपुछणं जाइत्ता "तमेव रयणि पच्चप्पिणिस्सामित्ति" सुए पच्चप्पिणइ पच्चप्पिणंत वा साइज्जइ।

१६ जे भिक्खू पाडिहारिय पायपुंछणं जाइत्ता "सुए पच्चप्पिणिस्सामि" त्ति तमेव रयणि पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणतं वा साइज्जइ।

१७. जे भिक्खू सागारिय-संतिय पायपुछणं जाइत्ता "तमेव रयणि पच्चप्पिणिस्सामि" त्ति सुए पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

१८. जे भिक्खू सागारिय-संतियं पायपुंछणं जाइत्ता "सुए पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" तमेव रयणि पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ ।

१५ जो भिक्षु गृहस्थ के पादप्रोछन की याचना करके "आज ही लौटा दूंगा" ऐसा कहकर दूसरे दिन लौटाता है या लौटाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१६ जो भिक्षु गृहस्थ के पादप्रोछन की याचना करके कल लौटा देने का कहकर उसी दिन लौटा देता है या लौटा देने वाले का अनुमोदन करता है ।

१७ जो भिक्षु शय्यातर से पादप्रोछन की याचना करके "आज ही लौटा दूंगा" ऐसा कहकर कल लौटाता है या लौटाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१८ जो भिक्षु शय्यातर के पादप्रोछन की याचना करके "कल लौटा दूंगा" ऐसा कहकर उसी दिन लौटा देता है या लौटा देने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—दूसरे उद्देशक मे काष्ठदडयुक्त पादप्रोछन के रखने का प्रायश्चित्त कहा गया है और यहाँ एक या दो दिन के लिए गृहस्थ का या शय्यातर का पादप्रोछन प्रातिहारिक ग्रहण कर लौटाने का जो समय कहा हो उससे पहले-पीछे लौटाने का प्रायश्चित्त कहा है ।

क्षेत्र काल सम्बन्धी किसी विशेष परिस्थिति मे गृहस्थ से या शय्यातर से पैर पोछने का उपकरण प्रातिहारिक लिया जा सकता है । यहाँ प्रातिहारिक पादप्रोछन के ग्रहण करने का प्रायश्चित्त नही कहा गया है किन्तु भाषा के अविवेक का प्रायश्चित्त कहा गया है ।

साधु के पास वस्त्रखड का 'पादप्रोछन' रहता है, कदाचित् आवश्यक होने पर दारुदडयुक्त पादप्रोछन भी रखता है और कभी विशेष परिस्थिति मे गृहस्थ का या शय्यातर का पादप्रोछन एक-दो दिन के लिये ग्रहण करता है । ऐसा इन सूत्रो से प्रतीत होता है ।

प्रत्यर्पणीय 'दंड' आदि का प्रायश्चित्त—

१९. जे भिक्खू पाडिहारियं दडय वा, लट्ठियं वा, अवलेहणिय वा, वेणुसूइं वा जाइत्ता "तमेव रयणि पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" सुए पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ ।

२०. जे भिक्खू पाडिहारिय दंडयं वा, लट्ठियं वा, अवलेहणियं वा, वेणुसूइ वा जाइत्ता सुए पच्चप्पिणिस्सामि त्ति तमेव रयणि पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंत वा साइज्जइ ।

२१ जे भिक्खू "सागारियसंतिय" दडय वा, लट्ठिय वा, अवलेहणिय वा, वेणुसूइ वा जाइत्ता "तमेव रयणि पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" सुए पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणत वा साइज्जइ ।

२२ जे भिक्खू "सागारिय-संतिय" दंडयं वा, लट्ठियं वा, अवलेहणिय वा, वेणुसूइं वा जाइत्ता "सुए पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" तमेव रयणि पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ ।

१९ जो भिक्षु गृहस्थ से दड, लाठी, अवलेखनिका या बास की सूई की याचना करके उसे 'आज ही लौटा दूंगा' ऐसा कहकर कल लौटाता है या लौटाने वाले का अनुमोदन करता है ।

२० जो भिक्षु गृहस्थ से दड, लाठी, अवलेखनिका या बास की सूई की याचना करके "कल लौटा दू गा" ऐसा कहकर आज ही लौटा देता है या लौटा देने वाले का अनुमोदन करता है।

२१ जो भिक्षु शय्यातर से दड, लाठी, अवलेखनिका या बास की सूई की याचना करके 'आज ही लौटा दू गा' ऐसा कहकर कल लौटाता है या लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

२२ जो भिक्षु शय्यातर से दड, लाठी, अवलेखनिका या बास की सूई की याचना करके "कल लौटा दू गा' ऐसा कहकर आज ही लौटा देता है या लौटा देने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन- दड, लाठी आदि भी औपग्रहिक उपधि है। ये भी शय्यातर की या अन्य की वापिस लौटाने का कहकर ग्रहण की जा सकती है। एक दो दिन के लिये या ज्यादा समय के लिये भी ग्रहण की जा सकती है। यहाँ भाषा के अविवेक का प्रायश्चित्त कहा गया है।

प्रत्यर्पित शय्यासस्तारक संबंधी प्रायश्चित्त—

२३. जे भिक्खू पाडिहारियं वा सागारिय-संतियं वा सेज्जासंथारयं पच्चप्पिणित्ता दोच्चं पि ओग्गहं अणणुण्णविय अहिट्ठेइ, अहिट्ठेतं वा साइज्जइ।

२३ जो भिक्षु अन्य गृहस्थ का या शय्यातर का शय्यासस्तारक लौटा करके (पुन आवश्यक होने पर) दूसरी बार आज्ञा लिये विना ही उपयोग मे लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—अन्यत्र से लाये गये शय्या-सस्तारक के लिये "पाडिहारिय" शब्द का प्रयोग किया गया है और ठहरने के स्थान पर रहे हुए शय्या-सस्तारक आदि के लिए "सागारिय—सतिय" शब्द का प्रयोग किया गया है।

यदि भिक्षु को शय्या-सस्तारक की आवश्यकता न रहे तो वह उन्हे उपाश्रय मे ही गृहस्थ को सभला देवे, बाद मे जब कभी आवश्यकता हो तो पुन उनकी गृहस्थ से आज्ञा लेना आवश्यक होता है। यदि पुन आज्ञा लिये विना ग्रहण करे तो इस सूत्र के अनुसार प्रायश्चित्त आता है।

शय्यातर के शय्या-सस्तारक तो उसके मकान मे छोडे जा सकते है किन्तु अन्य गृहस्थ के घर से लाये गये शय्या-सस्तारक भी अल्प समय के लिये उपाश्रय मे छोडे जा सकते हैं। ऐसा इस प्रायश्चित्त सूत्र से और व्यवहारसूत्र उद्देशक ८ से फलित होता है। किन्तु विहार करने के पूर्व उन्हे यथास्थान पहुँचा कर सम्भलाना आवश्यक होता है, ऐसा **बृहत्कल्प उद्देशक ३** मे विधान है और न लौटाने पर निशी उद्देशक २ के अनुसार प्रायश्चित्त आता है।

कपास [रूई] कातने का प्रायश्चित्त—

२४. जे भिक्खू सणकप्पासओ वा, उण्णकप्पासओ वा, पोंडकप्पासओ वा, अमिल-कप्पासओ वा, दीहसुत्ताइं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु सन के कपास से, ऊन के कपास से, पोड के कपास से या अमिल के कपास से

कातकर दीर्घ सूत्र बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—"दीहसुत्तं नाम कत्तति" दीर्घ सूत्र का अर्थ है कातना अर्थात् कपास को "तकली, चर्खा" आदि से कातना।

भाष्य गाथा सुतत्थे पलिमथो, उड्डाहो झुसिर दोस सम्मद्दो।
हत्थोवाघय सचय, पसग आदाण गमण च ।। १९६६ ।।

इस गाथा मे कातने के दोषो का सग्रह किया गया है। कातना गृहस्थ का कार्य है, इसे करने से साधु की हीलना होती है। मच्छर आदि जीवो की विराधना होती है, अधिक कातने पर हाथ आदि शरीर के अवयवो मे थकान आ जाती है। कातने से बुनने की प्रवृत्ति भी प्रचलित हो सकती है।

सग्रह आदि दोषो की भी सम्भावना रहती है। इस प्रकार इस गाथा मे आत्मविराधना और सयमविराधना बताई है।

अत भिक्षु को चर्खा कातना आदि प्रवृत्ति नही करनी चाहिये। ऐसी प्रवृत्ति करने पर या उसका अनुमोदन करने पर भी इस सूत्र से प्रायश्चित्त आता है।

सचित्त, रंगीन और आकर्षक दड बनाने का प्रायश्चित्त—

२५. जे भिक्खू "सचित्ताइं" दारुदंडाणि वा, वेणुदडाणि वा वेत्त-दंडाणि वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

२६. जे भिक्खू "सचित्ताइ" दारुदडाणि वा, वेणुदडाणि वा, वेत्तदडाणि वा धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ।

२७ जे भिक्खू "चित्ताइ" दारुदडाणि वा, वेणुदंडाणि वा, वेत्त दंडाणि वा करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

२८ जे भिक्खू "चित्ताइ" दारुदडाणि वा, वेणुदडाणि वा वेत्त दंडाणि वा धरेइ, धरेत वा साइज्जइ।

२९. जे भिक्खू "विचित्ताइ" दारुदडाणि वा, वेणुदडाणि वा, वेत्त दंडाणि वा करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

३०. जे भिक्खू "विचित्ताइ" दारुदडाणि वा, वेणुदडाणि वा, वेत्त दंडाणि वा धरेइ, धरेत वा साइज्जइ।

२५ जो भिक्षु सचित्त काष्ठ, बास या वेत के दड बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

२६ जो भिक्षु सचित्त काष्ठ, बास या वेत के दड धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७ जो भिक्षु काष्ठ, बास या वेत के रगीन दड बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

२८ जो भिक्षु काष्ठ, बास या वेत के रगीन दड धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२९ जो भिक्षु काष्ठ, बास या वेत के अनेक रग वाले दड बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

३० जो भिक्षु काष्ठ, बास या वेत के अनेक रग वाले दड धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन – **"दंड"** औपग्रहिक उपधि है । अर्थात् विशेष शारीरिक दुर्बलता आदि कारणो से ही कोई रख सकता है किन्तु सभी साधुओ को साधारणतया रखना नही कल्पता है ।

अत आवश्यक होने पर बना बनाया दड मिले तो धारण किया जा सकता है । न मिले तो भिक्षु अचित्त काष्ठ आदि से स्वय बना सकता है ।

दड बनाने मे व धारण करने मे निम्न बातो का ध्यान रखना आवश्यक है—

१- जीव-जन्तु युक्त लकडी नही होनी चाहिये अर्थात् काष्ठ आदि सर्वथा जीवरहित होना चाहिये ।

२- लकडी आदि के स्वाभाविक रग के सिवाय अन्य कोई रग नही होना चाहिए ।

३- अन्य अनेक आकर्षक रग, कारीगरी या चित्र आदि मे विचित्र नही होना चाहिए ।

पारिभाषिक शब्द–

"सचित्ता –जीवसहिता" "चित्रक –एक वर्ण, विचित्रा नाना वर्णा" । चूर्णि

दड की सुरक्षा के लिए किसी प्रकार का लेप लगाना निषिद्ध नही है । विभूषा के लिए एक या अनेक वर्ण का बनाना अथवा कारीगीरी युक्त बनाना और धारण करना नही कल्पता है ।

सचित्त लकडी का दड बनाने या रखने मे जीव-विराधना स्पष्ट है । ये तीनो प्रकार के दड करने का धारण करने का लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

"परिभु जइ" क्रिया युक्त तीन सूत्रो की व्याख्या नही मिलती है और न उनका निर्देश ही है । क्योंकि औपग्रहिक उपधि आवश्यकता पडने पर ही धारण की जाती है । अत इन तीन सूत्रो की आवश्यकता भी नही है । भाष्य व चूर्णिकार के समय की प्रतियो के मूल पाठ मे ये सूत्र नही थे, बाद मे बढाये गये है । अत उन तीन सूत्रो को यहा मूल पाठ मे न लेकर केवल ६ सूत्रो को स्वीकार करके उनकी व्याख्या की गई है ।

नवनिर्मित ग्रामादि मे प्रवेश करने का प्रायश्चित्त–

३१. जे भिक्खू "णवग-णिवेसंसि" गामसि वा, नगरसि वा, खेडसि वा कब्बडसि वा, मडंबसि वा, दोणमुहंसि वा, पट्टणसि वा, आसमसि वा, सण्णिवेसंसि वा, निगमसि वा, सबाहंसि वा, रायहाणिसि वा अणुप्पविसित्ता असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

३१ जो भिक्षु नये बसे हुए १ ग्राम, २ नगर, ३ खेड, ४ कर्बट, ५ मडब, ६ द्रोणमुख, ७ पट्टण, ८ आश्रम, ९ सन्निवेश १० निगम, ११ सबाह या १२ राजधानी मे प्रवेश करके अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है)

विवेचन -सूत्र मे आए स्थानो की व्याख्या इस प्रकार है–

१. **'गाम'**—**"कराणामष्टादशानाम् गमनीयं" 'ग्रसते वा बुद्ध्यादीन् गुणान्"**

२. **'नगर'**—**"न विद्यते एकोऽपि करः।"**

३. **'खेड'**— **"धूलिप्राकारपरिक्षिप्तम्"**

४. **'कब्बड'**- **"कुनगर कर्बटं।"**

५. **'मडम्ब'** -**"सर्वासु दिक्षु अर्धतृतीयगव्यूतमर्यादायामविद्यमान ग्रामादिकं"।**

६ **'पट्टणं'** –**'पत्तनं द्विधा जलपत्तन च स्थलपत्तनं च'**, जलमार्ग या स्थल-मार्ग से जहा सामान-माल आता हो।

७ **'दोणमुह'**—जहा जलमार्ग और स्थलमार्ग दोनो से माल आता हो।

८. **'निगमं'**-वणिक् वसति। व्यापारीवर्ग का समूह जहा रहता हो।

९ **'आसम'**-तापस आदि के आश्रम की प्रमुखता वाली वसति। अर्थात् जहा प्रथम तापसो के आश्रम बने, फिर अन्य लोग आकर बसे ऐसा स्थान।

१०. **'सण्णिवेस'**—आचाराग श्रु १, अ ८, उ ६ मे व निशीथ उद्देशक १२ मे तथा राजेन्द्रकोष मे "सन्निवेष" शब्द का अर्थ किया है। निशीथ उ ५ व बृहत्कल्पभाष्य मे "निवेश" शब्द के निर्देश से व्याख्या की गई है। व्याख्या सर्वत्र समान होने से "सन्निवेस" शब्द ही मूल पाठ मे रखा गया है।

११. **'रायहाणी'**—जहा राजा का निवास हो।

१२. **'संबाह'**—पर्वत के निकट धान्यादि सग्रह करने एव रहने का स्थान।

१३. **'घोसं'**—गोपालको की बस्ती।

१४. **'अंसियं'**—ग्रामादि का तृतीय चतुर्थ अश जहा जाकर रहा हो।

१५. **'पुडमेयणं'**—अनेक दिशाओ से सामान आकर जहा बिकता हो, ऐसे मडी स्थल के पास बसी हुई बस्ती।

१६ **'आगरं'**—पत्थर तथा धातु आदि जहा उत्पन्न हो व निकाले जाए, उसके पास की वसति।

बृह भाष्य. भा २, पृ ३४२

ग्रामादि १६ स्थानो मे से इस सूत्र मे १२ स्थानो का निर्देश है और "आगर" का अगले सूत्र मे वर्णन है, इस प्रकार कुल १३ स्थानो का यहा पर कथन है। शेष १३ वे, १४ वे, १५ वे स्थानो का कथन बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक १ सूत्र ६ मे हुआ है।

निशीथ-भाष्य मे इन शब्दो का स्पष्ट निर्देश व व्याख्या नही है। चूर्णिकार ने व्याख्या की है। बृहत्कल्पभाष्य की गाथाओ मे इन शब्दो की व्याख्या की गई है। वहा १६ शब्दो की व्याख्या है और मूलपाठ मे भी १६ शब्द है। व्याख्या मे (भाष्य मे) एक नाम मतातर से अधिक कहा है। **"सकरो" नाम किंचित् ग्रामोऽपि, खेटमपि आश्रमोपि।**

विभिन्न सूत्रो के मूल पाठो मे इन शब्दो के विभिन्न क्रम है। कई स्थलो पर १६ नाम और कई स्थलो पर १२ नाम है। जिसमे न १३-१४-१५ तीन तो निश्चित्त कम होते है और आगर, निगम, आश्रम इन तीन मे से कोई भी एक कम होता है। इसका कारण अज्ञात है।

बृहत्कल्प उद्देशक १ सूत्र ६ के भाष्य एव टीका मे "राजधानी" का क्रम दसवा है व कुल नाम १६ है। उसके बाद के सूत्र ७-८-९ मे "गामसि वा जाव रायहाणिसि वा" पाठ सभी प्रतियो मे समान मिलता है।

सर्वत्र एक समान पाठ करना हो तो बृहत्कल्पभाष्य की प्राचीनता को लक्ष्य मे रखकर व उसके पाठ के अनुसार तथा "राजधानी" शब्द को अत मे रखते हुए १६ शब्द स्वीकार किये जाए तो कोई विरोध होने की सभावना नही रहती है। इन १६ का क्रम इस प्रकार होना चाहिये।

१ ग्राम २ नगर ३ खेड ४ कर्वट ५ मडम्ब ६ पट्टण ७ आगर ८ द्रोणमुख ९ निगम १० आश्रम ११ सन्निवेश १२ सबाध १३ घोष १४ अशिका १५ पुटभेदन १६. राजधानी।

प्रस्तुत सूत्र मे "आगर" के सिवाय १५ नाम ही उचित है, क्योकि आगे मे सूत्र के अनेक प्रकार के "आगर" का कथन है।

व्यवहारसूत्र, बृहत्कल्पसूत्र, निशीथसूत्र और आचाराग मे १६ शब्द ही होने चाहिये तथा सक्षिप्त पाठ मे सर्वत्र **"गामंसि वा जाव रायहाणिसि वा"** होना चाहिये। कही-कही पर **"गामसि वा जाव सण्णिवेससि वा"** ऐसा सक्षिप्त पाठ भी मिलता है, ऐसे सक्षिप्त पाठो मे एकरूपता होना आवश्यक है, **आगम स्वाध्यायियो को इस ओर ध्यान देना चाहिये।** जिससे विभिन्न सख्याओ के विकल्प समाप्त हो सकते है।

"णवग-णिवेसंसि"- नये बसे हुए ग्रामादि मे कुछ दिनो तक साधु, साध्वियो को प्रवेश नही करना चाहिये। क्योकि शकुन और अपशकुन दोनो ही साधुओ की साधना मे बाधक है। अपशकुन होने से अन्य साधुओ के लिये अतराय होने का कारण हो सकता है। अत ऐसे स्थानो पर ठहरने के लिए नही जाना चाहिये तथा गोचरी आदि के लिए भी नही जाना चाहिए।

नवनिर्मित खान में प्रवेश करने का प्रायश्चित्त--

३२. जे भिक्खू "णवग-णिवेसंसि" अयागरंसि वा, तंबागरंसि वा, तउयागरंसि वा, सीसागरंसि वा, हिरण्णागरंसि वा, सुवण्णागरंसि वा, वइरागरंसि वा, अणुप्पविसित्ता असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेतं वा साइज्जइ।

अर्थ—जो भिक्षु १ लोहा, २ तावा, ३ तरुआ (रागा), ४ शीशा, ५ चादी, ६ सोना या ७ वज्ररत्न की खान के समीप बसी हुई नवीन वसति मे जाकर अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—खाने लोहे, सोने आदि अनेक प्रकार की होती है। उन खानो के समीप उनमे कार्य करने वाले लोग निवास करते है। ऐसी नई बसी हुई बस्तियो मे गोचरी आदि के लिये नही जाना चाहिये।

पूर्व सूत्र मे नये बसे हुए ग्रामादि मे गोचरी जाने का प्रायश्चित्त कहा गया है। क्योकि वहाँ कुछ लोग शकुन-अपशकुन को मान्यता वाले होते है तथा खानो मे शकुन-अपशकुन के सिवाय वहा से निकाले जाने वाले पदार्थों के सम्बन्ध मे कुछ लोगो के मन मे लाभ-अलाभ की आशका भी उत्पन्न हो सकती है, अत प्रायश्चित्त का यह सूत्र अलग कहा गया है तथा खान के निकट होने से पृथ्वी-कायिक जीवो की विराधना होना भी सभव है। कभी चोरी का आक्षेप भी साधु पर आ सकता है। इसलिए इन स्थानो पर गोचरी आदि के लिये नही जाना चाहिए।

कई प्रतियो मे 'रयणागरसि' शब्द अधिक है। जो लिपि दोष से आ गया है। यहा वज्ररत्न के कथन से सभी रत्नो का ग्रहण हो जाता है।

वीणा बनाने व बजाने का प्रायश्चित्त—

३३ **जे भिक्खू मुह-वीणिय वा, दंत-वीणियं वा, ओट्ठ-वीणिय वा, णासा-वीणिय वा, कक्ख-वीणिय वा, हत्थ-वीणिय वा, णह-वीणिय वा, पत्त-वीणिय वा, फल-वीणियं वा, बीय-वीणियं वा, हरिय-वीणिय वा करेइ, करेंत वा साइज्जइ।**

३४. **जे भिक्खू मुह-वीणिय वा जाव हरिय-वीणियं वा वाएइ, वाएतं वा साइज्जइ।**

३५. **जे भिक्खू अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि अणुद्दिण्णाइ सद्दाइ उदीरेइ, उदीरेंतं वा साइज्जइ।**

३३ जो भिक्षु, १ मुँह, २ दात, ३ ओष्ठ, ४. नाक, ५ काँख, ६ हाथ, ७ नख, ८ पत्र, ९ पुष्प, १० फल, ११ बीज या १२ हरी घास को वीणा जैसी ध्वनि निकालने योग्य बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जो भिक्षु मुख से यावत् हरी घास से वीणा बजाता है या बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जो भिक्षु अन्य भी इसी प्रकार के अनुत्पन्न शब्दो को उत्पन्न करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—उपर्युक्त १२ प्रकार की वीणाओ मे ७ शरीर से सम्बन्धित है शेष ५ वनस्पति से सम्बन्धित है। ये वीणाए आकृति से या अन्य किसी पदार्थ के सयोग से बजाई जा सकती है। इनके बनाने व बजाने मे कुतूहल वृत्ति या चचल वृत्ति अथवा मानसज्ञा प्रमुख होती है, जो साधु के लिए अनुचित है। इनके बनाने मे शरीर के अवयवो को विकृत करना पड़ता है और वनस्पति का छेदन

होता है जिससे आत्मविराधना और वनस्पति की विराधना होती है और बजाने मे वनस्पति की या वायुकाय की अथवा दोनो की एक साथ विराधना होती है । सुनने व देखने वाले के मन मे अनेक प्रकार के विकृत विचार उत्पन्न होते है । यह प्रवृत्ति स्व-पर को व्यामोहित करने वाली भी होती है ।

ये कार्य सयमी के करने योग्य नही है । अत इनका प्रायश्चित्त कहा गया है । लघुमासिक का कथन होते हुए भी दोष-स्थिति के अनुसार जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त दिये जा सकते है ।

'मु हवीणिय' से कठ द्वारा बजाई जाने वाली वीणा समझ लेनी चाहिये ।

पत्थर, काच या किसी भी वस्तु से भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनि करने का या वादित्र आदि बजाने का प्रायश्चित्त उपरोक्त सूत्र ३५ से समझ लेना चाहिये ।

चूर्णि (व्याख्या) काल के बाद कभी इन तीन सूत्रो से २५ या २८ सूत्र मूल पाठ मे बन गये है, ऐसा अनेक प्रतियो मे देखा गया है किन्तु भाष्य, चूर्णि आदि मे ऐसा कोई निर्देश नही है, अत यहा २५ सूत्र ग्रहण न करके तीन सूत्र रखना ही उचित प्रतीत हुआ है ।

औद्देशिक शय्या मे प्रवेश करने का प्रायश्चित्त—

३६. जे भिक्खू "उद्देसियं-सेज्जं" अणुप्पविसइ, अणुप्पविसत वा साइज्जइ ।

३७. जे भिक्खू "सपाहुडियं सेज्ज" अणुप्पविसइ, अणुप्पविसत वा साइज्जइ ।

३८ जे भिक्खू "सपरिकम्म सेज्ज" अणुप्पविसइ, अणुप्पविसत वा साइज्जइ ।

३६ जो भिक्षु औद्देशिक दोष युक्त (उद्दिष्ट) शय्या मे प्रवेश करता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३७ जो भिक्षु सप्राभृतिक शय्या मे प्रवेश करता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३८ जो भिक्षु सपरिकर्म शय्या मे प्रवेश करता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन १ साधु के लिये जिस मकान का निर्माण किया जाता है वह "औद्देशिक दोष' युक्त शय्या कही जाती है ।

२ **सपाहुडियं**—उद्गम के १६ दोषो मे छट्ठा "पाहुडिया" नामक दोष है । वही दोष यहा शय्या के लिये समझना चाहिये । मकान का निर्माण गृहस्थ के लिये ही करना हो किन्तु निर्माण के समय को आगे पीछे करने पर या शीघ्रता से करने पर वही शय्या "पाहुडिय दोष-युक्त शय्या" कहलाती है ।

३ **सपरिकम्मं**—गृहस्थ के लिये बने हुए मकान मे साधु के लिये सफाई करना, कराना, छादन-लेपन करना, कराना, हवा वाला करना या हवा बद करना । दरवाजा छोटा-बडा करना,

भूमि को सम-विषम करना, सचित्त-वस्तुओ को तथा अचित्त भारी सामान को स्थानातरित करना आदि कार्य जहा किये गये हो वह **"परिकर्म दोष"** युक्त शय्या कही जाती है ।

आचारागसूत्र श्रु २, अ २ उ १ मे कहा गया है कि उपर्युक्त परिकर्म युक्त शय्या मे रहना भिक्षु को नही कल्पता है । किन्तु ये परिकर्म कार्य साधु के लिये करने के बाद यदि गृहस्थ ने उस स्थान को अपने उपयोग मे ले लिया हो तो उसके बाद साधु को वहा रहना कल्पता है ।

अत गृहस्थ के उपयोग म लेने मे पूर्व ही परिकर्म दोषयुक्त शय्या मे प्रवेश करने मे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है । १ **"उद्देशिक"**

जावतिय उद्देसो, पासंडाण भवे समुद्देसो ।
समणाण तु आदेसो, णिग्गथाण समादेसो ।। २०२० ।।

१ सभी प्रकार के यात्रियो के लिये,

२ सभी प्रकार के पाषडी अर्थात् सभी मतो के गृहत्यागियो के लिये,

३ शाक्यादि पाच प्रकार के श्रमणो के लिये,

४ जैन साधुओ के लिए निर्मित मकान, इन चारो प्रकार की शय्या मे प्रवेश करने से लघु-मासिक प्रायश्चित्त आता है ।

आचाराग श्रु २, अ २, उ १. मे **'बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए पगणिय पगणिय '** १ यह सूत्र है । इस सूत्र के अर्थ की अपेक्षा को-भाष्यकृत प्रथम द्वितीय विकल्प मे समझ लेना चाहिये । तीसरे विकल्प को आचाराग कथित **'सावद्य क्रिया'** मे व चौथे विकल्प को **'महासावद्य'** क्रिया मे समझ लेना चाहिये ।

२ **'पाहुड'**—मकान बनाने के समय का परिवर्तन करने के सिवाय अन्य कार्य भी आगे पीछे करने मे पाहुड दोष होता है । ऐसा भाष्य मे बताया गया है ।

विद्धसण छावण लेवणे य, भूमिकम्मे पडुच्च पाहुडिया ।
ओसक्कण अहिसक्कण, देसे सव्वे य णायव्व ।। २०२६ ।।
सम्मज्जण वरिसीयण, उवलेवण पुप्फ दीवए चेव ।
ओसक्कण उस्सक्कण, देसे सव्वे य णायव्वा ।। २०३१ ।।

इन दोनो गाथाओ मे क्रमश बादर व सूक्ष्म परिकर्म आदि कार्यों का कथन करके "ओसक्कण-उस्सक्कण" पद दिया गया है, जिसकी चूर्णि इस प्रकार है—

"एते पुव्वं अप्पणो कज्जमाणे चेव नवर साहवो पडुच्च ओसक्कण उस्सक्कणं वा" । अर्थात् अपने लिए पहले से किये जा रहे कार्य को साधु के निमित्त से पहले-पीछेक रना ।

सूक्ष्म बादर परिकर्म कार्यो का और उनके "ओसक्कण उस्सक्कण" का विस्तृत वर्णन भाष्य से जानना चाहिये ।

३ **'परिकर्म'**—पाहुड दोष मे भी आगे-पीछे करने के प्रसग से कुछ परिकर्म कार्यों का कथन हुआ है । तथापि इस सूत्र मे परिकर्म कार्यों का मूलगुण व उत्तरगुण के भेद की विवक्षा से सग्रह किया गया है । वह इस प्रकार है—

पट्टीवंसो दो धारणा, चत्तारि मूल वेलीओ ।
मूलगुण-सपरिकम्मा, एसा सेज्जाउ णायव्वा ।। २०४६ ।।
वंसग, कडण-उक्कंपण, छावण लेवण दुवार भूमि य ।
सपरिकम्मा सेज्जा, एसा मूलुत्तरगुणेसु ।। २०४७ ।।
दुमिय धुमिय वासिय, उज्जोविय बलिकडा अवत्ता य ।
सित्ता सम्मट्ठा वि य, विसोही कोडी कया वसही ।। २०४८ ।।

अन्य प्रकार से और भी दोषो का कथन गाथा २०५२-५३-५४ मे हुआ है यथा—पदमार्ग, सक्रमणमार्ग, दगवीणिका, ग्रीष्मऋतु मे दीवाल मे खड्डा कर हवा का रास्ता बनाना, सर्दी, वर्षा मे ऐसे स्थानो को बन्द करना, जीर्ण दीवाल आदि को ठीक करना, बिल, गड्ढे आदि को ठीक करना, मकान से पानी चूता हो तो ठीक करना, दीवाल आदि की सधियो को ठीक करना इत्यादि ।

उपर्युक्त परिकर्म के कार्य साधु के उद्देश्य से करने पर वह शय्या "परिकर्म दोष" वाली होती है। हीनाधिक सावद्य प्रवृत्ति के अनुसार प्रायश्चित्तस्थान व तप मे हीनाधिकता होती है। भाष्यकार ने बताया है कि उत्तरगुण के व अल्पआरम्भ के दोष वाली शय्या का लघुमासिक प्रायश्चित्त है ।

आचारागसूत्र के अनुसार अनेक परिकर्म युक्त शय्या गृहस्थ के स्वाभाविक उपयोग मे आ जाने पर कालान्तर से साधु के लिये कल्पनीय हो जाती है। ऐसी अवस्था मे उस मकान मे प्रवेश करने व रहने से कोई प्रायश्चित्त नही आता है ।

संक्षिप्त भावार्थ—

१ केवल जैन साधु के उद्देश्य से अथवा जैन साधु युक्त अनेक प्रकार के साधुओ या पथिको के उद्देश्य से बनायी गयी धर्मशाला आदि "उद्देशिक-शय्या" है ।

२ गृहस्थ के अपने लिये बनाये जाने वाले मकान का या परिकर्म कार्य का समय साधु के निमित्त आगे-पीछे करने पर या शीघ्रता से करने पर अर्थात् ५ दिन का कार्य एक दिन मे करने पर वह गृहस्थ का व्यक्तिगत मकान भी "सपाहुड शय्या" हो जाती है ।

३ मकान गृहस्थ के लिये बना हुआ है। उसमे साधु के लिये परिकम काय करने पर गृहस्थ के उपयोग मे आने के पूर्व कुछ काल तक वह मकान "सपरिकर्म शय्या" है ।

इन तीन प्रकार के दोषयुक्त शय्या मे प्रवेश करने का अर्थात् रहने का लघुमासिक प्रायश्चित्त कहा गया है ।

दूसरे व तीसरे दोष वाली शय्या का निर्माण गृहस्थ के स्वप्रयोजन से होता है और प्रथम दोष वाली शय्या मे बनाने वालो का स्वप्रयोजन नही होकर केवल परप्रयोजन से उसका निर्माण किया जाता है, यह अन्तर ध्यान मे रखना चाहिये ।

वर्तमान मे उपलब्ध उपाश्रयो की कल्प्याकल्प्यता—

साधु-साध्वी के ठहरने के स्थान को आगम मे 'शय्या, वसति एव उपाश्रय' कहा जाता है और लोकभाषा में 'उपाश्रय या स्थानक' कहा जाता है ।

ग्राम नगरादि मे ये स्थान तीन प्रकार के मिलते है—

१. **कल्प्य**—दोष रहित = पूर्ण शुद्ध, साधु-साध्वी के ठहरने योग्य ।

२. **अकल्प्य**—दोष युक्त = साधु-साध्वी के ठहरने के अयोग्य ।

३. **कल्प्याकल्प्य**—दोष युक्त होते हुए भी कालान्तर से या पुरुषान्तरकृत होने पर ठहरने योग्य ।

कल्प्य उपाश्रय—

१ कोई एक व्यक्ति केवल अपने लिये या सामाजिक उपयोग के लिये अथवा धार्मिक क्रियाओ की सामूहिक आराधना के लिये नये मकान का निर्माण करवाता है ।

२ किसी उदारमना गृहस्थ या किसी बहिन द्वारा अपना अतिरिक्त मकान धार्मिक आराधना के लिये अथवा साधु-साध्वियो के ठहरने के लिये सघ को समर्पित कर दिया जाता है ।

३ बडे-बडे क्षेत्रो के समाज या सघ मे मतभेद होने पर विभिन्न पक्षो के द्वारा भिन्न-भिन्न मकानो का निर्माण करवाया जाता है ।

४ एक उपाश्रय होते हुए भी चातुर्मास आदि मे भाई एव बहिनो के स्वतन्त्र पोषध, प्रतिक्रमण आदि करने के लिये दूसरे उपाश्रय की आवश्यकता प्रतीत होने पर नये मकान का निर्माण करवाया जाता है ।

५ धार्मिक क्रियाओ की आराधना के लिये किसी का बना हुआ मकान खरीद लिया जाता है ।

इन मकानो मे साधु-साध्वियो के निमित्त निर्माण कार्य आदि न होने से ये पूण निर्दोष होते है ।

अकल्प्य उपाश्रय—

१ कई ऐसे गाव होते है जिनमे जैन गृहस्थो के केवल एक-दो घर होते है या एक भी घर नही होता है, वहा साधु-साध्वियो के ठहरने के लिये नये मकान का निर्माण किसी एक व्यक्ति द्वारा या कुछ सम्मिलित व्यक्तियो द्वारा करवाया जाता है ।

२ सन्त-सतियो के ठहरने के स्थान अलग-अलग होने चाहिये, ऐसा अनुभव होने पर दूसरे मकान का निर्माण करवाया जाता है ।

३ नये बसे हुए गाव या उपनगर मे अथवा पुराने गाव मे धर्म भावना या प्रवृत्ति बढने पर गृहस्थो की धार्मिक आराधनाओ के लिये और साधु-साध्वियो के ठहरने के लिये मकान का निर्माण करवाया जाता है ।

४ सतियो के ठहरने के लिये और बहिनो की धार्मिक आराधनाओ के लिये भी नये मकान का निर्माण करवाया जाता है ।

इन मकानो के बनवाने मे प्रमुख उद्देश्य साधु-साध्वियो का होने मे औद्देशिक एव मिश्रजात दोष के कारण ये पूर्णत अकल्पनीय होते है ।

कल्प्याकल्प्य उपाश्रय—

१ बडे-बड़े सघो मे अपने आयोजनो को लेकर बनाये जाने वाले मकान मे सन्त-सतियो की अनुकूलताओ को भी लक्ष्य मे रखकर नये मकान का निर्माण करवाया जाता है।

२ साधु-साध्वियो के लिये मकान खरीद लिया जाता है।

३ गृहस्थो एव साधु-साध्वियो के सयुक्त उपयोग के लिये भी कही-कही मकान खरीद लिया जाता है।

४ निर्दोष मकान मे भी साधु-साध्वियो के उद्देश्य से कई प्रकार के सुधार करवाये जाते है या परिवर्तन परिवर्धन करवाये जाते है।

५ चातुर्मास के अवसर पर श्रोताओ की सुविधा के लिये, सघ की शोभा के लिये अथवा साधुओ के आवश्यक उपयोगो के निमित्त कुछ सुधार करवाये जाते है।

६ साधु-साध्वियो के उद्देश्य से सचित्त पदार्थ या अधिक वजन वाले अचित्त उपकरण स्थानान्तरित किये जाते है अथवा मकान की सफाई कर दी जाती है।

इन मकानो मे सूक्ष्म उद्देश्य या अल्प आरम्भ अथवा परिकम काय होने म ये गृहस्थो के उपयोग मे आने के बाद या कालान्तर से कल्पनीय हो जाते है।

आचा श्रु २ अ ५ एव ६ मे साधु के लिये खरीदे गये वस्त्र-पात्र का गृहस्थ के उपयोग मे आने के बाद कल्पनीय कहा गया है। अ २ उ १ मे साधु के लिये किये गये अनेक प्रकार के आरम्भ एव परिकर्म युक्त मकान भी गृहस्थ के उपयोग मे आने के बाद कल्पनीय कहे है, इत्यादि आगम प्रमाणो के आधार से ही यहा उक्त मकानो को कालान्तर मे कल्पनीय होना बताया गया है।

साराश यह है—१ जिन मकानो के निर्माण एव परिकर्म मे साधु-साध्वी का किंचित् भी निमित्त नही है, वे पूण कल्पनीय होते है। २ जिन मकानो के निर्माण मे मुख्य उद्देश्य साधु-साध्वी का होता है, वे पूर्ण अकल्पनीय होते है। ३ जिन मकानो के निर्माण मे साधु-साध्वियो का मुख्य लक्ष्य न होकर उनकी अनुकूलताओ का लक्ष्य रखा गया हो या उनके निमित्त सामान्य या विशेष परिकम [सुधार] आदि किये गये हो तो वे मकान अकल्पनीय होते हुए भी कालान्तर मे या गृहस्थ के उपयोग मे आ जाने से कल्पनीय हो जाते है। —आचा श्रु २ अ २ उ १।

पाट—

सदोष—निर्दोष उपाश्रय क विकल्पो की जानकारी होने के साथ पाट सम्बन्धी विकल्पो की जानकारी होना भी आवश्यक है। क्योकि कई उपाश्रयो मे सोने बैठने के लिये पाट भी रहते है, उन पाटो के सम्बन्ध मे भी तीन विकल्प होते है—

१ निर्दोष, २ सदोष, ३ अव्यक्तदोष।

निर्दोष पाट—कई प्रान्तो मे प्रचलित परिपाटी के अनुसार गृहस्थो के घरो में, सामाजिक कार्यों के मकानो मे, पाठशालाओ मे तथा पुस्तकालयो आदि मे आवश्यकतानुसार पाट बनाये जाते है। वे कभी उपाश्रय मे भेट दे दिये जाते है।

२ कई गावो मे मकोडे, बिच्छू आदि जीवो के उपद्रव के कारण श्रावक-श्राविकाओ के सामायिक, पोषध, प्रतिक्रमण आदि करते समय उपयोग मे लेने के लिये कई पाट बनवाये जाते है ।

ये उक्त दोनो प्रकार के पाठ पूर्ण शुद्ध है ।

सदोष पाट—१ सन्त-सतियो के बैठने या शयन करने के लिये अथवा व्याख्यान वाचते समय बैठने के लिये छोटे-बडे पाट बनवाये जाते है ।

२ कई जगह साधु और गृहस्थ दोनो के उपयोग मे लेने के लिये पाट बनवाये जाते है ।

३ बने हुए पाट साधु-साध्वियो के उद्देश्य से खरीदकर उपाश्रय मे भेट किये जाते है ।

ये साधु के उद्देश्य से खरीदे या बनाये गये पाट है ।

अव्यक्त दोष वाले पाट—१ विवाह आदि के विशेष अवसरो पर पाट बनवाकर भेट दिये जाते है, उस समय उपाश्रय मे आवश्यक है या नही इसका कोई विचार नही किया जाता है ।

२ मेरा नाम उपाश्रय मे रहे इसके लिये पाट ही देना विशेष उपयुक्त है, ऐसे विचार से भी उपाश्रयो मे पाट भेट किये जाते है ।

ये निरुद्देश्य या अव्यक्त उद्देश्य से बनाये गये पाट है ।

पाट आदि सस्तारको के सम्बन्ध मे औद्देशिकादि गुरुतर दोषो का कथन करने वाले आगम-पाठ नही मिलते हे तथा किस दोष वाला पाट कब तक अकल्प्य रहता है और कब कल्प्य हो जाता है, इस प्रकार का स्पष्ट कथन करने वाले पाठ भी उपलब्ध नही होते है ।

आचा श्रु २ अ २ उ ३ मे पाट से सम्बन्धित जो पाठ है । उसका सार यह है कि साधु-साध्वी पाट ग्रहण करना चाहे तो उन्हे यह ध्यान रखना आवश्यक है—

१ उसमे कही जीव जन्तु तो नही है ।

२ गृहस्थ उसे पुन स्वीकार कर लेगा या नही ।

३ अधिक भारी तो नही है ।

४ जीर्ण या अनुपयोगी तो नही है, इत्यादि ।

यदि वह पाट जीवरहित, प्रातिहारिक, हल्का एव स्थिर (मजबूत) है तो ग्रहण करना चाहिये अन्यथा नही लेना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त पाट से सम्बन्धित दोषो का कथन आगमो मे उपलब्ध नही है । पाट आदि के निर्माण मे केवल परिकर्म कार्य ही किये जाते है जो मकान के पुरुषान्तरकृत कल्पनीय दोषो से अत्यल्प होते है । अर्थात् इनके बनने मे अग्नि, पृथ्वी आदि की विराधना तो सर्वथा नही होती है । लकडी भी सूखी होती है अतः वनस्पति की भी विराधना नही होती है । अप्काय की विराधना भी प्राय नही होती है । अत आधाकर्मादि दोषो की इसमे सम्भावना नही है । अतः इनके बनाने मे केवल परिकर्म दोष या क्रीतदोष ही होता है ।

क्रीत मकान या परिकर्म दोष युक्त मकान के कल्पनीय होने के समान ही इन उक्त सभी दोषो वाले पाटो को भी कालान्तर से कल्पनीय समझ लेना चाहिये ।

जैन साधुओ के दिगबम्र, श्वेताम्बर, मन्दिरमार्गी, स्थानकवासी, तेरहपथी आदि रूप जो भेद हैं, उनमें से एक सघ के साधुओ के उद्देश्य से बना हुआ आहार या मकान दूसरे सघ के साधुओ के लिये औद्देशिक दोषयुक्त नही है । इस विषय का कथन मूल आगमो मे नही है किन्तु प्राचीन व्याख्या ग्रन्थो मे है । उसका आशय यह है कि जिनके सिद्धान्त और वेश समान हो वे प्रवचन एव लिंग (उभय) से सार्धमिक कहे जाते है । इस प्रकार के सार्धमिक साधु के लिये बना आहार मकान आदि दूसरे सार्धमिको के लिये भी कल्पनीय नही होता है ।

उपर्युक्त चारो जैन विभागो के वेश और सिद्धान्तो मे भेद पड गये है और प्रत्येक सघ ने एक दूसरे से सर्वथा भिन्न व स्वतन्त्र अस्तित्व धारण कर लिया है । अत एक जैन सघ का औद्देशिक मकान आदि दूससे सघ वालो के लिये औद्देशिक नही है ।

छोटे क्षेत्र के छोटे श्रावकसमाज मे सभी जैन सघो के मिश्रित भाव से निर्मित औद्देशिक शय्या आदि सभी सघो के साधुओ के लिये औद्देशिकदोषयुक्त ही समझना चाहिये ।

संभोग-प्रत्ययिक क्रियानिषेध का प्रायश्चित्त—

३९ जे भिक्खू "णत्थि सभोग-वत्तिया किरियत्ति" वयइ, वयत वा साइज्जइ ।

३९. जो भिक्षु "सभोग प्रत्ययिक क्रिया नही लगती है", इस प्रकार कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—"एकत्र भोजन संभोगः, तत्प्रत्यया क्रिया—कर्मबंधः, नास्तीति, जो एव भाषते, तस्स मास लहुं । एस सुत्तत्थो ।"

"सभोइओ संभोइएण समं उवहिं सोलसेहिं आहाकम्मादिएहिं उग्गमदोसेहिं सुद्ध उप्पाएति तो सुद्धो, अह असुद्धं उप्पाएइ, जेण उग्गमदोसेण असुद्धं गेण्हति, तत्थ जावतिओ कम्मबधो जं च पायच्छित्त तं आवज्जति ।"—नि. चूर्णि ।

जिसके साथ मे आहार आदि का सभोग होता है ऐसा कोई भी साभोगिक साधु आहारादि की गवेषणा में कोई दोष लगाता है तो उस वस्तु का उपयोग करने वालो को भी गवेषणा दोष सबधी क्रिया अर्थात् कर्मबध व प्रायश्चित्त आता है ।

अत सभोगप्रत्ययिक क्रिया के सबध मे गलत धारणा तथा प्ररूपणा नही करनी चाहिये । सभोग-विसभोग संबधी विस्तृत जानकारी के लिये भाष्य का अध्ययन करना आवश्यक है । सामान्य जानकारी के लिये बृहत्कल्प उ ४ सूत्र २३ का विवेचन देखे ।

धारण करने योग्य उपधि के परित्याग का प्रायश्चित्त—

४०. जे भिक्खू लाउय-पायं वा, दारुपायं वा, मट्टियापायं वा, अलं थिरं धुवं धारणिज्जं परिभिंदिय-परिभदिय परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

४१. जे भिक्खू वत्थं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा, अलं थिरं धुवं धारणिज्ज पलिछिंदिय-पलिछिंदिय परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

४२. जे भिक्खू दंडग वा, लट्ठियं वा, अवलेहणियं वा, वेणुसूइं वा पलिभंजिय-पलिभंजिय परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा, साइज्जइ।

४० जो भिक्षु तुबपात्र, काष्ठ पात्र या मिट्टी के पात्र को जो परिपूर्ण (प्रमाणयुक्त) हैं, दृढ (कार्य के योग्य) है, रखने योग्य है और कल्पनीय है, उन्हे टुकडे कर करके परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४१ जो भिक्षु परिपूर्ण, दृढ, रखने योग्य व कल्पनीय वस्त्र, कबल या पादप्रोछन को खड-खड करके परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४२ जो भिक्षु दड, लाठी, अवलेखनिका या बास की सूई को तोड-तोड कर परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है। उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—ज पज्जत्त त अल, दढ थिर, अपडिहारिय धुव तु।
लक्खण जुत्त पाय, त होति धारणिज्ज तु ।।२१५९।।

१ जो पर्याप्त है—परिपूर्ण है, जितना लबा-चौडा परिमाण चाहिये उतना है, वह "अल" कहलाता है।

२ जो दृढ है—मजबूत है—काम आने योग्य है, वह "थिर" कहलाता है।

३ जो अपडिहारी है—अप्रत्यर्पणीय है, गृहस्थ या साधु अथवा आचार्य आदि किसी को पुन देने योग्य नही है अर्थात् जिसके लिये रखने की आज्ञा प्राप्त है, वह "धुव" कहलाता है।

४ जो आगमोक्त है, लक्षण युक्त है अथवा उद्गम आदि दोषो से रहित है अर्थात् शुद्ध एव सुशोभित होने से कल्पनीय है, वह "धारणीय" कहलाता है।

कोई भी उपकरण प्रमाण युक्त होते हुए भी जीर्ण होने से कार्य के अयोग्य हो सकता है, प्रमाण-युक्त और कार्य योग्य होते हुए भी उसको सदा रखने की अनाज्ञा हो सकती है, प्रमाण युक्त, कार्य योग्य और अपडिहारी होते हुए भी लक्षणहीन या दोषयुक्त हो सकता है। अत अल, थिर, धुव, धारिणिज्ज ये चार विशेषण कहे गये है। चारो विशेषणो से युक्त पात्र धारण करने योग्य होता है। ऐसे पात्र को टुकडे-टुकडे करके परठने पर प्रायश्चित्त आता है।

आगमो मे अनेक जगह तीन प्रकार के पात्रो को जातियुक्त कथन किया गया है, उसका आशय यह है कि साधु तीन प्रकार के पात्र ही धारण कर सकता है।

वत्थ-कबल-पायपुछण—इस दूसरे सूत्र मे तीन प्रकार के वस्त्रो का कथन हुआ है। यहाँ निर्युक्ति एव भाष्यकार 'पायपुछण' से वस्त्र का ही निर्देश करते है किन्तु पायपुछण से रजोहरण का अर्थ नही करते। इस दूसरे सूत्र के तथा तीसरे दडादि सूत्र के सबध मे भाष्यगाथा इस प्रकार है—

पायम्मि उ जो गमो, णियमा वत्थम्मि होति सो चेव।
दंडगमादिसु तहा, पुव्वे अवरम्मि य पदम्मि ।।२१६४।।

द्वितीय सूत्र से सबधित इस गाथा मे भी वस्त्र का ही निर्देश है, रजोहरण का संकेत नही है। रजोहरण सबधी दस सूत्र दंडसूत्र के बाद मे हैं ही। उनमे रजोहरण सबधी सभी विषयों का कए

साथ प्रायश्चित्त कथन किया गया है । अत वस्त्रो के साथ जो पायपु छण का कथन है, वह वस्त्र का ही एक उपकरण है और वह रजोहरण से भिन्न है । यदि आगे कहे गये उन १० सूत्रो मे रजोहरण के स्थान पर पायपु छण शब्द का प्रयोग होता तो पायपु छण से रजोहरण अर्थ मानना उचित होता, किन्तु ऐसा नही है । अर्थात् आगमो मे जहाँ-जहाँ रजोहरण मे सबधित विषयो का कथन है वहाँ रजोहरण शब्द का ही प्रयोग हुआ है । पायपु छण शब्द का जहाँ प्रयोग है वहा रजोहरण अर्थ करना उचित नही है ।

अत इस दूसरे सूत्र का भावार्थ है कि "अल थिर धारणिज्ज" वस्त्र को टुकडे करके नही परठना चाहिये । जीर्ण होने पर किसी कार्य के योग्य नही रहे तो परठा जा सकता है । परठने योग्य वस्त्रादि को न परठ कर उपयोग मे ले तो भी प्रायश्चित्त आता है ।

दंड आदि—इस सूत्र मे "अल-थिर" आदि विशेषण नही है । इसका कारण यह कि दड आदि धारण करने योग्य हो अथवा न हो, अनुपयोगी होने पर उनको जिस अवस्था मे हो उसी अवस्था मे परठ देना या छोड देना चाहिये । ये चारो औपग्रहिक उपकरण है, अत कारण के समाप्त होते ही उपयोग के योग्य होने पर भी ये छोडे जा सकते है और अयोग्य होने पर स्थडिल मे परठना हो तो उसी अवस्था मे परठ देना चाहिये । इनके टुकडे करने से हाथ आदि मे लगने की सभावना रहती है । अतः इनके लिये टुकडे करने का निषेध और प्रायश्चित्त समझना चाहिये ।

तीनो प्रकार के वस्त्र यदि जीर्ण हो तो टुकडे करके परठने मे कोई प्रायश्चित्त नही आता है । पात्रो मे से मिट्टी और तु बे के जीर्ण या अयोग्य होने पर टुकडे करके परठने पर प्रायश्चित्त नही आता है । काष्ठ का पात्र यदि जीर्ण या अयोग्य हो तो भी उसके टुकडे करने मे हाथो मे लगने की सभावना रहती है, अत उसके लिये भी दड आदि के समान टुकडे नही करने का समझ लेना चाहिये ।

दड आदि का अलग सूत्र करने का आशय स्पष्ट है कि ये औपग्रहिक उपकरण है और लौटाने का कहकर भी लिये जा सकते है ।

वस्त्र, पात्र के दो अलग सूत्र कहने का आशय भी यह है कि दोनो के परठने मे तथा अप्रतिहारिकता मे कुछ अतर होता है अर्थात् वस्त्र के लेने और लौटाने का व्यवहार नही है और पात्र तो लेप लगाने आदि कई कारणो से कभी लेकर लौटाये भी जाते है । इसी अतर के कारण इनके भिन्न-भिन्न सूत्र कहे है ।

परिभिंदइ—तीन सूत्रो मे भिन्न-भिन्न तीन क्रियाओ का प्रयोग हुआ है । अत **परिभिंदइ**—फोडना । **पलिछिंदइ**—फाडना । **पलिभजइ**—तोडना । इस प्रकार तीनो शब्दो की विशेषता समझनी चाहिये ।

रजोहरण सम्बन्धी विपरीत अनुष्ठान-प्रायश्चित्त—

४३. जे भिक्खू अइरेगपमाण रयहरण धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ ।

४४. जे भिक्खू सुहुमाइ रयहरण-सीसाइ करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

४५. जे भिक्खू रयहरण कंडूसग-बंधेण, बधइ बधंतं वा साइज्जइ ।

४६ जे भिक्खू रयहरणं अविहीए बंधइ, बंधंतं वा साइज्जइ ।

४७. जे भिक्खू रयहरणस्स एक्कं बंधं देइ, देतं वा साइज्जइ ।

४८. जे भिक्खू रयहरणस्स परं तिण्हं बंधाणं देइ, देतं वा साइज्जइ ।

४९. जे भिक्खू रयहरणं अणिसिट्ठं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

५०. जे भिक्खू रयहरणं वोसट्ठं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

५१. जे भिक्खू रयहरणं अहिट्ठइ, अहिट्ठेंतं वा साइज्जइ ।

५२. जे भिक्खू रयहरणं उस्सीस-मूले ठवेइ, ठवेंतं वा साइज्जइ ।

४३ जो भिक्षु प्रमाण से बडा रजोहरण रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है ।

४४ जो भिक्षु रजोहरण की फलियाँ सूक्ष्म बारीक बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

४५ जो भिक्षु रजोहरण को "कडूसग बधन" मे बाँधता है या बाँधने वाले का अनुमोदन करता है ।

४६ जो भिक्षु रजोहरण को अविधि से बाँधता है या बाधने वाले का अनुमोदन करता है ।

४७ जो भिक्षु रजोहरण के एक बधन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

४८ जो भिक्षु रजोहरण के तीन से अधिक बधन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

४९ जो भिक्षु अकल्पनीय रजोहरण धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५०. जो भिक्षु रजोहरण को शरीर-प्रमाण क्षेत्र से दूर रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है ।

५१ जो भिक्षु रजोहरण पर अधिष्ठित होता है या अधिष्ठित होने वाले का अनुमोदन करता है ।

५२ जो भिक्षु सोते समय रजोहरण को शिर के नीचे—सिरहाने रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—"रजोहरण" शब्द का प्रयोग मुख्य रूप मे फलियो के समूह भाग की अपेक्षा से कहा गया है । क्योकि अधिक प्रमाण, सूक्ष्म फलियाँ, अधिष्ठित होना, सिरहाने रखना आदि कार्यों का सम्बन्ध उनके लिए ही सगत होता है ।

१ **अइरेगपमाणं**—फलियो के समूह का घेरा प्रमाणोपेत होना चाहिए । रजोहरण के द्वारा एक बार मे पूंजी हुई भूमि मे अपना पाँव आ सके, इतना प्रमाण फलियो के समूह का होना चाहिए ।

व्याख्याओ मे ३२ अगुल का निर्देश मिलता है, उसे फलियो के घेराव के लिए समझना सुसगत है। ३२ अगुल के घेराव की फलियो का समूह कम से कम १६ अगुल चौडी भूमि का प्रमार्जन करता है। पॉव की लम्बाई १२ से १५ अगुल तक की प्राय होती है। जिससे पू जकर चलने का कार्य सम्यक् प्रकार से सम्पन्न हो सकता है। अत रजोहरण का प्रमाण उसके घेराव की अपेक्षा से समझना चाहिए। ३२ अगुल का प्रमाण रजोहरण की डडी के विषय मे नही समझना चाहिए।

९ वर्ष का साधु अढाई फुट की अवगाहना वाला हो सकता है और २० वर्ष का साधु ६ फुट का भी हो सकता है। सब के लिए डडी की लम्बाई ३२ अगुल का नियम उपयुक्त नही है। ३२ अगुल का घेराव भी एकातिक न समझकर उत्कृष्ट सीमा का समझ सकते है।

सूत्रपाठ से तो इतना ही भाव समझना पर्याप्त है कि शरीर तथा पॉव की लम्बाई के अनुसार पू जने का कार्य सम्यक प्रकार से सम्पन्न हो सके, उतना घेराव या लम्बाई का रजोहरण होना चाहिए। उससे अधिक घेराव अथवा लम्बाई अनावश्यक होने से वह प्रमाणातिरिक्त रजोहरण कहलाता है। उपलक्षण से प्रमाण से कम करना भी दोष व प्रायश्चित्त योग्य समझ लेना चाहिए।

२. **सुहुमाइ रयहरणसीसाइ**—सम्पूर्ण फलियो के घेराव रूप रजोहरण के प्रमाण के विषय को कहने के बाद उन फलियो के परिमाण का कथन इस पद से हुआ है। रजोहरणशीर्ष अर्थात् फलियो का शीर्षस्थान जो कि डोरे मे पिरोया जाता है, वह ज्यादा सूक्ष्म-पतला होगा तो फली भी सूक्ष्म होगी। जिससे कुल फलियो की सख्या ज्यादा होगी तथा सूक्ष्म शीर्षफलियाँ ज्यादा टिकाऊ भी नही होती है, अत प्रत्येक फली व उसका शीर्ष स्थान भी सूक्ष्म नही होना चाहिए किन्तु वे मध्यम प्रमाण वाले होने चाहिए।

३. **'कडूसग बंधण'—कडूसगबधेणं, तज्जइतरेण जो उरयहरणं।**
बधति कंडूसो पुण पट्ट उ आणादिणो दोसा ।। २१७५ ।।

भावार्थ—जिस जाति (ऊन आदि) का रजोहरण हो उस जाति के या अन्य जाति के डोरे मे फलियो को आपस मे बॉधना "कडूसग बधन" है और कपडे की पट्टी से बॉधना "कडूसग पट्ट" है। ये दोष रूप हैं, अत इनका प्रायश्चित्त है।

भाष्य मे कहा है कि रजोहरण की फलियो के जीर्ण होने पर यदि वे टूट कर बिखरती हो तो उनको सम्बद्ध कर देने से बिखरे भी नही तथा प्रतिलेखन भी सुविधा से हो सके, यथा—**"एतेहि कारणेहि तमेव थिग्गल-कारेण सम्बद्ध करेंति, जेण एगपडिलेहणा भवति** ।। २१७७ ।। इस व्याख्या से भी फलियो को एक दूसरी से सम्बद्ध करना यही "कडूसग बधन" का अर्थ है।

४ **अविहीए**—रजोहरण को कपडे की पट्टी से बॉधना या पूर्ण रजोहरण को एक वस्त्र या थैली मे बॉधना तथा दुष्प्रतिलेख्य (प्रतिलेखन के अयोग्य) व दुष्प्रमार्ज्य (प्रमार्जन के अयोग्य) हो, इस प्रकार रजोहरण बॉधना 'अविधि बधन' है।

५ **पर तिण्ह**—काष्ठदड से रजोहरण व्यवस्थित रूप मे बधा रहे, इसके लिए तीन स्थानो पर बधन लगाये जा सकते है। तीन से अधिक स्थानपर बधन लगाना रजोहरण मे आवश्यक नही है। अविवेक से ज्यादा बधन लगावे या बिना प्रयोजन एक भी बधन लगावे तो प्रायश्चित्त आता है।

६. अणिसिट्ठं—"अणिसिट्ठं नाम तित्थकरेहि अदिण्ण" अहवा बितिओ आएसो—जं गुरु अणेण अणणुण्णायं, त अणिसिट्ठं ।"

गाथा— पचातिरित्त दव्वे उ, अचित्त दुल्लभ च दोस तु ।
भावम्मि वन्नमोल्ला, अणणुण्णायं व ज गुरुणा ।। २१८२ ।।

ऊन का, ऊंट के केशो का, सन का, वच्चकधास का और मूज का ये, पाच प्रकार का रजोहरण रखने की तीर्थकर भगवान् की आज्ञा है।—**बृह. उ. २, तथा ठाणांग अ. ५** । इनसे भिन्न प्रकार का रजोहरण रखना "**अणिसिट्ठ**" कहा गया है । भाष्य मे भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के भेद से यह कहा गया है कि पाँच प्रकार के रजोहरण से भिन्न प्रकार का अथवा दुर्लभ और बहुमूल्य तथा गुरु की आज्ञा के बिना ग्रहण किया गया रजोहरण "**अणिसिट्ठ**" होता है ।

७. 'वोसट्ठ'—आउग्गह खेत्ताओ, परेण ज त तु होति वोसट्ठं ।
आरेण अवोसट्ठ, वोसट्ठे धरेंत आणादी ।। २१८५ ।।

७ आत्मप्रमाण अर्थात् शरीरप्रमाण क्षेत्र से दूर रखा गया रजोहरण **'वोसट्ठ'** कहा जाता है और आत्मप्रमाण अवग्रह के अन्दर हो तो **'अवोसट्ठ'** कहा जाता है । 'वोसट्ठ रखने पर आज्ञा का उल्लघन होता है तथा प्रायश्चित्त आता है ।

भावार्थ यह है कि रजोहरण को सदा अपने साथ व पास मे ही रखना चाहिए । शरीर प्रमाण —एक धनुष जितना दूर रहने पर प्रायश्चित्त नही आता है । उससे ज्यादा दूर होने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

प्रचलित प्रवृत्ति मे कोई ५ हाथ की मर्यादा करते है । कोई पूरे मकान की मर्यादा भी कहते है । किन्तु आत्मप्रमाण कहना अधिक उचित है, आवश्यकता होने पर सरलता से उसका शीघ्र उपयोग हो सकता है ।

'मुहपोत्तिय णिसेज्जाए एसेव गमो वोसट्ठा वोसट्ठेसु पुव्वावरपदेसु ।। २१८८ ।।

इस प्रकार भाष्यकार ने मुखवस्त्रिका और निषद्या (आसन) के लिए भी उपलक्षण से 'अवोसट्ठ' 'वोसट्ठ' का विवेक रखना सूचित किया है ।

८. अहिट्ठेइ—अधिष्ठित होने मे खडा होना, बैठना तथा उस पर सोना आदि का समावेश हो सकता है । 'उस्सीस-मूले'—शिर के नीचे देने का अलग सूत्र होने से उसके सिवाय सभी सम्भवित क्रियाओ का अधिष्ठित होने मे समावेश समझ लेना चाहिए । पावो का या शरीर का प्रमार्जन करने मे तो रजोहरण का उपयोग किया जाता है किन्तु आसन या शय्या के रूप मे उसका उपयोग नही करना चाहिये । शिर के नीचे देना सिरहाना करना कहलाताहै और शेष अग मे सोना, बैठना आदि अधिष्ठित होना कहलाता है । अर्थात् शरीर के किसी भी अवयव के नीचे रजोहरण को दबाना नही कल्पता है ।

९. उस्सीसमूले—इस सूत्र की चूर्णि के बाद उद्देशक का मूल पाठ समाप्त हो जाता है । अत' उपलब्ध ग्यारहवा "तुयट्टेइ" का सूत्र बाद मे बढाया गया प्रतीत होता है । भाष्यकार ने भी

"तुयट्टेंते" शब्द का प्रयोग "उस्सीसमूले" के विश्लेषण के लिये किया है और "उस्सीसमूले ठवेइ" सूत्र के विवेचन मे ही व्याख्या पूर्ण कर दी है। "तुयट्टेइ" क्रिया वाला स्वतन्त्र सूत्र नही दिखाया है। वह सूत्र चूर्णिकार व भाष्यकार के सामने नही था, ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता है। अत यहा रजोहरण के कुल १० सूत्र ही सगत प्रतीत होते हैं।

भाष्य गाथा—"जे भिक्खू तुयट्टेंते, रयहरण सीसगे ठवेज्जाहि" ।। २१९२ ।।

"उस्सीसमूले ठवेइ" की व्याख्या रूप यह भाष्य गाथा है। इसमे "तुयट्टेंते" का प्रयोग देख कर किसी ने नया सूत्र लिख दिया हो, ऐसा भी सम्भव हो सकता है। किन्तु गद्याश का यह स्पष्टार्थ है कि 'जो भिक्षु सोते समय रजोहरण को सिरहाने रखता है, वह प्रायश्चित्त का पात्र होता है।' अत इस गद्याश से भी अलग-अलग दो सूत्र की कल्पना करना उचित नही होता है।

पांचवें उद्देशक का साराश—

१-११ वृक्ष स्कन्ध के आस-पास की सचित्त पृथ्वी पर खडे रहना, बैठना, सोना, आहार करना, मल त्याग करना, स्वाध्यायादि करना।

१२ अपनी चादर (आदि) गृहस्थ के द्वारा सिलवाना।

१३ छोटी चादर आदि को बाधने की डोरिया लम्बी करना।

१४ नीम आदि के अचित्त पत्तो को पानी से धोकर खाना।

१५-२२ शय्यातर के या अन्य के पादप्रोछन व दण्ड आदि निर्दिष्ट समय पर नही लौटाना।

२३ शय्या-सस्तारक लौटाने के बाद पुन आज्ञा लिये बिना उपयोग में लेना।

२४ ऊन, सूत आदि कातना।

२५-३० सचित्त, रगीन तथा अनेक रगो से आकर्षक दण्ड बनाना या रखना।

३१-३२ नये बसे हुए ग्रामादि मे या नई खानो मे गोचरी के लिये जाना।

३३-३५ मुख आदि से वीणा बनाना या बजाना तथा अन्य वाद्य आदि बजाना।

३६-३८ औद्देशिक, सप्राभृत, सपरिकर्म शय्या मे प्रवेश करना या रहना।

३९ सभोगप्रत्ययिक क्रिया लगने का निषेध करना।

४०-४१ उपयोग मे आने योग्य पात्र को फोडकर या वस्त्र, कम्बल, पादप्रोछन के टुकड करके परठना।

४२ दण्ड लाठी के टुकडे करके परठना।

४३-५२ रजोहरण-प्रमाण से बडा बनाना, फलिया सूक्ष्म बनाना, फलियो को आपस मे सबद्ध करना, अविधि से बाधकर रखना, अनावश्यक एक भी बन्धन करना, आवश्यक भी तीन से अधिक बन्धन करना।

पाच प्रकार के सिवाय अन्य जाति का रजोहरण बनाना, दूर रखना, पाव आदि के नीचे दबाना, सिर के नीचे रखना।

इत्यादि प्रवृत्तियो का लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

उपसहार— प्रारम्भ के चार उद्देशको मे सपूर्ण सूत्रो को दो विभागो मे सग्रह किया है किन्तु

इस उद्देशक के ५२ सूत्रो का दो विभागो मे सग्रह न करके मात्र सक्षिप्त निर्देश ही कर देना पर्याप्त है ।

सूत्र न २३ के विषय का व्यवहार सूत्र के आठवे उद्देशक मे तथा सूत्र ३६ व ३८ के विषयो का आचाराग श्रु० २ अ० २ उ० १ मे विधान हुआ है, इस उद्देशक के शेष सभी विषय अन्य आगम मे नही आये है, किन्तु विधि-निषेध की स्पष्ट सूचना करते हुए प्रायश्चित्त का विधान करने वाले है । यह इस उद्देशक की पूर्व के उद्देशको से विशेषता है ।

१ इस उद्देशक के ३ सूत्रो के विषय का कथन अन्य आगमो मे है यथा— सूत्र —२३, ३६, ३८ ।

२ इस उद्देशक के शेष ४९ सूत्रो के विषय का कथन अन्य आगमो मे नही है ।

।। पांचवाँ उद्देशक समाप्त ।।

छठा उद्देशक

अब्रह्म के संकल्प से किये जाने वाले कृत्यों के प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण वडियाए विण्णवेइ, विण्णवेंत वा साइज्जइ ।

२-१०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए हत्थकम्मं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ । एवं पढमुद्देसगमेण णेयव्वं जाव जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंगादाणं अण्णयरसि अचित्तंसि सोयंसि अणुप्पवेसित्ता सुक्कपोग्गले णिग्घायइ, णिग्घायंत वा साइज्जइ ।

११. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अवाउडि सय कुज्जा, सय बूया, करेंत वा, बूएंत वा साइज्जइ ।

१२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए कलह कुज्जा, कलह बूया, कलहवडियाए बाहिं गच्छइ, गच्छंत वा साइज्जइ ।

१३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए लेह लिहइ, लेह लिहावेइ, लेहवडियाए बाहिं गच्छइ, गच्छंत वा साइज्जइ ।

१४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए पोसतं वा पिट्ठंतं वा भल्लायण उप्पाएइ, उप्पाएत वा साइज्जइ ।

१५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए पोसंत वा पिट्ठंत वा भल्लायएण उप्पाएत्ता ।

सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंत वा, पधोवेंत वा साइज्जइ ।

१६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए पोसंतं वा, पिट्ठंत वा, भल्लायएण उप्पाएत्ता सीसोदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा, उच्छोलित्ता, पधोवित्ता, अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिपेज्ज वा, विलिपेज्ज वा आलिपंत वा, विलिपंतं वा साइज्जइ ।

१७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए पोसंत वा पिट्ठंतं वा, भल्लायएण उप्पाएत्ता, सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा, उच्छोलेत्ता पधोवित्ता, अण्णयरेणंआलेवण-जाएणं आलिंपित्ता विलिंपित्ता, तेल्लेण वा जाव णवणीएण वा अब्भेगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंत्तं वा साइज्जइ ।

१८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए पोसंत वा पिट्ठंतं वा,
भल्लायएण उप्पाएत्ता
सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेत्ता पधोवित्ता,
अण्णयरेण आलेवणजाएण आलिपित्ता विलिंपित्ता तेल्लेण वा जाव णवणीएण वा अब्भगेत्ता मक्खेत्ता, अण्णयरेण धूवजाएण धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा धूवेंतं वा पधूवेंतं वा साइज्जइ ।

१९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए "कसिणाइ" वत्थाइ धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

२०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए "अहयाइ" वत्थाइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

२१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए "धोयरत्ताइ" वत्थाइ धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ ।

२२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए "चित्ताइ" वत्थाइ धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ ।

२३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए "विचित्ताइ" वत्थाइ धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ ।

२४-७७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जत वा पमज्जंतं वा साइज्जइ ।

एव तइयउद्देसगगमेण णेयव्व जाव जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए गामाणुगाम दुइज्जमाणे अप्पणो सीसवुवारिय करेइ, करेतं वा साइज्जइ ।

७८ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए खीर वा, दहि वा, णवणीय वा, सप्पि वा, गुल वा, खड वा, सक्करं वा, मच्छडिय वा, अण्णयर पणीय आहार आहारेइ, आहारेंत वा साइज्जइ ।
त सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइय ।

१ जो भिक्षु स्त्री को मैथुन सेवन के लिये कहता या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

२-१०. जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से हस्तकर्म करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । इस तरह प्रथम उद्देशक के सूत्र १ से ९ तक के समान पूरा आलापक यहा जान लेना चाहिये यावत् जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से अगादान को किसी अचित स्रोत—छिद्र मे प्रविष्ट करके शुक्र पुद्गल निकालता है या निकालने वाले का अनुमोदन करता है ।

११ जो भिक्षु मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री को स्वय वस्त्ररहित करता है या वस्त्ररहित होने के लिए कहता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१२ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से कलह करता है या कलह उत्पादक वचन कहता है या कलह करने के लिए बाहर जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१३ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथन सेवन के सकल्प से पत्र लिखता है, लिखवाता है या पत्र लिखने के लिये बाहर जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१४ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री की योनि या अपानद्वार के अग्र भाग को "भिलावा" आदि औषधि के द्वारा शोथ युक्त अर्थात् पीडायुक्त करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री की योनि या अपानद्वार के अग्र भाग को भिलावा आदि औषधि के द्वारा रोगग्रस्त करके उसे अचित्त शीतल जल या उष्ण जल से एक बार या अनेक बार धोता है या धोने वाले का अनुमोदन करता है।

१६ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री की योनि या अपानद्वार के अग्र भाग को भिलावा आदि औषधि के द्वारा रोग ग्रस्त करके अचित्त शीतल या उष्ण जल से धोकर किसी प्रकार का लेप एक बार या अनेक बार लगाता है या लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

१७ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन से सकल्प के स्त्री की योनि या अपानद्वार के अग्र भाग को भिलावा आदि औषधि के द्वारा रोगग्रस्त करके अचित्त शीतल जल या उष्ण जल मे धोकर किसी प्रकार का लेप लगाकर तेल यावत् मक्खन से एक बार या अनेक बार मालिश करता है या मालिश करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री की योनि या अपानद्वार के अग्रभाग को भिलावा आदि औषधि के द्वारा रोगग्रस्त करके अचित्त शीतल या उष्ण जल स धोकर, कोई एक प्रकार का लेप लगाकर, तेल यावत् मक्खन से मालिश करके किसी सुगधित पदार्थ स एक बार या अनेक बार सुवासित करता है या सुवासित करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से 'बहुमूल्य वस्त्र' रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२० जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से 'अखण्ड वस्त्र (थान)' रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२१ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से 'धोकर रग (नील आदि) लगाए हुए वस्त्र' रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२२ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प मे 'रगीन वस्त्र' रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२३ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से 'अनेक रग के या चित्रित (छपाई युक्त) वस्त्र' रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२४-७७ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से अपने पैरो का एक बार या अनेक बार घर्षण करता है या घर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है, इस प्रकार तीसरे उद्देशक के सूत्र १६ से ६९ तक के आलापक के समान यहा जान लेना चाहिए यावत् जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपना मस्तक ढंकता है या ढँकने वाले का अनुमोदन करता है।

७८ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से दूध, दही, मक्खन, घी, गुड, खाड, क्कर या मिश्री आदि पौष्टिक आहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उपर्युक्त ७८ सूत्रो मे कथित दोष-स्थानो का सेवन करने वाले को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त गाता है।

विवेचन - माउग्गाम 'मातिसमाणो गामो मातुगामो, मरहट्ठविसयभासाए' वा "इत्थी' ाउग्गामो भण्णति" —माता के समान है शरीरावयव जिसके उसे अर्थात् स्त्री को मातृग्राम कहते है था महाराष्ट्र देश की भाषा मे भी स्त्री को "माउग्गाम" कहा जाता है। अत ये दोनो पर्यायवाची ब्द समझना चाहिये।

विण्णवेइ—'विण्णवण -विज्ञापना—इह तु प्रार्थना परिगृह्यते।'

वेदमोहनीयकर्म का प्रबल उदय होने पर जो भिक्षु आगमवाक्यो के चितन से उसे निष्फल ही करता है और स्त्री से प्रार्थना करता है अर्थात् मैथुन सेवन के लिए कहता है तो भाव से ब्रह्मचर्य ग होने के कारण अथवा मैथुन सेवन करने पर चतुर्थ व्रत के भग होने से उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त गाता है।

आगमकार ब्रह्मचर्यव्रत की दुष्करता का वर्णन इस प्रकार करते है—

विरई अबंभचेरस्स, कामभोग रसण्णुणा।
उग्गं महव्वय बंभं, धारेयव्वं सुदुक्कर ॥ —उत्त अ १९, गा २८

दुक्खं बंभवयं घोर, धारेउं अमहप्पणो। —उत्त अ १९, गा ३३

कामभोगो के रस के अनुभवी के लिए अब्रह्मचर्य से विरत होना और उग्र एव घोर ब्रह्मचर्य हाव्रत को धारण—पालन करना अत्यन्त कठिन है।

जो आत्मा महान् नही है किन्तु क्षुद्र है, उसके लिए घोर दुष्कर ब्रह्मचर्य महाव्रत को धारण करना अतीव कष्टकर है।

आगमकार ब्रह्मचर्य व्रत के लिये उत्साहित करते हुए कहते है—

मूलमेय अहम्मस्स, महादोससमुस्सयं।
तम्हा मेहुणसंसग्ग, णिग्गथा वज्जयंति ण ॥ —दसवे अ. ६, गा, १७

मैथुन अधर्म का मूल है और महान् दोषो का समूह है अत निर्ग्रंथ मैथुन ससर्ग का वर्जन करते है।

'ससार-मोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण हु कामभोगा। —उत्तरा १४ गा,

कामभोग मोक्ष के विरोधी है अर्थात् ससार बढाने वाले है अतएव ये अनर्थो की खान है।

आगमकार अनेक सूत्रो मे यथाप्रसग ब्रह्मचर्य महाव्रत की सुरक्षा के लिये सावधान करते हैं —

१ दशवै अ ८, गा ५३-६० २ उत्त अ ८, गा ४-६, १८-१९
३ दशवै अ २, गा २-९ ४ उत्त अ ९, गा ५३

५ उत्त अ १३, गा. १६-१७ ६ उत्त अ १९, गा १७
७ उत्त अ २५, गा २७, ४१-४३ ८ उत्त अ ३२, गा ९-२०
९ उत्त अ २, गा १६-१७ १० उत्त अ १, गा २६

११ सूयगडाग श्रु १, अ. ४, ब्रह्मचर्य विषयक है ।

१२ आचारागसूत्र अ ५, उ ४ मे सूत्रकार ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए अनेक उपायो का कथन करते हुए अन्तिम उपाय सथारा करने का सूचित करते है ।

१३ आचारागसूत्र अ ८, उ ४ मे सूत्रकार ने ब्रह्मचर्य की सुरक्षा हेतु फॉसी लगाकर मर जाने के लिए भी सूचित किया है और ऐसे मरण को कल्याणकारी कहा है ।

१४ 'नव वाड' और 'दस ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान' इन दोनो मे प्राय समान विषयो का प्रतिपादन किया गया है । ब्रह्मचय की पूर्ण सुरक्षा के लिए इनका पूर्ण रूप से पालन अनिवाय है ।

'नव वाड' का पालन न करने पर यदा-कदा मोहकर्म का प्रबल उदय हो जाता है जिससे इस पूरे उद्देशक मे वर्णित सभी क्रियाये हो सकती है । अतिचारो का या अनाचारो का आचरण करने पर साधक अपने को सयम मे स्थिर नही रख सकता है । आगमो मे अन्य अन्धो की अपेक्षा मोहाध को प्रगाढ अन्ध कहा है । अत साधक को सतत सावधान रहकर आगमानुसार जीवनयापन करना चाहिए ।

इस उद्देशक के सभी सूत्रो मे ब्रह्मचर्य महाव्रत को दूषित करने का प्रायश्चित्त कहा है । साथ ही ब्रह्मचर्य व्रत को दूषित करने वाली अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ कही गई है और सभी सूत्रो मे 'माउग्गामस्स मेहुणवडियाए' ये पद लगाये गये है । इसका कारण यह है कि --प्रत्येक प्रवृत्ति मे मूल सकल्प 'स्त्री के साथ मैथुन सेवन करने का है ।'

छट्ठे और सातवे उद्देशक मे ब्रह्मचर्य भग के विस्तृत प्रायश्चित का वर्णन होने के कारण भी इस निशीथसूत्र को गोपनीय माना गया है । यहाँ गोपनीयता का तात्पर्य यह है कि इस सूत्र का स्वाध्यायी अत्यधिक योग्य हो और इसके अध्ययन मे उसकी आत्मा किसी प्रकार के विषय-कषाय मे प्रवृत्त न हो ।

प्रकाशन के इस युग मे मुद्रण-यन्त्रो के उत्तरोत्तर विकास काल मे किसी प्रसिद्ध आगम या ग्रन्थ का प्रकाशन न हो यह असभव है । फिर भी इस सूत्र के स्वाध्यायी को चाहिए कि वह अपनी विकृत प्रवृत्तियो को शात रखने का दृढ निश्चय कर ले, तभी इस सूत्र का अध्ययन उसके लिए समाधि का कारण हो सकता है ।

सूत्र न १३ से पत्रलेखन की जानकारी मिलती है । इस सूत्र के अनुसार आगम काल मे साधु समुदाय मे लेखन की प्रवृत्ति और लेखन सामग्री रखने की परम्परा भी प्रचलित थी, ऐसा ज्ञात होता है । मैथुन के सकल्प से पत्र लिखने का प्रायश्चित्त इस उद्देशक मे कहा है । मैथुन सकल्प के अतिरिक्त लिखने की प्रवृत्ति का प्रायश्चित्त अन्य उद्देशको मे कही नही कहा गया है । आगमो का व्यवस्थित लेखनकार्य देवर्द्धिगणी के समय हुआ होगा, तो भी उसके पहले साधु समुदाय मे लेखनप्रवृत्ति का व लेखनसामग्री के रखने का सर्वथा निषेध रहा हो ऐसा प्रतीत नही होता । इस सूत्र से यह स्पष्ट है ।

पोषः—मृगीपदमित्यर्थं तस्य अतानि पोषंतानि। पिट्ठीए अत पिट्ठंत-अपानद्वारमित्यर्थं। उत् प्राबल्येन पाकयति-उप्पाएति, दसणे-कोउएण—'उप्पक्क ममेय दसेइ' त्ति काउ।

स्त्री के अपानद्वार या योनिद्वार मे किसी प्रकार की पीडा होने पर वह मुझ से कहेगी या दिखायेगी या औषध पूछेगी इत्यादि सकल्प से 'भिलावा आदि औषध' किसी भी उपचार के निमित्त से देना, जिससे मैथुन के सकल्प को सफल करने का अवसर मिलेगा।

अथवा पति उसका परित्याग कर दे, इस सकल्प से स्त्री के पूछने पर या अपने मलिन विचारो से ऐसी औषध या लेप देकर उस स्थान को रोगग्रस्त करना।

इसका विवेचन भाष्य गाथा २२६९ से २२७२ तक है। धोखे म ऐसा करने पर तो वह पति से शिकायत करे इत्यादि दोषो की सम्भावना रहती है। अत स्त्री की इच्छा से करने पर ही फिर उसे ठीक करने की जो क्रियाएँ की जाती है, उनका कथन आगे के सूत्रो मे है।

छटठे उद्देशक का साराश—

१-१० कुशील-सेवन के लिए स्त्री को निवेदन करना, हस्त कर्म करना, अगादान का सचालन आदि प्रवृत्ति करना यावत् शुक्रपात करना।

११-१३ विषयेच्छा से स्त्री को वस्त्ररहित करना, वस्त्ररहित होने के लिये कहना, कलह करना, पत्र लिखना।

१४-१८ मैथुन-सेवन के सकल्प से स्त्री की योनि या अपानद्वार का लेप, प्रक्षालन आदि कार्य करना।

१९-२३ बहुमूल्य, अखड, धुले, रगीन और रगबिरगे वस्त्र रखना।

२४-७७ शरीर का परिकर्म करना।

७८ दूध, दही आदि पौष्टिक आहार करना इत्यादि प्रवृत्तिया मथुन के सकल्प स करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

चतुर्थ महाव्रत तथा उसकी सुरक्षा के सम्बन्ध मे अनेक सूचनाएं आगमो मे दी गई हे। फिर भी इस उद्देशक के ७८ सूत्रो मे मैथुन के सकल्प से कैसी-कैसी प्रवृत्तिया हो सकती है, उनका कथन है जो अन्य सूत्रो के वर्णन से भिन्न प्रकार की है। यह इस उद्देशक की विशेषता है।

॥ छठा उद्देशक समाप्त ॥

सातवां उद्देशक

माला-निर्माणादि के प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

१. तणमालियं वा, २. मुंजमालियं वा, ३, वेंतमालियं वा, ४. कट्ठमालियं वा, ५, मयणमालियं वा, ६. भिंडमालियं वा, ७. पिच्छमालियं वा, ८. हड्डमालियं वा, ९. दंतमालियं वा, १०. सखमालियं वा, ११. सिंगमालियं वा, १२. पत्तमालियं वा, १३ पुप्फमालियं वा, १४ फलमालियं वा, १५, बीयमालियं वा, १६. हरियमालियं वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए तणमालियं वा 'जाव' हरियमालियं वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए तणमालियं वा 'जाव' हरियमालियं वा पिणद्धेइ, पिणद्धेंतं वा साइज्जइ।

१ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प मे—

१ तृण की माला, २ मूंज की माला, ३ वेंत की माला, ४ काष्ठ की माला, ५ मेण (मोम) की माला ६ भीड की माला ७ मोरपिच्छी की माला, ८ हड्डी की माला, ९ दात की माला, १० सख की माला, ११ सीग की माला, १२ पत्रो की माला, १३ पुष्पो की माला, १४ फलो की माला, १५ बीजो की माला या १६ हरित (वनस्पति) की माला बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

२ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प मे तृण की माला यावत् हरित की माला धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प मे तृण की माला यावत् हरित की माला पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—सूत्रोक्त मालाए विभूषा का एक अग है। मैथुन का सकल्प सिद्ध करने के लिये कभी-कभी विभूषित होना भी आवश्यक होता है।

शख की माला के स्थान पर चूर्णिकार ने कौडी की माला का उल्लेख किया है। सम्भवत उनके सामने 'शख' के स्थान पर 'कौडी' का पाठ रहा होगा।

बीज व हरित सम्बन्धी दो मालाओं का पाठ चूर्णिकार के सामने नही रहा होगा। 'फल-माला' तक शब्दो की व्याख्या की गई है।

इस सूत्र के मूल पाठ मे तथा शब्दो के क्रम व सख्या मे भिन्नता मिलती है। चूर्णि के अनुसार क्रम को सुधारा गया है। कुल शब्द १६ रखे है, चूर्णि मे १३ शब्दो की ही व्याख्या है। शख, फल,

बीज, हरित माला की व्याख्या नही है तथा वराटिका (कौडी) शब्द की व्याख्या अधिक है। वह शब्द किसी भी प्रति मे उपलब्ध नही है।

इन तीन सूत्रो मे तीन क्रियाये कही गई है—

प्रथम सूत्र मे 'करेइ' क्रिया का कथन है।

द्वितीय सूत्र मे 'धरेइ' क्रिया का कथन है।

तृतीय सूत्र मे 'पिणद्धेइ' क्रिया का कथन है।

यहाँ करेइ का अर्थ करना है अर्थात् बनाना है, धरेइ का अर्थ धारण करना है अर्थात् अपने पास रखना है। पिणद्धेइ का अर्थ पहनना है अर्थात् स्वय पहनता है इत्यादि। इस प्रकार तीनो क्रियाओ के भिन्न-भिन्न अर्थ है।

इसी प्रकार आगे के सूत्रो मे इन तीन क्रियाओ का प्रयोग है, उनमे भी सर्वत्र उक्त अर्थ ही होता है।

धातुओं के निर्माण आदि का प्रायश्चित्त—

४ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

१ अयलोहाणि वा, २ तबलोहाणि वा, ३ तउयलोहाणि वा, ४ सीसलोहाणि वा, ५ रुप्प-लोहाणि वा, ६ सुवण्णलोहाणि वा करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

५ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अयलोहाणि वा जाव सुवण्णलोहाणि वा धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ।

६ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अयलोहाणि वा जाव सुवण्णलोहाणि वा पिणद्धेइ, पिणद्धेंतं वा साइज्जइ।

४ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से—

१ लोहे का कडा, २ ताबे का कडा, ३ त्रपुष का कडा, ४ शीशे का कडा, ५ चादी का कडा, ६, सोने का कडा बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

५ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से लोहे का कडा यावत् सोने का कडा धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से लोहे का कडा यावत् सोने का कडा पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—धमंत फुमंतस्स संजम—छक्कायविराहणा। राउले मुइज्जइ तत्थ बंधणादिया य दोसा। "जम्हा एते दोसा तम्हा णो करेति, णो धरेति, णो पिणद्धेति"॥ —चूर्णि॥

लोहे आदि को गर्म करने के लिये धमण के द्वारा अग्नि जलाने मे, वायु को प्रेरित करने मे सयम की एव छ काय जीवो की विराधना होती है। 'राउल'--एक प्रकार का यन्त्र है जिसमे बने हुए छिद्रो मे मोटे तार डालकर तथा उन्हे खीच कर पतले तार बनाकर तैयार किये जाते है' उसमे तारो का डालना, उन्हे कसना एव खीचना आदि क्रियाजन्य दोष होते है इत्यादि दोष है, अत भिक्षु कडे या उनके तार नही बनाता है, नही रखता है एव नही पहनता है।

सूत्र न १, २, ३ मे मालाओ के बनाने, रखने और पहनने का कहा है।

सूत्र न ७, ८, ९ मे आभूषण बनाने, रखने और पहनने का कहा है। अत सूत्र ४, ५, ६, से लोहे के कडे पहनना—यह अर्थ करना उपयुक्त लगता है।

कडे हाथो मे या पाँवो मे अपनी रुचि अनुसार पहने जा सकते है।

सूत्र न ६ मे 'पिणद्धेइ' क्रिया के स्थान पर 'परिभुजइ' क्रिया का पाठ उपलब्ध होता है। चूणिकार ने 'पिणद्धेइ' क्रिया का स्वीकार करके ही व्याख्या की है तथा सत्रहवे उद्देशक मे 'पिणद्धेइ' क्रिया का सकेत किया है। अत यहा मूल पाठ मे 'पिणद्धेइ' क्रिया ही रखी गई है।

आभूषण-निर्माण आदि के प्रायश्चित्त–

७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए-

१. हाराणि वा, २. अद्धहाराणि वा, ३ एगावली वा, ४ मुत्तावली वा, ५. कणगावली वा, ६. रयणावली वा, ७. कडगाणि वा, ८ तुडियाणि वा, ९. केऊराणि वा, १०. कुडलाणि वा, ११. पट्टाणि वा, १२. मउडाणि वा, १३ पलबसुत्ताणि वा, १४. सुवण्णसुत्ताणि वा करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए हाराणि वा 'जाव' सुवण्णसुत्ताणि वा धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ।

९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए हाराणि वा 'जाव' सुवण्णसुत्ताणि वा पिणद्धेइ, पिणद्धेंत वा साइज्जइ।

७ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से--

१ हार, २ अर्द्धहार, ३ एकावली, ४ मुक्तावली, ५ कनकावली, ६ रत्नावली, ७ कटिसूत्र, ८ भुजबध, ९ केयूर-कठा, १० कुडल, ११ पट्ट, १२ मुकुट, १३ प्रलबसूत्र या १४ सुवर्णसूत्र बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

८ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से हार 'यावत्' सुवर्णसूत्र धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

९ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से हार 'यावत्' सुवर्णसूत्र पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—चूर्णिकार के सामने जो प्रति रही होगी उसके मूल पाठ मे और शब्दो के क्रम मे प्रस्तुत प्रतियो से भिन्नता रही है ।

चूर्णिकार 'कुडल' शब्द की सर्वप्रथम व्याख्या करते है और भाष्यकार 'कडगाई आभरणा' इस प्रकार का कथन करते है ।

आचारागसूत्र श्रु २ अ १३, मे तथा श्रु २, अ १५ मे 'हार' शब्द प्रारम्भ मे है तथा आचारागसूत्र श्रु २, अ २, उ १ मे 'कुडल' शब्द प्रारम्भ मे है ।

चूर्णिकार के सामने सभवत आचाराग श्रु २, अ २, उ १ के समान पाठ था, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है । प्राय उन शब्दो की ही क्रमपूर्वक व्याख्या की गई है । दोनो तरह के प्रमाण मिलने के कारण इसे केवल विवक्षाभेद समझना चाहिये ।

वस्त्र-निर्माण आदि के प्रायश्चित्त—

१०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

१. आइणाणि वा, २. सहिणाणि वा, ३. सहिणकल्लाणाणि वा, ४. आयाणि वा, ५. कायाणि वा, ६. खोमियाणि वा, ७ दुगुल्लाणि वा, ८. तिरीडपट्टाणि वा, ९. मलयाणि वा, १०. पत्तुण्णाणि वा, ११. असुयाणि वा, १२. चिणसुयाणि वा, १३. देसरागाणि वा, १४. अमिलाणि वा, १५. गज्जलाणि वा, १६. फालिहाणि वा, १७. कोयवाणि वा, १८. कबलाणि वा, १९. पावराणि वा, २०. उद्दाणि वा, २१. पेसाणि वा, २२. पेसलेसाणि वा, २३ किण्हमिगाईणगाणि वा, २४. नीलमिगाईणगाणि वा, २५ गोरमिगाईणगाणि वा, २६. कणगाणि वा, २७. कणगताणि वा, २८. कणगपट्टाणि वा, २९. कणगखचियाणि वा, ३०. कणगफुसियाणि वा, ३१. वग्घाणि वा, ३२. विवग्घाणि वा, ३३. आभरण-चित्ताणि वा, ३४. आभरण-विचित्ताणि वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

११. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए आइणाणि वा, 'जाव' आभरण-विचित्ताणि वा धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ ।

१२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए आइणाणि वा 'जाव' आभरण-विचित्ताणि वा पिणद्धेइ, पिणद्धेंत वा साइज्जइ ।

१० जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से

१ मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र,
२ सूक्ष्म वस्त्र,
३ सूक्ष्म व सुशोभित वस्त्र,
४ अजा के सूक्ष्म रोम से निष्पन्न वस्त्र,
५ इन्द्रनीलवर्णी कपास मे निष्पन्न वस्त्र,
६ सामान्य कपास से निष्पन्न सूती वस्त्र,
७ गौड देश मे प्रसिद्ध या दुगुबल वृक्ष से निष्पन्न विशिष्ट कपास का वस्त्र,
८ तिरीड वृक्षावयव से निष्पन्न वस्त्र,

९ मलयागिरिचन्दन के पत्रो से निष्पन्न वस्त्र,
१० बारीक बालो-ततुओ से निष्पन्न वस्त्र,
११ दुगुल वृक्ष के अभ्यतरावयव से निष्पन्न वस्त्र,
१२ चीन देश मे निष्पन्न अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र,
१३ देश विशेष के रगे वस्त्र,
१४ रोम देश मे बने वस्त्र,
१५ चलने पर आवाज करने वाले वस्त्र,
१६ स्फटिक के समान स्वच्छ वस्त्र,
१७ वस्त्र विशेष 'कोतवो—वरको' १८ कबल
१९ कबल विशेष—**'खरडग पारिगादि, पावारगा'**।
२० सिधु देश के मच्छ के चर्म से निष्पन्न वस्त्र।
२१ सिन्धु देश के सूक्ष्म चर्म वाले पशु से निष्पन्न वस्त्र,
२२ उसी पशु की सूक्ष्म पश्मी से निष्पन्न,
२३ कृष्ण मृग चर्म,
२४ नील मृग चर्म,
२५ गौर मृग चर्म,
२६ स्वर्ण-रस से लिप्त साक्षात् स्वर्णमय दिखे ऐसा वस्त्र,
२७ जिसके किनारे स्वर्ण-रसरजित किये हो ऐसा वस्त्र,
२८ स्वर्ण-रसमय पट्टियो से युक्त वस्त्र,
२९ सोने के तार जडे हुए वस्त्र,
३० सोने के स्तबक या फूल जडे हुये वस्त्र,
३१ व्याघ्र चर्म,
३२ चीते का चर्म,
३३ एक प्रकार के आभरणो से युक्त वस्त्र,
३४ अनेक प्रकार के आभरणो से युक्त वस्त्र,

बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

११ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र यावत् अनेक प्रकार के आभरणो से युक्त वस्त्र धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र यावत् अनेक प्रकार के आभरणो से युक्त वस्त्र पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है)

विवेचन—अनेक प्रकार के वस्त्रो का व चर्मनिर्मित वस्त्रो का इन सूत्रो मे वर्णन किया गया है।

आचाराग सूत्र मे ये वस्त्र बहुमूल्य तथा चर्ममय कहे गये है। तथा इनके ग्रहण करने का सर्वथा निषेध किया गया है।

आचाराग सूत्र श्रु २, अ ५, उ १ मे आये शब्दो के अनुसार ही चूर्णिकार ने व्याख्या की है। उनके सामने आचाराग सूत्र के सदृश ही पाठ था। निशीथसूत्र का उपलब्ध मूल पाठ अन्य किसी सूत्र मे उपलब्ध नही है। तथा चूर्णिकार के सामने भी नही था ऐसा उनकी व्याख्या से स्पष्ट ज्ञात होता है। अत यहा आचाराग सूत्र तथा चूर्णि सम्मत पाठ ही रखा है।

इन १२ सूत्रो मे "धरेइ" से रखना व "पिणद्धेइ" से पहनना एव उपयोग मे लेना ऐसा अर्थ समझना चाहिये। कई प्रतियो मे **'पिणद्धेइ,** के स्थान पर **'परिभुंजइ,** क्रिया किसी सूत्र मे उपलब्ध होती है जो चूर्णिकार के बाद हुआ लिपिदोष ही सभव है।

अंग संचालन का प्रायश्चित्त–

१३ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अक्खसि वा, ऊरु सि वा, उयरसि वा, थणसि वा गहाय सचालेइ, सचालेंत वा साइज्जइ।

१३ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री के अक्ष, उरू उदर या स्तन को ग्रहण कर सचालित करता है या सचालित करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—चूर्णि –"अक्खा णाम सखाणियपएसा"—योनिस्थान

"अहवा अण्णयर इंदियजायं अक्ख भण्णति" अथवा कोई भी इन्द्रिय अक्ष कहलाती है। **"अक्ख— चक्षु "—राजेन्द्र कोश भा ? "अक्खपाय" शब्द**। यहा योनि रूप अर्थ ही प्रासगिक है।

शरीरपरिकर्म आदि के प्रायश्चित्त–

१४-६७ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जतं वा साइज्जइ एव तइयउद्देसगगमेण णेयव्व जाव जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए गामाणुगामं दूइज्जमाणे अण्णमण्णस्स सीसदुवारिय करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से आपस मे एक दूसरे के पाँव का एक बार या अनेक बार घर्षण करता है या घर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है। इस प्रकार तीसरे उद्देशक के (सूत्र १६ से ६९) ५४ सूत्रो के आलापक के समान जान लेना चाहिए यावत् जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आपस मे एक दूसरे के मस्तक को ढाकता है या ढाकने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—यहाँ 'अण्णमण्णस्स' शब्द से दो साधु आपस मे सूत्रोक्त प्रवृत्तियाँ करे इस अपेक्षा ये प्रायश्चित्तसूत्र कहे है। व्याख्याकार ने कहा है कि अर्थ विस्तार की अपेक्षा स्त्री के साथ या नपुसक के साथ भी इन ५४ सूत्रो मे कहे कार्य करने पर प्रायश्चित्त आता है—ऐसा समझ लेना चाहिए।

सचित्त पृथ्वी आदि पर निषद्यादि करने का प्रायश्चित्त—

६८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए 'अणंतरहियाए' पुढवीए' णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

६९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए 'ससिणिद्धाए पुढवीए' णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंत वा, तुयट्टावेंत वा साइज्जइ ।

७०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए 'ससरक्खाए पुढवीए' णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंत वा, तुयट्टावेंत वा साइज्जइ ।

७१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए 'मट्टियाकडाए पुढवीए' णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंत वा साइज्जइ ।

७२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडिवाए 'चित्तमताए पुढवीए' णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंत वा साइज्जइ ।

७३ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए 'चित्तमताए सिलाए' णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंत वा साइज्जइ ।

७४ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए 'चित्तमंताए लेलुए' णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंत वा तुयट्टावेंत वा साइज्जइ ।

७५ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठीए, सअंडे, सपाणे, सबीए, सहरिए, सओसे, सउदए, सउत्तिंगपणग-दग-मट्टिय-मक्कडासंताणए णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंत वा साइज्जइ ।

६८ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है ।

६९ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से सचित्त जल से स्निग्ध भूमि पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है ।

७० जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से सचित्त रजयुक्त भूमि पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है ।

७१ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से सचित्त मिट्टीयुक्त भूमि पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है ।

७२ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से सचित्त पृथ्वी पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है ।

७३ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से सचित्त शिला पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है ।

७४ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से सचित्त मिट्टी के ढेले पर या पत्थर पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है ।

७५ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से घुन या दीमक लग जाने से जो काष्ठ जीव युक्त हो उस पर तथा जिस स्थान मे अडे, त्रस जीव, बीज, हरीघास, ओस, पानी, कीडी आदि के बिल, लीलन-फूलन, गीली मिट्टी या मकडी के जाले हो, वहा पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन--प्रारम्भ के चार सूत्रो मे मूल भूमि तो अचित्त ही कही गई है किन्तु प्रथम सूत्र मे सचित्त पृथ्वी के निकट की अचित्त भूमि कही गई है, दूसरे सूत्र मे वर्षा आदि के जल से स्निग्धता युक्त भूमि कही गई है, तीसरे सूत्र मे सचित्त रजयुक्त भूमि कही गई है और चौथे सूत्र मे सचित्त मिट्टी बिखरी हुई भूमि कही गई है। पाचवे, छट्ठे व सातवे सूत्र मे भूमि, शिला व ढेला-पत्थर स्वय सचित्त कहे गए है।

आठवे सूत्र के प्रारभ मे जीवयुक्त काष्ठ का कथन है। उसके पश्चात् समुच्चय रूप से अनेक प्रकार के जीवो से युक्त स्थानो का निर्देश किया गया है।

'सअडे' शब्द मे यहाँ विकलेन्द्रियो के अडो से युक्त स्थान समझना चाहिये।

ओस और उदक इन दो शब्दो से अप्काय का सूचन किया है, अत आगे आये "दगमट्टि" से पृथ्वीकाय और अप्काय के मिश्रण का सूचन किया है। इसमे तालाब आदि के किनारे की मिट्टी तथा कु भार द्वारा गीली बनाई गई मिट्टी भी हो सकती है, वह सचित्त या मिश्र होती है।

अक मे पल्यक-निषद्यादि करने का प्रायश्चित्त—

७६ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंकंसि वा, पलियंकसि वा णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंत वा तुयट्टावेंत वा साइज्जइ।

७७ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अकंसि वा, पलियकंसि वा णिसीयावेत्ता वा, तुयट्टावेत्ता वा, असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा अणुग्घासेज्ज वा अणुप्पाएज्ज वा, अणुग्घासत वा अणुप्पाएत वा साइज्जइ।

७६ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री को अर्धपल्यक आसन मे या पूर्ण पल्यकासन मे—गोद मे बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

७७ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री को एक जघा पर या पर्यकासन मे बिठाकर या सुलाकर अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य खिलाता या पिलाता है अथवा खिलाने-पिलाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

धर्मशाला आदि मे निषद्यादिकरण-प्रायश्चित्त—

७८ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए आगतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु, वा, णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंत वा साइज्जइ।

७९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा गाहावइकुलेसु

वा, परियावसहेसु वा, णिसीयावेत्ता वा, तुयट्टावेत्ता वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अणुग्घासेज्ज वा, अणुपाएज्ज वा, अणुग्घासंत वा, अणुपाएंतं वा साइज्जइ ।

७८ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री को धर्मशाला मे, बगीचे मे, गृहस्थ के घर मे या परिव्राजक के स्थान मे बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है ।

७९ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से स्त्री को धर्मशाला मे, बगीचे मे, गृहस्थ के घर मे या परिव्राजक के स्थान मे बिठाकर या सुलाकर अशन,पान, खाद्य या स्वाद्य खिलाता है,या पिलाता है अथवा खिलाने-पिलाने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—**'अणुग्घासेज्ज' अनु-पश्चाद्भावे । अप्पणा ग्रसितु पच्छा तीए ग्रासं देति, एव करोडगादिसु अप्पणा पाउ पच्छा तं पाएति । —चूर्णि ।**

पहले खुद खाता है और फिर स्त्री को खिलाता है अर्थात् ग्रास उसके मुंह मे देता है । कटोरी आदि से स्वय पेय पीकर फिर उसे पिलाता है ।

चिकित्साकरण-प्रायश्चित्त—

८० जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णयर तेइच्छं आउट्टइ, आउट्टंत वा साइज्जइ ।

८० जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से किसी प्रकार की चिकित्सा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—चिकित्सा ४ प्रकार की होती है—१ वात, २ पित्त, ३ कफ एव ४ सान्निपातिक रोगो की । इनमे से किसी प्रकार की चिकित्सा मैथुन सेवन के सकल्प से स्वय की करता है अथवा स्त्री की करता है तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है । यहाँ स्त्री की चिकित्सा की प्रधानता समझनी चाहिए ।

पुद्गलप्रक्षेपणादि के प्रायश्चित्त—

८१ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अमणुन्नाइं पोग्गलाइं नीहरइ, नीहरंत वा साइज्जइ ।

८२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए मणुण्णाइं पोग्गलाइं उवकिरइ, उवकिरंतं वा साइज्जई ।

८१ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से अमनोज्ञ पुद्गलो को निकालता है (दूर करता है) या निकालने वाले का अनुमोदन करता है ।

८२ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से मनोज्ञ पुद्गलो का प्रक्षेप करता है या प्रक्षेप करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—अमनोज्ञ पुद्गल को दूर करने का तात्पर्य है शरीर एव उपकरणो की या मकानो

की अशुद्धि को दूर करना तथा मनोज्ञ पुद्गल के प्रक्षेप करने का तात्पर्य है शरीर, उपधि या मकान को सुसज्जित करना।

शरीर को पुष्ट करने के लिये छट्ठ उद्देशक के अतिम सूत्र मे पौष्टिक आहार सेवन करने का प्रायश्चित्त कथन हुआ है। अत यह कथन शरीर की बाह्य त्वचा आदि की अपेक्षा से समझना चाहिये।

चिकित्सा सबधी कथन सूत्र ८० मे किया गया है। उसके अनतर ही इन दो सूत्रो मे बाह्य शुद्धि अथवा सुसज्जित करने का प्रायश्चित्त कहा गया है। व्याख्याकार ने इसका सबध शरीर के अतिरिक्त उपधि और मकान के साथ भी किया है। जो शुद्धि और शोभा से ही सबधित होता है।

पशु-पक्षियों के अंगसंचालन आदि का प्रायश्चित्त—

८३ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अन्नयर पसुजाय वा, पक्खिजाय वा, पायसि वा, पक्खसि वा, पुच्छसि वा, सीससि वा गहाय संचालेइ सचालेंत वा साइज्जइ।

८४ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णयर पसुजाय वा, पक्खिजाय वा, सोयसि कट्ठ वा, किलिच वा अगुलिय वा, सलाग वा अणुप्पवेसित्ता सचालेइ, सचालेंतं वा साइज्जइ।

८५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णयर पसुजाय वा, पक्खिजाय वा अयमित्थित्ति कट्टु आलिंगेज्ज वा, परिस्सएज्ज वा, परिचुम्बेज्ज वा छिंदेज्ज वा, विच्छिंदेज्ज वा, आलिंगंत वा, परिस्सयत वा, परिचुबत वा, छिंदत वा, विच्छिंदेंतं वा साइज्जइ।

८३ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से किसी भी जाति के पशु या पक्षी के १ पाव को, २ पार्श्वभाग को, (पख को) ३ पूछ को या ४ मस्तक को पकड कर सचालित करता है या सचालित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८४ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से किसी भी जाति के पशु या पक्षी के श्रोत अर्थात् अपानद्वार या योनिद्वार मे काष्ठ, खपच्ची, अगुली या बेत आदि की शलाका प्रविष्ट करके सचालित करता है या सचालित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८५ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से किसी भी जाति के पशु या पक्षी को "यह स्त्री है" ऐसा जानकर उसका आलिगन (शरीर के एक देश का स्पर्श) करता है, परिष्वजन (पूरे शरीर का स्पर्श) करता है, मुख का चुबन करता है या नख आदि से एक बार या अनेक बार छेदन करता है या आलिगन आदि करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—आलिगन आदि प्रवृत्तिया मोहकर्म के उदय से होती है। आचारागसूत्र श्रु. २, अ ९ मे भी इस प्रकार का पाठ है। वहा एकात मे स्वाध्यायस्थल पर गये साधुओ द्वारा परस्पर ऐसी प्रवृत्तिया करने का निषेध किया है।

अनेक प्रतियो मे "विच्छिदेज्ज" शब्द नही है, जो लिपि दोष से या भ्रम से नही लिखा गया है। किन्तु चूर्णिकार के सामने यह शब्द रहा होगा तथा आचारागसूत्र मे तो यह शब्द है ही, यथा—

"नो अण्णमण्णस्स काय आलिंगेज्ज वा विलिंगेज वा, चुंबेज्ज वा, दंतेहिं वा, णहेहिं वा आछिंदेज्ज वा विच्छिदेज्ज वा ।"

अत यहा पर सभी शब्द मूल पाठ मे रखे है । आलिगन आदि क्रियाए केवल मोह वश की जाती है, जब कि नख आदि से छेदन क्रिया मोह एव कषाय वश भी की जाती है ।

भक्त-पान आदान-प्रदान-प्रायश्चित्त—

८६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए असण वा, पाणं वा, खाइम वा साइम वा देइ, देंत वा साइज्जइ ।

८७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए असण वा, पाणं वा, खाइम वा, साइम वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ ।

८८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए वत्थ वा पडिग्गह वा कबल वा पायपुंछण वा देइ, देंत वा साइज्जइ ।

८९. जे खिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कबल वा, पायपुंछण वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गहावेंत वा साइज्जइ ।

८६ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से उसे अशन पान खाद्य या स्वाद्य देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

८७ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से उससे अशन पान खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

८८ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से उसे वस्त्र, पात्र, कबल या पादप्रोछन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

८९ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से उससे वस्त्र पात्र कबल या पादप्रोछन ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

वाचना देने-लेने का प्रायश्चित्त—

९०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए सज्झायं वाएइ, वाएत वा साइज्जइ ।

९१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए सज्झायं पडिच्छइ, पडिच्छंत वा साइज्जइ ।

९० जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से सूत्रार्थ की वाचना देता है या वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है ।

९१ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से सूत्रार्थ की वाचना लेता है या वाचना लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विकारवर्धक आकार बनाने का प्रायश्चित्त—

९२ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णयरेणं इंदिएणं आकारं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाण अणुग्घाइयं।

९२ जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के सकल्प से किसी भी इन्द्रिय से अर्थात् आख, हाथ आदि किसी भी अगोपाग से किसी भी प्रकार के आकार को बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

इन ९२ सूत्रो मे कहे गये दोषस्थानो का सेवन करने को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—आकारो का वर्णन भाष्य मे इस प्रकार है—आँख से इशारा करना, रोमाचित होना, शरीर को कपित करना, पसीना आना, दृष्टि या मुख (चेहरा) रागयुक्त करना, निश्वास छोडते हुए बोलना, बार-बार बाते करना, बार-बार उबासी लेना इत्यादि।

सातवे उद्देशक का साराश

१-१२ मैथुनसेवन के सकल्प से अनेक प्रकार की मालाएँ, अनेक प्रकार के कडे, अनेक प्रकार के आभूषण व अनेक जाति के चर्म व वस्त्र बनाना, रखना या पहनना।

१३ मैथुनसेवन के सकल्प से स्त्री के अगोपाग का सचालन करना।

१४-६७ मैथुन के सकल्प से शरीरपरिकर्म के ५४ बोल परस्पर करना।

६८-७९ स्त्री को पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय व त्रसकाय की विराधना के स्थानो पर बिठाना या सुलाना, गोद मे या धर्मशाला आदि स्थानों मे बिठाना, सुलाना या आहार करना।

८०-८२ मैथुनसेवन के सकल्प से चिकित्सा करना, शरीर आदि की शुद्धि करना, शरीर आदि को सजाना।

८३-८५ पशु-पक्षी के अगोपाग का सचालन करना, उनके स्रोतस्थानो मे काष्ठादि प्रविष्ट करना तथा उनका सचालन करना, उनकी स्त्री जाति का आलिगन करना।

८६-९१ स्त्री को आहार व वस्त्रादि देना-लेना तथा उनसे सूत्रार्थ लेना या उनको सूत्रार्थ देना।

९२ अपने शरीर के किसी अवयव से कामचेष्टा करना।

इत्यादि प्रवृत्तियो का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

उपसहार—चतुर्थ महाव्रत व उसकी सुरक्षा के लिए आगमों मे अनेक विधान है, फिर भी इस उद्देशक के ९२ सूत्रो मे जो प्रायश्चित्त कहे गये है, ऐसे स्पष्ट निषेध अन्य आगमो मे नही है। यह इस उद्देशक की विशेषता है।

इन छठे व सातव उद्देशको मे केवल मेथुनसेवन के सकल्प से किये गये कार्यों के ही प्रायश्चित्त कहे गए हैं, अत इनके अध्ययन-अध्यापन मे विशेष विवेक रखना चाहिए।

इस उद्देशक मे मैथुन के सकल्प मे सचित्त भूमि पर बठने आदि प्रवृत्तियो के प्रायश्चित्त कहे है। किन्तु मैथुन का सकल्प न होते हुए भी वे प्रवृत्तियाँ सयमजीवन मे अकल्पनीय है। उनके प्रायश्चित्त ग्यारहवे उद्देशक मे कहे गए है। इस प्रकार छठे-सातवे उद्देशक के अन्य अनेक विषयो के सम्बन्ध मे भी समझ लेना चाहिए।

।। सातवां उद्देशक समाप्त ।।

आठवां उद्देशक

अकेली स्त्री के साथ सपर्क करने के प्रायश्चित्त—

१ जे भिक्खू आगंतारंसि वा, आरामागारंसि वा, गाहावइकुलंसि वा, परियावसहंसि वा, एगो एगित्थिए सद्धिं विहार वा करेइ, सज्झाय वा करेइ, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, आहारेइ, उच्चार वा, पासवण वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

२ जे भिक्खू उज्जाणंसि वा, उज्जाणगिहंसि वा, उज्जाणसालंसि वा, णिज्जाणंसि वा, णिज्जाणगिहंसि वा, णिज्जाणसालंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहार वा करेइ जाव असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

३ जे भिक्खू अट्टंसि वा, अट्टालयंसि वा, चरियंसि वा, पागारंसि वा, दारंसि वा गोपुरंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहार वा करेइ जाव असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

४ जे भिक्खू दग-मग्गंसि वा, दग- पहंसि वा, दग-तीरंसि वा, दग-ठाणंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहार वा करेइ, जाव असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

५ जे भिक्खू सुण्णगिहंसि वा, सुण्णसालंसि वा, भिण्णगिहंसि वा, भिण्णसालंसि वा, कूडागारंसि वा, कोट्ठागारंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहार वा करेइ जाव असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

६ जे भिक्खू तणगिहंसि वा, तणसालंसि वा, तुसगिहंसि वा, तुससालंसि वा, भुसगिहंसि वा, भुससालंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ जाव असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

७ जे भिक्खू जाणसालंसि वा, जाणगिहंसि वा, वाहणगिहंसि वा, वाहणसालंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहार वा करेइ, जाव असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

८ जे भिक्खू पणियगिहंसि वा, पणियसालंसि वा, कुवियगिहंसि वा, कुवियसालंसि वा, एगो एगित्थीए सद्धिं विहार वा करेइ जाव असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

९. जे भिक्खू गोणसालंसि वा, गोणगिहंसि वा, महाकुलंसि वा, महागिहंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहार वा करेइ जाव असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु १ धर्मशाला मे, २ उद्यानगृह मे, ३ गृहस्थ के घर मे या ४ परिव्राजक के आश्रम मे अकेला, अकेली स्त्री के साथ रहता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य का आहार करता है, उच्चार-प्रस्रवण परठता है या कोई साधु के न कहने योग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

२. जो भिक्षु १ नगर के समीप ठहरने के स्थान मे, २ नगर के समीप ठहरने के गृह मे, ३ नगर के समीप ठहरने की शाला मे, ४ राजा आदि के नगर, निर्गमन के समय मे ठहरने के स्थान मे, ५ घर मे, ६ शाला मे अकेला, अकेली स्त्री के साथ रहता है यावत् साधु के न कहने योग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

३ जो भिक्षु १ प्राकार के ऊपर के गृह मे, २ प्राकार के झरोखे मे, ३ प्राकार व नगर के बीच के मार्ग मे, ४ प्राकार मे, ५ नगरद्वार मे या ६ दो द्वारो के बीच के स्थान मे अकेला, अकेली स्त्री के साथ रहता है यावत् साधु के न कहने योग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

४ जो भिक्षु १ जलाशय मे पानी आने के मार्ग मे, २ जलाशय से पानी ले जाने के मार्ग मे, ३ जलाशय के तट पर, ४ जलाशय मे अकेला, अकेली स्त्री के साथ रहता है यावत् साधु के न कहने योग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

५ जो भिक्षु १ शून्यगृह मे, २ शून्यशाला मे, ३ खण्डहरगृह मे, ४ खण्डहरशाला मे, ५ झौपडी मे, ६ धान्यादि के कोठार मे अकेला, अकेली स्त्री के साथ रहता है यावत् साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

६ जो भिक्षु १ तृणगृह में, २ तृणशाला मे, ३ शालि आदि के तुषगृह मे, ४ तुषशाला मे, ५ मूग उडद आदि के भुसगृह मे, ६ भुसशाला मे अकेला, अकेली स्त्री के साथ रहता है यावत् साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

७ जो भिक्षु १ यानगृह मे, २ यानशाला मे, ३ वाहनगृह मे या ४ वाहनशाला मे अकेला, अकेली स्त्री के साथ रहता है यावत् साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

८ जो भिक्षु १ विक्रयशाला (दूकान) मे, २ विक्रयगृह (हाट) मे, ३ चूने आदि बनाने की शाला मे या ४ चूना बनाने के गृह मे अकेला, अकेली स्त्री के साथ रहता है यावत् साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

९ जो भिक्षु १ गौशाला मे, २ गौगृह मे, ३ महाशाला मे या ४ महागृह में अकेला, अकेली स्त्री के साथ रहता है यावत् साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन--इन सभी सूत्रोक्त स्थानो मे तथा अन्य किसी भी स्थान मे साधु को अकेली स्त्री

के साथ बातचीत करना, खडे रहना आदि नही करना चाहिये। स्त्रीससर्ग को दशवैकालिक सूत्र में तालपुटविष की उपमा दी गई है और शतायु स्त्री के साथ भी ससर्ग करने का निषेध किया गया है। भाष्य मे कहा है—

अवि मायर पि सद्धि, कहा तु एगागियस्स पडिसिद्धा।
किंपुण अणारियादि, तरुणित्थीहि सहगयस्स ॥२३४४॥

चूर्णि—"माइभगिणिमादीहि अगमित्थीहि सद्धि एगाणिगस्स धम्मकहा वि काउ ण वट्टति। कि पुण अण्णाहि तरुणित्थोहि सद्धि।"

भावार्थ— वृद्ध माता या बहिन आदि यदि अकेली हो तो उसके साथ धर्मकथा भी करना नही कल्पता है तो तरुण व अन्य स्त्री के साथ अन्य कथा करने का निषेध तो स्वत ही सिद्ध है।

विशिष्ट शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है—

१ **विहार करेइ**—यहा विहार का अर्थ साथ मे रहना है। अत ग्रामानुग्राम विहार करना अर्थ यहा नही समझना चाहिये।

२ **उच्चार वा पासवण वा परिट्ठवेइ**— **'वियारभूमिं गच्छति।'**

३. **अणारिय आदि—'अणारिया—कामकहा, निरतर वा अप्रिय कहं कहेति—कामणिट्ठुर-कहाओ, एता चेव असमणपाओग्गा।'**

४. **उज्जाण—'जत्थ लोगा उज्जाणियाए वच्चति, ज वा ईसिं नगरस्स उवकठ ठिय तं उज्जाणं। 'नगरात् प्रत्यासन्नवर्तियानवाहनक्रीडागृहादि।' —रायप्पसेणिय सूत्र टीका॥**

५ **णिज्जाण—रायादियाण निग्गमणठाण णिज्जाणिया, णगरनिग्गमे जं ठियं त णिज्जाणं। एतेसु चेव गिहा कया—उज्जाण-णिज्जाण-गिहा।'**

६ **अट्टसि प्रासादस्योपरिगृहे, प्राकारोपरिस्थसैन्यगृहे च।**

७ **अट्टालयसि—प्राकारोपरिवर्ति-आश्रयविशेष। 'प्राकारकोष्टकोपरिवर्तिमदिर:।' नगरे पागारो, तस्सेव देसे अट्टालगो। 'युद्ध करने के बुर्ज'**

८ **चरियसि—'नगरप्राकारयोरतरे अष्टहस्तप्रमाणमार्ग।' पागारस्स अहो अट्ठहत्थो रहमग्गो—चरिया।**

९ **गोपुर प्रतोलिकाद्वार:। उतरा अ ९॥ 'बलाणगं दार दो बलाणगा पागारपडिबद्धा, ताण अंतर गोपुर।'**

१० **तण-तुस-भुस—'दब्भादि तणठाणं अधोपगासं तणसाला, सालिमादितुसट्ठाणं तुससाला मुग्गमादियाणं भुसा।**

११ जाण-जुग्ग 'जुगादि जाणाण अकुड्डा साला सकुड्ड गिह । अस्सादियाण वाहणा ताणं साला गिह वा ।'

१२ परियागा 'पासडिणो परियागा तेसि आवसहो साला गिह ।' भाष्य गाथा २४२६ व २४२८ मे तथा चूर्णि मे भी इस शब्द की व्याख्या की है । जब कि प्रथम सूत्र मे 'परियावसहेसु' आया है अत पुन कथन की आवश्यकता नही लगती है ।

१३ कुवियं भाष्यकार ने इसकी व्याख्या नही की है । चूर्णिकार ने इस शब्द की जगह 'कम्मिय साला' की व्याख्या की है । अन्यत्र "कुविय" शब्द का अर्थ लोहे आदि के उपकरण बनाने की शाला होता है । चूर्णि मे —'छुहादि जत्थ कम्मविज्जति सा कम्मतशाला गिह वा' इस प्रकार व्याख्या की गई है ।

१४ महागिह—महंत गिहं महागिह—बडा घर या प्रधान घर ।

१५ महाकुलं—'इब्भकुलादि' 'बहुजणाइण्ण' ।

इन स्थानो के अतिरिक्त स्थानो का अर्थात् उपाश्रय आदि का ग्रहण भी उपलक्षण मे समझ लेना चाहिये ।

उत्तरा अ १ गा २६ मे भी अनेक स्थानो मे अकेली स्त्री के साथ अकेले भिक्षु को खडे रहने का एव वार्तालाप करने का निषेध किया है । अत अन्य स्त्री या पुरुष पास मे हो तो ही भिक्षु स्त्री से वार्तालाप कर सकता है । अकेली स्त्री से भिक्षा लेने का एव दर्शन करने उपाश्रय मे आ जाय तो उसे मगल पाठ सुनाने का निषेध नही समझना चाहिये ।

स्त्रीपरिषद् में रात्रि-कथा करने का प्रायश्चित्त—

१०. जे भिक्खू राओ वा, वियाले वा, इत्थिमज्झगए, इत्थिसंसत्ते इत्थि-परिवुडे अपरिमाणाए कहं कहेइ, कहेंत वा साइज्जइ ।

अर्थ —जो भिक्षु रात्रि मे या सध्याकाल मे १ स्त्री परिषद मे, २ स्त्रीयुक्त परिषद मे, ३ स्त्रियो से घिरा हुआ अपरिमित कथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—आगमो मे स्त्री-ससर्ग का निषेध होते हुए भी स्त्रियो को धर्मकथा कहने का सर्वथा निषेध नही किया है । अकेला साधु और अकेली स्त्री हो तो धर्मकथा आदि का निषेध अन्य सूत्रो मे तथा उपर्युक्त सूत्रो मे हुआ है । अनेक स्त्रिया या अनेक साधु हो तो उसका निषेध नही है । अर्थात् अनेक स्त्रिया हो या पुरुष युक्त स्त्रिया हो तो दिन मे धर्मकथा कही जा सकती है । फिर भी वय, योग्यता व गुरु की आज्ञा लेने का विवेक रखना आवश्यक है ।

प्रस्तुत सूत्र मे रात्रि में धर्मकथा कहने का निषेध किया गया है । अत रात्रि मे केवल स्त्री परिषद् हो या पुरुष युक्त स्त्रीपरिषद् हो तो भी धर्मकथा नही कहनी चाहिये ।

अपरिमाणाए—

भिक्षाचरी आदि के लिये गया हुआ साधु गृहस्थ के घर मे धर्मकथा नही कह सकता है। किन्तु अत्यावश्यक प्रश्न का उत्तर सक्षिप्त मे दे सकता है—बृहत्कल्प उद्देशक ३। इसी आशय से यहा भी 'अपरिमाणाए' शब्द का प्रयोग सूत्र मे किया गया है। भाष्यचूर्णि आदि मे भी इसी आशय का कथन है।

भाष्यगाथा—'इत्थीण मज्झम्मि, इत्थीससत्ते परिवुडे ताहि।

चउ पच उ परिमाण, तेण परं कहत आणादी ॥२४३०॥

'परिमाण जाव तिण्णि चउरो पच वा वागरणानि, परतो छट्ठादि अपरिमाण।'

यहा तीन, चार या पाँच पृच्छा या गाथा का कथन परिमित कहा गया है। छ पृच्छा आदि को अपरिमाण कहा है।

भिक्षा ले लेने के बाद गृहस्थ के घर मे खडे रहने का निषेध बृहत्कल्प मे किया गया है, किन्तु आपवादिक स्थिति मे बृहत्कल्प सूत्र के अनुसार सक्षिप्त उत्तर देने का विधान भी है। अत इस सूत्र मे 'अपरिमाणाए' शब्द से आपवादिक कथन ही समझना चाहिये।

साधु के लिये अन्य कथा या विकथा तो सर्वथा निषिद्ध है ही अत यहा कथा से धर्मोपदेश आदि करना ही अपेक्षित है। यदि उचित प्रतीत हो तो रात्रि मे उक्त परिषद मे सक्षिप्त धर्मकथा या प्रश्न का उत्तर कह सकता है, परिमाण उल्लघन होने पर ही गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

निर्ग्रंथी से सपर्क करने का प्रायश्चित्त—

११. जे भिक्खू सगणिच्चियाए वा, परगणिच्चियाए वा, णिग्गथीए सद्धि गामाणुगाम दूइज्जमाणे पुरओ गच्छमाणे, पिट्ठओ रीयमाणे, ओहयमणसकप्पे चिता-सोयसागरसपविट्ठे, करयल-पल्हत्थमुहे, अट्टज्झाणोवगए, विहार वा करेइ जाव असमणपाउग्ग कह कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ।

अर्थ – जो भिक्षु स्वगण की या अन्य गण की साध्वी के साथ आगे या पीछे ग्रामानुग्राम विहार करते हुए सकल्प-विकल्प करता है, चितातुर रहता है, शोक-सागर मे डूबा हुआ रहता है, हथेली पर मुह रखकर आर्तध्यान करता रहता है यावत् साधु के न कहने योग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—धर्मकथा या गोचरी के सिवाय जिस तरह स्त्री के साथ सपर्क या परिचय निषिद्ध है उसी तरह साध्वी के साथ भी साधु को स्वाध्याय, सूत्रार्थ वाचन के सिवाय सम्पर्क करना भी निषिद्ध समझना चाहिये।

साधारणतया साधु साध्वी को एक दूसरे के स्थान (उपाश्रय) मे बैठना या खडे रहना आदि भी निषिद्ध है -बृहत्कल्प उद्देशा ३, सू १-२।

प्रस्तुत सूत्र मे साधु साध्वी के साथ विहार का और अतिसम्पर्क का निर्देश करके प्रायश्चित्त कहा गया है।

आपवादिक स्थिति मे साधु-साध्वी एक दूसरे की अनेक प्रकार से सेवा कर सकते है और परस्पर आलोचना प्रायश्चित्त भी कर सकते हैं। किन्तु उत्सर्ग रूप से वे परस्पर सेवा एव आलोचनादि भी नही कर सकते —व्यवहार सूत्र उद्देशा-५।

अत साधु-साध्वी परस्पर सेवा आदि का सम्पर्क आपवादिक स्थिति मे ही रखे तथा आवश्यक वाचना आदि का आदान-प्रदान करे। इसके अतिरिक्त परस्पर सम्पर्क-वृद्धि नही करे। यही जिनाज्ञा है।

उपाश्रय मे रात्रि स्त्रीनिवास प्रायश्चित्त—

१२ **जे भिक्खू णायगं वा, अणायग वा, उवासगं वा, अणुवासग वा अतो उवस्सयस्स अद्धं वा राइ, कसिणं वा राइ सवसावेइ, संवसावेंत वा साइज्जइ।**

अर्थ—जो भिक्षु स्वजन या परजन की, उपासक या अन्य की स्त्री को उपाश्रय के अन्दर अर्द्ध रात्रि या पूर्ण रात्रि तक रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—सूत्र मे "स्त्री" या "पुरुष" का स्पष्ट कथन नही है, प्रसगवश स्त्री के रखने का ही प्रायश्चित्त समझना चाहिये। भाष्यचूर्णि मे भी कहा है कि—

"**इमं पुण सुत्त इत्थि पडुच्च**" यह सूत्र स्त्री की अपेक्षा से है।

गाथा—इत्थि पडुच्च सुत्त, सहिरण्ण सभोयणे य आवासे।
जइ निस्संगय जे वा मेहुण निसिभोयण कुज्जा॥२४६९॥

अद्ध वा राइ—अद्ध राईए दो जामा, 'वा' विकप्पेण एग जाम। चउरो जामा कसिणा राई 'वा' विकप्पेण तिण्णी जामा। अद्ध शब्द का अर्थ आधी रात न करके अपूर्ण रात्रि भी किया जा सकता है। उत्तराध्ययन सूत्र अ ३४ मे "मुहुत्तद्ध" शब्द है। उसका अर्थ केवल आधा मुहूर्त ही नही है अपितु मुहूर्त से कम भी हो सकता है। तदनुसार यहा भी सपूर्ण रात्रि के अतिरिक्त कम ज्यादा रात्रि का भी ग्रहण हो सकता है। अत इस सूत्र का भावार्थ यह है कि रात्रि मे अल्प या अधिक समय स्त्री को उपाश्रय मे रखे तो प्रायश्चित्त आता है।

संवसावेइ—"रखना" दो तरह से हो सकता है १ रहने के लिए कहना २ रहते हुए को मना नही करना। अत रात्रि मे उपाश्रय के अन्दर स्त्री को रहने के लिये कहना नही और बिना कहे कोई आ जावे और रहना चाहे तो उसे मना कर देना चाहिये। 'मना नही करना' भी रहने देना ही होता है। अत रहने का कहे या मना नही करे तो भी "सवसावेइ" कथन से प्रायश्चित्त आता है।

उक्त व्याख्या के कारण कई प्रतियो मे मना नही करने का स्वतन्त्र सूत्र भी अलग मिलता है। किन्तु उसकी वाक्यरचना अशुद्ध प्रतीत होती है। अत वह सूत्र प्रक्षिप्त ही प्रतीत होता है। क्योकि इस स्वीकृत सूत्र से ही विषय की पूर्ति हो जाती है। प्रकाशित चूर्णि के मूल पाठ मे वह सूत्र नही है।

स्त्री के साथ रात्रि में गमनागमन करने का प्रायश्चित्त—

१३ जे भिक्खू णायग वा, अणायगं वा, उवासग वा, अणुवासग वा, अंतो उवस्सयस्स अद्धं वा राइ, कसिणं वा राइ सवसावेइ, त पडुच्च णिक्खमइ वा, पविसइ वा, णिक्खमतं वा, पविसंतं वा साइज्जइ।

१३. जो भिक्षु स्वजन या परजन (अन्य), उपासक या अन्य किसी भी स्त्री को अर्द्धरात्रि या पूर्णरात्रि उपाश्रय के अन्दर रखता है या उसके निमित्त गमनागमन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पूर्व सूत्र मे स्त्री के रखने का प्रायश्चित्त कहा है। तदनन्तर कहे गए इस सूत्र का भाव यह है कि साधु स्त्री को न रखे और मना करने पर भी यदि कोई स्त्री वहा परिस्थितिवश रह जाये तो रात्रि मे शारीरिक बाधा से वह बाहर जावे तो उसके निमित्त उसके साथ जाना-आना नही करना चाहिए।

साथ जाने-आने मे दो कारण हो सकते है—१ स्त्री को भय लगता हो, २ अथवा साधु को भय लगता हो।

रात्रि मे उनके साथ बाहर जाने-आने म अनेक प्रकार के दोषो की एव आशकाओ की सम्भावना रहती है।

मूर्द्धाभिषिक्त राजा के महोत्सवादि स्थलो से आहारग्रहण करने का प्रायश्चित्त—

१४ जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाण मुद्धाभिसित्ताणं, १. समवाएसु वा, २ पिड-नियरेसु वा, ३ इदमहेसु वा, ४ खदमहेसु वा, ५ रुद्दमहेसु वा, ६ मुगुंदमहेसु वा, ७ भूयमहेसु वा, ८ जक्खमहेसु वा, ९ णागमहेसु वा, १० थूभमहेसु वा, ११. चेइय-महेसु वा, १२ रुक्खमहेसु वा, १३ गिरिमहेसु वा, १४ दरिमहेसु वा, १५ अगडमहेसु वा, १६. तडागमहेसु वा, १७. दहमहेसु वा, १८. णइमहेसु वा, १९. सरमहेसु वा, २० सागरमहेसु वा, २१. आगारमहेसु वा, अण्णयरेसु वा, तहप्पगारेसु विरूवरूवेसु महामहेसु असणं वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

१५ जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाण मुद्धाभिसित्ताणं उत्तरसालंसि वा, उत्तरगिहंसि वा, रीयमाणाणं असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

१६ जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाण मुद्धाभिसित्ताण १ हयसाला-गयाण वा, २ गय-सालागयाण वा, ३ मतसालागयाण वा, ४ गुज्झसालागयाण वा, ५. रहस्ससालागयाण वा, ६. मेहुणसालागयाण वा असणं वा, पाण वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

१७ जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाण मुद्धाभिसित्ताणं सण्णिहिसण्णिचयाओ खीरं वा,

वहिं वा, णवणीयं वा, सप्पि वा, गुलं वा, खंड वा, सक्कर वा, मच्छंडिय वा, अण्णयरं भोयणजाय पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेतं वा साइज्जइ।

१८ जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताण उस्सट्ठ-पिंडं वा, संसट्ठ-पिंडं वा, अणाह-पिंड वा, वणीमग-पिंडं वा पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

त सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

१४ जो भिक्षु मूर्द्धाभिषिक्त शुद्धवशीय क्षत्रिय राजा के—१ मेले आदि मे, २ पितृभोज मे, ३ इन्द्र, ४. कार्तिकेय, ५ ईश्वर, ६ बलदेव, ७ भूत, ८ यक्ष, ९ नागकुमार, १० स्तूप, ११ चैत्य, १२ वृक्ष, १३ पर्वत, १४ गुफा, १५ कुआ, १६ तालाब, १७. ह्रद, १८ नदी, १९ सरोवर, २० समुद्र, २१. खान इत्यादि किसी प्रकार के महोत्सव मे तथा अन्य भी इसी प्रकार के अनेक महोत्सवो मे उनके निमित्त से बना अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५ जो भिक्षु श्रेष्ठ कुलोत्पन्न मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा जब उत्तरशाला या उत्तरगृह (मडप) मे रहता हो तब उसका अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जो भिक्षु १ अश्वशाला, २ हस्तिशाला, ३ मत्रणाशाला, ४ गुप्तशाला, ५ गुप्त-विचारणाशाला या ६ मैथुनशाला मे गये हुए श्रेष्ठ कुलोत्पन्न मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य को ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जो भिक्षु श्रेष्ठ कुलोत्पन्न मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के विनाशी द्रव्यो या अविनाशी द्रव्यों के सग्रहस्थान से दूध, दही, मक्खन, घृत, गुड, खाड, शक्कर या मिस्री तथा अन्य भी कोई खाद्य पदार्थ ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८ जो भिक्षु श्रेष्ठ कुलोत्पन्न मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के १ उत्सृष्टपिड, २ भुक्तविशेष-पिंड, ३ अनाथपिड या ४ वनीपकपिड, (भिखारीपिंड) को ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

उपर्युक्त १४ से १८ सूत्रो मे कहे गये दोषस्थान को सेवन करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—छट्ठे उद्देशक से लेकर इस उद्देशक के १३वे सूत्र तक स्त्री सम्बन्धी प्रायश्चित्तो का कथन निरन्तर हुआ है। उनका गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है। सूत्र १४ से आठवे उद्देशक के पूर्ण होने तक और सपूर्ण नवमे उद्देशक मे अनेक प्रकार के राजपिड तथा राजा से सबधित अनेक प्रसगो के प्रायश्चित्त कहे गये है।

यहा राजा के लिए तीन विशेषणो का प्रयोग है, जिसका सक्षिप्त अर्थ है—'बहुत बडे राजा'। प्रत्येक शब्द का अर्थ इस प्रकार है—

१. **मुदिय**—शुद्धवशीय,

२ **मुद्धाभिसित्त**—अनेक राजाओ के मस्तक जिसे झुकते है अर्थात् अनेक राजाओ द्वारा अभिषिक्त अथवा माता-पिता के द्वारा अभिषिक्त।

३ **रण्णो खत्तियाणं**—ऐसा क्षत्रिय राजा। अनेक राजाओ द्वारा या माता-पिता आदि के द्वारा अभिषिक्त शुद्धवशीय क्षत्रिय राजा। ये तीनो विशेषण केवल स्वरूपदर्शक व महत्त्व बताने के लिये कहे गये है। अत बहुत बडे राजा की अपेक्षा हो इन शब्दो का प्रयोग है, ऐसा समझना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि मूर्द्धाभिषिक्त बडे राजा का आहार आदि २४वे तीर्थंकर के शासन में साधु-साध्वियों को ग्रहण करना नही कल्पता है। अत इसमे जागीरदार, ठाकुर आदि का निषेध नही समझना चाहिये।

१ **समवाएसु**—समवायो—गोष्ठीना मेलापक, वणिजादिना सघात। राजेन्द्र कोश।

समवायो मेलकः—सखच्छेद श्रेण्यादेः।—आचा श्रु २, अ १, उ २।

समवायो गोट्ठी भत्त।—चूर्णि।

२ **पिडनियरेसु**—पितृपिड मृतकभक्तमित्यर्थ।—आचा १ पिडनिगरो दाइभत्त, पितिपिंड-पदाण (पितृपिडप्रदान) वा पिडनिगरो।—चूर्णि।

३. **रुद्र**—भागिणेयो रुद्र। रुद्र शिव। आचाराग मे इसका अर्थ ईश्वर किया है।

राजेन्द्र कोश मे "महादेव-महेश्वर" कहकर उसकी उत्पत्ति का विस्तृत कथानक किया है।

४ **मुकुंद**—मुकुदो बलदेव।—चूर्णि। वासुदेव महोत्सव।—भग श ९, उ ३३

५ **चेइय**—चेइय-देवकुल।

६. **सर**—खुदाई किये बिना स्वतः निष्पन्न जलाशय-तालाब।

७. **तडाग**—खुदाई करके तैयार किया गया तालाब।

अनेक प्रकार के महोत्सव अनेक निमित्तो मे भिन्न-भिन्न काल मे प्रारम्भ कर दिये जाते है तथा लम्बे काल तक उस निश्चित तिथि मे चलते रहते है।

राजा की तरफ से इन महोत्सवो मे बनाया गया आहार ग्रहण करने पर भिक्षु को गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है। ऐसे स्थलो मे जाने पर अनेक दोषो की सभावना रहती है तथा राजा का प्रसन्न होना या नाराज होना दोनो ही स्थितिया अनेक दोषो का निमित्त हो सकती है। अत ऐसे स्थलो मे भिक्षा के लिये नही जाना चाहिये।

सूत्र १५-१६ मे कार्यवश कही अन्यत्र गये हुए राजा के विभिन्न स्थानो का निर्देश किया गया है। उन स्थानो पर राजा के लिये जो आहार बनता है, उसके ग्रहण करने का प्रायश्चित्त कहा गया है। व्याख्याकार ने कहा है कि ये उदाहरण रूप मे कहे गये है, अन्य भी इस तरह के स्थानो के सम्बन्ध मे समझ लेना चाहिये।

१ **उत्तरशाला—'जत्थ य कीडापुव्वं गच्छति, तत्थ णं वसति ते उत्तरशाला गिहा वसव्वा' 'अत्थानिगाविमंडवो उत्तरसाला, मूलगिहं असंबद्धं उत्तरगिहं।'**

सूत्र १८ में दान दिये जाने वाले आहार का कथन है।

'उस्सट्ठ'- काकादिभ्य —प्रक्षेपणाय स्थापित पिंडं । उस्सट्ठे - उज्झियधम्मिए ।

उपलब्ध अनेक प्रतियो मे "किविणपिड" पाठ अधिक है। भाष्य, चूर्णि मे इसकी व्याख्या नही की गई है तथा इस शब्द की यहां आवश्यकता भी प्रतीत नही होती है। उसका आशय दानपिड एव वनोपकपिण्ड मे गर्भित हो जाता है।

आठवें उद्देशक का सारांश—

छट्ठे, सातवे उद्देशक मे मैथुन के सकल्प से की गई प्रवृत्तियो के प्रायश्चित्त कहे है। आठवे उद्देशक मे मैथुनसेवन के सकल्प की निमित्त रूप स्त्री सबधी प्रायश्चित्त का कथन है, बाद मे राजपिड से सबधित प्रायश्चित्त कहे गये है।

सूत्र १ से ९ तक—धर्मशाला आदि ४ मे, उद्यानादि ४ मे, अट्टालिका आदि ६ मे, दगमार्ग आदि ४ मे, शून्यगृह आदि ६ मे, तृणगृह आदि ६ मे, यानशाला आदि ४ मे, दुकान आदि ४ मे, गोशाला आदि ४ मे अकेला साधु अकेली स्त्री के साथ रहे, आहारादि करे, स्वाध्याय करे, स्थडिलभूमि जाये या विकारोत्पादक वार्तालाप आदि करे।

१० रात्रि के समय स्त्रीपरिषद् मे या स्त्री युक्त पुरुषपरिषद् मे अपरिमित कथा करे।

११ साध्वी के साथ विहार आदि करे या अति सपर्क रखे।

१२-१३ उपाश्रय मे स्त्री को रात्रि मे रहने देवे, मना नही करे तथा उसके साथ बाहर आना-जाना करे।

१४ मूर्द्धाभिषिक्त राजा के अनेक प्रकार के महोत्सवो मे आहार ग्रहण करे।

१५-१६ उत्तरशाला अथवा उत्तरगृह मे तथा अश्वशाला आदि मे आहार ग्रहण करे।

१७ राजा के दूध-दही आदि के सग्रहस्थानो से आहार ग्रहण करे।

१८ राजा के उत्सृष्टपिड आदि—दान निमित्त स्थापित आहार को ग्रहण करे।

इत्यादि प्रवृत्तियो का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

उपसंहार—

इस उद्देशक के १४ सूत्रो के विषय का कथन निम्न आगमो मे है, यथा—

स्त्रीससर्ग का निषेध दशवै अ ८, गा ५२-५८, उत्तरा अ १, गा २६, अ ३२, गा १३-१६ आदि अनेक आगम स्थलो मे है। उसी का कुछ स्पष्टीकरण व स्थलनिर्देश युक्त वर्णन सूत्र १ से ९ मे है।

१ दशवैकालिक अ ३ व आचारागसूत्र श्रु २, अ १, उ ३ मे राजपिड,

२ दशवै अ ५, गा ४७ से ५२ मे दानपिण्ड,

३ आचारागसूत्र श्रु २, अ १, उ २ मे सखडी मे बने भोजन का ग्रहण करना निषिद्ध है। इनका यहा सूत्र १४-१८ तक विस्तार पूर्वक प्रायश्चित्त कथन है। इस तरह १ से ९ व १४ से १८ कुल १४ सूत्रो मे अन्य आगम निर्दिष्ट विषयो का प्रायश्चित्त कथन है।

इस उद्देशक के ४ सूत्रों के विषय का कथन अन्य आगमो मे नही है, यथा—

शेष चार सूत्रो का विषय भी स्त्रीसम्पर्क के अन्तर्गत आ सकता है किन्तु कुछ विशेष कथन होने से उनका कथन अलग किया गया है।

१० रात्रि मे स्त्रियो को तथा स्त्रियो सहित पुरुषो को धर्मकथा आदि नही कहना चाहिये और कहे तो प्रायश्चित्त आता है तथा कुछ अपवादो [छूट] का निर्देश भी हुआ है।

११ साध्वियो के उपाश्रय मे अनेक कार्यों के करने का निषेध बृहत्कल्प उद्देशक ३ मे है किन्तु ग्रामानुग्राम विहार का तथा अन्य अनेक प्रवृत्तियो का निषेध और प्रायश्चित्त का कथन तो यही पर है।

१२-१३ —स्त्रीयुक्त स्थान मे नही ठहरना ऐसा वर्णन अन्यत्र आता है किन्तु स्त्री साधु के स्थान पर रहना चाहे या रह जाये तो कैसा व्यवहार करना, इसका सूचन तथा प्रायश्चित्त का कथन इन दो सूत्रो मे ही है।

इस उद्देशक मे कुछ कथन विशेषता युक्त है। इन के अतिरिक्त कुछ मौलिक विषयो का कथन तो अन्य आगमो मे भी वर्णित है।

॥ आठवां उद्देशक समाप्त ॥

नवम उद्देशक

राजपिंड-ग्रहण-प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू रायपिंडं गिण्हइ, गिण्हंतं वा साइज्जइ ।

२ जे भिक्खू रायपिंडं भुंजइ, भुंजंत वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु राजपिड ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२ जो भिक्षु राजपिड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—राजपिड आठ प्रकार का होता है--१ अशन, २ पान, ३ खाद्य, ४ स्वाद्य, ५ वस्त्र, ६ पात्र, ७ कबल, ८ पादप्रोछन ।—भाष्य गाथा २५०० ।

प्रथम व अतिम तीर्थंकर के शासन मे राजपिड निषिद्ध है । मध्यकालीन तीर्थंकरो के शासन में और महाविदेह क्षेत्र मे निषिद्ध नही है ।

अंतःपुर–प्रवेश व भिक्षाग्रहण प्रायश्चित्त—

३. जे भिक्खू रायंतेपुरं पविसइ, पविसंतं वा साइज्जइ ।

४ जे भिक्खू रायंतेपुरियं वदेज्जा "आउसो रायंतेपुरिए ! णो खलु अम्ह कप्पइ रायंतेपुर णिक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा, इमं ण तुमं पडिग्गह गहाय रायंतेपुराओ असण वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा अभिहडं आहट्टु दलयाहि", जो त एव वयइ वयंत वा साइज्जइ ।

५. जे भिक्खू नो वएज्जा रायंतेपुरिया वएज्जा "आउसतो समणा ! णो खलु तुज्झ कप्पइ रायंतेपुरं णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, आहरेयं पडिग्गहं अतो अह रायतेपुराओ असण वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा अभिहड आहट्टु दलायामि", जो त एवं वयंति पडिसुणइ, पडिसुणंतं वा साइज्जइ ।

३. जो भिक्षु राजा के अत पुर मे प्रवेश करना है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४. जो भिक्षु राजा की अत पुरिका से कहे कि "हे आयुष्मती रायतेपुरिके ! हमें राजा के अत पुर मे प्रवेश करना या निकलना नही कल्पता है, इसलिए तुम यह पात्र लेकर राजा के अत पुर मे से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य यहा लाकर दे दो", जो उसको इस प्रकार कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

५. यदि भिक्षु न कहे किन्तु अत पुरिका कहे कि "हे आयुष्मन् श्रमण ! तुम्हे राजा के अत -

पुर में प्रवेश करना या निकलना नही कल्पता है, अत यह पात्र मुझे दो । मैं अत.पुर से अशन, पान, खाद्य वा स्वाद्य यहा लाकर दू," जो उसके इस प्रकार कहने पर उसे स्वीकार करता है या स्वीकार करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—राजा का अत पुर तीन प्रकार का होता है—

१ जुण्णतेपुर—अपरिभोग्या-वृद्धा रानियो का अन्त.पुर ।

२ नवतेपुर—परिभोग्या—युवा रानियो का अन्त पुर ।

३ कण्णतेपुर—अप्राप्त यौवना—कन्या राजकुमारियो का अन्त पुर ।

रायंतेपुरिया—चूर्णिकार ने इसका अर्थ "राजा की रानी" किया है । यह अर्थ प्रसगसगत नही है, इसलिए यहा नही लिया है ।

दूसरा अर्थ है—'दासी'

तीसरा अर्थ है—अत पुर का रक्षक, जो प्राय द्वार के पास खडा रहता है । यह अर्थ प्रसग सगत है ।

अत 'अतेपुरिया' का अर्थ है अत पुर मे रहने वाला या अत·पुर की रक्षा करने वाला ।

इस अर्थभेद के कारण सूत्र न ५ के पाठ मे भी कुछ विकल्प उत्पन्न हुए है, उनका यथार्थ निर्णय नही हो पाया है ।

जहा स्त्री द्वारपालिका रहती है वहा स्त्रीलिगवाची "जो त एव वदती पडिसुणेइ" जहा पुरुष द्वारपाल हो वहा पुलिगवाची "जो त एव वदत पडिसुणेइ" इस प्रकार दोनो पाठ शुद्ध हो सकते हैं ।

द्वारपाल से मगवाकर राजपिंड ग्रहण करने मे एषणादोषयुक्त, विषयुक्त, अभिमन्त्रित आहार या अधिक आहार ग्रहण किया जा सकता है । अन्य भी अनेक दोषो के लगने की सभावना रहती है ।

राजा का दानपिंड-ग्रहण प्रायश्चित्त—

६. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं, १. दुवारिय-भत्तं वा, २. पसु-भत्तं वा, ३ भयग-भत्त वा, ४. बल-भत्तं वा, ५. कयग-भत्त वा, ६. हय-भत्तं वा, ७. गय-भत्तं वा, ८. कंतार-भत्तं वा, ९. दुब्भिक्ख-भत्तं वा, १०. दुकाल-भत्त वा, ११. दमग-भत्त वा, १२. गिलाण-भत्तं वा, १३. वद्दलिया-भत्तं वा, १४. पाहुण-भत्तं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

६ जो भिक्षु शुद्धवशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के—

१ द्वारपालो के निमित्त बना भोजन,

२ पशुओ के निमित्त बना भोजन,

३ नौकरो के निमित्त बना भोजन,

४ सैनिकों के निमित्त बना भोजन,

५ दासों के निमित्त या कर्मचारियो के निमित्त बना भोजन,

६ घोडों के निमित्त बना भोजन,

७ हाथी के निमित्त बना भोजन,

८ अटवी के यात्रियो के निमित्त बना भोजन,
९ दुर्भिक्ष-पीडितो के लिए दिया जाने वाला भोजन,
१० दुष्काल-पीडितो के लिए दिया जाने वाला भोजन,
११. दीन जनो के निमित्त बना भोजन,
१२. रोगियो के निमित्त बना भोजन,
१३ वर्षा से पीडित जनो के निमित्त बना भोजन,

१४ आगतुको के निमित्त बना भोजन ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—अनेक राजकुलो मे या अनेक श्रीमन्त कुलो मे प्रतिदिन उक्त प्रकार का भोजन देने की एक प्रकार की मर्यादा होती है। उनमे से किसी प्रकार का भोजन साधु ग्रहण करे तो जिनके निमित्त भोजन बनाया है, उनके अतराय लगती है अथवा दूसरी बार भोजन बनाने की आरम्भजा क्रिया लगती है तथा राजपिड ग्रहण सबधी दोष भी लगता है।

विशेष शब्दो की व्याख्या—

१. **दुवारिय-भत्तं - दोवारिया**—दारपाला— नगर के द्वारपाल।

२. **बल—चउव्विह-पाइक्कबल, आसबल, हत्थिबल, रहबल।**

३. **कतार—अडविनिग्गयाण-भुखत्ताण।**

४. **दुब्भिक्ख—जं दुब्भिक्खे राया देति त दुभिक्खभत्ता।**

५. **दमग—दमगा—रंका, तेसि भत्त— दमगभत्त।**

६. **बद्दलिया —सत्ताह** (सात दिन) **बद्दले पडते भत्त करेइ राया**—अतिवृष्टि से पीडितो का भोजन।

चूर्णिकार ने कुछ शब्दो की व्याख्या की है, मूल पाठ मे कही ११, १३ व १४, शब्द भी मिलते है। निर्णय करने का पर्याप्त आधार उपलब्ध न होने से मूल मे १४ शब्द ही लिये गये हैं।

राजा के कोठार आदि स्थानो को जाने बिना भिक्षागमन का प्रायश्चित्त—

७. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाण मुद्धाभिसित्ताणं इमाइ छद्दोसाययणाइ अजाणिय-अपुच्छिय-अगवेसिय परं चउराय-पचरायाओ गाहावइकुल पिंडवायपडियाए णिक्खमइ वा पविसइ वा णिक्खमंतं वा पविसंत वा साइज्जइ,

तं जहा—१. कोट्ठागार-सालाणि वा, २. भडागार-सालाणि वा, ३. पाण-सालाणि वा, ४. खीर-सालाणि वा, ५. गज-सालाणि वा, ६ महाणस-सालाणि वा।

७ जो भिक्षु शुद्धवशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के इन छह दोपस्थानो को ४-५ दिन के भीतर जानकारी किए बिना, पूछताछ किए बिना व गवेषणा किए बिना गाथापति कुलो मे आहार

के लिये निकलता है या प्रवेश करता है या निकलने वाले का या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

छह दोषस्थान ये है—

१ कोष्ठागारशाला, २ भाण्डागारशाला,
३ पानशाला, ४ क्षीरशाला,
५. गजशाला, ६. महानसशाला।

विवेचन—राजधानी आदि मे प्रवेश करने के बाद भिक्षा के लिये जाने वाले साधु को शय्यातर एव स्थाप्य कुल के समान सर्वप्रथम राजा के इन ६ स्थानो की जानकारी कर लेनी चाहिये। क्योकि ये छहो दोषो के स्थान है। ४-५ दिन मे उक्त छह स्थानो की जानकारी न करे और भिक्षार्थ चला जाए तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विशेष शब्दो की व्याख्या—

१. **कोट्ठागार**—धान्य, मेवा आदि का कोठार।

२ **भंडागार**—सोना, चादी, रत्न आदि धन का भडार।

३. **पाण**—"**सुरा-मधु-सीधु-खंडग-मच्छंडिय-मुद्दिया पभिईण पाणगाणि।**" मद्यस्थान आदि।

४. **'खीर'**—**खीरघरं, जत्थ खीरं-दधि-णवणीयं-तक्कादि अच्छंति**—दूध, दही, घी आदि का स्थान।

५. **'गंज'**—"**जत्थ धण्णं दभिज्जति सा गजसाला।**
जत्थ सणसत्तरसाणि धण्णाणि कोट्टिज्जंति"—जहा सत्रह प्रकार के धान्य कूटे जाते है, वह स्थान।

६. **'महाणस'**—**उवक्खडणसाला**—रसोईघर।

इन स्थानो की जानकारी न होने पर वहा भिक्षु भिक्षार्थ पहुच सकता है। उन स्थानो के रक्षक पुरुष यदि भद्र हो तो राजपिंड ग्रहण करने का दोष लगता है और प्रतिकूल हो तो चोर आदि समझ कर वे कष्ट भी दे सकते हैं। गिरफ्तार कर सकते है—

'जे रक्खगा ते भद्द पंता, भद्दवेसु रायपिंडदोसा, पंतेसु गेण्हणादयो दोसा'—**चूर्णि**।

अत इन स्थानो की जानकारी करना आवश्यक है।

राजा आदि को देखने के लिए प्रयत्न करने का प्रायश्चित्त—

८. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताण आगच्छमाणाणं वा णिग्गच्छमाणाणं वा पयमवि चक्खुदंसण-वडियाए अभिसधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

९. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं इत्थीओ सव्वालंकार-विभूसियाओ पयमवि चक्खुदंसण-वडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

८. जो भिक्षु शुद्ध वशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के आने-जाने के समय उन्हे देखने के सकल्प से एक कदम भी चलता है या चलने वाले का अनुमोदन करता है ।

९. जो भिक्षु शुद्ध वशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा की सर्व अलकारो से विभूषित रानियो को देखने के सकल्प से एक कदम भी चलता है या चलने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरु-चौमासी प्रार्याश्चत्त आता है ।)

विवेचन—आचारागसूत्र मे अनेक दर्शनीय पदार्थों व स्थलो को देखने का निषेध किया गया है तथा निशीथसूत्र के १२वे उद्देशक मे उनका लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है । राजा या रानी को देखने की प्रवृत्ति विशेष आपत्तिजनक होने से उसका गुरुचौमासी प्रायश्चित्त इन दो सूत्रो मे कहा है । व्याख्याकार ने इसका प्रायश्चित्तक्रम इस प्रकार भी बताया है—

'मणसा चिंतेति मास गुरु, उट्ठिते चउलहुं, पदभेदे चउगुरु'

'एगपदभेदे वि चउगुरुगा किमंग पुण दिट्ठे ! आणादिविराहणा भद्दपंता दोसा य ।'

अर्थात् देखने का विचार करे तो मास गुरु, देखने के लिये उठे तो चतुर्लघु और चले तो चतुर्गुरु प्रायश्चित्त आता है और जब एक कदम चलने पर भी चतुर्गुरु प्रायश्चित्त आता है तो देखने की तो बात ही क्या ? इससे आज्ञाभग दोष होता है तथा राजा अनुकूल या प्रतिकूल हो तो अन्य अनेक दोष भी लग सकते है ।

शिकारादि के निमित्त निकले राजा का आहार ग्रहण करने पर प्रायश्चित्त—

१० जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाण मुद्धाभिसित्ताण मसखायाण वा, मच्छखायाण वा, छविखायाण वा बहिया णिग्गयाणं असणं वा, पाणं वा, खाइम वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

१० जो भिक्षु मास, मछली व छवि आदि खाने के लिये बाहर गये हुए, शुद्ध वशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य को ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रार्याश्चत्त आता है ।)

विवेचन—राईणं णियग्गयाणं तत्थेव असणं-पाण-खाइम-साइम उक्करेंति तडियकप्पडियाण वा तत्थेव भत्त करेज्ज ।" अर्थात् मास, मच्छ आदि खाने के लिये वन मे या नदी, द्रह—समुद्र आदि स्थलो पर गये हुए राजा के वहा पर अशनादि भोजन भी हो सकता है, ऐसा आहार भी ग्रहण करना नही कल्पता है ।

राजा ने जहां भोजन किया हो, वहां से आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त—

११. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं अण्णयरं उववूहणीयं समीहियं पेहाए तीसे परिसाए अणुट्ठियाए, अभिण्णाए अवोच्छिण्णाए जो तमण्णं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

११ जो भिक्षु शुद्धवंशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को कहीं पर भोजन दिया जा रहा हो, उसे देखकर उस राज-परिषद् के उठने के पूर्व, जाने के पूर्व तथा सबके चले जाने के पूर्व वहाँ से आहार ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन किसी व्यक्ति ने अल्पाहार या पूर्णाहार का आयोजन किया हो और उसमे राजा को भी निमन्त्रित किया हो, वहा जब तक राजा व उसके साथ वाले भोजन करते हो तब तक भिक्षार्थ नही जाना चाहिए। उनके चले जाने के बाद वह आहार ग्रहण करना निषिद्ध नही है। उसके पूर्व ग्रहण करना और वहा जाना आपत्तिजनक है। अत देखने मे या जानने मे आ जाए कि यहा राजा निमन्त्रित किये गये है अर्थात् वहा भोजन कर रहे है तो उस समय घर में जाये या आहार ग्रहण करे तो गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

'अण्णतरगहणेन भेददर्शनं, शरीरं उपवूंहयंतीति उपवूहणीया' 'सा य चउव्विहा असणादि।' 'जेमंतस्स रण्णो उववूहणीया आणिया, 'पिट्ठओ' त्ति वुत्त भवति। त जो ताए परिसाए अणुट्ठिताए गेण्हति तस्स ड्ढा (चउगुरु)। रायपिंडो चेव सो। आसणाणि मोत्तु उद्धट्ठियाए अच्छति, ततो केइ णिग्गता भिण्णा, असेसेसु णिग्गतेसु वोच्छिण्णा, एरिसे ण रायपिंडो।' —चूर्णि पृ ४५९-६०॥

इस सूत्र का भावार्थ यह है कि राजा जहाँ भोजन कर रहा हो उस समय उस घर मे भिक्षार्थ जाना नही कल्पता है। उनके भोजन करके चले जाने के बाद जाने पर इस सूत्र के अनुसार प्रायश्चित्त नही आता है।

राजा के उपनिवासस्थान के समीप ठहरने आदि का प्रायश्चित्त--

१२ **अह पुण एवं जाणेज्जा 'इहज्ज रायखत्तिए परिवुसिए' जे भिक्खू ताहे गिहाए ताए पएसाए ताए उवासंतराए विहार वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारेइ, उच्चारं वा पासवण वा परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।**

१२ जब यह ज्ञान हो जाए कि आज इस स्थान मे राजा ठहरे है तब जो भिक्षु उस गृह मे, उस गृह के किसी विभाग मे या उस गृह के निकट किसी स्थान मे ठहरता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य का आहार करता है या मल-मूत्र त्यागता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन--पूर्व सूत्र म राजा जिस घर मे भोजन करने आया हो वहा गोचरी जाने का प्रायश्चित्त कहा है और इस सूत्र मे जिस घर मे राजा ने एक दो दिन के लिये निवास किया हो, वहां ठहरने का प्रायश्चित्त कहा है।

इन सूत्रो का तात्पर्य यह है कि राजा के भोजन, निवास, अल्पकालीन आवास आदि के स्थानो से साधु को दूर रहना चाहिये। राजा साधु के स्थान पर आये यह कोई आपत्तिजनक नही है किन्तु साधु राजा के किसी आवास मे या उसके निकट भी न जाये।

सूत्रकृतागसूत्र अ. २, उ २, गा. १८ मे भी कहा है कि—

'उसिणोदग तत्तभोइणो, धम्मठियस्स मुणिस्स हीमओ ।
संसग्गि असाहु राईहिं, असमाहि उ तहागयस्स वि ।।'

राजा के निवासस्थान के बाहर व आस-पास कई रक्षक राजपुरुष रहते है, कई प्रकार की शकाओ की सभावना रहती है। अत ऐसे स्थानो को जान लेने के बाद साधु को उस ओर नही जाना चाहिये।

यात्रा में गये हुए राजा का आहार-ग्रहण करने पर प्रायश्चित्त—

१३. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाण मुद्धाभिसित्ताणं बहिया जत्तासपट्ठियाण असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

१४. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताण बहिया जत्तापडिणियत्ताणं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेतं वा साइज्जइ ।

१५ जे भिक्खू खत्तियाणं मुदियाण मुद्धाभिसित्ताणं णइ-जत्तासपट्ठियाण असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ ।

१६. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाण मुद्धाभिसित्ताण णइ-जत्तापडिणियत्ताण असण वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

१७. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं गिरि-जत्तासपट्ठियाण असण वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

१८ जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं गिरि-जत्तापडिणियत्ताणं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

१३ जो भिक्षु युद्ध आदि की यात्रा के लिये जाते हुए शुद्धवशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४ जो भिक्षु युद्ध आदि की यात्रा से पुन· लौटते हुए शुद्धवशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५ जो भिक्षु नदी की यात्रा के लिये जाते हुए शुद्धवशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जो भिक्षु नदी की यात्रा से पुन· लौटते हुए शुद्धवशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७ जो भिक्षु पर्वत की यात्रा के लिये जाते हुए शुद्धवशीय मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८ जो भिक्षु पर्वत की यात्रा से पुन लौटते हुए शुद्धवशीय मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—इन यात्राओ के लिये जाते समय और पुन लौटते समय मार्ग मे जहा पडाव किया जाता है वहा आहार बनाया जाता है। उसे ग्रहण करने का यहा प्रायश्चित्त कहा गया है। क्योकि ऐसी यात्राओ के निमित्त बनाए गए आहार के लेने मे मगल-अमगल तथा शका आदि अनेक दोषो की सभावना रहती है।

राज्याभिषेक के समय गमनागमन का प्रायश्चित्त—

१९ जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताण महाभिसेयंसि वट्टमाणंसि णिक्खमइ वा पविसइ वा, णिक्खमंतं वा, पविसंतं वा साइज्जइ।

१९ जो भिक्षु शुद्धवशीय मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के महान् राज्याभिषेक होने के समय निकलता है या प्रवेश करता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—जिस समय राज्याभिषेक हो रहा हो उस समय उस नगरी मे अनेक कार्यों के लिये राजपुरुषो का व लोगो का आना-जाना आदि बना रहता है। ऐसे समय साधु को अपने स्थान मे ही रहना चाहिये, कही पर जाना-आना नही करना चाहिये। अथवा उस दिशा मे जाना-आना नही करना चाहिये। जाने-आने मे मगल-अमगल की भावना व जनाकीर्णताजन्य अनेक दोषो की सम्भावना रहती है।

राजधानी में बारंबार प्रवेश का प्रायश्चित्त—

२०. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताण इमाओ दस अभिसेयाओ रायहाणीओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वंजियाओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा, तिक्खुत्तो वा णिक्खमइ वा पविसइ वा, णिक्खमंतं वा पविसंतं वा साइज्जइ। तं जहा—१ चम्पा, २ महुरा, ३. वाणारसी, ४. सावत्थी, ५ कंपिल्लं, ६ कोसंबी, ७ साकेयं, ८ मिहिला, ९. हत्थिणाउरं, १०. रायगिहं।

२० शुद्धवशीय मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाओ के राज्याभिषेक की नगरिया, जो राजधानी के रूप मे घोषित हैं, उनकी सख्या दस है। वे सब अपने नामो से प्रख्यात है, इन राजधानियो मे जो भिक्षु एक महीने में दो बार या तीन बार जाना-आना करता है या जाने-आने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है) उन नगरियो के नाम इस प्रकार हैं—१ चपा, २ मथुरा, ३ वाराणसी, ४ श्रावस्ती, ५ साकेतपुर, ६ कापिल्य नगर ७ कौशाबी, ८ मिथिला ९ हस्तिनापुर १०. राजगृही।

विवेचन—इन दस राजधानियो मे बारह चक्रवर्ती हुये हैं। शातिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ ये तीन चक्रवर्ती एक ही हस्तिनापुर नगरी मे हुये हैं। इन राजधानियो में एक महीने में एक बार से अधिक जाने-आने का निषेध है। प्रायश्चित्त तो किसी विशेष कारण से दूसरी बार जाने पर नही भी आता है, किन्तु तीसरी बार जाने पर तो प्रायश्चित्त आता ही है।

इन बडी राजधानियो मे एक महीने में एक बार से ज्यादा जाने-आने पर राजपुरुषो को गुप्तचर होने की शका होना आदि अनेक दोषो की सम्भावनाएं रहती हैं। पूर्व सूत्रों में राजा के

भोजन, निवासस्थान, राज्याभिषेक आदि प्रसगो के सबध मे विवेक रखने का सूचन किया गया है तो इस सूत्र मे उन बडे राजाओ की राजधानी मे बारम्बार प्रवेश का निषेध और प्रायश्चित्त सूचित किया है ।

भाष्य मे अन्य अनेक सयम सम्बन्धी दोषो की सम्भावनाए भी कही है । इन राजधानियो मे अनेक महोत्सव राजा के तथा नगरवासियो के होते रहते हैं । नृत्य, गीत, वादित्र वादन, स्त्री पुरुषो के अनेक मोहक रूप आदि विषयवासनावर्धक वातावरण रहता है । यह देखकर भुक्तभोगी को पूर्व-कालिक स्मृति, अभुक्त को कुतूहल आदि से सयम-अरति एव असमाधि उत्पन्न हो सकती है तथा जनता के कोलाहल आदि से स्वाध्याय, ध्यान की भी हानि होती है । वाहनो की प्रचुरता से और जनाकीर्ण मार्ग रहने से भिक्षागमन आदि मे सघट्टन परिघट्टन आदि होते है, इत्यादि दोषो के कारण इन दस बडी राजधानियो मे तथा ऐसी अन्य बडी नगरियो में भी बारम्बार जाना-आना सयमी के लिए हितकर नही है ।

राजा के अधिकारी व कर्मचारी वर्ग के निमित्त बना हुआ आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त—

२१ **जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताण** असण वा, **पाण वा, खाइम वा साइमं वा परस्स नीहड पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।**

तजहा—१ **खत्तियाण वा,** २ **राईण वा,** ३ **कुराईण वा,** ४ **रायवसियाण वा,** ५ **रायपे-सियाण वा ।**

२२ **जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाण मुद्धाभिसित्ताण** असण वा, **पाणं वा, खाइम वा, साइम वा, परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।**

तजहा—१ **णडाण वा,** २. **णट्टाण वा,** ३ **कच्छुयाण वा,** ४ **जल्लाण वा,** ५ **मल्लाण वा,** ६ **मुट्ठियाण वा,** ७ **वेलंबगाण वा,** ८ **खेलयाण वा,** ९ **कहगाण वा,** १० **पवगाण वा,** ११ **लास-गाण वा ।**

२३ **जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाण मुद्धाभिसित्ताण** असण वा, **पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेतं वा साइज्जइ ।**

तंजहा—१. **आस-पोसयाण वा,** २. **हत्थि-पोसयाण वा,** ३ **महिस-पोसयाण वा,** ४. **वसह-पोसयाण वा,** ५. **सीह-पोसयाण वा,** ६. **वग्घ-पोसयाण वा,** ७ **अय-पोसयाण वा,** ८. **पोय-पोसयाण वा,** ९. **मिग-पोसयाण वा,** १० **सुणय-पोसयाण वा,** ११. **सूयर-पोसयाण वा,** १२. **मेंढ-पोसयाण वा,** १३. **कुक्कुड-पोसयाण वा,** १४. **मक्कड-पोसयाण वा,** १५. **तित्तिर-पोसयाण वा,** १६. **वट्टय-पोसयाण वा,** १७ **लावय-पोसयाण वा,** १८. **चीरल्ल-पोसयाण वा,** १९. **हंस-पोसयाण वा,** २०. **मयूर-पोसयाण वा,** २१. **सुय-पोसयाण वा ।**

२४. **जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं** असणं वा, **पाण वा, खाइमं वा, साइमं वा, परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।**

तंजहा—१. आस-दमगाण वा, २. हत्थि-दमगाण वा, आस-परियट्टाण वा, ४ हत्थि-परियट्टाण वा, ५. आस-मिठाण वा, ६. हत्थि-मिठाण वा, ७. आसरोहाण वा, ८. हत्थिरोहाण वा।

२५. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताण असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइम वा परस्स णीहड पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तंजहा—१ सत्थवाहाण वा, २. संवाहयाण वा, ३ अब्भंगयाण वा, ४. उव्वट्टयाण वा, ५. मज्जावयाण वा, ६ मंडावयाण वा, ७. छत्तग्गहाण वा, ८. चामरग्गहाण वा, ९. हडप्पग्गहाण वा, १०. परियट्टग्गहाण वा, ११. दीवियग्गहाण वा, १२ असिग्गहाण वा, १३. धणुग्गहाण वा, १४. सत्तिग्गहाण वा, १५. कोतग्गहाण वा।

२६ जे भिक्खू रण्णो खत्तियाण मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइम वा, परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

तजहा—१ वरिसधराण वा, २ कंचुइज्जाण वा, ३ दुवारियाण वा, ४ दंडारक्खियाण वा।

२७ जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइम वा परस्स नीहड पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा, साइज्जइ।

तजहा— १. खुज्जाण वा, २ चिलाइयाण वा, ३ वामणीण वा, ४ वडभीण वा, ५ बब्बरीण वा, ६ बउसीण वा, ७ जोणियाण वा, ८ पल्हवियाण वा, ९ इसीणीयाण वा, १० धोरुगीणीण वा, ११ लासियाण वा, १२ लउसीयाण वा, १३ सिहलीण वा, १४ दमिलीण वा, १५ आरबीण वा, १६ पुलिंदीण वा, १७ पक्कणीण वा, १८ बहलीण वा, १९. मुरंडीण वा, २० सबरीण वा, २१ पारसीण वा।

त सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

२१ जो भिक्षु शुद्धवशीय राज्यमुद्राधारक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के—१ अगरक्षक, २ आधीन राजा, ३ जागीरदार, ४ राजा के आश्रित रहने वाले वशज, ५. और इन चारों के सेवको के लिये निकाला हुआ अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२ जो भिक्षु शुद्धवशीय राज्य मुद्राधारक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के— १. नाटक करने वाले, २ नृत्य करने वाले, ३ डोरी पर नृत्य करने वाले, ४ स्तुतिपाठ करने वाले, ५ मल्लयुद्ध करने वाले, ६ मुष्टियुद्ध करने वाले, ७ उछल-कूद करने वाले, ८. अनेक प्रकार के खेल करने वाले, ९ कथा करने वाले, १०. नदी आदि मे तैरने वाले, ११ जय-जय ध्वनि करने वाले, इनके लिये निकाला हुआ अशन-पान-खाद्य या स्वाद्य आहार ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३ जो भिक्षु शुद्धवंशीय राज्यमुद्राधारक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के— १ अश्व, २ हस्ती, ३ महिष, ४ वृषभ, ५. सिंह, ६ व्याघ्र, ७ अजा, ८. कबूतर, ९ मृग, १० श्वान, ११ शूकर, १२. मेंढा, १३ कुक्कुट, १४ बदर, १५. तीतर, १६ बतख, १७ लावक,

१८. बिरल्ल, १९. हस, २०. मयूर, २१ तोता, इन पशु-पक्षियो के पोषण करने वाले अर्थात् इनको पालने वालो या रक्षण करने वालो के लिये निकाला हुआ अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४ जो भिक्षु शुद्धवशज, राज्यमुद्राधारक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाओ के (१-२) अश्व और हस्ती को विनीत अर्थात् शिक्षित करने वाले के लिए (३-४) अश्व और हस्ती को फिराने वालो के लिए (५-६) अश्व और हस्ती को आभूषण, वस्त्र आदि से सुसज्जित करने वालो के लिए तथा (७-८) अश्व और हस्ती पर युद्ध आदि मे आरूढ होने वालो के लिए अर्थात् सवारी करने वालो के लिए निकाला हुआ अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५ जो भिक्षु शुद्धवशज राज्यमुद्राधारक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाओ के— १ सदेश देने वाले, २ मर्दन करने वाले, ३. मालिश करने वाले, ४ उबटन करने वाले, ५ स्नान कराने वाले, ६ मुकुट आदि आभूषण पहिनाने वाले, ७ छत्र धारण कराने वाले, ८ चामर धारण कराने वाले, ९. आभूषणो की पेटी रखने वाले, १० बदलने के वस्त्र रखने वाले, ११ दीपक रखने वाले, १२ तलवार धारण करने वाले, १३ त्रिशूल धारण करने वाले, १४ भाला धारण करने वाले, इनके लिये निकाला हुआ अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य आहार ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जो भिक्षु शुद्धवशज राज्यमुद्राधारक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाओ के— १ अत पुर रक्षक-कृत्रिमनपु सक, २ अत पुर मे रहने वाले जन्मनपु सक, ३ अत पुर के द्वारपाल, ४ दड-रक्षक=अत पुर के दडधारी-प्रहरी, इनके लिये निकाला हुआ अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जो भिक्षु शुद्धवशीय राज्यमुद्राधारक मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा की— १ कुब्जा दासी (कुबडे शरीर वाली), २ किरात देशोत्पन्न दासी, ३ वामन (छोटे कद वाली) दासी, ४ वक्र शरीरवाली दासी, ५ बर्बर देशोत्पन्न दासी, ६ बकुश देशोत्पन्न दासी, ७ यवन देशोत्पन्न दासी, ८ पल्हव देशोत्पन्न दासी, ९ इसीनिका देशोत्पन्न दासी, १० धोरूक देशोत्पन्न दासी, ११ लाट देशोत्पन्न दासी, १२ लकुश देशोत्पन्न दासी १३ सिहल देशोत्पन्न दासी, १४ द्रविड देशोत्पन्न दासी, १५ अरब देशोत्पन्न दासी, १६ पुलिद देशोत्पन्न दासी १७ पक्कण देशोत्पन्न दासी, १८ बहल देशोत्पन्न दासी, १९ मुरड देशोत्पन्न दासी, २० शबर देशोत्पन्न दासी, २१ पारस देशोत्पन्न दासी, इनके लिए निकाला हुआ अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

उपर्युक्त सूत्र कथित दोष-स्थानो का सेवन करने वाले को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—[२१-२७] इन सात सूत्रो मे वर्णित व्यक्तियो के लिये निकाला गया आहार ग्रहण करने में राजपिड दोष और उससे सम्बन्धित अन्य अनेक दोष, अतराय दोष या पुन आरम्भ

करने का दोष इत्यादि दोषो की सम्भावना रहती है । राजा की तरफ से इन व्यक्तियो को दिये जाने के बाद और उनके स्वीकार कर लेने पर वे व्यक्ति यदि अजुगुप्सित-अगर्हित कुल के हो तो एषणा समिति पूर्वक उनसे आहार ग्रहण करने मे कोई प्रायश्चित्त नही आता है ।

राजा के यहा इनके लिये बनाया गया हो या इनके लिये विभक्त करके रखा गया हो तब तक अकल्पनीय होता है । उसी आहार को ग्रहण करने का उपर्युक्त सूत्रो मे प्रायश्चित्त कहा गया है ।

सूत्र २१ – **"खत्तियाण आदि"—क्षतात् त्रायते इति क्षत्रिया आरक्षका इत्यर्थः । अधिवो—राया । कुत्सितो राया कुराया अहवा पच्चतनिवो कुराया । "राजवशे स्थिता. राज्ञो मातुल-भागिनेयादय रायवसट्ठिया ।" जे एतेसि चेव प्रेष्या— प्रेसिता —दडपासिकप्रभृतय ।**

—नि चूर्णि व आचा श्रु २, अ १, उ ३

सूत्र २२—इस सूत्र मे "वेलबगाण" से उछल-कूद खेल आदि करने वाले ऐसा अर्थ हो सकता है तथापि लिपिदोष के कारण यथार्थ निर्णय न होने से और अनेक प्रतियो मे मिलने से "खेलयाण वा" – अनेक प्रकार के खेल करने वाले" ऐसा अलग पाठ व उसका अर्थ रखा है ।

इस सूत्र मे "छत्ताणुयाण वा" शब्द भी ज्यादा मिलता है जो लिपि-प्रमाद से आया हुआ प्रतीत होता है । चूर्णिकार के सामने भी यह पाठ नही रहा होगा, ऐसा लगता है तथा सूत्र २५ मे इसका अलग कथन है । अत यहाँ आवश्यक न होने से नही रखा गया है ।

सूत्र २३ **"पोषक"**—आहार, औषध, पानी सबधी ध्यान रखने वाले, शारीरिक सेवा, स्नान, मर्दन आदि करने वाले, निवासस्थान की शुद्धि का ध्यान रखने वाले अर्थात् पूर्ण सरक्षण करने वाले 'पोषक' कहलाते है ।

अनेक प्रतियो मे 'मक्कडपोसयाण' नही है । किन्तु आचाराग श्रु २, अ १० मे कुक्कुड व तीतर शब्द के बीच मे मक्कड शब्द कुछ प्रतियो मे है अत यहाँ भी सूत्र मे "मक्कड" शब्द रखा है ।

"बृहत्तरा रक्तपादा वट्टा, अल्पतरा लावगा" अल्प लाल पाव वाले "लावक" होते है । अधिक लाल पाव वाले "बत्तक" कहलाते है ।

सूत्र २४—इस सूत्र के स्थान पर कई प्रतियो मे तीन और कही चार सूत्र भी मिलते है ।

"चूर्णि और भाष्य मे" इम सुत्तवक्खाण –

"आसाण य हत्थीण य, दमगा जे पढमताए विणियति ।
परियट्ट-मेंठ पच्छा, आरोहा जुद्धकालम्मि ॥२६०१॥"

"जे पढम विणय गाहेति ते दमगा, जे जणा जोगासणेहि वावरं वा वहेति ते मेठा, जुद्ध काले जे आरुहति ते आरोहा ॥२६०१॥"

पूर्व सूत्र मे अश्व व हस्ती आदि २१ पशु-पक्षियो के पोषण करने वालो का कथन है । इस सूत्र मे अश्व व हस्ती इन दो को शिक्षित करने वाले, घुमाने-फिराने वाले, आसन वस्त्र आभूषण से सुसज्जित करने वाले तथा युद्ध मे इनकी सवारी करने वालो का कथन है, ऐसा गाथा से ज्ञात होता है । चूर्णि मे "परियट्ट" शब्द की व्याख्या नही है । इसी कारण से पृथक्-पृथक सूत्र करने पर तीन

सूत्र बन गये, चार नही बने । चूर्णि में "इम सुत्तवक्खाण" पद से गाथा दी गई है । अत. चूर्णि काल तक एक सूत्र रहा होगा । इत्यादि विचारणा से यहाँ एक ही सूत्र रखा गया है ।

सूत्र २५—"राईसत्थमादियाणि रायसत्थाणि आहयंति कथयति ते" सत्थवाहा, "राज्ञा सार्थानि सचिवादिरूपाणि (तान्) आहयंति आमन्त्रयति राजसदेशं वा कथयति ये ते तया ।"

शेष शब्दो के मूल शब्द इस प्रकार हैं—

१ सवाहक, २ अभ्यगक, ३ उद्वर्तक, ४ मज्जापक, ५. मडापक ।

इसलिये इनका मूल पाठ इस प्रकार से है—

१ सबाहयाण, २ अब्भगयाण, ३ उव्वट्टयाण, ४ मज्जावयाण, ५. मडावयाण ।

प्रथम तीन पदो मे 'मर्दन आदि करने वाले' ऐसा अर्थ होता है, अतिम दो पदो मे 'स्नान कराने वाले, आभूषण आदि पहनाने वाले' ऐसा अर्थ होता है । अत मूल शब्दो की रचना के लिपिदोषो का सशोधन किया है । 'छत्तग्गहाण' आदि आगे के शब्द तो शुद्ध ही मिलते है ।

सूत्र २६—इस सूत्र मे अत पुर मे काम करने वाले चार व्यक्तियो का कथन है—

१ कृत-नपु सक = अत पुर के अदर रहने वाले रक्षक ।

२. दडरक्षक = प्रहरी, बाहर चौतरफ से रक्षा करने वाला दडधारी पुरुष ।

३ द्वारपाल = द्वार के ऊपर खडा रहने वाला ।

४ कचुकी = जन्म, नपु सक, रानियो के आभ्यतर, बाह्य कार्य करते हुए अत पुर मे ही रहने वाले ।

सूत्र २७—इस सूत्र मे दासियो के नाम के पाठ को कई प्रतियो मे 'जाव' शब्द मे सूचित करके दो नाम ही दिये है तथा कई प्रतियो मे सख्या १७, १८ व २१ है । २१ की सख्या वाला पाठ उपयुक्त है, क्योकि '१८ देश की दासिया' सूत्रो मे प्रसिद्ध है और तीन शरीर की आकृति से—१ कुब्ज, २ वक्र (झुकी हुई), ३ वामन दासिया कही है ।

नवम उद्देशक का सारांश

१-५—रार्जापड ग्रहण करे, खावे । अत पुर मे प्रवेश करे, अन पुर मे से आहार मगवावे ।

६—द्वारपाल-पशु आदि के निमित्त का रार्जापड ग्रहण करे ।

७—भिक्षार्थ जाते ४-५ दिन हो जाएँ फिर भी राजा के ६ स्थानो की जानकारी न करे ।

८-९—राजा या रानी को देखने के सकल्प से एक कदम भी चले ।

१०—शिकार आदि के लिये गये राजा का आहार ग्रहण करे ।

११—राजा भोजन करने गये हो, उस स्थल मे उस समय भिक्षार्थ जावे ।

१२—राजा जहा कही ठहरे हो, वहाँ ठहरे ।

१३-१८—युद्ध, यात्रा या पर्वत, नदी की यात्रार्थ जाते-आते राजा का आहार ग्रहण करे ।

१९—राज्याभिषेक की हलचल के समय उधर जावे-आवे ।

२०—दस बडी राजधानियो मे एक महीने मे एक बार से अधिक बार जावे ।

२१-२५—राजा के अधिकारी व कर्मचारी आदि के निमित्त निकाला आहार ग्रहण करे ।

इत्यादि प्रवृत्तिया करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

उपसंहार—इस नवम उद्देशक मे राजपिड व राजा से सम्बन्धित अनेक प्रसगो का ही प्रायश्चित्त कथन है ।

दशवै. अ ३ मे राजपिड ग्रहण को अनाचार कहा गया है तथा ठाणाग के पाचवे ठाणे में ५ कारण से राजा के अत पुर मे प्रवेश करने का आपवादिक कथन है। इस तरह इस उद्देशक के प्रथम तीन सूत्रो का विषय अन्य आगमो मे आया हुआ है । शेष सूत्र ४ से २७ तक के सूत्रो मे अन्य आगमो मे अनिर्दिष्ट विषय का कथन तथा प्रायश्चित्त है ।

इस प्रकार इस उद्देशक मे अन्य आगमो मे अनुक्त विषय ही अधिक (२४ सूत्रो मे) है और विषय भी एक राजा सम्बन्धी है। यही इस उद्देशक की विशेषता है ।

॥ नवम उद्देशक समाप्त ॥

दसवां उद्देशक

आचार्यादि के अविनय करने का प्रायश्चित्त—

१ जे भिक्खू भदंत आगाढं वयइ, वयंत वा साइज्जइ ।

२ जे भिक्खू भदंत फरुसं वयइ, वयंत वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू भदंत आगाढं फरुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ ।

४ जे भिक्खू भदंतं अण्णयरीए अच्चासायणाए अच्चसाएइ, अच्चासाएंत वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु आचार्य आदि को रोषयुक्त वचन बोलता है या बोलने वाले का अनुमोदन करता है।

२ जो भिक्षु आचार्य आदि को स्नेहरहित रूक्ष वचन बोलता है या बोलने वाले का अनुमोदन करता है।

३ जो भिक्षु आचार्य आदि को रोषयुक्त रूक्ष वचन बोलता है या बोलने वाले का अनुमोदन करता है।

४ जो भिक्षु आचार्य आदि की तेतीस आशातनाओं में से किसी भी प्रकार की आशातना करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।
(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—जाति आदि निम्न सत्तरह विषयों को लेकर आचार्य आदि को आगाढ और फरुस वचन कहे जा सकते हैं, यथा

१ जाति २ कुल ३ रूव ४ भासा ५ धण ६ बल ७ परियाय ८ जस ९ तवे १० लाभे ।
११ सत्त १२ वय १३ बुद्धि १४ धारण, १५ उग्गह १६ सीले १७ समायारी ।। २६०९ ।।

आचार्य आदि को ऐसा स्पष्ट कहना कि "तुम तो हीन जाति के हो" अथवा व्यंग्ययुक्त वाक्य में कहना कि "आप बडे ही जातिसम्पन्न है, मै तो हीन जाति वाला हूं।"

इसी तरह कुल, रूप आदि में भी समझ लेना चाहिये।

आगाढ—शरीरस्य उष्मा येन उक्तेन जायते तमागाढ—जिस वचन के बोलने से भीतर का कषाय प्रकट होता है।

फरुस—णेहरहियं णिप्पिवासं फरुसं भण्णति—स्नेहरहित अप्रिय वचन, अर्थात् रोषयुक्त न होते हुए भी जो वचन सुनने वाले को अप्रिय लगते है, हृदय मे चुभने वाले होते है।

आगाढफरुस—गाढफरुसं उभयं, ततियसुत्ते संजोगो दोण्ह वि—जो वचन रोषयुक्त भी हो तथा अप्रिय भी हो।

भदंत—इन तीन सूत्रो मे "आयरिय" शब्द का प्रयोग न करके "भदत" शब्द का प्रयोग किया गया है। उससे आचार्य, उपाध्याय आदि पदवीधर तथा गुरु या रत्नाधिक सबका ग्रहण किया गया है। यदि यहाँ आचार्य के लिए ही यह प्रायश्चित्त-विधान होता तो "आयरिय" शब्द का ही प्रयोग किया जाता।

आसायणा—भाष्य मे दशाश्रुतस्कन्धवर्णित ३३ आशातनाओ का निर्देश किया गया है और द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव ये चार भेद करके आशातनाओ का विस्तृत विवेचन किया है। वहाँ आशातना के अनेक अपवादो का भी उल्लेख किया है, यथा -

१ गुरु बीमार हो तो उनके लिए जो अपथ्य आहार हो वह उन्हे न दिखाना किन्तु स्वय खा लेना या विना पूछे अन्य को दे देना।
२ मार्ग मे काटे आदि हटाने के लिए आगे चलना।
३ विषम स्थान मे या रुग्ण अवस्था मे सहारे के लिये अत्यन्त निकट चलना।
४ शारीरिक परिचर्या करने के लिए निकट बैठना एव स्पर्श करना।
५ अपरिणत साधु न सुन सके, इसके लिये छेदसूत्र की वाचना के समय निकट बैठना।
६ गृहस्थ का घर निकट हो तो गुरु के आवाज देने पर भी न बोलना अथवा सघर्ष की सम्भावना हो तो भी न बोलना।
७ साधुओ से मार्ग अवरुद्ध हो तो स्थान पर से ही उत्तर दे देना।
८ स्वय बीमार हो या अन्य बीमार की सेवा मे सलग्न हो तो बुलाने पर भी न बोलना।
९ मलविसर्जन करते हुए न बोलना।
१० गुरु से कभी उत्सूत्र प्ररूपणा हो जाये तो विवेकपूर्वक या एकान्त मे कह देना।
११ गुरु आदि के सयम मे शिथिल हो जाने पर उन्हे सयम मे स्थिर करने के लिये कर्कश भाषा का प्रयोग करना।

उक्त आशातना की प्रवृत्ति करने पर भी सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है। क्योकि इनमे आशातना के भाव न होकर उचित विवेकदृष्टि होती है।

अनन्तकायसंयुक्त आहार करने का प्रायश्चित्त—

५ जे भिक्खू अणतकाय-संजुत्त आहार आहारेइ, आहारेत वा साइज्जइ।

५ जो भिक्षु अनतकायसयुक्त (मिश्रित) आहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—सूत्र मे अनतकाय से मिश्रित आहार का प्रायश्चित्त कहा है, शुद्ध अनन्तकाय का नही। क्योकि भिक्षु जान-बूझकर सचित्त अनन्तकाय तो नही खाता है किन्तु किसी खाद्य पदार्थ मे सचित्त कन्दमूल के टुकडे मिश्रित हो और उनकी जानकारी न हो, ऐसी स्थिति मे यदि खाने मे आ जाए तो वह अनन्तकायसयुक्त आहार कहा जाता है। अथवा किसी अचित्त खाद्य पदार्थ मे लीलन-फूलन (काई) आ जाये और ग्रहण करते समय व खाते समय तक भी उसकी जानकारी न हो पाए, तब भी अनन्तकायसयुक्त आहार करने का प्रसग बन सकता है।

अनन्तकाय— जिस वनस्पति मे अनन्त जीव हो वह अनन्तकायिक वनस्पति कहलाती है। कन्दमूल और फूलन तो अनन्तकाय के रूप है ही किन्तु पन्नवणा आदि आगमो मे इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के अनन्तकाय कहे है। वनस्पति के स्कन्ध से लेकर बीज तक के आठ विभाग हैं, वे भी अनन्तकाय के लक्षणो से युक्त हो तो अनन्तकाय समझे जा सकते है। आगमो मे अनन्तकाय के कुछ लक्षण इस प्रकार कहे गये है—

"जस्स मूलस्स भग्गस्स, समो भगो पदीसइ।
अणतजीवे उ से मूले, जे यावण्णे तहाविहा ॥ ९॥

जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली बहलयरी भवे।
अणतजीवा उ सा छल्ली जे यावण्णे तहाविहा ॥३०॥

चक्काग भज्जमाणस्स, गठी चुण्ण घणो भवे।
पुढवी सरिसभेएण, अणतजीव वियाणाहि ॥३८॥

गूढछिराग पत्त, सच्छीर ज च निच्छीर।
ज पिय पणट्ठ-सधि, अणतजीव वियाणाहि ॥३९॥

जे केइ णालियावद्धा पुप्फा, सखिज्जजीविया भणिया।
णिहुया अणतजीवा, जे यावण्ण तहाविहा ॥४१॥

सव्वोवि किसलओ खलु, उग्गममाणो अणतओ भणिओ।
सो चेव विवड्ढतो, होइ परित्तो अणतो वा ॥५२॥

—पण्णवणासूत्र, पद १

साराश—१ जिस वनस्पति के टुकड मे से दूध निकले।

२ हाथ से टुकडे करने पर जिस वनस्पति के दो समतल विभाग हो।

३ जिस वनस्पति के विभाग को चक्राकार काटने पर कटे हुए भाग मे पृथ्वीरज के समान कण-कण दिखाई दे।

४ जिस वनस्पति के मूल, कद, खध और शाखा की छाल अधिक मोटी हो।

५ जिस पत्ते मे शिराए (रेशे) न दिखे। सधिया न दिखे।

६ जो फूल णालबद्ध न हो।

७ उगते हुए अकुर हो।

इस प्रकार शाक, पत्ते आदि वनस्पतिया भी अनन्तकाय हो सकती है तथा पणग, सेवाल, आलू, लहसुन, कादा, गाजर, मूला, अदरक, हल्दी, रतालु, शकरकद, अरवी तथा अनेक जलज वनस्पतिया तो अनन्तकाय ही है। अचित्त आहार मे इनके सचित्त खड या अश हो तो वह परठने योग्य होता है।

आधाकर्म आहारादि के उपयोग मे लेने का प्रायश्चित्त—

६ जे भिक्खू आहाकम्मं भुंजइ, भुंजंत वा साइज्जइ।

६ जो भिक्षु आधाकर्मी आहार, उपधि व शय्या का उपभोग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—"आहाकम्मं ग्रहणावात्मनि कर्म आहित, आत्मा वा कर्मणि आहितः।" (इति आहाकम्मं)

२. "आहाकम्मग्गहणातो जम्हा विसुद्धसंजमठाणेहितो अप्पाण अविसुद्धठाणेसु अहो अहो करेति तम्हा भाव आहोकम्मं।"

३. "भाव-आते णाण-दंसण-चरणा तं हणंतो भावाताहम्मं।"

४. "आहाकम्मपरिणतो परकम्मं अत्तकम्मीकरेति त्ति अत्तकम्मं।"

व्याख्याकार ने आधाकर्म के चार पर्याय करके अर्थ किये है—

१ आधाकर्म आहार आदि ग्रहण करने से आत्मा पर कर्मों का आवरण आता है। अथवा आत्मा कर्मों से आवृत होती है।

२ आधाकर्म आहारादि ग्रहण करने से आत्मा विशुद्ध सयमस्थानो से गिरकर अविशुद्ध सयमस्थानो मे आ जाती है। अथवा आत्मा का पुन पुन अध पतन होता रहता है।

३ आधाकर्म आहारादि ग्रहण करने से आत्मा के भाव-गुण, ज्ञान, दर्शन, चारित्र का हनन होता है।

४ आधाकर्म आहारादि ग्रहण करने के परिणामो मे आत्मा गृहस्थ के कार्यों से अपने कर्मो का बध करती है।

आधाकर्म के प्रकार—

"आहाकम्मे तिविहे, आहारे उवधि वसहिमादीसु।
आहाराहाकम्मं, चउव्विध होइ असणावी ॥२६६३॥

उवहि-आहाकम्मं, वत्थे पाए य होइ णायव्व।
वत्थे पंचविध पुणं, तिविह पुण होइ पायम्मि ॥२६६४॥

वसही-आहाकम्मं, मूलगुणे चेव उत्तरगुणे य।
एक्केक्क सत्तविहं, णायव्व आणुपुव्वीए ॥२६६५॥

१ आहार-आधाकर्म—चार प्रकार का है—१ अशन, २ पान, ३ खाद्य, ४ स्वाद्य।

२ उपधि-आधाकर्म- दो प्रकार का है—वस्त्र और पात्र।

वस्त्र पाँच प्रकार के है और पात्र तीन प्रकार के है। उपलक्षण से अन्य भी औधिक और औपग्रहिक उपधि समझ लेनी चाहिये।

३ वसति-आधाकर्म—शय्या के मूल विभाग व उत्तर विभाग की अपेक्षा सात-सात प्रकार होते है।

आधाकर्म की कल्प्याकल्प्यता—

प्रथम व अन्तिम तीर्थकर के शासन मे एक या अनेक साधु के उद्देश्य से बना हुआ आधाकर्म आहार किसी भी साधु या साध्वी को नही कल्पता है।

मध्यवर्ती तीर्थंकरो के शासन मे- आधाकर्म मे जिन साधु या साध्वी का उद्देश्य नही है, उन्हे ग्रहण करना कल्पता है । जिस एक साधु का या सघ का उद्देश्य हो तो उस साधु को या सघ को ग्रहण करना नही कल्पता है ।

आधाकर्म और औद्देशिक—आधाकर्म के दो विभाग है--

१ जिस आधाकर्म आहारादि मे एक या अनेक साधुओ का उद्देश्य है, उनके लिये वह आहारादि आधाकर्म है ।

२ जिनका उद्देश्य नही है, उनके लिये वही आहारादि औद्देशिक है ।

मध्यम तीर्थकरो के शासन मे "आधाकर्म" अग्राह्य होता है । प्रथम व अन्तिम तीर्थकर के शासन मे "आधाकर्म और औद्देशिक" दोनो अग्राह्य होते है ।

इस अन्तर के कारण को समझाने के लिये व्याख्याकार ने सरलता और वक्रता का कारण कहा है और उन्हे गृहस्थ और साधु दोनो पर उदाहरण सहित घटित किया है ।

निमित्तकथन-प्रायश्चित्त—

७ जे भिक्खू पडुप्पण्ण निमित्त वागरेइ, वागरेत वा साइज्जइ ।

८ जे भिक्खू अणागय निमित्त वागरेइ, वागरेत वा साइज्जइ ।

७ जो भिक्षु वर्तमान सबधी निमित्त का कथन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

८ जो भिक्षु भविष्य सम्बन्धी निमित्त का कथन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

(उसे गुरुचोमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन —लाभ, अलाभ, सुख, दु ख और मरण ये निमित्त के छह प्रकार है । इन छह के भूत भविष्य और वर्तमान ये तीन-तीन भेद है ।

निमित्त बताने के अनेक हेतु है, यथा

१. आहारादि की उपलब्धि के लिये, २ यश कीर्ति या प्रतिष्ठा के लिये, ३ किसी के लिहाज से, ४ किसी के हित के लिए या अनुकम्पा के लिये इत्यादि ।

निमित्त बताने के अनेक तरीके है, यथा--

१ हस्तरेखा से, पादरेखा से, मस्तकरेखा से, २ शरीर के अन्य लक्षणो से, ३. तिथि, वार या राशि से, ४ जन्मतिथि या जन्मकुण्डली से, ५ प्रश्न करने से इत्यादि ।

वर्तमान निमित्त के उदाहरण—

१ मैने अमुक व्यक्ति को अमुक के पास भेजा है, वहाँ उसे धन की राशि मिल गई या नही ? वह आ रहा है या नही ?

२ कोई विदेश गया है, वह वहाँ जीवित है या मर गया ?

३ कोई परीक्षा करने की दृष्टि से पूछे कि "मैं अभी सुखी हूँ या दु:खी ?"

इत्यादि प्रश्नो का उत्तर देना वर्तमान निमित्त कथन है ।

इसी प्रकार भविष्यकाल के हानि, लाभ, सुख, दु ख, जन्म, मरण सम्बन्धी निमित्त के प्रश्न व उनके उत्तर भी समझ लेने चाहिये ।

प्रस्तुत प्रकरण मे वर्तमान और भविष्य के निमित्त-कथन का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है । भूतकाल के निमित्तकथन का लघुचौमासी प्रायश्चित्त तेरहवे उद्देशक में है ।

निमित्तकथन का निषेध आगमो मे भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ है ।

कुछ उद्धरण इस प्रकार है—

१. "जे लक्खण च सुविण च, अगविज्ज च जे पउजति ।
ण हु ते समणा वुच्चति, एवं आरिएहिं अक्खाय ।।
—उत्तरा अ ८, गा ३

२. जे लक्खण सुविण पउजमाणे, णिमित्त कोउहल संपगाढे ।
कुहेड विज्जासवदारजीवी, न गच्छइ सरणं तम्मि काले ।।
—उत्तरा अ २०, गा ४५

३. सय गेह परिच्चज्ज, परगेहसि वावरे ।
निमित्तेण य ववहरइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ।
—उत्तरा अ १७, गा १८

४. छिन्न सर भोममन्तलिक्ख, सुविण लक्खण-दण्ड-वत्थु-विज्ज ।
अग-वियार सरस्स विजय, जे विज्जाहिं न जीवई स भिक्खू ।।
—उत्तरा अ १५, गा ७

५. नक्खत्त सुमिण जोग, निमित्त मत-भेसज ।
गिहिणो त न आइक्खे, भूयाहिगरण पय ।।
—दशवै अ ८, गा ५०

१ जो साधक लक्षणशास्त्र, स्वप्नशास्त्र एव अगविद्या का प्रयोग करते है उन्हे सच्चे अर्थों मे श्रमण नही कहा जाता, ऐसा तीर्थंकरो ने कहा है ।

२ जो लक्षणशास्त्र और स्वप्नशास्त्र का प्रयोग करता है, जो निमित्तशास्त्र और कौतुक-कार्य मे लगा रहता है, मिथ्या आश्चर्य उत्पन्न करने वाली आस्रवयुक्त विद्याओ से आजीविका करता है, वह मरण के समय किसी की शरण नही पा सकता ।

३ जो अपना घर छोडकर दूसरो के घर मे जाकर उनका कार्य करता है और निमित्तशास्त्र से शुभाशुभ बताकर जीवन-व्यवहार चलाता है, वह पापश्रमण कहलाता है ।

४ जो छेदन, स्वर (उच्चारण), भौम, अतरिक्ष, स्वप्न, लक्षण, दड, वास्तुविद्या, अगस्फुरण और स्वरविज्ञान आदि विद्याओ के द्वारा आजीविका नही करता है, वह भिक्षु है ।

५. नक्षत्र, स्वप्न, वशीकरण योग, निमित्त, मन्त्र और भेषज—ये जीवो की हिंसा के स्थान है, इसलिए मुनि गृहस्थो को इनके फलाफल न बताए।

निमित्तकथन से जिनाज्ञा का उल्लघन होता है।

साधक सयमसाधना से चलित हो जाता है।

सावद्य प्रवृत्तियो का निमित्त बनता है।

निमित्तकथन से ही अनेक अनर्थ होने की सभावना रहती है।

सूत्रकृतागसूत्र अ. १२, गा १० में बताया है कि "कई निमित्त कई बार सत्य होते है तो कई बार असत्य भी हो जाते है।" जिससे साधु का यश और द्वितीय महाव्रत कलकित होता है।

शिष्य-अपहरण का प्रायश्चित्त–

९. जे भिक्खू सेहं अवहरइ, अवहरंतं वा साइज्जइ।

१०. जे भिक्खू सेहं विप्परिणामेइ, विप्परिणामेंतं वा साइज्जइ।

९ जो भिक्षु (अन्य के) शिष्य का अपहरण करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

१० जो भिक्षु (अन्य के) शिष्य के भावो को परिवर्तित करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—शिष्य दो प्रकार के होते हैं—१. दीक्षित (साधु) और २. दीक्षार्थी (वैरागी)। आगे के सूत्रो मे दीक्षार्थी सम्बन्धी कथन है अत यहाँ दीक्षित साधु ही समझना चाहिये।

अपहरण—अन्य के शिष्य को अनुकूल बनाने के लिए अर्थात् आकर्षित करने के लिये आहार आदि देना, शिक्षा या ज्ञान देना और उसे लेकर अन्यत्र चले जाना, भेज देना या छिपा देना।

विप्परिणमन—शिष्य के या गुरु के अवगुण बताकर निन्दा करना व खुद के गुण बताकर प्रशसा करना। अन्य के पास रहने की हानियाँ बताकर अपने पास रहने के लाभ बताकर उसके भावो का परिवर्तन कर देना।

विपरिणमन और अपहरण मे अंतर—१ अपहरण—आकर्षित करके ले जाना।

२ विपरिणमन—गुरु के प्रति अश्रद्धा पैदा करके विचारो मे परिवर्तन कर देना, जिससे वह स्वय गुरु को छोड दे।

भाष्यकार ने तेरह द्वारों से विपरिणमन का विस्तार किया है तथा शिष्य के पूछने पर या बिना पूछे काया से, वचन से और मन से जिस-जिस तरह निन्दा, गर्हा की जाती है, उसका विस्तृत वर्णन किया है।

दिशा-अपहरण का प्रायश्चित्त–

११. जे भिक्खू दिसं अवहरइ, अवहरंतं वा साइज्जइ।

१२. जे भिक्खू दिसं विप्परिणामेइ, विप्परिणामेंतं वा साइज्जइ।

११ जो भिक्षु नवदीक्षित की दिशा का अपहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२ जो भिक्षु नवदीक्षित की दिशा को विपरिणामित करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—**"दिशा—इति व्यपदेशः, प्रव्रजनकाले उपस्थापनकाले वा, यां आचार्य उपाध्यायो वा व्यपदिश्यते सा तस्य दिशा इत्यर्थः। तस्यापहारी—तं परित्यज्य अन्यं आचार्य-उपाध्याय वा प्रतिपद्यते इत्यर्थः। संजतीए पवत्तिणी।"** —चूर्णि

भावार्थ—प्रव्रज्या या उपस्थापना (बड़ी दीक्षा) के समय नवदीक्षित को जिस आचार्य, उपाध्याय के नेतृत्व का निर्देश किया जाता है वह उसकी "दिशा" कहलाती है। उन आचार्य, उपाध्याय के निर्देश को छुडाकर अन्य आचार्य, उपाध्याय का कथन करवाना यह उस शिष्य की दिशा का अपहरण करना कहलाता है।

इसी प्रकार साध्वी के लिये भी जिस प्रवर्तिनी का निर्देश करना हो, उसे दूसरी प्रवर्तिनी का निर्देश कर देना उसकी दिशा का अपहरण करना कहलाता है।

अपहरण में स्वयं अन्य आचार्य, उपाध्याय का निर्देश कर दिया जाता है और विपरिणमन में नवदीक्षित के विचारो मे परिवर्तन कराया जाता है।

सूत्र ९-१० मे पूर्वदीक्षित शिष्य के अपहरण या भावपरिवर्तन का प्रायश्चित्त है और सूत्र ११-१२ मे दीक्षार्थी के अपहरण या भावपरिवर्तन का प्रायश्चित्त है।

अपहरण और विपरिणमन ये दोनो भिन्न-भिन्न क्रियाये हैं, जो व्यक्ति से सबध रखती है। अत "सेह" का अर्थ "दीक्षित शिष्य" समझा जाता है, वैसे ही "दिस" दिशा जिसकी हो वह दिशा-वान् अर्थात् दीक्षार्थी। अत "दिस" से दीक्षार्थी का अपहरण और विपरिणमन समझ लेना चाहिये।

अज्ञात भिक्षु को आश्रय देने का प्रायश्चित्त—

१३. जे भिक्खू वहियावासियं आएसं परं ति-रायाओ अविफालेत्ता संवसावेइ, संवसावेंतं वा साइज्जइ।

१३ जो भिक्षु अन्य गच्छ के आये हुए (एकाकी) साधु को पूछताछ किये बिना तीन दिन से अधिक साथ मे रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—यदि आने वाला साधु परिचित है तो आने का कारण पूछना चाहिए। यदि अपरिचित है तो वह कहां से आया है? कहा जाना चाहता है? इत्यादि प्रश्न पूछकर पूरी जानकारी करके यथायोग्य करना चाहिये। क्योकि अपरिचित व्यक्ति चोर, ठग, द्वेषी, राजा का अपराधी, मैथुन-सेवी, छिद्रान्वेषी, हत्यारा या उत्सूत्रप्ररूपक आदि भी हो सकता है।

परिचित व्यक्ति से भी पूछताछ करना व्यवहार की अपेक्षा से आवश्यक है।

जहाँ तक सम्भव हो उसी दिन जानकारी कर लेनी चाहिए। बीमारी आदि कारणों से ऐसा

करना सम्भव न हो तो भी तीसरे दिन का उल्लघन तो नही करना चाहिये, अन्यथा प्रायश्चित्त का पात्र होता है ।

गच्छनायक का या वहा जो प्रमुख साधु हो उसी का यह कर्त्तव्य है और वही प्रायश्चित्त का पात्र है ।

आने वाला साधु ख्याति सुनकर आलोचना—(शुद्धि) के लिये, ज्ञानप्राप्ति के लिये, सघ के कार्य के लिए या उपसम्पदा के लिये भी आ सकता है । पूछताछ न करने से उसकी श्रद्धा मे परिवर्तन होना, अपयश होना आदि सम्भव होता है । अत. प्रमुख साधु को इस कर्त्तव्य का विवेकपूर्वक पालन करना चाहिये ।

कलह करके आये हुए भिक्षु के साथ आहार करने का प्रायश्चित्त–

१४. जे भिक्खू साहिगरण, अविओसविय-पाहुडं, अकड-पायच्छित्तं, पर ति—रायाओ विप्फालिय अविप्फालिय संभुंजइ, संभुंजंत वा साइज्जइ ।

१४ जिसने क्लेश करके उसे उपशान्त नही किया है, उसका प्रायश्चित्त नही किया है, उससे पूछताछ किये बिना या पूछताछ करके भी जो भिक्षु उसके साथ तीन दिन से अधिक आहार-सम्भोग रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक ४ मे बताया गया है कि किसी साधु का किसी साधु के साथ क्लेश हो गया हो तो उसे उपशान्त किये बिना या आलोचना प्रायश्चित्त किये बिना गोचरी आदि किसी भी कार्य के लिये बाहर जाना नही कल्पता है ।

इस प्रायश्चित्तसूत्र मे यह फलित होता है कि क्लेशयुक्त भिक्षु यदि पूछताछ आदि कर लेने के बाद भी उपशान्त नही होता है, प्रायश्चित्त ग्रहण नही करता है तो तीन दिन के बाद उसके साथ आहार आदि करने का व्यवहार नही रखा जा सकता ।

तीन दिन के बाद जो उसके साथ आहार का आदान-प्रदान करते है वे प्रायश्चित्त के पात्र होते है ।

यहाँ व्याख्याकार ने क्लेश उत्पत्ति के अनेक कारण कहे हैं और अनुपशान्त भिक्षु को उपशात करने के अनेक उपाय भी कहे है । इन उपायो को न करके उनकी उपेक्षा करने से होने वाली अनेक हानियो को एक रोचक दृष्टान्त से समझाया गया है ।

विपरीत प्रायश्चित्त कहने एवं देने का प्रायश्चित्त–

१५. जे भिक्खू उग्घाइयं अणुग्घाइयं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ ।

१६. जे भिक्खू अणुग्घाइयं उग्घाइयं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ ।

१७. जे भिक्खू उग्घाइयं अणुग्घाइयं देइ, देंतं वा साइज्जइ ।

१८. जे भिक्खू अणुग्घाइयं उग्घाइयं देइ, देंत वा साइज्जइ ।

१५ जो भिक्षु लघुप्रायश्चित्तस्थान को गुरु प्रायश्चित्तस्थान कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१६ जो भिक्षु गुरुप्रायश्चित्तस्थान को लघु प्रायश्चित्तस्थान कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१७ जो भिक्षु लघुप्रायश्चित्तस्थान का गुरुप्रायश्चित्त देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

१८ जो भिक्षु गुरुप्रायश्चित्तस्थान का लघु प्रायश्चित्त देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन- दो सूत्रो मे विपरीत प्ररूपणा करने का प्रायश्चित्त कहा गया है और दो सूत्रो मे राग-द्वेष से या अज्ञान से कम या अधिक प्रायश्चित्त देने का प्रायश्चित्त कथन है।

अधिक प्रायश्चित्त देने मे साधु को पीडा होती है, उसकी अननुकम्पा होती है तथा आलोचक भय के कारण फिर कभी आलोचना नही करता है।

कम प्रायश्चित्त देने से पूर्ण शुद्धि नही होती है और पुन दोष सेवन की सम्भावना रहती है। अत प्रायश्चित्त देने वाले अधिकारी को विपरीत प्रायश्चित्त न देने का ध्यान रकना चाहिए।

प्रायश्चित्त योग्य भिक्षु के साथ आहार करने का प्रायश्चित्त—

१९ जे भिक्खू उग्घाइय सोच्चा णच्चा संभुंजइ, सभुंजंतं वा साइज्जइ।

२०. जे भिक्खू उग्घाइय-हेउं सोच्चा णच्चा संभुंजइ, संभुंजंतं वा साइज्जइ।

२१. जे भिक्खू उग्घाइय-संकप्पं सोच्चा णच्चा संभु जइ, संभुंजंतं वा साइज्जइ।

२२. जे भिक्खू अणुग्घाइय सोच्चा णच्चा संभु जइ संभुंजंतं वा साइज्जइ।

२३. जे भिक्खू अणुग्घाइय-हेउं सोच्चा णच्चा संभुंजइ, संभु जत वा साइज्जइ।

२४. जे भिक्खू अणुग्घाइय-संकप्पं सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ।

१९ जो भिक्षु लघु प्रायश्चित्तस्थान के सेवन करने का सुनकर या जानकर उस साधु के साथ आहारादि का व्यवहार रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२० जो भिक्षु लघुप्रायश्चित्त के हेतु को सुनकर या जानकर उस साधु के साथ आहारादि का व्यवहार रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२१ जो भिक्षु लघुप्रायश्चित्त के सकल्प को सुनकर या जानकर उस साधु के साथ आहारादि का व्यवहार रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जो भिक्षु गुरुप्रायश्चित्तस्थान के सेवन करने का सुनकर या जानकर उस साधु के साथ आहारादि का व्यवहार रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२३ जो भिक्षु गुरुप्रायश्चित्त के हेतु को सुनकर या जानकर उस साधु के साथ आहारादि का व्यवहार रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२४ जो भिक्षु गुरुप्रायश्चित्त के सकल्प को सुनकर या जानकर उस साधु के साथ आहारादि का व्यवहार रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन— १. **उग्घाइयं ति पायच्छित्त वहंतस्स,**

२. **पायच्छित्तमापण्णस्य जाव अणालोइयं ताव "हेउ" भण्णति,**

३. **आलोइए अमुगदिणे तुज्झेयं पच्छित्तं दिज्जिहिति त्ति "संकप्पियं" भण्णति।**—चूर्णि।

१ उग्घाइय—प्रायश्चित्तस्थान सेवन करते समय,

२ हेउ—उसके बाद आलोचना करे तब तक,

३ सकप्प—प्रायश्चित्त मे स्थापित करने का जो दिन निश्चित किया हो उस दिन तक।

प्रायश्चित्त स्थान सेवन करने के समय से लेकर प्रायश्चित्त के निमित्त कृत तप के पूर्ण होने तक उस साधु के साथ आहार का आदान-प्रदान करने का निषेध है।

प्रायश्चित्त के निमित्त किये जाने वाले तप की जो विशिष्ट विधि होती है, उसमे तो प्रायश्चित्त करने वाले के साथ सभी सामान्य व्यवहार समाप्त कर दिये जाते है। किन्तु यहाँ उसके पूर्व की अवस्था मे आहार का व्यवहार बद करने का तीन विभागो द्वारा कथन कर प्रायश्चित्त कहा गया है।

तीन सूत्रो में उद्घातिक से सम्बन्धित प्रायश्चित्त कहा गया है और तीन सूत्रो मे अनुद्घातिक से सम्बन्धित प्रायश्चित्त कहा गया है।

चूर्णिकार ने इन सूत्रो की व्याख्या के प्रारम्भ मे ही कहा है कि "एते छ सुत्ता।" इसके बाद उद्घातिक आदि शब्दो का अर्थ किया है। फिर भी इन छ सूत्रों के कभी बारह सूत्र बन गये हैं जो उपलब्ध सभी प्रतियो मे मिलते है। सम्भव है बढने का आधार भाष्य गाथा २८८७ की चूर्णि मे कहे गए भग हो सकते हैं। वहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि सूत्र तो ६ ही है। सयोगसूत्र इन ६ से बना लेना चाहिए, जिनकी सख्या ५५ है।

सूर्योदय-वृत्तिलंघन का प्रायश्चित्त—

२५ जे भिक्खू उग्गय-वित्तीए अणत्थमिय-संकप्पे सथडिए निव्वितिगिच्छा-समावण्णेण अप्पाणेण असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइम वा पडिग्गाहेत्ता आहारं आहारेमाणे, अह पुण एव जाणेज्जा—"अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा" से ज च मुहे, जं च पाणिसि, ज च पडिग्गहे, त विगिंचेमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ जो तं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

२६. जे भिक्खू उग्गयवित्तीए अणत्थमिय-संकंप्पे संथडिए वितिगिच्छा-समावण्णेणं अप्पाणेणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहार आहारेमाणे, अह पुण एवं जाणेज्जा—"अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा" से जं च मुहे, ज च पाणिसि, ज च पडिग्गहे, तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ, जो तं भुंजइ, भुंजंत वा साइज्जइ।

२७. जे भिक्खू उग्गय-वित्तीए अणत्थमिय-संकप्पे असमत्थे-डिए निव्वितिगिच्छासमावण्णेणं अप्पाणेणं असणं वा पाणं वा खाइम वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे, अह पुण एवं जाणेज्जा—"अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा," से जं च मुहे, जं च पाणिंसि ज च पडिग्गहे, तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ, जो तं भुजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

२८. जे भिक्खू उग्गय-वित्तीए अणत्थमिय-संकप्पे असंथडिए वितिगिच्छासमावण्णेण अप्पाणेणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइम वा पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे, अह पुण एवं जाणेज्जा —"अणुग्गए, सूरिए, अत्थमिए वा" से ज च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे, तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे नाइक्कमइ, जो तं भुंजइ, भुंजत साइज्जइ।

२५ भिक्षु का सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पूर्व आहार लाने का एव खाने का सकल्प होता है। जो समर्थ भिक्षु सदेह रहित आत्मपरिणामो से अशन, पान, खाद्य या स्वाद ग्रहण करके खाता हुआ यह जाने कि "सूर्योदय नही हुआ है या सूर्यास्त हो गया है" उस समय जो आहार मुँह मे या हाथ मे लिया हुआ हो और जो पात्र मे रखा हुआ हो उसे निकालकर परठता हुआ तथा मुख, हाथ व पात्र को पूर्ण विशुद्ध करता हुआ वह जिनाज्ञा का उल्लंघन नही करता है। किन्तु जो उस शेष आहार को खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

२६ भिक्षु का सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पूर्व आहार लाने व खाने का सकल्प होता है। जो समर्थ भिक्षु सदेहयुक्त आत्मपरिणामो से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण कर खाता हुआ यह जाने कि "सूर्योदय नही हुआ है या सूर्यास्त हो गया है" उस समय जो आहार मुख मे या हाथ मे लिया हुआ हो और पात्र मे रखा हुआ हो, उसे निकालकर परठता हुआ तथा मुख, हाथ व पात्र को पूर्ण विशुद्ध करता हुआ जिनाज्ञा का उल्लघन नही करता है। किन्तु जो उस शेष आहार को खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

२७ भिक्षु का सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पूर्व आहार लाने व खाने का सकल्प होता है। जो असमर्थ भिक्षु सदेहरहित आत्मपरिणामो मे अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करके खाता हुआ यह जाने कि "सूर्योदय नही हुआ है या सूर्यास्त हो गया है" उस समय जो आहार मुह मे या हाथ मे लिया हुआ हो और जो पात्र मे रखा हो उसे निकालकर परठता हुआ तथा मुख, हाथ व पात्र को पूर्ण बिशुद्ध करता हुआ वह जिनाज्ञा का उल्लघन नही करता है। किन्तु जो उस शेष आहार को खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

२८ भिक्षु का सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पूर्व आहार लाने व खाने का सकल्प होता है। जो असमर्थ भिक्षु सदेहयुक्त आत्मपरिणामो से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण कर खाता हुआ यह जाने कि "सूर्योदय नही हुआ है या सूर्यास्त हो गया है" उस समय जो आहार मुह मे या हाथ मे लिया हुआ हो और जो पात्र मे रखा हुआ हो, उसे निकालकर परठता हुआ तथा मुख, हाथ व पात्र को पूर्ण विशुद्ध करता हुआ वह जिनाज्ञा का उल्लघन नही करता है। किन्तु जोउस आहार को खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता।)

विवेचन—इन चारों सूत्रो में 'समर्थ-असमर्थ, सदेहरहित-सदेहयुक्त' की चौभगी की गई है—

१. समर्थ साधु सदेहरहित होकर आहार ग्रहण करता है।

२ समर्थ साधु सदेहयुक्त होकर आहार ग्रहण करता है ।

३ असमर्थ साधु सदेहरहित होकर आहार ग्रहण करता है ।

४. असमर्थ साधु सदेहयुक्त होकर आहार ग्रहण करता है ।

चूर्णिकार का कथन है—

१. संथडिओ नाम हट्ठ-समत्थो,

२. वितिगिच्छा—विमर्षः—मतिविप्लुता संदेह इत्यर्थः, सा णिग्गता वितिगिच्छा जस्स सो निव्वितिगिच्छो भवति ।

३. अब्भादिएहिं कारणेहिं अदिट्ठे आइच्चे संका भवति—किं उदितो अणुदितो त्ति । अत्थमणकाले वि किं सूरो धरति न वा ति संका भवति । (सो वितिगिच्छाओ) ।

४. छट्ठऽट्ठमादिणा तवेण किलंतो असथडो, गेलण्णेण वा दुब्बलसरीरो असंथडो, दीहद्धाणेण वा पज्जत्तं अलभंतो असथडो ।

१ सस्तृत अर्थात् स्वस्थ या समर्थ ।

२ निर्विचिकित्सा अर्थात् सदेहरहित ।

३ बादल आदि कारणो से सूर्य के नही दिखने पर शका होती है कि सूर्योदय हुआ या नही अथवा सूर्यास्त के समय सूर्य है या अस्त हो गया, ऐसी शका होती है ।

४ बेले, तेले आदि तप से अशक्त बना हुआ, रुग्णता मे दुर्बल शरीर वाला या लम्बे विहार मे आहार के अलाभ से क्षुधातुर भिक्षु असस्तृत कहलाता है ।

विहार करते समय आगे आहार मिलने की सम्भावना न हो और रात्रि-विश्राम जहाँ किया हो उस ग्राम के प्राय सभी लोग प्रात काल ही खेत आदि के लिये जा रहे हो, ऐसे समय मे समर्थ (स्वस्थ) साधु भी ग्रहण करने जा सकता है । इसी तरह दूसरे दिन आहारादि मिलने की सम्भावना न हो, ऐसे समय में शाम को भिक्षा लाने का प्रसग उपस्थित हो सकता है ।

असमर्थ (ग्लान) के लिये तो ऐसे अवसर सहज सम्भव है ।

बादल या पहाड आदि से कभी-कभी सूर्योदय होने या सूर्यास्त न होने का आभास हो सकता है । फिर थोड़ी देर बाद सही स्थिति सामने आ जाती है ।

सदिग्ध या असदिग्ध अवस्था मे आहार ग्रहण करने के बाद यदि निर्णय हो जाए कि सूर्योदय नही हुआ या सूर्यास्त हो गया है, या आहार ग्रहण करने के बाद सूर्योदय हुआ है तो वह आहार साधु को खाना नही कल्पता है । खाये जाने पर रात्रिभोजन का दोष लगता है तथा उसका गुरुचौमासी प्रायश्चित आता है । अत वह आहार पात्र मे हो या हाथ मे हो या मुख मे हो, परठ देना चाहिये और हाथ आदि को पानी से धो लेना चाहिये ।

उद्गाल गिलने का प्रायश्चित्त—

२९. जे भिक्खू राओ वा वियाले वा सपाण सभोयणं उग्गाल उग्गिलित्ता पच्चोगिलइ, पच्चोगिलंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु रात्रि मे या विकाल मे आहार या पानी सहित उद्गाल के मुह मे आने के बाद पुन उसे निगल जाता है या निगलने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—मर्यादा से अधिक खा लेने पर दिन में, रात्रि मे या विकाल (सधिकाल) मे उद्गाल आ सकता है। उद्गाल यदि गले तक आकर पुन. लौट जाये तो प्रायश्चित्त नही आता है किन्तु मुह में आ जाय और उसे निगल जाए तो भिक्षु को प्रायश्चित्त आता है, किन्तु दिन में निगलने पर प्रायश्चित्त नही आता है।

इस सूत्र मे व्याख्याकार (भाष्य, चूर्णिकार) ने गर्म 'तवे' पर पानी की बूद का दृष्टान्त देकर समझाया है कि साधु को इतना मर्यादित आहार करना चाहिये कि जिसका जठराग्नि द्वारा पूर्ण पाचन हो जाए, अपाचन सम्बन्धी कोई विकार न होने पाए।

यह सूत्र रात्रिभोजन से सम्बन्धित सूक्ष्म मर्यादा के पालन का प्रेरक है।

आगमकार ने उद्गाल निगलने को भी रात्रिभोजन ही माना है। अत इसका गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

ग्लान की सेवा में प्रमाद करने का प्रायश्चित्त—

३० **जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा णच्चा ण गवेसइ, ण गवेसंतं वा साइज्जइ।**

३१. **जे भिक्खू गिलाण सोच्चा णच्चा उम्मग्गं वा पडिपहं वा गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ।**

३२ **जे भिक्खू गिलाण-वेयावच्चे अब्भुट्ठिए सएण लाभेण असंथरमाणे जो तस्स ण पडितप्पइ, ण पडितप्पंतं वा साइज्जइ।**

३३ **जे भिक्खू गिलाण-वेयावच्चे अब्भुट्ठिए गिलाण-पाउग्गे दव्वजाए अलब्भमाणे, जो तं ण पडियाइक्खइ, ण पडियाइक्खंतं वा साइज्जइ।**

३० जो भिक्षु ग्लान साधु का समाचार सुनकर या जानकर उसका पता नही लगता है या पता नही लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

३१ जो भिक्षु ग्लान साधु का समाचार सुनकर या जानकर ग्लान भिक्षु की ओर जाने वाले मार्ग को छोडकर दूसरे मार्ग से या प्रतिपथ से (जिधर से आया उधर ही) चला जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

३२ जो भिक्षु ग्लान की सेवा मे उपस्थित होकर अपने लाभ से ग्लान का निर्वाह न होने पर उसके समीप खेद प्रकट नही करता है या नही करने वाले का अनुमोदन करता है।

३३ जो भिक्षु ग्लान की सेवा मे उपस्थित होकर उसके योग्य औषध, पथ्य आदि नही मिलने पर उसको आकर नही कहता है या नही कहने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन:—१ किसी ग्लान के सम्बन्ध में सूचना मिले कि सेवा करने वाले की उसे आवश्यकता है तो पूरी जानकारी प्राप्त करके उसकी सेवा में जाना चाहिये।

२ किन्तु ग्लान भिक्षु के ग्राम की या स्थान की जानकारी होने पर सेवा न करने की भावना से उन्मार्ग से अन्यत्र न जावे तथा जिस मार्ग से आ रहा हो उसी मार्ग से वापिस न लौटे ।

३ ग्लान के लिए आवश्यक पदार्थ न मिले या पूर्ण मात्रा मे न मिले तो उसकी सतुष्टि के लिये नही मिलने का दोष अपने ऊपर लेकर खेद प्रकट करना चाहिए ।

४ औषध या पथ्य गवेषणा करने पर भी न मिले तो न अन्य काम मे लगे और न कही बैठे किन्तु पहले ग्लान को यह जानकारी दे कि "इतनी गवेषणा करने पर भी आवश्यक वस्तु नही मिली है या कुछ देर बाद मिलने की सम्भावना है ।"

आगम मे वैयावृत्य को आभ्यन्तर तप कहा है । अत. साधु को इसे अपनी आत्मशुद्धि का कार्य समझकर करना चाहिये तथा यह सोचना चाहिये कि यह ग्लान मुझ पर उपकार कर रहा है, मुझे सहज आभ्यन्तर तप का अवसर दे रहा है । इस तरह उपकार मानकर सेवा करने से अत्यधिक निर्जरा होती है । उत्तराध्ययन सूत्र अ २९ मे सेवा से तीर्थंकर पद का सर्वोत्तम लाभ होना कहा है । सूत्रकृताग सूत्र श्रु १ अ ३ उद्दे ३ तथा ४ मे ग्लान भिक्षु की अग्लान भाव से सेवा करने का निर्देश किया गया है ।

वर्षाकाल में विहार करने पर प्रायश्चित्त—

३४ जे भिक्खू पढम-पाउसम्मि गामाणुगामं दूइज्जइ, दुइज्जत वा साइज्जइ ।

३५ जे भिक्खू वासावास पज्जोसवियंसि गामाणुगाम दूइज्जइ, दुइज्जंतं वा साइज्जइ ।

३४ जो भिक्षु प्रथम प्रावृट् ऋतु मे ग्रामानुग्राम विहार करता है या विहार करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३५. जो भिक्षु वर्षावास मे पर्युषण करने के बाद ग्रामनुग्राम विहार करता है या विहार करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन.—भिक्षु हेमन्त और ग्रीष्म के आठ महीनो मे विचरण करे और वर्षाकाल के चार मास मे विचरण नही करे । यथा—

नो कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा वासावासासु चारए ।
कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा हेमतगिम्हासु चारए ।।

—बृहत्कल्प० उ० १, सू० ३६-३७

इन दो सूत्रो मे बारह महीनो का वर्णन किया गया है, जिसमे वर्षावास-चातुर्मास का काल चार मास का गिना गया है ।

तीर्थंकर भगवान् महावीर के जन्म आदि के महीनो का कथन इस प्रकार है—

गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे
वासावासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोयबहुले
हेमताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मिगसरबहुले । —आचा० श्रु० २, अ० १५

इन पाठो से यह स्पष्ट है कि वर्षावास, हेमत और ग्रीष्मकाल चार-चार मास के होते है।

वस्त्रग्रहण सम्बन्धी विधि-निषेध व प्रायश्चित्त सबधी सूत्रो मे भी बारह महीनो का विभाग इस प्रकार किया है—

नो कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गंथीण वा पढम-समोसरणुद्देसपत्ताइं चेलाइं पडिग्गाहेत्तए।
कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गथीण वा दोच्चसमोसरणुद्देसपत्ताइ चेलाइ पडिग्गाहेत्तए।

—बृहत्कल्प० उ० ३, सू० १६-१७

जे भिक्खू पढमसमोसरणुद्देसे पत्ताइं चीवराइं पडिगाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

—निशीथ० उ० १०, सु० ४७

बितियं समोसरणं उडुबद्ध, तं पडुच्च वासावासोग्गहो पढमसमोसरणं भण्णति।

—निशीथ चूर्णि उ० १०, पृ० १५८

इन सूत्रो मे भी ४ महीनो के वर्षावास को प्रथम समवसरण कहा है और आठ महीनो के ऋतुबद्ध काल को दूसरा समवसरण कहा है। इस प्रकार बारह महीनो को दो समवसरणो मे विभक्त किया है।

अह पुण एवं जाणिज्जा—चत्तारि मासा वासावासाण वीइक्कंता।

—आचा० श्रु० २, अ० ३, उ० १

इस पाठ मे भी चातुर्मास के चार महीने ही कहे है। अत वर्षावास (चातुर्मास) चार मास का होता है, उपर्युक्त सूत्र पाठो से यह स्पष्ट निर्णय हो जाता है।

"चातुर्मास रहने" के लिये क्रिया-प्रयोग इस प्रकार है—

सेवं णच्चा णो गामाणुगामं दूइज्जेज्जा तओ संजयामेव वासावास उवल्लिएज्जा।

तहप्पगारं गामं वा जाव रायहाणिं वा णो वासावास उवल्लिएज्जा।

तहप्पगारं गाम वा जाव रायहाणिं वा तओ संजयामेव वासावास उवल्लिएज्जा।

—आचा० श्रु० २, अ० ३, उ० १

इन सूत्रो मे चार मास तक रहने के लिए 'उवल्लिएज्जा' क्रिया का प्रयोग किया गया है।

पज्जोसवणा और पज्जोसवेइ क्रिया का प्रयोग—

जे भिक्खु अपज्जोसवणाए पज्जोसवेइ, पज्जोसवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पज्जोसवणाए ण पज्जोसवेइ ण पज्जोसवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पज्जोसवणाए इत्तरियंपि आहारं आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ।

—निशीथ उ० १०, सु० ३६-३८

इन सूत्रो मे सवत्सरी के लिए पज्जोसवणा और सवत्सरी करने के लिए 'पज्जोसवेइ' क्रिया का प्रयोग हुआ है।

ठाणागसूत्र अ ५ उ २ सु. २ मे चातुर्मास मे बिहार करने के कारणो का कथन दो विभाग करके कहा गया है—प्रथम विभाग को 'पढम पाउसम्मि' कहा है और द्वितीय विभाग को 'वासावास पज्जोसवियसि' कहा है ।

दोनो विभागो मे विहार करने के भिन्न-भिन्न ५-५ कारण कहे है । ये दोनो विभाग चातुर्मास के ही हैं । क्योकि शेष आठ महीनो मे विहार करने को कल्पनीय कहा गया है । अपवाद तो अकल्पनीय मे होता है ।

ठाणागसूत्र के इन सूत्रो के समान प्रस्तुत सूत्र ३४-३५ मे भी चातुर्मास के दो विभागो का कथन करते हुए प्रायश्चित्त कहा गया है ।

'पज्जोसवेइ' क्रिया का प्रयोग सवत्सरी करने के लिए ऊपर बताया है, अत ये दो विभाग चातुर्मास के इस प्रकार समझना आगमसम्मत है । प्रथम विभाग सवत्सरी के पूर्व और दूसरा विभाग सवत्सरी (पर्युषणा) के बाद ।

विहार करने का प्रायश्चित्त-विधान और कारणो से विहार करने का कथन चातुर्मास (वर्षावास) के चार महीनो की अपेक्षा सही है । जिसके लिए प्रस्तुत दोनो सूत्र ३४-३५ मे तथा ठाणागसूत्र मे 'पढमपाउसम्मि' तथा 'वासवास पज्जोसवियसि' शब्द है, जिनका 'पाउस—वर्षाकाल के प्रथम विभाग मे' और 'वर्षावास मे पर्युषणा (सवत्सरी) करने के बाद मे', ऐसा अर्थ करना ही प्रसग-सगत है ।

प्रवृत्ति की अपेक्षा से भी यही अर्थ उचित होता है । भगवान् महावीर स्वामी के चातुर्मास रहने का और चार मासखमण का पारणा होने का वर्णन भी भगवतीसूत्र मे है । उसके बाद के आज तक के २५०० वर्षों के इतिहास मे भी प्राय चार मास का वर्षावास ही करते आए है ।

अत 'वासावास' के साथ आने वाली पज्जोसवियसि क्रिया निशीथ व ठाणाग मे पर्युषण का ही कथन करने वाली है, ऐसा मानने पर ही अर्थ की पूर्वापर सगति होती है ।

भाष्यकार और चूर्णिकार ने छ. ऋतु मे पहली प्रावृट् ऋतु कही है । इसमें विहार करने के प्रायश्चित्त का विधान है तथा 'दूइज्जइ' का अर्थ करते हुए कहा है कि दो (शीत और ग्रीष्म) काल में भिक्षु चलता है, इसलिए दूइज्जइ क्रिया है ।

सवत्सर के हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षाकाल रूप तीन विभाग और प्रावृट्ऋतु आदि छह विभाग निश्चित हैं । प्राकृतिक परिवर्तन होने पर या एक मास की वृद्धि-हानि हो जाने पर भी इन विभागो की कालगणना मे जो महीने कहे गये हैं, उनमें कोई परिवर्तन नही होता है ।

पर्युषणकाल में पर्युषण न करने का प्रायश्चित्त—

३६ जे भिक्खू पज्जोसवणाए ण पज्जोसवेइ ण पज्जोसवेंतं वा साइज्जइ ।

३७ जे भिक्खू अपज्जोसवणाए पज्जोसवेइ पज्जोसवेंतं वा साइज्जइ ।

३६. जो भिक्षु पर्युषण (संवत्सरी) के दिन पर्युषण नही करता है या नही करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३७ जो भिक्षु पर्युषण के दिन से अन्य दिन मे पर्युषण करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है)।

विवेचन—चातुर्मास-वर्षावास चार महीने का होता है, यह पूर्व मे स्पष्ट किया गया है। इन दो सूत्रो मे पर्युषण सम्बन्धी कथन है। यह पर्युषण एक दिन का होता है, वह भी निश्चित है। इसलिये इन दो सूत्रो मे उस दिन पर्युषण न करने का तथा अन्य दिन करने का प्रायश्चित्त कहा है।

आगमो मे इस दिन के सम्बन्ध मे स्पष्ट कथन नही है, फिर भी इन दो सूत्रो मे प्रायश्चित्त-विधान करने से सवत्सरी के दिन का निश्चित निर्देश किया गया है।

इन सूत्रो की व्याख्या करते हुए गाथा ३१४६ व गाथा ३१५३ की चूर्णि मे भादवा सुदी पचमी का कथन किया गया है तथा गाथा ३१५२-५३ की व्याख्या मे १ मास २० दिन का कथन भी किया है। ऐसा ही कथन ७०वे समवाय मे भी है। अत तात्पर्य यह है कि इस दिन को छोडकर अन्य दिन पर्युषण करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है और उस दिन के लिए भादवा सुदी पचमी तिथि निश्चित है।

इस विषय मे कहा जाता है कि शातवाहन राजा के आग्रह से कालकाचार्य ने चौथ की सवत्सरी की, तब से चौथ की सवत्सरी की जाती है।

कोई भी गीतार्थ या आगमविहारी मुनि परिस्थितिवश अपवादमार्ग के सेवन का निर्णय ले सकते है। आपवादिक स्थिति के समाप्त होने पर उसका यथोचित प्रायश्चित्त कर पुन सूत्रोक्त आचरण स्वीकार कर लेते हैं। परिस्थितिवश सेवन किये गए अपवाद के लिए सूत्रविपरीत परम्परा चलाने का अधिकार किसी भी गीतार्थ या आगमविहारी को नही है। अत पूर्वधर कालकाचार्य के द्वारा किसी देश के राजा के आग्रह से चौथ की सवत्सरी करना कदाचित् सम्भव हो सकता है, किन्तु उनके द्वारा परम्परा चलाना या चलने देना उचित नही है। क्योकि अपवाद आचरण को उत्सर्ग आचरण बनाना अपराध है। अत· उपर्युक्त कथन के अनुसार संवत्सरी के काल का परिवर्तन उचित नही कहा जा सकता।

आगमोक्त निश्चित दिवस तो भादवा सुदी पचमी का ही था और है। उससे भिन्न किसी भी दिन पर्युषण करने पर प्रायश्चित्त आता है, यही इन दो सूत्रो का आशय समझना चाहिए।

आज भी पचागो मे ऋषिपचमी, इसी दिन लिखी जाती है। १०-२० वर्षों के पचाङ्ग देखकर निर्णय किया जा सकता है।

अपने-अपने मताग्रहो को त्याग कर पचाङ्गो मे लिखी ऋषिपचमी के दिन पर्युषण (सवत्सरी) करने का निर्णय सम्पूर्ण जैन सघ स्वीकार कर ले तो आगम परम्परा और एकरूपता दोनो का निर्वाह सम्भव है।

"ऋषिपचमी" नाम भी इस अर्थ का सूचक है कि ऋषि-मुनियो का पर्वदिवस। इस "ऋषि" शब्द में जैन-जैनेतर सभी साधुओं का समावेश हो जाता है। जैनागमों में भी साधु के लिए "ऋषि" शब्द का प्रयोग हुआ है।

आज से सैकडो (१२००-१३००) वर्षों पूर्व गीतार्थ आचार्यों ने लौकिक पंचाग से ही सभी पर्वदिवस मनाने का निर्णय लिया था, यथा—

विसमे समयविसेसे, करणगह-चार-वार-रिक्खाणं ।
पव्वतिहीण य सम्म, पसाहगं विगलियं सुत्तं ॥ १ ॥
तो पव्वाइविरोहं णाउ, सव्वेहिं गीयसूरीहिं ।
आगममूलमिणपि अ, तो लोइय टिप्पणय पगयं ॥ २ ॥

अर्थ--समय की विषमता के करण, ग्रहो की गति, वार, नक्षत्र और पर्व तिथियो की सम्यक् सिद्धि करने वाला श्रुत नष्ट हो चुका है, अत पर्व-तिथि आदि के निर्णय मे विरोध आता जानकर सभी गीतार्थ आचार्यों ने यह "लौकिक पचाग भी आगमानुसार ही है" ऐसा मानकर इसी से पर्व-तिथि आदि करना स्वीकार किया है ।

अत सम्पूर्ण जैन समाज को लौकिक पचाग-निर्दिष्ट पक्ष एव चातुर्मास के अन्तिम दिन अर्थात् अमावस, पूनम को पक्खी, चौमासी पर्व तथा ऋषिपचमी को सवत्सरी महापर्व मनाने का निर्णय स्वीकार करना चाहिये । ऐसा करने मे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है तथा अनेक गीतार्थ पूर्वाचार्यों के सम्यक् निर्णय का पालन भी होता है ।

पर्युषण के दिन बाल रहने देने का और आहार करने का प्रायश्चित्त—

३८. जे भिक्खू पज्जोसवणाए गोलोमाइं पि बालाइं उवाइणावेइ, उवाइणावेंत वा साइज्जइ ।

३९. जे भिक्खू पज्जोसवणाए इत्तरियं पि आहार आहारेइ आहारेंतं वा साइज्जइ ।

३८ जो भिक्षु पर्युषण (सवत्सरी) के दिन गाय के रोम जितने बालो को रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३९ जो भिक्षु पर्युषण (सवत्सरी) के दिन थोडा भी आहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—पर्युषण सम्बन्धी भिक्षु के कर्तव्य—

१. वर्षावास योग्य क्षेत्र न मिलने पर यदि चातुर्मास की स्थापना न की हो तो इस दिन चातुर्मास निश्चित कर देना चाहिये ।

२. ऋतुबद्ध काल के लिए ग्रहण किये गए शय्या, सस्तारक की चातुर्मास-समाप्ति तक रखने की पुन याचना न की हो तो इस दिन अवश्य कर लेनी चाहिये ।

३. शिर या दाढी-मूछ के गो-रोम जितने बाल भी हो गए हो तो उनका लोच अवश्य कर लेना चाहिये । क्योकि गो-रोम जितने बालो को पकडकर लोच किया जा सकता है ।

४ सवत्सरी के दिन चारो आहारो का पूर्ण त्याग करना चाहिये अर्थात् चौविहार उपवास करना चाहिये ।

इन कर्तव्यो का पालन न करने पर भिक्षु प्रायश्चित्त का पात्र होता है । इनका पालन करना ही पर्युषण को पर्युषित करना कहा जाता है ।

इसके अतिरिक्त वर्ष भर की सयम आराधना-विराधना का चिन्तन कर हानि-लाभ का अवलोकन करना, आलोचना, प्रतिक्रमण व क्षमापना आदि कर आत्मा को शान्त व स्वस्थ करके

वर्धमान परिणाम रखना इत्यादि विशिष्ट धर्म-जागरणा करने के लिये यह पर्युषण का दिन है। इन कर्तव्यों का पालन करने पर ही आत्मा के लिये इसी दिन का महत्त्व है। आगम मे इसी दिन के लिये "पर्युषण" शब्द प्रयोग किया गया है। श्वेताम्बर परम्परा के पूर्व साधना के सात दिन युक्त आठवें दिन को पर्युषण कहा जाता है और इस दिन को "सवत्सरी" कहा जाता है। किन्तु वास्तव मे सवत्सरी का दिन ही आगमोक्त पर्युषण दिन है। शेष दिन पर्युषण की भूमिका रूप है। दिगम्बर परम्परा मे पर्यूषण के दिन से बाद मे १० दिन तक धर्म-आराधना करने की परिपाटी है। कालान्तर से दसवे दिन (अनन्त चतुर्दशी को) सवत्सरी पर्व का आराधन किया जाने लगा है।

पर्युषणाकल्प गृहस्थ को सुनाने का प्रायश्चित्त—

४०. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा पज्जोसवेइ, पज्जोसवेंत वा साइज्जइ।

४० जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को पर्युषणाकल्प (साधु-समाचारी) सुनाता है या सुनाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन "अन्यतीर्थिक और गृहस्थ" से आठ प्रकार के गृहस्थ समझना चाहिये जिनका स्पष्टीकरण पहले उद्देशक के सूत्र १५ मे कर दिया गया है।

दशाश्रुतस्कन्ध के आठवे अध्ययन का नाम "पज्जोसवणाकप्प" है। उसमे वर्षावास की साधु-समाचारी का कथन है।

पर्युषण के दिन सायकालीन प्रतिक्रमण करके सभी साधु "पज्जोसवणाकप्प' अध्ययन का सामूहिक उच्चारण करे या श्रवण करे तथा उसमे वर्णित साधु-समाचारी का वर्षामास मे व अन्य काल मे पालन करे।

चूर्णि मे कहा है—'पज्जोसवणाकप्पकहणे इमा सामायारी'—'अप्पणो उवस्सए पादोसिए आवस्सए कए काल घेत्तुं (काल प्रतिलेखन कर) काले सुद्धे पट्ठवेत्ता कहिज्जति। । सव्वे साहू समप्पावणिय काउस्सग्ग करेंति ।'

स्वाध्याय-काल का प्रतिलेखन कर इस अध्ययन का श्रवण कर फिर समाप्ति का कायोत्सर्ग करना इत्यादि विधि चूर्णि मे बताई गई है।

प्रस्तुत सूत्र मे "पर्युषणाकल्प-अध्ययन" गृहस्थो को सुनाने का या गृहस्थ-युक्त साधु-परिषद् मे सुनाने का प्रायश्चित्त कहा गया है। अत रात्रि के समय साधु-परिषद् मे ही कहने और सुनने का विधान है।

"पज्जोसवणाकप्प" अध्ययन की यह परम्परा अज्ञात काल से विच्छिन्न हो गई है।

दशाश्रुतस्कन्ध की निर्युक्ति आदि व्याख्याओ की रचना के समय तक यह अध्ययन अपने स्थान पर ही पूर्ण रूप से था। उसके बाद सम्भव है तेरहवी-चौदहवी शताब्दी में इसे सक्षिप्त करके वर्तमान प्रख्यात कल्पसूत्र से जोडा गया है तथा किसी प्रति के लेखक ने इस अध्ययन के स्थान पर पूरे कल्पसूत्र को ही लिख दिया है। इससे इस अध्ययन का सही स्वरूप ही नही रहा। तीर्थकरो के वर्णन व स्थविरावली के साथ-साथ मौलिक समाचारी मे भी अनेक पाठ प्रक्षिप्त किये गये हैं, जो निर्युक्ति व उसकी चूर्णि के अध्ययन से स्पष्ट जाने जा सकते है।

कालिक दशाश्रुतस्कन्धसूत्र का 'पज्जोसवणाकप्प' अध्ययन गृहस्थो को सुनाने का निषेध है, फिर भी उसे उत्कालिक (चुल्ल) कल्पसूत्र आदि किसी से जोडा गया है और नया कल्पसूत्र सकलन कर दोपहर (उत्काल) मे तथा गृहस्थो के सामने वाचन किया जाने लगा है।

यह अध्ययन वर्तमान मे विकृत अवस्था मे है। इसकी मौलिकता के साथ ही इससे सम्बन्धित शुद्ध परम्परा भी व्यवच्छिन्न हो गई। जिससे इस प्रायश्चित्तसूत्र ४० की अर्थपरम्परा व प्रायश्चित्त-परम्परा भी विच्छिन्नप्राय. हो चुकी है।

वर्षाकाल मे वस्त्र ग्रहण करने का प्रायश्चित्त—

४१. जे भिक्खू पढमसमोसरणुद्देसे-पत्ताइं चीवराइं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहार-ठाण अणुग्घाइय।

४१ जो भिक्षु चातुर्मासकाल प्रारम्भ हो जाने पर भी वस्त्र ग्रहण करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

इन ४१ सूत्रोक्त स्थानो का सेवन करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—'प्रथम समवसरण' व 'द्वितीय समवसरण' ये शब्द क्रमश चातुर्मास काल तथा ऋतुबद्ध काल के लिए आगम मे प्रयुक्त हुए है। साधु के ग्रामादि मे आगमन को समवसृत होना कहा जाता है। वह आगमन दो प्रकार का है—ऋतुबद्धकाल के लिए आगमन और चातुर्मासकाल के लिए आगमन। इस आगमन काल को ही 'समवसरण' कहा जाता है। उसके दो विभाग है अत प्रथम व द्वितीय समवसरण कहा जाना व्युत्पत्तियुक्त है।

बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक ३, सूत्र १६ मे चातुर्मास मे वस्त्रग्रहण करने का निषेध है और इस सूत्र मे उसका प्रायश्चित्त कहा गया है।

सूत्र मे 'पत्ताइ' शब्द है उसकी व्याख्या मे दोनो व्याख्याकारो ने 'प्राप्तानि' छाया करके 'पत्त' 'अपत्त' क्षेत्र एव काल के भग बनाये है।

'पत्ताइ' शब्द का 'पात्र' अर्थ भी होता है किन्तु सूत्ररचना के अनुसार 'प्राप्तानि' अर्थ सगत होता है। क्योकि दो का कथन करना हो तो आगमकार 'वा' का प्रयोग करते हैं, यथा—'वत्थ वा पडिग्गह वा'।

अत. इस सूत्र में केवल वस्त्र का ही कथन है, फिर भी व्याख्याकार ने सभी उपकरणो का चातुर्मास मे ग्रहण करने का निषेध किया है और चातुर्मास से पूर्व आवश्यक और अतिरिक्त कौन-कौन सी उपधि व कितनी सख्या मे ग्रहण करनी चाहिए, यह भी स्पष्ट किया है।

उद्देशक का सारांश—

सूत्र—१-४ आचार्य या रत्नाधिक श्रमण को कठोर, रूक्ष या उभय वचन कहे तथा किसी भी प्रकार की आशातना करे।

सूत्र ५ अनन्तकाय-सयुक्त आहार करे ।
सूत्र ६ आधाकर्म दोष का सेवन करे ।
सूत्र ७-८ वर्तमान या भविष्य सम्बन्धी निमित्त कहे ।
सूत्र ९-१० शिष्य का अपहरण आदि करे ।
सूत्र ११-१२ दीक्षार्थी का अपहरण आदि करे ।
सूत्र १३ आने वाले साधु के आने का कारण जाने बिना आश्रय दे ।
सूत्र १४ कलह उपशान्त न करने वाले के या प्रायश्चित्त न करने वाले के साथ आहार करे ।
सूत्र १५-१८ प्रायश्चित्त का विपरीत प्ररूपण करे या विपरीत प्रायश्चित्त दे ।
सूत्र १९-२४ प्रायश्चित्त सेवन, उसके हेतु और सकल्प को सुनकर या जानकर भी उस भिक्षु के साथ आहार करे ।
सूत्र २५-२८ सूर्योदय या सूर्यास्त के सदिग्ध होने पर भी आहार करे ।
सूत्र २९ रात्रि के समय मुख मे आये उद्गाल को निगल जावे ।
सूत्र ३०-३३ ग्लान की सेवा न करे अथवा विधिपूर्वक सेवा न करे ।
सूत्र ३४-३५ चातुर्मास मे विहार करे ।
सूत्र ३६-३६ पर्युषण (सवत्सरी) निश्चित दिन न करे और अन्य दिन करे ।
सूत्र ३८ पर्युषण के दिन तक लोच न करे ।
सूत्र ३९ पर्युषण के दिन चौविहार उपवास न करे ।
सूत्र ४० पर्युषणाकल्प गृहस्थो को सुनावे ।
सूत्र ४१ चातुर्मास मे वस्त्र ग्रहण करे ।

ऐसी प्रवृत्तिया का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

इस उद्देशक के १६ सूत्रो के विषय का कथन निम्न आगमों मे है, यथा—

सूत्र १-४ अविनय आशातनाओ का कथन दशाश्रुतस्कन्ध दशा १ व ३ मे, उत्तराध्ययन अ. १ व अ १७ मे, दशवैकालिक अ ९ मे तथा अन्य आगमो मे भी हुआ है ।
सूत्र ५ अनन्तकाययुक्त आहार आ जाने पर उसके परिष्ठापन करने का कथन आचा श्रु. २, अ १, उ १ मे है ।
सूत्र ६ आधाकर्म दोषयुक्त आहार ग्रहण करने का निषेध आचा. श्रु २, अ १, उ ९ तथा सूय श्रु १, अ. १०, गा ८ व ११ मे तथा अन्य अनेक स्थलो मे है ।
सूत्र ७-८ निमित्त कथन का वर्णन उत्तरा अ ८, अ १७ तथा अ २० मे है ।
सूत्र २५-२९ रात्रि भोजन निषेध के चार भांगे और उद्गाल निगलने का सूत्र बृहत्कल्प उ ५ में है ।
सूत्र ३४-३५ चातुर्मास में विहार करने का निषेध बृहत्कल्प उद्देश १, सूत्र ३६ में है ।
सूत्र ४१ चातुर्मास मे वस्त्र ग्रहण करने का निषेध बृहत्कल्प उद्देश ३, सू. १६ मे है ।

इस उद्देशक के २५ सूत्रो के विषय का कथन अन्य आगमो में नही है, यथा—

सूत्र ९-१२ शिष्य व दीक्षार्थी सम्बन्धी इस तरह का स्पष्ट कथन व प्रायश्चित्त इनका समावेश तीसरे महाव्रत में हो सकता है ।

सूत्र १३ आगन्तुक साधु को आश्रय देने का प्रायश्चित्त ।
सूत्र १४ अनुपशान्त के साथ आहार करने का प्रायश्चित्त ।
सूत्र १५-२४ प्रायश्चित्तो की विपरीत प्ररूपणा आदि का प्रायश्चित्त ।
सूत्र ३०-३३ ग्लान की सेवा का निर्देश सूयगडाग अ ३ तथा अन्य आगमो मे भी है, किन्तु यहां स्पष्ट सूचनायुक्त विशेष प्रायश्चित्त कहे है ।
सूत्र ३६-४० पर्युषणा के विशेष विधान और प्रायश्चित्त ।

॥ दसवा उद्देशक समाप्त ॥

□

ग्यारहवाँ उद्देशक

निषिद्ध पात्रग्रहण-धारण-प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू १ अय-पायाणि वा, २. तंब-पायाणि वा, ३. तउय-पायाणि वा, ४. सीसग-पायाणि वा, ५ हिरण्ण-पायाणि वा, ६. सुवण्ण-पायाणि वा, ७. रीरिय-पायाणि वा, ८. हारपुड-पायाणि वा, ९. मणि-पायाणि वा, १०. काय-पायाणि वा, ११. कस-पायाणि वा, १२ संख-पायाणि वा, १३. सिंग-पायाणि वा, १४. दंत-पायाणि वा, १५ चेल-पायाणि वा, १६. सेल-पायाणि वा, १७. चम्म-पायाणि वा करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

२. जे भिक्खू अय-पायाणि वा जाव चम्म-पायाणि वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू अय-बंधणाणि वा जाव चम्म-बंधणाणि वा (पायाणि) करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

४. जे भिक्खू अय-बंधणाणि वा जाव चम्म-बंधणाणि वा (पायाणि) धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

१. जो भिक्षु १ लोहे के पात्र, २ ताबे के पात्र, ३. रागे के पात्र, ४ शीशे के पात्र, ५ चादी के पात्र, ६ सोने के पात्र, ७ पीतल के पात्र, ८ मुक्ता आदि रत्न जडित लोहे आदि के पात्र, ९ मणि के पात्र, १० काँच के पात्र, ११ कासे के पात्र, १२ सख के पात्र, १३ सीग के पात्र, १४ दात के पात्र, १५ वस्त्र के पात्र, १६. पत्थर के पात्र, १७ चर्म के पात्र बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

२ जो भिक्षु लोहे के पात्र यावत् चर्म के पात्र रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३ जो भिक्षु पात्र पर लोहे के बधन लगाता है या लगाने वाले का अनुमोदन करता है ।

४ जो भिक्षु लोहे के बधन यावत् चर्म के बधन वाले पात्र रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—आचा श्रु २, अ ६. उ १ मे तथा ठाणागसूत्र अ ३ मे साधु-साध्वी के लिये तीन प्रकार के पात्र ग्रहण करने एव धारण करने का विधान है, यथा—१ तुम्बे के पात्र, २ लकडी के पात्र, ३. मिट्टी के पात्र ।

अन्य अनेक आगमो मे भी इन्ही तीन प्रकार के पात्रो का निर्देशपूर्वक वर्णन किया गया है ।

आचा. श्रु २, अ. ६, उ १ मे *लोहे आदि के पात्र तथा लोहे आदि के बधन युक्त पात्र ग्रहण*

करने का निषेध किया गया है। प्रस्तुत चार सूत्रो मे उन्ही लोहे आदि के पात्रो को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त कहा गया है।

आचारागसूत्र मे लोहे से चर्म पर्यन्त कथन करने के साथ अन्य भी इस प्रकार के पात्र ग्रहण करने का निषेध किया है तथा इन्हे बहुमूल्य विशेषण से सूचित किया है।

लकडी, तुम्बा व मिट्टी के पात्र भिक्षु की लघुता के सूचक हैं। भगवतीसूत्र श. ३, उ १ मे तामलितापस के काष्ठ-पात्र ग्रहण करने का वर्णन है। उववाईसूत्र मे तापस-परिव्राजक आदि के वर्णन मे उनके लिए काष्ठ आदि तीन प्रकार के ही पात्र रखने का वर्णन है एव अनेक प्रकार के पात्र रखने का निषेध है।

काष्ठादि तीनो प्रकार के पात्र अल्पमूल्य एव सामान्य जातीय होने से उनकी चोरी होने का भय नही रहता है। काष्ठ व तुम्बे के पात्र मे वजन भी कम होता है।

लोहे आदि के पात्र भारी तथा बहुमूल्य होते है, अत इनका निषेध व प्रायश्चित्त कहा गया है।

वर्तमान मे प्लास्टिक के पात्र भी साधु-साध्वी उपयोग मे लेते है। प्लास्टिक को काष्ठ-रस सयोग से निर्मित माना जाता है। प्लास्टिक के पात्र का वजन व मूल्य काष्ठपात्र से भी कम होता है। अत लोहे आदि के पात्र मे होने वाले दोषो की इसमे सम्भावना नही है। किन्तु ये पात्र सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ ग्रहण करने व रखने के योग्य नही होते है। अत आगम-निर्दिष्ट काष्ठादि पात्र के समान ये पूर्ण रूप से उपयोगी नही हैं।

आचारागसूत्र मे निषिद्ध पात्रो के वर्णन मे १७ जाति का नामोल्लेख है। जो प्राय सभी प्रतियो मे एक समान है। किन्तु प्रस्तुत प्रायश्चित्तसूत्र मे जो उल्लेख है, वह विभिन्न प्रतियो मे विभिन्न रूप से उपलब्ध है अर्थात् क्रम और नामो मे भी कुछ-कुछ भिन्नता है।

निशीथसूत्र की अनेक प्रतियो मे कुल मिलाकर (२२) बावीस नाम आते है, जिनमे (१२) बारह नाम सभी प्रतियो मे समान है और (१०) दस नाम किसी मे है, किसी मे नही हैं।

वे बारह नाम इस प्रकार है—

१ अय-पायाणि, २ तब-पायाणि, ३ तउय-पायाणि, ४ सुवण्ण-पायाणि, ५ कस-पायाणि, ६ मणि-पायाणि, ७ दत-पायाणि, ८ सिंग-पायाणि, ९ सख-पायाणि, १० चम्म-पायाणि, ११ चेल-पायाणि, १२ वइर-पायाणि।

दस नाम इस प्रकार हैं—

१. सीसग-पायाणि, २ रुप्प-पायाणि, ३ जायरूव-पायाणि, ४ कणग-पायाणि, ५ हिरण्ण-पायाणि, ६ रीरिय-पायाणि, ७ हारपुड-पायाणि, ८ काय-पायाणि, ९ सेल-पायाणि, १० अक-पायाणि।

निशीथचूर्णि मे चार-पाच नाम निर्दिष्ट हैं और एक दो शब्दों की व्याख्या है। आचाराग-टीका मे केवल एक शब्द की व्याख्या व नामनिर्देश है। इसलिये इन पाठान्तरो का कोई प्रामाणिक समाधान सम्भव नही है।

लिपि-काल मे प्रविष्ट अशुद्धिया समझकर एकरूपता से उपलब्ध आचाराग के पाठ के अनुसार (१७) सतरह नाम मूल पाठ में स्वीकार किये है जो निशीथ की भी एक प्रति में उपलब्ध हैं तथा प्रश्नव्याकरणसूत्र मे भी १७ ही नाम मिलते है। पाच नाम छोड दिये हैं, जो इस प्रकार है—

१ रूप्प-पायाणि, २ जायरूव-पायाणि, ३ कणग-पायाणि, ४ अक-पायाणि, ५ वइर-पायाणि।

इन्हे छोडने के तीन कारण है—

१ ये पाचो आचारागसूत्र मे नही है।

२ ये पाचो प्रश्नव्याकरणसूत्र मे भी किसी प्रति मे नही है।

३ "रुप्प" का "हिरण्ण" मे, "जायरूव एव कणग" का "सुवण्ण" मे तथा "अक एव वइर" का "हारपुड" मे समावेश हो जाता है। हारपुड का अर्थ इस प्रकार है—

"हारपुडं नाम-अयमाद्याः पात्रविशेषाः मौक्तिकलताभिरुपशोभिता।"

—नि चू उ ११, सू १

अर्थ—लोहे आदि (सोना-चादी आदि) के पात्रविशेष, जो कि मुक्ता आदि से शोभित हैं अर्थात् मुक्ता—रत्न आदि से जडित लोहे, सोने, चाँदी आदि के पात्र को हारपुड पात्र समझना चाहिए। अक और वज्र भी एक प्रकार के रत्नविशेष है। अत हारपुड पात्र के अन्तर्गत इन्हे समझ लेना चाहिए।

अनेक उपलब्ध प्रतियों में पात्र प्रायश्चित्त के ६ सूत्र मिलते है। किन्तु चूर्णिकार ने संख्या-निर्देश करके चार सूत्रो की व्याख्या इस प्रकार की है—

"प्रथमसूत्रे स्वयमेव करणं कज्जइ।
द्वितीयसूत्रे अन्यकृतस्य धरणं।
तृतीयसूत्रे अयमादिभि स्वयमेव बंधं करोति।
चतुर्थसूत्रे अन्येन अयमादिभिर्बद्ध धारयति।" —नि चूर्णि।

चूर्णिकार ने तीसरे-छट्ठे सूत्र का उल्लेख नही किया है किन्तु चार सूत्र ही होने का स्पष्ट निर्देश किया है। अत मूल पाठ में चार सूत्र ही स्वीकार किये है।

लोहे आदि के पात्र स्वय करने का आशय यह समझना चाहिये कि—अपने उपयोग मे आने के योग्य बनाना। किन्तु मूलत बनाना साधु के लिये सम्भव नही हो सकता।

"काष्ठ आदि के पात्र पर लोहे आदि के तार से बधन करना या काच आदि को पात्र के किनारे चौतरफ लगाकर उसकी किनार बनाना", इनका बधन करना समझना चाहिये।

इस प्रकार के पात्र या इन बधनो वाले पात्र रखना व उपयोग मे लेना ही धारण करना है।

आचारागसूत्र के समान निशीथसूत्र की एक प्रति मे "अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि पायाइ करेइ, करेत वा साइज्जइ" इस प्रकार पाठ मिलता है, किन्तु चूर्णि व्याख्या में व अनेक प्रतियो मे नही मिलता है। अत वह शब्द नही रखा है। फिर भी आचाराग मे निषेध होने से इस प्रकार के अन्य भी पात्रों के करने एव रखने का यही प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिये।

मूल में स्वीकार नही किया गया तीसरा व छट्ठा सूत्र इस प्रकार है—

जे भिक्खू अय-पायाणि वा जाव चम्म-पायाणि वा परिभुंजइ, परिभुंजतं वा साइज्जइ ।।३।।

जे भिक्खू अय-बंधणाणि वा जाव चम्म-बंधणाणि वा परिभुंजइ, परिभुंजंतं वा साइज्जइ ।।६।।

सूत्रकथित लोहे आदि के पात्र किस-किस कीमत के ग्रहण करने से कितना-कितना प्रायश्चित्त आता है तथा किन-किन दोषो की सम्भावना रहती है इत्यादि जानकारी के लिये भाष्य देखे ।

पात्र हेतु अर्धयोजन की मर्यादा भंग करने का प्रायश्चित्त—

५. जे भिक्खू परं अद्धजोयणमेराओ पायवडियाए गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ ।

६. जे भिक्खू परं अद्धजोयणमेराओ सपच्चवायंसि पायं अभिहडं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

५ जो भिक्षु आधे योजन से आगे पात्र के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

६ जो भिक्षु बाधा वाले मार्ग के कारण आधे योजन की मर्यादा के बाहर से सामने लाकर दिया जाने वाला पात्र ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—आचारागसूत्र श्रु २, अ ६, उ १ मे आधे योजन से आगे पात्र के लिये जाने का निषेध है । अपने ठहरने के स्थान से गवेषणा के लिये जाने की यह क्षेत्र-मर्यादा है कि दो कोस तक जा सकता है । उससे अधिक दूर जाने मे एव पुन आने मे समय की अधिकता तथा अनवस्था आदि दोषो की सम्भावना रहती है । अत पाचवें सूत्र मे इसका प्रायश्चित्त कहा है ।

आचारागसूत्र श्रु २, अ ६, उ १ मे सामने लाया हुआ पात्र ग्रहण करने का निषेध है, जिसका प्रायश्चित्त कथन निशीथसूत्र उद्देशक १४ मे है । यहाँ छट्ठे सूत्र मे विशेष स्थिति का प्रायश्चित्त है ।

जिस दिशा मे पात्र उपलब्ध हो वहाँ जाने का मार्ग सिह, सर्प या उन्मत्त हाथी आदि से अवरुद्ध हो गया हो या जल से अवरुद्ध हो गया हो और पात्र की यदि अत्यन्त आवश्यकता हो और आधा योजन (दो कोस) क्षेत्र मे से सामने लाकर दिया जा रहा हो तो ग्रहण करने पर इस सूत्र के अनुसार गुरुचौमासी प्रायश्चित्त नही आता है, किन्तु आधा योजन के आगे से सामने लाया गया पात्र ग्रहण करने पर यह प्रायश्चित्त आता है ।

सूत्र मे "सपच्चवायसि" शब्द है । जिसका "किसी प्रकार की बाधाजनक स्थिति' ऐसा अर्थ होता है । अत बीमारी आदि कारणो से भी सामने लाया गया पात्र ग्रहण किया जा सकता है किन्तु अर्द्ध योजन की मर्यादा भग करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है ।

धर्म की निंदा करने का प्रायश्चित्त—

७ जे भिक्खू धम्मस्स अवण्णं वयइ, वयंत वा साइज्जइ ।

७ जो भिक्षु धर्म की निंदा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—धर्म दो प्रकार का है १ श्रुतधर्म, २ चारित्रधर्म ।

१. श्रुतधर्म—ग्यारह अग, पूर्वज्ञान और आवश्यकसूत्र एव इनके अर्थ तथा पाच प्रकार के स्वाध्याय की निंदा करना अथवा उसे "अयुक्त" कहना "श्रुतधर्म" का अवर्णवाद है । यथा—

(१) छह काया आदि जीवो का, महाव्रत आदि आचार का तथा प्रमाद-अप्रमाद का अनेक स्थलो मे बार-बार कथन किया गया है, वह अयुक्त है ।

(२) वैराग्य से प्रव्रजित होने वाले भिक्षुओ को ज्योतिष वर्णन, 'जोणिपाहुड' व निमित्तवर्णन से क्या प्रयोजन है ? अत इनके वर्णन की आगम मे भी क्या आवश्यकता है ?

(३) सभी आगम एक अर्धमागधी भाषा मे ही है, यह ठीक नही है । अलग-अलग भाषा मे होने चाहिये ।

इत्यादि प्रकार से श्रुत की आसानता करना श्रुतधर्म की निंदा है ।

२. चारित्रधर्म—श्रावक-धर्म अथवा साधु-धर्म के आचार-नियमो के मूलगुणो या उत्तर-गुणो के विषय मे निंदा करना, उन्हे "अयुक्त" कहना चारित्रधर्म का अवर्णवाद है । यथा—

(१) जीवरहित स्थान हो तो प्रतिलेखन करना निरर्थक है ।

(२) सम्पूर्ण लोक जीवो मे व्याप्त है तो गमनागमन आदि क्रिया करते हुए निर्दोष चारित्र कैसे रह सकता है ?

(३) प्रत्येककाय-एकेन्द्रिय के सघट्टन मात्र का लघुमासिक प्रायश्चित्त देना इत्यादि अल्प अपराध मे उग्र दड देना अयुक्त है ।

(४) अपवाद मे मोकाचमन (मूत्रप्रयोग) का कथन भी अयुक्त है ।

(५) आधाकर्म दोष युक्त आहार गृहस्थ ने बना ही दिया तो फिर लेने मे साधु को क्या दोष है, इत्यादि । यह चारित्रधर्म की निंदा है ।

श्रुतधर्म या चारित्रधर्म की निंदा करने से उसे सुनकर मदबुद्धि साधक साधना से च्युत हो सकते है । निंदा करने वाला ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का बध करके दुर्लभबोधि होता है ।

मूलगुण या उत्तरगुण की निंदा, देशधर्म या सर्वधर्म की निंदा एवं गृहस्थधर्म या सयमधर्म की निंदा के विकल्पो से युक्त प्रायश्चित्त की विशेष जानकारी के लिये भाष्य देखे ।

अधर्म-प्रशंसा-करण-प्रायश्चित्त—

८. जे भिक्खू अहम्मस्स वण्णं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ ।

८ जो भिक्षु अधर्म की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—हिसा, असत्य के समर्थक पापश्रुतो की, चरक-परिव्राजक आदि के पचाग्नि तप आदि व्रतविशेषो की तथा हिसा आदि अठारह पापो की प्रशसा करना अधर्मप्रशसा है। अधर्म की प्रशसा करने से उन पापकार्यों को करने की प्रेरणा मिलती है। जीवो के मिथ्यात्व का पोषण होता है। सामान्य व्यक्ति मिथ्यात्व की तरफ आकर्षित होते है।

अत पाप या अधर्म की प्रशसा करने का प्रसग उपस्थित होने पर भिक्षु मौन रहे एव उपेक्षा भाव रखे तथा अवसर देखकर शुद्ध धर्म का प्ररूपण करे।

गृहस्थ का शरीर-परिकर्म-करण प्रायश्चित्त—

९ से ६२. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा साइज्जइ। एव तइयउद्देसगमेण णेयव्व जाव जे भिक्खू गामाणुगाम दूइज्जमाणे अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा सीसदुवारिय करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

९ से ६२ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पैरो का एक बार या अनेक बार "आमर्जन" करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। इस प्रकार तीसरे उद्देशक के (सूत्र १६ से ६९) के समान आलापक जान लेने चाहिए यावत् जो भिक्षु ग्रामानुग्राम विहार करते समय अन्यतीर्थिक या गृहस्थ का मस्तक ढाकता है या ढाकने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—गृहस्थ-परिकर्म प्रायश्चित्त के ५४ सूत्र है। साधु के द्वारा गृहस्थ की सेवा करने पर इन सूत्रो से गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है। इनका विवेचन उद्देशक ३ सूत्र १६ से ६९ तक मे किया गया है। अत. वहा देखे। अन्यतीर्थिक तथा गृहस्थ का स्पष्टार्थ उ १, सूत्र १५ के विवेचन मे देखे।

भयभीतकरण-प्रायश्चित्त—

६३. जे भिक्खू अप्पाणं बीभावेइ, बीभावेंतं वा साइज्जइ।

६४. जे भिक्खू परं बीभावेइ, बीभावेंतं वा साइज्जइ।

६३ जो भिक्षु स्वय को डराता है या डराने वाले का अनुमोदन करता है।

६४ जो भिक्षु दूसरे को डराता है या डराने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भिक्षु को भूत, पिशाच, राक्षस, सर्प, सिंह, चोर आदि से स्वय को भयग्रस्त बनाना या अन्य को भयभीत करने के लिये भयजनक वचन कहना योग्य नही है।

भाष्यकार ने बताया है कि इन भय-निमित्तो का अस्तित्व हो तो भयभीत करने पर लघु-चौमासी प्रायश्चित आता है और विना अस्तित्व के ही भयभीत करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

भिक्षु को स्वभाव से ही गम्भीर और निर्भीक रहना चाहिये। भयकारी निमित्तो के उत्पन्न होने पर भी सावधान और विवेकपूर्वक रहना चाहिये तथा अन्य सन्तो को सूचित करना हो तो भयोत्पादक तरीके से कथन न करते हुए सावधान करने योग्य गम्भीर एवं सात्वनापूर्ण शब्दो मे कहना चाहिए।

भयकारी निमित्तो के न होने पर अन्य को भयभीत करना या स्वय भयभीत होना अति भय-भीरुता या कुतूहल वृत्ति से होता है, जो भिक्षु के लिये अयोग्य है।

भयभीत करने से होने वाले दोष—

१. अपने या अन्य के सुख की उपेक्षा होती है।

२. दूसरो के भयभीत होने की प्रसन्नता से दृप्तचित्त हो जाता है।

३ भयभीत होने पर कोई क्षिप्तचित्त हो जाता है या उसे रोगातक हो जाता है।

४ भयभीत होने पर या अन्य को भयभीत करने पर कभी 'भूत' आदि का प्रवेश हो जाए तो उससे अनेक दोषोत्पत्ति होती है।

५. भय के कारण होनेवाली उपयोगरहित प्रवृत्तियो से छ.काय के जीवो की विराधना हो सकती है।

अत. स्वय भी भयभीत नही होना चाहिए और अन्य को भयभीत नही करना चाहिये।

विस्मितकरण प्रायश्चित्त—

६५—जे भिक्खू अप्पाणं विम्हावेइ, विम्हावेंतं वा साइज्जइ।

६६—जे भिक्खू परं विम्हावेइ, विम्हावेंतं वा साइज्जइ।

६५—जो भिक्षु स्वय को विस्मित करता है या विस्मित करने वाले का अनुमोदन करता है।

६६—जो भिक्षु दूसरे को विस्मित करता है या विस्मित करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—विद्या, मत्र, तपोलब्धि, इन्द्रजाल, भूत-भविष्य-वर्तमान सम्बन्धी निमित्त वचन, अतर्धान, पादलेप और योग (पदार्थों के सम्मिश्रण) आदि से स्वय विस्मित होना या अन्य को विस्मित करना भिक्षु के लिये योग्य नही है।

जो स्वय ने प्रयोग नही किये हो और दूसरो के द्वारा किये जाते हुये को देखा-सुना भी न हो ऐसे असद्भूत प्रयोगो की कल्पना द्वारा कथन से स्वय को या अन्य को विस्मित करने का प्रस्तुत सूत्रो मे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है। भाष्य मे वास्तविक विस्मयकारक प्रयोगों से स्वय को या अन्य को विस्मित करने का लघुचौमासी प्रायश्चित्त बताया है।

अन्य भी अनेक कुतूहलवृत्तियो से आश्चर्यान्वित (चकित) करने का प्रायश्चित्त भी इसी सूत्र से समझ लेना चाहिये। विस्मयकारक प्रयोगो से होने वाली हानिया—

१. 'मैंने ऐसा विस्मयकारक प्रयोग किया', इस हर्ष से उन्मत्त हो सकता है।

२ अन्य को विस्मित करने से वह विक्षिप्तचित्त हो सकता है।

३. उस विद्या आदि की कोई याचना कर सकता है। उसे देने पर सावद्य प्रवृत्ति होती है और नही देने पर वह विरोधी बनता है।

४. विद्या आदि के प्रयोग मे प्रवृत्त होने से तप-संयम की हानि होती है।

५. असद्भूत प्रयोगो से विस्मित करने मे माया-मृषावाद का सेवन होता है।

अत सद्भूत या असद्भूत दोनो प्रकार की विस्मयकारक प्रवृत्तियाँ करने पर प्रायश्चित्त आता है।

विपर्यासकरण-प्रायश्चित्त—

६७—जे भिक्खू अप्पाण विप्परियासेइ, विप्परियासतं वा साइज्जइ।

६८—जे भिक्खू परं विप्परियासेइ, विप्परियासंतं वा साइज्जइ।

६७—जो भिक्षु स्वय को विपरीत बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

६८—जो भिक्षु दूसरे को विपरीत बनाता है या विपरीत बनाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—स्वय की जो भी अवस्था है, यथा—स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध, जवान, सरोग, नीरोग, सुरूप, कुरूप आदि, उनसे विपरीत अवस्था करना—यह स्वविपर्यासकरण है। इसी तरह अन्य की भी जो अवस्था हो उससे विपरीत बनाना यह परविपर्यासकरण है। ऐसा करने से गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

सूत्र ६३ से ६८ तक इन छहो सूत्रो मे कुतूहलवृत्ति और मायाचरण दोष के कारण प्रायश्चित्त का कथन है।

सूत्र ६७-६८ मे भाष्यकार ने विपर्यास करने की जगह विपर्यास कथन का अधिक विवेचन किया है।

अन्यमतप्रशसाकरण-प्रायश्चित्त—

६९—जे भिक्खू मुहवण्णं करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अन्य धर्म की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन— जो जिस धर्म का भक्त हो उसके सामने उसके धर्म आदि की प्रशसा करना मुखवर्ण है। वे प्रशसा के स्थान ये है, यथा—

१. गगा आदि कुतीर्थों की।

२. शाक्य मत आदि कुसिद्धातो की।
३. मल्लगणधर्म आदि कुधर्मों की।
४ गोव्रत आदि कुव्रतो की।
५ भूमिदान आदि कुदानो की।
६ ३६३ पाखड रूप उन्मार्गों की।

इनकी प्रशसा करने से मिथ्यात्व व मिथ्या प्रवृत्ति की पुष्टि होती है। जिनप्रवचन की प्रभावना मे कमी होती है। साधु की अपकीर्ति होती है कि ये खुशामदी है, इसीलिये हर किसी के समक्ष उसके मत की प्रशसा करते है।

अत कुतीर्थिको के सामने उनके मत की प्रशसा करे, अन्य धर्म के मुख्य तत्वो की या मुख्य प्रवर्तक की प्रशसा करे तो उस भिक्षु को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

सूत्र मे 'मुखवर्ण' शब्द है, जिसका अर्थ है—जो सामने हो उसकी प्रशसा करना। जिस किसी के सामने उसकी प्रशसा करना खुशामद करना कहा जाता है और असत् गुणकथन से माया व असत्य वचन का दोष भी लगता है। जिससे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त का कारण बनता है। इसके पूर्व के सूत्रों मे भी असत् भयभीतकरण, विस्मितकरण और विपर्यासकरण के प्रायश्चित्त का कथन है। अत प्रस्तुत सूत्र मे भी कोई व्यक्ति सामने है, उसकी अतिशयोक्तियुक्त असत् प्रशसा (झूठी प्रशसा) करने का यह प्रायश्चित्त है, ऐसा समझना अधिक सगत प्रतीत होता है।

भाष्य मे "भावमुख" की अपेक्षा अन्य धर्म एव उनके मुख्य तत्त्वो की प्रशसा उसी धर्म के अनुयायी के सामने करने की अपेक्षा से विवेचन किया गया है, जिसका साराश ऊपर दिया गया है।

विरुद्धराज्य-गमनागमन-प्रायश्चित्त—

७०. जे भिक्खू वेरज्ज-विरुद्धरज्जंसि सज्जं गमणं, सज्जं आगमणं, सज्जं गमणागमणं करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

७० दो राजाओ का परस्पर विरोध हो और परस्पर राज्यो मे गमनागमन निषिद्ध हो, वहाँ जो भिक्षु बारबार गमन, आगमन या गमनागमन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन -एक विरोधी राज्य से दूसरे विरोधी राज्य मे जाना "गमन" है। जाकर पुन लौटना "आगमन" है तथा बार-बार जाना-आना "गमनागमन" है। अथवा—प्रज्ञापक की अपेक्षा "गमन", अन्य स्थान की अपेक्षा "आगमन" है।

दो राजाओ मे परस्पर विरोध चल रहा हो, एक राज्य से दूसरे राज्य की सीमा में जाने पर प्रतिबध हो तो वहा भिक्षु को नही जाना चाहिये। वहा जाना आवश्यक ही हो तो एक बार जाना या आना करे तो सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है। किन्तु बारबार जाने या आने में अनेक दोषो की सभावना होने से उसका प्रायश्चित्तविधान है।

बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक एक मे इस सम्बन्ध मे निषेध किया गया है तथा ऐसा करने वाला भगवदाज्ञा तथा राजाज्ञा दोनो का उल्लघन करने वाला होता है, ऐसा कहा गया है।

इससे यह फलित होता है कि ऐसे विरुद्ध राज्य में भिक्षु को एक बार जाना या आना अत्यावश्यक हो तो राजाज्ञा या भगवदाज्ञा का उल्लघन नही होता है।

विरोध के भी अनेक प्रकार हो सकते है। अत जिन विरोधी क्षेत्रो मे जिस समय सर्वथा गमनागमन निषेध हो उस समय वहाँ एक बार भी नही जाना चाहिये। किन्तु जहाँ "व्यापारी" आदि के लिये गमनागमन की कुछ छूट हो या विरोधी राज्य के सिवाय अन्यत्र जाने आने की छूट हो तो वहाँ आवश्यक होने पर जाया जा सकता है।

यदि आवश्यक न हो तो ऐसे विरोधी क्षेत्रो मे गमनागमन नही करना चाहिये।

दिवसभोजननिंदा तथा रात्रिभोजनप्रशंसा करने का प्रायश्चित्त—

७१. जे भिक्खू दियाभोयणस्स अवण्ण वयइ, वयंत वा साइज्जइ।

७२. जे भिक्खू राइभोयणस्स वण्णं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ।

७१. जो भिक्षु दिन मे भोजन करने की निन्दा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

७२ जो भिक्षु रात्रिभोजन करने की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—दशवैकालिक सूत्र अ ४ में कथन है कि—भिक्षु रात्रि भोजन का तीन करण तीन योग से जीवन पर्यंत के लिये प्रत्याख्यान करता है। अत प्रशसा करने मे अनुमोदन के त्याग का भग होता है।

एयं च दोसं दट्ठूण णायपुत्तेण भासियं।
सव्वाहारं न भुंजंति णिग्गंथा राइभोयणं।। —दशवै अ ६ गा २५

अर्थ—रात्रिभोजन को दोषयुक्त जानकर ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर ने कहा है कि निर्ग्रन्थ किसी प्रकार का आहार रात्रि में नही करते।

तात्पर्य यह है कि रात्रिभोजन दोषयुक्त है और भिक्षु के लिये सर्वथा त्याज्य है।

दिवस-भोजन की निन्दा एव रात्रिभोजन की प्रशसा करने से भिक्षु रात्रिभोजन का प्रेरक होता है, जिससे तीन करण तीन योग से किया गया रात्रिभोजनप्रत्याख्यान व्रत दूषित हो जाता है और जिनवाणी से विपरीत प्ररूपणा करने का दोष भो लगता है। अत· प्रस्तुत सूत्रद्वय मे इनका प्रायश्चित्त कहा गया है।

दिवस-भोजन की निन्दा के प्रकार—

१ वायु आतप आदि से आहार का सत्त्व शोषित हो जाता है। अत आहार बलवर्धक नहीं रहता है।

२ दूसरो के देखने से आहार का सत्त्व अपहृत हो जाता है।

३ किसी की दूषित दृष्टि से नजर लग जाती है।

४ मक्खियाँ आदि जन्तु आहार मे गिर जाते है।

५ आकाश मे उडने वाले चिड़िया-वग्गुलि आदि की बीट आदि गिर जाती है।

६ दिन में आहार करने के बाद अनेक प्रकार का परिश्रम किया जाता है, जिससे पसीना अधिक होना है और पानी का अधिक सेवन किया जाता है, फलत: आहार शक्तिवर्धक नही रहता है।

रात्रिभोजन की प्रशंसा के प्रकार—

१. आयुबल की वृद्धि होती है।

२ आहार के बाद विश्राम कर लेने से इन्द्रियाँ पुष्ट होती है।

३ शुभ पुद्गलो का अधिक उपचय होने से शरीर शीघ्र जीर्ण नही होता है, इत्यादि।

इस प्रकार का कथन करने से भिक्षु को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

रात्रिभोजन करने का प्रायश्चित्त—

७३. जे भिक्खू दिया असणं पाणं खाइमं साइमं पडिग्गाहेत्ता दिया भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

७४ जे भिक्खू दिया असणं पाणं खाइमं साइमं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

७५ जे भिक्खू रत्तिं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिग्गाहेत्ता दिया भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

७६. जे भिक्खू रत्तिं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

७३ जो भिक्षु दिन मे अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करके (रात्रि में रखकर दूसरे दिन) दिन में खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

७४ जो भिक्षु दिन मे अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण कर रात्रि में खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

७५ जो भिक्षु रात्रि में अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करके दिन में खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

७६. जो भिक्षु रात्रि में अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करके रात्रि में खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—इन सूत्रो में चौभगी द्वारा रात्रिभोजन का प्रायश्चित्त कहा गया है और इनमें ग्रहण करने के समय का तथा खाने के समय का कथन भी किया है। जिससे रात्रि में आहार ग्रहण करने का, रात्रि में खाने का तथा रात्रि में रखकर दिन में खाने का प्रायश्चित्त कहा गया है।

रात्रिभोजन से प्राणातिपात आदि मूलगुणो की विराधना होती है तथा छठा रात्रिभोजन-विरमण व्रत भी मूलगुण है, उसका भग होता है । कु थुए आदि सूक्ष्म प्राणी तथा फूलण आदि का शोधन होना अशक्य होता है । रात्रि मे आहार की गवेषणा करने मे एषणासमिति का पालन भी नही होता है । चूर्णिकार ने कहा है—

"किं च येऽपि प्रत्यक्षज्ञानिनो ते विशुद्धं भक्तापान पश्यति तथापि रात्रौ न भु जते, मूलगुण-भगत्वात् ।" तीर्थंकरगणधराचार्यै. अनाचीर्णत्वात्, जम्हा छट्ठो मूलगुणो विराहिज्जति तम्हा ण रातो भोत्तव्वं ।

अर्थ—जो प्रत्यक्ष ज्ञानी होते है वे आहारादि को विशुद्ध जानते हुए भी रात्रि मे नही खाते, क्योकि मूलगुण का भग होता है । तीर्थंकर, गणधर और आचार्यो से अनासेवित है, इसमे छट्ठे मूल-गुण की विराधना होती है, अत रात्रिभोजन नही करना चाहिये ।

आगमो मे रात्रिभोजन निषेध-सूचक स्थल इस प्रकार है—

१ दशवैकालिक सूत्र अ ३ मे रात्रिभोजन निर्ग्रथ के लिये अनाचार कहा गया है ।

२ दशवैकालिक अ ६ मे रात्रिभोजन करने से निर्ग्रथ अवस्था से भ्रष्ट होना कहा है तथा दोषो का कथन भी किया है ।

३ दशवै अ ४ मे पाँच महाव्रत के साथ रात्रिभोजनविरमण को छट्ठा व्रत कहा है ।

४. दशवै अ ८ मे सूर्यास्त से सूर्योदय तक आहार की मन से भी चाहना करने का निषेध है ।

५ उत्तरा अ १९ गा ३१ मे सयम की दुष्करता के वर्णन मे चारो प्रकार के आहार का रात्रि मे वर्जन करना भी सुदुष्कर कहा है ।

६ बृहत्कल्प उ १ में रात्रि या विकाल (सध्या) के समय चारो प्रकार के आहार ग्रहण करने का निषेध है ।

७ बृहत्कल्प उ ५ मे आहार करते समय ज्ञात हो जाये कि—सूर्योदय नही हुआ है या सूर्यास्त हो गया है तो मु ह मे रखा हुआ आहार भी निकालकर परठने का विधान किया है और खाने का प्रायश्चित्त कहा है तथा रात्रि मे आहार-पानी युक्त 'उद्गाल' आ जाए तो उसे निगलने का भी प्रायश्चित्त कहा गया है और उसे भी परठने का विधान है ।

८ दशा द २ तथा समवायाग स २१ मे रात्रिभोजन करना 'शबल दोष' कहा है ।

९ बृहत्कल्प उ ४ मे रात्रिभोजन का अनुद्घातिक (गुरु) प्रायश्चित्त कहा है ।

१०. ठाणाग अ ३ तथा अ ५ मे रात्रिभोजन का अनुद्घातिक प्रायश्चित्त कहा है ।

११ सूयगडागसूत्र श्रु १, अ २, उ ३ मे रात्रिभोजन त्याग सहित पाच महाव्रत परम रत्न कहे गये हैं, जिन्हे साधु धारण करते हैं । इस प्रकार महाव्रत के तुल्य रात्रिभोजनविरमण का महत्त्व कहा गया है ।

अन्यत्र भी रात्रिभोजन के लिये निम्नाकित कथन है—

१. उलूक-काक-मार्जार-गृध्र-संबर-शूकराः ।
अहि-वृश्चिक-गोधाश्च, जायंते रात्रिभोजनात् ॥१॥

२. एकभक्ताशनान्नित्यं, अग्निहोत्रफलं लभेत् ।
अनस्तभोजनो नित्यं, तीर्थयात्राफलं लभेत् ॥२॥

३ नैवाहुतिर्न च स्नानं, न श्राद्धं देवतार्चनम् ।
दानं न विहितं रात्रौ, भोजनं तु विशेषतः ॥३॥

४ पतंग-कीट-मण्डूक-सत्वसंघातघातकम् ।
अतोऽर्तिनिन्दितं तावत् धर्मार्थं निशिभोजनम् ॥४॥

—योगशास्त्र अ ३

रात्रि में आहार रखने व खाने का प्रायश्चित्त—

७७—**जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अणागाढे परिवासेइ, परिवासंतं वा साइज्जइ ।**

७८—**जे भिक्खू परिवासियस्स असणस्स वा पाणस्स वा खाइमस्स वा साइमस्स वा तयप्पमाणं वा भूइप्पमाणं वा बिंदुप्पमाणं वा आहारं आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ ।**

७७ जो भिक्षु आगाढ परिस्थिति के अतिरिक्त अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य रात्रि में रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अनागाढ परिस्थिति से रात्रि मे रखे हुए अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य का त्वक्-प्रमाण (चुटकी), भूति प्रमाण अथवा बिन्दुप्रमाण भी आहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भिक्षु अशनादि चार, तीन, दो या एक भी प्रकार का आहार रात्रि मे अनागाढ स्थिति मे रखे तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

आगमो के अनेक स्थलो मे अशनादि सग्रह अर्थात् रात्रि मे आहार रखने का निषेध है। प्रस्तुत सूत्रद्वय मे आगाढ परिस्थिति मे रखने का प्रायश्चित्त न कहते हुए अनागाढ स्थिति मे रात्रि के समय आहार रखने का प्रायश्चित्त कथन है और अनागाढ परिस्थिति मे रखे गये आहार मे से कुछ भी खाने या पीने का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

आगाढ परिस्थिति मे रखे गये अशनादि के भी किंचित् मात्र खाने पर प्रायश्चित्त कहा गया है इसलिये आगाढ परिस्थिति का यह अर्थ समझना चाहिये कि अन्य कोई उपाय न हो सकने से रात्रि में अशनादि रखने का प्रायश्चित्त नही है किन्तु उसे खाने का प्रायश्चित्त है। वह आगाढ परिस्थिति इस प्रकार सम्भव है, यथा—

१ सायकालीन गोचरी लाने के बाद महावात (आंधी, तूफान) युक्त वर्षा आ जाय और अंधेरा हो जाने से आहार नही कर सके, फिर सूर्यास्त हो जाए और वर्षा न रुके। इस कारण से आहार रात्रि में रखना पडे।

२ आहार अधिक मात्रा में आ गया हो, परठना आवश्यक हो उस समय अचानक मूसल वर्षा प्रारम्भ हो जाय जो कि सूर्यास्त के बाद रात्रि तक चालू रहे और आहार रखना पड़े त आगाढ परिस्थिति है।

इस प्रकार रखे हुए आहार को किंचिन्मात्र भी खाना नही कल्पता है। खाने पर द्वि (७८ वें) सूत्र के अनुसार प्रायश्चित्त आता है।

व्याख्याकार ने आगाढ परिस्थिति से रोगादि कारणो को ग्रहण किया है तथा दुर्लभ आदि रखने को भी आगाढ कारण मे बताया है। किन्तु आगम-वर्णनों से यही स्पष्ट होता है कि रात्रि में खाद्य पदार्थ आदि का सग्रह कदापि न करे क्योकि दश. अ. ६ मे कहा है कि 'जो भिक्षु पदार्थों के संग्रह का इच्छुक भी होता है वह 'गृहस्थ' है, साधु नही है।'

सन्निधि (सग्रह) निषेधसूचक कुछ आगमस्थल इस प्रकार है—

१ दशवै० अ० ३ गा ३ मे 'सण्णिही' अनाचार कहा है।

२. बिडमुब्भेइम लोणं, तिल्लं सप्पि च फाणिय।
ण ते सण्णिहिमिच्छंति, णायपुत्तवओरया ।।

—दश० अ० ६ गा० १८

३. जे सिया सण्णिहीकामे, गिही, पव्वइए-न से।

—दश० अ० ६ गा० १९

४. सण्णिहिं च न कुव्वेज्जा, अणुमाय पि संजए।
मुहाजीवी असंबद्धे हवेज्ज जगणिस्सिए ।।

—दश० अ० ८ गा० २४

५ तहेव असण पाणग वा, विविह खाइम साइम लभित्ता।
होही अट्ठो सुए परे वा, त न निहे न निहावए, जे स भिक्खू ।।

—दश० अ० १० गा० ८

६. कय-विक्कय-सण्णिहिओ विरए, सव्वसगावगए य जे स भिक्खू ।।

—दश० अ० १० गा० १६

७. चउव्विहे वि आहारे, राइभोयणवज्जणा।
सण्णिही संचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं ।।

—उत्तरा० अ० १९ गा० ३०

८. सण्णिहिं च ण कुव्वेज्जा, लेवमायाए संजए।
पक्खीपत्तं समादाय, णिरवेक्खो परिव्वए ।।

—उत्तरा० अ० ६, गा० १५

९ ण सण्णिहिं कुव्वइ आसुपण्णे ।

--सूय० श्रु० १, अ० ६, गा० २५

१०. जंपि य ओदण-कुम्मास-गंज-तप्पण-मथु-भुज्जिय-पलल-सूप--सक्कुलि-वेढिम--वरसरक-चुण्ण-कोसग-पिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग-खीर--दहि--सप्पि--णवणीय-तेल्ल--गुल-खंड--मच्छंडिय-खज्जक-वंजणविहिमादिय पणीयं; उवस्सए, परघरे व रण्णे न कप्पइ तं पि सण्णिहिं काउं सुविहियाण ।।

--प्रश्न श्रु २, अ ५, सू. ४

११. ज पि य समणस्स सुविहियस्स उ रोगायके बहुप्पगारम्मि समुप्पन्ने-वाताहिग पित्त जाव जीवियतकरे, सव्वसरीरपरितावणकरे, न कप्पइ तारिसे वि अप्पणो तह परस्स वा ओसह-भेसज्ज, भत्तपाण च त पि सण्णिहीकय ।।

-- प्रश्न श्रु २, अ ५ सू ७

इन आगम स्थलो से यह स्पष्ट हो जाता है कि आहार एव औषधि के किसी पदार्थ का रात्रि मे रखना भिक्षु के लिए सर्वथा निषिद्ध है । भाष्य निर्दिष्ट अपवाद परिस्थिति मे अशनादि रखने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है ।

रोगपरीषह एव क्षुधा-पिपासापरीषह विजेता भिक्षु इस अपवाद का कदापि सेवन नही करे किन्तु निरतिचार शुद्ध सयम का एव भगवदाज्ञा का आराधन करे ।

आहारार्थ अन्यत्र रात्रिनिवास-प्रायश्चित्त—

७९ जे भिक्खू आहेण वा, पहेण वा, हिंगोल वा, समेल वा अण्णयर वा तहप्पगार विरूवरूव हीरमाण पेहाए ताए आसाए, ताए पिवासाए त रयणि अण्णत्थ उवाइणावेइ, उवाइणावेंत वा साइज्जइ ।

अर्थ - जो भिक्षु वर के घर के भोजन, वधु के घर के भोजन, मृत व्यक्ति की स्मृति मे बनाये गये भोजन, गोठ आदि मे बनाये गये भोजन अथवा अन्य भी ऐसे विविध प्रकार के भोजन को ले जाते हुए देखकर उस आहार की आशा से, उसकी पिपासा (लालसा) से अन्यत्र जाकर (अन्य उपाश्रय मे) रात्रि व्यतीत करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—"आहेण" आदि शब्दो की व्याख्या आचारागसूत्र श्रु २, अ १, उ ४ मे की गई है । तदनुसार यहाँ अर्थ किया गया है । इसके अतिरिक्त वहाँ "हिंगोल" का अर्थ यक्षादि की यात्रा का भोजन भी किया है तथा "समेल" से परिजन आदि के सम्मानार्थ बनाया गया भोजन अर्थ किया गया है ।

प्रस्तुत सूत्र की चूर्णि मे इन शब्दो की वैकल्पिक व्याख्याएँ दी है, जो इस प्रकार है—

"आहेण"-- १ अन्य के घर से उपहार रूप मे आने वाला खाद्य पदार्थ आदि । २. बहू के घर से वर के घर उपहार रूप मे ले जाया जाने वाला खाद्य पदार्थ आदि । ३ वर या वधू के घर परस्पर भेजा जाने वाला खाद्य पदार्थ आदि ।

"पहेण" -अन्य के घर उपहार रूप मे भेजा जाने वाला खाद्य पदार्थ आदि। २ वर के घर से बहू के घर उपहार रूप मे भेजा जाने वाला खाद्य पदार्थ आदि। ३ वर-वधू के सिवाय अन्य के द्वारा कही उपहार रूप मे भेजा जाने वाला आहारादि।

"हिंगोलं"—मृतकभोज-श्राद्धभोजन आदि।

"संमेलं"—१ विवाह सम्बन्धी भोजन। २ गोष्ठीभोज—गोठ का भोजन। ३. किसी भी कार्य के प्रारम्भ मे किया जाने वाला भोजन।

भिक्षु इन प्रसगो से आहार को इधर-उधर ले जाते देखे और जाने कि शय्यादाता के घर विशेष भोजन का आयोजन है। उस आहार को ग्रहण करने की आकाक्षा उत्पन्न होने से उस शय्यादाता का मकान छोडकर अन्य किसी के मकान मे (उस भोजन के पहले दिन की) रात्रि मे रहने के लिये जाता है, इस विचार से कि इस मकान मे रहते हुए शय्यातर का आहार ग्रहण नही किया जा सकता।

गृहपरिवर्तन करने मे गृहस्वामी शय्यादाता का भी भक्तिवश आग्रह हो सकता है अथवा भिक्षु का स्वत भी सकल्प हो सकता है। इस दोनो स्थितियो मे उस भोजन को ग्रहण करने के सकल्प से जाने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

ऐसा करने मे आहार की आसक्ति, लोकनिन्दा या अन्य सखडी सम्बन्धी दोषो की सभावना रहती है।

व्याख्याकार ने शय्यादाता के अलावा अन्य व्यक्ति के घर का भोजन हो तो भी गृहपरिवर्तन करने का प्रायश्चित्त इसी सूत्र से बताया है। यथा—जिस किसी भक्तिमान् व्यक्ति के घर मे भोजन है और वह स्थान दूर है तो उसके निकट मे जाकर रात्रि-निवास किया जा सकता है। इसी प्रकार शय्यातर व अन्य भोजन की अपेक्षा स्थानपरिवर्तन का प्रायश्चित्त गुरुचौमासी समझना चाहिये।

नैवेद्य का आहार करने पर प्रायश्चित्त—

८०—जे भिक्खू णिवेयणपिंड भुंजइ, भुंजंत वा साइज्जइ।

८० जो भिक्षु नैवेद्य पिड खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पूर्णभद्र माणिभद्र आदि जो अरिहतपाक्षिक देवता है, उनके लिए अर्पित पिड "नैवेद्यपिड" कहलाता है। वह नैवेद्य पिड दो प्रकार का होता है, यथा—

१. भिक्षु की निश्राकृत २. भिक्षु की अनिश्राकृत।

१ **निश्राकृत**—१ जो भिक्षु को देने की भावना से युक्त है। अर्थात् मिश्रजात दोष युक्त नैवेद्य पिड बना है। २ जो साधु को देने की भावना से नियत दिन के पहले या पीछे किया गया है। ३ नैवेद्यपिड तैयार होने के बाद साधु के लिए स्थापित करके रख दिया है। ये सभी निश्राकृत नैवेद्य पिड है।

२ **अनिश्राकृत**—साधु गाँव मे हो अथवा न हो, स्वाभाविक रूप से ही निश्चित दिन नैवेद्य पिड बनाया हो और अचानक साधु वहाँ पहुँच गया हो तो वह अनिश्राकृत नैवेद्यपिड है ।

तात्पर्य यह है कि साधु के लिए पाहुडिया दोष, मिश्रजात दोष और ठवणादोष आदि उद्गम के दोष जिस नैवेद्य पिड मे हो उसकी अपेक्षा यह गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है और उस पिड को निश्राकृत नैवेद्यपिड कहा जाता है ।

जो अनिश्राकृत स्वाभाविक नैवेद्यपिड है अर्थात् देवता को अर्पित करने के बाद दान के लिए रखा हुआ है वह अनिश्राकृत नैवेद्यपिंड अर्थात् दानपिड होने से निशीथसूत्र के दूसरे उद्देशक मे आये दानपिड के प्रायश्चित्त सूत्रो मे इसका समावेश होता है । वहाँ इसको लघुमासिक प्रायश्चित्त कहा गया है ।

इससे ज्ञात होता है कि आगमकाल मे देवताओ को अधिक मात्रा मे खाद्य पदार्थ अर्पित किया जाता था जो पूजा-विधि करके दान रूप मे वितरित कर दिया जाता था ।

किसी श्रद्धाशील के द्वारा भिक्षु को किसी निमित्त से दान देने के लिये भी ऐसी प्रवृत्ति की जाती थी । अत उसी अपेक्षा से इस सूत्र मे निश्राकृत नैवेद्यपिड का प्रायश्चित्त कहा गया है ।

यथाछंद को वदन करने तथा उसकी प्रशंसा करने का प्रायश्चित्त—

८१. जे भिक्खू अहाछद पससइ, पससत वा साइज्जइ ।

८२ जे भिक्खू अहाछद वदइ, वदत वा साइज्जइ ।

८१. जो भिक्षु स्वच्छदाचारी की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

८२ जो भिक्षु स्वच्छदाचारी को वदन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है) ।

विवेचन - जो आगमविपरीत एव स्वमनिकल्पित प्ररूपणा करता है, वह 'यथाछद' कहा जाता है ।

ऐसे स्वच्छदाचारी भिक्षु की प्रशसा एव वदना करने से उसे प्रोत्साहन मिलता है तथा अन्य भी अनेक दोषो की उत्पत्ति की सभावना होने से प्रस्तुत सूत्र मे इसका गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त कहा गया है तथा उपलक्षण से शिष्य या आहारादि का आदान-प्रदान करने पर भी यही प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिये ।

पासत्था आदि ९ प्रकार के साधुओ को वदना एव उनकी प्रशसा करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है । --नि० उ० १३

उनके साथ अन्य सम्पर्क रखने का भी लघुचौमासी या लघुमासिक प्रायश्चित्त का कथन अन्य उद्देशको मे है । किन्तु यथाछंद उत्सूत्र प्ररूपक होने से इसके साथ सम्पर्क का यहा गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त कहा गया है ।

अयोग्य को प्रव्रजित करने का प्रायश्चित्त—

८३ जे भिक्खू णायगं वा अणायग वा उवासग वा अणुवासग वा अणलं पव्वावेइ, पव्वावेंत वा साइज्जइ ।

८४ जे भिक्खू णायग वा अणायग वा उवासगं वा अणुवासगं वा अणलं उवट्ठावेइ, उवट्ठावेंत वा साइज्जइ ।

८३. जो भिक्षु अयोग्य स्वजन या परजन, उपासक या अनुपासक को प्रव्रजित करता है या प्रव्रजित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८४. जो भिक्षु अयोग्य स्वजन या परजन, उपासक या अनुपासक को उपस्थापित करता है या उपस्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—प्रथम सूत्र मे अयोग्य को दीक्षा देने का प्रायश्चित्त कथन है। यदि किसी को दीक्षा देने के बाद जानकारी हो कि यह दीक्षा के अयोग्य है तो जानकारी होने के बाद उसे उपस्थापित करने पर द्वितीय सूत्र के अनुसार प्रायश्चित्त आता है।

प्रथम सूत्र मे जानकर अयोग्य को दीक्षा देने का प्रायश्चित्त कहा है। द्वितीय सूत्र मे अनजान मे दीक्षा दिये बाद अयोग्य जानकर के भी बडी दीक्षा देने का प्रायश्चित्त कहा है।

इससे यह ध्वनित होता है कि दीक्षा देने के बाद अयोग्यता की जानकारी होने पर बडी दीक्षा नही देनी चाहिए।

अयोग्यता की जानकारी न होने के दो कारण हो सकते है। यथा –

१. दीक्षार्थी द्वारा अपनी अयोग्यता को छिपा लेना।

२ दीक्षादाता के द्वारा छानबीन करके पूर्ण जानकारी न करना।

दूसरे कारण मे दीक्षादाता का प्रमाद है, अत वह सूत्रोक्त प्रायश्चित्त को प्राप्त करता है।

उपस्थापित करने के बाद उसे छोडना या न छोडना यह गीतार्थ के निणय पर निर्भर है।

प्रव्रज्या के अयोग्य व्यक्ति निम्नलिखित है–

१. बाल—आठ वर्ष से कम उम्र वाला। २ वृद्ध– सत्तर (७०) वर्ष से अधिक उम्र वाला। ३. नपुसक– जन्म-नपुसक, कृतनपुसक, स्त्रीनपुसक तथा पुरुषनपुसक आदि। ४ जड -शरीर से अशक्त, बुद्धिहीन व मूक। ५. क्लीब —स्त्री के शब्द, रूप, निमन्त्रण आदि के निमित्त से उदित मोह-वेद को निष्फल करने मे असमथ। ६ रोगी– १६ प्रकार के रोग और आठ प्रकार की व्याधि म से किसी भी रोग या व्याधि से युक्त। शीघ्रघाती व्याधि कहलाती है और चिरघाती रोग कहलाते है। --भाष्य गा० ३६४७। ७ चोर– रात्रि मे पर-घर प्रवेश कर चोरी करने वाला, जेब काटने वाला इत्यादि अनेक प्रकार के चोर डाकू लुटेरे। ८ राज्य का अपराधी--किसी प्रकार का राज्यविरुद्ध कार्य करने पर अपराधी घोषित किया हुआ। ९ उन्मत्त--यक्षाविष्ट या पागल। १०. चक्षुहीन—जन्माध हो या बाद मे किसी एक या दोनो आँखो की ज्योति चली गई हो। ११. दास—

किसी का खरीदा हुआ या अन्य किसी कारण से दासत्व को प्राप्त। १२ दुष्ट -कषाय दुष्ट (अति क्रोधी), विषयदुष्ट (विषयासक्त)। १३ मूर्ख- द्रव्यमूढ आदि अनेक प्रकार के मूर्ख-भ्रमित बुद्धि वाले। १४ कर्जदार—अन्य की सम्पत्ति उधार लेकर न देने वाला। १५ जुंगित (हीन) - जाति से, कर्म से, शिल्प से हीन और शरीर से हीनांग (जिसके नाक, कान, पैर, हाथ आदि कटे हुए हों)। १६ बद्ध—कर्म, शिल्प, विद्या, मंत्र आदि सीखने या सिखाने के निमित्त किसी के साथ प्रतिज्ञा-बद्ध हो। १७ भृतक—दिवसभृतक, यात्राभृतक आदि। १८ अपहृत—माता-पिता आदि की आज्ञा बिना अदत्त लाया हुआ बालक आदि। १९ गर्भवती—स्त्री। २० बालवत्सा—दुधमुंहे बच्चे वाली स्त्री। भाष्य में इनके अनेक भेद प्रभेद किए हैं तथा इन्हें दीक्षा देने में होने वाले दोषों और उनके प्रायश्चित्तों के अनेक विकल्प कहे हैं।

दीक्षा के अयोग्य इन २० प्रकार के व्यक्तियों का वर्णन निशीथभाष्य तथा अन्य व्याख्याग्रन्थों में मिलता है। आगम में इस विषयक कथन बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक चार में है। वहाँ तीन को दीक्षा देना आदि अकल्पनीय कहा है, यथा—१ पंडक, २ क्लीब, ३ वातिक।

बृहत्कल्पभाष्य में "वाइए" पाठ से "वातिक" की व्याख्या की गई है। किन्तु निशीथभाष्य में अयोग्यों के वर्णन में "वाहिए" शब्द कह कर व्याधिग्रस्त अर्थ किया है तथा नपुंसक के प्रभेदों में "वातिक" कहा है।

वातिक—वायुजन्य दोष से जो विकार को प्राप्त होता है एवं अनाचार-सेवन करने पर ही उपशांत होता है।

क्लीब दृष्टि, शब्द, स्पर्श (आलिंगन) या निमन्त्रण से विकार को प्राप्त होकर जिसके स्वतः वीर्य निकल जाता है।

बृहत्कल्पसूत्र के मूल पाठ में "पंडक" (नपुंसक) से इन दोनों को अलग कहने का कारण यह है कि ये लिंग व वेद की अपेक्षा से पुरुष हैं, किन्तु कालान्तर से नपुंसक भाव को प्राप्त हो जाते हैं। अतः पुरुष होते हुए भी इन्हें दीक्षा देने का निषेध किया गया है।

आगमविहारी अतिशयज्ञानी इन भाष्यवर्णित सभी को यथावसर दीक्षा दे सकते हैं।

"बालवय" वाले को कारणवश गीतार्थ दीक्षा दे सकते हैं, ऐसा ठाणांग सूत्र अ० ५, सूत्र १०८ से फलित होता है।

भाष्य-गाथा ३७३८ में बीस प्रकार के अयोग्यों में से कुछ को यथावसर दीक्षा दी भी जा सकती है, ऐसा बताया है, किन्तु गीतार्थ को यह अधिकार अन्य गीतार्थ की सलाह से ही होता है। अन्यथा उसे भी प्रायश्चित्त आता है।

दीक्षा के योग्य व्यक्ति—

१ आर्यक्षेत्रोत्पन्न २ जातिकुलसम्पन्न ३ लघुकर्मी ४ निर्मलबुद्धि ५ संसार-समुद्र में मनुष्य भव की दुर्लभता, जन्म-मरण के दुःख, लक्ष्मी की चंचलता, विषयों के दुःख, इष्ट संयोगों का वियोग, आयु की क्षणभंगुरता, मरण पश्चात् परभव का अति रौद्र विपाक और संसार की असारता आदि भावों को जानने वाला ६ संसार से विरक्त ७ अल्पकषायी ८ अल्पहास्यादि (कुतूहलवृत्ति से रहित)

९ सुकृतज्ञ १० विनयवान् ११ राज्य-अपराध रहित १२ सुडौल शरीर १३ श्रद्धावान् १४ स्थिर चित्त वाला १५ सम्यग् उपसम्पन्न ।

इन गुणो से सम्पन्न को दीक्षा देनी चाहिये, अथवा इनमे से एक-दो गुण कम भी हो तो बहुगुणसम्पन्न को दीक्षा दी जा सकती है ।

--अभि राजेन्द्र कोष "पवज्जा" पृ ७३६

दीक्षादाता के लक्षण—

उपर्युक्त पन्द्रह गुण सम्पन्न तथा १६ विधिपूर्वक प्रव्रजित, १७ सम्यक् प्रकार से गुरुकुल-वाससेवी, १८ प्रव्रज्या-ग्रहण काल से सतत अखड शीलवाला, १९. परद्रोह रहित, २०. यथोक्त विधि से ग्रहीत सूत्र वाला, २१ सूत्रो, अध्ययनो आदि के पूर्वापर सम्बन्धो मे निष्णात, २२ तत्त्वज्ञ, २३. उपशात, २४ प्रवचनवात्सल्ययुक्त, २५ प्राणियो के हित मे रत, २६ आदेय वचन वाला, २७ भावो की अनुकूलता से शिष्यो की परिपालना करने वाला, २८ गम्भीर (उदारमना) २९ परीषह आदि आने पर दीनता न दिखाने वाला, ३०. उपशमलब्धि सम्पन्न (उपशात करने मे चतुर) उपकरणलब्धिसम्पन्न, स्थिरहस्तलब्धिसम्पन्न, ३१ सूत्रार्थ-वक्ता, ३२ स्वगुरुअनुज्ञात गुरु पद वाला । ऐसे गुण सम्पन्न विशिष्ट साधक को गुरु बनाना चाहिए।

--अभि राजेन्द्र कोष "पवज्जा" पृ ७३४

दीक्षार्थी के प्रति दीक्षादाता के कर्तव्य—

१ दीक्षार्थी से पूछना चाहिये कि--"तुम कौन हो ? क्यो दीक्षा लेते हो ? तुम्हे वैराग्य उत्पन्न कैसे हुआ ?" इस प्रकार पूछने पर योग्य प्रतीत हो तथा अन्य किसी प्रकार से अयोग्य ज्ञात न हो तो उसे दीक्षा देना कल्पता है ।

२ दीक्षा के योग्य जानकर उसे यह साध्वाचार कहना चाहिए यथा -१ प्रतिदिन भिक्षा के लिये जाना, २. भिक्षा मे अचित्त पदार्थ लेना, ३ वह भी एषणा आदि दोषो मे रहित शुद्ध ग्रहण करना, ४ लाने के बाद बाल-वृद्ध आदि को देकर समविभाग से खाना, ५ स्वाध्याय मे सदा लीन रहना, ६. आजीवन स्नान न करना, ७. भूमि पर या पाट पर शयन करना, ८. अट्ठारह हजार (या हजारो) गुणो को धारण करना, ९ लोच आदि के अनेक कष्टो को सहन करना आदि । यदि वह यह सब सहर्ष स्वीकार कर ले तो उसे दीक्षा देनी चाहिये ।

--नि चूर्णि पृ २७८

नवदीक्षित भिक्षु के प्रति दीक्षादाता के कर्तव्य—

१ "शस्त्रपरिज्ञा" का अध्ययन कराना अथवा "छज्जीवनिका" का अध्ययन कराना ।

२ उसका अर्थ—परमार्थ समझाना कि ये पृथ्वी आदि जीव है, धूप छाया पुद्गल आदि अजीव है तथा पुण्य-पाप, आस्रव-सवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष नव पदार्थ, कर्मबन्ध के हेतु व उनके भेद, परिणाम इत्यादि का परिज्ञान कराना ।

३. इन्ही तत्त्वो को पुन पुन समझाकर उसे धारण कराना, श्रद्धा कराना ।

४ तत्पश्चात् उन जीवो की यतना का विवेक सिखाना ।

५ सिखाने के बाद श्रद्धा एव विवेक की परीक्षा करना, यथा—

खडे रहने, बैठने, सोने या परठने के लिये सचित्त भूमि बताकर कहना कि "यहाँ खडे रहो, परठो' इत्यादि । सचित्त स्थल देखकर वह चितित होता है या नही, इसकी परीक्षा करना ।

इसी तरह तालाब आदि की गीली भूमि मे चलने, दीपक सरकाने, गर्मी मे हवा करने तथा वनस्पति व त्रस जीव युक्त मार्ग मे चलने का कहकर परीक्षा करना । एषणा दोष युक्त भिक्षा ग्रहण करने को कह कर परीक्षा करना ।

इस प्रकार अध्ययन, अर्थज्ञान, श्रद्धान, विवेक तथा परीक्षा मे योग्य हो उसे उपस्थान करना चाहिये ।

उल्लिखित विधि से जो योग्य न बना हो उसे उपस्थापित करने पर प्रायश्चित्त आता है ।

—निशीथ चूर्णि पृ. २८०

अयोग्य से वैयावृत्य कराने का प्रायश्चित्त—

८५ जे भिक्खू नायगेण वा अनायगेण वा उवासएण वा अणुवासएण वा अणलेण वेयावच्च कारवेइ, कारवेंत वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अयोग्य स्वजन या परजन, उपासक या अनुपासक दीक्षित भिक्षु से सेवा करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—सेवाकार्य अनेक प्रकार के हो सकते है । किन्तु भाष्यकार ने केवल भिक्षाचरी की अपेक्षा से सेवाकार्य मे अयोग्य का वर्णन किया है । वे चार प्रकार के हो सकते हैं, यथा –

१ जिसने पिंडैषणा का अध्ययन न किया हो,
२ जिसकी सेवाकार्य मे श्रद्धा-रुचि न हो,
३ जिसने उसका अर्थ-परमार्थ न जाना हो,
४ जो दोषो का परिहार न कर सकता हो ।

इस प्रकार के अयोग्य से वैयावृत्य कराने पर प्रायश्चित्त आता है ।

अन्य अनेक सेवाकार्यो के लिये भी यही उचित है कि जो शारीरिक शक्ति से सक्षम हो और क्षयोपशम की अपेक्षा भी योग्य हो उसी साधु से सेवाकार्य करवाना चाहिये । शक्ति और योग्यता से अधिक सेवाकार्य कराने पर अनेक दोषो की सम्भावना रहती है एव सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है ।

साधु-साध्वियों के एक स्थान मे ठहरने का प्रायश्चित्त—

८६ जे भिक्खू सचेले सचेलाण मज्झे सवसइ, सवसत वा साइज्जइ ।

८७. जे भिक्खू सचेले अचेलाण मज्झे सवसइ, सवसंत वा साइज्जइ ।

८८ जे भिक्खू अचेले सचेलाण मज्झे संवसइ, संवसंत वा साइज्जइ ।

८९. जे भिक्खू अचेले अचेलाण मज्झे संवसइ, सवसत वा साइज्जइ ।

८६ जो सचेल भिक्षु सचेल साध्वियो के साथ रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

८७ जो सचेल भिक्षु अचेल साध्वियो के साथ रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

८८ जो अचेल भिक्षु सचेल साध्वियो के साथ रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

८९. जो अचेल भिक्षु अचेल साध्वियो के साथ रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—१. बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक मे स्त्री-युक्त स्थान मे व साध्वी को पुरुष-युक्त स्थान मे ठहरने का निषेध है।

२. उत्तराध्ययनसूत्र अ० १६ तथा अ० ३२ मे भी विविक्त शय्या मे रहने का विधान है।

३. दशवैकालिकसूत्र अ० ८, गा० ५४ मे कहा है साधु को स्त्री से सदा भय बना रहता है।

४ उत्तराध्ययन ३२, गा० १६ मे कहा है कि- यदि भिक्षु को विभूषित देवागनाए भी सयम से विचलित न कर सकती हो तो भी उसे एकान्त हितकारी जानकर स्त्रीरहित स्थान मे ही रहना श्रेयस्कर है।

यद्यपि साधु-साध्वी दोनो ही सयम के पालक है फिर भी उन्हे एक स्थान मे निवास नही करना चाहिये।

सचेल साधु सचेल साध्वी के साथ रहे तो भी अनेक दोषो की सम्भावना रहती है तो अचेल का साथ रहना तो स्पष्ट ही अहितकर है।

निशीथ उद्देशक ९ मे साधु-साध्वी के सह-विहार का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है और यहाँ सचेल अचेल की चौभगी के साथ साधु-साध्वी के सहनिवास का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

ठाणाग सूत्र अ ५, सू. ४१७ मे कहा है कि आपवादिक परिस्थिति मे साधु-साध्वी एक साथ रहे तो भगवद्-आज्ञा का उल्लघन नही होता है।

ठाणाग सूत्र अ ५, सू. ४१८ मे कहा है कि अचेल निर्ग्रन्थ सचेल निर्ग्रन्थी के साथ रहे तो भगवद्-आज्ञा का उल्लघन नही होता है।

परिस्थिति के कारण ऐसा प्रसग आने पर गीतार्थ के नेतृत्व मे विवेकपूर्वक रहा जाता है।

उक्त स्थानाग-कथित दस कारणो से साधु साध्वियो के एक साथ रहने का प्रस्तुत सूत्र से प्रायश्चित्त नही आता है।

बृहत्कल्प उ. ३, सू १-२ मे साधु-साध्वी को एक दूसरे के उपाश्रय मे खडे रहना, बैठना, सोना आदि सभी कार्यों का निषेध है।

इस प्रकार बृहत्कल्प आदि सूत्रो का कथन उत्सर्ग विधि है, ठाणागसूत्र का कथन अपवाद विधि है एव प्रस्तुत सूत्र कथित प्रायश्चित्त परिस्थिति के बिना सह निवास करने का है, ऐसा समझना चाहिए ।

रात में लवणादि खाने का प्रायश्चित्त–

९०. जे भिक्खू परियासिय पिप्पलिं वा, पिप्पलि-चुण्ण वा, मिरीयं वा, मिरीय-चुण्ण वा, सिंगबेरं वा, सिंगबेर-चुण्णं वा, बिलं वा लोण, उब्भियं वा लोण आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ ।

९० जो भिक्षु रात्रि मे रखे हुए पीपर या पीपर का चूर्ण, मिर्च या मिर्च का चूर्ण, सोठ या सोठ का चूर्ण, बिडलवण या उद्भिन्नलवण को खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है, (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—लवण आदि के सग्रह का निषेध दशवै अ ६, गा १८-१९ मे है और आहारादि पास मे रखने का निषेध अन्य अनेक आगमो में है । जिसके लिए इसी उद्देशक के सूत्र ७७ का विवेचन देखें । रात्रि मे खाने से या रात्रि मे रखे हुए पदार्थ दिन मे खाने से भी मूलगुण रूप रात्रिभोजन-विरमण व्रत का भग होता है ।

इन सभी प्रकार के रात्रिभोजन का सूत्र ७३ से ७६ तक चौभगी के द्वारा प्रायश्चित्त कहा है ।

प्रस्तुत सूत्र मे पुन· रात्रिभोजन सम्बन्धी प्रायश्चित्त कहा गया है, इसका कारण यह है कि अशन, पान आदि पदार्थ भूख-प्यास को शात करने वाले होते है किन्तु लवणादि पदार्थों मे यह गुण नही होता है । इस भिन्नता के कारण इनका प्रायश्चित्त पृथक् कहा गया है ।

शब्दों की व्याख्या

पिप्पलिं—औषधि विशेष—पीपर । --प्राकृत हिन्दी कोष पृ. ५८

मिरीयं—मिर्च । यह अनेक प्रकार की होती है—लाल मिर्च, काली मिर्च, सफेद मिर्च ।

अनेक प्रतियो मे 'मिरीय वा मिरीय-चुण्ण वा' ये शब्द नही मिलते है किन्तु चूर्णिकार के सामने ये शब्द मूल पाठ मे थे, ऐसा प्रतीत होता है, अत इन शब्दो को मूल पाठ मे रखा गया है ।

पीपर और मिर्च ये दोनो सचित्त पदार्थ हैं, किन्तु अनेक जगह ये शस्त्रपरिणत भी मिलते है ।

सिंगबेर—अदरख । सूखने पर इसे सोठ कहा जाता है, जो अचित्त होती है ।

इन तीनो का अचित्त चूर्ण भी अनेक जगह स्वाभाविक रूप से उपलब्ध हो सकता है ।

बिलं वा लोणं—पकाया हुआ नमक ।

उब्भियं वा लोणं—अन्य शस्त्रपरिणत नमक ।

ये दोनों प्रकार के नमक अचित्त है । आगम में सचित्त नमक के साथ इन दो प्रकार के नमक का नाम नही आता है । दशवै अ ३, गा ८ में ६ प्रकार के सचित्त नमक ग्रहण करने व खाने को अनाचार कहा है, यथा—

"सोवच्चले सिंधवे लोण, रोमालोणे य आमए ।
सामुद्दे पसुखारे य, काला लोणे य आमए ।।"

आचा. श्रु. २, अ. १, उ १० मे इन दो प्रकार के नमक को खाने का विधान है ।

दशवै अ ६, गा १८ मे इन दो के सग्रह का निषेध है और प्रस्तुत सूत्र मे रात्रि मे रखे हुए को खाने का प्रायश्चित्त है । इन स्थलो के वर्णन से यही स्पष्ट होता है कि उपरोक्त छ प्रकार के सचित्त नमक मे से कोई नमक अग्नि-पक्व हो तो उसे 'विडलवण' कहते है और अन्य शस्त्रपरिणत हो तो उसे 'उद्भिन्न नमक' कहते है ।

भाष्यकार यहाँ आहार एव अनाहार योग्य पदार्थो का वर्णन करते हुए बताते है कि ये सूत्रोक्त पदार्थ भूख-प्यास को शात करने वाले न होते हुए भी आहार मे मिलाये जाते है और आहार को सस्कारित करते है, अत ये भी आहार के उपकारक होने से आहार ही है ।

औषधियाँ आहार व अनाहार मे दो प्रकार की कही है—

१ जिन्हे खाने पर कुछ भी अनुकूल स्वाद आए वे आहार रूप है ।

२ जो खाने मे अनिच्छनीय एव अरुचिकर हो वे अनाहार है, यथा—त्रिफला आदि औषधियाँ, मूत्र, निम्बादि की छाल, निम्बोली तथा और भी ऐसे अनेक पत्र, पुष्प, फल, बीज आदि समझ लेने चाहिए ।

अथवा भूख मे जो कुछ भी खाया जा सकता है वह सब आहार है ।

यह व्याख्या एक विशेष अपेक्षा से ही समझनी चाहिए । क्योकि व्यव उ ९ के अनुसार रात्रि मे स्वमूत्र पीना भी निषिद्ध है, जिसे भाष्य मे अनाहार कहा गया है । अत इन त्रिफला आदि पदार्थो को भी रात्रि मे रखना, खाना या उपवास आदि मे अनाहार समझकर खाना आगम सम्मत नही समझना चाहिए ।

विवेचन के अन्त मे भाष्यकार ने भी आहार व अनाहार रूप पदार्थो को सामान्यतया रात्रि मे रखने और खाने का निषेध किया है । आहार के रखने पर गुरुचौमासी और अनाहार के रखने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है ।

बालमरणप्रशंसा-प्रायश्चित्त—

९१—जे भिक्खू १. गिरिपडणाणि वा, २. मरु-पडणाणि वा, ३. भिगुपडणाणि वा, ४. तरुपडणाणि वा, ५ गिरिपक्खदणाणि वा, ६. मरुपक्खदणाणि वा, ७. भिगुपक्खदणाणि वा, ८. तरुपक्खदणाणि वा, ९. जलपवेसाणि वा, १०. जलणपवेसाणि वा, ११. जलपक्खंदणाणि वा, १२ जलण-पक्खदणाणि वा, १३. विसभक्खणाणि वा, १४. सत्थोपाडणाणि वा, १५. वलयमरणाणि वा, १६. वसट्ट-मरणाणि वा, १७ तब्भव-मरणाणि वा, १८. अंतोसल्ल-मरणाणि वा, १९. वेहाणस-मरणाणि वा, २०. गिद्धपुट्ठ-मरणाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि बालमरणाणि पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ । तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

९१—जो भिक्षु १ पर्वत से दृश्य स्थान पर गिर कर मरना, २ पर्वत से अदृश्य स्थान पर गिर कर मरना, ३ खाई-कुए आदि मे गिरकर मरना, ४ वृक्ष से गिरकर मरना, ५ पर्वत से दृश्य स्थान पर कूद कर मरना, ६ पर्वत से अदृश्य स्थान पर कूदकर मरना, ७ खड्ढे कुए आदि मे कूद कर मरना, ८ वृक्ष से कूदकर मरना, ९ जल मे प्रवेश करके मरना, १० अग्नि मे प्रवेश करके मरना, ११ जल मे कूदकर मरना, १२ अग्नि मे कूदकर मरना, १३ विषभक्षण करके मरना, १४ तलवार आदि शस्त्र से कटकर मरना, १५ गला दबाकर मरना, १६ विरह-व्यथा से पीडित होकर मरना, १७. वर्तमान भव को पुन प्राप्त करने के सकल्प से मरना, १८ तीर भाला आदि से विध कर मरना, १९ फासी लगाकर मरना, २० गृद्ध आदि से शरीर का भक्षण करवाकर मरना, इन आत्मघात रूप बाल-मरणो की अथवा अन्य भी इस प्रकार के बाल-मरणो की प्रशसा करता है या प्रशसा करने वाले का अनुमोदन करता है, उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—भगवतीसूत्र श १३, उ ७, सू ८१ मे तथा ठाणागसूत्र अ. २, उ ४, सू ११३ मे इन २० प्रकार के मरणो को १२ प्रकार के मरण मे समाविष्ट किया है।

निशीथचूर्णि मे भी कहा गया है—इन बारह प्रकार के बालमरणो मे से किसी भी बालमरण की प्रशसा करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

प्रारम्भ के चार मरणो मे—"गिरकर मरने" की समानता होने से एक मरणभेद होता है, आगे के चार मरणो मे—"कूदकर गिरने" की समानता होने से उनका भी एक भेद होता है। इसी तरह नवमे और दसवे मरण का एक तथा ग्यारहवे तथा बारहवे मरण का एक भेद होता है। इस प्रकार बारह मरणो के बदले ४ मरण भेद हो जाते है और शेष विषभक्षणादि आठ मरण के आठ भेद गिनने से कुल १२ भेदो का समन्वय हो जाता है। किन्तु मूल पाठो को देखने से यह ज्ञात होता है कि कूदकर गिरने और सामान्य गिरने को एक ही माना गया है तथा "मरु" और "भिगु" इन दोनो को भी अलग विवक्षित न करके "गिरि" मे ही समाविष्ट किया है। इस प्रकार सूत्रोक्त आठ भेदो को दो भेद—'गिरि-पडण, तरु-पडण मे' समाविष्ट किया है तथा जल और अग्नि सम्बन्धी चार भेदो को दो भेदो मे समाविष्ट किया है। जिससे कुल १२ भेद किये गये है। अत १२ व २० दोनो भेद निर्विरोध है, ऐसा समझना चाहिये।

अन्तिम दो मरणो को ठाणाग अ २, सू ११३ मे विशिष्ट कारण से अनुज्ञात कहा है—१ वेहानसमरण, २ गृद्धस्पृष्टमरण तथा आचा श्रु १, अ ८, उ ४ मे भी ब्रह्मचर्यरक्षा के लिये वेहानसमरण स्वीकार करने का विधान है।

ये १२ अथवा २० प्रकार के बालमरण आत्मघात करने के विभिन्न तरीके है। ये अज्ञानियो द्वारा कषायवश स्वीकार किये जाने से बालमरण कहे गये है। किन्तु सयम या शीलरक्षार्थ वेहानस-मरण से या अन्य किसी तरीके से शरीर का त्याग करने पर ये बालमरण नही कहे जाते है।

कतिपय शब्दों की व्याख्या—

गिरी-मरु-जत्थ पव्वए आरूढेहिं अहो पवायट्ठाणं दीसइ सो "गिरी" भण्णइ, अदिस्समाणे मरु"।

भिगु—पवीतडी । आदि सद्दातो विज्जुक्खायं, अगडो वा भण्णइ ।

पडण-पक्खंदण—ठिय-णिसन्न-णिवण्णस्स अणुप्पइत्ता पवडमाणस्स "पवडणं" । उप्पइत्ता जो पडइ "पक्खंदणं" । रुक्खाओ वा समपादठितस्स अणुप्पइत्ता पवडमाणस्स पवडणं । रुक्खंट्ठियस्स जं उप्पइत्ता पडणं तं "पक्खंदणं" ।

वलयमरण—गलं वा अप्पणो वलेइ ।

तब्भवमरण—जम्मि भवे वट्टइ तस्स भवस्स हेउसु वट्टमाणे । आउयं बंधित्ता पुणो तत्थ उववज्जिउकामस्स जं मरण तं तब्भवमरण ।

वसट्टमरण—इंदियविसएसु रागदोसवसट्टो मरंतो "वसट्टमरणं" मरइ ।

आत्मघात रूप बालमरणो का कथन होने से वशार्तमरण का आशय इस प्रकार जानना उपयुक्त है कि विरह या वियोग से दु खी होकर छाती या मस्तक मे आघात लगाकर मरना । अथवा किसी इच्छा-सकल्प के पूर्ण न होने पर उसके निमित्त से दु खी होकर तडफ-तडफ कर मरना ।

गिद्धपुट्ठमरणं—गिद्धेहिं पुट्ठं-गिद्धपुट्ठ, गृद्धैर्भक्षितव्यमित्यर्थः । तं गोमाइकलेवरे अत्ताण पक्खिवित्ता गिद्धेहिं अप्पाणं भक्खावेइ ।

अहवा पिट्ठ-उदर-आदिसु अलत्तपुडगे दाउ अप्पाणं गिद्धेहिं भक्खावेइ ।

इन बालमरणो की प्रशसा करने पर सुनने वाला कोई सोचे कि "अहो ये आत्मार्थी" साधु इन मरणो की प्रशसा करते है तो ये वास्तव मे करणीय हैं, इनमे कोई दोष नही है । सयम से खिन्न कोई साधु इस प्रकार सुनकर बालमरण स्वीकार कर सकता है । इत्यादि दोषोत्पत्ति के कारण होने मे भिक्षु को इन मरणो की प्रशसा नही करनी चाहिये ।

जब इन मरणो की प्रशसा करना ही अकल्पनीय है तो इन मरणो का सकल्प या इनमे प्रवृत्ति करने का निषेध तो स्वत सिद्ध हो जाता है । अत मुमुक्षु साधक इन मरणों की कदापि चाहना न करे अपितु कारण उपस्थित होने पर समभाव, शान्ति की वृद्धि हेतु साधना करे एव सलेखना स्वीकार कर भक्तप्रत्याख्यान, इगिणीमरण या पादपोपगमनमरण रूप पडितमरण को स्वीकार करे । ऐसा करने से सयम की शुद्ध आराधना हो सकती है । किन्तु दु खो से घबराकर या तीव्र कषाय से प्रेरित होकर बालमरण स्वीकार करने से पुन पुन. दु खपरम्परा की ही वृद्धि होती है ।

शीलरक्षा हेतु कभी फासी लगाकर मरण करना पडे तो वह आत्मा के लिए अहितकर न होकर कल्याण का एव सुख का हेतु होता है, ऐसा—आचा श्रु १, अ ८, उ ४ मे कहा गया है ।

ग्यारहवें उद्देशक का सारांश—

सूत्र १-२	लोहे आदि के पात्र बनाना व रखना
सूत्र ३-४	लोहे आदि के बधनयुक्त पात्र करना व रखना
सूत्र ५	पात्र के लिये अर्द्धयोजन से आगे जाना
सूत्र ६	कारणवश भी अर्द्धयोजन के आगे से सामने लाकर दिये जाने वाला पात्र लेना ।

सूत्र ७	धर्म की निन्दा करना
सूत्र ८	अधर्म की प्रशसा करना
सूत्र ९-६२	गृहस्थ के शरीर का परिकर्म करना
सूत्र ६३-६४	स्वय को या अन्य को डराना
सूत्र ६५-६६	स्वय को या अन्य को विस्मित करना
सूत्र ६७-६८	स्वय को या अन्य को विपरीत रूप मे दिखाना या कहना
सूत्र ६९	जो सामने हो उसके धर्मप्रमुख की, सिद्धान्तो की या आचार की प्रशसा करना अथवा उस व्यक्ति की झूठी प्रशसा करना
सूत्र ७०	दो विरोधी राज्यो के बीच पुन पुन गमनागमन करना
सूत्र ७१	दिवसभोजन की निन्दा करना
सूत्र ७२	रात्रिभोजन की प्रशशा करना
सूत्र ७३	दिन मे लाया आहार दूसरे दिन खाना
सूत्र ७४	दिन मे लाया आहार रात्रि मे खाना
सूत्र ७५	रात्रि मे लाया आहार दिन मे खाना
सूत्र ७६	रात्रि मे लाया आहार रात्रि मे खाना
सूत्र ७७	आगाढ परिस्थिति के बिना रात्रि मे अशनादि रखना
सूत्र ७८	आगाढ परिस्थिति से रखे आहार को खाना
सूत्र ७९	सखडी के आहार को ग्रहण करने की अभिलाषा से अन्यत्र रात्रिनिवास करना
सूत्र ८०	नैवेद्य-पिड ग्रहण करके खाना
सूत्र ८१-८२	स्वच्छदाचारी की प्रशसा करना, उसे वन्दन करना
सूत्र ८३-८४	अयोग्य को दीक्षा देना या बडी दीक्षा देना
सूत्र ८५	अयोग्य से सेवाकार्य कराना
सूत्र ८६-८९	अचेल या सचेल साधु का सचेल या अचेल साध्वियो के साथ रहना।
सूत्र ९०	पर्युषित (रात रखे) चूर्ण, नमक आदि खाना
सूत्र ९१	आत्मघात करने वालो की प्रशसा करना
	इत्यादि दोषस्थानो का सेवन करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

इस उद्देशक के २० सूत्रों के विषय का कथन निम्न आगमों में है, यथा—

सूत्र १-४ लोहे आदि के पात्र रखने एव उनके बधन करने का निषेध।

—आचा. श्रु. २, अ ६, उ १

सूत्र ५ अर्द्धयोजन के आगे पात्र के लिये जाने का निषेध।

—आचा. श्रु २, अ ६, उ १

सूत्र ७ तीर्थंकर व उनके धर्म का अवर्णवाद करने वाला महामोहनीय कर्म का बंध करता है। —दशा द ९, गा २३-२४

सूत्र ८ 'परपासडपसंसा' यह सम्यक्त्व का अतिचार है। —उपा अ १

सूत्र ७० विरोधी राज्यो के बीच बारबार गमनागमन करना ।

—बृहत्कल्प उ १, सू ३९

सूत्र ७३,७६,७८ रात्रि मे आहार रखना या खाना अनेक सूत्रो में निषिद्ध है ।

—स्थल के लिये विवेचन देखें ।

सूत्र ८३-८४ दीक्षा या बडी दीक्षा आदि के अयोग्य का कथन । —बृहत्कल्पसूत्र उ ४

सूत्र ८६-८९ साध्वी के स्थान पर साधु को रहने आदि का निषेध ।

—बृहत्कल्पसूत्र उ ३

सूत्र ९० नमक आदि के सग्रह का निषेध । —दश अ ६, गा १८-१९

इस उद्देशक के ७१ सूत्रो के विषय का कथन अन्य आगमो मे नहीं है, यथा—

सूत्र ६ विकट स्थिति मे अर्द्धयोजन के आगे से लाया पात्र लेना ।

सूत्र ६-६२ गृहस्थ का शारीरिक परिकर्म करना ।

सूत्र ६३-६८ स्व-पर को भयभीत करना, विस्मित करना, विपरीत अवस्था मे करना या कहना ।

सूत्र ६९ जो जिस धर्मवाला हो उसके सामने उसके धर्म तत्त्वों की प्रशसा करना अथवा उसकी झूठी प्रशसा करना ।

सूत्र ७१-७२ दिवसभोजन की निन्दा व रात्रिभोजन की प्रशसा करना ।

सूत्र ७७ अनागाढ परिस्थिति मे रात्रि मे अशनादि रखना ।

सूत्र ७९ सखडी के आहारार्थ उपाश्रय का परिवर्तन करना ।

सूत्र ८० नैवेद्यपिड खाना ।

सूत्र ८१-८२ स्वच्छदाचारी की प्रशसा, वदना करना ।

सूत्र ८५ अयोग्य से सेवाकार्य कराना ।

सूत्र ९१ आत्मघात (बालमरणो) की प्रशसा करना ।

।। ग्यारहवां उद्देशक समाप्त ।।

बारहवां उद्देशक

त्रस प्राणियो के बधन-विमोचन का प्रायश्चित्त—

१—जे भिक्खू कोलुण-वडियाए अण्णयर तसपाणजाय, १ तण-पासएण वा, २. मुंज-पासएण वा, ३. कट्ठ-पासएण वा, ४. चम्म-पासएण वा, ५. वेत्त-पासएण वा, ६. रज्जू-पासएण वा, ७. सुत्त-पासएण वा बधइ, बधत वा साइज्जइ ।

२—जे भिक्खू कोलुण-वडियाए अण्णयर तसपाणजाय तण-पासएण वा जाव सुत्त-पासएण वा बद्धेलय मुंचइ मुंचत वा साइज्जइ ।

१—जो भिक्षु करुणा भाव से किसी त्रस प्राणी को १ तृण के पाश से, २. मुंज के पाश से, ३ काष्ठ के पाश से, ४. चर्म के पाश से, ५ वेत्र के पाश से, ६ रज्जू के पाश से, ७ सूत्र के पाश से बाधता है या बाधने वाले का अनुमोदन करता है ।

२—जो भिक्षु करुणा भाव से किसी त्रस प्राणी को तृण-पाश से यावत् सूत्र-पाश से बधे हुए को खोलता है या खोलने वाले का अनुमोदन करता है । [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।]

विवेचन—कोलुण कारुण्य, अणुकम्पा । —चूर्णि

चूर्णिकार ने कोलुण शब्द का अर्थ करुणा या अनुकम्पा किया है । करुणा दो प्रकार की होती है, यथा—

१ शय्यातर आदि [गृहस्वामी] के प्रति करुणा भाव ।
२ किसी त्रस प्राणी के प्रति करुणा भाव ।

१ भिक्षु यदि पशु आदि के बाडे के निकट ही ठहरा हो और गृहस्वामी किसी कार्य के लिये कही चला जाये, उस समय कोई पशु बाडे मे से निकलकर बाहर जा रहा हो तो उसे बाधना अथवा गृहस्वामी बाहर जाते समय यह कहे कि "अमुक समय पर इन पशुओ को खोल देना या बाहर से अमुक समय पशु आयेंगे तब उन्हे बाध देना" तो उन पशुओ को बाधना या खोलना, यह शय्यातर पर किया गया करुणा भाव है ।

२ बधा हुआ पशु बधन से मुक्त होने के लिये छटपटा रहा हो, उसे बधन से मुक्त कर देना अथवा सुरक्षा के लिये खुले पशु को नियत स्थान पर बाध देना यह पशु के प्रति करुणा भाव है ।

भिक्षु मुधाजीवी होता है तथा नि स्पृह भाव से सयम पालन करता है अत करुणा भाव से गृहस्वामी का निजी कार्य करना, यह उसकी श्रमण समाचारी से विपरीत है ।

पशु को बाधने पर वह बधन से पीडित हो या आकुल-व्याकुल हो तो तज्जन्य हिसा दोष लगता है । खोलने पर कुछ हानि कर दे, निकलकर कही गुम जाये या जगल मे चला जाये और वहा कोई दूसरा पशु उसे खा जाये या मार डाले तो भी दोष लगता है ।

भिक्षु को ऐसे समाधि भंग करने वाले स्थान पर ठहरना ही नही चाहिये। कारणवश ठहरना पड़े तो निस्पृह भाव से रहे।

ग्यारहवे उद्देशक मे सेवा भावना से या मोह भाव से गृहस्थ के कार्य करने का गुरु-चातुर्मासिक प्रायश्चित्त कहा गया है। पशु आदि को खोलना-बाधना भी गृहस्थ के ही कार्य हैं। फिर भी किसी विशेष परिस्थिति मे भिक्षु करुणाभाव से कोई गृहस्थ के कार्य कर ले तो उसे प्रस्तुत सूत्र से लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है और गृहस्थ के प्रति अनुराग या मोह से बाधना-खोलना आदि कोई भी सांसारिक कृत्य करे तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

यद्यपि पशु आदि के खोलने-बाधने आदि के कार्य सयम समाचारी से विहित नही है तथापि यहा करुणा भाव मे खोलने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त न कह कर लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त कहा है।

अनुकम्पा भाव रखना यह सम्यक्त्व का मुख्य लक्षण है, फिर भी भिक्षु ऐसे अनेक गृहस्थ, जीवन के कार्यों मे न उलझ जाये इसलिये उसके सयम जीवन की अनेक मर्यादाए है। भिक्षु के पास आहार या पानी आवश्यकता मे अधिक हो तो उसे परठने की स्थिति होने पर भी किसी भूखे या प्यासे व्यक्ति को मागने पर या बिना मागे देना नही कल्पता है। क्योकि इस प्रकार देने की प्रवृत्ति से या प्रस्तुत सूत्र कथित प्रवृत्ति करने से क्रमशः भिक्षु अनेक कृत्यो मे उलझ कर सयम साधना के मुख्य लक्ष्य से दूर हो सकता है। उत्तरा अ ९ गा ४० मे नमिराजर्षि शक्रेन्द्र को दान की प्रेरणा के उत्तर मे कहते है—

"तस्सावि सजमो सेओ, अदितस्स वि किचणं ॥"

अर्थात्-कुछ भी दान न करते हुए गृहस्थ के महान् दान से भी सयम श्रेष्ठ है।

अनुकम्पा भाव की सामान्य परिस्थिति के प्रायश्चित्त मे एव विशेष परिस्थिति के प्रायश्चित्त मे भी अन्तर होता है जो प्रायश्चित्तदाता गीतार्थ के निर्णय पर ही निर्भर रहता है।

यदि कोई पशु या मनुष्य मृत्यु सकट मे पडे हो और उन्हे कोई बचाने वाला न हो, ऐसी स्थिति मे यदि कोई भिक्षु उन्हे बचा ले तो उसे छेद या तप प्रायश्चित्त नही आता है। केवल गुरु के पास उसे आलोचना करना आवश्यक होता है।

यदि उस अनुकम्पा की प्रवृत्ति मे बाधना, खोलना आदि गृहकार्य, आहार-पानी देना आदि मर्यादाभग के कार्य या जीवविराधना का कोई कार्य हो जाये तो लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने संयमसाधना काल मे तेजोलेश्या से भस्मभूत होने वाले गोशालक को अपनी शीतलेश्या से बचाया और केवलज्ञान के बाद इस प्रकार कहा कि "मैंने गोशालक की अनुकम्पा के लिये शीतलेश्या छोडी, जिससे वेश्यायन बालतपस्वी की तेजोलेश्या प्रतिहत हो गई। —भग श १५

अत प्रस्तुत सूत्र मे करुणा भाव या अनुकम्पा भाव का प्रायश्चित्त नही है किन्तु उसके साथ की गई गृहस्थ की प्रवृत्ति या सयममर्यादा भग की प्रवृत्ति का प्रायश्चित्त है, ऐसा समझना चाहिये।

प्रत्याख्यान-भंग करने का प्रायश्चित्त—

३—जे भिक्खू अभिक्खणं-अभिक्खण पच्चक्खाण भजइ भजंत वा साइज्जइ ।

३—जो भिक्षु बारबार प्रत्याख्यान भग करता है या भग करने वाले का अनुमोदन करता है । [उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ।]

विवेचन—बारबार प्रत्याख्यान के भग करने को दशा द २ मे शबलदोष कहा गया है। बारम्बार अर्थात् अनेक बार, यहा भाष्यकार ने कहा है कि तीसरी बार प्रत्याख्यान भग करने पर यह सूत्रकथित प्रायश्चित्त आता है ।

यहा प्रत्याख्यान से उत्तरगुण रूप "नमुक्कार सहिय" आदि प्रत्याख्यान का अधिकार समझना चाहिये । अर्थात् 'नमुक्कार सहिय" आदि का सकल्प पूर्वक तीसरी बार भग करने पर यह प्रायश्चित्त आता है ।

प्रत्याख्यान-भंग करने से होने वाले दोष—

"अपच्चओ य अवण्णो, पसग दोसो य अदढ़ता धम्मे ।
माया य मुसावाओ, होइ पइण्णाइ लोवो य ।।

निशी भाष्य, गा. ३९८८

१ "जो उत्तरगुण-प्रत्याख्यान का बारम्बार भग करता है, वह मूलगुण-प्रत्याख्यानो का भी भग करता होगा" इस प्रकार की अप्रतीति = अविश्वास का पात्र होता है ।

२ स्वय उसका या सघ का अवर्णवाद होता है ।

३ एक प्रत्याख्यान के भग करने से अन्य मूलगुण-प्रत्याख्यानो के भग होने की सम्भावना रहती है तथा अनेक दोषो की परम्परा बढती है ।

४ अन्य प्रत्याख्याना मे तथा श्रमणधर्म के पालन मे भी दृढता नही रहती है ।

५ प्रत्याख्यान कुछ करता है और आचरण कुछ करता है, जिससे माया का सेवन होता है । यथा—आयबिल का प्रत्याख्यान करके एकाशना कर ले ।

६ कहता कुछ अन्य है और करता कुछ अन्य है, अत मृषावाद दोष लगता है । यथा—'मेरे आज एकाशन है, ऐसा कह कर दो बार खा लेता है ।

७ अपने उस अवगुण को छिपाने के लिये कभी माया पूर्वक मृपा भाषण कर सकता है ।

८ प्रत्याख्यान का भग होने पर सयम की विराधना होती है ।

९ बारम्बार प्रत्याख्यान भग करने से कदाचित् कोई देव रुष्ट हो जाए तो विक्षिप्तचित्त कर सकता है ।

प्रत्याख्यान के प्रति उपेक्षा भाव से एव सकल्प पूर्वक अनेक बार प्रत्याख्यान भग करने का यह प्रायश्चित्त है । किन्तु कदाचित् प्रत्याख्यानसूत्र मे कथित आगारो का सेवन किया जाये तो प्रत्याख्यान भग नही होता है किन्तु उसकी आलोचना गीतार्थ भिक्षु के पास अवश्य कर लेनी

चाहिये। कभी विशिष्ट आगार सेवन के पूर्व भी गीतार्थ की आज्ञा लेना आवश्यक होता है। अगीतार्थ [अबहुश्रुत] और अपरिणामी या अतिपरिणामी भिक्षु आगार-सेवन और अपवाद-सेवन के निर्णय करने मे अयोग्य होते हैं।

आगार-सेवन या अपवाद-सेवन मे क्षेत्र, काल या व्यक्ति का ध्यान रख कर विवेकपूर्वक प्रवृत्ति करना भी आवश्यक होता है।

विकट परिस्थिति मे भी गीतार्थ के नेतृत्व में दृढता पूर्वक प्रत्याख्यान का पालन किया जाय एवं आगारो का सेवन न किया जाय तो वह स्वय के लिये तो महान् लाभ का कारण होता ही है, साथ ही उससे जिनशासन की भी प्रभावना होती है।

अत भिक्षु को एक बार भी प्रत्याख्यान भग न करते हुए दृढता पूर्वक उसका पालन करना चाहिये।

प्रत्येककाय-संयुक्त आहारकरण-प्रायश्चित्त—

४—जे भिक्खू परित्तकाय-सजुत्तं आहारं आहारेइ, आहारेंत वा साइज्जइ।

४—जो भिक्षु प्रत्येककाय से मिश्रित आहार खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—चतुर्थ उद्देशक मे सचित्त धान्य और बीज खाने का लघुमासिक प्रायश्चित्त कहा है। दशवे उद्देशक मे फूलण आदि अनतकाय से मिश्रित आहार करने का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है और प्रस्तुत सूत्र मे प्रत्येककाय-सयुक्त आहार खाने का लघु-चौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

पूर्वोक्त सूत्रो का विवेचन उन-उन उद्देशकों मे किया गया है, प्रत्येककाय-मिश्रित आहार ये है—

१ सचित्त नमक से युक्त आहार, जिसमे नमक शस्त्रपरिणत न हुआ हो।

२ सचित्त पानी युक्त छाछ या आम का रस आदि, ये जब तक शस्त्रपरिणत नही हुए हो।

३ अग्नि पर से उतार लेने के बाद व्यजन मे धनिया पत्ती आदि डाले गये हो।

यहाँ असख्य जीव युक्त पदार्थो का कथन है, क्योकि धान्य व बीज रूप प्रत्येककाय के पदार्थों का कथन चौथे उद्देशक मे हो चुका है। अत सचित्त नमक, पानी और कुछ वनस्पतियो से युक्त खाद्य पदार्थ हो और उन सचित्त पदार्थो के शस्त्रपरिणत होने योग्य वह द्रव्य न हो या समय न बीता हो तो ऐसे खाद्य पदार्थ को प्रत्येककाय-सयुक्त आहार कहा गया है। ग्रहण करने के बाद ज्ञात होने पर ऐसा आहार नही खाना चाहिये और खाने के बाद या कुछ खाने के बाद ज्ञात हो जाये तो शेष आहार को परठ कर उसका प्रायश्चित्त ले लेना चाहिये।

चूर्णिकार ने अनेक प्रकार के सचित्त पत्र, पुष्प, फल आदि से भी युक्त अशनादि का होना बताया है तथा कई चीजो मे तत्काल नमक डाल कर गृहस्थो के खाने के रिवाज का कथन किया है। वैसे पदार्थ साधु के द्वारा खाने पर जीवविराधना होने से प्रथम महाव्रत दूषित होता है।

जानकर खाने पर या बिना जाने खाने पर अथवा प्रबल कारण से खाने पर प्रायश्चित्त भिन्न-भिन्न आते है, इनका निर्णय गीतार्थ पर निर्भर होता है, उनकी एक प्रायश्चित्त-तालिका प्रथम उद्देशक के प्रारम्भ में दी गई है।

सरोम-चर्म-परिभोग-प्रायश्चित्त—

५—जे भिक्खू सलोमाइं चम्माइं अहिट्ठइ, अहिट्ठेंतं वा साइज्जइ ।

५—जो भिक्षु रोम [केश] युक्त चर्म का उपयोग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।]

विवेचन—सामान्यतया [उत्सर्गमार्ग मे] साधु को चर्म रखना नही कल्पता है, किसी कारण से आवश्यकता पर्यन्त रखा जाना एव उपयोग मे लेना विहित है । वृद्धावस्था मे शरीर की मज्जा क्षीण होने पर कमर आदि अवयवो की अस्थियो से त्वचा का घर्षण होता है अथवा कुष्ठ, अर्श आदि रोग हो जाये तो चर्म का उपयोग किया जा सकता है ।

चर्म साधु की औधिक उपधि नही है, अत बृहत्कल्पसूत्र, उद्देशक ३ मे कहे गये इस विषय के सभी सूत्र अपवादिक स्थिति की अपेक्षा से ही कहे गये है, ऐसा समझना चाहिये ।

उन सूत्रों का अभिप्राय यह है कि विशेष परिस्थिति मे उपयोग मे आने योग्य कटा हुआ रोम-रहित चर्मखण्ड साधु-साध्वी ले सकते है और आवश्यकता के अनुसार रख सकते है । किसी विशेष परिस्थिति मे साधु सरोमचर्म भी सूत्रोक्त विधि के अनुसार उपयोग मे ले सकता है, किन्तु अधिक समय तक नही रख सकता है । साध्वी के लिये सरोमचर्म सर्वथा निषिद्ध है ।

सरोमचर्म-प्रयोग करने मे निम्न दोष हैं, यथा—

१ रोमो मे अनेक सूक्ष्म प्राणी उत्पन्न हो जाते है ।
२ प्रतिलेखना अच्छी तरह नही हो पाती है ।
३ वर्षा मे कुथुए या फूलन हो जाती है ।
४ धूप मे रखने से उन जीवो की विराधना होती है ।

किसी परिस्थिति मे सरोम-चर्म लाना पडे तो जो कुभकार, लोहार आदि के दिन भर बैठने के काम आ रहा हो और रात्रि मे उनके यहाँ अनावश्यक हो तो वह लाना चाहिए और रात्रि मे रख कर वापिस दे देना चाहिए, क्योकि कुभकार, लुहार आदि के दिन भर अग्नि के पास काम करने के कारण उसमे एक रात्रि तक जीवोत्पत्ति सभव नही रहती । अत एक रात्रि से अधिक रखने का निषेध किया है ।

चूर्णिकार ने बताया है कि साधु के लिए यह सूत्रोक्त प्रायश्चित्त समझना चाहिए, किन्तु साध्वी सरोम चर्म का उपयोग करे तो गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

साध्वी के लिये पूर्ण निषेध का कारण बताते हुए व्याख्याकार कहते है कि सरोम चर्म मे पुरुष जैसे स्पर्श का अनुभव होता है, अत साध्वी के लिये वह सर्वथा वर्ज्य है ।

किन्तु रोम रहित चर्म विशेष कारण होने पर साधु-साध्वी ले सकते है और नियत समय तक रख सकते है । उसके रखने का सूत्र मे प्रायश्चित्त नही कहा गया है ।

भाष्यकार ने इस सूत्र के विवेचन मे रोम रहित चर्म रखने पर साधु को गुरुचौमासी और साध्वी को लघुचौमासी प्रायश्चित्त आने का कहा है, वह अकारण रखने की अपेक्षा से कहा गया है । क्योंकि कोई भी औपग्रहिक उपधि अकारण रखना प्रायश्चित्त योग्य है ।

सरोम चर्म के अन्दर पोल होने से भाष्यकार ने यहाँ अन्य भी पोल युक्त पुस्तक, तृण आदि का विस्तृत वर्णन किया है। जिसका साराश इस प्रकार है--

१ पुस्तकपचक, २ तृणपचक, ३ दुष्प्रतिलेख्य वस्त्रपचक, ४ अप्रतिलेख्य वस्त्रपचक, ५ चर्मपचक।

१ पुस्तकपंचक—

१ गडी पुस्तक—चौडाई, मोटाई मे समान अर्थात् चौरस लबी पुस्तक।

२. कच्छपी पुस्तक—बीच मे चौडी, किनारे कम चौडी, अल्प मोटाई वाली।

३ मुष्टि पुस्तक—चार अगुल विस्तार मे वृत्ताकार गोल अथवा चार अगुल लबी-चौडी समचौरस।

४ सपुट-फलक पुस्तक—वृक्ष आदि के फलक से निर्मित पुस्तक।

५ छेदपाटी पुस्तक—ताड आदि के पत्तो से बनी पुस्तक, कम चौडी तथा लम्बाई व मोटाई मे अधिक एव बीच मे एक, दो या तीन छिद्र वाली।

ये सभी पुस्तक झुषिर [पोलार] युक्त होने से दुष्प्रतिलेख्य है, अत अकल्पनीय है।

२ तृणपचक—

१ शालि, २ व्रीहि, ३ कोद्रव, ४ रालक [कगु] ये चार पराल रूप तृण और ५ आरण्यक--जगली श्यामाकादि तृण।

ये भी पोल युक्त होते है। इन तृणो का वर्णन उत्तराध्ययनसूत्र अ २३, गा १७ मे इस प्रकार है—

"पलाल फासुय तत्थ, पचम कुस तणाणि य।
गोयमस्स निसिज्जाए, खिप्प सपणामए॥"

टीका- गोयमस्य उपवेशनाथ प्रासुक- निर्बीज चतुर्विध पलाल, पचमानि कुशतृणानि, चकारात् अन्यान्यपि साधुयोग्यानि तृणानि समर्पयति।

इस गाथा मे इन्हे प्रासुक कहा है। इन्ही पाच को भाष्यकार ने पोल युक्त होने से दुष्प्रतिलेख्य कहा है और उसका लघुचौमासी प्रायश्चित्त भी कहा है।

इन परालो का पोल युक्त होना प्रत्यक्षसिद्ध है, फिर भी उक्त गाथा मे इन्हे प्रासुक कहा है। इसका कारण यह है कि गृहस्थ के उपयोग मे आ जाने से वे प्रासुक हो जाते है।

आगम युग मे पराल, दर्भ आदि का उपयोग साधु व श्रावक दोनो ही करते थे, ऐसा वर्णन अनेक आगमो मे उपलब्ध है। वर्तमान मे इनका उपयोग बहुत कम हो गया है।

३. दुष्प्रतिलेख्य वस्त्रपचक—

१ कोयवि- रूई लगे हुए वस्त्र।

२. प्रावारक—ऊन लगे हुए नेपाल आदि के बडे कम्बल।

३ दाढिगालि— दशियो अर्थात् फलियो युक्त वस्त्र।

४. पूरित —स्थूल सन-सूत्रमय वस्त्र-गलीचा आदि ।

५ विरलिका—द्विसरा सूत्रमय वस्त्र ।

४. अप्रतिलेख्य वस्त्र-पंचक—

१. उपधान—हंस रोम आदि से भरा सिरहाना, तकिया ।

२ तूली —सस्कारित कपास, अर्कतूल आदि से भरा सिरहाना ।

३ आलिंगनिका—पुरुष प्रमाण लम्बा व गोल गद्दा जिस पर करवट से सोते समय पाव हाथ घुटने कुहनी आदि रखे जा सके ।

४. गडोपधान--गलमसूरिका—जो करवट मे सोते समय मु ह के नीचे रखा जाय ।

५ मसूरक—मसूर की दाल जैसे आकार के गोल व छोटे गद्दे जो कुर्सी, मुड्ढे आदि पर रखे जाते है, जिन पर एक व्यक्ति बैठ सकता है ।

ये पाचो गद्दे या तकिये [ओसीके] आदि अप्रतिलेख्य वस्त्र है, क्योकि ये रूई आदि भर कर सिले हुए होते है ।

५ चर्म-पंचक—

१ गो-चर्म, २ महिष-चर्म, ३ अजा [बकरी]-चर्म, ४ एडक-[भेड का] चर्म, ५, आरण्यक=अन्य मृग आदि वन्यपशुचर्म ।

ये पाचो प्रकार के रोम युक्त चर्म अग्राह्य है । इनके ग्रहण एव उपभोग का प्रायश्चित्त प्रस्तुत सूत्र मे कहा गया है । शेष पुस्तक-पचक आदि के ग्रहण का प्रायश्चित्त भाष्य, चूर्णि मे लघचौमासी आदि बताया है ।

भाष्यकार ने पुस्तक-पचक आदि रखने के निम्न दोष बताये है—

१ पुस्तक-पचक—

१ विहार मे भार अधिक होता है ।

२ कधो पर घाव हो सकते है ।

३ पोल रहने से प्रतिलेखन अच्छी तरह नही होता है ।

४ कुथुवे, फूलन [पनक] की उत्पत्ति हो सकती है ।

५ धन की आशा से चोर चुरा सकते है ।

६ तीर्थकर भगवान् ने इनके उपयोग करने की आज्ञा नही दी है अर्थात् प्रश्नव्याकरण आदि आगमो मे कहे गये भिक्षु के उपकरणो मे इनका नाम नही है ।

७ स्थानातरित करने मे परिमथ होता है ।

८ सूत्र लिखा हुआ है ही, ऐसा सोच कर साधु साध्वी प्रमादवश पुनरावृत्ति या कठस्थ नही करे तो उससे श्रुत-अर्थ विनष्ट होता है ।

९ पुस्तक सम्बन्धी परिकर्म मे सूत्रार्थ के स्वाध्याय की हानि होती है ।

१०. अक्षर लिखने मे कुथुवे आदि प्राणियो का वध हो सकता है ।

११ कई सपातिम जीवो के कलेवर अक्षरो पर चिपक जाते है अथवा उनका खून अक्षरो पर लग जाता है ।

जीववध के चार दृष्टान्त—१ चतुरंगिणी सेना के बीच से हिरण, २ घी-दूध आदि मे से सपातिम जीव, ३ तेल की घाणी आदि मे से तिल या त्रस जीव तथा ४ जाल मे फसा हुआ मत्स्य इत्यादि अनेक जीव कदाचित् छूट भी सकते है, बच भी सकते है, किन्तु पुस्तक के बीच मे आ जाने वाला प्राणी नही बच सकता । इसलिये भाष्य मे कहा है—

जत्तिय मेत्ता वारा, मुंचति, बंधति य जत्तिया वारा ।
जत्ति अक्खराणि लिहति व, तत्ति लहुगा च आवज्जे ।।

—भा गा ४००८

इन पुस्तको को जितनी बार खोले, बद करे या जितने अक्षर लिखे उतनी बार लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है और जो प्राणी मर जाय उसका प्रायश्चित्त भी अलग आता है ।

२ तृण-पचक

१ कुंथुए आदि छोटे जीवो की विराधना होती है ।

२ जहरीले जीव-जन्तु से आत्मविराधना होती है ।

३ अत. जितनी बार करवट बदले अथवा आकुंचन-प्रसारण करे, उतने लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आते है ।

शेष तीनो पचक मे प्रतिलेखन शुद्ध न होने से या जीवविराधना होने से सयम विराधना होती है । अत झुषिर दोष के कारण ये उपकरण ग्रहण करने योग्य नही है । किन्तु आपवादिक स्थिति मे यदि ये उपकरण ग्रहण किये जाए तो उसका प्रायश्चित्त लेना चाहिये और इन्हे अकल्पनीय उपकरण या औपग्रहिक उपकरण समझना चाहिये ।

बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक-३ मे साधु के लिये सरोम-चर्म का मर्यादा युक्त विधान है तथा तृण-पचक भी ग्रहण करने का उत्तराध्ययन अ २३ आदि अनेक आगमो मे वर्णन है । इन वर्णनो से यह फलित होना है कि कभी परिस्थितिवश ये झुषिर उपकरण भी जीवविराधना न हो, उस विधि से एव मर्यादा से रखे जा सकते है । किन्तु जब जीवो की विराधना सम्भव हो या आवश्यकता न रहे तब उन्हे छोड देना चाहिये ।

शारीरिक परिस्थिति से आवश्यक होने पर चर्म-पचक और तृण-पचक या वस्त्र-पचक ग्रहण करके उपयोग मे लिये जा सकते है, उसी प्रकार श्रुतविस्मृति आदि कारणो से, अध्ययन मे सहयोगी होने से पुस्तक आदि साधन भी उक्त विवेक के साथ रखे जा सकते हैं ।

अपने पास रखी जाने वाली औधिक और औपग्रहिक उपधि का उभय काल प्रतिलेखन, प्रमार्जन करना भिक्षु का आवश्यक आचार है। तदनुसार यदि पुस्तको को अपनी उपधि रूप में रखना हो तो उनका भी उभय काल यथाविधि प्रतिलेखन, प्रमार्जन करना चाहिये । ऐसा करने पर भाष्योक्त दोषो की सम्भावना भी नही रहती है और ज्ञान-आराधना में भी सुविधा रहती है ।

भाष्यकाल की पुस्तको की अपेक्षा वर्तमान युग की पुस्तको मे झुषिर अवस्था भी अत्यल्प होती है। इस कारण से भी इनमे दोष की सम्भावना अल्प है।

ज्ञानभडारो मे उचित विवेक किए बिना रखी जाने वाली अप्रतिलेखित पुस्तको मे अनेक प्रकार के जीव उत्पन्न हो जाते है, उन पुस्तको का उपयोग करने मे जीवविराधना की अत्यधिक सम्भावना रहती है, अत उसका यथोचित विवेक रखना चाहिये।

वस्त्राच्छादित पीढे पर बैठने का प्रायश्चित्त—

६—जे भिक्खू १. तणपीढगं वा, २. पलालपीढग वा, ३. छगणपीढग वा, ४ वेत्त-पीढगं वा, ५ कट्ठपीढगं वा परवत्थेणोच्छण्ण अहिट्ठेइ, अहिट्ठेंतं वा साइज्जइ।

६—जो भिक्षु गृहस्थ के वस्त्र से ढके हुए, १ घास के पीढे [चौकी आदि] पर, २. पराल के पीढे पर, ३ गाबर के पीढे पर, ४ बेत के पीढे पर, ५ काष्ठ के पीढे पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—"अहिट्ठेइ" क्रिया पद से बैठना, सोना, खडे रहना आदि सभी क्रियाए समझ लेनी चाहिये सूत्रोक्त पीढे [बाजोट आदि] प्राय बैठने के उपयोग मे आते है।

सूत्र मे तृण आदि से निर्मित पीढो का कथन है। ये पीढे भिक्षु ग्रहण करके उपयोग मे ले सकता है। किन्तु इन पर गृहस्थ के वस्त्र बिछाये हुए हो तो बैठने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

यदि झुषिर दोष युक्त हो तो ये अग्राह्य होते है और इनके ग्रहण करने पर पाचवे सूत्र मे कहे दोष समझ लेने चाहिए।

झुषिर सबधी दोष न हो तो तृण, बेत आदि से निर्मित अन्य औपग्रहिक उपकरण भी ग्राह्य हो सकते है।

भिक्षु को पीढ-फलग-शय्या-सस्तारक ग्रहण करना तो कल्पता है किन्तु गृहस्थ का वस्त्र साधु को उपयोग मे लेना नही कल्पता है। अत वस्त्र युक्त पीढादि अकल्पनीय है। क्योकि वस्त्र युक्त पीढे मे अप्रतिलेखना या दुष्प्रतिलेखनाजन्य दोष होते है तथा जीवविराधना भी सभव रहती है। अत. वस्त्र युक्त पीढे के उपयोग करने का प्रस्तुत सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा गया है।

निर्ग्रंथी को शाटिका सिलवाने का प्रायश्चित्त—

७—जे भिक्खू णिग्गंथीए सघाडि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सिव्वावेइ सिव्वावेंत वा साइज्जइ।

७—जो भिक्षु साध्वी की सघाटिका [चादर] को अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से सिलवाता है या सिलवाने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—"संघाडीओ चउरो, ति-पमाणा ता पुणो भवे दुविहा।
एगमणेगखंडी, अहिगारो अणेगखंडीए ॥४०२६॥

साध्वी को सख्या की अपेक्षा से चार चादर रखना कल्पता है। प्रमाण अर्थात् नाप की अपेक्षा से तीन प्रमाण वाली [४ हाथ, ३ हाथ, २ हाथ] चादर रखना कल्पता है।

ये चादरे एक खड वाली या अनेक खड वाली भी हो सकती है। एक खड वाली मे सिलाई करने की आवश्यकता नही होती है, किन्तु अनेक खड वाली मे सिलाई करने की या सिलाई करवाने को आवश्यकता होती है। अत प्रस्तुत सूत्र मे अनेक वस्त्रखड जोड कर बनाई जाने वाली चादर का ही अधिकार है।

भिक्षु या भिक्षुणी सिलाई का आवश्यक कार्य स्वत ही कर सकते है। कोई करने वाला न हो तो परिस्थितिवश गीतार्थ की आज्ञा से वे परस्पर करवा सकते है।

किसी समय समीपस्थ भिक्षु या भिक्षुणी कोई भी सिलाई का कार्य न कर सके तब वे स्वय गृहस्थ से सिलवाये तो उद्देशक ५ सू १२ के अनुसार लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है। किन्तु साध्वी की चादर साधु गृहस्थ के द्वारा सिलवावे तो प्रस्तुत सूत्र के अनुसार लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

गृहस्थ से वस्त्र सिलवाना भी साधु की मर्यादा मे नही है तथापि साध्वी की चादर सिलवाने मे और भी अन्य दोषो की सम्भावना रहती है। यथा—

सीने वाला गृहस्थ पूछ भी सकता है कि किसकी चादर है ? सही उत्तर देने मे जानकारी होने पर वशीकरण प्रयोग कर सकता है, साधु के ब्रह्मचर्य मे शकित होकर गलत प्रचार कर सकता है। अत ऐसा नही करना ही उत्तम है।

गृहस्थ से सिलवाना आवश्यक होने पर नीचे लिखे क्रम से विवेकपूर्वक करवाना चाहिये—

भाष्य गाथा- "पच्छाकड, साभिग्गह, णिरभिग्गह, भद्दए य असण्णी।
गिहि अण्णतित्थिएण वा, गिहि पुव्वं एतरे पच्छा॥

इस गाथा के अर्थ का स्पष्टीकरण उद्देशक १ सूत्र १५ के विवेचन मे किया गया है।

ठाणाग अ ४ सू ५९ एव आचा श्रु २ अ ५ उ १ मे साध्वी को ४ चादर रखने का तथा उसके प्रमाण का कथन है। आचारागसूत्र मे यह भी कहा गया है कि उक्त प्रमाण का वस्त्र न मिले तो कम प्रमाण वाले वस्त्र खडो को परस्पर जोडकर उक्त प्रमाण वाली चादर बना लेनी चाहिये। अत ऐसी स्थिति मे सिलाई करना या करवाना आवश्यक हो जाता है, तब सूत्राज्ञा का ध्यान रखकर प्रवृत्ति करने पर प्रायश्चित्त नही आता है।

स्थावरकाय-हिंसा प्रायश्चित्त—

८—जे भिक्खू १. पुढविकायस्स वा, २. आउकायस्स वा, ३. अगणिकायस्स वा ४. वाउकायस्स वा, ५. वणस्सइकायस्स वा, कलमायमवि समारंभइ, समारंभतं वा साइज्जइ।

८—जो भिक्षु १ पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ अग्निकाय, ४ वायुकाय या ५ वनस्पति-काय की अल्प मात्रा मे भी हिसा करता है या हिसा करने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—कलमायंति स्तोक प्रमाणं। —चूर्णि।

पृथ्वीकाय आदि ये पाचो एकेन्द्रिय जीव हैं। इनके अस्तित्व का इनकी विराधना के प्रकारो का और विराधना के कारणो का वर्णन आचा श्रु. १, अ. १ मे किया गया है।

दशवै. अ ४ में इनकी विराधना न करने की प्रतिज्ञा करने का कथन है।

दशवै अ ६ मे भी इस विषय मे मुनि की प्रतिज्ञा का स्वरूप कहा गया है।

भगवतीसूत्र, पन्नवणासूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र इत्यादि आगमो मे पृथ्वीकाय आदि के भेद-प्रभेद बताये गये है।

निशीथ भाष्य पीठिका गाथा १४५ से २५७ तक पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावरो की विराधना भिक्षु द्वारा कितने प्रकार से हो सकती है और उनके प्रायश्चित्त के कितने विकल्प होते हैं इत्यादि विषयो का विस्तृत विवेचन किया गया है। अत. विस्तृत जानकारी के लिये उपर्युक्त स्थलो का अध्ययन करना चाहिये।

कुछ विराधनास्थल इस प्रकार है—

पृथ्वीकाय की विराधना के स्थान—

१ **गोचरी मे**—सचित्तरज-युक्त हाथ आदि तथा १ काली-लाल मिट्टी, २ ऊष—खार, ३. हरताल, ४ हिगुलक, ५ मेन्सिल, ६. अजन, ७ नमक, ८ गेरू, ९ पीली मिट्टी (मेट), १० खड्डी [खडिया], ११ फिटकरी, इन ग्यारह के चूर्णो [पिष्टो] से लिप्त हाथ, कुडछी या बर्तन से भिक्षा ग्रहण करने पर पृथ्वीकाय की विराधना हो जाती है।

अथवा इनका सघट्टन आदि करते हुए दाता भिक्षा देवे तो इनकी विराधना हो जाती है।

२ **मार्ग में**—१ काली, लाल, पीली सचित्त मिट्टी, मुरड, रेत, बजरी [दाणा], २ पत्थरो के नये टुकडे [गिट्टी आदि], ३ नमक, ४ ऊष—खार, ५ पत्थर के कोयले आदि से युक्त मार्ग हो या ये पदार्थ मार्ग मे बिखरे हुए हो तो इन पर चलने से पृथ्वीकाय की विराधना हो जाती है।

तत्काल हल चलाई हुई भूमि, मधुर फल वाले वृक्षो के नीचे की विस्तृत भूमि और वर्षा से गीली बनी गमनागमन रहित स्थान की भूमि भी मिश्र होती है। नदी, तालाब आदि के किनारे या खड्डो मे पानी के सूखने पर जो मिट्टी पपड़ी बन जाती है, वह सचित्त हो जाती है। इन पर चलने बैठने आदि से पृथ्वीकाय की विराधना हो जाती है।

सामान्यतया ऊपर की चार अगुल भूमि गमनागमन, सर्दी, गर्मी आदि से अचित्त हो जाती है और उसके नीचे क्रमश. कही मिश्र या कही सचित्त होती है।

मार्ग मे जहाँ सचित्त या मिश्र पृथ्वी हो वहाँ मनुष्य आदि के गमनागमन से एक या दो-तीन प्रहर में अचित्त हो जाती है।

कोमल पृथ्वी अच्छी तरह पिस जाने के बाद पूर्ण अचित्त हो जाती है और कठोर पृथ्वी वर्ण परिवर्तन हो जाने पर केबल ऊपर से अचित्त हो जाती है, क्योकि उसमें कठोरता के कारण अन्दर के जीवो की पाव के स्पर्श आदि से विराधना नही होती है।

अप्काय की विराधना के स्थान—

१. गोचरी में—१ उदकार्द्र हाथ आदि से, २ सस्निग्ध हाथ आदि से, ३. पूर्वकर्मदोष से, ४. पश्चात्कर्मदोष से और ५ जल का स्पर्श आदि करने वाले दाता से भिक्षा ग्रहण करने पर अप्काय की विराधना होती है।

२. मार्ग में—१ नदी, नाला, तालाब आदि के पानी मे, २. भूमि पर ओस, धूम्अर और वर्षा के पडे हुए पानी मे, ३. मार्ग मे गिरे हुए पानी पर चलने से या किसी अन्य के रखे हुए या फेंके जाते हुए पानी का स्पर्श आदि होने से अप्काय की विराधना हो जाती है।

विहार मे कभी जघासतारिम या नावासतारिम पानी को पार करके जाने मे भी अप्काय की विराधना हो जाती है।

उपर्युक्त स्थानो मे पानी के सूक्ष्म अश का अस्तित्व रहे तब तक वह सचित्त रहता है। मार्ग मे गिरे हुए पानी की स्निग्धता समाप्त हो जाने पर अर्थात् पृथ्वी मे पानी के पूर्णतया विलीन हो जाने पर वह अचित्त हो जाता है।

नदी, तालाब आदि का पानी पूर्णतया सूख जाने पर उसमे अप्काय के जीव तो नही रहते हैं किन्तु वहाँ कुछ समय तक पृथ्वीकाय की सचित्तता रहती है।

अग्निकाय की विराधना के स्थान—

१. गोचरी में—अग्नि के अनतर या परम्पर स्पर्श करती हुई वस्तु लेने से या अग्नि पर रखी हुई वस्तु लेने से अथवा भिक्षा देने के निमित्त दाता द्वारा किसी प्रकार से अग्नि का आरभ करने पर अग्निकाय की विराधना हो जाती है।

२. उपाश्रय मे—अग्नि या दीपक युक्त स्थान मे ठहरना भिक्षु की नही कल्पता है। किन्तु अन्य स्थान के न मिलने पर एक या दो दिन वहा ठहरना कल्पता है। —बृहत्कल्प उ २

भिक्षु कभी परिस्थितिवश ऐसे स्थान में ठहरा हो तो वहाँ उसके प्रतिलेखन, प्रमार्जन, गमनागमन आदि क्रियाएँ करते हुए असावधानी से अग्निकाय की विराधना हो जाती है।

वायुकाय की विराधना के स्थान—

१ किसी भी उष्ण पदार्थ को शीतल करने के लिए हवा करने से वायुकाय की विराधना हो जाती है।

२ गर्मी के कारण शरीर पर किसी भी साधन से हवा करने पर वायुकाय की विराधना हो जाती है। भाष्यकार ने यह भी बताया है कि गृहस्थ के लिये सचालित हवा मे बैठना अथवा खुले स्थान मे जाकर "हवा आवे" इस प्रकार का सकल्प करना भी वायुकाय की विराधना का प्रकार है।

३ प्रतिलेखन आदि सयम की आवश्यक प्रवृत्ति करने में, शरीर और उपकरण के अनेक (परिकर्म) कार्य करने में, चलना, खड़े होना, बैठना, सोना, बोलना या खाना तथा कोई भी वस्तु रखने, उठाने या परठने में हवा की उदीरणा करते हुए अयतना से ये कार्य करने पर वायुकाय की विराधना होती है।

सूक्ष्म दृष्टि से तो काया के प्रत्येक हलन-चलन मात्र में वायुकाय की विराधना होती है। यह विराधना तेरहवे गुणस्थान के अन्तिम समय मे योगनिरोध होने के पूर्व तक होती रहती है। सयम मर्यादा मे व इस प्रायश्चित्त प्रकरण में उसका कोई सबध नही है।

किसी पदार्थ को ठडा करने के लिए या शारीरिक गर्मी को शात करने के लिए हवा करना-कराना भिक्षु को नही कल्पता है और आवश्यक प्रवृत्तियां 'अयतना से' करने पर पापकर्म का बध होता है अर्थात् वह सावद्य प्रवृत्ति कही जाती है। —दश अ ४

अयतना का अर्थ—किसी भी कार्य के करने मे हाथ, पाँव, शरीर या उपकरण आदि को शीघ्र गति से चलाना, किसी पदार्थ को नीचे रखने परठने में ऊपर से फेंकना तथा छीक खासी आदि आवश्यक शारीरिक प्रक्रियाओ मे हाथ आदि का उपयोग न करना इत्यादि को अयतना समझना चाहिए।

वनस्पतिकाय की विराधना के स्थान—

१. मार्ग मे—विहार मे, ग्रामादि मे या ग्रामादि के बाहर कार्यवश जाने आने मे हरी घास, नये अकुर, फूल, पत्ते, बीज आदि पर तथा फूलन (काई) युक्त भूमि पर चलने से या इनका स्पर्श हो जाने पर वनस्पतिकाय की विराधना हो जाती है।

कही वृक्ष की छाया मे बैठने पर असावधानी से उसके स्कध आदि का स्पर्श हो जाय, वहाँ पर पडे हुए फूल, पत्ते, बीज आदि का स्पर्श हो जाय तो वनस्पतिकाय की विराधना हो जाती है।

२ गोचरी मे—हरी तरकारिया, फल, फूल, बीज, फूलन आदि के अनतर या परपर स्पर्श करते हुए खाद्य पदार्थ, अग्नि आदि से अपरिपक्व मिश्र या सचित्त हरी तरकारिया आदि, अर्द्धपक्व सिट्टे, होले आदि ग्रहण करने से अथवा भिक्षा देने के निमित्त दाता द्वारा इन वनस्पतियो का स्पर्श करने से वनस्पतिकाय की विराधना होती है।

१ बीज धान्य, २. हरी वनस्पतिया और ३ फूलन युक्त आहार अनाभोग से खाने मे आ जाय तो वनस्पतिकाय की विराधना होती है। जिसका प्रायश्चित्त कथन क्रमश उद्देशक चौथे, बारहवे तथा दसवे मे किया गया है।

वनस्पति के टुकडे, छिलके, पत्ते तथा तत्काल की पीसी हुई चटनी आदि कोई भी पदार्थ यदि दाता के हाथ या कुडछी आदि के लगे हुए हो तो उनसे आहार ग्रहण करने पर वनस्पतिकाय की विराधना होती है।

३ परिष्ठापन में—मल-मूत्र, कफ, श्लेष्म, आहार-पानी, उपधि आदि को हरी घास पर अकुर एव फूलन युक्त भूमि पर तथा बीज फूल पत्ते आदि पर परठने से वनस्पतिकाय की विराधना होती है।

रात्रि में परठने के लिये उस भूमि की संध्या के समय ध्यान पूर्वक प्रतिलेखना करके वनस्पति आदि से रहित भूमि मे परिष्ठापन करना चाहिए। ऐसा न करने पर वनस्पतिकाय की विराधना होती है।

प्रायश्चित्त—गोचरी में गृहस्थ द्वारा पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय तथा प्रत्येक वनस्पतिकाय की विराधना हो जाय तो लघुमासिक प्रायश्चित्त, अनंतकाय की विराधना हो जाय तो

गुरुमासिक प्रायश्चित्त तथा साधु के द्वारा कही भी पृथ्वी आदि की विराधना हो जाय तो प्रस्तुत सूत्र से लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

साधु के द्वारा अनतकाय अर्थात् साधारण वनस्पतिकाय की विराधना हो जाय तो उसका भाष्य गा ११७ मे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है। प्रायश्चित्त के अन्य भी अनेक विकल्प जानने के लिये भाष्य गा ११७ तथा गाथा. १४५ से २५७ तक की चूर्णि का अध्ययन करना चाहिये ।

भाष्य गा २५८ से २८९ तक त्रसकाय के सबध में भी इसी प्रकार से वर्णन किया है। प्रस्तुत सूत्र मे तो पाच स्थावर की विराधना का ही प्रायश्चित्त कहा है, तथापि यहा उपयुक्त होने से त्रसकाय सबधी वर्णन भी दिया जाता है ।

त्रसकाय की विराधना के स्थान—

१. मार्ग मे—मार्ग मे या ग्रामादि मे लाल कीडिया, काली कीडिया, मकोडे, दीमक तथा वर्षा होने से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के सीप शख गिजाइया अलसिया एव जलोका मच्छर आदि तथा अत्यन्त छोटे मेढक आदि जीव भ्रमण करते है। भिक्षु के द्वारा गमनागमन मे असावधानी होने पर इन जीवो की विराधना हो सकती है ।

अन्य मार्ग के न होने पर ऐसे जीवयुक्त मार्ग से जाते समय सावधानी पूर्वक देखकर या प्रमार्जन करके चलने से भिक्षु जीवविराधना से बच सकता है ।

ग्रामादि के अंदर या बाहर जहा मनुष्य के मल-मूत्र आदि अशुचि पदार्थ हो, वहा असावधानी से चलने या खड़े रहने से सम्मूर्च्छिम मनुष्यादि की विराधना हो सकती है ।

२. भिक्षाचरी में—१ छाछ, दही, मक्खन, इक्षु निर्मित काकब और घृत आदि के विकृत हो जाने पर उनमे लटे आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। कही अचित्त शीतल जल मे भी त्रस जीव हो सकते हैं। असावधानी से कभी भिक्षाचरी मे इनके ग्रहण कर लिये जाने पर उन जीवो की विराधना होती है ।

२ अनेक खाद्य पदार्थो मे कीडिया आदि आ जाती है और विवेक न रखने पर उन जीवो की विराधना हो सकती है ।

३ भिक्षा लेने के स्थान पर कीडिया आदि हो तो दाता के द्वारा उनकी विराधना हो सकती है ।

४ आहार-पानी के चलितरस हो जाने पर उसमे "रसज" जीव उत्पन्न हो जाते है, जिससे उन पदार्थों का स्वाद और गध बदलकर खराब हो जाता है। ऐसे चलितरस खाद्य-पदार्थों को विभाजित करने पर और पेय पदार्थों को हाथ से स्पर्श करके देखने पर लार जैसे जतु दिखाई देते है। विवेक न रहने पर उन रसज जीवो की विराधना होती है ।

अत भिक्षु को गवेषणाविधि मे कुशल होने के साथ-साथ पदार्थों के परीक्षण करने मे भी कुशल होना चाहिए ।

असावधानी से उपर्युक्त जीवयुक्त पदार्थ भिक्षा मे आ जावे तो शोधन करने योग्य का शोधन किया जाता है और परठने योग्य का परिष्ठापन कर दिया जाता है। इसकी विधि ऊपर

निर्दिष्ट गाथाओ मे तथा "परिष्ठापनिकानियुक्ति' आवश्यक सूत्र अ ४ में बताई गई है। निशीथ के चूर्णिकार ने भी उसी स्थल का निर्देश किया है।

३. शय्या में—कीडिया, मकोड़े, दीमक, अनेक प्रकार की कसारिया, मकडिया आदि जीव उपाश्रय मे हो सकते है। अत प्रत्येक प्रवृत्ति देखकर या प्रमार्जन करके करने से इन जीवों की विराधना नही होती है।

मकान के जिस स्थल का प्रमार्जन न होता हो, ऐसे ऊँचे स्थान या किनारे के स्थान मे तथा अलमारियो आदि के नीचे या आस-पास मे मकडिया और उस स्थान के अनुरूप वर्ण वाले कुथुवे आदि जीव उत्पन्न हो जाते है। उपाश्रय के निकट मे धान्यादि रखे हो तो इल्ली धनेरिया आदि जीव भी गमनागमन करते है। असावधानी से इन जीवो की विराधना हो सकती है।

मकान मे मक्खिया मच्छर आदि हो तो खुजलाने मे या करवट पलटने मे पूजने का विवेक न रहने पर तथा द्रव पदार्थों को रखने या खाने मे सावधानी न रखने पर भी इन जीवो की विराधना होती है।

४. उपधि मे—वस्त्र मे जू लीख आदि, पाट मे दीमक-खटमल आदि, पुस्तको एव अलमारी आदि मे लेवे आदि तथा तृण दर्भ आदि मे अनेक प्रकार के आगतुक जीव हो सकते हैं। अविवेक पूर्वक प्रतिलेखन प्रमार्जन करने से या उन्हे उपयोग मे लेने से उन जीवो की विराधना हो सकती है।

भिक्षु यदि जीवयुक्त मकान पाट आदि ग्रहण नही करने के तथा उनका उभयकाल विधि-सहित प्रतिलेखन करने के आगम विधान का बराबर पालन करे तो अनेक प्रकार के जीवो की उत्पत्ति की सभावना नही रहती है। जिससे उन जीवो की विराधना भी नही होती है।

वस्त्रो को यथासमय धूप मे आतापित करने का ध्यान रखे तो उनमे भी जीवोत्पत्ति की सभावना नही रहती है।

मार्ग आदि स्थलो मे उपरोक्त त्रस स्थावर जीवो की सभावना तो हो प्रत्येक प्रवृत्ति मे जीवो को देखने का या प्रमार्जन करने का ध्यान रखने पर उनकी विराधना नही होती है।

विराधना के अनेक विकल्पो से प्रायश्चित्त के भी अनेक विकल्प होते है, उनकी जानकारी भाष्य से की जा सकती है। सक्षिप्त मे स्थावर जीवो की विराधना के प्रायश्चित्त ऊपर बताये गये है। त्रस जीवो की विराधना का सामान्य प्रायश्चित्त इस प्रकार है—

द्वीन्द्रिय की विराधना का लघुचौमासी,
त्रीन्द्रिय की विराधना का गुरुचौमासी,
चतुरिन्द्रिय की विराधना का लघुछःमासी,
पंचेन्द्रिय की विराधना का गुरुछःमासी।

सचित्त-वृक्षारोहण-प्रायश्चित्त—

९. जे भिक्खू सचित्त-रुक्खं दुरूहइ, दुरुहंतं वा साइज्जइ।

९ जो भिक्षु सचित्त-वृक्ष पर चढता है या चढने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन -सचित्त-वृक्ष तीन प्रकार के होते हैं—

१. **संख्यात जीव** वाले ताड वृक्षादि, २ **असख्यात जीव वाले आम्रवृक्षादि** , ३ अनत जीव वाले थूहरादि ।

सख्यात जीव वाले या असख्यात जीव वाले वृक्ष पर चढने का लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है और अनत जीव वाले वृक्ष पर चढ़ने का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

पांचवें उद्देशक में सचित्त-वृक्ष के निकट खड़े रहने का भी प्रायश्चित्त कहा गया है ।

अतिवृष्टि से बाढ़ आने पर, श्वापद या चोर के भय से या अन्य किसी परिस्थिति से भिक्षु को वृक्ष पर चढना पड़े तो सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है, किन्तु अकारण चढे या बारम्बार चढने का प्रसंग आए तो प्रायश्चित्त की वृद्धि होती है ।

वृक्ष पर चढने से होने वाले दोष—

१ वनस्पतिकाय की विराधना होती है ।
२ चढते समय हाथ-पॉव आदि मे खरोच आ जाती है ।
३ गिर पडने से अन्य जीवो की विराधना होती है ।
४ हाथ-पाँव आदि मे चोट आने से आत्मविराधना होती है ।
५ वृक्ष पर चढ़ते हुए देखकर किसी के मन मे अनेक आशकाये उत्पन्न हो सकती हैं ।
६ धर्म की अवहेलना होना भी सभव है ।

अनतकायिक थूहर, आक आदि वृक्षो पर चढना सभव नही होता है, अत उनका सहारा लेना आदि का प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिए ।

गृहस्थ के पात्र मे आहार करने का प्रायश्चित्त—

१०. जे भिक्खू गिहि-मत्ते भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

१०. जो भिक्षु गृहस्थ के पात्र में आहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—भिक्षु गृहस्थ के द्वारा अपने पात्र में आहारादि ग्रहण कर उसे खा सकता है किन्तु गृहस्थ के थाली-कटोरी आदि में नही खा सकता है तथा उनके गिलास लोटे आदि से पानी नही पी सकता है । यह मुनिजीवन का आचार है ।

दशवै. अ ६ गा. ५१-५२-५३ मे इसका निषेध किया गया है, वह वर्णन इस प्रकार है—

"कांस्य मिट्टी आदि किसी भी प्रकार के गृहस्थ के बर्तन मे अशन-पान आदि आहार करता हुआ भिक्षु अपने आचार से भ्रष्ट हो जाता है ।

भिक्षु के खाने या पीने के बाद गृहस्थ के द्वारा उन बर्तनों को धोये जाने पर अप्काय की विराधना होती है और उस पानी के फेकने पर अनेक त्रस प्राणियो की भी हिंसा होती है, अतः इसमे जिनेश्वर देव ने असयम कहा है ।

पूर्वकर्म—पश्चात्कर्म आदि दोष लगते है अतः भिक्षु को गृहस्थ के बर्तनो मे खाना-पीना नहीं कल्पता है। इन्ही कारणो से निर्ग्रन्थ मुनि गृहस्थ के बर्तन में आहारादि नहीं करते।

दशवै अ. ३ गा. ३ मे गृहस्थ के बर्तन मे खाने की प्रवृत्ति को अनाचार कहा है।

सूय. श्रु. १ अ २ उ २ गा २० मे गृहस्थ के बर्तनों मे नही खाने वाले भिक्षु को सामायिक चारित्रवान् कहा है।

सूय श्रु १ अ ९ गा. २० मे कहा गया है कि—भिक्षु गृहस्थ के बर्तनो मे आहार-पानी कदापि नही करे।

गृहस्थ के पात्र में खाने से होने वाले दोष—

१ गृहस्थ के घर में खाना, २. गृहस्थ के द्वारा स्थान पर लाया हुआ खाना,
३ गृहस्थ द्वारा बर्तनो को पहले या पीछे धोना, ४. नया बर्तन खरीदना,
५ आहार-पानी की अलग-अलग व्यवस्था करना।

इत्यादि अनेक दोषो की परम्परा बढती है।

अत भिक्षु को आगमानुसार गृहीत लकडी, मिट्टी या तुम्बे के पात्र मे ही आहार करना चाहिए। गृहस्थ के थाली, कटोरी, गिलास, लोटे आदि का उपयोग नही करना चाहिए।

उपर्युक्त आगम पाठो मे गृहस्थ के पात्र मे आहार-पानी के उपयोग करने का निषेध है और उन सूत्रो की व्याख्याओ मे आहार-पानी सम्बन्धी दोषों का ही कथन है। अत वस्त्रप्रक्षालन के लिए औपग्रहिक उपकरण के रूप मे गृहस्थ के पात्र का यदि उपयोग किया जाए तो सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है। क्योंकि उनका उपयोग करने पर पश्चात्कर्मादि दोष नही लगते हैं।

गृहस्थ के वस्त्र का उपयोग करने पर प्रायश्चित्त—

११. जे भिक्खू गिहिवत्थं परिहेइ, परिहेंत वा साइज्जइ।

११ जो भिक्षु गृहस्थ के वस्त्र को पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भिक्षु वस्त्र की आवश्यकता होने पर गृहस्थ से वस्त्र की याचना करके ही उपयोग में लेता है। किन्तु पडिहारी वस्त्र ग्रहण करके उसे उपयोग मे लेकर गृहस्थ को लौटाना नही कल्पता है। इसी का प्रस्तुत सूत्र में प्रायश्चित्त कहा गया है।

पुन लौटाने योग्य वस्त्र ही गृहस्थ का वस्त्र कहा जाता है। उसका उपयोग करने पर पूर्वकर्म, पश्चात्कर्म आदि अनेक दोष लगते हैं। उन्हे गृहस्थ-पात्र के विवेचन में कहे गये दोषो के समान समझ लेना चाहिए।

सूय. श्रु १ अ. ९ गा. २० में गृहस्थ के वस्त्र को उपयोग में लेने का निषेध किया गया है।

अत. भिक्षु को मुनि-आचार के अनुसार गृहस्थ द्वारा पूर्ण रूप से दिया गया वस्त्र ही उपयोग में लेना चाहिए। किन्तु लौटाने योग्य वस्त्र लेकर उपयोग में नही लेना चाहिए।

गृहस्थ की निषद्या के उपयोग करने का प्रायश्चित्त—

१२. जे भिक्खू गिहि-णिसेज्जं वाहेइ, वाहेंतं वा साइज्जइ ।

१२ जो भिक्षु गृहस्थ के पर्यकादि पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—गृहस्थ के खाट-पलग आदि अनेक प्रकार के अप्रतिलेख्य या दुष्प्रतिलेख्य आसन होते है। गृहस्थ के घर गोचरी आदि के लिए गये हुए भिक्षु को वहाँ बैठने का तथा पल्यक आदि पर शयन करने का दशवै अ ६ में निषेध किया गया है तथा उन्हे ही दशवै अ ३ मे अनाचार कहा है।

दशवै अ ६ मे गृहस्थ के घर मे बैठने से होने वाले दोषो का भी कथन है और वृद्ध, व्याधिग्रस्त तथा तपस्वी को वहाँ बैठना कल्पनीय कहा है। किन्तु खाट-पलग आदि पर बैठने का सभी के लिए निषेध किया है। इसका ही प्रस्तुत सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा गया है।

सूत्र ६ मे अनेक प्रकार के पीठ-बाजोट आदि का वर्णन है, उन पर गृहस्थ का वस्त्र न हो तो बैठने पर उस सूत्र के अनुसार प्रायश्चित्त नही आता है।

इस प्रकार गृहस्थ के आसन पल्यक आदि काष्ठ आदि के हो और वे सुप्रतिलेख्य हो तो साधु उन्हे "पडिहारी" ग्रहण कर सकता है और उपयोग मे ले सकता है। यदि कुर्सी आदि आलबनयुक्त आसन हो तो साधु ग्रहण करके उपयोग मे ले सकता है किन्तु साध्वी को आलबनयुक्त शय्या आसन ग्रहण करने का बृहत्कल्प उ ५ में निषेध किया है।

उत्तरा अ १७ गा १९ मे गृहि-निषद्या पर बैठने वाले को 'पाप श्रमण' कहा गया है।

सूय सु १ अ ९ गा २१ मे आसदी, पल्यक आदि पर बैठने का निषेध किया गया है।

अत. भिक्षु को गृहस्थ के इन आसनो पर नही बैठना चाहिए।

गृहस्थ की चिकित्सा करने का प्रायश्चित्त—

१३ जे भिक्खू गिहि-तेइच्छं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१३ जो भिक्षु गृहस्थ की चिकित्सा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—गृहस्थ को रोग उपशाति के लिए औषध-भेषज बताना या अन्य भी किसी प्रकार की शल्यचिकित्सा आदि करना साधु को नही कल्पता है।

उत्तरा अ १५ गा ८ मे अनेक प्रकार की चिकित्सा करने का निषेध किया गया है।

दशवै चूलिका २ मे कहा है कि—'भिक्षु गृहस्थ की वैयावृत्य नही करे।'

दशवै अ ८ गा ५१ मे गृहस्थ को औषध-भेषज बताने का निषेध किया है।

दशवै अ ३ गा ६ मे गृहस्थ की वैयावृत्य करना अनाचार कहा है।

दशवै. अ ३ गा ४ मे गृहस्थ की चिकित्सा (वैद्यवृत्ति) करना अनाचार कहा है।

चिकित्सा करने के दोष—

१ अनेक चिकित्साओ मे सावद्य-प्रवृत्ति की जाती है,

२ सावद्य-सेवन की प्रेरणा दी जाती है,

३ निर्वद्य चिकित्सा से भी किसी का रोग दूर हो जाय तो अनेक लोगो का आवागमन बढ सकता है,

४. चिकित्सा मे कभी किसी के रोग की वृद्धि हो जाय तो अपयश होता है, इत्यादि दोषो के कारण भिक्षु को गृहीचिकित्सा करने का प्रस्तुत सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा गया है।

आचा श्रु १ अ २ उ ५ मे कहा है कि चिकित्सा—वैद्यवृत्ति करने मे हनन आदि अनेक प्रवृत्तियाँ भी की जाती है, अत भिक्षु व्याधि-चिकित्सा का प्रतिपादन न करे।

इन सूत्रोक्त विधानो को जानकर भिक्षु को गृही-चिकित्सा मे प्रवृत्त नही होना चाहिये। परिस्थितिवश कभी चिकित्सा प्रयोग किया जाय तो सूत्रोक्त प्रायश्चित ग्रहण कर लेना चाहिये।

पूर्व-कर्म-कृत आहार-ग्रहण-प्रायश्चित्त—

१४. जे भिक्खू पुरेकम्मकडेण हत्थेण वा, मत्तेण वा, दविएण वा, भायणेण वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

१४ जो भिक्षु पूर्व-कर्मदोष से युक्त हाथ से, मिट्टी के बर्तन से, कुडछी से, धातु के बर्तन से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भिक्षु को आहार देने के पूर्व गृहस्थ हाथ धोए या कुडछी, कटोरी आदि धोए तो वह हाथ या कुडछी आदि पूर्वकर्मदोषयुक्त कहे जाते हैं। उनसे भिक्षा लेना नही कल्पता है। क्योकि उनके धोने मे अप्काय व त्रसकाय आदि की विराधना होती है।

कई कुलो मे ऐसी परिपाटी होती है कि वे हाथ धोकर भोजन सामग्री का स्पर्श करते है, कई शुद्धि के सकल्प से बर्तन को धोकर उससे भिक्षा देना चाहते है अथवा हाथ या बर्तन के लगे हुये पदार्थ को धोकर भिक्षा देना चाहते हैं। अत गोचरी करने वाला विचक्षण भिक्षु दाता के ऐसे भावो को अनुभव से जानकर पहले से ही हाथ आदि धोने का निषेध कर दे। निषेध करने के पहले या पीछे भी हाथ आदि धोकर दे तो अशनादि ग्रहण नही करना चाहिये।

आचा श्रु २ अ १ उ ६ मे इस विषय का विस्तृत वर्णन है।

यह दोष एषणा के 'दायक' दोषो मे समाविष्ट होता है।

दशवै अ ५ उ. १ गा ३२ में भी पूर्वकर्मकृत हाथ आदि से भिक्षा लेने का निषेध किया गया है।

यदि दाता किसी बर्तन में रखे अचित्त पानी से हाथ कुडछी आदि को धोए तो पूर्वकर्मदोष नही लगता है किन्तु सचित्त जल से धोए या अचित्त जल से भी बिना विवेक के धोए तो पूर्वकर्मदोष लगता है।

दाता के इस प्रकार दोष लगाने पर भी भिक्षु यदि आहार ग्रहण न करे तो उसे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है। धोये हुए हाथ आदि से आहार ग्रहण करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

भद्रबाहुकृत निर्युक्ति गाथा ४०६६ मे कहा है कि यदि अन्य पुरुष अन्य आहार या उसी आहार को दे तो ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु पूर्वकर्म हाथ वाले व्यक्ति से हाथ सूख जाने पर भी ग्रहण करना नही कल्पता है, ऐसा भाष्य गाथा ४०७२ मे कहा गया है।

आव. अ ४ मे भिक्षाचारी-अतिचार-प्रतिक्रमण पाठ मे भी पूर्वकर्मदोष का कथन है।

उदक-भाजन से आहारग्रहण-प्रायश्चित्त—

१५. जे भिक्खू गिहत्थाण वा अण्णउत्थियाण वा सीओदग परिभोगेण हत्थेण वा, मत्तेण वा, दविएण वा, भायणेण वा असणं वा, पाणं वा, खाइम वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

१५ जो भिक्षु गृहस्थ या अन्यतीर्थिक के सचित्त जल से गीले हाथ, मिट्टी के बर्तन, कुडछी या धातु के बर्तन से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पूर्व सूत्र मे दाता भिक्षा देने के पूर्व हाथ, बर्तन आदि धोकर देवे तो उससे आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त कहा है और इस सूत्र मे यह कहा गया है कि गृहस्थ सचित्त पानी से कोई भी कार्य कर रहा हो, जिससे उसके हाथ सचित्त जल से भरे हुए हो अथवा कोई बर्तन सचित्त पानी भरने या लेने के काम आ रहा हो तो ऐसे हाथो या बर्तनो से भिक्षा लेने मे उन पर लगे पानी के जीवो की विराधना होती है तथा पुन उस हाथ या बर्तनो को अन्य सचित्त जल मे डालने पर भी अप्काय के जीवो की विराधना होती है।

इस तरह इस सूत्र मे हाथ आदि मे रहे जल की विराधना और बाद मे होने वाली विराधना रूप पश्चात्कर्मदोष का प्रायश्चित्त कहा गया है।

व्याख्या मे बताया गया है कि पानी लेने या पीने के बर्तन से भिक्षा लेने पर उस खाद्य पदार्थ का अश बर्तन मे रहता है जो पुन पानी मे डालने पर अप्कायिक जीवो की विराधना करता है। अत सचित्त जल के काम आने वाले बर्तनो से आहार ग्रहण नही करना चाहिये।

ऐसे हाथ, बर्तन आदि से अचित्त उष्ण या शीतल जल ग्रहण करने पर हाथ बर्तन आदि मे विद्यमान जल की विराधना होती है तथा बर्तनो मे शेष रहे हुए अचित्त जल से अन्य सचित्त पानी की विराधना होती है।

चतुर्थ उद्देशक मे सचित्त पानी से गीले या स्निग्ध हाथ, बर्तन आदि से आहार ग्रहण करने का लघुमासिक प्रायश्चित्त कहा गया है और यहाँ पश्चात्कर्मदोष की अपेक्षा से लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

चौथे उद्देशक मे सामान्य हाथ बर्तन आदि का कथन है किन्तु यहाँ सचित्त जल से कार्य करते हुए हाथ का तथा सचित्त जल लेने-पीने के बर्तन का कथन है। यह इन दोनो उद्देशक मे सूत्रो के विषयों मे अन्तर है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'सीओदग परिभोगेण' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है--

जेण मत्तएण सचित्तोदगं परिभुञ्जति, तेण भिक्खग्गहणं पडिसिद्ध ॥ —चूर्णि

इसका भावार्थ यह है कि—सचित्त जल के कार्य मे उपयुक्त हाथ बर्तन आदि अथवा सचित्त जल लेने-देने-निकालने के बर्तन आदि से भिक्षा ग्रहण करना निषिद्ध है।

रूप-आसक्ति के प्रायश्चित्त—

१६. जे भिक्खू—१. वप्पाणि वा, २ फलिहाणि वा, ३ पागाराणि वा, ४. तोरणाणि वा, ५. अग्गलाणि वा, ६. अग्गल-पासगाणि वा, ७ गड्डाओ वा, ८ दरीओ वा, ९. कूडागाराणि वा, १०. णूम-गिहाणि वा, ११. रुक्ख-गिहाणि वा, १२. पव्वय-गिहाणि वा, १३ रुक्ख वा चेइय वा कडं, १४. थूभ वा चेइय कड, १५. आएसणाणि वा, १६. आयतणाणि वा, १७ देवकुलाणि वा, १८ सहाओ वा, १९ पवाओ वा, २०. पणिय-गिहाणि वा, २१ पणिय-सालाओ वा, २२. जाण-गिहाणि वा, २३. जाण-सालाओ वा, २४. सुहा-कम्मंताणि वा, २५. दब्भ-कम्मंताणि वा, २६. वद्ध-कम्मताणि वा, २७. वक्क-कम्मंताणि वा, २८. वण-कम्मंताणि वा, २९. इगाल-कम्मताणि वा ३० कट्ठ-कम्मंताणि वा, ३१ सुसाण-कम्मताणि वा, ३२. संति-कम्मताणि वा, ३३. गिरि-कम्मताणि वा, ३४. कंदर-कम्मताणि वा, ३५. सेलोवट्ठाण-कम्मताणि वा, ३६. भवणगिहाणि वा चक्खुदसणवडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंत वा साइज्जइ।

१७. जे भिक्खू—१. कच्छाणि वा, २. दवियाणि वा, ३. णूमाणि वा, ४. वलयाणि वा, ५. गहणाणि वा, ६. गहण-विदुग्गाणि वा, ७. वणाणि वा, ८. वण-विदुग्गाणि वा, ९. पव्वयाणि वा, १०. पव्वय-विदुग्गाणि वा, ११. अगडाणि वा, १२. तडागाणि वा, १३. दहाणि वा, १४. णईओ वा, १५. वावीओ वा, १६. पुक्खरणीओ वा, १७. दीहियाओ वा, १८. गुंजालियाओ वा, १९. सराणि वा, २०. सर-पंतियाणि वा, २१. सर-सरपतियाणि वा चक्खुदसणवडियाए अभिसधारेई, अभिसंधारेंत वा साइज्जइ।

१८. जे भिक्खू गामाणि वा जाव रायहाणीणि वा चक्खुदंसणवडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

१९. जे भिक्खू गाम-महाणि वा जाव रायहाणि-महाणि वा चक्खुदंसणवडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंत वा साइज्जइ।

२०. जे भिक्खू गाम-वहाणि वा जाव रायहाणी-वहाणि वा चक्खुदंसणवडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

२१. जे भिक्खू गाम-पहाणि वा जाव रायहाणी-पहाणि वा चक्खुदंसणवडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

२२. जे भिक्खू—१. आस-करणाणि वा, २ हत्थि-करणाणि वा, ३. महिस-करणाणि वा, ४. वसहकरणाणि वा, ५. कुक्कुड-करणाणि वा, ६. मक्कड-करणाणि वा, ७. लावय-करणाणि वा, ८. वट्टयकरणाणि वा, ९. तित्तिर-करणाणि वा, १०. कवोय-करणाणि वा, ११. कविंजल-करणाणि वा चक्खुदंसणवडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ ।

२३. जे भिक्खू—१. हय-जुद्धाणि वा, २ गय-जुद्धाणि वा, ३. उट्ट-जुद्धाणि वा, ४. गोण-जुद्धाणि वा, ५. महिस-जुद्धाणि वा, ६. मेंढ-जुद्धाणि वा, ७. कुक्कुड-जुद्धाणि वा, ८. मक्कड-जुद्धाणि वा, ९. लावय-जुद्धाणि वा, १०. वट्टय-जुद्धाणि वा, ११. तित्तिर-जुद्धाणि वा, १२. कवोय-जुद्धाणि वा, १३. कविंजल-जुद्धाणि वा, १४. अहि-जुद्धाणि वा, १५. सूकर-जुद्धाणि वा चक्खुदंसण-वडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ ।

२४. जे भिक्खू—१. जूहिय-ठाणाणि वा, २. हय-जूहिय-ठाणाणि वा, ३. गय-जूहिय-ठाणाणि वा, ४. गय-जूहिय-ठाणाणि वा, ५. अणियाणि वा, ६. वज्झं वा णीणिज्जमाण पेहाए चक्खुदंसण-वडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ ।

२५. जे भिक्खू—१. आघाइय ठाणाणि वा, २. माणुम्माणिय ठाणाणि वा, ३. महया-हय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइय ठाणाणि वा चक्खुदंसणवडियाए अभिसंधारेइ, अभिसधारेंतं वा साइज्जइ ।

२६. जे भिक्खू—१ कलहाणि वा, २. डिम्बाणि वा, ३. डमराणि वा, ४ महाजुद्धाणि वा, ५ महा-सगामाणि वा, ६. जूयाणि वा, ७ सभाणि वा चक्खुदसणवडियाए अभिसधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ ।

२७. जे भिक्खू—१. कट्ठ-कम्माणि वा, २. पोत्थ-कम्माणि वा, ३ चित्त-कम्माणि वा, ४ मणि-कम्माणि वा, ५. दंत-कम्माणि वा, ६. गंथिमाणि वा, ७. वेढिमाणि वा, ८. पूरिमाणि वा, ९ संघाइमाणि वा, १०. विविहाणि-कम्माणि चक्खुदंसणवडियाए अभिसधारेइ, अभिसधारेंतं वा साइज्जइ ।

२८. जे भिक्खू विरूवरूवेसु महुस्सवेसु इत्थीणि वा, पुरिसाणि वा, थेराणि वा, मज्झिमाणि वा, डहराणि वा, अणलंकियाणि वा, सुअलंकियाणि वा, गायंताणि वा, वायंताणि वा, नच्चंताणि वा, हसंताणि वा, रमंताणि वा, मोहंताणि वा, विउलं असण वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा परि-भायंताणि वा, परिभुंजताणि वा चक्खुदसणवडियाए अभिसधारेइ, अभिसधारेंत वा साइज्जइ ।

२९. जे भिक्खू समवायेसु वा, पिंडणियरेसु वा, इंदमहेसु वा जाव आगरमहेसु वा अन्नयरेसु वा विरूवरूवेसु महामहेसु चक्खुदंसणवडियाए अभिसधारेइ, अभिसधारेंतं वा साइज्जइ ।

३० जे भिक्खू बहुसगडाणि वा, बहुरहाणि वा, बहुमिलक्खूणि वा, बहुपच्चंताणि वा, अन्नयराणि वा विरूवरूवाणि महासवाणि चक्खुदंसणवडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ ।

३१. जे भिक्खू इहलोइएसु वा रूवेसु, परलोइएसु वा रूवेसु, दिट्ठेसु वा रूवेसु, अदिट्ठेसु वा रूवेसु, सुएसु वा रूवेसु, असुएसु वा रूवेसु, विन्नाएसु वा रूवेसु, अविन्नाएसु वा रूवेसु सज्जइ, रज्जइ, गिज्झइ, अज्झोववज्जइ, सज्जंतं वा, रज्जत वा, गिज्झंत वा, अज्झोववज्जंतं वा साइज्जइ ।

१६ जो भिक्षु—१ खेत, २ खाई, ३ कोट, ४ तोरण, ५ अर्गला, ६ अर्गलापास, ७ गड्ढा, ८ गुफा, ९. कूट के सदृश महल, १० गुप्तगृह (तलघर), ११ वृक्ष-गृह (वृक्ष पर या वृक्ष के आश्रय से वना घर), १२ पर्वत-गृह, १३ वृक्ष का चैत्यालय, १४ स्तूप का चैत्यालय, १५ लुहारशाला, १६ धर्मशाला, १७ देवालय, १८ सभास्थल, १९ प्याऊ, २० दुकाने, २१. गोदाम, २२ यान-गृह, २३ यान-शाला, २४ चूने के कारखाने, २५ दर्भ-कर्म के स्थान, २६ चर्म-कर्म के स्थान, २७ वल्कज-कर्म के स्थान, २८ वन-कर्म-वनस्पति के कारखाने, २९ कोयले के कारखाने, ३०. लकडी के कार-खाने, ३१ श्मशान, ३२ शान्तिकर्म करने के स्थान, ३३ पर्वत, ३४ गुफा मे बने गृह, ३५ पाषाण-कर्म के स्थान, ३६ भवनो और गृहो को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१७. जो भिक्षु- १ इक्षु वगैरह की वाटिका (अथवा सब्जी की वाटिका), २ घास का जगल, ३ प्रच्छन्न स्थान, ४ नदी के जल से घिरे हुए स्थल, ५ सघन जगल(अटवी), ६ सुदीर्घ अटवी, ७ एक जातीय वृक्षो का वन (उपवन), ८ अनेक जातीय वृक्षो का सघन वन, ९ पर्वत, १०. अनेक पर्वतो का समूह, ११ कुए, १२ तालाब, १३ द्रह, १४ नदिया, १५ बावडिया, १६ पुष्करणिया, १७ दीर्घिका—लम्बी वावडिया आदि, १८ परस्पर कपाट से सयुक्त अनेक वावडिया, १९ सरोवर, २० सरोवरपक्ति, २१ अन्योन्यसबद्ध-सरोवर को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनु-मोदन करता है ।

१८ जो भिक्षु ग्राम यावत् राजधानी को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१९ जो भिक्षु ग्राम-महोत्सव (यात्रादि) यावत् राजधानी मे होने वाले महोत्सव को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

२० जो भिक्षु ग्रामघात यावत् राजधानीघात को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

२१ जो भिक्षु ग्राम के मार्गों को यावत् राजधानी के मार्गो को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

२२ जो भिक्षु—१ अश्व, २ हस्ती, ३ महिष, ४ वृषभ, ५ कुक्कुट, ६ मर्कट (बन्दर), ७ लावक पक्षी, ८. बतख, ९ तित्तिर, १० कबूतर, ११ कुरज या चातक (पक्षी) आदि को शिक्षित करने का स्थान देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

२३. जो भिक्षु—१. अश्वयुद्ध, २. गजयुद्ध, ३. ऊँटो का युद्ध, ४. साडो (बैलो) का युद्ध,

५. महिष (भैसो) का युद्ध, ६. मेढो का युद्ध, ७ कुक्कुटयुद्ध, ८ मर्कटयुद्ध, ९. लावकयुद्ध, १० बत्तख-युद्ध, ११ तित्तिरयुद्ध, १२. कपोतयुद्ध, १३ चातकयुद्ध, १४ सर्प-(नेवले) का युद्ध, १५. शूकर-युद्ध आदि किसी भी प्रकार के युद्ध को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

२४ जो भिक्षु—१ विवाह-मडप, २ अश्व-यूथ (समूह) का स्थल, ३ गज-यूथ-स्थल, ४ सेना समुदाय अथवा ५ वधस्थान पर ले जाते हुए चोरादि को देखने लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जो भिक्षु—१ सभास्थल (भाषण के स्थान), २ धान्यादि के माप-तौल आदि का स्थल, ३ महान् शब्द करते हुए बजाये जाते वाद्य-नृत्य-गीत-तन्त्री-तल-ताल-त्रुटित-घण-मृदग आदि बजाने के स्थलो को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जो भिक्षु—१ सामान्यजन-कलह, २. राजा, युवराज आदि का गृहकलह, ३ परशत्रु राजा का उपद्रव, ४ महायुद्ध (शस्त्रयुद्ध), ५ चतुरगिणी सेना युक्त महासग्राम, ६ जुआ खेलने के स्थल, ७ जन-समूह के स्थल को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

२७ जो भिक्षु—१ काष्ठ-कर्म, २ पुस्तक-कर्म, ३ चित्र-कर्म, ४ मणि-कर्म, ५ दत-कर्म,
६ फूलो को गूथकर मालादि बनाने का स्थल,
७ फूलो को वेष्टित करके माला आदि बनाने का स्थल,
८ रिक्त जगह को फूलो आदि से पूरित करने का स्थल,
९ फूलो को सग्रह करके गुच्छा आदि बनाने का स्थल,
१० अन्य भी विविध वेष्ट कर्मों के स्थलो को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जो भिक्षु अनेक प्रकार के महोत्सवो मे जहा पर कि अनेक वृद्ध, युवक, बालक, पुरुष या स्त्रिया सामान्य वेष मे या वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर गाते, बजाते, नाचते, हसते, क्रीडा करते, मोहित करते, विपुल अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य आहार खाते या बाटते हो तो उन्हे देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

२९ जो भिक्षु मेलो, पितृभोजस्थलो, इद्रमहोत्सव यावत् आगरमहोत्सवो या अन्य भी ऐसे महोत्सवों को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

३० जो भिक्षु अनेक बैलगाडियो, रथो, म्लेच्छ या लुटेरे आदि के महाआश्रव वाले (पाप) स्थानो को देखने के लिये जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

३१ जो भिक्षु इहलौकिक या पारलौकिक, देखे या बिना देखे, सुने या बिना सुने, जाने या अनजाने रूपों को देखने मे आसक्त होता है, अनुरक्त होता है, गृद्ध होता है, मूर्च्छित होता है या आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध और मूर्च्छित होने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—कतिपय शब्दो की व्याख्या—

१. वप्पो—केदारो—खेत या क्यारिया ।

तोरणा—रण्णोदुवारादिमु—राजा के किले के द्वार पर लगे हुए कोरणी युक्त मडपाकार पत्थर आदि ।

अग्गल-पासगा—अर्गला जिसमे फसाई जाती है, वह अर्गलाघर अर्थात् भित्ति का पार्श्वभाग ।

णूम-गिह—भूमिघर—भोयरा, तलघर आदि ।

रुक्खगिह—रुक्खोच्चिय गिहागारो, रुक्खे वा गिह कड—वृक्षाकार गृह या वृक्ष के आश्रय से बना हुआ घर ।

रुक्ख वा चेइय कड—वृक्षस्य अधो व्यतरादि स्थलक—देवाधिष्ठित वृक्ष ।

थूभ वा चेइय कडं—व्यन्तरादि-कृत—देवाधिष्ठित स्तूप ।

आवेसण—लोहारकुट्टी—लोहारशाला ।

आयतण—लोगसमवायठाण—चौपाल ।

पणिय-गिह-साला—जत्थ भण्ड अच्छति त पणियगिह—दुकान ।

जत्थ विक्काइ सा साला—अहवा सकुड्ड गिह, अकुड्डा साला—जहा माल बेचा जाय वह शाला अथवा दीवाल सहित हो वह घर और बिना दीवाल की हो वह शाला । थम्भो पर टिकी हुई छत वाली शाला ।

गिरिगुहा—कदरा—गुफा ।

भवण-गिह—वणराइय मडियभवण, वण-विवज्जिय गिह—जो वन-राजि से युक्त हो वह भवन, जो वन रहित हो वह गृह ।

सूत्र १६ के पाठ मे 'उप्पलाणि, पललाणि, उज्भराणि, णिज्जराणि' शब्द अधिक मिलते है, जिनका आचाराग टोका, आचारागचूर्णि व निशीथचूर्णि में कोई सकेत भी नही मिलता है तथा जिस क्रम के बीच मे ये चार नाम है, वहा ये उपयुक्त भी नही हैं ।

ये चारो शब्द 'वप्पाणि वा फलिहाणि वा' के बाद मे है । जब कि आचारागसूत्र मे अनेक जगह वप्पाणि, फलिहाणि के बाद 'पागाराणि वा' पाठ मिलता है तथा निशीथचूर्णिकार ने भी इस सूत्र की व्याख्या मे वप्पाणि, फलिहाणि के बाद पागाराणि की ही व्याख्या की है ।

यहा आचाराग श्रु २ अ. ३ उ ३ एव अ ४ उ २ तथा निशीथचूर्णि के अनुसार मूल पाठ रखा गया है । निशीथसूत्र मे उपलब्ध इस सोलहवे सूत्र का व इसके आगे के १७वे सूत्र का पाठ चूर्णि (व्याख्या) के बाद लिपिदोष से अशुद्ध हो गया है, ऐसा स्पष्ट ज्ञात होना है ।

२ कच्छा—नद्यासन्न निम्नप्रदेशा, मूलकवालु कादि वाटिका । इक्खुमादि कच्छा—नदी के निकट का नीचा भूभाग, मूला, बेगन आदि की वाडी, ईख आदि का खेत ।

दवियाणि—घास का जगल, वन मे घास के लिये अवरुद्ध भूमि ।

गहणाणि—काननानि, निर्जल प्रदेशो अरण्यक्षेत्रम्—जलहीन वन्यप्रदेश ।

समवृत्ता वापी, चाउरंसा-पुक्खरणी, एताओ चेव दीहियाओ दीहिया, मडलिसठियाओ अन्नोन्न कवाडसजुत्ताओ गु जालिया भण्णति ।

अर्थात् जो समगोलाकार हो वह वापी, जो चौकोर हो वह पुष्करिणी, जो लम्बी हो वह दीर्घिका कहलाती है और मडलाकार स्थित अन्यान्य कपाटसयुक्त गु जालिया कहलाती है। ये बावडियो के ही प्रकार है।

ग्रामादि के चार सूत्र है, उन सभी शब्दो के अर्थ पाचवे उद्देशक मे कर दिये गये है। पाठक वहाँ से मूल पाठ व अर्थ समझ ले।

आस-सिक्खावण—आसकरण, एव सेसाणि वि—अश्व आदि को शिक्षा देने का स्थान।

युद्धसबधी सूत्र मे "मिढ (मेढा) शब्द और अहि (सर्प) शब्द अधिक है। शेष शब्द शिक्षित करने के सूत्र के समान समझना।

कविजल—कपिरिव जवते ईषत् पिगलो वा। कमनीय शब्द पिजयति—चातक पक्षी।

६. **जूहिय**—यहा चूर्णिकार ने तीन शब्द करके अर्थ किये है--

१ उज्जूहिय, २. निज्जूहिय, ३ मिहुज्जूहिय। यहाँ तीसरा अर्थ प्रासगिक लगता है —

वधू-वर-परिआणं, वधु-वरादिक तत्स्थान, वेदिकादि । एव हय-गय-यूथादि स्थानानि—विवाहमडप आदि।

अन्य प्रकार से व्याख्या —

गोसंखडी उज्जूहिगा भन्नति, गावीण णिवेढणा परियाणादि णिज्जूहिगा (भन्नति) गावीओ उज्जूहिताओ अडविहुत्तिओ उज्जूहिज्जंति।

इसका अर्थ विद्वान् पाठक स्वय समझने का प्रयत्न करे।

सेना से चूर्णिकार ने चार प्रकार के सेना-समुदाय का सग्रह किया है तथा वध के लिए ले जाते हुए चोर आदि का निर्देश भी व्याख्या मे किया है। आचारागसूत्र मे वैसा पाठ भी उपलब्ध है किन्तु निशीथसूत्र के मूल पाठ मे वह वाक्य नही मिलता है।

अक्खाणगादि आघाइयं, आख्यायिकास्थानानि-कथानकस्थानानि – कथा के स्थान।

कलह, डिंब, डमर ये सभी क्लेश के प्रकार है। 'महायुद्ध' तथा 'महासग्राम' ये लडाई के प्रकार हैं। आचाराग व निशीथ मे इस सूत्र के विवेचन मे केवल एक "कलह" शब्द का ही निर्देश है। किन्तु प्रतियो मे भिन्न-भिन्न पाठ मिलते हैं। निशीथसूत्र व आचारागसूत्र मे उपलब्ध अन्य शब्द ये है—

१. खाराणि वा, २ वेराणि वा, ३ बोलाणि वा, ४ दो रज्जाणि वा, ५ वैरज्जाणि वा, ६ विरुद्ध-रज्जाणि वा।

प्रारम्भ के तीन शब्द निशीथ मे और अतिम तीन शब्द आचाराग मे अधिक मिलते हैं, इनमे से बोलाणि का समावेश कलहाणि मे हो जाता है। शेष पाच भावात्मक है। स्थल विषयक सूत्रोक्त विषय मे इनकी सगति न होने से तथा भाष्य, चूर्णि मे भी न होने से इन शब्दों को मूल मे नही रखा है।

चित्तकम्माणि—चित्ताणं लेपारमादी। —आचा., चित्तलेपा पसिद्धा—निशीथ।

कई प्रतियों में 'चित्रकर्म' एक शब्द मिलता है और कई प्रतियो में 'चित्रकर्म', 'लेप्यकर्म'

ये दो शब्द मिलते है । आचाराग के चूर्णिकार ने एक शब्द की व्याख्या की ही है और निशीथचूर्णि में दो शब्द होने का निर्देश है । दोनो उद्धरण ऊपर दिये गये हैं ।

गथिम, वेढिम आदि का निशीथ मे पुष्पसम्बन्धी अर्थ किया है और आचाराग मे वस्त्रादि से वेष्टन करना आदि अर्थ किया है ।

कई प्रतियो मे "पत्तच्छेज्जकम्माणि" शब्द अधिक मिलता है किन्तु दोनो सूत्रो की चूर्णियो मे यह शब्द नही है । आचाराग टीका मे यह शब्द है । प्रतियो मे इस सूत्र के अन्त मे "विहिमाणि" शब्द भी है, परन्तु उसका निर्देश चूर्णि या टीका मे नही है ।

आचाराग टीका मे गथिमादि चार शब्द पहले है और कट्ठकम्माणि आदि शब्द बाद मे है । किन्तु दोनो चूर्णिकारो ने पहले कट्ठकम्माणि आदि की व्याख्या करके उसके बाद गथिम आदि की व्याख्या की है ।

यह सूत्र, कई प्रतियो मे इन सूत्रो के प्रारभ मे या भिन्न-भिन्न स्थलो मे मिलता है किन्तु निशीथचूर्णिकार ने जहा इसकी व्याख्या की है वहीं इस सूत्र को रखा है ।

आचाराग सूत्र मे इस सूत्र की व्याख्या १२व अध्ययन की टीका मे है और शेष सभी सूत्रो की व्याख्या ग्यारहवें अध्ययन मे है । किन्तु आचारागचूर्णि मे और निशीथचूर्णि मे सूत्रस्थल एव शब्दस्थल मे पूर्णत समानता है । दोनो चूर्णियो मे इसके बाद महामहोत्सवो का कथन किया गया है ।

महोत्सव, महामहोत्सव और महाश्रवस्थानो के तीन सूत्रो की व्याख्या भाष्य गाथाओ मे उपलब्ध है । किन्तु निशीथ की प्रतियो मे एक सूत्र का मूल पाठ ही मिलता है । चूर्णि मे तीनों सूत्रो के अस्तित्व का सकेत मिलता है ।

आचाराग मे दो सूत्रो का मूल पाठ व टीका उपलब्ध है तथा आचारागचूर्णि मे निशीथ-चूर्णि के समान तीनो सूत्रो के अस्तित्व का सकेत मिलता है । अत दो सूत्र आचाराग के अनुसार और एक महामहोत्सव का सूत्र निशीथ उद्देशक आठ के अनुसार रखा है । इन तीनो सूत्रो के शब्दार्थ की स्पष्टता के लिए आठवा उद्देशक देखे ।

भाष्यकार ने गाथा ४१३७, ४१३८ एव ४१३९ मे क्रमश उत्सवो के लिए—'इत्थिमादि ठाणा', महामहोत्सवो के लिए—"समवायादि ठाणा" और महाश्रवस्थानो के लिये—"विरूवरूवादि ठाणा" शब्द का प्रयोग किया है ।

अतिम सूत्र मे सभी ज्ञात-अज्ञात और दृष्ट-अदृष्ट रूपो की आसक्ति का प्रायश्चित्त कहा है । इस सूत्र मे आसक्ति के लिए चार शब्दो का प्रयोग है, जबकि आचाराग मे पाच शब्द भी मिलते हैं । वहाँ "नो मुज्झेज्जा" शब्द अधिक है, जिसका अर्थ है मूर्च्छित न हो और उसके बाद "नो अज्झोववज्जेज्जा" अर्थात् अत्यत मूर्च्छित न हो ।

आचारागसूत्र द्वितीय श्रुतस्कध मे रूप की आसक्ति का वर्णन बारहवे अध्ययन मे है और उसके पहले ग्यारहवें अध्ययन मे शब्द की आसक्ति का वर्णन है । किन्तु निशीथसूत्र मे पहले रूप की आसक्ति का बारहवे उद्देशक मे प्रायश्चित्त कथन करके बाद मे सतरहवे उद्देशक मे शब्द की आसक्ति का प्रायश्चित्त कथन किया है । यह दोनो सूत्रो के वर्णन मे उत्क्रम है ।

शब्द, रूप आदि इन्द्रियविषयो की आसक्ति का निषेध एव उनसे उदासीन रहने के विभिन्न आगम वाक्य इस प्रकार है--

१ जो प्रमादी गुणार्थी (इन्द्रियविषयो का इच्छुक) होता है, वही अपनी आत्मा को दण्डित करने वाला कहा जाता है। —आचा. श्रु. १ अ. १ उ ४

२ जो इन्द्रियो के विषय है वे ही ससार के मूल कारण है। जो ससार के मूल कारण है वे इन्द्रियो के विषय ही है। इन इन्द्रियो के विषयो का इच्छुक महान् दु खाभिभूत होकर उनके वशीभूत होता है और प्रमादाचरण करता है। —आचा श्रु १ अ २ उ १

३ जो शब्दादि विषय है वे ससार-आवर्त है, जो ससार-आवर्त के कारण है वे शब्दादि विषय ही है। लोक मे ऊपर, नीचे, तिरछे एव पूर्व आदि दिशाओ मे जीव रूपो को देखकर और शब्दो को सुनकर उनमे मूर्च्छित होते है, यही ससार का कारण कहा गया है। जो इन विषयो से अगुप्त है, वह भगवदाज्ञा से बाहर है और पुन शब्दादि विषयो का सेवन करता है।—आचा श्रु १ अ १ उ ५

४ इन इन्द्रियविषयो पर विजय प्राप्त करना अति कठिन है जो ये इन्द्रियविषयो के इच्छुक प्राणी हैं, वे उनके प्राप्त न होने पर या नष्ट हो जाने पर शोक करते है, झूरते है, आसू बहाते हैं, पीडित होते है और महा दु खी हो जाते हैं। —आचा १ अ २ उ ५

५. जिसने शब्द, रूप, गध, रस, स्पर्शों की आसक्ति के परिणामो को सम्यक् प्रकार से जानकर उनका त्याग कर दिया है वह साधक आत्मार्थी है, ज्ञानी है, शास्त्रज्ञ है, धर्मी है और सयमवान् है। —आचा श्रु १ अ २ उ १

६ शब्दो और रूपो के प्रति उपेक्षाभाव रखता हुआ मुनि जन्म-मरण से विमुख रहकर सयमाचरण द्वारा जन्म-मरण से छूट जाता है। —आ श्रु १, अ ३, उ १

७ जीव इन्द्रियविषयो में गृद्ध होकर कर्मो का सचय करते है।—आचा श्रु १ अ ३ उ २

८ चक्षु आदि इन्द्रियो का निरोध करने वाले कोई मुनि पुन मोहोदय से कर्मबध के कारणभूत इन इन्द्रियविषयो मे गृद्ध हो जाते है। वे बाल जीव कर्मबधन से मुक्त नही होते, सयोगो का उल्लघन नही कर पाते, मोह रूपी अधकार मे रहकर मोक्ष मार्ग को नही समझ पाते, वे भगवदाज्ञा की आराधना के लाभ को भी प्राप्त नही कर सकते। —आचा श्रु १ अ ४ उ. ४

९ अल्प सामर्थ्य वाले के लिए इन्द्रियविषयो का त्याग करना अत्यन्त कठिन है।

—आचा श्रु १ अ ५ उ १

१० अनेक ससारी प्राणी रूप आदि मे गृद्ध होकर अनेक योनियो मे परिभ्रमण कर रहे है। वे प्राणी वहा अनेक कष्टो को प्राप्त होते है। —आचा श्रु १ अ ५ उ १

११ बाल जीव रूपादि मे आसक्त होकर या हिसादि में आसक्त होकर धर्म से च्युत हो जाते है और ससार मे भ्रमण करते हैं। —आचा श्रु १ अ ५ उ ३

१२ रूपादि मे आसक्त जीव दु खी होकर करुण विलाप करते हैं। फिर भी उन कर्मों के फल से वे मुक्त नही हो सकते। —आचा श्रु १ अ ६ उ. १

१३. आचा श्रु २ अ १५ मे पाँचवे महाव्रत की पाँच भावनाओ मे शब्दादि विषयो के त्याग का तथा उन पर राग-द्वेष न करने का कथन है तथा प्रश्नव्याकरणसूत्र के पाचवे सवरद्वार में भी विषयो को आसक्ति के त्याग का विस्तृत कथन है ।

१४ ज्ञातासूत्र अ ४ मे कछुए के दृष्टांत से इन्द्रियनिग्रह करने का कथन है और अ सत्रहवे मे "अश्व" के दृष्टात द्वारा इन्द्रिय-विषयो मे आसक्त होने का दुष्परिणाम और अनासक्त रहने का सुपरिणाम कहा है ।

१५. उत्तरा. अ २९ मे पाँचो इन्द्रियो के निग्रह करने के फल का कथन है ।

१६ उत्तरा अ. ३२ की ६५ गाथाओ मे शब्दादि विषयो का स्वरूप, आसक्ति, उससे होने वाली जीवो की प्रवृत्तियाँ और उनका परिणाम बताकर उससे विरक्त होने का परिणाम भी कहा गया है । एक-एक इन्द्रियविषय की आसक्ति से मरने वाले प्राणियो के दृष्टात भी दिये गये है ।

१७. उत्तरा अ १६ मे ब्रह्मचर्य की दसवी समाधि मे पाचो इन्द्रियविषयो का और चौथी पाचवी समाधि मे रूप व शब्द का वर्जन करने का उपदेश है तथा अन्य समाधियो मे भी इन्द्रिय-विषय के त्याग का कथन है ।

१८ भगवतीसूत्र श १२, उ २ मे कहा है कि एक-एक इन्द्रिय के वश मे होकर जीव कर्मों की प्रकृति, स्थिति, रस एव प्रदेशो की वृद्धि करता है, असातावेदनीय का बारम्बार बध करता है और चार गति रूप ससार मे परिभ्रमण करता है ।

१९ धर्म पर श्रद्धा करने वाले प्राणी भी इन्द्रियो के विषयो मे मूर्च्छित हो कर सयम का पालन नही कर सकते है । —उत्तरा अ १० गा २०.

२० आत्मनिग्रह न करने वाले और रस आदि इन्द्रियविषयो मे गृद्ध मुनि कर्मबन्धनो का मूल से छेदन नही कर सकते । —उत्तरा अ २० गा ३९

२१ उत्तरा अ. २३ गा ३८ मे वश मे नही की गई इन्द्रियो को आत्माशत्रुओ मे गिना गया है ।

२२ मार्ग मे चलता हुआ मुनि इन्द्रियविषयो का परित्याग करता हुआ गमन करे ।
—उत्तरा अ २४ गा ८

२३ इन्द्रियो के विषयो मे यतना (विवेक) करने वाला ससार मे भ्रमण नही करता है ।
—उत्तरा अ ३१ गा ७

२४ अजितेन्द्रिय होना कृष्णलेश्या का लक्षण है तथा जितेन्द्रिय होना पद्मलेश्या का लक्षण है । —उत्तरा अ ३४ गा. २२

२५ कामगुणो के कटु विपाक को जानने वाला पण्डित मुनि मनोज्ञ शब्दादि विषयो को स्वीकार नही करता है ।

२६ ज्ञातासूत्र अध्य २ मे शरीर के प्रति अनासक्तभाव से आहार करने का एव अध्य. १८ में खाद्य पदार्थों के प्रति अनासक्तभाव रखने का एक-एक दृष्टान्त द्वारा विस्तृत कथन किया गया है ।

अनेक स्थलो को देखने के लिए जाने वाला मुनि उनके प्रति राग-द्वेष करके कर्मबन्ध करता है, आरम्भजन्य कार्य की वचन से प्रशसा करता है और यह अच्छा बनाया, ऐसा सोचकर सावद्य कर्मों का अनुमोदन भी करता है । अथवा कभी बनाने वाले की निन्दा या प्रशसा भी करता है ।

सूत्रोक्त स्थानो पर रहे हुए जलचर, स्थलचर, खेचर आदि प्राणी भिक्षु को देखकर त्रास को प्राप्त होवे, इधर-उधर दौडे, खाते-पीते हो तो अतराय दोष लगे इत्यादि कारण से भी असयम और कर्मबन्ध होता है । अत भिक्षु विषयेच्छा से निवृत्त होकर शुद्ध सयम की आराधना करे ।

उद्देशक ९ मे राजा या रानी को देखने के लिए एक कदम भी जाने का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है और इस बारहवे उद्देशक मे विभिन्न स्थलो को देखने के लिए जाने का लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है । भिक्षु को इन स्थलो के देखने का सकल्प भी नही करना चाहिए । यदि कदाचित् सकल्प हो भी जाय तो उसका निरोध करके स्वाध्याय ध्यान सयमयोग मे लीन हो जाना चाहिए ।

आहार की कालमर्यादा के उल्लंघन का प्रायश्चित्त—

३२ जे भिक्खू पढमाए पोरिसीए असणं वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पडिग्गाहेत्ता पच्छिम पोरिसिं उवाइणावेइ उवाइणावेंत वा साइज्जइ ।

३२ जो भिक्षु प्रथम प्रहर मे अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ग्रहण करके उसे अतिम चौथी प्रहर मे रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित आता है ।)

विवेचन—उत्तराध्ययनसूत्र के छब्बीसवे अध्ययन मे भिक्षु की दिनचर्या का वर्णन करते हुए गाथा १२ और ३२ मे तीसरे प्रहर मे गोचरी जाने का विधान है ।

भगवतीसूत्र, अतकृद्दशासूत्र, उपासकदशासूत्र आदि मे अनेक स्थलो पर तीसरे प्रहर मे गोचरी जाने वालो का वर्णन है ।

दशाश्रुतस्कध दशा ७ मे प्रतिमाधारी भिक्षु के लिए दिन के तीन विभागो मे से किसी भी एक विभाग मे गोचरी करने का विधान है । वहा प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ किसी भी प्रहर का विधान या निषेध नही है ।

बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक ५ मे कहा है कि सूर्यास्त या सूर्योदय के निकट समय मे आहार करते हुए भिक्षु को यह ज्ञात हो जाय कि सूर्योदय नही हुआ है या सूर्यास्त नही हुआ है या सूर्यास्त हो गया है, उस समय यदि भिक्षु मुख मे से, हाथ मे से व पात्र मे से आहार को परठ देता है तो भगवदाज्ञा का उल्लघन नही करता है, किन्तु जानकारी होने के बाद आहार करता है तो उसे प्रायश्चित्त आता है ।

बृहत्कल्प उद्देशक ४ मे कहा है कि प्रथम प्रहर मे ग्रहण किया आहार-पानी चतुर्थ प्रहर मे रखना साधु, साध्वी को नही कल्पता है । यदि भूल से रह गया हो तो परठ देना चाहिये ।

निष्कर्ष यह है कि साधु, साध्वी साधारणतया तीसरे प्रहर मे गोचरी के लिए जाए । विशेष आवश्यक स्थिति मे वे दिन मे किसी भी समय क्षत्र की अनुकूलतानुसार गोचरी हेतु जा सकते है । किन्तु ग्रहण किये आहार को तीन प्रहर से ज्यादा रखना नही कल्पता है । यदि भूल से रह जाय तो खाना नही कल्पता है । चूर्णि मे कहा है—

"दिवसस्स पढम पोरिसीए भत्तपाण घेत्तु, चरिमंति—चउत्थ पोरिसी, त जो सपावेति, तस्स चउलहु ।"

"कालो अणुण्णातो आदिल्ला तिण्णि पहरा, बीयाइ वा तिण्णि पहरा। तम्मि अणुण्णाए काले जइवि दोसेहिं फुसिज्जति तहावि अपच्छित्ती। अणुण्णात कालातो परेण अतिकामेंतो असंतेहिं वि दोसेहिं सपच्छित्ती भवति।"

भाष्य तथा चूर्णि मे कहा गया है कि सग्रह करने से अनेक दोष उत्पन्न होते है—

१ चींटिया आदि आहार मे आ जावे तो उन्हे निकालना कठिन होता है तथा उनकी विराधना होती है।

२ कुत्ते आदि से सावधानी रखने के लिये अनेक प्रवृत्तिया करनी पडती हैं।

तथा अन्य अनेक दोषो की सभावना भी रहती है। अत भिक्षु जिस प्रहर मे आहार लावे उसी प्रहर मे खाकर समाप्त कर दे। दूसरे प्रहर मे भी नही रखे। क्योकि रखने पर उपर्युक्त दोषो की सभावना रहती है।

भाष्यकार ने यह भी कहा है कि जिनकल्पी भिक्षु यदि दूसरे प्रहर मे रखे तो उसे प्रायश्चित्त आता है। किन्तु स्थविरकल्पी भिक्षु को तीन प्रहर तक रखना अनुज्ञात है। कारणवश यतनापूर्वक रखने पर भी यदि चीटिया आ जाए तो भी उन्हे प्रायश्चित्त नही है और चौथे प्रहर मे रखने पर उक्त दोष न होने पर भी प्रायश्चित्त कहा है--

जयणाए धरेंतस्स जदि दोसा भवंति तहावि सुज्झति, आगम प्रामाण्यात् ।

—भा गा ४१४८ चूर्णि

इस सूत्र मे प्रथम प्रहर के ग्रहण किये हुए आहार को चतुर्थ प्रहर मे रखने का लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है। बृहत्कल्पसूत्र के चौथे उद्देशक मे उसे खाने का भी लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

चूर्णि के अनुसार यह सूत्र भी बृहत्कल्प उ ४ के सूत्र के समान ही होना चाहिए, क्योकि "आहच्च उवाइणाविए सिया" इस वाक्य की व्याख्या करते हुए चूर्णिकार ने खाने का भी लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है। किन्तु जिनकल्पी यदि चौथे प्रहर मे रखे या खाये तो उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

जब जितने घण्टे मिनट का दिन होता है उसमे ४ का भाग देने पर जितने घटे मिनट आएँ उन्हे सूर्योदय के समय मे जोडने पर एक पोरिसी का कालमान होता है और सूर्यास्त के समय में घटाने से चौथी पोरिसी का कालमान प्राप्त होता है।

आहार की क्षेत्रमर्यादा के उल्लघन का प्रायश्चित्त —

३३. जे भिक्खू परं अद्धजोयणमेराओ असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा उवाइणावेइ उवाइणावेंत वा साइज्जइ ।

३३ जो भिक्षु दो कोश की मर्यादा से आगे अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य ले जाता है या ले जाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—आहार ले जाने या लाने की उत्कृष्ट क्षेत्रमर्यादा का विधान उत्त अ २६ मे किया गया है तथा बृहत्कल्प उद्देशक ४ मे अर्द्ध योजन से आगे आहार ले जाने का निषेध किया गया है। यदि भूल से चला जाये तो उस आहार को खाने का निषेध किया है और खाने पर प्रायश्चित्त भी कहा है। प्रस्तुत सूत्र मे केवल मर्यादा से आगे ले जाने का ही प्रायश्चित्त कहा है।

दो कोश से आगे ले जाने से होने वाले दोष—

१ पानी की मात्रा अधिक ली जायेगी।

२ वजन अधिक हो जाने से श्रम अधिक होगा।

३ सीमा न रहने से संग्रहवृत्ति बढेगी।

४ खाद्य पदार्थों की आसक्ति की वृद्धि होगी।

५ अन्य अनेक दोषो की परम्परा बढेगी।

अर्द्धयोजन की क्षेत्रमर्यादा आगमोक्त है, सग्रहवृत्ति से बचने के लिये यह मर्यादा कही गई है। यह सीमा उपाश्रयस्थल से चौतरफी की है अर्थात् भिक्षु अपने उपाश्रय से चारो दिशा मे अर्द्ध योजन तक भिक्षा के लिये जा सकता है और विहार करने पर अपने उपाश्रय से आहार-पानी अर्द्ध योजन तक साथ मे ले जा सकता है।

यह क्षेत्रमर्यादा आत्मागुल अर्थात् प्रमाणोपेत मनुष्य की अपेक्षा से है—

एक योजन	=	४ कोस
अर्द्ध योजन	=	२ कोस
एक कोस	=	२००० धनुष
दो कोस	=	४½ माइल = ७ किलोमीटर

बृहत्कल्प उ ३ मे आधा कोस एक-एक दिशा मे अधिक कहा गया है। वह स्थडिल के लिये जाने की अपेक्षा से कहा गया है।

एक दिशा मे अढाई कोस और दो दिशाओ को शामिल करने से पाच कोस का अवग्रह कहा गया है। इसलिए क्षेत्रसीमा-परिमाण का मुख्य केन्द्र भिक्षु का निवासस्थल—उपाश्रय माना गया है—

"सेसे सकोस मंडल, मूल निबंध अणुमुयताणं।" —बृ भा. गा ४८४५

अर्थ—किसी दिशा मे पर्वत, नदी या समुद्र आदि की बाधा न हो तो अपने मूलस्थान को न छोडते हुए एक कोश और एक योजन की लम्बाई का मडल रूप अवग्रह समझना चाहिए। अर्थात् चारो दिशाओ मे जो मडलाकार क्षेत्र बनता है उसका व्यास (लंबाई) एक कोश और एक योजन का होना चाहिए।

इस प्रकार बृहत्कल्प उद्देशक ३ तथा ४ के सूत्र का सार यह है कि अपने उपाश्रय से सभी दिशाओ मे आहार ले जाना या लाना दो-दो कोस तक कल्पता है और वहा से मल-विसर्जन के लिये जाना आवश्यक हो तो आधा कोस तक और आगे जाना कल्पता है ।

रात्रिविलेपन प्रायश्चित्त—

३४. जे भिक्खू दिया गोमयं पडिग्गाहेत्ता दिया कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपत वा विलिंपतं वा साइज्जइ ।

३५ जे भिक्खू दिया गोमय पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपत वा विलिंपत वा साइज्जइ ।

३६. जे भिक्खू रत्ति गोमय पडिग्गाहेत्ता दिया कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपत वा विलिंपत वा साइज्जइ ।

३७. जे भिक्खू रत्ति गोमयं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वण आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपतं वा विलिंपंत वा साइज्जइ ।

३८ जे भिक्खू दिया आलेवणजाय पडिग्गाहेत्ता दिया कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपत वा विलिंपंतं वा साइज्जइ ।

३९ जे भिक्खू दिया आलेवणजाय पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपत वा विलिंपंतं वा साइज्जइ ।

४०. जे भिक्खू रत्तिं आलेवणजाय पडिग्गाहेत्ता दिया कायंसि वण आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ ।

४१. जे भिक्खू रत्ति आलेवणजायं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वण आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा आलिंपत वा विलिंपंत वा साइज्जइ ।

३४. जो भिक्षु दिन मे गोबर ग्रहण कर दूसरे दिन शरीर के व्रण पर आलेपन या विलेपन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३५ जो भिक्षु दिन मे गोबर ग्रहण कर रात्रि मे शरीर के व्रण पर आलेपन या विलेपन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३६ जो भिक्षु रात्रि मे गोबर ग्रहण कर दिन मे शरीर के व्रण पर आलेपन या विलेपन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३७ जो भिक्षु रात्रि मे गोबर ग्रहण कर रात्रि मे शरीर के व्रण पर आलेपन या विलेपन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३८ जो भिक्षु दिन मे विलेपन के पदार्थ ग्रहण कर दूसरे दिन शरीर के व्रण पर आलेपन या विलेपन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३९ जो भिक्षु दिन मे विलेपन के पदार्थ ग्रहण कर रात्रि मे शरीर के व्रण पर आलेपन या विलेपन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४० जो भिक्षु रात्रि मे विलेपन के पदार्थ ग्रहण कर दिन मे शरीर के व्रण पर आलेपन या विलेपन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४१ जो भिक्षु रात्रि मे विलेपन के पदार्थ ग्रहण कर रात्रि मे शरीर के व्रण पर आलेपन या विलेपन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—गोबर अथवा विलेपनयोग्य अन्य पदार्थ औषध रूप मे व्रण आदि पर विलेपन करना आवश्यक हो तो स्थविरकल्पी भिक्षु इन्हे दिन मे ग्रहण करके उसी दिन, दिन मे उपयोग मे ले सकता है । सूत्रोक्त चौभगीद्वय मे कहे अनुसार रात्रि मे या दूसरे दिन उपयोग मे लेने पर, रात्रि मे रखने का और उपयोग मे लेने का लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

ग्यारहवे उद्देशक मे आहार करने की अपेक्षा से ऐसी ही चौभगी के द्वारा गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है, रात्रि मे प्रक्षेपाहार की अपेक्षा विलेपन का दोष अल्प होने से इसका यहाँ लघु-चौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है ।

चौभंगी और सन्निधि-सग्रह सबधी विवेचन ग्यारहवे उद्देशक के अनुसार जान लेना चाहिये ।

भाष्य मे कहा गया है कि तत्काल का (ताजा) भैस का गोबर विषहरण के लिये अति उत्तम होता है, उसके न मिलने पर गाय का गोबर भी उपयोग मे लेना लाभदायक है । धूप लगा हुआ या ज्यादा समय का या कुछ-कुछ सूखा गोबर अधिक लाभप्रद नही होता है ।

अत आवश्यक परिस्थिति मे रात्रि मे भी उपयोग करना पड जाय तो सूत्रोक्त लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

विलेपन के अन्य पदार्थ प्रयोग विशेष से तैयार किये जाते है । ये लम्बे समय तक भी उपयोग मे लेने योग्य होते है । फिर भी तीव्र वेदना के कारण प्रस्तुत सूत्रो मे कहे गये समय मे उपयोग करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

ये विलेपन के पदार्थ दिन में लगा देने के बाद रात्रि मे भी शरीर पर लगे रह सकते है । इससे कोई प्रायश्चित्त नही आता है ।

विलेपन के पदार्थ गुण की अपेक्षा चार प्रकार के होते हैं—

१ वेदना को उपशात करने वाले, २ फोडे आदि को पकाने वाले,
३ पीव व खून बाहर निकाल देने वाले, ४. घाव भर देने वाले ।

गृहस्थ से उपधि वहन कराने का प्रायश्चित्त—

४२. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा उवहिं वहावेइ, वहावेंतं वा साइज्जइ ।

४३ जे भिक्खू तन्नीसए असण वा पाण वा खाइम वा साइमं वा देइ, देंत वा साइज्जइ ।

४२ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से अपनी उपधि (सामान) वहन कराता है या वहन कराने वाले का अनुमोदन करता है ।

४३ जो भिक्षु भार वहन कराने के निमित्त से उसे अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—भिक्षु को अत्यन्त अल्प उपधि रखने का आगम मे विधान है । जिनको भिक्षु स्वय सहज ही उठाकर विहार कर सकता है । उपधि सम्बन्धी विस्तृत विवेचन सोलहवे उद्देशक के सूत्र ३९ मे देखें ।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण रखे गये उपकरण अधिक हो जाने से अथवा शास्त्र आदि का वजन अधिक हो जाने से गृहस्थ से वहन कराने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है ।

विधि के अनुसार रुग्ण साधु की उपधि अन्य स्वस्थ साधु उठा सकता है । गृहस्थ को साथ रखना व सामान उठवाना सयम की विधि नही है । गृहस्थ के चलने आदि प्रवृत्तियो मे जो भी सावद्य कार्य होता है उसका पापबध अनुमोदन रूप मे साधु को भी होता है । कदाचित् वह उपधि गिरा दे, तोड-फोड दे, अयोग्य स्थान मे रख दे या लेकर भाग जाय तो असमाधि उत्पन्न होती है ।

भार अधिक होने से अथवा चलने से उस गृहस्थ को परिताप उत्पन्न होता है । श्रम के कारण यदि वह रुग्ण हो जाए तो औषध उपचार करना कराना आदि अनेक दोषो की परम्परा का होना सभव रहता है ।

गृहस्थ को मार्ग मे आहार का सयोग न मिलने पर भिक्षु के सकल्पो की वृद्धि होती है अथवा वह अपने गवेषणा करके लाये आहार मे से उसे देता है तो दूसरे सूत्र के अनुसार वह प्रायश्चित्त का पात्र होता है ।

भारवाहक मजदूरी लेना चाहे तो उस निमित्त से अपरिग्रह महाव्रत के सम्बन्ध मे दोषोत्पत्ति होती है ।

उसे आहार देने पर दानदाताओ को ज्ञात हो जाने पर साधु के प्रति अप्रीति व दान की भावना मे कमी आ सकती है ।

अत भिक्षु को इतनी ही उपधि रखनी चाहिये जिसे वह स्वय उठा सके । परिस्थितिवश भी कभी अधिक उपधि रखना व गृहस्थ से उठवाना पडे तो अन्य आवश्यक सावधानिया रखे और सूत्रोक्त प्रायश्चित्त भी स्वीकार करे ।

महानदी पार करने का प्रायश्चित्त—

४४. जे भिक्खू इमाओ पंच महण्णवाओ महाणईओ उद्दिट्ठाओ, गणियाओ वंजियाओ, अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरइ वा, संतरइ वा, उत्तरंत वा संतरंतं वा साइज्जइ। तं जहा—

१ गंगा, २ जउणा, ३ सरयू, ४. एरावई, ५ मही।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

४४ गगा, यमुना, सरयू, ऐरावती और माही ये पाच महानदिया कही गई है, गिनाई गई है, प्रसिद्ध है, इनको जो भिक्षु एक मास मे दो बार या तीन बार पैदल पार करता है अथवा नाव आदि से पार करता है या पार करने वाले का अनुमोदन करता है।

इन ४४ सूत्रोक्त स्थानो का सेवन करने वाले को लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—मासकल्प विहारेण सकृत् कल्पते एव उत्तरितु। तस्मिन्नेव मासे द्वि-तृतीय वारा प्रतिषेध। - चूर्णि।

मासकल्प विहार की अपेक्षा एक महीने मे एक बार एक नदी उतरना कल्पता है किन्तु उसी महीने मे दो-तीन बार उतरना नही कल्पता है।

आठ महीनो मे कुल नौ बार उतरने पर प्रायश्चित्त नही आता है। जिसमे प्रथम महीने मे दो बार और शेष सात महीनो मे सात बार नदी पार की जा सकती है।

दशाश्रुतस्कध दशा २ मे एक मास मे तीन बार और एक वर्ष मे १० बार उपर्युक्त ये बडी नदिया पार करने का सबल दोष कहा है।

बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक ४ मे इन बडी नदियो मे एक मास मे दो या तीन बार उतरने का निषेध है। साथ ही अर्द्ध जघा प्रमाण जल वाली छोटी नदियो को पार करना कल्पनीय कहा है।

दुक्खुत्तो तिक्खुत्तो—दो शब्द कहने का आशय यह है कि प्रथम मास मे तीन बार और शेष मासो मे दो-दो बार महा नदी मे उतरने या पार करने पर प्रायश्चित्त आता है। पहले महीने मे दो बार और शेष महीनो मे एक-एक बार उतरने पर शबल दोष नही होने का तथा प्रायश्चित्त नही आने का कारण चूर्णिकार ने मासकल्प विहार बताया है। विशेष स्पष्टीकरण के लिए दशा द २ का विवेचन देखे।

उत्तरण सतरण- -बाहाहि व पाएहि व उत्तरण, सतर तु सतरण।
त पुण कु भे दइए, नावा उडुपाइएहि वा ॥ ४२०९ ॥

भुजाओ से या पैरो से पार करना 'उत्तरण' कहलाता है। कु भ, दीवडी नावा, छोटी नावा तुम्बा आदि के द्वारा पार करना 'सतरण' कहलाता है।

इमाओ पच—पचण्ह गहणेण, सेसाओ सूतिता महासलिला।
तत्थ पुरा विहरिसु, ण य ताओ कयाइ सुक्खति ॥ ४२११ ॥

अर्थ—पाच नदियो के कथन से शेष बडी नदियाँ भी सूचित की गई है। प्राचीन काल के विचरण क्षेत्र मे ये पाच प्रमुख नदिया कभी नही सूखती थी और प्रसिद्ध थी। अत सूत्र मे इनका नाम और सख्या का निर्देश है। उपलक्षण से जिस समय जो बडो नदिया हो, उन्हे भी समझ लेना चाहिए।

महण्णव—महासलिला 'बहु उदको'—अधिक जल वाली।

महाणईओ—प्रधान नदिया।

बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक ४ मे तथा आचा श्रु २ अ ३ उ २ मे पैरो से चल कर नदी पार करने की विधि बताई गई है तथा आचा श्रु २ अ ३ उ १ व २ मे नावा से नदी पार करने को विधि और उपसर्ग आने पर की जाने वाली विधि का विस्तृत वर्णन है।

प्रस्तुत सूत्र मे निर्दिष्ट पाच नदिया भी कभी कही अल्प उदक वाली हो सकती है। बृहत्कल्पसूत्र उद्देशक ४ मे कुणाला नगरी के समीप ऐरावती नदी मे अल्प पानी होना बताया है।

भिक्षु को उत्सर्ग विधान के अनुसार जल का स्पर्श करना भी नही कल्पता है। किन्तु विहार मे नदी पार करना पडे तो यह आपवादिक विधान है। बृहत्कल्पभाष्य मे तथा निशीथभाष्य मे इस विषय के अपवाद और विवेक का विस्तृत विवेचन किया गया है। स्थलमार्ग मे कितना चक्कर हो तो कितने जल मार्ग से जाना, उसमे भी पृथ्वीकाय, हरी-घास, फूलन आदि के आधार पर अनेक विकल्प किये है।

प्रायश्चित्त मे भी अनेक विकल्प दिये है। नावा कुभादि से तैरने की विधि भी बताई गई है। इसके लिये भाष्य का अध्ययन करना चाहिये।

बारहवें उद्देशक का साराश

१-२ त्रस प्राणियो को बाधना या खोलना।
३ बार-बार प्रत्याख्यान भग करना।
४ प्रत्येककाय मिश्रित आहार करना।
५ सरोम चर्म का उपयोग करना।
६ गृहस्थ के वस्त्राच्छादित तृणपीढ आदि पर बैठना।
७ साध्वी की चादर गृहस्थ से सिलवाना।
८ पृथ्वी आदि पाँच स्थावरकायिक जीवो की किंचित् भी विराधना करना।
९ सचित्त वृक्ष पर चढना।
१०-१३ गृहस्थ के बर्तनो मे खाना, गृहस्थ के वस्त्र पहनना, गृहस्थ की शय्या आदि पर बैठना, गृहस्थ की चिकित्सा करना।
१४ पूर्वकर्मदोष युक्त आहार ग्रहण करना।
१५ उदकभाजन (गृहस्थ के कच्चे पानी लेने-निकालने के बर्तन) से आहार ग्रहण करना।
१६-३० दर्शनीय स्थलो को देखने जाना।

३१ मनोहर रूपो मे आसक्त होना।

३२ प्रथम प्रहर मे ग्रहण किया हुआ आहार चतुर्थ प्रहर मे खाना।

३३ दो कोश से आगे ले जाकर आहार-पानी का उपयोग करना।

३४-४१ गोबर या लेप्य पदार्थ रात्रि मे लगाना या रात से रखकर दिन मे लगाना।

४२-४३ गृहस्थ से उपधि वहन कराना तथा उसे आहार देना।

४४ बडी नदियो को महिने मे एक बार से अधिक उतर कर या तैर कर पार करना।

इत्यादि प्रवृत्तियाँ करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

इस उद्देशक के २९ सूत्रो के विषयो का कथन निम्न आगमो मे है, यथा—

३ बारबार प्रत्याख्यान भग करना शबलदोष है। —दशा द २

४ सचित्त पदार्थ मिश्रित आहार खाने का निषेध। —आचा श्रु २ अ १ उ १

५ सरोम चर्म के लेने का निषेध। —बृहत्कल्प उ ३

८ पाच स्थावर कायो की विराधना करने का निषेध। —दशवै अ ४ तथा अ ६
—आचा श्रु १ अ १ उ २-७

९ वृक्ष पर चढने का निषेध। —आचा श्रु २ अ ३ उ ३

१० गृहस्थ के बर्तन मे खाने का निषेध। —दशवै अ ३ तथा अ ६
—सूय श्रु १ अ २ उ २ गा २०

११ गृहस्थ का वस्त्र उपयोग मे लेने का निषेध। —सूय श्रु १ अ ९ गा २०

१२ गृहस्थ के खाट पलग आदि पर बैठने का निषेध। —दशवै अ ३ तथा अ ६
—सूय श्रु १ अ ९ गा २१

१३ गृहस्थ की चिकित्सा करने का निषेध। —दशवै अ ३ तथा अ ८ गा ५०
—उत्तरा अ १५ गा ८

१४ पूर्वकर्मदोष युक्त आहार ग्रहण करने का निषेध। —आचा श्रु २ अ १ उ ६

१६-३१ दर्शनीय स्थलो मे जाने का तथा मनोहर रूपो मे आसक्ति करने का निषेध।
—आचा श्रु २ अ १२

३२-३३ प्रथम प्रहर मे ग्रहण किये हुए आहार को चौथे प्रहर मे खाने का निषेध तथा दो कोश उपरात आहार ले जाने का निषेध। —बृहत्कल्प उ ४

४४ बडी नदियो को पार करने का निषेध। —दशा द २, बृहत्कल्प उ. ४

इस उद्देशक के १५ सूत्रो के विषयो का कथन अन्य आगमो मे नहीं है, यथा—

१-२ रस्सी आदि मे पशुओ को बाधना खोलना नही।

६ गृहस्थ के वस्त्र से अच्छादित पीढ आदि पर बैठना नही।

७	गृहस्थ से साध्वी की चद्दर सिलाना नही ।
१५	उदकभाजन से आहार लेने का निषेध ।
३४-४१	गोबर तथा विलेपन पदार्थ को रात्रि मे ग्रहण करने आदि का निषेध आगमो मे नही है किन्तु औषध-भेषज के संग्रह का निषेध ।—प्रश्न श्रु २ अ ५ सू ७ मे है ।
४२-४३	विहार मे गृहस्थ से भारवहन कराने का तथा उसे आहार देने का निषेध ।

।। बारहवा उद्देशक समाप्त ।।

तेरहवाँ उद्देशक

सचित्त पृथ्वी आदि पर खड़े रहने आदि का प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ ।

२. जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए ठाणं वा, सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ ।

४. जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ ।

५. जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ ।

६. जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू चित्तमंताए लेलूए ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ ।

८. जे भिक्खू कोलावाससि वा दारुए जीवपइट्ठिए, सअंडे जाव मक्कडासंताणए ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ ।

१. जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर खड़े रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२. जो भिक्षु सचित्त जल से स्निग्ध भूमि पर खड़े रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३. जो भिक्षु सचित्त रजयुक्त भूमि पर खड़े रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४. जो भिक्षु सचित्त मिट्टीयुक्त भूमि पर खड़े रहना, सोना या बैठना करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५ जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी पर खडे रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

६ जो भिक्षु सचित्त शिला पर खडे रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

७ जो भिक्षु सचित्त शिलाखड या पत्थर आदि पर खडे रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

८ जो भिक्षु घुन या दीमक लगे हुए जीवयुक्त काष्ठ पर तथा अण्डो से यावत् मकडी के जालो से युक्त स्थान पर खडे रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—इन सूत्रो का विवेचन और शब्दो की व्याख्या उद्देशक ७, सूत्र ६८ से ७५ तक के आठ सूत्रो मे की जा चुकी है।

अनावृत ऊँचे स्थानो पर खडे रहने आदि का प्रायश्चित्त—

९. जे भिक्खू थूणंसि वा, गिहेलुयंसि वा, उसुयालंसि वा, कामजलंसि वा, दुब्बद्धे दुण्णिखित्ते, अनिकंपे चलाचले ठाणं वा, सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ।

१०. जे भिक्खू कुलियंसि वा, भित्तिंसि वा, सिलंसि वा, लेलुंसि वा, अंतरिक्खजायंसि, दुब्बद्धे, दुण्णिखित्ते, अनिकंपे, चलाचले ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ।

११ जे भिक्खू खंधंसि वा, फलिहंसि वा, मंचंसि वा, मंडवंसि वा, मालंसि वा, पासायंसि वा, हम्मतलंसि वा, अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिखित्ते, अनिकंपे, चलाचले ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएइ, चेएंतं वा साइज्जइ।

९ जो भिक्षु स्तम्भ, देहली, ऊखल अथवा स्नान करने की चौकी आदि जो कि स्थिर न हो, अच्छी तरह रखे हुए न हो, निष्कम्प न हो किन्तु चलायमान हो उन पर खडे रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

१० जो भिक्षु सोपान, भीत, शिला या शिलाखण्ड-पत्थरादि आकाशीय (अनावृत ऊचे) स्थान, जो कि स्थिर न हो, अच्छी तरह रखे हुए न हो, निष्कम्प न हो किन्तु चलायमान हो उन पर खडे रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

११ जो भिक्षु स्कन्ध पर, फलक पर, मच पर, मण्डप पर, माल पर, प्रासाद पर, हवेली के शिखर पर इत्यादि जो आकाशीय (अनावृत ऊचे) स्थान जो कि अस्थिर हो, अच्छी तरह बने हुए न हो, निष्कम्प न हो किन्तु चलायमान हो वहाँ पर खडे रहना, सोना या बैठना आदि करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—शब्दो की व्याख्या—

थूणा-वेली—छोटा थम्बा ।

गिहेलुको—उम्बरो—देहली ।

असुकाल—उक्खल—ऊखल ।

कामजल—ण्हाणपीढ—स्नान की चौकी ।

सिलसि-लेलु सि—ये शब्द इन सूत्रो मे दो बार आये है । पहले सचित्त रूप मे और बाद मे आकाशीय रूप से प्रयुक्त हुए हैं ।

कुलियसि—मिट्टी की दीवार या पतली दीवार ।

भित्तिसि—ईंट, पत्थर आदि की दीवार अथवा नदी का तट ।

खधसि—"खध पागारो पेढ वा"—कोट, पीठिका या स्तम्भगृह ।

फलिहसि—लकडी का तखत, घाटिया अथवा खाई के ऊपर बना स्थल या अर्गला ।

मचसि—मच, समभूमि से ऊचा स्थान ।

मालसि—"गिहोवरि मालो" दूसरा मजिल आदि ।

पासायसि—"णिज्जूह-गवक्खोवसोभितो पासादो" सुशोभित महल ।

हम्मतलसि—"सव्वोवरि तल"—शिखर स्थान अथवा छत ।

दुब्बद्धे—बास आदि रस्सी से ठीक बधे न हो ।

दुणिक्खित्ते—ठीक से स्थापित न हो ।

अणिकपे-चलाचले—"अनिष्प्रकपित्वादेव चलाचल चलाचलनस्वभाव"

ठाण-सेज-निसीहियं—चूर्णिकार ने इन तीन शब्दो की व्याख्या प्रारम्भ मे की है और बाद मे चार शब्दो की व्याख्या भी की है । वहाँ तीसरा शब्द "णिसेज्ज" अधिक कहा है । किन्तु आचारागसूत्र मे तथा निशीथ उद्देशक पाँच मे तीन शब्द ही है । अत यहाँ भी मूल मे तीन शब्द ही रखे हैं, जिसमे उन स्थानो पर की जाने वाली सभी प्रवृत्तियो का समावेश हो जाता है—१ कायोत्सर्ग करके खडे रहना या बिना कायोत्सर्ग किए खडे रहना । २ किसी भी आसन मे शयन करना । ३ स्वाध्याय करने के लिए या आहार करने के लिए बैठना ।

पूर्व सूत्रोक्त आठ स्थानो मे ये कार्य करने का निषेध पृथ्वी आदि की विराधना के कारण किया है और इन तीन सूत्रो मे भिक्षु के गिरने की सम्भावना के कारण निषेध है । क्योकि ये स्थान ऊँचे और अनावृत अर्थात् सभी दिशाओ मे खुले आकाश वाले है । ये बिना सहारा के स्थान होने से साधु के गिर पडने की या उपकरण आदि के गिरने की सम्भावना रहती है, जिससे आत्मविराधना, उपकरणो का विनाश और जीवविराधना हो सकती है । अत ऐसे स्थानो में खडे रहना, सोना, बैठना आदि कार्य नही करना चाहिए ।

आचाराग श्रु २, अ २, उ १ मे ऐसे स्थानो में भिक्षु के ठहरने का निषेध किया गया है । कदाचित् ऐसे स्थानो मे ठहरना पडे तो अत्यन्त सावधानी रखने का निर्देश किया है तथा असावधानी से होने वाली अनेक प्रकार की विराधनाओ का स्पष्टीकरण भी किया है ।

अंतरिक्षजात—मच, माल, मकान की छत आदि स्थलो की ऊचाई तो उनके नाम से ही स्पष्ट हो जाती है, अत. अतरिक्षजात का "ऊचे स्थान" ऐसा अर्थ नही करना चाहिये, किन्तु "आकाशीय-अनावृतस्थल" ऐसा अर्थ करना चाहिये अर्थात् सूत्र कथित ऊँचे स्थलो के चौतरफ भित्ति आदि न होकर खुला आकाश हो तो वे ऊचे स्थल अतरिक्षजात विशेषण वाले कहे जाते है। यही अर्थ आचा श्रु २, अ २, उ १ के इस विषयक विस्तृत पाठ से स्पष्ट होता है। क्योकि सूत्रगत ऊचे स्थल यदि भित्ति आदि से चौतरफ आवृत हो तो गिरने आदि की कही गई सम्भावना सगत नही हो सकती है।

शिल्पकलादि सिखाने का प्रायश्चित्त—

१२. जे भिक्खू अण्णउत्थिय वा गारत्थिय वा--१ सिप्प वा, २. सिलोग वा, ३. अट्ठावयं वा, ४. कक्कडग वा, ५ वुग्गह वा, ६ सलाह वा सिक्खावेइ, सिक्खावेंतं वा साइज्जइ।

१२ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को---१. शिल्प, २ गुणकीर्तन, ३ जुआ खेलना, ४ काकरी खेलना, ५ युद्ध करना, ६ पद्य रचना करना सिखाता है या सिखाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—सिप्प—"तुण्णागादि" = सिलाई आदि शिल्प।

सिलोग—"वण्णणा" = प्रशसा, गुणग्राम करना।

अट्ठावय—चौपड पासादि से जुआ खेलना।

कक्कडय—"कक्कडग-हेऊ = काकरी कौडियो से खेलने का एक प्रकार।

वुग्गह—"वुग्गहो-कलहो" = झगडना, युद्ध कला।

सलाह —"सलाहा-कव्वकरणप्पओगा" = काव्य-रचना करना।

चूर्णिकार ने "अट्ठावय" "कक्कडय" की व्याख्या अन्य प्रकार से भी की है, यथा—

"इमं अट्ठापदं—पुच्छितो अपुच्छितो वा भणति—अम्हे णिमित्तं न सुट्ठु जाणामो। एत्तिय पुण जाणामो—परं पभायकाले दधिकूर सुणगा वि खातिउ णेच्छिहिंति, अर्थ पदेन ज्ञायते सुभिक्खं।" = निमित्त बताना।

"कक्कडगं-हेऊं-जत्थ भणिते उभयहा वि दोसो भवति जहा—जीवस्स णिच्चत्त परिग्गहे णारगादि भावो ण भवति। अणिच्चे वा भणिते विणासी घटवत् कृतविप्रणासादयश्च दोषा भवंति। अथवा कर्कट हेतु सर्वभावैक्य प्रतिपत्तिः" = पदार्थों मे रहे विविध धर्मो का एकातिक कथन करना।

सूत्रोक्त कार्य गृहस्थ को सिखाना साधु का आचार नही है तथा उपलक्षण से ७२ कला आदि सिखाने पर भी यही प्रायश्चित्त आता है, ऐसा समझ लेना चाहिये। इनके सिखाने पर गृहस्थ के कार्यों की या सावद्य कार्यो की प्रेरणा एव अनुमोदना होती है। स्वाध्याय ध्यानादि सयम योगो की हानि भी होती है।

गृहस्थ को फरुष वचन आदि कहने के प्रायश्चित्त—

१३. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा आगाढ वयइ, वयंतं वा साइज्जइ।

१४. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा फरुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ ।

१५. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा आगाढं-फरुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ ।

१६. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा अण्णयरीए अच्चासायणाए अच्चासाएइ, अच्चासाएंतं वा साइज्जइ ।

१३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को आवेशयुक्त वचन कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को कठोर वचन कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१५ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को आवेशयुक्त कठोर शब्द कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१६ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की किसी भी प्रकार की आशातना करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भिक्षु को किंचित् भी कठोर भाषा बोलना नही कल्पता है। अत्यल्प फरुष वचन बोलने पर निशीथ उद्देशक २ सूत्र १९ से लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है तथा उद्देशक १० मे आचार्य या रत्नाधिक को कठोर वचन बोलने आदि का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है। इन प्रस्तुत सूत्रो मे किसी भी गृहस्थ को कठोर शब्द कहने या अन्य किसी प्रकार से उनकी आशातना-अवहेलना करने का लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है। आगाढ आदि शब्दो की व्याख्या दसवे उद्देशक मे देखे।

भिक्षु को सदा सबके लिये हितकारी, परिमित और मधुर शब्द ही कहने चाहिए। चाहे वह छोटा साधु हो या बडा साधु हो, कोई छोटा बड़ा गृहस्थ हो अथवा बच्चे आदि भी क्यो न हो, किसी को कठोर शब्द कहना, तिरस्कार करना या अन्य किसी तरह से उनकी अवहेलना करना उचित नही है। ऐसा करने पर सयम दूषित होता है, अन्य का अपमान करना कषाय उत्पत्ति का कारण होता है। अतएव वह इन सूत्रो से प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

कठोर भाषा बोलने मे मलिनभाव होने से कर्म बध होता है तथा कलह उत्पति का निमित्त भी हो जाता है।

भाषा सम्बन्धी विवेक का कथन दशवेकालिक सूत्र अ ४-६-७-८-१० मे, आचा. श्रु २, अ. ४ मे तथा प्रश्नव्याकरण श्रु २, अ २ मे है तथा उत्तराध्ययन आदि सूत्रो में भी अनेक जगह है। पाच समिति मे भाषासमिति का पालन अत्यन्त कठिन कहा गया है। अतः भिक्षु को सदा भाषा का अत्यन्त विवेक रखना चाहिये।

कौतुककर्म आदि के प्रायश्चित्त—

१७. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा कोउगकम्मं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१८. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा भूइकम्मं करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

१९. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा पसिणं करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

२०. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा पसिणापसिणं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

२१. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा तीयं निमित्तं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

२२. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा लक्खणं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

२३. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा वंजणं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ ।

२४. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा सुमिण कहेइ, कहेतं वा साइज्जइ ।

२५. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा विज्जं पउंजइ, पउंजंत वा साइज्जइ ।

२६. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा मंतं पउंजइ, पउंजंतं वा साइज्जइ ।

२७. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा जोगं पउंजइ, पउंजंतं वा साइज्जइ ।

१७ जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो का कौतुककर्म करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१८ जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो का भूतिकर्म करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१९ जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो से कौतुक-प्रश्न करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२० जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो के कौतुक प्रश्नो के उत्तर देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

२१ जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो के भूतकाल सम्बन्धी निमित्त का कथन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२२ जो भिक्षु अन्यतीर्थिकों या गृहस्थो को उनके (शरीर के रेखा आदि) लक्षणो का फल कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

२३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिकों या गृहस्थो को (उनके) तिल-मसा आदि व्यजनो का फल कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

२४ जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो को स्वप्न का फल कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

२५ जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थों के लिए "विद्या" का प्रयोग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६ जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो के लिए "मन्त्र" का प्रयोग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७ जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो के लिए "योग" (तन्त्र) का प्रयोग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—"**कोउय-भूतीण य करणं। पसिणस्स, पसिणापसिणस्स, णिमित्तस्स, लक्खण-वंजण सुमिणाण य वागरण। सेसाणं विज्जादियाण पउंजणता।**"

कौतुककर्म—मृतवत्सा आदि को श्मशान या चोराहे आदि मे स्नान कराना। सौभाग्य आदि के लिये धूप, होम आदि करना। दृष्टि दोष से रक्षा के लिये काजल का तिलक करना।

भूतिकर्म—शरीर आदि की रक्षा के लिये विद्या से अभिमन्त्रित राख से रक्षा पोटली बनाना या भस्मलेपन करना।

तीय निमित्त—वर्तमान काल और भविष्य काल की अपेक्षा भूतकाल के निमित्त कथन मे दोषो की सम्भावना कम रहती है, अत दसवे उद्देशक मे वर्तमान और भविष्य के निमित्त-कथन का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है और यहाँ अतीत के निमित्त-कथन का लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

पसिण—मन्त्र या विद्या बल से दर्पण आदि मे देवता का आह्वान करना व प्रश्न पूछना।

पसिणापसिण—मन्त्र या विद्या बल से स्वप्न मे देवता के आह्वान द्वारा जाना हुआ शुभाशुभ फल का कथन करना।

लक्षण—पूर्व भव मे उपार्जित अगोपाग आदि शुभ नामकर्म के उदय से शरीर, हाथ-पाव आदि मे सामान्य मनुष्य के ३२, बलदेव वासुदेव के १०८ तथा चक्रवर्ती या तीर्थकर के १००८ बाह्य लक्षण होते है, अन्य अनेक आतरिक लक्षण भी हो सकते है। ये लक्षण रेखा रूप मे या अगोपाग की आकृति रूप होते है तथा ये लक्षण स्वर एव वर्ण रूप मे भी होते है। शरीर का मान, उन्मान और प्रमाण ये भी शुभ लक्षण रूप होते है।

शरीर का आयतन एक द्रोण पानी के बराबर हो तो वह पुरुष "मानयुक्त" कहा जाता है।

शरीर का वजन अर्द्धभार हो तो वह पुरुष 'उन्मानयुक्त' कहा जाता है।

शरीर की अवगाहना १०८ अगुल हो तो वह पुरुष 'प्रमाणयुक्त' कहा जाता है।

व्यंजन—उपर्युक्त लक्षण तो शरीर के साथ उत्पन्न होते हैं और बाद मे उत्पन्न होने वाले 'व्यजन' कहे जाते हैं। यथा—तिल, मस, अन्य चिह्न आदि।

विद्यामन्त्र—जिस मन्त्र की अधिष्ठायिका देवी हो वह 'विद्या' कहलाती है और जिस मन्त्र का अधिष्ठायक देव हो वह 'मन्त्र' कहलाता है। अथवा विशिष्ट साधना से प्राप्त हो वह 'विद्या' और केवल जाप करने से जो सिद्ध हो वह 'मन्त्र' कहा गया है।

योग—वशीकरण, पादलेप, अतर्धान होना आदि 'योग' कहे जाते हैं। ये योग विद्यायुक्त भी होते है और विद्या के बिना भी होते हैं।

अन्य विशेष जानकारी के लिये दसवे उद्देशक के सातवे सूत्र का विवेचन देखे।

मार्गादि बताने का प्रायश्चित्त—

२८. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा नट्ठाणं, मूढाणं, विप्परियासियाणं मग्ग वा पवेएइ, संधि वा पवेएइ, मग्गाओ वा संधि पवेएइ, संधीओ वा मग्ग पवेएइ, पवेएतं वा साइज्जइ।

२८ जो भिक्षु मार्ग भूले हुए, दिशामूढ हुए या विपरीत दिशा मे गए हुए अन्यतीर्थिको या गृहस्थो को मार्ग बताता है या मार्ग की सधि बताता है अथवा मार्ग से सधि बताता है या सधि से मार्ग बताता है या बताने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—संधि—अनेक मार्गों के मिलने का स्थान या अनेक मार्गों का उद्गम स्थान।

मग्गाओ वा संधि—मार्ग से सधिस्थान कितना दूर है, कहा है यह बताना।

संधिओ वा मग्ग—सधिस्थान से गन्तव्य मार्ग बताना, उसकी दिशा बताना।

मार्ग बताने के बाद व्यक्ति स्वय की गलती से अन्यत्र चला जाय, समझने मे भूल हो जाय या मार्ग लम्बा लगे, विकट लगे, चोर लुटेरे आ जाय, शेर आदि आ जाय इत्यादि कारणो से भिक्षु के प्रति अनेक प्रकार के मलिन विचार या गलत धारणा हो सकती है। मार्ग मे पानी, वनस्पति, त्रस जीव आदि हो तो उनकी विराधना भी हो सकती है।

आचा श्रु २, अ ३, उ ३ मे बताया गया है कि विहार मे चलते हुए भिक्षु से कोई गृहस्थ पूछ ले कि 'यहा से अमुक गाव कितना दूर है या अमुक गाव का मार्ग कितनी दूरी पर है?' तो भिक्षु उसका उत्तर न दे किन्तु मौन रहे या सुना अनसुना करके आगे गमन करे तथा जानते हुए भी मैं नही जानता हू अथवा मै जानता हू पर कहूगा नही, ऐसा न कहे केवल उपेक्षाभाव रखकर मौन रहे।

आचारागसूत्र के इस विधान का तात्पर्य भी यही है कि भिक्षु के कहने मे भूल हो जाय या सुनने वाले के बराबर समझ मे न आने से भ्रम हो जाय, कभी गृहस्थ मार्ग भूल जाए या मार्ग मे उसे अधिक समय लग जाय, गर्मी का समय (मध्याह्न) हो जाय या रात्रि हो जाय, भूख प्यास से व्याकुल हो जाय इत्यादि अनेक दोषो की सम्भावना रहती है। अत भिक्षु ऐसे प्रसगो मे विवेकपूर्वक उपेक्षा भाव रखता हुआ गमन करे। कभी परिस्थितिवश या अन्य किसी कारण से हिताहित का विचार करके मार्ग बताना पडे तो विवेकपूर्ण भाषा मे मार्ग बतावे तथा यथायोग्य सूत्रोक्त प्रायश्चित्त स्वीकार कर ले।

धातु और निधि बताने का प्रायश्चित्त—

२९. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा धाउं पवेदेइ, पवेदेंतं वा साइज्जइ।

३०. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा निहिं पवेदेइ, पवेदेंतं वा साइज्जइ।

२९ जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थों को धातु बताता है या बताने वाले का अनुमोदन करता है ।

३० जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो को निधि (खजाना) बताया है या बताने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—धातु तीन प्रकार के होते है—१ पाषाणधातु, २ रसधातु, ३ मिट्टीधातु ।

१. किसी पाषाण (पत्थर) विशेष के साथ लोहा आदि का युक्ति पूर्वक घर्षण करने से सुवर्ण आदि बनता है, वह 'पाषाणधातु' कहा जाता है ।

२ जिस धातु का पानी ताम्र आदि धातु पर सिचन करने पर सुवर्ण आदि बनता है, वह 'रस धातु' कहा जाता है ।

३ जिस मिट्टी को किसी अन्य पदार्थों के सयोग से या लोहे आदि पर घर्षण करने से सुवर्ण आदि बनता है वह 'मिट्टी धातु' कहा जाता है ।

भिक्षु को किसी के द्वारा या स्वत किसी धातु की या निधि की जानकारी हो जाय तो गृहस्थ को बताना नही कल्पता है । बताने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है ।

गृहस्थ को धातु, निधि बताने पर वह अनेक आरम्भमय प्रवृत्तियो मे अथवा अन्य पाप कार्यो मे वृद्धि कर सकता है । एक को बताने पर अनेको को मालूम पडने पर परम्परा बढती है । किसी को बताये, किसी को नही बताये तो राग-द्वेष की वृद्धि होती है । अतराय के उदय से किसी को सफलता न मिले तो अविश्वास होता है । अत भिक्षु को इन दोषस्थानो से दूर ही रहना चाहिए ।

निधि के निकालने मे पृथ्वीकाय, त्रसकाय आदि के विराधना की सम्भावना रहती है । यदि किसी निधि का कोई स्वामी हो तो उससे कलह होने की या दण्डित होने की सम्भावना भी रहती है ।

पात्र आदि में अपना प्रतिबिम्ब देखने का प्रायश्चित्त—

३१. जे भिक्खू मत्तए अप्पाणं देहइ, देहत वा साइज्जइ ।

३२ जे भिक्खू अद्दाए अप्पाणं देहइ, देहंतं वा साइज्जइ ।

३३. जे भिक्खू असीए अप्पाणं देहइ, देहतं वा साइज्जइ ।

३४. जे भिक्खू मणिए अप्पाणं देहइ, देहंतं वा साइज्जइ ।

३५. जे भिक्खू कुंड-पाणए अप्पाणं देहइ, देहंतं वा साइज्जइ ।

३६. जे भिक्खू तेल्ले अप्पाणं देहइ, देहत वा साइज्जइ ।

३७. जे भिक्खू महुए अप्पाणं देहइ, देहंतं वा साइज्जइ ।

३८. जे भिक्खू सप्पिए अप्पाणं देहइ, देहंतं वा साइज्जइ ।

३९. जे भिक्खू फाणिए अप्पाणं देहइ, देहंतं वा साइज्जइ ।

४०. जे भिक्खू मज्जए अप्पाणं देहइ, देहंतं वा साइज्जइ ।

४१. जे भिक्खू वसाए अप्पाणं देहइ, देहंत वा साइज्जइ ।

३१ जो भिक्षु पात्र मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३२ जो भिक्षु अरीसा मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३३ जो भिक्षु तलवार मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३४ जो भिक्षु मणि मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३५ जो भिक्षु कुंडे आदि के पानी मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३६ जो भिक्षु तेल मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३७ जो भिक्षु मधु (शहद) मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३८ जो भिक्षु घी मे अपना प्रतिबिम्ब देखना है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३९ जो भिक्षु गीले गुड मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

४० जो भिक्षु मद्य मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है ।

४१ जो भिक्षु चरबी मे अपना प्रतिबिम्ब देखता है या देखने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—यहाँ बारह सूत्रो से बारह पदार्थों मे अपना प्रतिबिम्ब देखने का प्रायश्चित्त कहा है । पात्र शब्द से साधु के पात्रो का एव गृहस्थ के बर्तनो का कथन है । सूत्र मे कहे गये तेल, घी, गुड भिक्षा मे ग्रहण किये हुए हो सकते है । मधु, वशा कभी औषध निमित्त से ग्रहण किये हुए हो सकते है । अन्य तलवार, अरीसा, मद्य आदि साधु ग्रहण नही करता है किन्तु भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर वहाँ उनमे मुख देखना सम्भव हो सकता है । भाष्य मे सूत्रगत शब्दो का सग्रह इस प्रकार किया है—

"दप्पण मणि आभरणे, सत्थ दए भायणऽन्नतरए य ।
तेल्ल-महु-सप्पि-फाणित, मज्ज-वसा-सुत्तमादीसु ।।४३१८।।

इस गाथा में पात्र के अतिरिक्त सभी पदो का सग्रह किया गया है तथा मणि के साथ आभूषण का एव 'सुत्त' शब्द से इक्षुरस का भी कथन किया गया है ।

दशवैकालिक सूत्र अ ३ मे दर्पण आदि में अपने प्रतिबिम्ब को देखना साधु के लिए अनाचरणीय कहा है ।

व्याख्याकार ने दर्पण आदि मे अपना मुख (चेहरा) देखने मे अनेक दोषो की सम्भावना बताई है । यथा—अपने रूप का अभिमान करेगा, अपने को रूपवान् देखकर विषयेच्छा होगी । विरूप देखकर निदान करेगा, वशीकरणादि सीखेगा या शरीरबकुश बनेगा, हर्ष-विषाद करेगा । दर्पण देखते समय कोई गृहस्थ आदि की दृष्टि पड जाय तो साधु की या सघ की हीलना होगी ।

अत. भिक्षु सूत्रोक्त पदार्थों मे या ऐसे अन्य स्थलो मे अपना मुख देखने का सकल्प भी न करे । किन्तु आत्मभाव मे लीन रहकर सयम का और जिनाज्ञा का पालन करे ।

वमन आदि औषधप्रयोग करने का प्रायश्चित्त—

४२. **जे भिक्खू वमणं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।**

४३ **जे भिक्खू विरेयण करेइ, करेत वा साइज्जइ ।**

४४. **जे भिक्खू वमण-विरेयण करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।**

४५. **जे भिक्खू आरोगियपडिकम्म करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।**

४२ जो भिक्षु वमन करता है या वमन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४३ जो भिक्षु विरेचन करता है या विरेचन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४४ जो भिक्षु वमन और विरेचन करता है या करने का अनुमोदन करता है ।

४५ जो भिक्षु रोग न होने पर भी उपचार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—यहाँ चौथे सूत्र मे बिना रोग के औषध-उपचार करने का प्रायश्चित्त कहा है । इसी आशय से वमन, विरेचन के तीन सूत्र भी समझने चाहिए । अर्थात् किसी कारण के बिना या रोग के बिना कोई भी औषधप्रयोग नही करना चाहिए, यही इन चारो सूत्रो का सार है ।

कारण होने पर औषध लेने के समान वमन-विरेचन भी किया जा सकता है । यह भी उपचार का ही एक प्रकार है ।

बिना रोग के उपचार करने से शरीर-सस्कार की भावना बढती है और सयम की भावना घटती है । बिना रोग के औषध करने से कभी नया रोग भी उत्पन्न हो सकता है । अधिक वमन या विरेचन होने पर मृत्यु भी हो सकती है । परिष्ठापनभूमि के न होने से या अधिक दूर होने से अथवा गृहस्थ के बैठे रहने के कारण बाधा रोकने पर अन्य रोगादि होने की भी सम्भावना रहती है । बाधा

रुक न सके तो जहाँ बैठा हो वही मलोत्सर्ग हो जाने से वस्त्र आदि खराब हो सकते है। किसी गृहस्थ को ज्ञात होने पर अवहेलना भी कर सकता है।

भाष्यकार ने गा ४३३७ मे कहा है कि यदि किसी को यह ज्ञात हो जाय कि मुझे अमुक काल मे अमुक रोग हो ही जाता है और अमुक औषध लेने से नही होता है तो बहुत हानि या दोषो से बचने के लिए रोग के पूर्व औषध प्रयोग करना यह रोग शान्ति के लिए होने से सप्रयोजन है तथा लाभदायक है। यद्यपि उत्तराध्ययनसूत्र मे औषध सेवन का निषेध है फिर भी अल्प शक्तिवाला साधक रोग आने पर निर्वद्य चिकित्सा करे तो उसका यहाँ प्रायश्चित्त नही है।

पार्श्वस्थादि-वंदन-प्रशंसन प्रायश्चित्त—

४६. **जे भिक्खू पासत्थं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ।**

४७. **जे भिक्खू पासत्थं पसंसइ, पासंसंतं वा साइज्जइ।**

४८. **जे भिक्खू कुसीलं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ।**

४९. **जे भिक्खू कुसीलं पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ।**

५०. **जे भिक्खू ओसण्णं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ।**

५१. **जे भिक्खू ओसण्णं पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ।**

५२. **जे भिक्खू संसत्तं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ।**

५३. **जे भिक्खू संसत्तं पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ।**

५४. **जे भिक्खू णितियं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ।**

५५. **जे भिक्खू णितियं पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ।**

५६. **जे भिक्खू काहियं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ।**

५७. **जे भिक्खू काहियं पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ।**

५८. **जे भिक्खू पासणियं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ।**

५९. **जे भिक्खू पासणियं पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ।**

६०. **जे भिक्खू मामगं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ।**

६१. **जे भिक्खू मामगं पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ।**

६२. **जे भिक्खू संपसारियं वंदइ, वंदंतं वा साइज्जइ।**

६३. जे भिक्खू संपसारियं पसंसइ, पसंसंतं वा साइज्जइ ।

४६ जो भिक्षु पार्श्वस्थ को वन्दन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४७ जो भिक्षु पार्श्वस्थ की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४८ जो भिक्षु कुशील को वन्दन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४९ जो भिक्षु कुशील की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५० जो भिक्षु अवसन्न को वन्दन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५१ जो भिक्षु अवसन्न की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५२ जो भिक्षु समक्त को वन्दन करता है या करने वाला का अनुमोदन करता है ।

५३ जो भिक्षु ससक्त की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५४ जो भिक्षु नित्यक को वन्दन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५५ जो भिक्षु नित्यक की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५६ जो भिक्षु विकथा करने वाले को वन्दन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५७ जो भिक्षु विकथा करने वाले की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५८ जो भिक्षु नृत्यादि देखने वाले को वन्दन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५९ जो भिक्षु नृत्यादि देखने वाले की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६० जो भिक्षु उपकरण आदि पर अत्यधिक ममत्व रखने वाले को वन्दन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६१ जो भिक्षु उपकरण आदि पर अत्यधिक ममत्व रखने वाले की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६२ जो भिक्षु असयतो के आरम्भ-कार्यो का निर्देशन करने वाले को वन्दन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६३ जो भिक्षु असयतो के आरम्भ-कार्यों का निर्देशन करने वाले की प्रशसा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—चौथे उद्देशक मे सूत्र ३९ से ४८ तक पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, ससक्त और नित्यक भिक्षु को अपना साधु देने तथा लेने के व्यवहार का प्रायश्चित्त कहा गया है । वहा पर भाष्य गाथा १८२८ तथा १८३२ मे 'पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील' यह क्रम स्वीकार किया गया है । उन सूत्रो की चूर्णि मे भी यही क्रम है । किन्तु इस उद्देशक के भाष्य और चूर्णि मे 'पार्श्वस्थ, कुशील, अवसन्न' यह क्रम स्वीकार करके विस्तृत विवेचन किया है । चौथे उद्देशक से इसमे क्रम भेद क्यो है इस विषय की कोई भी चर्चा नही की गई है । अत इस उद्देशक के भाष्यानुसार ही सूत्रो का क्रम रखा है ।

प्रस्तुत प्रकरण मे पार्श्वस्थ आदि नव के अठारह सूत्र है । इनमे प्रत्येक को वन्दन करने का या उसकी प्रशसा करने का प्रायश्चित्त कहा गया है ।

'अवन्दनीय कौन होता है ?' इसका भाष्य गाथा ४३६७ मे स्पष्टीकरण किया गया है—

"मूलगुण उत्तरगुणे, सथरमाणा वि जे पमाएंति ।
ते होंतऽवदणिज्जा, तट्ठाणारोवणा चउरो ।।"

अर्थ—जो सशक्त या स्वस्थ होते हुए भी अकारण मूलगुण या उत्तरगुण मे प्रमाद करते हैं अर्थात् सयम मे दोष लगाते हैं, पार्श्वस्थ आदि स्थानो का सेवन करते है वे अवन्दनीय होते हैं। उन्हे वन्दन करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है । अर्थात् जो परिस्थितिवश मूलगुण या उत्तर-गुण मे दोप लगाते है वे अवन्दनीय नही होते है । वन्दन करने या नही करने के उत्सर्ग, अपवाद की चर्चा सहित विस्तृत जानकारी के लिये आवश्यकनिर्युक्ति गा ११०५ से १२०० तक का अध्ययन करना चाहिये ।

प्रस्तुत सूत्र की चूर्णि मे भी अपवाद विषयक वर्णन इस प्रकार है—

"वंदण विसेस कारणा इमे—

परियाय परिस पुरिसं, खेत्त काल च आगम णाउ ।
कारण जाते जाते, जहारिह जस्स जं जोग्ग ।।

वायाए-णमोक्कारो, हत्थुस्सेहो य सीसनमणं च ।
संपुच्छणं, अच्छण, छोभ वंदण, वदणं वा ।।

एयाइ अकुव्वंतो, जहारिहं अरिह देसिए मग्गे ।
न भवइ पवयण भत्ति, अभत्तिमतादिया दोसा ।। गा. ४३७२-७४

भावार्थ—दीक्षा पर्याय, परिषद्, पुरुष, क्षेत्र, काल, आगम ज्ञान आदि कोई भी कारण को जानकर चारित्र गुण से रहित को भी यथायोग्य 'मत्थएण वदामि' बोलना, हाथ जोडना, मस्तक झुकाना सुखसाता पूछना आदि विनयव्यवहार करना चाहिये । क्योकि अरिहत भगवान् के शासन मे रहे हुए भिक्षु को उपचार से भी यथायोग्य व्यवहार न करने पर प्रवचन की भक्ति नही होती है, किन्तु अभक्ति ही होती है तथा अन्य भी अनेक दोष होते है ।

उत्सर्ग से वन्दनीय अवन्दनीय—

असंजय न वंदिज्जा, मायर पियर गुरु ।
सेणावइ पसत्थार, रायाण देवयाणि य ।।

समणं वंदिज्ज मेहावी सजय सुसमाहियं ।
पचसमिय तिगुत्त, अस्सजम दुगुंच्छगं ।। ११०५-६।। आव. नि

भावार्थ—असयति को वन्दन नही करना चाहिये, वह चाहे माता, पिता, गुरु, राजा, देवता आदि कोई भी हो ।

बुद्धिमान् मुनि सुसमाधिवत, सयत, पाच समिति तीन गुप्ति से युक्त तथा असयम से दूर रहने वाले श्रमण को वन्दना करे ।

दंसण णाण चरित्त तव विणए निच्च काल पासत्था ।
एए अवदणिज्जा जे जसघाई पवयणस्स ।।११९१।। आव नि

भावार्थ—जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और विनय की अपेक्षा सदैव पार्श्वस्थ आदि भाव मे ही रहते है और जिनशासन का अपयश करने वाले है, वे भिक्षु अवन्दनीय है ।

इन्हे वन्दन करने से या इनकी प्रशसा करने से उनके प्रमादस्थानो की पुष्टि होती है, इस अपेक्षा मे इन सूत्रो मे प्रायश्चित्त कहा गया है । अवन्दनीय होते हुए भी प्रशसायोग्य गुण निम्न हो सकते है—बुद्धि, नम्रता, दानरुचि, अतिभक्ति, लोकव्यवहारशील, सुन्दरभाषी, वक्ता, प्रियभाषी आदि । किन्तु सयम मे उद्यम न करने वाले की इन गुणो के होते हुए भी प्रशसा नही करना किन्तु तटस्थ भाव रखना चाहिये । प्रशसा करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है ।

—नि भा गा ४३६३-६४

पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, ससक्त और नित्यक के स्वरूप का विवेचन चतुर्थ उद्देशक मे किया गया है, वहा से जान लेना चाहिये ।

काथिक, प्रेक्षणीक, मामक और सम्प्रसारिक का स्वरूप इस प्रकार है—

१ **काहिय—(काथिक)**—

"सज्झायादि करणिज्जे जोगे मोत्तु जो देसकहादि कहातो कहेति सो "काहिओ" ।"

स्वाध्याय आदि आवश्यक कृत्यो को छोड करके जो देशकथा आदि कथाए करता रहता है, वह 'काथिक' कहा जाता है । —चूर्णि भा ३ पृ ३९८

आहार, वस्त्र, पात्र, यश या पूजा-प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिये जो धर्मकथा कहता है अथवा जो सदा धर्मकथा करता ही रहता है, वह भी 'काथिक' कहा जाता है । —भा गा ४३५३

समय का ध्यान न रहते हुए धर्मकथा करते रहने से प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, ध्यान आदि कार्य यथासमय नही किये जा सकते, जिससे सयमी जीवन अनेक दोषो से दूषित हो जाता है ।

अतः विकथाओं में समय बिताने वाला, आहारादि के लिये धर्मकथा करने वाला और सदा धर्मकथा ही करते रहने वाला 'काथिक' कहा गया है।

२ पासणिय (प्रेक्षणिक) –

जणवय ववहारेसु, णडणट्टादिसु वा जो पेक्खण करेति सो पासणिओ।

जनपद आदि में अनेक दर्शनीय स्थलों का या नाटक नृत्य आदि का जो प्रेक्षण करता है वह संयम लक्ष्य तथा जिनाज्ञा की उपेक्षा करने से 'पासणिय' प्रेक्षणिक कहा जाता है। —चूर्णि।

अथवा जो अनेक लौकिक (सांसारिक) प्रश्नों के उत्तर देता है या सिखाता है, उलझी गुत्थियां, प्रहेलिकाएं बताने रूप कुतूहल-वृत्ति करता है, वह भी 'पासणिय' कहा जाता है। —चूर्णि।

दूसरी वैकल्पिक परिभाषा का अर्थ तो 'कुशील' का द्योतक है, अतः यहां प्रथम परिभाषा ही प्रासंगिक है।

३. मामक –**"ममीकार करेंतो मामओ"**

गाथा –आहार उवहि देहे, वीयार विहार वसहि कुल गामे।
पडिसेहं च ममत्त, जो कुणति मामओ सो उ ॥४३५९॥

भावार्थ–जो आहार में आसक्ति रखता है, संविभाग नहीं करता है, निमन्त्रण नहीं देता है, उपकरणों में अधिक ममत्व रखता है, किसी को अपनी उपधि के हाथ नहीं लगाने देता है, शरीर में ममत्व रखता है, कुछ भी कष्ट परीषह सहने की भावना न रखते हुए सुखैषी रहता है।

स्वाध्यायस्थल व परिष्ठापनभूमि में भी अपना अलग स्वामित्व रखते हुए दूसरों को वहां बैठने का निषेध करता है। मकान में, सोने, बैठने या उपयोग में लेने के स्थानों में अपना स्वामित्व रखता है, दूसरों को उपयोग में नहीं लेने देता है। श्रावकों के ये घर या गांव आदि मेरी सम्यक्त्व में है। इनमें कोई विचर नहीं सकता इत्यादि संकल्पों से गांवों या घरों को मेरे क्षेत्र, श्रावक ऐसी चित्त-वृत्ति रखता हुआ ममत्व करता है, वह 'मामक' कहलाता है। क्योंकि ममत्व करना साधु के लिये निषिद्ध है।

ममत्व नहीं करने के आगमवाक्य –

१. **अवि अप्पणो वि देहम्मि नायरंति ममाइयं।** —दश. अ. ६, गा. २२

२. **समणं संजयं दंतं, हणिज्जा कोई कत्थइ।**
णत्थि जीवस्स णासुत्ति, एवं पेहेज्ज संजए॥ —उत्तरा. अ. २, गा. २७

३. **जे ममाइयमइं जहाइ, से चयइ ममाइयं,**
से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स णत्थि ममाइयं। —आचा. श्रु. १, अ. २, उ. ६

किसी भी पदार्थ– गांव, घर, शरीर, उपधि आदि में जिसका ममत्व अर्थात् आसक्तिभाव नहीं है, वास्तव में वही वीतरागमार्ग को जानने समझने वाला मुनि है।

इन अनेक आगमोक्त विधानो की उपेक्षा करके तथा संयम या वैराग्य भाव कम करके जो मुनि उपर्युक्त पदार्थों में ममत्व-आसक्ति करता है, उनके निमित्त से कलह करता है या अशान्त हो जाता है, वह 'मामक' कहा जाता है।

४. **"संप्रसारिक"**—

असजयाण भिक्खू, कज्जे असजमप्पवत्तेसु ।
जो देंति सामत्थ, सपसारओ उ नायव्वो ।। —भाष्य गा. ४३६१

भावार्थ—गृहस्थ के कार्यों मे अल्प या अधिक भाग लेने वाला या सहयोग देने वाला 'सप्रसारिक' कहा जाता है।

जो साधु सासारिक कार्यों मे प्रवृत्त होकर गृहस्थो के पूछने पर या बिना पूछे ही अपनी सलाह देवे कि 'ऐसा करो' 'ऐसा मत करो' 'ऐसा करने से बहुत नुकसान होगा' 'मैं कहू वैसा ही करो' इस प्रकार कथन करने वाला 'सप्रसारिक' कहा जाता है। —भा गा ४३६१

उदाहरणार्थ कुछ कार्यों की सूची--

१ विदेशयात्रार्थ जाने के समय का मुहूर्त देना।
२ विदेशयात्रा करके वापिस आने पर प्रवेश समय का मुहूर्त देना।
३ व्यापार प्रारम्भ करने का और नौकरी पर जाने का मुहूर्त बताना।
४ किसी को धन ब्याज से दो या न दो, ऐसा कहना।
५ विवाह आदि सासारिक कार्यों के मुहूर्त बताना।

६ तेजी, मदी सूचक निमित्त शास्त्रोक्त लक्षण देकर व्यापारिक भविष्य बताना अर्थात् यह चीज खरीद लो, यह बेच दो इत्यादि कहना।

इस प्रकार के और भी गृहस्थो के सासारिक कार्यों मे कम ज्यादा भाग लेने वाला 'सप्रसारिक' कहलाता है। --चूर्णि भाग ३, गा ४३६२

पार्श्वस्थादि नौ तथा दसवे उद्देशक मे वर्णित यथाछद, ये कुल दस दूषित आचार वाले कहे गये हैं। आगम के अनुसार इनकी भी तीन श्रेणियाँ बनती है—१ उत्कृष्ट दूषितचारित्र, २ मध्यम दूषितचारित्र, ३ जघन्य दूषितचारित्र।

१ प्रथम श्रेणी मे—'यथाछद' का ग्रहण होता है। इसके साथ वन्दनव्यवहार, आहार, वस्त्र, शिष्य आदि का आदान-प्रदान व गुणग्राम करने का, वाचना देने-लेने का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

२ दूसरी श्रेणी मे—'पार्श्वस्थ', 'अवसन्न', 'कुशील', 'ससक्त' और 'नित्यक' इन पाच का ग्रहण होता है। इनके साथ वन्दनव्यवहार, आहार, वस्त्रादि का आदान-प्रदान व गुणग्राम करने का, वाँचणी लेने-देने का लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है व शिष्य लेने-देने का लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

३ तृतीय श्रेणी मे—'काथिक' 'प्रेक्षणीक' 'मामक' और 'सप्रसारिक' इन चार का ग्रहण होता है। इनके साथ वन्दनव्यवहार, आहार-वस्त्र आदि का आदान-प्रदान व गुणग्राम करने का लघु-

चौमासी प्रायश्चित्त आता है। शिष्य लेन-देन का कोई प्रायश्चित्त नही बताया गया है तथा वाचणी लेन-देन का भी प्रायश्चित्त नही है।

प्रथम श्रेणी वाले की प्ररूपणा ही अशुद्ध है। अत आगमविपरीत प्ररूपणा वाला होने से वह उत्कृष्ट दोषी है।

द्वितीय श्रेणी वाले—महाव्रत, समिति, गुप्तियो के पालन मे दोष लगाते है और अनेक आचार सम्बन्धी सूक्ष्म-स्थूल दूषित प्रवृत्तिया करते है, अत ये मध्यम दोषी है।

तीसरी श्रेणी वाले एक सीमित तथा सामान्य आचार-विचार मे दोष लगाने वाले है अत ये जघन्य दोषी है। अर्थात् कोई केवल मुहूर्त बताता है, कोई केवल ममत्व करता है, कोई केवल विकथाओ मे समय बिताता है, कोई दर्शनीय स्थल देखता रहता है। ये चारो मुख्य दोष नही है अपितु सामान्य दोष है।

मस्तक व आँख उत्तमाग है। पाँव, अगुलियाँ, नख, अधमाग हैं। अधमाग मे चोट आने पर या पाँव मे केवल कीला गड जाने पर भी जिस प्रकार शरीर की शाति या समाधि भग हो जाती है। इसी प्रकार सामान्य दोष से भी सयम-समाधि तो दूषित होती ही है।

इस प्रकार तीनो श्रेणियो वाले दूषित आचार के कारण शीतलविहारी (शिथिलाचारी) कहे जाते हैं किन्तु जो इन अवस्थाओ से दूर रहकर निरतिचार सयम का पालन करते है वे उद्यतविहारी—उग्रविहारी (शुद्धाचारी) कहलाते है।

शुद्धाचारी—जो आगमोक्त सभी आचारो का पूर्ण रूप से पालन करता है। किसी कारणवश अपवाद रूप दोष के सेवन किये जाने पर उसका प्रायश्चित्त स्वीकार करता है। कारण समाप्त होने पर उस प्रवृत्ति को छोड देता है और आगमोक्त आचारो की शुद्ध प्ररूपणा करता है, उसे 'शुद्धाचारी' कहा जाता है।

शिथिलाचारी—जो आगमोक्त आचारो से सदा विपरीत आचरण करता है, उत्सर्ग अपवाद की स्थिति का विवेक नही रखता है, विपरीत आचरण का प्रायश्चित्त भी नही लेता है अथवा आगमोक्त आचारो से विपरीत प्ररूपणा करता है, उसे 'शिथिलाचारी' कहा जाता है।

आगमोक्त विधि निषेधो के अतिरिक्त क्षेत्र काल आदि किसी भी दृष्टिकोण से जो किसी समुदाय की समाचारी का गठन किया जाता है उसके पालन से या न पालने से किसी को शुद्धाचारी या शिथिलाचारी समझना उचित नही है। किन्तु जिस समुदाय मे जो रहते है, उन्हे उस सघ की आज्ञा से उन नियमो का पालन करना आवश्यक होता है। पालन न करने पर वे प्रायश्चित्त के पात्र होते है।

आगम विधानों के अतिरिक्त प्रचलित समाचारियो के कुछ नियम—

१ अचित्त कद-मूल, मक्खन, कल का बना भोजन एव बिस्कुट आदि नही लेना।

२ कच्चा दही और द्विदल के पदार्थों का संयोग नही करना और ऐसे खाद्य पदार्थ नही खाना।

३ सूर्यास्त के बाद मस्तक ढकना अथवा दिन मे भी कम्बल ओढकर बाहर जाना ।

४ लिखने के लिए फाउन्टन पेन, पेन्सिल और बिछाने के लिए चटाई, पुट्ठे आदि नही लेना ।

५ चातुर्मास मे रूई, धागा, बेडेज पट्टी आदि नही लेना ।

६ नवकारसी (सूर्योदय बाद ४८ मिनट) के पहले आहार-पानी नही लेना या नही खाना ।

७ औपग्रहिक आपवादिक उपकरण मे भी लोहा आदि धातु नही होना या धातु के औपग्रहिक उपकरण नही रखना ।

८ आज आहार-पानी ग्रहण किये गये घर से कल आहार या पानी नही लेना । अथवा सुबह गोचरी किये गये घर से दोपहर को या शाम को गोचरी नही करना ।

९ विराधना न हो तो भी स्थिर अलमारी, टेबल आदि पर रखे गये सचित्त अचित्त पदार्थों का परम्परा सघट्टा मानना ।

१० एक व्यक्ति से एक बार कोई विराधना हो जाय तो अन्य व्यक्ति से या पूरे दिन उस घर मे गोचरी नही लेना ।

११ एक साधु-साध्वी को चार पात्र और ७२ या ९६ हाथ वस्त्र से अधिक नही रखना ।

१२ चौमासी सवत्सरी को दो प्रतिक्रमण करना या पच प्रतिक्रमण करना, २० या ४० लोगस्स का कायोत्सर्ग करना ।

१३ मुँहपत्ति डोरे से नही बाँधना या २४ ही घन्टे मुँहपत्ति बाँधकर रखना ।

१४ स्वय पत्र नही लिखना, गृहस्थ से लिखवाने पर भी प्रायश्चित्त लेना अथवा पोस्टकार्ड आदि नही रखना ।

१५ अनेक साध्वियाँ या अनेक स्त्रियाँ हो तो भी पुरुष की उपस्थिति बिना साधु को नही बैठना । ऐसे ही साध्वी के लिए समझ लेना ।

१६ रजोहरण या प्रमार्जनिका आदि को सम्पूर्ण खोलकर ही प्रतिलेखन करना ।

१७ घर मे अकेली स्त्री हो तो गोचरी नही लेना ।

१८. गृहस्थ ताला खोलकर या चूलिया वाले दरवाजे खोलकर आहार दे तो नही लेना ।

१९ ग्रामान्तर से दर्शनार्थ आये श्रावको मे आहारादि नही लेना ।

२० डोरी पर कपडे नही सुखाना ।

२१ प्रवचनसभा मे साधु के समक्ष साध्वी का पाट पर नही बैठना ।

२२ दाता के द्वारा घुटने के ऊपर से कोई पदार्थ गिर जाए तो उस घर को 'असूझता' कहना या अन्य किसी भी विराधना से किसी के घर को 'असूझता' करना ।

२३ चद्दर बाँधे बिना उपाश्रय से बाहर नही जाना अथवा चद्दर चोलपट्टा गाँठ देकर नही बाँधना ।

इत्यादि भिन्न-भिन्न गच्छ समुदायो मे ऐसे अनेक नियम बनाये गये हैं जो आगम विधानो के अतिरिक्त हैं और समय-समय पर अपनी-अपनी अपेक्षाओ से बनाये गये हैं। इन्हें शिथिलाचार या शुद्धाचार की परिभाषा से सम्बन्धित करना उचित नही है। क्योकि ये केवल परम्पराएँ हैं, आगमोक्त नियम नही हैं।

धातृपिंडादि दोषयुक्त आहार करने के प्रायश्चित्त—

६४ जे भिक्खू धाईपिंड भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

६५. जे भिक्खू दूईपिंड भुंजइ, भुंजतं वा साइज्जइ।

६६. जे भिक्खू णिमित्तपिंडं भुंजइ, भुंजतं वा साइज्जइ।

६७. जे भिक्खू आजीवियपिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

६८. जे भिक्खू वणीमगपिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

६९. जे भिक्खू तिगिच्छापिंड भुंजइ, भुंजत वा साइज्जइ।

७०. जे भिक्खू कोवपिंडं भुंजइ, भुंजतं वा साइज्जइ।

७१. जे भिक्खू माणपिंडं भुंजइ, भुंजंत वा साइज्जइ।

७२. जे भिक्खू मायापिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

७३. जे भिक्खू लोभपिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

७४. जे भिक्खू विज्जापिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

७५. जे भिक्खू मंतपिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

७६. जे भिक्खू चुण्णपिंड भुंजइ, भुंजतं वा साइज्जइ।

७७. जे भिक्खू जोगपिंडं भुंजइ, भुंजतं वा साइज्जइ।

७८. जे भिक्खू अंतद्धाणपिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

६४ जो भिक्षु धातृपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

६५ जो भिक्षु दूतपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

६६. जो भिक्षु त्रैकालिक निमित्त कहकर आहार भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

६७ जो भिक्षु आजीविकपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

६८ जो भिक्षु वनीपकपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

६९ जो भिक्षु चिकित्सापिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

७० जो भिक्षु कोपपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

७१. जो भिक्षु मानपिंड भोगता है यो भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

७२ जो भिक्षु मायापिंड भोगता या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

७३ जो भिक्षु लोभपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

७४ जो भिक्षु विद्यापिंड भोगता है यो भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

७५ जो भिक्षु मन्त्रपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

७६ जो भिक्षु चूर्णपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

७७ जो भिक्षु योगपिंड भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

७८ जो भिक्षु अतर्धानपिंड (अदृष्ट रहकर ग्रहण किए हुये आहार को) भोगता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

इन ७८ सूत्रोक्त स्थानो के सेवन करने वाले को लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—अनेक दूषित प्रवृत्तियो को करके भिक्षु का आहार प्राप्त करना, उत्पादन दोष कहा जाता है। पिंडनिर्युक्ति मे इन दोषो की सख्या सोलह कही है। यहा उनमे से १४ दोषो का प्रायश्चित्त कहा गया है तथा 'अतर्धानपिंड' का प्रायश्चित्त अधिक कहा गया है। जिसका समावेश जोगपिंड मे हो सकता है।

धातृपिंड—धाय के कार्य पाच प्रकार के होते है—१ बालक को दूध पिलाना, २. स्नान कराना, ३ वस्त्राभूषण पहिनाना, ४ भोजन कराना, ५ गोद मे या काख मे रखना। ये कार्य करके गृहस्थ से आहार प्राप्त करना 'धातृपिंड' दोष कहा जाता है।

दूतीपिंड—दूती के समान इधर-उधर की बाते एक दूसरे को कहकर अथवा स्वजन सम्बन्धियो के समाचारो का आदान-प्रदान करके आहारादि लेना।

आजीविकपिंड—जाति-कुल आदि का परिचय बताकर या अपने गुण कहकर आहार प्राप्त करना।

वनीपकपिंड—दान के फल का कथन करते हुए या दाता को अनेक आशीर्वचन कहते हुए भिखारी की तरह दीनतापूर्वक भिक्षा प्राप्त करना।

क्रोधपिंड—कुपित होकर आहारादि लेना या आहारादि न देने पर श्राप देने का भय दिखाकर आहारादि लेना।

मानपिंड—भिक्षा न देने पर कहना कि 'मै भिक्षा लेकर रहूँगा।' तदनन्तर बुद्धि प्रयोग करके घर के अन्य सदस्य से भिक्षा प्राप्त करना।

मायापिंड—रूप परिवर्तन करके छलपूर्वक भिक्षा प्राप्त करना।

लोभपिंड—इच्छित वस्तु मिलने पर विवेक न रखते हुए अति मात्रा मे लेना या इच्छित वस्तु न मिले वहाँ तक घूमते रहना, अन्य कल्पनीय वस्तु भी नही लेना।

चिकित्सापिंड—गृहस्थ के पूछने पर या बिना पूछे ही किसी रोग के विषय मे औषध आदि के प्रयोग बताकर भिक्षा प्राप्त करना अथवा मेरा अमुक रोग अमुक दवा या वैद्य से ठीक हुआ था ऐसा कहकर भिक्षा प्राप्त करना चिकित्सापिड है।

विद्या, मत्र, चूर्ण, योग के प्रयोग से आहार प्राप्त करना, अदृश्य रहकर आहार प्राप्त करना तथा निमित्त बताकर आहार प्राप्त करना भी 'उत्पादना' दोष है और इनके सेवन से लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है। 'विद्या' आदि पदो की व्याख्या इसी उद्देशक मे की गई है, वहाँ से समझ लेना चाहिये।

इन दोषो के सेवन मे दाता के अनुकूल हो जाने पर वह उद्गम दोष लगा सकता है और प्रतिकूल हो जाने पर साधु की अवहेलना या निन्दा कर सकता है, जिससे धर्म की तथा जिनशासन की अपकीर्ति होती है।

इन पन्द्रह सूत्रो मे कहे गये पन्द्रह दोषस्थानो के सेवन मे दीनवृत्ति का सेवन होता है। जबकि भिक्षु सदा अदीनवृत्ति से एषणासमिति का पालन करने वाला कहा गया है, अत उसे इन प्रवृत्तियो द्वारा आहार प्राप्ति का सकल्प भी नही करना चाहिये।

निर्युक्तिकार ने उत्पादना के 'मूलकर्म' दोष का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है, और पूर्व-पश्चात् सस्तवदोष का दूसरे उद्देशक मे लघुमासिक प्रायश्चित्त कहा गया है। उत्पादना के शेष दोषो का लघुचौमासी प्रायश्चित्त इन सूत्रो मे कहा है।

तेरहवें उद्देशक का सारांश—

१-८ सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर, स्निग्ध, सचित्त रजयुक्त पृथ्वी पर, सचित्त मिट्टीयुक्त-पृथ्वी पर, सचित्त पृथ्वी पर, शिला या पत्थर पर तथा जीवयुक्त काष्ठ या भूमि पर खडा रहना, बैठना या सोना।

९-११ भित्ति आदि से अनावृत्त ऊँचे स्थानो पर खडे रहना, बैठना या सोना।

१२ गृहस्थ को शिल्प आदि सिखाना।

१३-१६ गृहस्थ को सरोष, रूक्ष वचन कहना या अन्य किसी प्रकार से उसको आशातना करना।

१७-१८ गृहस्थ के कौतुककर्म या भूतिकर्म करना।

१९-२० गृहस्थ से कौतुक प्रश्न करना या उनका उत्तर देना।

२१ भूतकाल सम्बन्धी निमित्त बताना।

२२-२४ लक्षण, व्यजन या स्वप्न का फल बताना।

२५-२७ गृहस्थ के लिये विद्या, मन्त्र या योग का प्रयोग करना।

२८ गृहस्थ को मार्गादि बताना।

२९-३० गृहस्थ को धातु या निधि बताना।

३१-४१ पात्र, दर्पण, तलवार आदि सूत्रोक्त पदार्थों मे अपना प्रतिबिम्ब देखना।

४२-४५ स्वस्थ होते हुए भी वमन-विरेचन करना या औषध सेवन करना।

४६-६३ पार्श्वस्थ, कुशील, अवसन्न, संसक्त, नित्यक, काथिक, पश्यनीक (प्रेक्षणिक), मामक, साप्रसारिक इन नौ को वन्दन करना या इनकी प्रशसा करना।

६४-७८ उत्पादन के दोषो का सेवन कर आहार ग्रहण करना एव खाना। इत्यादि प्रवृत्तियाँ करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

इस उद्देशक के ४१ सूत्रों के विषय का कथन निम्न आगमो मे है, यथा—

१-११ जीव विराधना वाले स्थानो मे तथा बिना दिवाल वाले ऊँचे स्थानो पर ठहरने का निषेध। —आचा. श्रु २, अ ७, उ १

तथा—आचा श्रु २, अ २, उ १

१२ गृहस्थ को अष्टापद, जुआ आदि सिखाने का निषेध।

—सूय श्रु १, अ ९, गा १७

१३-१६ गृहस्थ की आशातना करने का निषेध। —दश अ ९, उ ३, गा १२

१७-२७ निमित्त कथन का निषेध। —उत्तरा अ ८, अ. १५, अ १७, अ २०

—दश अ ८, गा.५०

३१-४१ अपना प्रतिबिम्ब देखना अनाचार कहा गया है। —दश अ ३, गा ३

४२-४४ स्वस्थ होते हुए भी वमन-विरेचन करना अनाचार कहा है।

—दश अ ३, गा ९

—सूय श्रु १, अ ९, गा १२

इस उद्देशक के २७ सूत्रो के विषय का कथन अन्य आगमों में नहीं है, यथा—

२८ मार्ग भूले हुए को, दिग्मूढ को और विपरीत मार्ग से जाने वाले को मार्ग बताने का प्रायश्चित्त।

२९-३० गृहस्थ को धातु या निधि बताने का प्रायश्चित्त।

४५ बिना रोग के चिकित्सा करने का प्रायश्चित्त ।

४६-६३ पार्श्वस्थ आदि को वन्दना करने का तथा उनकी प्रशसा करने का प्रायश्चित्त ।

६४-७८ धातृ-पिड आदि भोगने का प्रायश्चित्त ।

सक्षिप्त मे उत्पादन दोष रहित आहार ग्रहण करने का कथन आव. अ. ४ तथा प्रश्न श्रु २, अ १ मे है । किन्तु वहां अलग-अलग नाम एव सख्या नही कही गई है । पिंडनिर्युक्ति मे इनका नाम एव दृष्टान्तयुक्त विस्तृत विवेचन है ।

इसी तरह पार्श्वस्थ आदि के साथ परिचय करने का निषेध सूय. श्रु १. अ. ९ तथा अ १० मे है किन्तु वन्दन एव प्रशसा का स्पष्ट निषेध नही है ।

॥ तेरहवां उद्देशक समाप्त ॥

चौदहवां उद्देशक

पात्र खरीदने आदि का तथा उन्हें ग्रहण करने का प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू पडिग्गहं किणेइ, किणावेइ, कोयमाहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

२. जे भिक्खू पडिग्गह पामिच्चेइ, पामिच्चावेइ, पामिच्चमाहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

३. जे भिक्खू पडिग्गह परियट्टेइ, परियट्टावेइ, परियट्टियमाहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

४. जे भिक्खू पडिग्गह अच्छेज्ज, अणिसिट्ठ, अभिहडमाहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

१ जो भिक्षु पात्र खरीदता है, खरीदवाता है, खरीदा हुआ लाकर देते हुए से लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

२ जो भिक्षु पात्र उधार लेता है, उधार लिवाता है, उधार लाकर देते हुए से लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

३ जो भिक्षु पात्र को गृहस्थ के अन्य पात्र से बदलता है, बदलवाता है, बदला हुआ लाकर देने वाले से लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

४ जो भिक्षु छीनकर दिया जाता हुआ, दो स्वामियो मे से एक की इच्छा बिना दिया हुआ और सामने लाकर दिया हुआ पात्र लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघु-चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—इन चार सूत्रो में पात्र सम्बन्धी छह उद्गम दोषो के प्रायश्चित्तो का कथन है।

छह उद्गम दोष—

१ **क्रीत**—खरीदा हुआ पात्र
२. **प्रामृत्य**—उधार लिया हुआ पात्र
३. **परिवर्तित**—बदला हुआ पात्र
४. **आच्छिन्न**—छीनकर लाया हुआ पात्र
५. **अनिसृष्ट**—भागीदार की आज्ञा लिए बिना लाया हुआ पात्र
६. **अभिहृत**—घर से लाकर उपाश्रय मे दिया जाने वाला पात्र।

पहले, दूसरे और तीसरे सूत्र मे क्रीतादि तीन उद्गम दोषो का क्रमश प्रायश्चित्त कथन है। चौथे सूत्र में शेष तीन उद्गम दोषो का एक साथ प्रायश्चित्त कथन है।

साधु स्वय पात्रविक्रेता से पात्र खरीदे और पात्र का मूल्य किसी अनुरागी गृहस्थ से पात्र-विक्रेता को दिलावे, यह साधु का पात्र खरीदना है।

किसी अनुरागी गृहस्थ को पात्र खरीदकर लाने के लिए साधु द्वारा कहना, यह साधु का पात्र खरीदवाना है।

इसी प्रकार साधु द्वारा उधार लेना, लिवाना और परिवर्तन करना, करवाना भी समझ लेना चाहिए।

ये तीनो दोष परिग्रह महाव्रत के अतिचार रूप है।

शेष तीन दोष गृहस्थ द्वारा लगाए जाने का प्रायश्चित्त कहा गया है। क्योकि वे दोष साधु द्वारा लगाए जाना सम्भव नही है।

अथवा कदाचित् कोई ऐसी अमर्यादित प्रवृत्ति कर ले तो उसे प्रस्तुत सूत्रोक्त लघुचौमासी प्रायश्चित्त नही आता है किन्तु गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

आच्छिन्न दोष का सेवन प्रथम एव तृतीय महाव्रत के अतिचार रूप है।

अनिसृष्ट दोष का सेवन तीसरे महाव्रत का अतिचार रूप है।

अभिहृड दोष का सेवन प्रथम महाव्रत का अतिचार रूप है।

ये छहो दोष एषणासमिति के उद्गम दोष कहे गये है।

१. **क्रीत**—भिक्षु परिग्रह का पूर्ण त्यागी होता है अत क्रय-विक्रय करना उसका आचार नही है। आवश्यक उपधि और भोजन वह भिक्षावृत्ति से ही प्राप्त करता है। उत्तरा अ ३५, गा १३-१५ मे कहा है कि—

भिक्षु सोने-चादी की मन से भी कामना न करे, पत्थर और सोने को समान दृष्टि से देखे और क्रय-विक्रय की प्रवृत्ति से विरत रहे।

खरीदने वाला क्रेता (ग्राहक) होता है और बेचने वाला व्यापारी होता है। भिक्षु भी यदि क्रय-विक्रय के कार्य करे तो वह जिनाज्ञा का आराधक नही होता है।

अत भिक्षाजीवी भिक्षु को भिक्षा से ही प्रत्येक वस्तु प्राप्त करना चाहिये, किन्तु खरीदना नही चाहिये। क्योकि क्रय-विक्रय करना भिक्षु के लिये महादोष है और भिक्षावृत्ति महान् सुखकर है। —उत्तरा. अ. ३५ गा १३-१५

दशवै. अ ३, गा. ३ मे क्रीतदोष युक्त अर्थात् साधु के भाव से गृहस्थ द्वारा खरीदी हुई वस्तु ग्रहण करना भिक्षु के लिये अनाचार कहा गया है।

दशवै अ ६, गा. ४८ मे कहा है कि "क्रीत आदि दोष युक्त आहारादि ग्रहण करने वाला भिक्षु उस पदार्थ के बनने मे होने वाले पाप का अनुमोदनकर्ता होता है।" यह अनुमोदन का तीसरा प्रकार है। अनुमोदन के तीन प्रकार—

१ मन से अच्छा समझना
२ वचन से अच्छा कहना
३ काया से उसे स्वीकार करना अर्थात् उपयोग मे लेना ।

अतः भिक्षु के लिये बनाये गये या खरीदे गये पदार्थ यदि वह नही ले तो उसे किसी प्रकार का दोष नही लगता है । यदि वह ग्रहण करके उसका उपयोग करे तो कायिक अनुमोदन का दोष लगता है ।

आचा. श्रु. २, अ ६ मे साधु के लिये खरीदे गये पात्र को साधु के न लेने पर यदि गृहस्थ अपने उपयोग मे ले लेता है तो कालान्तर मे फिर कभी वही भिक्षु उस पात्र को ग्रहण कर सकता है । क्योकि वह पात्र "पुरुषान्तरकृत" हो गया है ।

आचा श्रु २, अ १, उ १ के अनुसार इस तरह पुरुषान्तरकृत बना हुआ आहार-पानी ग्रहण नही किया जा सकता ।

उत्तरा अ २०, गा ४७ मे औद्देशिक, क्रीत आदि दोषो का सेवन करने वाले भिक्षु को अग्नि की उपमा देते हुए सर्वभक्षी कहा है ।

अत साधु को खरीदने की प्रवृत्ति नही करनी चाहिये तथा साधु के निमित्त खरीदे गये पदार्थ भी उसे ग्रहण नही करने चाहिये ।

प्रामृत्य—साधु किसी से पात्र उधार लाए, बाद मे उसका मूल्य गृहस्थ दे तो इस प्रकार की प्रवृत्ति भी भिक्षु को नही करनी चाहिये । ऐसा करने से अनेक दोषो की परम्परा बढती है तथा कभी धर्म की अवहेलना भी हो सकती है ।

यदि कोई गृहस्थ भिक्षु के लिये पात्र आदि उधार लाकर दे तो भी ग्रहण करना नही कल्पता है । यह भी एषणा का दोष है । यदि उधार लाने वाला गृहस्थ परिस्थितिवश मूल्य नही चुका सकेगा तो वह महाऋणी भी बन सकता है, अत ऐसा दोषयुक्त पात्र भिक्षु के लिये अग्राह्य है ।

परिवर्तित—अपना पात्र देकर बदले मे दूसरा पात्र गृहस्थ से लेना यह परिवर्तन करना कहलाता है । ऐसा स्वय करना तथा कराना साधु को नही कल्पता है तथा गृहस्थ भी अन्य गृहस्थ से इस प्रकार पात्र परिवर्तन करके साधु को दे तो ऐसा पात्र लेना भी दोषयुक्त है । ऐसा करने पर उस परिवार के स्वजन-परिजन नाराज हो सकते है । साधु द्वारा गृहस्थ को दिया गया पात्र यदि घर ले जाने पर फूट जाए तो उसे आशका हो सकती है कि 'मुझे फूटा पात्र दे दिया होगा ।' उस पात्र मे आहारादि का सेवन करने से यदि कोई बीमार हो जाए या मर जाए तो भ्रान्ति से साधु के प्रति द्वेष भाव हो सकता है, जिससे अन्य अनेक अनर्थो के होने की सम्भावना रहती है । अत. भिक्षु स्वय गृहस्थ से पात्र का परिवर्तन न करे तथा कोई श्रद्धालु गृहस्थ इस प्रकार पात्र परिवर्तन करके दे तो भी साधु ग्रहण न करे ।

आचा श्रु. २, अ. ५ तथा ६, उ. २ मे कहा गया है कि 'भिक्षु अन्य भिक्षु के साथ भी इस प्रकार पात्रादि का परिवर्तन न करे ।'

आछिन्न—यदि कोई बलवान् व्यक्ति सत्ता के प्रभाव से किसी निर्बल व्यक्ति पर दबाव डालकर उससे पात्र को छीनकर ले और वह पात्र साधु को दे अथवा उससे ही दिलवावे तो वह

"आच्छिन्न" दोषयुक्त होता है। क्योंकि उसे लेने से निर्बल व्यक्ति को दुःख होता है, वह कभी द्वेष में आकर किसी समय साधु से पात्र छीन सकता है, फोड सकता है या अन्य किसी प्रकार से कष्ट दे सकता है।

अनिसृष्ट—यदि कही कुछ पात्र अनेक भागीदारो के स्वामित्व वाले हो तो उनमे से कोई एक भागीदार के देने की इच्छा हो, अन्य भागीदारो के देने की इच्छा न हो और उनकी अनुमति लिये बिना ही कोई साधु को पात्र दे तो वह अनिसृष्ट दोष वाला पात्र होता है।

अथवा कोई नौकर सेठ की इच्छा बिना या घर का कोई सदस्य घर के मुखिया की इच्छा बिना दे तो भी वह पात्र अनिसृष्ट दोषयुक्त होता है।

ऐसे पात्र लेने पर बाद मे क्लेश की वृद्धि हो सकती है और कोई साधु से पात्र आदि पुन. मागने के लिये भी आ सकता है या अन्य उपसर्ग भी कर सकता है। भविष्य मे पात्रादि की प्राप्ति दुर्लभ हो सकती है।

अभिहृत—यदि कोई गृहस्थ अपने घर से पात्र लाकर उपाश्रय मे देवे अथवा अन्य किसी स्थान से या किसी ग्राम से साधु के लिये पात्र लाकर घर मे रखे तो वह पात्र "अभिहृत" दोषयुक्त होता है। ऐसा पात्र लेने पर मार्ग मे होने वाली जीवो की विराधना का अनुमोदन होता है। दशवै. अ. ३ मे इसे अनाचार कहा गया है। पैदल चल कर आने वाला या वाहन से आने वाला त्रस और स्थावर जीवो की हिसा करता है, मार्ग मे वर्षा या नदी भी आ सकती है। लाने वाला व्यक्ति आधाकर्म, क्रीत आदि दोषयुक्त पात्र भी ला सकता है। अत सामने लाया गया पात्र नही लेना चाहिये।

इन छह दोषो मे से दो दोषो को दश. अ. ३ मे अनाचार कहा गया है। "परिवर्तित" दोष को छोडकर शेष ५ को दशा. द २ मे सबलदोष भी कहा गया है। आचा. श्रु. २, अ. १-२-५-६ आदि मे इन ५ दोषो से युक्त आहार, वस्त्र, पात्र को लेने का निषेध है।

अत· इन छहो को उद्गम के दोष जानकर इनका त्याग करना चाहिये। किसी परिस्थिति विशेष मे इन दोषों से युक्त पात्र लेना पडे तो लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

अतिरिक्त पात्र गणी की आज्ञा लिए बिना देने का प्रायश्चित्त—

५. जे भिक्खू अइरेगपडिग्गहं गणिं उद्दिसिय, गणिं समुद्दिसिय, तं गणिं अणापुच्छिय अणामंतिय अण्णमण्णस्स वियरइ, वियरंतं वा साइज्जइ।

५. जो भिक्षु गणी के निमित्त अधिक पात्र ग्रहण करके गणी को पूछे बिना या निमन्त्रण किये बिना अन्य किसी को देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—भिक्षु को कल्पनीय और योग्य लकडी के पात्र सर्वत्र निर्दोष नही मिलते हैं। तुम्बे के पात्र सर्वत्र सुलभ नही होते हैं और मिट्टी के पात्र सर्वत्र सुलभ होते हैं, किन्तु वे सुविधा वाले नही होते हैं। वे विशेष परिस्थिति मे कभी-कभी काम मे आते हैं।

लकडी के पात्र जहां सुलभ हो उधर से विचरण करते हुए कोई भिक्षु आचार्य के पास आ रहे हों या उधर विचरण करने जा रहे हो, उनके साथ गच्छ की आवश्यकता के लिये कुछ अतिरिक्त पात्र मगा लिये जाते हैं। कभी अत्यन्त आवश्यक हो जाने पर पात्र लाने के लिये ही भिक्षुओं को भेजा जा सकता है। जितने पात्र मगाये गये हो उससे अधिक भी मिल जाए और उचित समझे तो वह ला सकता है किन्तु आचार्य की आज्ञा बिना किसी को देना नही कल्पता है। जाते समय ही मार्ग में कोई अन्य भिक्षु मिल जाय और वह कहे कि और अधिक मिलते हो तो मेरे लिये भी कुछ पात्र लाना। उस समय यदि आचार्य निकट हो तो उनकी आज्ञा लेकर के ही लाना चाहिए। यदि आचार्य दूर हो तो बिना आज्ञा भी ला सकता है किन्तु लाने के बाद उनकी आज्ञा लेकर के ही मगाने वाले को दे सकता है। उन्हे बताये बिना और उनसे पूछे बिना किसी को देने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

भाष्यकार ने यह भी स्पष्टीकरण किया है कि मार्ग मे किसी साधु की विशेष परिस्थिति देखकर पात्र देना आवश्यक समझे तो गीतार्थ साधु स्वय भी निर्णय करके पात्र दे सकता है और बाद मे आचार्य को पात्र देने की जानकारी दे सकता है।

एक गच्छ मे अनेक आचार्य, अनेक वाचनाचार्य, प्रव्राजनाचार्य आदि हो तो सामान्य रूप से आचार्य का निर्देश करके पात्र लाना 'उद्देश' है तथा किसी आचार्य का नाम निर्देश करके पात्र लाना 'समुद्देश' है।

अतिरिक्त लाये गये पात्र आचार्य की सेवा मे समर्पित करना—'देना' है और निमन्त्रण करना 'निमन्त्रण' है। अन्य किसी को देना हो तो उसके लिए आज्ञा प्राप्त करना 'पृच्छना' है।

व्यवहार सूत्र उद्दे ८ मे ऐसे अतिरिक्त पात्र दूर क्षेत्र से लाने का कल्प बताया है। वहाँ एक दूसरे के लिए पात्र लाने का सामान्य विधान है साथ ही गणी को पूछे बिना या निमन्त्रण दिये बिना किसी को पात्र देने का निषेध भी किया है। उन्हे पूछकर निमन्त्रण करके बाद मे अन्य को देने का विधान किया गया है। प्रस्तुत सूत्र मे गणी की आज्ञा के बिना पात्र लाने एव देने का प्रायश्चित्त कहा है।

अतिरिक्त पात्र देने न देने का प्रायश्चित्त—

६. जे भिक्खू अइरेग पडिग्गहं खुड्डगस्स वा, खुड्डियाए वा, थेरगस्स वा, थेरियाए वा, अहत्थ-च्छिण्णस्स, अपायच्छिण्णस्स, अकण्णच्छिण्णस्स, अणासच्छिण्णस्स, अणोट्ठच्छिण्णस्स, सक्कस्स देइ, देंतं वा साइज्जइ।

७. जे भिक्खू अइरेग पडिग्गहं, खुड्डगस्स वा, खुड्डियाए वा, थेरगस्स वा, थेरियाए वा, हत्थ-च्छिण्णस्स, पायच्छिण्णस्स, कण्णच्छिण्णस्स, णासच्छिण्णस्स, ओट्ठच्छिण्णस्स, असक्कस्स न देइ, न देंतं वा साइज्जइ।

६ जो भिक्षु बाल साधु-साध्वी के लिए, अथवा वृद्ध साधु-साध्वी के लिए जिनके कि हाथ, पैर, कान, नाक, होठ कटे हुए नही हैं, सशक्त है, उसे अतिरिक्त-पात्र रखने की अनुज्ञा देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जो भिक्षु बाल साधु-साध्वी के लिए अथवा वृद्ध साधु-साध्वी के लिए जिनके कि हाथ, पैर, कान, नाक, होठ कटे हुए हैं अथवा जो अशक्त है, उसे अतिरिक्त पात्र रखने की अनुज्ञा नही देता है या नही देने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पूर्व सूत्र मे आवश्यकता से अधिक लाये गये सामान्य पात्र सम्बन्धी वर्णन है। इन सूत्रो मे कल्पमर्यादा से अधिक पात्र रखने के लिए देने का वर्णन है।

भाष्य गाथा ४५२४ तथा उसकी चूर्णि मे कहा गया है कि दो प्रकार के पात्र तीर्थकरो के द्वारा अनुज्ञात हैं, यथा—१ पात्र, २ मात्रक। इस के सिवाय तीसरा पात्र ग्रहण करना 'अतिरिक्त पात्र' है। पात्र एव मात्रक की सख्या विषयक विवेचन सोलहवे उद्देशक में देखें।

खुड्डक-खुड्डिका—नौ वर्ष की उम्र से लेकर १६ वर्ष की उम्र तक के साधु या साध्वी बालक वय वाले कहे जाते है। इनको आगम मे 'खुड्डग' या 'डहर' कहा गया है।

थेर-स्थविर—स्थविर तीन प्रकार के कहे गये है—१ उम्र से, २. ज्ञान से, ३ सयम पर्याय से। यहाँ पर केवल ६० वर्ष की उम्र वाले स्थविर का ही कथन समझना चाहिए।

हत्थछिन्न आदि—सूत्र मे हाथ, पाँव, ओष्ठ, नाक और कान कटे हुए का कथन है। इनका तात्पर्य यह कि किसी भी प्रकार से विकलाग हो, यथा—अन्धा, बहरा, लगडा आदि। यद्यपि ऐसे विकलागो को दीक्षा नही दी जाती है तथापि सयम लेने के बाद भी किसी कारण से कोई विकलांग हो सकता है, यहाँ इसी अपेक्षा से यह कथन समझना चाहिए।

असक्क-अशक्त—जो भिक्षु विकलाग तो नही है किन्तु अशक्त है अर्थात् निरन्तर विहार से थके हुए, रोग से घिरे हुए या अन्य किसी परीषह से घबराये हुए साधु या साध्वी को यहाँ अशक्त कहा गया है।

इस सूत्र का भावार्थ दो प्रकार से किया जा सकता है—

१ बालक या वृद्ध साधु-साध्वी जो अशक्त हो या विकलाग हो उसे अतिरिक्त पात्र दिया जा सकता है किन्तु तरुण साधु-साध्वी को और अविकलाग सशक्त बाल-वृद्ध को अतिरिक्त पात्र नही दिया जा सकता।

२. आदि एव अन्त के कथन से मध्य का ग्रहण हो जाता है, इस न्याय से आबाल-वृद्ध कोई भी साधु-साध्वी विकलाग या अशक्त हो तो उसे अतिरिक्त पात्र दिया जा सकता है किन्तु सशक्त और अविकलाग को नही दिया जा सकता। क्योकि विकलाग या रोगग्रस्त, तरुण साधु-साध्वी भी बाल एव वृद्ध के समान ही अनुकम्पा के योग्य होते हैं। रोग आदि से तरुण भी अशक्त हो जाता है।

विकलाग व अशक्त को अतिरिक्त पात्र देने का कारण यह है कि उसके औषधोपचार, पथ्य-परहेज आदि के लिए अतिरिक्त पात्र आवश्यक होता है। मल, मूत्र या कफ आदि परठने के लिए अलग-अलग पात्र आवश्यक होते हैं, अथवा विकलाग होने के कारण या अशक्ति के कारण पात्र फूट जाने की सम्भावना अधिक रहती है और वह स्वय गवेषण करके नही ला सकता है, तब वह अतिरिक्त पात्र से अपना कार्य कर सकता है।

दोनो सूत्रो मे जो प्रायश्चित्त विधान है वह गण-प्रमुख के लिए है। उन्हे ही यह निर्णय करना होता है कि कौनसे साधु या साध्वी अतिरिक्त पात्र देने के योग्य है और कौन अयोग्य हैं।

अयोग्य पात्र रखने का तथा योग्य पात्र परठने का प्रायश्चित्त—

८. जे भिक्खू पडिग्गहं अणलं, अथिरं, अधुवं, अधारणिज्जं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

९. जे भिक्खू पडिग्गहं अलं, थिरं, धुवं, धारणिज्जं न धरेइ, न धरेंतं वा साइज्जइ।

८ जो भिक्षु काम के अयोग्य, अस्थिर, अध्रुव और धारण करने के अयोग्य पात्र को धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

९ जो भिक्षु काम के योग्य, स्थिर, ध्रुव और धारण करने योग्य पात्र को धारण नही करता है या धारण नही करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पात्र आदि सभी प्रकार के उपकरण जब तक उपयोग मे आने योग्य रहे तब तक उपयोग मे लेने चाहिए। उन्हे परठ देना या गृहस्थ के पास छोड देना उचित नही है। पात्र उपयोग मे लेते-लेते खराब भी हो सकता है, कभी फूट भी सकता है तो भी उपयोग मे आने योग्य रहे तब तक उसे परठना या छोडना नही चाहिए।

यदि पात्र उपयोग मे आने योग्य नही हो, प्रतिलेखन या जीवरक्षा पूर्णतया नही हो सकती हो अथवा थेगली या बन्धन, तीन से अधिक हो गये हो तो उस पात्र को रखना नही कल्पता है।

उपयोग मे न आने योग्य पात्र को रखने मे उस पात्र के प्रति ममत्वभाव हो सकता है, यथा—'यह मेरी दीक्षा का पात्र है' इत्यादि। किन्तु भिक्षु को ममत्व न करके उसे त्याग देना चाहिए।

इन दो सूत्रा मे उपयोग मे आने योग्य पात्र को त्याग देने का तथा अनुपयोगी पात्र को रखने का लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है। बन्धन या थेगलियाँ अधिक लगाने एव रखने का प्रायश्चित्त प्रथम उद्देशक मे कहा गया है।

सूत्र मे प्रयुक्त 'अणल' आदि शब्दो का विवेचन पाँचवे उद्देशक मे देखे।

पात्र का वर्ण परिवर्तन करने का प्रायश्चित्त—

१०. जे भिक्खू वण्णमंतं पडिग्गहं विवण्णं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

११. जे भिक्खू विवण्णं पडिग्गहं वण्णमंतं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

१० जो भिक्षु अच्छे वर्ण वाले पात्र को विवर्ण करता है या विवर्ण करने वाले का अनुमोदन करता है।

११ जो भिक्षु विवर्ण पात्र को अच्छे वर्ण वाला करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पात्र यदि दिखने मे विद्रूप हो किन्तु उपयोग मे आने योग्य हो तो उसे सुन्दर बनाने के लिए किसी प्रकार का प्रयत्न नही करना चाहिए ।

पात्र यदि अत्यन्त सुन्दर मिला हो तो उसे दूसरा कोई माँग न ले या आचार्यादि स्वय न ले ले अथवा कोई चुरा न ले जाए, ऐसी भावना से पात्र को विद्रूप करने का प्रयत्न भी नही करना चाहिए ।

सयम-आराधना मे उक्त दोनो प्रकार के सकल्प एव प्रयत्न अनावश्यक है । अत भिक्षु को इस प्रकार की प्रवृत्ति नही करनी चाहिए ।

पात्र परिकर्म करने के प्रायश्चित्त–

१२. जे भिक्खू "नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा उच्छोलेंत वा पधोएंत वा साइज्जइ ।

१३ जे भिक्खू "नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा उच्छोलेंत वा पधोएतं वा साइज्जइ ।

१४. जे भिक्खू "नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण लोद्धेण वा जाव वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वल्लेज्ज वा उल्लोलेत वा उव्वलेंतं वा साइज्जइ ।

१५ जे भिक्खू "नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण लोद्धेण वा जाव वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वलेज्ज वा उल्लोलेंतं वा उव्वलेंत वा साइज्जइ ।

१६. जे भिक्खू "दुब्भिगधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा उच्छोलेंत वा पधोएत वा साइज्जइ ।

१७. जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदगवियडेण वा उसिणोवगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा उच्छोलेंतं वा पधोएत वा साइज्जइ ।

१८. जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण लोद्धेण वा जाव वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वलेज्ज वा उल्लोलेंतं वा उव्वलेंतं वा साइज्जइ ।

१९. जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण लोद्धेण वा जाव वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वलेज्ज वा उल्लोलेंतं वा उव्वलेंत वा साइज्जइ ।

१२ जो भिक्षु "मुझे नया पात्र नही मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को अल्प या बहुत अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से एक बार या बार-बार धोता है या धोने वाले का अनुमोदन करता है ।

१३ जो भिक्षु "मुझे नया पात्र नही मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को रात रखे हुए अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से एक बार या बार-बार धोता है या धोने वाले का अनुमोदन करता है ।

१४ जो भिक्षु "मुझे नया पात्र नही मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को अल्प या बहुत लोध्र से यावत् वर्ण से एक बार या बार-बार लेप करता है या लेप करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५ जो भिक्षु "मुझे नया पात्र नही मिला है" ऐसा सोचकर पात्र के रात रखे हुए लोध्र यावत् वर्ण से एक बार या बार-बार लेप करता है या लेप करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जो भिक्षु "मुझे दुर्गंध वाला पात्र मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को अल्प या बहुत अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से एक बार या बार-बार धोता है या धोने वाले का अनुमोदन करता है।

१७ जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्ध वाला पात्र मिला है' ऐसा सोचकर पात्र को रात रखे हुए अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से एक बार या बार-बार धोता है या धोने वाले का अनुमोदन करता है।

१८ जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्ध वाला पात्र मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को अल्प या बहुत लोध्र से यावत् वर्ण से एक बार या बार-बार लेप करता है या लेप करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९ जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्ध वाला पात्र मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को रात रखे हुए लोध्र यावत् वर्ण से एक बार या बार-बार लेप करता है या लेप करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचातुर्मासिक प्रार्याश्चत आता है।)

विवेचन—भिक्षु पात्र की गवेषणा करते समय ऐसा ही पात्र ले कि उसमे किसी प्रकार का परिकर्म न करना पड़। यदि गवेषणा करते हुए भी बहुत पुराना पात्र मिले या कोई अमनोज्ञ गध वाला पात्र मिले तो उसे धोने या सुगन्धित करने की प्रवृत्ति न करे।

यहाँ पहले और तीसरे सूत्र मे अल्प या अधिक जल से धोने का या कल्कादि से सुगधित करने का प्रायश्चित्त कहा है। उसके बाद दूसरे और चौथे सूत्र मे बहुदैवसिक जल से धोने का या कल्कादि से सुगधित करने का प्रायश्चित्त कहा है।

तात्पर्य यह है कि यदि सयम या स्वास्थ्य के लिये किंचित् भी प्रतिकूल न हो तो अल्प या अधिक जल से या कल्कादि से न धोए, न सुगधित करे। किन्तु आवश्यक होने पर धोना पड़े तो अनेक दिनो तक न धोए तथा रात्रि मे उन धोने और सुगधित करने के पदार्थों को पात्र में न रखे।

भाष्यकार ने कहा है कि यदि वह पात्र विषैले पदार्थ या मत्र से प्रभावित हो अथवा मद्य आदि की गन्ध युक्त हो तो अपवाद रूप मे अनेक दिनो तक कल्कादि या जल रखकर उसे शुद्ध किया जा सकता है। अथवा कभी क्षार द्रव्यो से भी शुद्ध किया जा सकता है।

इन सूत्रों मे अकारण धोने आदि का तथा कारण होने पर रात मे बासी रखकर धोने आदि का प्रायश्चित्त कहा है।

यहाँ कुल आठ सूत्र हैं—चार पुराने पात्रों के और चार दुर्गन्ध युक्त पात्रो के।

भाष्य चूर्णिकार ने इतने ही सूत्रों का कथन करते हुए व्याख्या की है। इससे अधिक सूत्रों का होना सम्भव नही लगता है।

उपलब्ध प्रतियो मे तेलादि के ४ सूत्र अधिक मिलने से १२ सूत्र होते है। कुछ प्रतियो मे सुगन्धित और नए पात्र के भी सूत्रालापक दिये हैं। यो अनेक प्रकार से और भिन्न-भिन्न सख्या मे ये सूत्र मिलते हैं। जिनकी जघन्य सख्या ८ है और उत्कृष्ट सख्या २६ है। जो भाष्य चूर्णिकार के बाद कभी जोड़ दिये गये प्रतीत होते हैं तथा इसका कारण भी अज्ञात है।

सूत्रपाठ मे "बहुदेसिएण" और "बहुदेवसिएण" एक सरीखे शब्द होने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें भी कभी लिपि दोष हुआ हो।

सूत्र पाठ के निर्णय मे निम्न भाष्य-चूर्णि के स्थल उपयोगी है—

दग कक्कादि अणवे, तेहिं बहुदेसितेहिं जे पादं।
एमेव य दुग्गंधं, धुवण-उवट्टेंत आणादी ।।४६४२।।

सुत्ते बहुदेसेण वा पादो, बहुदेवसितेण वा। एक्का पसली दो वा तिण्णि वा पसलीओ देसो भण्णति, तिण्हं परेण बहुदेसो भण्णति। अणाहारादि कक्केण वा संवासितेण, एत्थ एग रातिं सवासित त पि बहुदेवसियं भवति।

बितिय सुत्ते एसेवत्थो णवरं—बहुदेवसितेहिं सीओद-उसिणोदेहिं वत्तव्व। ततिय सुत्ते कक्को, चउत्थ सुत्ते कक्कादिएहिं चेव बहुदेवसिएहिं। जहा अणवपावे चउरो सुत्ता भणिता तहा दुग्गंधे वि चउरो सुत्ता भाणियव्वा।

इन व्याख्यायो से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले चार सूत्र पुराने पात्र की अपेक्षा से हैं। इनमे भी पहले दो सूत्र जल से धोने के है और बाद के दो सूत्र कल्कादि लगाने के हैं। इसी तरह चार सूत्र बाद मे दुर्गन्ध युक्त पात्र की अपेक्षा से है। कुल आठ सूत्र है। इसमे प्रथम सूत्र मे "बहुदेसिएण" पद है और दूसरे सूत्र मे "बहुदेवसिएण" पद है, यह भी चूर्णि से स्पष्ट हो जाता है। अत: इसी क्रम से आठ सूत्र मूल पाठ मे रखे गये है।

अकल्पनीय स्थानों में पात्र सुखाने के प्रायश्चित्त—

२०. जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा साइज्जइ।

२१. जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा साइज्जइ।

२२. जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा साइज्जइ।

२३. जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा साइज्जइ।

२४ जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा साइज्जइ ।

२५. जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा साइज्जइ ।

२६. जे भिक्खू चित्तमंताए लेलूए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा साइज्जइ ।

२७. जे भिक्खू कोलावाससि वा दारुए जीवपइट्ठिए सअंडे जाव मक्कडासंताणए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा साइज्जइ ।

२८. जे भिक्खू थूणसि वा, गिहेलुयंसि वा, उसुयालसि वा, कामजलसि वा, अण्णयरसि वा तहप्पगारसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे जाव चलाचले पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा आयावेंतं वा पयावेंत वा साइज्जइ ।

२९. जे भिक्खू कुलियसि वा, भित्तिसि वा, सिलसि वा, लेलुंसि वा अण्णयरसि वा तहप्पगारसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे जाव चलाचले पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा आयावेंत वा पयावेंत वा साइज्जइ ।

३०. जे भिक्खू खधसि वा जाव हम्मतलंसि वा अण्णयरसि वा तहप्पगारसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे जाव चलाचले पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंत वा पयावेंतं वा साइज्जइ ।

२० जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी के निकट की अचित्त पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

२१ जो भिक्षु सचित्त जल से स्निग्ध पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

२२ जो भिक्षु सचित्त रज से युक्त पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

२३ जो भिक्षु सचित्त मिट्टी बिखरी हुई पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

२४ जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

२५ जो भिक्षु सचित्त शिला पर पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

२६ जो भिक्षु सचित्त शिलाखण्ड आदि पर पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जो भिक्षु दीमक आदि जीव-युक्त काष्ठ पर तथा अंडे युक्त स्थान पर यावत् मकड़ी के जाले से युक्त स्थान पर पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जो भिक्षु स्तम्भ, देहली, ऊखल या स्नान करने की चौकी पर अथवा अन्य भी ऐसे अतरिक्षजात (आकाशीय) स्थान पर, जो कि भलीभाति बधा हुआ नही है यावत् चलाचल है, वहाँ पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जो भिक्षु मिट्टी की दीवार पर, ईंट की दीवार पर, शिला पर या शिलाखण्ड आदि पर अथवा अन्य भी ऐसे अतरिक्षजात [आकाशीय] स्थान पर, जो कि भलीभाति बधा हुआ नही हैं यावत् चलाचल है, वहा पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जो भिक्षु स्कन्ध पर यावत् महल की छत पर अथवा अन्य भी ऐसे अतरिक्षजात [आकाशीय] स्थान पर, जो कि भलीभाति बधा हुआ नहीं है यावत् चलाचल है, वहा पात्र को सुखाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—आचा. श्रु. २, अ. ६, उ. १ मे उक्त ग्यारह स्थानों मे पात्र को सुखाने का निषेध है। इनमे से आठ स्थानो का निषेध केवल जीव-विराधना के कारण है और शेष तीन स्थानों मे जीव-विराधना के साथ-साथ पात्र के गिर जाने पर उसके फूट जाने की तथा साधु के गिर जाने की भी सम्भावना रहती है। अत ऊपर से पात्र न गिरे ऐसे सुरक्षित स्थान में पात्र सुखाए जा सकते है।

पूर्व सूत्र मे पात्र धोने का प्रायश्चित्त कहा है। किसी विशेष कारण से धोने के बाद धूप मे सुखाने की आवश्यकता हो तो अयोग्य स्थानो मे सुखाने का यहा प्रायश्चित्त कहा गया है।

इन ग्यारह सूत्रो मे आये हुए शब्दो के विशेषार्थ और विवेचन तेरहवे उद्देशक के प्रारम्भ के ग्यारह सूत्रो मे दे दिए है। वहा उक्त स्थानो मे खडे रहने या ठहरने आदि के प्रायश्चित्त कहे है। यहा उन्ही स्थानो मे पात्र सुखाने का प्रायश्चित्त कहा है। इसी प्रकार इन ग्यारह स्थानो मे मल-मूत्र त्यागने का तथा वस्त्र सुखाने का प्रायश्चित्त सोलहवे और अठारहवे उद्देशक में है। सर्वत्र ग्यारह सूत्र समान हैं।

त्रस प्राणी आदि निकालकर पात्र ग्रहण करने के प्रायश्चित्त—

३१. जे भिक्खू पडिग्गहाओ तसपाणजाइं नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

३२. जे भिक्खू पडिग्गहाओ ओसहि-बीयाइं नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

३३. जे भिक्खू पडिग्गहाओ कंदाणि वा, मूलाणि वा, पत्ताणि वा, पुप्फाणि वा, फलाणि वा नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु, देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

३४. जे भिक्खू पडिग्गहाओ पुढविकायं नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

३५. जे भिक्खू पडिग्गहाओ आउक्काय नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

३६. जे भिक्खू पडिग्गहाओ तेउक्कायं नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

३१ जो भिक्षु पात्र से त्रस प्राणियो को निकालता है, निकलवाता है अथवा निकाल कर देते हुए को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

३२ जो भिक्षु पात्र से गेहूं आदि धान्य को और जीरा आदि बीज को निकालता है, निकलवाता है अथवा निकालकर देते हुए को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

३३ जो भिक्षु पात्र से सचित्त कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल निकालता है, निकलवाता है अथवा निकाल कर देते हुए को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

३४. जो भिक्षु पात्र से सचित्त पृथ्वीकाय को निकालता है, निकलवाता है अथवा निकाल कर देते हुए को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

३५. जो भिक्षु पात्र से सचित्त अप्काय को निकालता है, निकलवाता है अथवा निकाल कर देते हुए को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

३६. जो भिक्षु पात्र से सचित्त अग्निकाय को निकालता है, निकलवाता है अथवा निकाल कर देते हुए को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है । [उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ।]

विवेचन—पात्र की गवेषणा करते समय निम्नांकित बातो का ध्यान रखना आवश्यक है—

१. पात्र मे यदि मकडी आदि त्रस जीव हो तो नही लेना ।

२. उसमे धान्य या बीज रखे हुए हो तो नही लेना ।

३. उसमे कद-मूल आदि वनस्पति हो तो नही लेना ।

४. उसमे नमक आदि सचित्त पृथ्वीकाय हो तो नही लेना ।

५. उसमे सचित्त जल हो तो नही लेना ।

६. मिट्टी के पात्र मे अग्नि [खीरा आदि] हो तो नही लेना ।

७. इन जीवो या पदार्थों को स्वय निकाल करके पात्र नही लेना ।

८. गृहस्थ इन्हे निकाल कर देवे तो भी नही लेना ।

ऐसा अकल्पनीय पात्र ग्रहण करने पर इन सूत्रो से प्रायश्चित्त आता है ।

इन ६ सूत्रों का क्रम भिन्न-भिन्न तरह से उपलब्ध होता है तथा सूत्र-सख्या मे भी भिन्नता मिलती है । यहा भाष्य-चूर्णि के अनुसार क्रम रखा गया है ।

लकडी और तुम्बे के पात्र मे अग्निकाय का रखा जाना सम्भव नही है । अत यह अग्निकाय का प्रायश्चित्त कथन केवल मिट्टी के पात्र की अपेक्षा से समझना चाहिये ।

इस प्रकार के पात्र लेने मे उन जीवो को स्थानान्तरित किया जाता है तथा उनका सघट्टन, सम्मर्दन भी होता है । इसलिये ऐसे पात्र लेने का प्रायश्चित्त कहा है ।

पात्र कोरने का प्रायश्चित्त—

३७ जे भिक्खू पडिग्गह कोरेइ, कोरावेइ, कोरियं आहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

३७. जो भिक्षु पात्र को कोरता है, कोरवाता है अथवा कोरकर देते हुए को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है । [उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ।]

विवेचन—प्रथम उद्देशक मे पात्र का मुख ठीक करने का तथा विषम को सम बनाने रूप परिकर्म का प्रायश्चित्त कथन है । अन्य परिकर्मों का इस उद्देशक मे प्रायश्चित्त कहा गया है और यहा इस ३७वे सूत्र मे पात्र पर कोरनी करने का प्रायश्चित्त कहा है । पात्र मे कोरनी, खुदाई करने से होती है । ऐसा करने मे मुख्य उद्देश्य विभूषा का रहता है और विभूषावृत्ति भिक्षु के लिये दशवैकालिक आदि सूत्रो मे निषिद्ध है । भाष्यकार ने इसमे "झुषिर दोष" कहा है, क्योकि कोरणी के लिये खुदाई किये स्थान मे जीव या आहार के लेप का भलीभाति शोधन नही हो सकता है । अत ऐसा करने का यहा प्रायश्चित्त कहा गया है ।

मार्ग आदि मे पात्र की याचना करने का प्रायश्चित्त—

३८. जे भिक्खू णायग वा, अणायग वा, उवासगं वा, अणुवासगं वा गामंतरंसि वा, गामपहंतरंसि वा पडिग्गह ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायत वा साइज्जइ ।

३८ जो भिक्षु स्वजन से या अन्य से, उपासक से या अनुपासक से ग्राम मे या ग्रामपथ मे पात्र माग-माग कर याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है । [उसे लघु-चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ।]

विवेचन—पात्र की याचना पारिवारिक या अपारिवारिक गृहस्थो से भी की जा सकती है । ऐसे गृहस्थ उपासक भी हो सकते है और अनुपासक भी हो सकते है । अत विशेष स्पष्ट करने के लिये इस सूत्र मे ज्ञातिजन आदि चार प्रकार के व्यक्तियो का कथन है ।

किसी भी गृहस्थ से पात्र की याचना करनी हो तो पहले यह देखना चाहिए कि वह अपने घर मे या अपने ही किसी अन्य स्थान मे है, तो उसी समय उससे पात्र की याचना करनी चाहिए । किन्तु वह ग्राम से बाहर हो या अन्य ग्राम मे हो तो उससे याचना नही करनी चाहिए तथा ग्राम मे

भी कही मार्ग मे मिल जाए तो वहा भी उससे पात्र की याचना नही करनी चाहिए। क्योंकि वह यदि अनुरागी है तो ऐसा करने में एषणा के दोष लगने की सम्भावना रहती है और यदि वह अनुरागी नही है तो अन्य स्थान मे मागने से रुष्ट होकर वह अनादर कर सकता है अथवा पात्र होते हुए भी मना कर सकता है। अत. किसी से भी घर के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान मे या मार्ग मे पात्र की याचना नही करनी चाहिए।

परिषद् में बैठे हुए स्वजन आदि से पात्र की याचना करने का प्रायश्चित्त—

३९. जे भिक्खू णायग वा, अणायग वा, उवासगं वा, अणुवासग वा परिसामज्झाओ उट्ठवेत्ता पडिग्गहं ओभासिय-ओभासिय जायइ, जायंत वा साइज्जइ।

३९. जो भिक्षु स्वजन को या अन्य को, उपासक को या अनुपासक को परिषद् मे से उठाकर उससे मांग-माग कर पात्र की याचना करता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—पूर्व सूत्र मे किसी भी गृहस्थ से अन्य स्थान मे पात्र याचना करने का प्रायश्चित्त कहा है और इस सूत्र मे पात्रदाता के स्वगृह मे होते हुए भी यदि वह किसी एक व्यक्ति से या अनेक व्यक्तियो से बातचीत कर रहा हो या किसी परिषद् मे बैठा हो तो वहा से उसे उठाकर पात्र की याचना करने का प्रायश्चित्त कहा है।

ऐसा करने पर उनके आवश्यक वार्तालाप मे रुकावट हो जाती है, दाता या अन्य व्यक्ति रुष्ट हो सकते है। साधु के प्रति या धर्म के प्रति अश्रद्धा हो सकती है। दाता वार्तालाप मे व्यस्त होता है, अत वह पात्र होते हुए भी देने के लिये मना कर सकता है। ऐसे समय मे भिक्षु को विवेक से याचना करनी चाहिये। भिक्षु को यदि पात्र की शीघ्र आवश्यकता हो तो वह कुछ समय तक एकान्त मे खडा रह कर अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करे या अन्य किसी समय मे याचना के लिए आ जाए।

यदि साधु के आने की जानकारी होते ही गृहस्थ स्वय बातचीत छोडकर आ जाए तो विवेक रखते हुए उससे पात्र की याचना करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है।

पात्र के लिये भिक्षु को निवास करने का प्रायश्चित्त—

४०. जे भिक्खू पडिग्गह-नीसाए उडुबद्ध वसइ, वसंत वा साइज्जइ।

४१. जे भिक्खू पडिग्गह-नीसाए वासावास वसइ, वसंत वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाण उग्घाइयं।

४०. जो भिक्षु पात्र के लिए ऋतुबद्ध काल [सर्दी या गर्मी] मे रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जो भिक्षु पात्र के लिए वर्षावास मे रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

इन ४१ सूत्रो मे कहे गये स्थानो का सेवन करने वाले को लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ।

विवेचन—भिक्षु यदि गृहस्थ को यह कहे कि 'हम पात्र के लिये ही मासकल्प ठहरे हैं या चौमासा करते हैं, अत हमे अच्छे पात्र देना या दिलाना' ऐसा निश्चय करना, यह पात्र के लिये निवास करना है और इसका ही दोनों सूत्रो में प्रायश्चित्त कहा गया है ।

कदाचित् भिक्षु यदि पात्र की अत्यन्त आवश्यकता होने के कारण कही कुछ दिन ठहर भी जाए और गृहस्थ से पात्र के निमित्त उपयुक्त वार्ता नहीं करे तो उसे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है ।

पात्र के निमित्त ठहरने का सकल्प एव गृहस्थ से उपयुक्त वार्ता करके ठहरने पर कभी दैव-योग से वहा पात्र न मिले तो साधु को या गृहस्थ को अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प उत्पन्न हो सकते हैं । वह गृहस्थ यदि अनुरागी होगा तो अनेक प्रकार के दोष लगाकर भी पात्र देगा या दिलवायेगा, इससे सयम की विराधना होगी । अत ऐसे संकल्प से भिक्षु को किसी क्षेत्र मे निवास नही करना चाहिए ।

चौदहवें उद्देशक का सारांश—

सूत्र	१	पात्र खरीदना या खरीद कर लाया हुआ पात्र लेना,
	२	पात्र उधार लेना या उधार लाया हुआ पात्र लेना,
	३	पात्र का परिवर्तन करना या परिवर्तन कर लाया हुआ पात्र लेना,
	४	छीना हुआ पात्र, भागीदार की बिना आज्ञा लाया हुआ पात्र या सामने लाया हुआ पात्र लेना,
	५	आचार्य की आज्ञा के बिना किसी को अतिरिक्त पात्र देना,
	६	अविकलाग को या समर्थ को अतिरिक्त पात्र देना,
	७	विकलाग या असमर्थ को अतिरिक्त पात्र न देना,
	८-९	उपयोग मे न आने योग्य पात्र को रखना, उपयोग मे आने योग्य पात्र को छोड देना,
	१०-११	सुन्दर पात्र को विद्रूप करना या विद्रूप पात्र को सुन्दर करना,
	१२-१९	पुराने पात्र को या दुर्गन्ध युक्त पात्र को बारबार धोना या कल्कादि लगाना अथवा अनेक दिनो तक पानी आदि भरकर रात मे रखना एव उसे ठीक करना,
	२०-३०	सचित्त स्थान, त्रस जीव युक्त स्थान अथवा बिना दिवाल वाले स्थान पर पात्र सुखाना,
	३१-३६	पात्र में त्रस जीव, धान्य बीज, कदादि, पृथ्वी, पानी या अग्नि हो, उसे निकालकर पात्र लेना,
	३७	पात्र पर कोरणी करना या कोरणी वाला पात्र लेना,
	३८-३९	अन्य स्थान में स्थित गृहस्थ से या किसी के साथ विचार-चर्चा करने वाले गृहस्थ से पात्र की याचना करना,

४०-४१ पात्र के लिये ही मासकल्प या चातुर्मास रहना,
इत्यादि प्रवृत्तियो का लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

इस उद्देशक के २७ सूत्रों के विषयो का कथन आचारांग सूत्र में है—

१-४ भिक्षु को क्रीत, प्रामृत्य, आच्छेद्य, अनिसृष्ट तथा अभिहृत पात्र नही लेना एव पात्र का परिवर्तन नही करना चाहिए । —आचा. श्रु २, अ ६, उ. १-२

८-३० उपयोग मे आने योग्य पात्र ही लेना, अनुपयोगी नही लेना । वर्ण-परिवर्तन नही करना, पात्र-परिकर्म नही करना, सचित्त जीव युक्त तथा आकाशीय स्थान पर पात्र नही सुखाना । --आचा श्रु २, अ. ६, उ १-२

इस उद्देशक के १४ सूत्रो के विषय का कथन अन्य आगमो मे नहीं है, यथा—

५-७ अतिरिक्त पात्र आचार्य की आज्ञा बिना किसी को नही देना । अशक्त को देना और सशक्त को नही देना । किन्तु व्यव उ ८ मे अतिरिक्त पात्र दूर देश से लाने का विधान है ।

३१-३६ त्रस स्थावर जीवो से युक्त पात्र न लेना ।

३७ पात्र मे ऊपर या अन्दर कोरणी नही करना तथा कोरणी किया हुआ पात्र नही लेना ।

३८-३९ अन्य स्थान मे या सभा मे से गृहस्थ को उठाकर पात्र की याचना न करना ।

४०-४१ पात्र के लिये मासकल्प या चातुर्मासकल्प नही रहना ।

इस उद्देशक के सभी सूत्रो मे पात्र सम्बन्धी प्रायश्चित्त का ही कथन है, अन्य किसी प्रकार के प्रायश्चित्तो का कथन नही है । यह इस उद्देशक की विशेषता है ।

।। चौदहवा उद्देशक समाप्त ।।

पन्द्रहवाँ उद्देशक

भिक्षु की आसातना करने का प्रायश्चित्त—

१ जे भिक्खू भिक्खुं आगाढ वयइ, वयंतं वा साइज्जइ ।

२. जे भिक्खू भिक्खुं फरुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू भिक्खुं आगाढ-फरुस वयइ, वयंतं वा साइज्जइ ।

४ जे भिक्खू भिक्खु अण्णयरीए आसायणाए आसाएइ, आसाएत वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु भिक्षु को रोष युक्त वचन बोलता है या बोलने वाले का अनुमोदन करता है ।

२ जो भिक्षु भिक्षु को कठोर वचन बोलता है या बोलने वाले का अनुमोदन करता है ।

३ जो भिक्षु भिक्षु को रोष युक्त वचन के साथ-साथ कठोर वचन भी बोलता है या बोलने वाले का अनुमोदन करता है ।

४ जो भिक्षु भिक्षु की किसी प्रकार की आसातना करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—दसवे उद्देशक के प्रथम चार सूत्रो मे पूज्य गुरुजनो एव स्थविरो की और पूज्य रत्नाधिको की आसातना करने का प्रायश्चित्त कहा है । पूजनीयो का विनय करना तो प्रत्येक भिक्षु का कर्तव्य होता ही है, किन्तु सामान्य सन्तो, सतियो या अन्य गच्छ के साधु-साध्वियो के प्रति भी भिक्षु को अविनय-आसातना युक्त वचन-व्यवहार और ऐसी ही अन्य तिरस्कारद्योतक प्रवृत्तियाँ नही करना चाहिए । यदि कोई भिक्षु अपने वचन या व्यवहार पर नियत्रण न रख कर ऐसी प्रवृत्ति करता है तो वह सयमसाधना से च्युत हो जाता है और सूत्रोक्त प्रायश्चित्त का पात्र बनता है ।

तेरहवे उद्देशक मे ऐसे ही चार सूत्रो से गृहस्थ की आसातना करने के प्रायश्चित्त कहे गए है । इनमे प्रथम तीन सूत्रो मे वचन सम्बन्धी आसातनाओ के प्रायश्चित्तो का कथन करके चौथे सूत्र मे अन्य सभी प्रकार की आसातनाओ का प्रायश्चित्तो का कथन किया गया है ।

सचित्त अंब-उपभोग सम्बन्धी प्रायश्चित्त—

५. जे भिक्खू सचित्तं अंबं भुंजइ, भुंजत वा साइज्जइ ।

६. जे भिक्खू सचित्तं अंबं विडंसइ, विडंसंतं वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंबं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

८. जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंबं विडंसइ, विडंसंतं वा साइज्जइ।

९. जे भिक्खू सचित्तं-१ अंबं वा, २. अंब-पेसिं वा, ३. अंब-भित्तं वा, ४. अंब-सालगं वा, ५. अंबडगलं वा, ६. अंबचोयग वा भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

१०. जे भिक्खू सचित्तं अंब वा जाव अंबचोयगं वा विडंसइ विडंसंतं वा साइज्जइ।

११. जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अबं वा जाव अंबचोयगं वा भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

१२. जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंब वा जाव अंबचोयगं वा विडंसइ, विडंसंतं वा साइज्जइ।

५ जो भिक्षु सचित्त आम खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

६ जो भिक्षु सचित्त आम चूसता है या चूसने वाले का अनुमोदन करता है।

७ जो भिक्षु सचित्त-प्रतिष्ठित आम खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

८ जो भिक्षु सचित्त-प्रतिष्ठित आम चूसता है या चूसने वाले का अनुमोदन करता है।

९ जो भिक्षु सचित्त १. आम को, २. आम की फाक को ३. आम के अर्द्धभाग को, ४ आम के छिलके को (अथवा आम के रस को), ५. आम के गोल टुकडो को, ६. आम की केसराओ को (अथवा आम के छिलके को) खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

१० जो भिक्षु सचित्त आम को यावत् आम की केसराओ को चूसता है या चूसने वाले का अनुमोदन करता है।

११ जो भिक्षु सचित्त-प्रतिष्ठित आम की यावत् आम की केसराओ को खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

१२ जो भिक्षु सचित्त-प्रतिष्ठित आम को यावत् आम की केसराओ को चूसता है या चूसने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—इन सूत्रो मे सचित्त आम्र फल खाने का प्रायश्चित्त कहा है। यहा भाष्यकार ने उपलक्षण से अन्य सभी प्रकार के सचित्त फलो के खाने का प्रायश्चित्त भी इन सूत्रो से समझ लेने का सूचित किया है।

प्रथम सूत्रचतुष्टय मे अखण्ड आम के खाने या चूसने का प्रायश्चित्त कहा है तथा द्वितीय सूत्रचतुष्टय मे उसके विभागों [खडो] को खाने या चूसने का प्रायश्चित्त कहा है। इस सूत्रचतुष्टय मे पुन 'अबं वा' पाठ आया है जो चूर्णिकार के सामने भी था किन्तु आचा. श्रु. २ अ. ६ उ. २ में पुन: अब शब्द का प्रयोग नहीं है। अन्य शब्दो के क्रम में भी दोनों आगमों में अन्तर है।

निशीथसूत्र में	आचारांगसूत्र मे
१ अब	१ अब भित्त
२. अब पेसि	२ अब पेसि
३ अंबभित्त	३. अबचोयग
४. अबसालग	४ अबसालगं
५. अबडगल	५. अबडगल
६ अबचोयग	—

दोनो आगमो मे कुछ शब्दो की व्याख्या भी भिन्न-भिन्न है—

आचारांग मे	निशीथ मे
अबसालग = आम्र का रस	आम्र की छाल
अबचोयग = आम्र की छाल	आम्र की केसरा

पुन आये 'अब' शब्द के अनेक अर्थो की चूर्णिकार ने इस प्रकार कल्पना की है—

१. अखड आम्र, किंचित् भी खडित नही।

२ प्रथम सूत्रचतुष्क मे बद्धस्थिक आम्र है, द्वितीयसूत्र चतुष्क मे अबद्धस्थिक आम्र है।

३ प्रथम चतुष्क मे अखडित आम्र है, द्वितीय चतुष्क मे खडित आम्र है।

४. प्रथम चतुष्क मे अविशिष्ट [सामान्य] कथन है, द्वितीय चतुष्क मे विशिष्ट कथन है।

इत्यादि विकल्पो को देखने से यही लगता है कि आचाराग का पाठ शुद्ध है और उनके अर्थ भी सगत प्रतीत होते है। निशीथ मे सभव है कि लिपि-प्रमाद मे "अब" शब्द दूसरी बार आ गया है।

इन सूत्रो में सचित्त आम्र व आम्र-विभागो के खाने का अथवा चूसने का तथा सचित्त प्रतिबद्ध [गुठली युक्त] को खाने का प्रायश्चित्त कहा है। अत आम्र अचित्त हो और गुठली निकाल दी गई हो तो वैसे आम्र खाने या चूसने का प्रायश्चित्त नही है।

खाने का तात्पर्य है दातो से चबाना तथा चूसने का अर्थ है दातो से बिना चबाये मुख मे रस खीच कर निगलना।

आम्रवन मे ठहरने का व आम्र खाने आदि का विशेष वर्णन आचा श्रु २ अ ७ उ २ मे देखे।

गृहस्थ से शरीर का परिकर्म कराने का प्रायश्चित्त—

१३ से ६६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो पाए आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावत वा पमज्जावत वा साइज्जइ एवं तइय उद्देसग गमेण णेयव्वं जाव जे भिक्खू गामाणुगामं दुइज्जमाणे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो सीसदुवारिय कारेइ कारेंतं वा साइज्जइ।

१३ से ६६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से अपने पावो का एक बार या अनेक बार "आमर्जन" करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है। इस प्रकार तीसरे उद्देशक के

[सूत्र १६ से ६९] के समान पूरा आलापक जानना यावत् जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपना मस्तक ढँकवाता है या ढँकवाने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—भिक्षु यदि गृहस्थ से शारीरिक परिचर्या करावे तो उसे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है। यहा ५४ सूत्रो का विवेचन तीसरे उद्देशक के समान समझे।

अकल्पनीय स्थानो पर मल-मूत्र-परिष्ठापन का प्रायश्चित्त—

६७. जे भिक्खू आगंतागारंसि वा, आरामागारंसि वा, गाहावइकुलंसि वा, परियावसहंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

६८. जे भिक्खू उज्जाणंसि वा, उज्जाणगिहंसि वा, उज्जाणसालंसि वा, निज्जाणंसि वा, निज्जाणगिहंसि वा, निज्जाणसालंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

६९. जे भिक्खू अट्टंसि वा, अट्टालयंसि वा, चरियंसि वा, पागारंसि वा, दारंसि वा, गोपुरंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७० जे भिक्खू दगमग्गंसि वा, दगपहंसि वा, दगतीरंसि वा दगट्ठाणंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७१. जे भिक्खू सुन्नगिहंसि वा, सुन्नसालंसि वा, भिन्नगिहंसि वा, भिन्नसालंसि वा, कूडागारंसि वा, कोट्ठागारंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७२. जे भिक्खू तणगिहंसि वा, तणसालंसि वा, तुसगिहंसि वा, तुससालंसि वा, भुसगिहंसि वा, भुससालंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७३. जे भिक्खू जाणसालंसि वा, जाणगिहंसि वा, वाहणगिहंसि वा, वाहणसालंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७४. जे भिक्खू पणियसालंसि वा, पणियगिहंसि वा, परियासालंसि वा, परियागिहंसि वा, कुवियसालंसि वा, कुवियगिहंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

७५. जे भिक्खू गोणसालंसि वा, गोणगिहंसि वा, महाकुलंसि वा, महागिहंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

६७ जो भिक्षु धर्मशाला मे, उद्यान मे, गाथापतिकुल मे या परिव्राजक के आश्रम मे मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

६८ जो भिक्षु उद्यान मे, उद्यानगृह मे, उद्यानशाला मे, नगर के बाहर बने हुए स्थान में, नगर के बाहर बने हुए घर में, नगर के बाहर बनी हुई शाला मे मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

६९. जो भिक्षु चबूतरे पर, अट्टालिका मे, चरिका मे, प्राकार पर, द्वार मे, गोपुर मे मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

७० जो भिक्षु जल-मार्ग मे, जलपथ मे, जलाशय के तीर पर, जलस्थान पर मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

७१ जो भिक्षु शून्य गृह मे, शून्य शाला मे, टूटे घर मे, टूटी शाला मे, कूटागार मे, कोष्ठागार में मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

७२. जो भिक्षु तृण-गृह मे, तृणशाला मे, तुस-गृह मे, तुसशाला मे, भुस-गृह मे भुसशाला मे मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

७३ जो भिक्षु यानशाला मे, यानगृह मे, वाहन-शाला मे, वाहन गृह में मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

७४ जो भिक्षु विक्रयशाला मे या विक्रयगृह मे, परिव्राजकशाला मे या परिव्राजक-गृह मे, चूना आदि बनाने की शाला मे या गृह मे मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

७५ जो भिक्षु बैल-शाला मे या बैल-गृह मे, महाकुल मे या महागृह मे मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—इन नौ सूत्रो मे ४६ स्थानो का कथन है। इन स्थानो मे कुछ स्थान व्यक्तिगत है और कुछ सार्वजनिक स्थान है। इन स्थानो के स्वामी या रक्षक भी होते हैं। ऐसे स्थानो में मल-मूत्र त्यागने का सर्वथा निषेध होता है। इसलिए ऐसे स्थानो मे मल-मूत्र त्यागने से भिक्षु के तीसरे महाव्रत मे दोष लगता है और जानकारी होने पर उस साधु की असभ्यता एव मूर्खता प्रगट होती है, साथ ही समस्त साधुओ एव सघ की निदा होती है। किसी के कुपित होने पर उस साधु के साथ अनेक प्रकार के अशिष्ट व्यवहार भी हो सकते हैं।

अत भिक्षु को सूत्रोक्त स्थानो पर मल-मूत्र का त्याग नही करना चाहिए।

इनमे से यदि कोई सार्वजनिक स्थान जनता के मल-मूत्र त्यागने का बन चुका है तो उस स्थान पर भिक्षु को विधिपूर्वक मल-मूत्र त्याग करने पर कोई प्रायश्चित्त नही आता है।

इनमे से यदि किसी व्यक्तिगत स्थान के स्वामी ने भिक्षुओ को उसमे मल-मूत्र त्यागने की आज्ञा दे दी हो तो जीव आदि से रहित योग्य भूमि मे भिक्षु विवेक पूर्वक मल-मूत्र परठ सकता है। उस आज्ञाप्राप्त स्थान मे मल-मूत्र परठने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है।

तीसरे उद्देशक मे भी कई स्थलो पर मल-मूत्र परठने सम्बन्धी प्रायश्चित्त का कथन है। वहा भी इसी आशय से प्रायश्चित्त कहे गए हैं।

ऐसे स्थलों में यद्यपि मल-मूत्रसूचक "उच्चार-प्रस्रवण" इन दोनो शब्दों का प्रयोग है

तथापि मुख्यता उच्चार [मल] की ही समझनी चाहिये । इस विषय का स्पष्टीकरण उद्देशक ३-४ में किया गया है ।

मलपरित्याग के लिये सामान्य रूप से भिक्षु को ग्रामादि के बाहर आवागमन रहित अदृष्ट स्थान मे जाने का विधान है । किन्तु प्रस्रवण के लिये दिन मे या रात्रि मे भिक्षुओ को ग्रामादि के बाहर जाने का कही विधान नही है । वे जहा ठहरते है वही निर्दोष परिष्ठापन भूमि रहती है, उसी मे मूत्रादि का परित्याग कर सकते हैं ।

यदि भिक्षु के ठहरने के स्थान से सलग्न परिष्ठापनभूमि नही है तो दशवे अ ८ तथा आचा श्रु. २ अ. २ के अनुसार वह स्थान भिक्षु के ठहरने योग्य नही है ।

सामान्य सद्गृहस्थ को भी यदि कही कुछ दिन के लिये ठहरना पडता है तो वह भी मल-मूत्र से निवृत्त होने का स्थान आस-पास मे कही हो, वहा ठहरना चाहता है ।

सयम-साधना-रत भिक्षु के तो पाचवी परिष्ठापनिकासमिति है, अत उसे ठहरने के पहले ही परिष्ठापन योग्य भूमि को अवश्य देखना चाहिए ।

निशोथ की कुछ प्रतियो मे "जाणगिहंसि" के बाद "जुग्गसालसि" पाठ मिलता है किन्तु चूर्णि के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि "जुग्ग" तो 'जाण' का ही एक प्रकार है और उसके बाद "वाहण" शब्द से घोडे आदि की शाला और गृह ऐसा अर्थ किया गया है ।

यथा—**जुगादि जाणाण अकुड्डा साला, सकुड्ड गिह । अस्सादिया वाहणा, ताण साला गिह वा । —चूर्णि ।।**

युग्य आदि यानो के भित्ति रहित स्थान को 'शाला' कहते है और भित्ति सहित स्थान को 'गृह' कहते है । अश्व आदि को वाहन कहते है, उनके रहने के 'शाला' और 'गृह' को 'वाहनशाला' और 'वाहनगृह' कहते है । इस व्याख्या के अनुसार ही यहा मूल पाठ स्वीकार किया गया है ।

सूत्र ६७ मे परिव्राजको के आश्रम का कथन है और सूत्र ७८ मे परिव्राजकशाला और परिव्राजकगृह का कथन है । परिव्राजको के स्थायी निवास करने का स्थान आश्रम कहा जाता है और मार्ग मे विश्रान्ति हेतु ठहरने के लिए बना हुआ स्थान शाला या गृह कहा जाता है, ऐसा समझना चाहिए । कदाचित् सम्भव है लिपिदोष से "पणिय" से परिया होकर अधिक पाठ हो गया है, इस विषय का आठवे उद्देशक मे स्पष्टीकरण किया गया है ।

गृहस्थ को आहार देने का प्रायश्चित्त—

७६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देइ, देतं वा साइज्जइ ।

७६ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को अशन, पान, खादिम या स्वादिम देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है । [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।]

विवेचन—किसी भी गृहस्थ को या उपाश्रय मे बैठे हुए सामायिक व्रतधारी श्रावक को आहार देना भिक्षु को नही कल्पता है, क्योकि उसके सावद्य योग का सम्पूर्ण त्याग नही होता है ।

सामायिक के समय भी वाणिज्य एव खेती आदि के सभी सावद्य कार्य उसके स्वामित्व मे ही होते रहते हैं। अतः किसी भी गृहस्थ को अशनादि देने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

आहार देने वाला गृहस्थ सयमसाधना मे सहयोग करने के लिये ही भिक्षु को भावपूर्वक आहार देता है। इसलिए वह आहार अन्य किसी को देने पर जिनाज्ञा एव गृहस्थ की आज्ञा न होने से तीसरा महाव्रत दूषित होता है।

आहार दाता गृहस्थ को यह ज्ञात हो जाए कि 'मेरा दिया हुआ आहार साधु ने अमुक को दिया है' तो उसकी साधुओ के प्रति अश्रद्धा होती है और दान भावना मे भी कमी आ जाती है।

कभी दाता की या भिक्षु की असावधानी मे सचित्त आहार-पानी या अकल्पनीय आहारादि पदार्थ ग्रहण कर लिया गया हो तो शीघ्र ही उसी गृहस्थ को पुन दे देना चाहिए। ऐसा विधान आचा श्रु २ अ १ उ १० तथा अ ६ उ २ मे है।

पार्श्वस्थ आदि के साथ आहार का देन-लेन करने का प्रायश्चित्त—

७७. जे भिक्खू पासत्थस्स असणं वा, पाण वा, खाइमं वा, साइम वा देइ, देंत वा साइज्जइ।

७८. जे भिक्खू पासत्थस्स असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

७९ जे भिक्खू ओसण्णस्स असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा देइ, देंतं वा साइज्जइ।

८०. जे भिक्खू ओसण्णस्स असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइमं वा पडिच्छइ पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

८१ जे भिक्खू कुसीलस्स असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा देइ, देंत वा साइज्जइ।

८२. जे भिक्खू कुसीलस्स असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइमं वा पडिच्छइ, पडिच्छत वा साइज्जइ।

८३. जे भिक्खू ससत्तस्स असणं वा, पाणं वा, खाइम वा, साइमं वा देइ, दतं वा साइज्जइ।

८४. जे भिक्खू ससत्तस्स असण वा, पाण वा, खाइमं वा, साइम वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

८५ जे भिक्खू णितियस्स असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइम वा देइ, देंत वा साइज्जइ।

८६ जे भिक्खू णितियस्स असणं वा, पाण वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ ।

७७ जो भिक्षु पार्श्वस्थ को अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

७८ जो भिक्षु पार्श्वस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार लेता या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

७९ जो भिक्षु अवसन्न को अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

८० जो भिक्षु अवसन्न से अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

८१ जो भिक्षु कुशील को अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

८२ जो भिक्षु कुशील से अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

८३ जो भिक्षु समक्त को अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

८४ जो भिक्षु ससक्त से अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

८५ जो भिक्षु नित्यक को अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

८६ जो भिक्षु नित्यक से अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन– गृहस्थ को आहार देने पर उसके सावद्य जीवन का अनुमोदन होता है । उसी का पूर्व सूत्र ७६ मे प्रायश्चित्त कहा गया है । पार्श्वस्थ आदि भिक्षुओ को आहार देने पर उनके एषणा दोषो का या अन्य दूषित प्रवृत्तियो का अनुमोदन होता है तथा पार्श्वस्थ आदि से आहार लेने मे उदगम आदि दोष युक्त आहार का सेवन होता है । अत इनसे आहार लेने-देने का प्रायश्चित्त इन १० सूत्रो में कहा गया है ।

पार्श्वस्थ आदि का स्वरूप चौथे उद्देशक के विवेचन मे कहा जा चुका है ।

पार्श्वस्थ आदि पाचो सूत्रो का क्रम यहा चौथे उद्देशक के समान है, किन्तु १३वे उद्देशक में कुछ व्युत्क्रम हुआ है, जो लिपिदोष से होना सभव है ।

पार्श्वस्थादि को आहार देने-लेने से संसर्ग-वृद्धि होने पर क्रमश संयम दूषित होता रहता है। अतः भिक्षु को शुद्ध संयमी सांभोगिक साधुओं के साथ ही आहार का आदान-प्रदान करना चाहिये, अन्य के साथ नहीं।

गृहस्थ को वस्त्रादि देने का प्रायश्चित्त—

८७. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ।

८७ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक को या गृहस्थ को वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोंछन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता।)

विवेचन—सूत्र ७६ के समान इसका भी विवेचन जानना चाहिए। अंतर इतना ही है कि वहाँ आहार का कथन है, यहाँ वस्त्रादि का कथन है। भिक्षु गृहस्थ से आहार, वस्त्र आदि ग्रहण कर सकता है, किन्तु स्वीकार किये गये वस्त्र आदि को उसे किसी भी गृहस्थ को देना नहीं कल्पता है।

पार्श्वस्थ आदि के साथ वस्त्रादि के आदान-प्रदान करने का प्रायश्चित्त—

८८. जे भिक्खू पासत्थस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ।

८९. जे भिक्खू पासत्थस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

९०. जे भिक्खू ओसण्णस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ।

९१. जे भिक्खू ओसण्णस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

९२. जे भिक्खू कुसीलस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा देइ देंतं वा साइज्जइ।

९३. जे भिक्खू कुसीलस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

९४. जे भिक्खू संसत्तस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ।

९५. जे भिक्खू संसत्तस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

९६ जे भिक्खू णितियस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा पायपुंछणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ।

९७. जे भिक्खू णितियस्स वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

८८. जो भिक्षु पार्श्वस्थ को वस्त्र, पात्र कबल या पादप्रोंछन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

८९ जो भिक्षु पार्श्वस्थ का वस्त्र, पात्र, कबल या पादप्रोछन लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

९० जो भिक्षु अवसन्न को वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

९१ जो भिक्षु अवसन्न का वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

९२ जो भिक्षु कुशील को वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

९३ जो भिक्षु कुशील का वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

९४ जो भिक्षु ससक्त को वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

९५ जो भिक्षु ससक्त का वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

९६ जो भिक्षु नित्यक को वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

९७ जो भिक्षु नित्यक का वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पार्श्वस्थ आदि के साथ आहार के समान वस्त्र, पात्र आदि उपकरणो का लेन-देन भी सुविहित साधु को नही कल्पता है। शेष विवेचन पूर्ववत् जानना चाहिये।

गवेषणा किये बिना वस्त्र ग्रहण करने का प्रायश्चित्त—

९८. जे भिक्खू जायणा-वत्थं वा, णिमंतणा-वत्थं वा अजाणिय, अपुच्छिय, अगवेसिय पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

से य वत्थे चउण्हं, अण्णयरे सिया, तंजहा—

१. णिच्च-णियंसणिए, २. मज्जणिए, ३. छणूसविए, ४. रायदुवारिए ।

९८. जो भिक्षु याचित-वस्त्र तथा निमन्त्रित-वस्त्र को जाने बिना, पूछे बिना, गवेषणा किए बिना लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

वह वस्त्र चार प्रकार के वस्त्रो मे से किसी भी प्रकार का हो सकता है, यथा—

१ नित्य काम में आने वाला वस्त्र,

२ स्नान के समय पहना जाने वाला वस्त्र,

३ उत्सव मे जाने के समय पहनने योग्य वस्त्र,

४ राजसभा मे जाते समय पहनने योग्य वस्त्र ।

(उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—सूत्र मे वस्त्र की प्राप्ति दो प्रकार से कही गई है—

१ भिक्षु के द्वारा याचना किये जाने पर कि "हे गृहपति ! आपके पास हमारे लिए कल्पनीय कोई वस्त्र है ?"

२ भिक्षु के पूछे बिना ही गृहस्थ स्वत निमन्त्रण करे कि "हे मुनि ! आपको कोई वस्त्र की आवश्यकता हो तो मेरे पास अमुक वस्त्र है, कृपया लीजिए ।"

इस प्रकार के 'याचना-वस्त्र = याचना मे प्राप्त' और "निमन्त्रण-वस्त्र = निमन्त्रण पूर्वक प्राप्त" वस्त्र कहे गये हैं ।

वस्त्र गृहस्थ के किन-किन उपयोग मे आने वाले होते है, इसका इस सूत्र मे चार प्रकारो मे कथन किया गया है । इन चार प्रकारो मे गृहस्थ के सभी वस्त्रो का समावेश हो जाता है ।

१ नित्य उपयोग में आने वाले--बिछाने, पहनने, ओढने आदि किसी भी काम मे आने वाले वस्त्रो का इसमें समावेश किया गया है । उसमे से जो भिक्षु के लिए कल्पनीय और उपयोगी हों उन्हे वह ग्रहण कर सकता है ।

२. स्नान के समय—इसका समावेश प्रथम प्रकार मे हो सकता है, फिर भी कुछ समय के लिये ही वे वस्त्र काम में लेकर रख दिये जाते है, दिन भर नही पहने जाते । अथवा स्नान भी कोई सदा न करके कभी-कभी कर सकता है, अत इन्हे अलग सूचित किया है । इसके साथ चूर्णिकार ने मंदिर जाते समय पहने जाने वाले वस्त्र भी ग्रहण किये हैं । वे भी अल्प समय पहन कर रख दिये जाते हैं । अत. इस विकल्प में अन्य भी अल्प समय में उपयोग में आने वाले वस्त्रो को समझ लेना चाहिये ।

३. महोत्सव—त्यौहार, उत्सव, मेले, विवाह आदि विशेष प्रसगो पर उपयोग मे लिये जाने वाले वस्त्रो को तीसरे भेद में कहा है,

४. राजसभा—राजा की सभा में या कही भी राजा के पास जाने के समय पहने जाने वाले वस्त्रो को चौथे भेद मे कहा गया है ।

इनमे से किसी प्रकार के वस्त्र को ग्रहण करना हो तो भिक्षु उस वस्त्र के विषय में पूछताछ करके यह जानकारी कर ले कि यह वस्त्र किसी भी उद्गम आदि दोष से युक्त तो नही है, पूर्ण रूप से निर्दोष है ? ऐसी जानकारी करके ही उसे ग्रहण करे । बिना जानकारी किये लेने पर स्थापना, अभिहृत, क्रीत, अनिसृष्ट आदि अनेक दोषो के लगने की संभावना रहती है । औद्देशिक या पश्चात्-कर्म दोष भी लग सकता है । अत ये चारो प्रकार के वस्त्र याचना प्राप्त हो या निमत्रणा से प्राप्त हो तो इनके सबध में आवश्यक पूछताछ-गवेषणा न करने का इस सूत्र में प्रायश्चित्त कहा गया है । इसलिए भिक्षु को वस्त्र के सबध मे सावधानी पूर्वक गवेषणा करनी चाहिए । वस्त्र के कथन से अन्य भी पात्र आदि उपकरणो के सबध मे गवेषणा करने की आवश्यकता और प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिए ।

विभूषार्थ शरीर के परिकर्म करने का प्रायश्चित्त—

९९-१५२ जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणोपाए आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंत वा साइज्जइ एव तइय उद्देसग गमेण णेयव्व जाव जे भिक्खू विभूसावडियाए गामाणुगामं दूइज्जमाणे अप्पणो सीसदुवारियं करेइ करेंत वा साइज्जइ ।

९९-१५२ जो भिक्षु विभूषा के लिये अपने पावो का एक बार या बार-बार "आमर्जन" करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है, इस प्रकार तीसरे उद्देशक के (सूत्र १६ मे ६९ तक के) समान पूरा आलापक जानना यावत् जो भिक्षु विभूषा के लिये ग्रामानुग्राम विहार करते समय अपने मस्तक को ढकता है या ढकने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—उद्देशक तीन के समान इन ५४ सूत्रो का विवेचन समझ लेना चाहिए । यहाँ विभूषा के विचारो से ये कार्य करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है, इतना ही अतर है ।

विभूषा हेतु उपकरण धारण एवं प्रक्षालन का प्रायश्चित्त—

१५३. जे भिक्खू विभूसावडियाए वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कबलं वा, पायपुंछण वा अण्णयरं वा उवगरणजायं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

१५४. जे भिक्खू विभूसावडियाए वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कबलं वा, पायपुंछणं वा अण्णयरं वा उवगरणजायं धोवेइ, धोवंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

१५३ जो भिक्षु विभूषा के सकल्प से वस्त्र, पात्र, कबल, पादप्रोछन या अन्य कोई भी उपकरण रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है ।

१५४ जो भिक्षु विभूषा के सकल्प से वस्त्र, पात्र, कबल, पादप्रोछन या अन्य कोई भी उपकरण धोता है या धोने वाले का अनुमोदन करता है ।

इन १५४ सूत्रो मे कहे गये स्थानो को सेवन करने वाले को लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—भिक्षु वस्त्र, पात्र आदि उपकरण सयमनिर्वाह के लिये रखता है और उपयोग मे लेता है। दशवैकालिकसूत्र अ ६ गा २० में कहा है—

जंपि वत्थं व पायं वा, कबल पायपुंछणं।
तं पि संजम-लज्जट्ठा, धारंति परिहरंति य ॥

प्रश्नव्याकरणसूत्र श्रु २ अ १ तथा ५ मे कहा है—

एयं पि सजमस्स उववूहणट्ठयाए वायातववंसमसग सीय परिरक्खणट्ठयाए उवगरण रागदोसरहियं परिहरियव्वं संजएण।

भावार्थ—सयम निर्वाह के लिए, लज्जा निवारण के लिये, गर्मी, सर्दी, हवा, डास, मच्छर आदि से शरीर के सरक्षण के लिए भिक्षु वस्त्रादि धारण करे या उपयोग मे ले। इस प्रकार उपकरणो को रखने का प्रयोजन आगमो मे स्पष्ट है। किन्तु भिक्षु यदि विभूषा के लिये, शरीर आदि की शोभा के लिये अर्थात् अपने को सुन्दर दिखाने के लिये अथवा निष्प्रयोजन किसी उपकरण को धारण करता है तो उसे १५३वे सूत्र के अनुसार प्रायश्चित्त आता है।

१५४वे सूत्र मे विभूषावृत्ति से अर्थात् सुन्दर दिखने के लिये यदि भिक्षु वस्त्रादि उपकरणो को धोवे या सुसज्जित करे तो उसका प्रायश्चित्त कहा है।

इन दोनो सूत्रो से यह भी स्पष्ट है कि भिक्षु बिना विभूषा वृत्ति के किसी प्रयोजन से वस्त्रादि उपकरण रखे या उन्हे धोवे तो सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है अर्थात् भिक्षु सयम के आवश्यक उपकरण रख सकता है और उन्हे आवश्यकतानुसार धो भी सकता है, किन्तु धोने मे विभूषा के भाव नही होने चाहिये।

यदि पूर्ण रूप मे भिक्षु को वस्त्र आदि धोना अकल्पनीय ही होता तो उसका प्रायश्चित्त कथन अलग प्रकार से होता किन्तु सूत्र मे विभूषावृत्ति से ही धोने का ही प्रायश्चित्त कहा है।

शरीर परिकर्म सबधी ५४ सूत्र अनेक उद्देश्यको मे आये है किन्तु यहाँ विभूषावृत्ति के प्रकरण मे ५६ सूत्र कहे गये हैं। अत. इसी सूत्र से भिक्षु का वस्त्रप्रक्षालन विहित है। विशिष्ट अभिग्रह प्रतिमा धारण करने वालो की अपेक्षा आचा श्रु १ अ ८ उ ४-५-६ मे वस्त्रप्रक्षालन का निषेध है। ऐसा वहा के वर्णन से भी स्पष्ट हो जाता है।

इस उद्देशक मे विभूषा के सकल्प से शरीर-परिकर्मों का और उपकरण रखने तथा धोने का प्रायश्चित्त कहा गया है। अन्य आगमो मे भी भिक्षु के लिए विभूषावृत्ति का विभिन्न प्रकार से निषेध किया गया है—

१ दश अ ३ गा ९ मे विभूषा करने को अनाचार कहा है।

२. दश. अ. ६ गा ६५ से ६७ तक मे कहा है कि—"नग्नभाव एव मुडभाव स्वीकार करने वाले, बाल एवं नख का सस्कार न करने वाले तथा मैथुन से विरत भिक्षु को विभूषा से प्रयोजन ही क्या है? अर्थात् ऐसे भिक्षु को विभूषा करने का कोई प्रयोजन ही नही है। फिर भी जो भिक्षु विभूषा-

वृत्ति करता है वह चिकने कर्मों का बध करता है, जिससे वह घोर एव दुस्तर ससार-सागर में गिरता है।"

"केवल विभूषा के विचारों को भी ज्ञानी, प्रवृत्ति के समान ही कर्मबन्ध एव ससार का कारण मानते हैं। इस विभूषावृत्ति से अनेक सावद्य प्रवृत्तियाँ होती हैं। यह षट्काय-रक्षक मुनि के आचरण योग्य नही है।"

३. दश. अ ८ गा. ५७ मे सयम के लिए विभूषावृत्ति को तालपुट विष की उपमा दी गई है।

४. उत्तरा. अ. १६ मे कहा है कि—

'जो भिक्षु विभूषा के लिए प्रवृत्ति करता है वह निर्ग्रन्थ नही है, अत· भिक्षु को विभूषा नही करनी चाहिए।

भिक्षु विभूषा और शरीर-परिमडन का त्याग करे तथा ब्रह्मचर्यरत भिक्षु श्रृ गार के लिए वस्त्रादि को भी धारण न करे।'

इन आगम स्थलो से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मचर्य के लिये विभूषावृत्ति सर्वथा अहितकर है, कर्मबध का कारण है तथा प्रायश्चित्त के योग्य है। अत· भिक्षु विभूषा के सकल्पो का त्याग करे अर्थात् शारीरिक श्रृ गार करने का एव उपकरणो को सुन्दर दिखाने का प्रयत्न न करे। उपकरणो को सयम की और शरीर की सुरक्षा के लिए ही धारण करे एव आवश्यक होने पर ही उनका प्रक्षालन करे।

पन्द्रहवें उद्देशक का सारांश—

१-४	परुष वचन आदि से अन्य भिक्षु की आसातना करना ,
५-१२	सचित्त आम्र या उनके खड आदि खाना,
१३-६६	गृहस्थ से अपना काय-परिकर्म करवाना,
६७-७५	अकल्पनीय स्थानो में मल-मूत्र परठना,
७६-९७	गृहस्थ को आहार-वस्त्रादि देना, पार्श्वस्थादि से आहार-वस्त्रादि का लेन-देन करना।
९८	वस्त्र ग्रहण करने मे उद्गम आदि दोषों के परिहार के योग्य पूर्ण गवेषणा न करना,
९९-१५२	विभूषा के सकल्प से शरीर-परिकर्म के ५४ सूत्रोक्त कार्य करना,
१५३	विभूषा के संकल्प से वस्त्रादि उपकरण रखना,
१५४	विभूषा के सकल्प से वस्त्रादि उपकरणो को धोना,
	इत्यादि प्रवृत्तियों का लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

इस उद्देशक के १२७ सूत्रों के विषयों का कथन निम्न आगमों में है, यथा—

५-१२	सचित्त आम्र आदि खाने का निषेध,	—आ. श्रु. २ अ. ७ उ. २
१३-६६	गृहस्थ से शरीर-परिकर्म करवाने का निषेध,	—आ. श्रु. २ अ. १३

६७-७५ अकल्पनीय स्थानो में मल-मूत्र परठने का निषेध, —आचा श्रु २ अ १०
९९-१५४ विभूषा के सकल्पों का तथा प्रवृत्तियो का निषेध, —उत्तरा अ १६ तथा
—दशवै. अ. ३ अ. ६ अ. ८

इस उद्देशक के २७ सूत्रों के विषयों का कथन अन्य आगमो मे नहीं है, यथा—

१-४ सामान्य साधु साध्वियो की भी आशातना नहीं करना।

७६-९७ गृहस्थ को आहार-वस्त्रादि न देना तथा आहार एव वस्त्रादि का लेन-देन पार्श्व-स्थादि से नही करना।

९८ याचना-वस्त्र या निमत्रण-वस्त्र के उद्गमादि दोषो की गवेषणा न करना।

इन विषयो के कुछ सकेत निम्नाकित आगमो मे मिलते हैं, यथा—कुशील के साथ ससर्ग करने का निषेध—सूय. श्रु १ अ ९ गा. २८ मे है। दूसरे भिक्षुओ को अप्रियवचन कहने का निषेध—दशवै अ १० गा १८ में है। सामान्य रूप से उद्गम आदि दोषों की गवेषणा का विधान उत्तरा. अ २४ तथा दशवै अ ५ मे है।

।। पन्द्रहवां उद्देशक समाप्त ।।

सोलहवां उद्देशक

निषिद्ध शय्या में ठहरने का प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्खू सागारियं सेज्जं उवागच्छइ, उवागच्छंतं वा साइज्जइ ।

२. जे भिक्खू सउदगं सेज्जं उवागच्छइ, उवागच्छंतं वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू सागणियं सेज्जं उवागच्छइ, उवागच्छंतं वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु गृहस्थ युक्त शय्या मे रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है ।

२ जो भिक्षु पानी युक्त शय्या मे रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है ।

३. जो भिक्षु अग्नि युक्त शय्या मे रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है । [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।]

विवेचन—"ससागारिक सेज्ज=जत्थ इत्थि-पुरिसा वसंति सा सागारिका, इत्थिसागारिगे चउगुरूगा सुत्तणिवातो ।" —चूर्णि ।।

स्त्री-पुरुष जहा रहते हो अथवा जहा अकेली स्त्री रहती हो या केवल स्त्रिया ही रहती हो, वह स्थान "सागारिक शय्या" है । ऐसी शय्या मे भिक्षुओ के रहने का इस सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा है ।

व्याख्याकार ने आभूषण, वस्त्र, आहार, सुगन्धित पदार्थ, वाद्य, नृत्य, नाटक, गीत तथा शयन, आसन आदि से युक्त स्थान को "द्रव्य-सागारिक शय्या" कहा है और स्त्रीयुक्त स्थान को "भाव-सागारिक शय्या" कहा है ।

अथवा जिस शय्या मे रहने से सम्भोग के सकल्प उत्पन्न होने की सम्भावना हो, वह "सागारिक शय्या" कही जाती है ।

द्रव्य या भाव सागारिक शय्या मे रहने से उन पदार्थों के चिन्तन या प्रेक्षण मे तथा उनकी वार्ताओ मे समय लग जाता है, जिससे स्वाध्याय, प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण आदि संयम समाचारी का परिपालन नही हो पाता तथा सासारिक प्रवृत्तियो का स्मरण तथा सयम भाव मे शैथिल्य आ जाने से मोहकर्म का बन्ध एव सयमविराधना होती है ।

छद्मस्थ साधक के अनुकूल निमित्त मिलने पर कभी भी मोहकर्म का उदय हो सकता है । जिससे वह सयम या ब्रह्मचर्य मे विचलित हो सकता है ।

आचा श्रु. २, अ २ मे स्त्री, बच्चे, पशु तथा आहारादि से युक्त शय्या में ठहरने का निषेध किया है और ऐसी सागारिक शय्या मे ठहरने से होने वाले अनेक दोषो का भी कथन किया है ।

अतः भिक्षु द्रव्य एव भाव सागारिक शय्या का परित्याग करके शुद्ध शय्या की गवेषणा करे। यदि गवेषणा करने पर भी निर्दोष शय्या न मिले तो गीतार्थ की निश्रा मे विवेकपूर्वक रहे और सूत्रोक्त प्रायश्चित्त ग्रहण करे।

सउदगं सेज्जं—जहा पर खुले होज मे या घडे आदि मे पानी रहता हो वहा ठहरने पर भिक्षु के गमनागमन आदि क्रियाओ से अप्कायिक जीवो की विराधना हो सकती है।

उदय भाव से किसी भिक्षु को उस जल के पीने का सकल्प भी हो सकता है अथवा अन्य लोगो को साधु के जल पीने की आशका हो सकती है।

बृहत्कल्प सूत्र उ २ मे जहा सम्पूर्ण दिन-रात अचित्त जल के घडे भरे रहते हो वहा ठहरने का निषेध है और यहा सामान्य रूप मे जल पडा रहने वाले स्थान में ठहरने का प्रायश्चित्त कहा है।

सागणिय सेज्ज—बृहत्कल्प सूत्र मे अग्नि वाली शय्या मे ठहरने के दो विकल्प कहे गए है—
१. चूल्हे भट्टी आदि मे जलने वाली अग्नि, २ प्रज्वलित दीपक की अग्नि।

जिस घर मे या घर के एक कक्ष मे अग्नि जल रही हो या दीपक जलता हो तो वहा भिक्षु न ठहरे क्योकि वह वहा गमनागमन करेगा या वन्दन, प्रतिलेखन, प्रमार्जन आदि संयम समाचारी के कार्य करेगा तो अग्निकाय की विराधना होने की सम्भावना रहेगी।

शीत निवारण के लिये अग्नि का उपयोग करने पर हिसा के अनुमोदन का दोष लगेगा।

व्याख्याग्रन्थो मे जितने दोषो की कल्पना की गई है, वे प्राय खुली अग्नि या खुले दीपक से ही सम्बन्धित हैं। वर्तमान मे उपलब्ध विद्युत् सचालित दीपक आदि मे उन दोषो की सम्भावना नही है, फिर भी प्रकाश के उपयोग मे सम्बन्धित दोष तो सम्भवित है ही।

जहा अग्नि या दीपक दिन-रात जलते हो ऐसे स्थान में ठहरने का बृहत्कल्प सूत्र मे निषेध है किन्तु यहाँ सामान्यरूप से प्रज्वलित अग्नि वाली शय्या मे ठहरने का प्रायश्चित्त कहा गया है।

आचा श्रु २, अ. २, उ ३ के ही सूत्र मे एक साथ सागारिक शय्या, अग्नि वाली शय्या और जल वाली शय्या मे ठहरने का निषेध है।

बृहत्कल्प सूत्र उद्देशक २ मे अन्य स्थान न मिलने पर भिक्षु को जल या अग्नि युक्त स्थान मे एक-दो रात ठहरने का आपवादिक विधान है।

निशीथभाष्यचूर्णि में यह भी कहा गया है कि अगीतार्थ साधु को ऐसे स्थान मे १-२ रात्रि ठहरने पर भी प्रायश्चित्त आता है, गीतार्थ साधु को प्रायश्चित्त नही आता है। क्योकि वह आपवादिक स्थिति के विवेक का यथार्थ निर्णय ले सकता है।

वास्तव में गीतार्थ का विहार करना और गीतार्थ की निश्रा में विहार करना ही कल्पनीय विहार है। एक या अनेक गीतार्थो के विचरण का तथा भिक्षाचरी आदि सभी कार्यो का निषेध ही है। अत अन्य मकान के सुलभ न होने पर पूर्वोक्त शय्याओ मे भिक्षु १-२ रात्रि ठहर सकता है, अधिक ठहने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त समझना चाहिए।

अनेक उपाश्रयो के व्यवस्थापक सुविधा के लिए बिजली की फिटिग करवाते हैं। आवश्यक कार्य होने पर लाइट का उपयोग करते करवाते हैं। उसी उपाश्रय में सन्त-सतिया भी ठहरते हैं। वहा

बिजली का मैन स्वीच चौबीस घंटे ही जलता रहता है किन्तु उसके प्रकाश का उपयोग आवश्यक कार्यों के लिए नही किया जा सकता है ।

समय की जानकारी के लिए आजकल सैल से चलने वाली घडियां उन उपाश्रयो में लगी रहती हैं ।

मैन स्वीच और क्वाट्ज घडियो से उपरोक्त विराधना नही होती है, अत. ऐसे उपाश्रयो मे ठहरने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है ।

सचित्त इक्षु का सेवन का प्रायश्चित्त--

४. जे भिक्खू सचित्तं उच्छुं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

५ जे भिक्खू सचित्तं उच्छुं विडंसइ, विडंसंतं वा साइज्जइ ।

६ जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं उच्छुं भुंजइ, भुजंतं वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं उच्छुं विडंसइ, विडंसंतं वा साइज्जइ ।

८. जे भिक्खू सचित्तं १. अतरुच्छुयं वा, २. अच्छुखंडियं वा, ३ उच्छुचोयग वा, ४. उच्छुमेरग वा, ५. उच्छुसालगं वा, ६. उच्छुडगलं वा भुंजइ, भुजंतं वा साइज्जइ ।

९. जे भिक्खू सचित्त अतरुच्छुयं वा जाव उच्छुडगल वा विडसइ विडसंत वा साइज्जइ ।

१०. जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंतरुच्छुयं वा जाव उच्छुडगलं वा भुंजइ, भुंजत वा साइज्जइ ।

११. जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंतरुच्छुय वा जाव उच्छुडगलं वा विडंसइ विडंसंत वा साइज्जइ ।

४ जो भिक्षु सचित्त ईख [गन्ना] खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है ।

५ जो भिक्षु सचित्त ईख को चूसता है या चूसने वाले का अनुमोदन करता है ।

६. जो भिक्षु सचित्त प्रतिष्ठित ईख को खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है ।

७ जो भिक्षु सचित्त प्रतिष्ठित ईख को चूसता है या चूसने वाले का अनुमोदन करता है ।

८ जो भिक्षु सचित्त १ ईख के पर्व का मध्य भाग, २ ईख के छिलके सहित खण्ड (गडेरी), ३ ईख के छिलके, ४. ईख के छिलके रहित खण्ड, ५. ईख का रस, ६. ईख के छोटे-छोटे टुकडे खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है ।

९. जो भिक्षु सचित्त ईख के पर्व का मध्य भाग यावत् ईख के छोटे-छोटे टुकडे चूसता है या चूसने वाले का अनुमोदन करता है ।

१० जो भिक्षु सचित्त प्रतिष्ठित ईख के पर्व का मध्य भाग यावत् ईख के छोटे-छोटे टुकड़े खाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

११ जो भिक्षु सचित्त प्रतिष्ठत ईख के पर्व का मध्य भाग यावत् ईख के टुकडे चूसता है या चूसने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पूर्व उद्देशक मे आम्र-फल के कथन से सभी सचित्त या सचित्त प्रतिष्ठित फलो के खाने का प्रायश्चित्त कहा गया हैं। किन्तु उन फलो मे 'इक्षु' का ग्रहण नही होता है, क्योकि यह फल नही है अपितु 'स्कन्ध' है। अत इसका यहाँ आठ सूत्रो मे प्रायश्चित्त कहा गया है।

प्रथम सूत्रचतुष्क मे सामान्य इक्षु का और द्वितीय सूत्रचतुष्क मे उसके विभागो का कथन है।

आचा श्रु २ अ १ उ १० मे इक्षु को बहु उज्झित धर्म वाला बताकर ग्रहण करने का निषेध किया गया है। आचा श्रु २ अ ७ उ २ मे अचित्त इक्षु हो तो उसके ग्रहण करने का विधान है तथा यहाँ सचित्त इक्षु के ग्रहण करने का प्रायश्चित्त कहा गया है। अत अचित्त होने पर भी किसी विशेष कारण से यह ग्राह्य है अन्यथा बहु उज्झित धर्म वाला होने से अग्राह्य ही है। कभी किसी कारण से ग्रहण किया जाए तो अखाद्य अश को विवेकपूर्वक एकान्त स्थान मे परठने का ध्यान रखना चाहिए।

भाष्यचूर्णि मे 'उच्छुमेरग' के स्थान पर 'उच्छुमाय' शब्द की व्याख्या की गई है, जो समानार्थक है तथा वहाँ अन्य भी 'काणिय, अगारिय, विगदूमिय' आदि शब्दो की व्याख्या है। ये शब्द आचा श्रु २ अ १ उ ८ मे उपलब्ध है। प्रस्तुत सूत्रचतुष्क मे ये शब्द उपलब्ध नही है। इन शब्दो की व्याख्या आचाराग मे देखे। वहाँ इन्हे सचित्त एव अशस्त्रपरिणत भी कहा है।

आरण्यकादिकों का आहारादि ग्रहण करने का प्रायश्चित्त—

१२ जे भिक्खू आरण्णगाण वणधाण, अडवि-जत्ता-सपट्ठियाण, अडविजत्तापडिणियत्ताण असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

१२ जो भिक्षु अरण्य मे रहने वालो का, वन मे गए हुओ का, अटवी की यात्रा के लिए जाने वालो का या अटवी की यात्रा से लौटने वालो का अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—सूत्र मे वन, जगल तथा अटवी मे अशनादि ग्रहण करने का प्रायश्चित्त कहा है। वहाँ चार प्रकार के लोगो का सयोग मिल सकता है—

१ अरण्यवासी—कद, मूल आदि खाकर वन मे ही रहने वाले।
२ काष्ठ, फल आदि पदार्थों को लेने के लिए गए हुए।
३ किसी लम्बी अटवी को पार करने के लिए जा रहा जनसमूह।
४ अटवी से लौटता हुआ जनसमूह।

इनसे आहार लेने पर जगल मे अन्य कोई साधन न होने के कारण वे वनस्पति की विराध करेंगे या पशु पक्षी की हिंसा करेंगे अथवा क्षुधा से पीडित होगे इत्यादि दोषो की सम्भावना रह है। अत इनसे आहार ग्रहण नही करना चाहिए। सूत्र मे तीन समान शब्दो का प्रयोग है, कि उनके अर्थ मे कुछ-कुछ भिन्नता है—

अरण्य—नगर ग्राम आदि बस्ती से अत्यन्त दूर के जगल।

वन—ग्राम नगर आदि के समीप के वन।

अटवी—चोर आदि के भय से युक्त लम्बा जगल, जिसे पार करने मे अनेक दिन लगे एव बी मे कोई बस्ती न हो।

अटवी से लौट रहे व्यक्तियो से भी आहार ग्रहण करने पर यदि १-२ दिन से अटवी पार हो की सम्भावना हो तो भी चोर आदि के कारण से अथवा मार्ग भूल जाने से कभी अधिक समय लग सकता है। अत अटवी-यात्रा करने वालो का आहार सर्वथा अग्राह्य समझना चाहिए।

सूत्र मे अटवी के सम्बन्ध मे दो शब्द हैं, उन दोनो से अटवी मे रहे हुए व्यक्ति ही समझ चाहिए, किन्तु अटवी मे जाने की तैयारी मे हो या अटवी पार कर ग्रामादि मे पहुँच गए हो उनका आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त नही समझना चाहिए।

कुछ प्रतियो मे इस एक सूत्र के स्थान पर दो सूत्र मिलते है। इसमे लिपि-प्रमाद ही प्रमु कारण है।

वसुरात्निक अवसुरात्निक कथन का प्रायश्चित्त—

१३. जे भिक्खू वसुराइय अवसुराइय वयइ वयतं वा साइज्जइ।

१४. जे भिक्खू अवसुराइयं वसुराइय वयइ वयत वा साइज्जइ।

१३ जो भिक्षु विशेष चारित्र गुण सम्पन्न को अल्प चारित्र गुण वाला कहता है या कह वाले का अनुमोदन करता है।

१४ जो भिक्षु अल्प चारित्र गुण वाले को विशेष चारित्र गुण सम्पन्न कहता है या कह वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—सयम धारण करने के बाद कई साधक जीवनपर्यन्त शुद्ध आराधना मे ही ल रहते है तथा अनेक साधक शारीरिक क्षमता कम हो जाने से या विचारधारा के परिवर्तन से सय मे अल्प पुरुषार्थी हो जाते हैं तो कई सयम-मर्यादा का अतिक्रमण ही करने लग जाते हैं और उन शुद्धि भी नही करते है। इस प्रकार साधको की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती है।

सयम की शुद्ध आराधना करने वाले भिक्षु सयम रूपी रत्न के धन से धनवान् होते है। अ उनको इस सूत्र मे "वसुरात्निक" शब्द से सूचित किया गया है। जो सयममर्यादा का अतिक्रम कर उसकी शुद्धि नही करते है, वे सयम रूप रत्नो के धन से धनवान् नही रहते हैं। अत सूत्र में उन "अवसुरात्निक" शब्द से सूचित किया गया है।

विभिन्न प्रकार की साधना करने वाले इन साधकों के विषय में भिक्षु को यथार्थ जानकारी प्राप्त किए बिना केवल राग-द्वेषवश या अज्ञानवश अयथार्थ कथन नही करना चाहिए। अर्थात् शुद्ध आचरण वाले भिक्षु को शिथिल आचरण वाला और शिथिल आचरण वाले भिक्षु को शुद्ध आचरण वाला नही कहना चाहिए।

विपरीत कथन राग, द्वेष से या अज्ञान से ही किया जाता है। ऐसा करना भिक्षु के लिये उचित नही है। इसी कारण इन सूत्रो मे प्रायश्चित्त कहा गया है।

असत्य कथन नही करना, इतना ही नही, सत्य वचन भी अप्रिय या अहितकर हो तो भिक्षु को बोलना उचित नही है।

तात्पर्य यह है कि शुद्धाचारी को शिथिलाचारी और शिथिलाचारी को शुद्धाचारी कहना, विपरीत कथन होने से प्रस्तुत सूत्रद्वय मे इसका प्रायश्चित्त कहा गया है।

शिथिलाचारी को शिथिलाचारी कहना परुष वचन होने से १५वें उद्देशक के दूसरे सूत्र के अनुसार प्रायश्चित्त आता है।

अत भिक्षु को अयथार्थ कथन भी नही करना और यथार्थ कथन भी किसी को अप्रिय एव अहितकर हो तो नही करना चाहिए।

सूत्र मे सयम गुणो की अपेक्षा से यह कथन है, अन्य ज्ञानादि सभी गुणो के विषयो मे अयथार्थ कथन का प्रायश्चित्त इन सूत्रो से ही समझ लेना चाहिए।

साभोगिक व्यवहार के लिये गणसंक्रमण का प्रायश्चित्त—

१५. जे भिक्खू वुसिराइयगणाओ अवुसिराइयगण सकमइ, सकमतं वा साइज्जइ।

१५ जो भिक्षु विशेष चारित्र गुण सम्पन्न गण से अल्प चारित्र गुण वाले गण मे सक्रमण करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—गणनायक जैसे चारित्रगुण से सम्पन्न होता है, उस गण के साधु-साध्वी भी प्राय. वैसे ही चारित्रगुण से सम्पन्न होते हैं। अत गणनायक के अनुसार गण भी शुद्धाचार वाला या शिथिलाचार वाला कहा जाता है।

किसी भिक्षु को स्वगच्छ मे किसी विशेष कारण से आत्मशान्ति या सन्तुष्टि न हो और वह गणपरिवर्तन करना चाहे तो कर सकता है।

ठाणाग सूत्र के पाचवे स्थान मे गणपरिवर्तन के पाच कारण बताये है।

बृहत्कल्प सूत्र उ ४ मे अन्य गण मे जाने की प्रक्रिया का विधान इस प्रकार किया है—आचार्यादि पदवीधर यदि अन्य गण मे जाना चाहे तो अपने पद पर गण की सम्मति से आचार्य पद-योग्य किसी अन्य भिक्षु को प्रस्थापित करके और गण की आज्ञा लेकर के जाएं।

सामान्य साधु भी आचार्यादि की आज्ञा लेकर ही जाए। बिना आज्ञा लिये कोई भी अन्य गण मे नही जा सकता है।

आगम मे गणपरिवर्तन का प्रमुख कारण यह कहा है कि गणपरिवर्तन से वास्तव मे आत्म-शान्ति होती हो और आत्मगुणो की वृद्धि होती हो तो जाना कल्पता है किन्तु गणपरिवर्तन करके भी आत्मा मे अशान्ति या आत्मगुणो की हानि होती हो तो गुरु की आज्ञा मिलने पर भी गण-परिवर्तन करने मे जिनाज्ञा नही है, ऐसा इन सूत्रो से समझना चाहिये ।

भावार्थ यह है कि यदि कोई अपने गण के आचार से अपेक्षाकृत कम आचार वाले गण मे जाना चाहे तो उसे सूत्रानुसार जाना नही कल्पता है । फिर भी कोई भिक्षु सहनशीलता की कमी से या शारीरिक-मानसिक समाधि न रहने से ऐसे गण मे जावे तो प्रस्तुत सूत्र के अनुसार उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

ठाणाग सूत्र के ५वे ठाणे मे जो गण-सक्रमण के कारण कहे है, उनमे से किसी भी कारण से यदि कोई भिक्षु आचार्यादि की आज्ञा लेकर गण-सक्रमण करे तो सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है ।

गणसक्रमण के पूर्व भविष्य के हिताहित का पूर्ण विचार करना अत्यावश्यक है, क्योकि बारबार गणसक्रमण करने वाले को उत्तरा अ १७ मे पापश्रमण कहा गया है तथा छ मास के अन्दर ही फिर अन्य गण मे सक्रमण करे तो उसे दशा द २ मे सबलदोष कहा है । अत आवेश मे आकर बिना विचार किए गणसक्रमण नही करना चाहिये ।

कदाग्रही के साथ लेन-देन करने का प्रायश्चित्त—

१६ **जे भिक्खू वुग्गहवक्कताण असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा देइ, दत वा साइज्जइ ।**

१७ **जे भिक्खू वुग्गहवक्कताण असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पडिच्छइ, पडिच्छत वा साइज्जइ ।**

१८. **जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताण वत्थ वा, पडिग्गह वा, कबलं वा, पायपुंछण वा देइ, देंत वा साइज्जइ ।**

१९ **जे भिक्खू वुग्गहवक्कताण वत्थ वा, पडिग्गह वा, कबल वा, पायपुंछण वा पडिच्छइ, पडिच्छतं वा साइज्जइ ।**

२० **जे भिक्खू वुग्गहवक्कताणं वसहि देइ, देत वा साइज्जइ ।**

२१. **जे भिक्खू वुग्गहवक्कताणं वसहि पडिच्छइ, पडिच्छंत वा साइज्जइ ।**

२२ **जे भिक्खू वुग्गहवक्कताण वसहि अणुपविसइ, अणुपविसंत वा साइज्जइ ।**

२३. **जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं सज्झायं देइ, देंत वा साइज्जइ ।**

२४. **जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताण सज्झायं पडिच्छइ, पडिच्छतं वा साइज्जइ ।**

१६ जो भिक्षु कदाग्रही भाव से अलग विचरने वाले [कदाग्रही] भिक्षुओ को अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

१७ जो भिक्षु कदाग्रही भिक्षुओ से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

१८ जो भिक्षु कदाग्रही भिक्षुओ को वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

१९ जो भिक्षु कदाग्रही भिक्षुओ से वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

२० जो भिक्षु कदाग्रही भिक्षुओ को उपाश्रय देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

२१ जो भिक्षु कदाग्रही भिक्षुओ से उपाश्रय लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

२२ जो भिक्षु कदाग्रही भिक्षुओ के उपाश्रय मे प्रवेश करता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३ जो भिक्षु कदाग्रही भिक्षुओ को वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

२४ जो भिक्षु कदाग्रही भिक्षुओ से वाचना लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—**"वुग्गहो कलहो, त काउ अवक्कमति।"**
वग्गहो त्ति कलहो त्ति, भडण ति, विवादो त्ति एगट्ठ ॥ —चूर्णि ॥

जो दुराग्रही भिक्षु सूत्र मे विपरीत कथन या विपरीत आचरण करके कलह करते है या गच्छ का परित्याग कर स्वच्छन्द विचरते है, उनके लिये सूत्र मे "वुग्गहवक्कताण" शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ ऐसे साधुओ की सगति करने का, उनसे सम्पर्क करने का या उनके साथ आदान-प्रदान आदि व्यवहार करने का प्रायश्चित्त कहा गया है।

क्योकि विरोधभाव रहने से आहार, पानी, वस्त्रादि के देने-लेने मे वशीकरण का प्रयोग या विष का प्रयोग किया जा सकता है। कदाचित् 'काकतालीय न्याय' के अनुसार कोई घटना घट जाए तो एक दूसरे पर आशंका या आरोप लगाने का प्रसग उत्पन्न हो जाता है।

कदाग्रही के साथ ठहरने से अनावश्यक विवाद या कषायवृद्धि हो सकती है। अल्पज्ञ या अपरिपक्व साधु भ्रमित होकर गण या सयम का भी त्याग कर सकते हैं। अथवा कदाग्रही के साथ ही रह सकते है।

वाचना देने-लेने मे भी ससर्गज दोष आदि अनेक दोषो की उत्पत्ति या वृद्धि होने की सम्भावना रहती है। अत उत्सूत्र प्ररूपक कदाग्रही साधुओ से किसी प्रकार का सम्पर्क नही रखना चाहिए।

यहाँ उन कदाग्रही भिक्षुओ को वन्दन करने का या उनकी प्रशसा करने का प्रायश्चित्त नही कहा है, तथापि उसका प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिए ।

कदाग्रही या पार्श्वस्थ आदि के साथ अनेक प्रकार के सम्पर्कों का यद्यपि प्रायश्चित्त कहा गया है तथापि उनके साथ अशिष्ट या असभ्य व्यवहार करना साधु के लिए कदापि उचित नही है । ऐसा करना भी प्रायश्चित्त का कारण है ।

गीतार्थ भिक्षु किसी विशेष प्रकार के लाभ का कारण जानकर या आपवादिक परिस्थिति मे उन्हे आहार देना आदि व्यवहार कर सकता है । फिर उस कृत्य का यथोचित प्रायश्चित्त ग्रहण कर शुद्ध भी हो सकता है ।

उपाश्रय मे प्रवेश करने के बावीसवे प्रायश्चित्त सूत्र का भाष्य चूर्णि मे कोई निर्देश नही है । अत मूल पाठ में किसी कारण से यह सूत्र बढा हुआ प्रतीत होता है । उस सूत्र के पूर्व उपाश्रय के लेन-देन के दो प्रायश्चित्त सूत्र है । तीन सूत्र होने से यह अर्थ होगा कि— उनके साथ एक उपाश्रय मे नही ठहरना चाहिए तथा उनके उपाश्रय मे जाना भी नही चाहिए ।

निषिद्ध क्षेत्रो मे विहार करने का प्रायश्चित्त—

२५ जे भिक्खू विहं अणेगाह-गमणिज्ज सइलाढे विहाराए संथरमाणेसु जणवएसु विहार-वडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ ।

२६ जे भिक्खू विरूव-रूवाइं दसुयायतणाइं अणारियाइं मिलक्खूइं पच्चंतियाइं सइलाढे विहाराए सथरमाणेसु जणवएसु विहार-वडियाए अभिसधारेइ अभिसंधारेंत वा साइज्जइ ।

२५ जो भिक्षु आहार आदि सुविधा से प्राप्त होने वाले जनपदो [क्षेत्रो] के होते हुए भी बहुत दिन लगे ऐसे लम्बे मार्ग से जाने का सकल्प करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२६ जो भिक्षु आहारादि सुविधा से प्राप्त होने वाले जनपदो [क्षेत्रो] के होते हुए भी अनार्य, म्लेच्छ एव सीमा पर रहने वाले चोर-लुटेरे आदि जहाँ रहते हो, उस तरफ विहार करता है या विहार करने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—आचा श्रु, २ अ ३ उ १ मे अनार्य क्षेत्रो मे तथा अनेक दिनो मे पार होने योग्य मार्ग मे जाने का निषेध किया गया है तथा जाने पर आने वाली आपत्तियो का भी स्पष्टीकरण किया है और यह भी सूचित किया है कि सयमसाधना के योग्य क्षेत्र होते हुए ऐसे क्षेत्रो की ओर विहार नही करना चाहिए ।

अनार्य क्षेत्रो मे विहार करने से वहाँ के अज्ञ निवासी मनुष्य क्रूरता से उपसर्ग करे तो भिक्षु अपने शरीर और सयम की समाधि मे स्थिर नही रह सकेगा और मारणातिक उपसर्ग होने पर आत्म-विराधना एव सयमविराधना भी होगी अत भिक्षु को ऐसे क्षेत्रो मे जाने की जिनाज्ञा नही है ।

आर्यक्षेत्र मे जाने के लिये भी किसी मार्ग मे ऐसी लम्बी अटवी हो कि जिसे पार करने मे अनेक दिन लगे और मार्ग मे आहार-पानी या मकान भी न मिले तो उस दिशा मे विहार नही करना

चाहिए, क्योंकि मार्ग मे अचानक वर्षा आ जाए, जगह-जगह पानी भर जाए, वनस्पति या कीचड आदि हो जाए तो वहाँ आहार आदि के अभाव मे सयम और प्राणो के लिए सकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यदि कही नदियो मे पानी अधिक आ जाए तो वहाँ नौका मिलना भी सम्भव नही है, इत्यादि दोषो का कथन करके आचारागसूत्र मे ऐसे विहार का निषेध किया है। उसी का यहाँ इन दो सूत्रो मे प्रायश्चित्त कहा गया है।

दुष्काल के कारण या राजा आदि के द्वेषपूर्ण व्यवहार से सयम-निर्वाह के योग्य अन्य क्षेत्र के अभाव मे विकट अटवी का मार्ग पार करके आर्यक्षेत्र मे जाना पड़े तो सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है। आचाराग और निशीथ दोनो ही सूत्रो मे इसकी छूट दी गई है तथा वैसी परिस्थिति मे क्या विवेक करना चाहिए यह भी आचारागसूत्र मे बताया गया है।

इसके अतिरिक्त मार्ग मे जहाँ सेना का पडाव हो, दो राजाओ का विरोध चल रहा हो, उस दिशा मे जाने का भी वहाँ निषेध किया गया है। अत भिक्षु जहाँ तक सम्भव हो शरीर और सयम मे असमाधि उत्पन्न करने वाले मार्ग या क्षेत्रो मे विहार नही करे।

घृणित कुलो मे भिक्षागमनादि का प्रायश्चित्त—

२७ **जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु असण वा, पाणं वा, खाइम वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।**

२८. **जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु वत्थ वा, पडिग्गहं वा, कंबल वा, पायपुंछणं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।**

२९. **जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु वसहि पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेतं वा साइज्जइ।**

३०. **जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु सज्झाय उद्दिसइ, उद्दिसंत वा साइज्जइ।**

३१ **जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु सज्झाय वाएइ, वाएत वा साइज्जइ।**

३२. **जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु सज्झाय पडिच्छइ, पडिच्छतं वा साइज्जइ।**

२७ जो भिक्षु घृणित कुलो से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

२८ जो भिक्षु घृणित कुलो मे वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

२९ जो भिक्षु घृणित कुलो की शय्या ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३० जो भिक्षु घृणित कुलो मे स्वाध्याय का उद्देश (मूल पाठ की वाचना देना) करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१ जो भिक्षु घृणित कुलो मे स्वाध्याय की वाचना (सूत्रार्थ) देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

३२ जो भिक्षु घृणित कुलो मे स्वाध्याय की वाचना लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—आचा श्रु २ अ १ उ २ मे अजुगुप्सित और अगर्हित १२ कुलो मे तथा अन्य ऐसे ही कुलो मे भिक्षा के लिए जाने का विधान किया गया है ।

इन सूत्रो में केवल जुगुप्सित कुलो से भिक्षा लेने का प्रायश्चित्त कहा गया है ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन अजुगुप्सित कुल है और शूद्र जुगुप्सित कुल है ।

म्लेच्छ आदि अनार्य कुल भी भिक्षा आदि के लिए वर्जनीय कुल माने गए है ।

गोपालक, कृषक, बढई, जुलाहे, शिल्पी, नाई तथा अन्य भी ऐसे कुलो मे गोचरी जाने का आचा श्रु २ अ १ उ २ मे विधान है ।

उत्तरा अ १२ तथा १३ मे 'हरिजन' कुल वालो के द्वारा सयम ग्रहण करना एव आराधना कर मोक्ष जाने का वर्णन मिलता है । अत जुगुप्सित कुल वालो को धर्म-आराधना करने का निषेध नही समझना चाहिए । कभी किसी हरिजन से भिक्षु का यदि स्पर्श हो जाए तो उसे किसी प्रकार का प्रायश्चित्त नही आता है । तथापि भिक्षु जिन कुलो से भिक्षा लेता है, उनमे शौचकर्मवादी अधिक होते है, अत उसे जुगुप्सित कुलो मे भिक्षा के लिए नही जाना चाहिए, क्योकि उसे एषणा दोषो को टालने के लिए शौचकर्मियो के घरो मे प्रवेश करना पडता है । भिक्षा के लिए जुगुप्सित कुलो मे प्रवेश करने वाले भिक्षु को अन्य शौचकर्मी (शौच प्रधान धर्म वाले) लोग अपने घरो मे प्रवेश करने के लिए मना कर सकते है । अत केवल सामाजिक व्यवहार के कारण यह सूत्रोक्त निषेध एव प्रायश्चित्त विधान है, ऐसा समझना चाहिए ।

उत्तरा अ २५ मे कहा है कि कर्म से क्षत्रिय, वैश्य और ब्राह्मण होते है और कर्म से ही शूद्र होते हैं ।

आचा श्रु १ अ २ उ ३ मे कहा है कि यह जीव कभी उच्चगोत्र मे और कभी नीचगोत्र मे जन्म लेता है, अत न कोई नीच है और न कोई उच्च है ।

भिक्षु सभी के साथ सदा समभाव से व्यवहार करना है, फिर भी सामाजिक मर्यादा से इन कुलो मे प्रवेश नही करना आदि सूत्रोक्त विधानो का पालन किया जाना भी आवश्यक है ।

भाष्य चूर्णि मे सूतक और मृतक के क्रियाकर्म करने वाले कुलो को भी अल्पकालीन जुगुप्सित कुल मे गिनाया गया है ।

यद्यपि जुगुप्सित कुल मे ठहरने मात्र का ही प्रायश्चित्त है, तथापि कभी कारणवश ठहरना पड जाय तो वहाँ पर स्वाध्याय का उद्देश या वाचना आदि नही करना चाहिए ।

पृथ्वी, शय्या तथा छींके पर आहार रखने का प्रायश्चित्त—

३३ जे भिक्खू असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पुढवीए णिक्खिवइ, णिक्खिवंतं वा साइज्जइ ।

३४. जे भिक्खू असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा संथारए णिक्खिवइ, णिक्खिवंतं वा साइज्जइ ।

३५ जे भिक्खू असण वा, पाणं वा, खाइम वा, साइमं वा वेहासे णिक्खिवइ, णिक्खिवंतं वा साइज्जइ ।

३३ जो भिक्षु अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य भूमि पर रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३४ जो भिक्षु अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य सस्तारक पर रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है ।

३५ जो भिक्षु अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य छीके खूटी आदि पर रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—भिक्षु करपात्री या पात्रधारी होते हैं । अत हाथ मे, पात्र मे या पात्र रखने के वस्त्र पर तो अशनादि रखा जा सकता है । किन्तु हाथ मे या पात्र मे ग्रहण किए हुए आहार को भूमि पर या आसन पर रखना नही कल्पता है ।

पृथ्वी पर अनेक प्रकार के मनुष्य तिर्यंचादि जीव फिरते रहते है और वे अशुचिमय पदार्थों का जहाँ तहाँ परित्याग करते रहते हैं, भूमि पर अनेक प्रकार के अपवित्र पुद्गल पडे रहते है, रज आदि भी रहती है, कीडी आदि अनेक प्रकार के प्राणी भी परिभ्रमण करते रहते हैं तथा भूमि पर खाद्य पदार्थ रखना लोकव्यवहार से भी अनुचित है, अत सूत्र मे इसका प्रायश्चित्त कहा गया है ।

वस्त्र का आसन या घास का सस्तारक अनेक दिनो तक उपयोग मे आता रहता है । उस पर आहार रखने से आहार का अश-लेप लग जाने पर कीडियो के आने की सम्भावना रहती है । आसन मे मैल पसीना आदि भी लगे रहते है । अत आसन पर और इन्ही कारणो से पहनने के वस्त्र, रजोहरणादि पर आहार रखना भी निषिद्ध समझ लेना चाहिए ।

खूटी, छीके आदि पर रखने से कभी गिरने पर पात्रो के फूटने को सम्भावना रहती है । चूहे आदि भी वहां पहुँच कर काट सकते है, गिरा सकते हैं ।

इत्यादि कारणो से पृथ्वी पर, आसन पर तथा छीका आदि पर अशनादि रखना निषिद्ध है और रखने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

प्रादेशिक परिस्थिति के कारण छीका आदि मे आहार को बाँधकर रखना आवश्यक हो तो छीका व उसका ढक्कन रखा जा सकता है, ऐसा निशीथ के दूसरे उद्देशक से स्पष्ट होता है ।

खाद्य पदार्थों में कई लेपरहित शुष्क पदार्थ भी होते हैं । उन्हे पृथ्वी आदि पर रखने से उपर्युक्त दोष सम्भव नही हैं, फिर भी प्रमादरूप प्रवृत्ति हो जाने से दोष परम्परा बढती है । अत सूत्र मे सामान्यरूप से सभी प्रकार के अशन आदि को रखने का प्रायश्चित्त कहा गया है ।

यदि असावधानी से कोई खाद्य पदार्थ भूमि पर गिर जाए और उस पर रज आदि अपवित्र

पदार्थ न लगे हों तो अच्छी तरह देखकर उसका उपयोग भिक्षु कर सकते है। ऐसा करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है।

स्वेच्छा से खाद्य पदार्थ पृथ्वी पर रखना अनुचित प्रवृत्ति है। सूत्र मे ऐसी प्रवृत्ति का ही प्रायश्चित्त कहा गया है।

गृहस्थों के सामने आहार करने का प्रायश्चित्त—

३६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएहिं वा गारत्थिएहि वा सद्धि भुंजइ, भुंजतं वा साइज्जइ।

३७. जे भिक्खू अण्णउत्थिएहिं वा गारत्थिएहि वा सद्धि आवेढिय-परिवेढिय भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

३६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थों के साथ [समीप बैठकर] आहार करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

३७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिको या गृहस्थो से घिरकर [कुछ दूर बैठे या खडे हो, वहाँ] आहार करता है या आहार करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पन्द्रहवे उद्देशक मे गृहस्थ को आहारादि देने का प्रायश्चित्त कहा गया है। अब यहाँ "सद्धि" पद से समीप मे बैठकर खाना यह अर्थ करना प्रसगसगत है। क्योकि साथ मे अर्थात् एक पात्र मे खाने पर तो अनेक दोषो की सम्भावना रहती है। यदि गृहस्थ का लाया हुआ आहार है तो आधाकर्म आदि दोषयुक्त हो सकता है। यदि साधु का लाया हुआ आहार है तो देने मे अदत्तदोष लगता है और ये दोष तो गुरुचौमासी प्रायश्चित्त के योग्य है, जबकि प्रस्तुत सूत्र मे लघुचौमासी प्रायश्चित्त का कथन है। अत प्रथम सूत्र से गृहस्थ और भिक्षु का समीप मे बैठकर आहार करने का प्रायश्चित्त समझना चाहिए।

गृहस्थ भोजन नही कर रहे हो, किन्तु दूर एक दिशा मे या चारो तरफ खडे या बैठे हो तब भिक्षु उनके सामने आहार करे तो उसका दूसरे सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा है।

गृहस्थ के निकट बैठकर खाने मे गृहस्थ के द्वारा निमन्त्रण करना, देना आदि प्रवृत्ति होने की सम्भावना रहती है, देखने वालो को शका हो सकती है। कभी कोई गृहस्थ जबर्दस्ती भी पात्र मे आहार डाल सकता है या छीन सकता है।

सामने जो गृहस्थ बैठे या खडे हो, उनमे कोई कुतूहलवृत्ति वाले या द्वेषी भी हो सकते है। वे आहार को या आहार करते हुए भिक्षु को देखकर अनेक प्रकार से अवहेलना आदि कर सकते है।

भिक्षु के आहार करने की विधि भी गृहस्थ से भिन्न होती है। यथा—पात्र पोंछकर साफकर के खाना या धोकर पीना आदि। अतः चारो ओर की दीवारो वाले एव छत वाले एकान्त स्थान मे आहार करना चाहिए।

आहार करते समय भी कदाचित् कोई गृहस्थ वहाँ आ जाये और बैठ जाए तो भिक्षु को "एकासन" तप मे भी अन्यत्र जाना कल्पता है।

कदाचित् गृहस्थ रहित स्थान आहार करने के लिए न मिले तो भिक्षु एक ओर या चारों ओर वस्त्र का पर्दा लगाकर भी आहार कर सकता है।

यदि भिक्षु अकेला ही आहार करने वाला हो तो गृहस्थ की तरफ पीठ करके विवेकपूर्वक आहार कर सकता है। तात्पर्य यह है कि गृहस्थ न देखे, ऐसे स्थानो मे बैठकर ही भिक्षुओं को आहारादि का उपयोग करना चाहिए।

आचार्य उपाध्याय की आराधना का प्रायश्चित्त—

३८. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झायाणं सेज्जा-संथारयं पाएणं संघट्टेत्ता हत्थेणं अणणुण्णवेत्ता धारयमाणे गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ।

३८ जो भिक्षु आचार्य-उपाध्याय के शय्या-सस्तारक को पैर से स्पर्श हो जाने पर हाथ से विनय किए बिना मिथ्या दुष्कृत दिए बिना चला जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—किसी की कोई भी वस्तु के पाव लगाना अविवेकपूर्ण आचरण है। आचार्य और उपाध्याय तो सम्पूर्ण गच्छ में सबसे अधिक सम्माननीय होते हैं। अत: प्रत्येक साधु को उनका विनय-बहुमान करना ही चाहिए। उनके शय्या-सस्तारक—बिछौने के पाव लग जाना भी अविनय एव अविवेक का द्योतक है और उनके शरीर, आहार, वस्त्रादि के पाव लगना भी अविनय है। अत· भिक्षु को आचार्यादि के या उनकी उपधि एव आहारादि के निकट से अत्यन्त विवेकपूर्वक गमनागमन करना चाहिए। चूर्णि मे कहा है—

हत्थेण अणणुण्णवेत्ता-हस्तेन स्पृष्ट्वा न नमस्कारयति, मिथ्यादुष्कृतं च न भाषते, तस्स चउलहुं।

कदाचित् आचार्यादि के सस्तारक पर भिक्षु का पाव लग जाए तो उस भिक्षु को वहा विद्यमान आचार्यादि से विनयपूर्वक क्षमायाचना करनी चाहिए। यदि वे अन्यत्र हो तो पाव से अविनय होने की प्रतिपूर्ति में हाथ से स्पर्श कर विनय करना और "मिच्छामि दुक्कड" कह कर भूल स्वीकार करना चाहिए। यदि पाव से कोई रज आदि लग जाए तो उसे साफ करना चाहिए।

अन्य साधु की कोई उपधि या शरीर आदि के पाव लग जाए तो भी इसी प्रकार का विवेक प्रदर्शित करना चाहिए।

जो भिक्षु ऐसे प्रसगों मे कुछ भी विनय-विवेक किए बिना जैसे चल रहा है वैसे ही सीधा चला जाए तो उसे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

क्योकि ऐसा करने से आचार्यादि के प्रति सम्मान नही रहता है, अविवेक की परम्परा प्रचलित होती है, देखने वालो को अविनय का अनुभव होता है, गच्छ की अवहेलना होती है, अन्य साधु भी उसी का अनुसरण करे तो गच्छ मे अविनय की वृद्धि होती है।

यद्यपि आसन आदि पदार्थ वदनीय नही हैं, तथापि पैर के स्पर्श से हुए अविनय की निवृत्ति के लिए केवल हाथ से स्पर्श कर विनयभाव प्रकट करना चाहिए, यह सूत्र का आशय है।

मर्यादा से अधिक उपधि रखने का प्रायश्चित्त—

३९. जे भिक्खू गणणाइरित्तं वा, पमाणाइरित्तं वा उवहिं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

३९. जो भिक्षु गणना से या प्रमाण से अधिक उपधि रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भिक्षु के सम्पूर्ण उपधि सूचक सूत्र बृहत्कल्पसूत्र उ ३ मे तथा प्रश्नव्याकरण-सूत्र श्रु २, अ. ५ मे है।

भिक्षु को दीक्षित होते समय रजोहरण, गोच्छग, पात्र और तीन अखण्ड वस्त्र ग्रहण करके प्रव्रजित होना कल्पता है। ऐसा बृहत्कल्पसूत्र मे कहा है।

यहाँ रजोहरण, गोच्छग [पूजणी] और पात्र की सख्या का कथन नही किया गया है। शेष उपकरण चद्दर, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका, आसन, झोली, पात्र के वस्त्र, रजोहरण का वस्त्र इनके लिए कुल तीन अखण्ड वस्त्र लेने का कथन है, किन्तु इनकी अलग-अलग सख्या या माप नही बताया गया है।

बृहत्कल्पसूत्र के उद्देशक तीन मे ही अखण्ड वस्त्र (पूर्ण थान) रखने का निषेध किया गया है। अत यहाँ पर कहे गए तीन थान केवल सम्पूर्ण उपधि के माप के सूचक है, ऐसा समझना चाहिए। जिसका परम्परा से ७२ हाथ प्रमाण वस्त्र का माप माना गया है। किन्तु मूल आगमो मे एव भाष्यादि मे इस माप का स्पष्ट उल्लेख नही है।

प्रश्नव्याकरणसूत्र मे कहा है "पात्रधारी सुविहित श्रमण के ये उपकरण होते है—पात्र, पात्रबन्धन, पात्रकेसरिका, पात्र रखने का वस्त्र तीन पटल, रजस्त्राण, गोच्छग, तीन चद्दर, रजोहरण, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका आदि इनको भी वह सयम और शारीरिक सुरक्षा के लिए धारण करता है।"

यहाँ रजोहरण और गोच्छग का कथन करने के साथ पात्र के स्थान पर पात्र सम्बन्धी ६ उपकरण एव तीन अखण्ड वस्त्र की जगह चद्दर, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका आदि कहे है, इनमे पटल एव चादर की सख्या तीन-तीन कही है, किन्तु पात्र, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका तथा सम्पूर्ण उपकरणो की सख्या का निर्देश नही है तथा पाठ के अन्त मे "आदि" शब्द का प्रयोग किया गया है, जिससे अन्य उपधि का भी ग्रहण हो सकता है, यथा—आसन आदि।

इन दो स्थलो के अतिरिक्त आचारागसूत्र मे वस्त्र-पात्र सम्बन्धी स्वतन्त्र अध्ययन भी है तथा छेदसूत्रो मे भी वस्त्र पात्र रजोहरण आदि के विधि-निषेध का अनेक सूत्रो मे वर्णन है।

प्रस्तुत प्रायश्चित्तसूत्र मे गिनती से और प्रमाण [माप] से अधिक उपधि रखने का प्रायश्चित्त कहा है किन्तु उपर्युक्त आगमो मे उपधि के माप तथा सख्या का स्पष्ट उल्लेख कही नही मिलता है। केवल चद्दर और पात्र के पटल एव अखण्ड वस्त्र की सख्या का उल्लेख है। भाष्य निर्युक्ति मे उपधि का विस्तृत वर्णन होते हुए भी अनेक आवश्यक उपकरणो के माप एव सख्या का उल्लेख नही है तथा कई उल्लेख अस्पष्ट हैं, यथा—एक पात्र रखना या तरुण साधु को दो हाथ का चोलपट्टक रखना। एक मात्रक रखना किन्तु उसको उपयोग मे नही लेना, इत्यादि। इन्ही कारणों से उपधि। परिमाण की परम्पराएँ भिन्न-भिन्न हो गई हैं।

आधार—तीन चद्दर रखने का उल्लेख आगमो मे स्पष्ट है तथा इस सूत्र की चूर्णि मे कर-पात्र वाले या पात्रधारी जिनकल्पी भिक्षु को एक, दो या तीन चद्दर रखना बताया है।

आचाराग श्रु. १, अ ८, उ. ४-५-६ मे वस्त्र सम्बन्धी अभिग्रहधारी भिक्षु का वर्णन है। वहाँ भी तीन वस्त्र [चद्दर] धारी, दो वस्त्रधारी, एक वस्त्रधारी और अचेलक चोलपट्टकधारी भिक्षु का वर्णन है।

वस्त्र की ऊणोदरी के वर्णन मे एक वस्त्र [चद्दर] रखना मूल पाठ में कहा है। व्याख्या मे दो चद्दर रखना भी वस्त्र की उणोदरी होना कहा है। अत चद्दर की सख्या आगमो मे तथा उनकी व्याख्याओ मे स्पष्ट है।

आचा. श्रु २, अ. ५, उ १ मे किस-किस जाति के वस्त्र ग्रहण करना, इस वर्णन में ६ जाति का उल्लेख करने के पश्चात् कहा गया है कि—"जो भिक्षु तरुण एव स्वस्थ हो, वह एक वस्त्र अर्थात् एक ही जाति का वस्त्र धारण करे दूसरा नही।" इस कथन को चद्दर की सख्या के लिए मानकर अर्थ करना उचित नही है, क्योकि यहाँ वस्त्र की जाति का ही विधान किया गया है तथा आगमो मे जिनकल्पी व अभिग्रहधारी भिक्षु के लिए भी तीन चद्दर रखने का स्पष्ट उल्लेख है। वस्त्र की ऊणोदरी करने के वर्णन से भी अनेक चद्दर रखना सिद्ध है। अत समर्थ साधु को एक जाति के वस्त्र ही धारण करना ऐसा अर्थ आचारागसूत्र के पाठ का करना ही आगमसम्मत है तथा तीन चद्दर से कम अर्थात् दो या एक चद्दर रखकर ऊणोदरी तप करना ऐच्छिक समझना चाहिए।

भाष्य गाथा ५८०७ मे कहा है कि जिनकल्पी अभिग्रहधारी आदि भिक्षु तीन, दो या एक चद्दर रख सकते हैं किन्तु स्थविरकल्पी को तीन चद्दर नियमत रखनी चाहिए।

भाष्य गाथा ५७९४ मे चद्दर का मध्यम माप ३½ × २½ हाथ तथा उत्कृष्ट ४ × २½ हाथ कहा है। अर्थात् तरुण सन्त के लिए साढे तीन हाथ और वृद्ध सन्त के लिए चार हाथ लम्बी चद्दर रखना कहा है।

आचारागसूत्र के वस्त्रैषणा अध्ययन मे साध्वी के चद्दरो की चौडाई चार हाथ, तीन हाथ तथा दो हाथ की कही है, वहाँ लम्बाई का कथन नही है। फिर भी चौडाई से लम्बाई तो अधिक ही होती है, इसलिए पाच हाथ की लम्बी चद्दर करने की परम्परा उपयुक्त ही है।

उत्तरा अ २६ मे प्रतिलेखना प्रकरण मे जो "छ पुरिमा नव खोडा" का कथन है, उससे भी चद्दर की उत्कृष्ट लम्बाई पाच हाथ की होना उपयुक्त है।

साध्वी के लिए जो तीन माप की चार चद्दरो का कथन है वे चद्दरे समान लम्बी-चौडी नही होती हैं, वैसे ही भिक्षु के तीनो चद्दरे समान नही होती है। आगमो मे इनके माप का उल्लेख न मिलने से उपयोगिता और आवश्यकतानुसार छोटी-बडी बनाई जा सकती है।

चद्दर की चौड़ाई का कथन व्याख्या मे एक ही प्रकार का अर्थात् ढाई हाथ का बताया है। उसे आगम वर्णन के अनुसार तीनो ही चद्दरो के लिए समझ लेना उचित नही है। अत भिक्षु के तीनो चद्दरों की लम्बाई-चौडाई हीनाधिक होती है। वर्तमान मे प्राय पाच हाथ लम्बी और तीन हाथ चौडी चद्दर का उपयोग किया जाता है।

चोलपट्टक—प्रश्नव्याकरणसूत्र मे भिक्षु की उपधि में चोलपट्टक का केवल नामोल्लेख है। इसके अतिरिक्त अन्य वर्णन आगमो मे नही है।

निशीथभाष्य गाथा ५८०४ मे तरुण भिक्षु के लिए केवल दो हाथ लम्बा, एक हाथ चौडा चोलपट्टक का माप कहा है। जो लौकिक व्यवहार मे लज्जा रखने के लिए पर्याप्त नही है। इसलिए इसका औचित्य समझ मे नही आता।

इस गाथा में चोलपट्टक की सख्या भी नही कही है।

वृद्ध भिक्षु के लिए इसी गाथा मे चार हाथ लम्बा और एक हाथ चौडा चोलपट्टक का माप बताया है। जो उनके लिए भी पूर्ण लज्जा रखने के लिए पर्याप्त नही हो सकता है। प्राचीन शुद्ध परम्परा के अभाव मे वर्तमान साधु समाज मे अनेक प्रकार के लम्बाई एव चौडाई के माप वाले चोलपट्टक प्रचलित हैं। जो भाष्य कथित प्रमाण मे भिन्न हैं। बृहत्कल्पसूत्र के तीसरे उद्देशक मे भिक्षु के आवश्यक सभी उपकरणो हेतु तीन अखण्ड वस्त्र [थान] ग्रहण करके दीक्षा लेने का विधान है। यदि भाष्य कथित परिमाण के चद्दर-चोलपट्टक आदि बनाए जाये तो उक्त विधान के तीन थान जितने वस्त्रो को ग्रहण करने की आवश्यकता नही रहती है। इसलिए चद्दर, चोलपट्टक का पूर्ण परिमाण यही है कि वह लज्जा रखने योग्य, शीत निवारण योग्य और अपने शरीर की लम्बाई-चौडाई के अनुसार हो।

चोलपट्टक की सख्या के सम्बन्ध मे आगम तथा भाष्य में यद्यपि उल्लेख नही है। फिर भी प्रतिलेखन आदि की अपेक्षा से जघन्य दो चोलपट्टक रखना स्थविरकल्पी के लिए उचित ही है।

मुखवस्त्रिका—"मुखपोतिका-मुख पिधानाय, पोत-वस्त्र मुखपोत, तदेव ह्रस्व चतुरगुलाधिकवितस्तिमात्रप्रमाणत्वात् मुखपोतिका। मुखवस्त्रिकायाम्।" —पिडनिर्युक्ति।

भावार्थ—मुखवस्त्रिका अर्थात् मुख को आवृत्त करने का वस्त्र। एक बेत और चार अगुल अर्थात् सोलह अगुल की मुखवस्त्रिका।

निशीथभाष्य एव बृहत्कल्पभाष्य मे यही एक माप कहा गया है, किन्तु लम्बाई-चौडाई का उल्लेख नही किया है। अन्य आगमो की व्याख्याओ में भी लम्बाई-चौडाई का अलग-अलग उल्लेख नही मिलता है। अत मुखवस्त्रिका का प्रमाण सोलह अगुल समचौरस होना स्पष्ट है। मूर्तिपूजक समाज मे प्राय समचौरस मुहपत्ति रखने की परम्परा प्रचलित है। स्थानकवासी समाज मे २१ अगुल लम्बी और सोलह अगुल चौडी मुखवस्त्रिका रखने की परम्परा है। मुखवस्त्रिका का यह माप किसी आगम मे या व्याख्या ग्रन्थ मे नही है, किन्तु यह माप मुख पर बाधने में अधिक उपयुक्त है।

ओघनिर्युक्ति मे मुखवस्त्रिका के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है, यथा—

चत्वार्यङ्गुलानि वितस्तिश्चेति, एतच्चतुरस्र मुखानन्तकस्य प्रमाणम्, अथवा इदं द्वितीय प्रमाण—यदुत मुखप्रमाणं कर्त्तव्यं मुहणंतय; एतदुक्तं भवति वसतिप्रमार्जनादौ यथा मुखं पच्छाद्यते त्र्यस्र कोणद्वये गृहीत्वा कृकाटिका पृष्टतश्च यथा ग्रंथिर्दातुं शक्यते तथा कर्त्तव्यं एतद्द्वितीयं प्रमाणं, गणना प्रमाणेन पुनस्तदेकैकमेव मुखानंतकं भवतीति। —ओघनिर्युक्ति गाथा-७११ की टीका।

भावार्थ—मुखवस्त्रिका सोलह अगुल की लम्बी और चौड़ी समचोरस होती है। दूसरे प्रकार की मुखवस्त्रिका भी होती है जो मकान का प्रमार्जन करने के समय त्रिकोण करके मुख एव नाक को

ढककर गर्दन के पीछे गाठ देकर बाधी जाती है, यह भी समचौरस होती है। इसका प्रमाण उक्त विधि से बांधी जा सके जितना समझना चाहिये। गणना की अपेक्षा दोनो प्रकार की मुखवस्त्रिकाएँ प्रत्येक श्रमण-श्रमणी को एक-एक-रखना चाहिए।

ओघनिर्युक्ति गाथा ६९४ की टीका मे भी मुखवस्त्रिका के समचौरस सोलह अगुल की होने का उल्लेख है। इसी कारण से छेदसूत्रो के व्याख्या ग्रन्थो मे मुखवस्त्रिका की लम्बाई-चौडाई अलग-अलग न कहकर केवल सोलह अगुल का माप ही कहा गया है। ओघनिर्युक्ति के इस कथन की जानकारी न होने के कारण अथवा इसे उपयुक्त प्रमाण न मानकर अर्वाचीन आचार्यों ने इक्कीस अगुल की लम्बाई और १६ अगुल की चौडाई की कल्पना की है। किन्तु मौलिक प्रमाण तो सोलह अगुल की समचौरस मुखवस्त्रिका होने का ही मिलता है।

गाथा ७१२ में दोनो प्रकार की मुखवस्त्रिका का प्रयोजन बताया है। उसकी टीका इस प्रकार है—

"सपातिमसत्वरक्षणार्थं जल्पद्भिर्मुखे दीयते," "तथा नासिकामुख बध्नाति तया मुखवस्त्रिकया वसतिं प्रमार्जयन्, येन न मुखादौ रजः प्रविशतीति।"

सपातिम जीवों की रक्षा के लिए बोलते समय मुखवस्त्रिका मुख पर रखी जाती है तथा उपाश्रय का प्रमार्जन करते समय सूक्ष्म रज मुख और नाक मे प्रवेश न करे, इसके लिए मुखवस्त्रिका बाधी जाती है।

उत्तरा अ ३ की व्याख्या मे मुखवस्त्रिका रखने का कारण स्पष्ट करते हुए कहा है कि—

संति सपातिमाः सत्वाः, सूक्ष्माश्च व्यापिनोऽपरे।
तेषा रक्षानिमित्त च, विज्ञेया मुखवस्त्रिकाः॥

—अभि राजेन्द्र कोष भा ६, पृष्ठ ३३३

अर्थ—सपातिम प्राणियो तथा अन्य इधर-उधर फैले हुए सूक्ष्म जीवो की रक्षा के लिए 'मुखवस्त्रिका' रखी जाती है, ऐसा समझना चाहिए।

भगवतीसूत्र श १६, उ. २ मे खुले मुँह से बोली जाने वाली भाषा को सावद्य कहा है। मुनि सावद्य भाषा का त्यागी होता है।

जिनकल्पी आदि वस्त्ररहित एव पात्ररहित रहने वाले भिक्षुओ को भी मुखवस्त्रिका रखना आवश्यक है। क्योकि मुखवस्त्रिका तथा रजोहरण मुनि चिह्न के आवश्यक उपकरण है।

प्रमाण के लिए देखे—

१. बृहत्कल्प उ ३, भाष्य गा. ३९६३ की टीका
२. निशीथ उ २, भाष्य गा १३९१
३. अभिधान राजेन्द्र कोष भाग ४ 'जिणकप्प' पृ १४८९,
—आचा श्रु १ अ २ टीका
४. अभिधान राजेन्द्र कोष भाग ६ 'लिगकप्प' पृ ६५६
—पचकल्प:भाष्य एव चूर्णि, कल्प २

इन प्रमाणों के आधार से यह स्पष्ट होता है कि मुँहपत्ति मुख पर बांधना ही मुनि-चिह्न एव जीवरक्षा के लिए उपयुक्त है। अन्यथा प्रायः सभी साधु-साध्वियो का खुले मुँह बोलना निश्चित है तथा इधर-उधर रख देने से मुनि-चिह्न भी नही रहता है। ग्रामादि मे चलते समय या विहार आदि मे मुखवस्त्रिका मुख पर न रहे तो जिनकल्पी आदि के लिए भाष्यादि मे इसे मुनि-चिह्न की अपेक्षा आवश्यक उपकरण कहना निरर्थक हो जाता है।

भगवतीसूत्र श ९, उ. ३२ मे आठ पट की मुँहपत्ति का उल्लेख है।

समुत्थान सूत्र मे भी आठ पट होने का उल्लेख है।

श्वे मूर्तिपूजक समाज मे चार पट की मुँहपत्ति रखी जाती है किन्तु एक किनारे आठ पट भी कर दिए जाते हैं। उसे सदा हाथ मे रखते हैं। विहार आदि के समय चोलपट्टक में भी लटका देते हैं। श्वे स्थानक वासी मुनि पूर्ण रूप से आठ पट करके मुखवस्त्रिका मुख पर बांध कर रखते है।

शिवपुराण अध्याय २१ मे जैन साधु का परिचय देते हुए मुख पर मुखवस्त्रिका धारण करने का कहा है। यथा—

हस्ते पात्र दधानाश्च, तुंडे वस्त्रस्य धारकाः।
मलिनान्येव वासांसि, धारयंत्यल्पभाषिणः॥

निशीथभाष्य तथा पिडनिर्युक्ति मे कहा है—

बितियं पि यप्पमाणं, मुहप्पमाणेण कायव्व ॥५८०५॥

—राजेन्द्र कोष भा ६, पृ ३३३

मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधने से ही मुख प्रमाण बनाने का यह कथन सार्थक हो सकता है।

मुखवस्त्रिका की सख्या भी आगम मे नही कही गई है। अत दो या अधिक आवश्यकतानुसार रखी जा सकती है। व्याख्या ग्रन्थो मे एक-एक मुखवस्त्रिका रखना कहा है।

कम्बल—आगमो मे अनेक जगह कम्बल का नाम आता है। यह शीत से शरीर की रक्षा के लिए रखा जाता है।

प्रश्नव्याकरणसूत्र मे जहाँ तीन चद्दर का कथन है, वहाँ अन्य उपधि मे कम्बल का नाम नही है, इसलिए इसका समावेश तीन चद्दरो मे किया जाता है। जो भिक्षु शीत-परीषह सहन कर सकता है वह वस्त्र का ऊणोदरी तप करता हुआ एक सूती चद्दर से भी निर्वाह कर सकता है तथा अचेल भी रह सकता है।

अथवा वस्त्र की जाति की अपेक्षा ऊणोदरी तप करता हुआ भिक्षु केवल सूती वस्त्र रखने पर कम्बल का त्याग कर सकता है।

कम्बल को जीवरक्षा का साधन भी माना जाने लगा है जो परम्परा मात्र है, किन्तु आगम-सम्मत नहीं है। दशा द ७ मे पडिमाधारी भिक्षु का सूर्योदय से सूर्यास्त तक विहार करने का वर्णन है। जहाँ सूर्यास्त हो जाए वही रात्रि भर अप्रमत्त भाव से व्यतीत करने का कथन है।

बृहत्कल्प उ २ मे साधु को खुले आकाश वाले स्थान में रहना कल्पनीय कहा है, साध्वी को अकल्पनीय कहा है। किन्तु वहाँ अप्काय की विराधना होना या कम्बल ओढकर रहना नही कहा है।

ः कम्बल को मुखवस्त्रिका या रजोहरण के समान जीवरक्षा का आवश्यक उपकरण मानना आगम-मत नही है ।

आसन—भिक्षु चद्दर, चोलपट्टक, कम्बल के सिवाय सूती या ऊनी आसन भी आवश्यकता एव च्छानुसार रख सकता है । वस्त्र ऊणोदरी तप करने वाला भिक्षु ऊनी वस्त्र का त्याग करके सूती सन रख सकता है तथा वस्त्र का अधिक त्याग करने वाला भिक्षु आसन रखने का भी त्याग कर कता है । वह जो भी वस्त्र रखता है, उसी को शय्या आसन के उपयोग मे ले लेता है । जो अचेल । जाता है वह बिना आसन के केवल शय्या-सस्तारक से ही निर्वाह करता है ।

व्याख्या ग्रन्थो मे दो आसन रखने का विधान भी है—एक सूती, दूसरा ऊनी । वहाँ सूती को नर-पट्ट और ऊनी को सस्तारक-पट्ट कहा है ।

पात्र सम्बन्धी वस्त्र—१ भिक्षा लाने के लिए झोली, २ आहार युक्त पात्रो को रखने का त्र, ३ खाली पात्रो को बाँधने के समय उनके बीच मे दिए जाने वाले वस्त्र, ४ पानी छानने या उसे कने का वस्त्र, ५ पात्र-प्रमार्जन करने का कोमल वस्त्र ।

इन्हे प्रश्न श्रु २, अ ५ मे क्रमश १ पात्रबन्धन, २ पात्रस्थापनक, ३. पटल, ४ रजस्त्राण, पात्रकेसरिका कहा है । ये वस्त्र आवश्यकतानुसार लम्बे-चौडे रखे जा सकते है । क्योकि आगमो इनके माप का कोई उल्लेख नही है ।

पादप्रोञ्छन—यह भी एक वस्त्रमय उपकरण है । इसका कथन आगमो मे अनेक स्थलो पर है । शीथसूत्र मे भी अनेक जगह इसका कथन है । इसका मुख्य उपयोग पाँव पोछना है ।

आचारागसूत्र मे मलत्याग के समय भी इसका उपयोग करने का कहा है । बृहत्कल्प उ ५ या निशीथ उ २ के अनुसार कभी-कभी काष्ठदण्ड से बाँधकर शय्या के प्रमार्जन मे भी इसका पयोग किया जाता है । निशीथ उ ५ के अनुसार यदि कभी आवश्यक हो तो गृहस्थ का पादप्रोञ्छन क दो दिन के लिए लाया जा सकता है । इस तरह आगमो मे पादप्रोञ्छन के अनेक प्रकार एव अनेक पयोग बताए है । इन भिन्न-भिन्न प्रयोगो के कारण या अन्य किसी दृष्टिकोण से व्याख्याग्रन्थो मे इसे जोहरण का पर्यायवाची भी मान लिया गया है । कही इसको दो पदो मे विभाजित करके 'पात्र' तथा ोञ्छन' (रजोहरण) ऐसा अर्थ भी किया गया है । इस अर्थभ्रम के कारण मूल पाठ मे भी अनेक जगह जोहरण के स्थान पर पादप्रोञ्छन लिखा गया हो, ऐसा प्रतीत होता है । यह पादप्रोञ्छन रजोहरण से न्न उपकरण है, ऐसा प्रश्नव्याकरणसूत्र से स्पष्ट है । क्योकि वहाँ दोनो उपकरण अलग-अलग कहे और टीकाकार ने भी अलग-अलग गिनकर उपकरणो की सख्या १२ कही है ।

दश अ ४ मे भी एक साथ दोनो उपकरणो के नाम गिनाए है ।

यह जीर्ण या उपयोग मे आए हुए वस्त्रखण्ड का बनाया जाता है, जो सूती या ऊनी किसी ी प्रकार का हो सकता है । इसका भी कोई माप निर्दिष्ट नही है । व्याख्याग्रन्थो मे यह एक हाथ । समचौरस ऊनी वस्त्र खण्ड कहा गया है । किन्तु ऊनी वस्त्र का त्याग कर ऊणोदरी करने वाले भी कामों में सूती वस्त्र का ही उपयोग करते है । अत कोई भी उपकरण ऊनी ही हो, ऐसा आग्रह ही किया जा सकता है । पादप्रोञ्छन विषयक अन्य जानकारी के लिए उ २ सूत्र १-८ का विवेचन खें ।

निशीथिया—यह रजोहरण की डडी के ऊपर लपेटने का वस्त्र होता है। इसका आगम में कही भी निर्देश नही है। अत यह परम्परा से रजोहरण की डडी पर लपेटने के लिए है। इससे रजोहरण व्यवस्थित बधा रहता है और वस्त्र युक्त काष्ठ दड से पशु आदि कोई भयभीत भी नही होते हैं। कसीदा एव रगो से युक्त निशीथिया रखने की और दो-तीन निशीथिये लपेटकर रखने की प्रवृति भी है, जो केवल परम्परामात्र है। जिसका सयम की अपेक्षा से कोई महत्त्व नही है और ऐसे चित्र-विचित्र रग-बिरगे कसीदे वाले उपकरण साधु के लिए अकल्पनीय भी है।

ये सब वस्त्र सम्बन्धी उपकरण कहे गये हैं। आगमो मे इन सभी के माप का स्पष्ट वर्णन नही है। अत भिक्षु ममत्व भाव न करते हुए उपयोगी वस्त्र आवश्यकता एव गण समाचारी के अनुसार रख सकता है। किन्तु उन सभी वस्त्रो का कुल माप तीन अखण्ड वस्त्र (थान-ताका) से अधिक होने पर उन्हे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है और निशी उ १८ के अनुसार सकारण (अशक्ति आदि से) आज्ञा पूर्वक मर्यादा से अतिरिक्त वस्त्र रखे जाने पर प्रायश्चित्त नही आता है।

साध्वी के लिए—आगमो मे ४ चद्दरो का और उनकी चौडाई का कथन है। 'उग्गहणतक' और 'उग्गहपट्टक' ये दो उपकरण विशेष कहे गए हैं। आगमो मे साध्वी के उपकरणो का भी अलग-अलग स्पष्ट माप नही है। अत साध्वियां भी आवश्यकता और समाचारी के अनुसार उपकरण रख सकती है किन्तु अकारण एव आज्ञा बिना चार अखड वस्त्र के माप से अधिक वस्त्र रखने पर उन्हे भी सूत्रोक्त प्रायश्चित्त समझना चाहिए।

शीलरक्षा के लिए और शरीर-सरचना के कारण कुछ उपकरण सख्या व माप मे अधिक होने से इनके लिए बृहत्कल्पसूत्र मे एक अखण्ड वस्त्र अधिक कहा गया है।

उग्गहणतक-उग्गहपट्टक—गुप्ताग को ढकने का लम्बा (लगोट जैसा) कपडा 'उग्गहपट्टक' कहा गया है। जाघिया जैसे उपकरण को उग्गहणतक कह सकते है।

बृहत्कल्प सूत्र उ ३ मे ये दोनो उपकरण साधु को रखने का निषेध है और साध्वी को रखने का विधान है। ये दोनो उपकरण शीलरक्षा के लिए रखे जाते हैं और यथासमय पहने जाते है। व्याख्याकारो ने इन दो उपकरणो के स्थान पर छह उपकरणो का वर्णन किया है तथा साध्वी के लिए कुल २५ उपकरणो की सख्या बताई है और साधु के लिए १४ उपकरण कहे है। आगमो मे सख्या का ऐसा कोई निर्देश नही है। भिन्न-भिन्न स्थलो पर भिन्न-भिन्न उपकरणो का कथन है। प्रश्नव्याकरण-सूत्र मे एक साथ उपकरणो का कथन है परन्तु वहाँ सख्या का निर्देश नही है, न ही उस कथन से भाष्योक्त सख्या का निर्णय होता है।

पात्र—लकडी, तुम्बा, मिट्टी, इन तीन जाति के पात्रो मे से किसी भी जाति के पात्र रखे जा सकते है, ऐसा वर्णन अनेक आगमो मे स्पष्ट मिलता है किन्तु पात्र की सख्या का निर्णय किसी भी आगमपाठ मे नही होता है।

१ आचा श्रु १, अ ८, उ ४ मे विशिष्ट प्रतिज्ञाधारी समर्थ भिक्षु के लिए अनेक पात्रो का वर्णन है—

'जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए, पाय चउत्थेहि।'

यहाँ पर एकवचन का प्रयोग न करके 'पाय चउत्थेहिं' ऐसा बहुवचनात शब्द का प्रयोग किया गया है ।

२. व्यव उ २ मे परिहारतप प्रायश्चित्त वहन करने वाले भिक्षु के लिए आहार करने का विधान करते हुए पात्र की अपेक्षा से पाँच शब्दो का प्रयोग किया है—

'सयंसि वा पडिग्गहंसि, सयंसि वा पलासगंसि, सयंसि वा कमंडलसि, सयंसि वा खुब्बगंसि, सयसि वा पाणिसि ।'

यहाँ आहार के पात्र के लिए 'पडिग्गहसि' शब्द है । मात्रक के लिए 'पलासगसि' शब्द है और पानी के पात्र के लिए 'कमडलसि' शब्द है । इस पाठ मे भी अनेक प्रकार के पात्र होने का कथन स्पष्ट है ।

३ भगवतीसूत्र श २, उ ५ मे गौतमस्वामी के गोचरी जाने के वर्णन मे उनके अनेक पात्रो का वर्णन है—

'तए ण से भगव गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि जाव भायणाइं वत्थाइ पडिलेहेइ भायणाइं वत्थाइ पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जइ, भायणाइ पमज्जित्ता भायणाइ उग्गाहेइ, भायणाइं उग्गाहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे जाव भिक्खायरिय अडइ जाव एसण अणेसणं आलोएइ आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ ।'

इस वर्णन मे बताया गया है कि गौतमस्वामी ने बहुत से पात्रो का प्रतिलेखन, प्रमार्जन किया तथा गोचरी मे लाए हुए आहार तथा पानी दोनो भगवान् को दिखाए । यहाँ पर गौतमस्वामी के अनेक पात्र होने का स्पष्ट वर्णन है ।

४ भगवतीसूत्र श २५, उ ७ मे उपकरण-ऊणोदरी का वर्णन इस प्रकार है—

'से कि त उवगरणोमोयरिया ?

उवगरणोमोयरिया एगे वत्थे, एगे पाए, चियत्तोवगरणसाइज्जणया ।'

यहाँ एक वस्त्र (चद्दर) एव एक पात्र रखने से ऊणोदरी तप होने का कथन है । इससे अनेक वस्त्र एव अनेक पात्र रखना स्पष्ट सिद्ध होता है, क्योकि अनेक वस्त्र-पात्र कल्पनीय हो तब ही एक वस्त्र या पात्र रखने से ऊणोदरी तप हो सकता है ।

५ प्रश्नव्याकरणसूत्र श्रु २, अ ५ मे पात्र के उपकरणो मे 'पटल' की सख्या तीन कही गई है । पटल का उपयोग पात्रो को बाधकर रखते समय किया जाता है । पात्र के बीच मे रखे जाने के कारण इन को 'पटल' (अस्तान) कहा गया है । इनकी सख्या तीन कही गई है अत पात्र तो तीन से ज्यादा होना स्वत सिद्ध हो जाता है । एक या दो पात्र के लिए तीन पटल की आवश्यकता नही होती है । व्याख्याकारो ने पटल का उपयोग गोचरी मे भ्रमण करते समय आहार के पात्रो को ढकने का बताया है, पाँच सात पटल रखना भी कह दिया है । किन्तु आगम मे आहार के पात्रो को ढाकने के लिए झोली एव रजस्त्राण उपकरण अलग कहे गये है, अतः पटल का उपर्युक्त उपयोग ही उचित है ।

६. आचा श्रु २, अ ६ मे पात्र सम्बन्धी पाठ इस प्रकार है—

'भिक्खू वा भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा पायं एसित्तए, से जं पुण पायं जाणेज्जा, तं जहा— अलाउपायं वा दारुपायं वा मट्टियापायं वा, तहप्पगारं पायं जे निग्गथे तरुणे जाव थिरसंघयणे, से एगं पायं धारेज्जा णो बीयं।'

अर्थ—भिक्षु या भिक्षुणी पात्र की गवेषणा करना चाहे, तब वह ऐसा जाने कि यह तुम्बे का पात्र, लकडी का पात्र या मिट्टी का पात्र है। इनमे से जो निर्ग्रन्थ तरुण यावत् स्थिर सहनन वाला है वह एक ही प्रकार का पात्र ग्रहण करे दूसरे प्रकार का नही।

यहाँ तीन जाति के पात्रो का कथन करके एक को ग्रहण करने का जो विधान किया है वह एक जाति की अपेक्षा से है, ऐसा अर्थ ही आगमसगत है। यदि सम्बन्ध मिलाए बिना ही ऐसा समझ लिया जाए कि सख्या मे एक ही पात्र भिक्षु को कल्पता है अनेक नही, तो यह अर्थ उपर्युक्त अनेक आगमपाठो से विरुद्ध है। क्योकि गणधर गौतमस्वामी के एव पारिहारिक तप करने वाले भिक्षु के तथा विशिष्ट प्रतिज्ञाधारी भिक्षुओ के भी अनेक पात्र होना ऊपर बताए गए आगमप्रमाणो से स्पष्ट है।

यदि तरुण स्वस्थ साधु को एक ही पात्र कल्पता हो तो अनेक पात्र रखना कमजोरी और अपवाद-मार्ग सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति मे पात्र की ऊणोदरी करने का कोई प्रयोजन ही नही रहता। जबकि भगवती आदि सूत्रो मे ऊणोदरीतप का पाठ स्पष्ट मिलता है तथा उसकी व्याख्या भी मिलती है।

अत आचाराग के इस पाठ मे एक जाति के पात्र ही तरुण साधु को कल्पते है, यही अर्थ करना निराबाध है।

इस प्रकार से भिक्षु के अनेक पात्र रखने का निणय तो हो जाता है, किन्तु कितने पात्र रखना यह निर्णय नही हो पाता है।

तीन पटल के पाठ से जघन्य ४ पात्र रखना तो स्पष्ट है, इसके अतिरिक्त मात्रक तीन प्रकार के कहे गए है—१ उच्चारमात्रक, २ प्रस्त्रवणमात्रक, ३ खेलमात्रक।

इनमे प्रस्रवणमात्रक तो सभी को आवश्यक होता है, किन्तु खेलमात्रक और उच्चार मात्रक विशेष कारण से किसी-किसी को आवश्यक होता है।

आचाराग के इस पाठ से या अन्य किसी कारण से भाष्य-टीकाकारो ने पात्र सख्या की चर्चा करते हुए एक पात्र व एक मात्रक रखने को कल्पनीय सिद्ध किया है। जिसमे मात्रक का विधान आर्यरक्षित के द्वारा किया गया बताया है। अन्यत्र भी इस विषयक विस्तृत चर्चा की गई है। जिसका उपर्युक्त आगम प्रमाणो के सामने कुछ भी महत्त्व नही रहता है तथा एक या दो पात्र रखने की कोई परम्परा भी प्रचलित नही है।

गोच्छग—सयम लेते समय ग्रहण की जाने वाली उपधि के वर्णन मे पात्र से भिन्न "गोच्छग" का कथन है।

उत्तरा अ २६ मे सूर्योदय होने पर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना के बाद "गोच्छग" के प्रतिलेखन करने का विधान है। उसके बाद वस्त्र-प्रतिलेखन का कथन है। तदनन्तर पौन पोरिसी आने पर पात्रप्रतिलेखन का विधान है।

इन सूत्रो से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि "गोच्छग" पात्र सम्बन्धी उपकरण नही है किन्तु वस्त्रो के प्रतिलेखन मे प्रमार्जन करने का उपकरण है, जिसे प्रमार्जनिका (पू जणी) कहा जाता है।

प्रश्नव्याकरणसूत्र श्रु २, अ ५ मे अनेक उपकरणो के नाम निर्देश है तथा वहाँ "आदि" शब्द का भी प्रयोग किया गया है, जिसमे पादप्रोछन, मात्रक, आसन आदि अनिर्दिष्ट उपकरणो को ग्रहण किया जाता है। उस पाठ मे भी "गोच्छग' उपकरण स्वतन्त्र कहा गया है।

दशवै अ ४ में अनेक उपकरणो के निर्देश के साथ "गोच्छग" का भी निर्देश पात्र से अलग किया है।

व्याख्याकारो ने "गोच्छग" को पात्र का ही उपकरण गिनाया एवं समझाया है और उसे ऊनी वस्त्रखण्ड बताया है। किन्तु उपर्युक्त स्पष्टीकरण से गोच्छग को पू जणी ही समझना उचित है।

बृहत्कल्प सूत्र उ. ५ मे तथा प्रश्न श्रु २, अ ५ मे "पायकेसरिया" उपकरण का वर्णन है। जो पात्रप्रमार्जन का कोमल वस्त्र रूप उपकरण है। तुम्बे के पात्र का प्रमार्जन करने के लिए इसे भिक्षु छोटे काष्ठदड से बांधकर भी रख सकता है, किन्तु साध्वी को काष्ठदड युक्त रखने का बृहत्कल्पसूत्र मे निषेध है। कही-कही इसे भी 'गोच्छग" ही मान लिया जाता है। किन्तु प्रश्नव्याकरणसूत्र मे पात्र के उपकरणो के बीच तीसरा उपकरण "पायकेसरिका" कहा है और गोच्छग अलग कहा है, अत दोनो उपकरण भिन्न-भिन्न है। गोच्छग का उपयोग वस्त्र, शरीर या अन्य उपधि के प्रमार्जन के लिए होता है एव पात्रकेसरिका का उपयोग पात्रप्रमार्जन के लिए होता है। इस प्रकार दोनो का कार्य भी भिन्न-भिन्न है।

रजोहरण—यह भिक्षु का आवश्यक उपकरण है। जिनकल्पी एव स्थविरकल्पी सभी साधुओ को रखना आवश्यक होता है। खडे-खडे भूमि का प्रमार्जन किया जा सके इतना लम्बा होता है तथा एक बार मे प्रमार्जन की हुई भूमि मे बराबर पैर रखा जा सके इतना घेराव होता है। उत्कृष्ट घेराव ३२ अगुल भी समझा जा सकता है। विशेष वर्णन उद्देशक पाच के अन्तिम सूत्रो से जानना चाहिए। चलते समय प्रमार्जन करने मे तथा आसन, शय्या व मकान का प्रमार्जन करने मे इसका उपयोग किया जाता है। इसे 'ऋषि-ध्वज' भी कहा गया है।

आगमो मे भिक्षु को 'अचेल' और 'अपात्र' (करपात्री) भी कहा है। भाष्यादि मे मुहपत्ती एव रजोहरण के सिवाय सभी उपकरणो का त्याग करना बताया है, क्योकि ये दोनो सयम एव जीव रक्षा के प्रमुख साधन है और शेष उपकरण शरीर की रक्षा एव लज्जा की प्रमुखता से रखे जाते है। अल्प उपाधि रखने वाले जिनकल्पी आदि भिक्षु रजोहरण से गोच्छग का कार्य भी कर सकते है।

साधु के सभी उपकरणो की तालिका

वस्त्र माप	उपकरण	विवरण
१ हाथ	मुहपत्ती	दो (कम से कम) लम्बाई २१ अगुल, चौडाई १६ अगुल अथवा १६ अगुल समचौरस।
	गोच्छग	एक (शरीर, उपकरण और वस्त्र के प्रमार्जन योग्य)

	रजोहरण	एक (खडे-खडे या चलते समय भूमिप्रमार्जन योग्य)
३५ हाथ	चद्दर	तीन (ऊनी कम्बल या सूती चद्दर)
१५ हाथ	चोलपट्ट	दो (लम्बाई ५ हाथ और चौडाई १½ हाथ)
७ हाथ	आसन	एक (३½ × २)
	पात्र	चार (कम से कम), मात्रक अलग।
१० हाथ	पात्र के वस्त्र	सात
१ हाथ	पादप्रोञ्छन	एक
१ हाथ	निशीथिया	एक, रजोहरण के काष्ठदण्ड पर लगाने के लिए।
७० हाथ लगभग	तीन अखण्ड वस्त्र	७२ हाथ होता है।

साध्वी के सभी उपकरणो की तालिका

१	चद्दर ८	४५ हाथ
२	माटिका (साडी) २	२० हाथ
३	उग्गहणतक, उग्गहपट्टक, कचुकी	१० हाथ
४	शेष मुहपत्ती आदि पूर्वोक्त	२० हाथ
	८ अखण्ड वस्त्र – ९६ हाथ	९५ हाथ लगभग

उपर्युक्त उपधि रखना भिक्षु की उत्सर्ग विधि है। अपवाद से अन्य उपधि आवश्यकतानुसार अल्प समय के लिए गीतार्थ भिक्षु की आज्ञा से रखी जा सकती है। किन्तु सदा के लिए और सभी साधुओ के लिए रखना उपयुक्त नही है। अत अकारण कोई उपधि नही रखी जा सकती है।

औपग्रहिक उपधि इस प्रकार है--

१ दण्ड २ लाठी ३ बास की खपच्ची ४ बास की सुई ५ चर्म ६ चर्मकोश ७ चर्मछेदनक ८ छत्र ९ भृशिका १० नालिका ११ चिलमिली १२ सूई १३ केंची १४ नखच्छेदनक १५ कर्णशोधनक १६ काटा निकालने का साधन इत्यादि औपग्रहिक उपकरणो का उल्लेख आगमो मे है। भाष्य मे आपवादिक औपग्रहिक उपकरण इस प्रकार कहे हैं—

पीठग[1] णिसज्ज[2] दडग[3] पमज्जणी घट्टए डगलमादी[4]।
पिप्पल[5] सूयि[6]-णहहरणि[7], सोधणगदुग[8-9] जहण्णो उ ॥१४१३॥

वासत्ताणे पणग[10], चिलमिलि[11] पणगं दुगच[12] सथारे।
दडादि[13] पणग पुण, मत्तग[14] तिगं पादलेहणिया ॥१४१४॥

चम्मतिगं[15] पट्टदुग[16] णायव्वो ॥१४१५॥

अक्खा[18] सथारो[19] य, एगमणेगंगिओ य उक्कोसो।
पोत्थपणग[20] फलग[21] बितिय पदे होइ उक्कोसो ।।१४१६।।

—नि भाष्य भा २ पृष्ठ १९२-९३
—बृहत्कल्प भाष्य गा ४०९६ से ४०९९

अर्थ—१ अनेक प्रकार के पीढे, २ निषद्या, ३ दडप्रमार्जनिका, डाडिया या डडासन, ४ डगल-पत्थरादि, ५ कैंची (कतरनी), ६ सूई, ७ नखछेदनक, ८. कर्ण-शोधनक, ९ दन्त-शोधनक, १० छत्र पचक, ११ चिलमिलिका पचक, १२ सस्तारक (अनेक प्रकार के तृण), १३ पाच प्रकार के दड लाठी आदि, १४ तीन मात्रक (उच्चार, प्रस्रवण, खल मात्रक), १५ अवलेखनिका (बास की खपच्ची), १६ चर्मत्रिक (सोने, बैठने एव ओढने का), १७. सस्तारक पट और उत्तरपट्ट (ऊनी एव सूती शयनवस्त्र), १८ अक्ष-समवसरण (स्थापनाचार्य), १९ चटाई आदि, २० पुस्तक पचक, २१ फलग-लकडी के पाट आदि।

भिक्षु इन उपकरणो को उत्सर्गविधि मे नही रख सकता है, आपवादिक स्थिति मे ये औपग्रहिक उपकरण रखे जा सकते है।

पुस्तक के कथन से अध्ययन की लेखन सामग्री के अन्य उपकरण एव चश्मे आदि भी क्षेत्र-काल अनुसार आवश्यक होने पर रखे जा सकते है।

यहा यह उल्लेखनीय है कि इन उपकरणो मे सूई, कैंची, छत्र आदि धातु वाले उपकरण भी कहे है।

पुस्तक, मात्रक, सस्तारक, पाट तथा शयनवस्त्र को भी आपवादिक उपकरण कहा है तथा अनेक प्रचलित उपकरणो एव पदार्थों का यहा कोई उल्लेख नही है। आगम तथा उनके भाष्य टीका के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न समुदायो मे प्रचलित कुछ उपकरण इस प्रकार है—

१ नाद, तगडी, सू पडी, चूली, मूर्ति आदि।
२ गुरुजनो के फोटू आदि।
३ समय की जानकारी के लिए घडी।
४. स्थापनाचार्य के लिए ठमणी।
५. पुस्तक रखने के सापडा, सापडी।
६ योग की पाटली, दाडो, दडासन।
७ वासक्षेप का डिब्बा या बटुआ।
८ प्लास्टिक के लोटा गिलास ढक्कन आदि उपकरण।
९. रात्रि मे रखने के पानी मे डालने के चूने का डिब्बा।
१० वस्त्र, पात्र आदि को स्वच्छ करने के लिए साबुन सोडा सर्फ आदि।
११ वस्त्रादि सुखाने के लिए तथा चिलमिली आदि के लिए डोरिया।

इन उपकरणो के रखने का विधान आगमो मे या भाष्य आदि व्याख्या ग्रन्थो मे नही है। फिर भी अत्यावश्यक होने पर ही सयम एव शरीर आदि की सुरक्षा के हेतु ये औपग्रहिक उपकरण रखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त केवल प्रवृत्ति या परम्परा से रखे जाने वाले सभी उपकरण परिग्रह रूप होते है।

प्रस्तुत प्रायश्चित्तसूत्र औत्सर्गिक उपधि से सम्बन्धित है। उसमे भी जिसकी गणना या प्रमाण (माप) आगम मे उपलब्ध है उसी के उल्लघन का प्रायश्चित्त इससे समझना चाहिए। शेष प्रायश्चित्त प्रमाणाभाव मे परम्परागत समाचारी के अनुसार समझना चाहिए।

प्रस्तुत विवेचन मे कतिपय उपकरणो का माप आगम मे न होने के कारण अनुमान से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

आगम निरपेक्ष अतिरिक्त उपधि रखने का गुरुचौमासिक प्रायश्चित्त आता है। कारण बिना या कारण के समाप्त हो जाने पर भी औपग्रहिक उपकरणो को रखने पर गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है। औपग्रहिक उपकरणो को सदा के लिए आवश्यक रूप से रखने की परम्परा चलाने पर उत्सूत्रप्ररूपणा का प्रायश्चित्त आता है और रखने वालो को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है। अत डडा, कबल, स्थापनाचार्य आदि किसी भी उपकरण का आग्रहयुक्त प्ररूपण करना मिथ्याप्रवर्तन समझना चाहिए।

विराधना वाले स्थानों पर परठने का प्रायश्चित्त

४०. जे भिक्खू अणतरहियाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।

४१. जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए उच्चार-पासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।

४२. जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

४३. जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए उच्चार-पासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।

४४. जे भिक्खू चित्तमताए पुढवीए उच्चार-पासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।

४५ जे भिक्खू चित्तमताए सिलाए उच्चार-पासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

४६. जे भिक्खू चित्तमंताए लेलूए उच्चार-पासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।

४७. जे भिक्खू कोलावाससि वा दारूए जीवपइट्ठिए, सअडे जाव मक्कडा-सताणए उच्चार-पासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंत वा साइज्जइ।

४८. जे भिक्खू थूणसि वा, गिहेलुयसि वा, उसुयालसि वा, कामजलसि वा, अण्णयरसि वा तहप्पगारसि अतलिक्खजायसि दुब्बद्धे, दुन्निक्खित्ते, अनिकपे, चलाचले उच्चार-पासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

४९ जे भिक्खू कुलियसि वा, भित्तिसि वा, सिलसि वा, लेलुंसि वा अण्णयरसि वा तहप्पगारंसि अतलिक्खजायसि दुब्बद्धे, दुन्निक्खित्ते, अनिकंपे, चलाचले उच्चार-पासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

५०. जे भिक्खू खंधंसि वा, फलिहंसि वा, मंचंसि वा, मडवंसि वा, मालंसि वा, पासायंसि वा, हम्मियतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारसि अंतलिक्खजायसि, दुब्बद्धे, दुन्निक्खित्ते, अनिकंपे, चलाचले उच्चार-पासवण परिट्ठवेइ, परिट्ठवेतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।।

४०. जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर मल-मूत्र का परित्याग करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जो भिक्षु जल से स्निग्ध पृथ्वी पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४२ जो भिक्षु सचित्त रजयुक्त पृथ्वी पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४३ जो भिक्षु सचित्त मिट्टी बिखरी हुई पृथ्वी पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४४ जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४५ जो भिक्षु सचित्त शिला पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४६ जो भिक्षु सचित्त शिलाखण्ड आदि पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४७ जो भिक्षु दीमक लगे हुए जीवयुक्त काष्ठ पर तथा अण्डे यावत् मकडी के जालो से युक्त स्थान पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४८ जो भिक्षु दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त, अनिष्कम्प या चलाचल थभे पर, देहली पर, ओखली पर, स्नानपीठ पर या अन्य भी ऐसे आकाशीय स्थानो पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

४९ जो भिक्षु दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त, अनिष्कम्प या चलाचल मिट्टी की दीवार पर, ईंट आदि की भित्ति पर, शिला पर, शिलाखण्ड-पत्थर पर या अन्य भी ऐसे अन्तरिक्षजात स्थानो पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

५० जो भिक्षु दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त, अनिष्कम्प या चलाचल स्कन्ध (टाड), फलह, मच, मडप, माला, महल या हवेली की छत पर या अन्य भी ऐसे अन्तरिक्षजात स्थान पर उच्चार प्रस्रवण परठता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

इन ५० सूत्रो मे कहे गए स्थानो का सेवन करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—जहाँ आत्म-विराधना तथा सयम-विराधना होती हो ऐसे स्थानो पर परठने का

प्रायश्चित्त इन सूत्रो मे कहा गया है। निषिद्ध स्थानो मे परठने सम्बन्धी विवेचन उ ३ तथा उ. १५ में देखे एव सूत्र सम्बन्धी अन्य विवेचन उ. १३ मे देखे।

सोलहवें उद्देशक का सारांश

सूत्र १-३	गृहस्थयुक्त, जलयुक्त और अग्नियुक्त शय्या मे ठहरना।
४-११	सचित्त इक्षु या इक्षुखण्ड खाना या चूसना।
१२	अरण्य मे रहने वाले, वन (जगल) मे जाने वाले, अटवी की यात्रा करने वालो से आहार लेना।
१३-१४	अल्पचारित्रगुण वाले को विशेषचारित्रगुण सम्पन्न कहना और विशेषचारित्रगुण सम्पन्न को अल्प चारित्रगुण वाला कहना।
१५	विशेषचारित्रगुण वाले गच्छ से अल्पचारित्रगुण वाले गच्छ मे जाना।
१६-२४	कदाग्रह युक्त भिक्षुओ के साथ आहार, वस्त्र, मकान, स्वाध्याय का लेन-देन करना।
२५-२६	सुखपूर्वक विचरने योग्य क्षेत्र होते हुए भी अनार्य क्षेत्रो मे या विकट मार्गों मे विहार करना।
२७-३२	जुगुप्सित कुल वालो से आहार वस्त्र शय्या ग्रहण करना तथा उनके वहाँ स्वाध्याय की वाचना लेना-देना।
३३-३५	भूमि पर या सस्तारक (बिछौने) पर आहार रखना या खूँटी छीका आदि पर आहार रखना।
३६-३७	गृहस्थो के साथ बैठकर आहार करना या गृहस्थ देखे वहाँ आहार करना।
३८	आचार्य आदि के आसन पर पाँव लगाकर विनय किये बिना चले जाना।
३९	सूत्रोक्त सख्या या माप (परिमाण) से अधिक उपधि रखना।
४०-५०	विराधना वाले स्थानो पर मल-मूत्र परठना।

इत्यादि दोष स्थानो का सेवन करने वाले को लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

इस उद्देशक के ३२ सूत्रों के विषय का कथन निम्न आगमो में है, यथा—

सूत्र १-३	स्त्री, अग्नि, पानीयुक्त मकान मे ठहरने का निषेध। —आचा श्रु २, अ २, उ ३ तथा बृह उद्दे २
४-११	सचित्त इक्षु व इक्षुखण्ड ग्रहण का निषेध। —आचा श्रु २, अ. ७, उ. २
१५	चारित्र की वृद्धि न हो ऐसे गच्छ मे जाने का निषेध। —बृह. उ ४
२५-२६	योग्य क्षेत्र के होते हुए विकट क्षेत्र मे विहार करने का निषेध। —आचा श्रु २, अ. ३, उ १
२७-३२	अजुगुप्सित अगर्हित कुलो में भिक्षार्थ जाने का विधान। —आचा. श्रु २, अ १, उ २
३८	आचार्यादि के आसन को पाव लगाकर विनय किए बिना चले जाना आशातना है। —दशा द ३

४०-५० पृथ्वी आदि की विराधना वाले तथा अन्तरिक्षजात स्थानो पर मल-मूत्र परठने का निषेध। —आचा श्रु २, अ. १०

इस उद्देशक के १८ सूत्रों के विषयों का कथन अन्य आगमों में नहीं है, यथा—

सूत्र १२ अरण्य वन अटवी आदि मे रहने तथा जाने-आने वालो से आहार नही लेना।

१३-१४ अल्प या विशेष चारित्रवान् के सम्बन्ध मे विपरीत कथन नही करना।

१६-२४ कदाग्रही से लेन-देन सम्पर्क नही करना।

३३-३५ भूमि, आसन पर या खूंटी आदि पर आहार नही रखना।

३६-३७ गृहस्थ के साथ बैठकर या उसके सामने बैठकर आहार नही करना।

३९ गणना या परिमाण से अधिक उपधि नही रखना।

॥ सोलहवां उद्देशक समाप्त ॥

सत्रहवां उद्देशक

कौतुहलजनित प्रवृत्तियों का प्रायश्चित्त

१. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए अण्णयरं तसपाणजायं—

१. तण-पासएण वा, २. मंजु-पासएण वा, ३. कट्ठ-पासएण वा, ४. चम्म-पासएण वा, ५. वेत्त-पासएण वा, ६. रज्जु-पासएण वा, ७. सुत्त-पासएण वा बधइ, बधंतं वा साइज्जइ ।

२. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए अण्णयरं तसपाणजायं तण-पासएण वा जाव सुत्त-पासएण वा बद्धेलय मुंचइ, मुंचत वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू कोउहल्ल वडियाए--

१. तणमालिय वा, २ मुंजमालिय वा, ३ वेत्तमालिय वा, ४ कट्ठमालियं वा, ५. मयण-मालियं वा, ६. भिंडमालियं वा, ७. पिच्छमालियं वा, ८ हडमालिय वा, ९ दतमालिय वा, १० संखमालिय वा, ११. सिंगमालियं वा, १२. पत्तमालियं वा, १३. पुप्फमालिय वा, १४. फल-मालियं वा, १५. बीयमालिय वा, १६. हरियमालिय वा करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

४. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए तणमालियं वा जाव हरियमालिय वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

५ जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए तण-मालियं वा जाव हरियमालिय वा पिणद्धेइ, पिणद्धेंत वा साइज्जइ ।

६ जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए—

१. अयलोहाणि वा, २. तंबलोहाणि वा, ३. तउयलोहाणि वा, ४ सीसलोहाणि वा, ५. रूप्प-लोहाणि वा, ६. सुवण्णलोहाणि वा करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए अय-लोहाणि वा जाव सुवण्णलोहाणि वा धरेइ, धरेंत वा साइज्जइ ।

८. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए अय-लोहाणि वा जाव सुवण्णलोहाणि वा पिणद्धेइ, पिणद्धेंत वा साइज्जइ ।

९. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए—१. हाराणि वा, २. अद्धहाराणि वा, ३. एगावलि वा, ४ मुत्तावलि वा, ५. कणगावलि वा, ६ रयणावलि वा, ७. कडगाणि वा, ८. तुडियाणि वा, ९.

केउराणि वा, १०. कुण्डलाणि वा, ११. पट्टाणि वा, १२. मउडाणि वा, १३. पलंबसुत्ताणि वा, १४. सुवण्णसुत्ताणि वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१०. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए हाराणि वा जाव सुवण्णसुत्ताणि वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

११. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए हाराणि वा जाव सुवण्णसुत्ताणि वा पिणद्धेइ पिणद्धेंतं वा साइज्जइ ।

१२ जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए—१. आईणाणि वा, २ सहिणाणि वा, ३. सहिणकल्लाणाणि वा, ४. आयाणि वा, ५. कायाणि वा, ६. खोमियाणि वा, ७. दुगुलाणि वा, ८. तिरीडपट्टाणि वा, ९. मलयाणि वा, १०. पतुण्णाणि वा, ११ असुयाणि वा, १२. चिणसुयाणि वा, १३. देसरागाणि वा, १४ अभिलाणि वा, १५ गज्जलाणि वा, १६ फलिहाणि वा, १७. कोयवाणि वा, १८. कबलाणि वा, १९. पावाराणि वा, २०. उद्दाणि वा, २१. पेसाणि वा, २२ पेसलेसाणि वा, २३ किण्हमिगाईणगाणि वा, २४. नीलमिगाईणगाणि वा, २५. गोरमिगाईणगाणि वा, २६ कणगाणि वा, २७. कणगकताणि वा, २८. कणगपट्टाणि वा, २९ कणग-खचियाणि वा, ३०. कणगफुसियाणि वा, ३१. वग्घाणि वा, ३२. विवग्घाणि वा, ३३. आभरणचित्ताणि वा, ३४. आभरण-विचित्ताणि वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

१३. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए आईणाणि वा जाव आभरण-विचित्ताणि वा धरेई, धरेंतं वा साइज्जइ ।

१४. जे भिक्खू कोउहल्ल-वडियाए आईणाणि वा जाव आभरण-विचित्ताणि वा पिणद्धेइ, पिणद्धेंत वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से किसी त्रसप्राणी को—
१ तृण-पाश से, २ मुंज-पाश से, ३ काष्ठ-पाश से, ४, चर्म-पाश से, ५ बेत-पाश से, ६ रज्जु-पाश से, ७ सूत्र (डोरे) के पाश से बाधता है या बाधने वाले का अनुमोदन करता है ।

२ जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से किसी त्रसप्राणी को तृण-पाश से यावत् सूत्र-पाश से बधे हुए को खोलता है या खोलने वाले का अनुमोदन करता है ।

३ जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से—
१ तृण की माला, २ मूंज की माला, ३ बेत की माला, ४ काष्ठ की माला, ५ मोम की माला, ६ भीड की माला, ७ पिच्छी की माला, ८ हड्डी की माला, ९ दत की माला, १० शख की माला, ११ सीग की माला, १२ पत्र की माला, १३ पुष्प की माला, १४ फल की माला, १५ बीज की माला, १६ हरित (वनस्पति) की माला बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

४ जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से तृण की माला यावत् हरित की माला रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है ।

५. जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से तृण की माला यावत् हरित की माला पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है।

६. जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से—

१. लोहे का कडा, २ ताबे का कडा, ३ त्रपुष का कड़ा, ४. शीशे का कड़ा, ५. चादी का कड़ा, ६. सुवर्ण का कडा, बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से लोहे का कडा यावत् सुवर्ण का कडा रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से लोहे का कडा यावत् सुवर्ण का कडा पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से—१ हार, २ अर्धहार, ३. एकावली, ४ मुक्तावली, ५ कनकावली, ६. रत्नावली, ७. कटिसूत्र, ८. भुजबन्ध, ९. केयूर (कठा), १० कुडल, ११. पट्ट, १२. मुकुट, १३ प्रलम्बसूत्र, १४ सुवर्णसूत्र बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

१० जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से हार यावत् सुवर्णसूत्र रखता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से हार यावत् सुवर्णसूत्र पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से—१ मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र, २ सूक्ष्म वस्त्र ३ सूक्ष्म व सुशोभित वस्त्र, ४ अजा के सूक्ष्मरोम से निष्पन्न वस्त्र, ५ इन्द्रनीलवर्णी कपास से निष्पन्न वस्त्र, ६ सामान्य कपास से निष्पन्न सूती वस्त्र, ७ गौड देश मे प्रसिद्ध या दुगुल वृक्ष से निष्पन्न विशिष्ट कपास का वस्त्र, ८. तिरीड वृक्षावयव से निष्पन्न वस्त्र, ९ मलयगिरि चन्दन के पत्रो से निष्पन्न वस्त्र १० बारीक बालो-ततुओ से निष्पन्न वस्त्र, ११ दुगुल वृक्ष के आभ्यंतरावयव से निष्पन्न वस्त्र, १२ चीन देश मे निष्पन्न अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र, १३ देश विशेष के रगे वस्त्र, १४. रोम देश मे बने वस्त्र, १५ चलने पर आवाज करने वाले वस्त्र, १६ स्फटिक के समान स्वच्छ वस्त्र, १७ वस्त्रविशेष कोतवो—वरको, १८ कबल, १९ कबलविशेष—**खरडग पारिगाणि पावारगा,** २० सिधु देश के मच्छ के चर्म से निष्पन्न वस्त्र, २१ सिन्धु देश के सूक्ष्म चर्म वाले पशु से निष्पन्न वस्त्र, २२ उसी पशु की सूक्ष्म पशमी से निष्पन्न वस्त्र, २३ कृष्णमृग-चर्म, २४ नीलमृग-चर्म, २५ गौरमृग-चर्म, २६ स्वर्णरस से लिप्त साक्षात् स्वर्णमय दिखे ऐसा वस्त्र, २७ जिसके किनारे स्वर्णरसरजित किये हो ऐसा वस्त्र, २८ स्वर्णरसमय पट्टियो से युक्त वस्त्र, २९ सोने के तार जडे हुए वस्त्र, ३० सोने के स्तबक या फूल जड़े हुये वस्त्र, ३१ व्याघ्रचर्म, ३२. चीते का चर्म, ३३ एक विशिष्ट प्रकार के आभरण युक्त वस्त्र, ३४ अनेक प्रकार के आभरण युक्त वस्त्र बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

१३ जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र यावत् अनेक प्रकार के आभरणयुक्त वस्त्र धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४ जो भिक्षु कौतूहल के सकल्प से मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र यावत् अनेक प्रकार के आभरणयुक्त वस्त्र पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भिक्षु को कुतुहलवृत्ति से रहित एव गभीर स्वभाव वाला होना चाहिये। उसे कुतूहल वृत्ति वालो की संगति भी नही करना चाहिए। सयम, तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि में ही सदा प्रवृत्त रहना चाहिये।

सूत्र १ और २ का विवेचन उद्देशक १२ मे तथा ३ से १४ तक का विवेचन उद्देशक ७ मे किया जा चुका है।

माला, आभूषण आदि पहनने से वेषविपर्यास होता है। लोकनिंदा भी होती है। इन पदार्थों की प्राप्ति मे तथा रखने मे भी दोषो की सभावना रहती है। अत. ये प्रवृत्तिया भिक्षु के लिये अनाचरणीय है।

श्रमण या श्रमणी द्वारा एक दूसरे का शरीर-परिकर्म गृहस्थ से करवाने का प्रायश्चित्त

१५-६८. जा णिग्गंथी णिग्गथस्स पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंत वा पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

एवं तइय उद्देसगगमेण णेयव्वं जाव जा णिग्गथी णिग्गंथस्स गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीसदुवारिय कारावेइ, कारावेंत वा साइज्जइ।

६९-१२२ जे णिग्गथे णिग्गंथीए पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

एव तइय उद्देसगगमेण णेयव्व जाव जे णिग्गथे णिग्गंथीए गामाणुगाम दुइज्जमाणीए अण्ण-उत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीसदुवारिय कारावेइ, कारावेंत वा साइज्जइ।

१५-६८. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के पैरो का अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से एक बार या बार-बार आमर्जन करवाती है या करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

इस प्रकार तीसरे उद्देशक के (सूत्र १६ से ६९) के समान पूरा आलापक जानना चाहिए यावत् जो निर्ग्रन्थी ग्रामानुग्राम जाते हुए निर्ग्रन्थ के मस्तक को अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से ढकवाती है या ढकवाने वाली का अनुमोदन करती है।

६९-१२२ जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के पैरो का अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से एक बार या बार-बार आमर्जन करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

इस प्रकार तीसरे उद्देशक के समान पूरा आलापक जानना चाहिए यावत् जो निर्ग्रन्थ

ग्रामानुग्राम जाती हुई निर्ग्रन्थी के मस्तक को अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से ढकवाता है या ढकवाने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—साधु को स्वय का काय-परिकर्म आदि गृहस्थ से करवाने का प्रायश्चित्त पन्द्रहवे उद्देशक में कहा गया है। यहा निर्ग्रन्थ के द्वारा निर्ग्रन्थी का या निर्ग्रन्थी के द्वारा निर्ग्रन्थ का गृहस्थ से कायपरिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त दो आलापको द्वारा कहा गया है। ऐसी प्रवृत्ति करने मे गृहस्थ को साधु-साध्वी के सयम में सदेह हो सकता है इत्यादि दोष पाचवे उद्देशक के सघाटी सिलवाने के सूत्र में कहे गये दोषो के समान समझ लेना चाहिए। अन्य सपूर्ण सूत्रो का विवेचन तीसरे उद्देशक के समान समझना चाहिए।

सदृश निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को स्थान न देने का प्रायश्चित्त

१२३. जे णिग्गंथे णिग्गंथस्स सरिसगस्स अते ओवासे सते, ओवास न देइ, न देंत वा साइज्जइ।

१२४. जा णिग्गंथी णिग्गंथीए सरिसियाए अंते ओवासे सते, ओवास न देइ, न देंत वा साइज्जइ।

१२३ जो निर्ग्रन्थ सदृश आचार वाले निर्ग्रन्थ को अपने उपाश्रय मे अवकाश (स्थान) होते हुए भी ठहरने के लिये स्थान नही देता है या नही देने वाले का अनुमोदन करता है।

१२४ जो निर्ग्रन्थी सदृश आचार वाली निर्ग्रन्थी को अपने उपाश्रय मे अवकाश होते हुए भी ठहरने के लिये स्थान नही देती है या नही देने वाली का अनुमोदन करती है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—जो समान समाचारी वाले हो, आचेलक्य आदि १० कल्पो मे जो समान हो और सदोष आहार, उपधि, शय्या और शिष्यादि को ग्रहण नही करते हो वे सब 'सदृश साधु' कहे जाते है। अपने उपाश्रय मे जगह होते हुए उन सदृश साधुओ को अवश्य स्थान देना चाहिये।

किसी आपत्ति के कारण आने वाले साधु यदि असदृश हो तो उन्हे भी अवश्य स्थान देना चाहिये। स्थान होते हुए भी स्थान नही देने पर धर्मशासन की अवहेलना होती है और सयमभावो की हानि होती है, राग-द्वेष की वृद्धि होती है। अत ऐसा करने पर साधु या साध्वी को इन सूत्रो के अनुसार प्रायश्चित्त आता है।

मालोपहृत आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त

१२५. जे भिक्खू मालोहडं असण वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइम वा देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

१२५. जो भिक्षु दिये जाते हुए मालापहृत अशन, पान, खादिम या स्वादिम को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—भूमि पर खडे-खडे सरलता से नही लिये जा सकते हो तो ऐसे ऊँचे स्थान पर रखे हुए आहार आदि लेना मालापहृत दोष है। चूर्णि मे इसके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद करके यह बताया है कि उत्कृष्ट मालापहृत की अपेक्षा यह प्रायश्चित्त कथन समझना चाहिये। यथा—

सुत्तनिपातो उक्कोसयम्मि, त खधमादिसु हवेज्जा—भाष्य गा ५९५२ अर्थात् नि·सरणी आदि लगाकर जहाँ से वस्तु प्राप्त की जाती है ऐसे ऊँचे स्थानो का तथा वैसे ही नीचे तलघर आदि स्थानो का आहार भी मालापहृत समझना चाहिये।

नि सरणी के खिसकने से अथवा चढने-उतरने वाले की स्वय की असावधानी से वह गिर सकता है, उसके हाथ पाव आदि टूट सकते है, 'साधु को देने के लिये चढते-उतरते यह गिर गया या साधु ने गिरा दिया' ऐसी अपकीर्ति हो सकती है इत्यादि अनेक दोषो की सभावना रहती है।

मालापहृत आहार का दश अ ५ उ १ मे तथा आचा श्रु २, अ १, उ ७ मे स्पष्ट निषेध किया गया है तथा प्राण, भूत, जीव और सत्व की विराधना होने की संभावना कहकर कर्मबध का कारण भी कहा है। पिडनिर्युक्ति मे इसे उद्गम दोषो मे बताया गया है।

सामान्य ऊँचे स्थान से या नही गिरने वाले साधन मे अथवा स्थायी चढने-उतरने के साधन से आ-जाकर दिया जाने वाला आहार मालापहृत दोष वाला नही होता है। आचा श्रु २, अ १, उ ७ मे भी इस सबध मे विस्तृत विवेचन किया गया है।

कोठे में रखा हुआ आहार लेने का प्रायश्चित्त

१२६ जे भिक्खू कोट्ठियाउत्त असण वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा उक्कुज्जिय निक्कुज्जिय ओहरिय देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

१२६ जो भिक्षु कोठे मे रखे हुए अशन, पान, खादिम या स्वादिम को ऊँचा होकर या नीचे-झुककर निकालकर देते हुए से लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—मिट्टी, गोबर, पत्थर या धातु आदि के कोठे होते है। जो कोठे अत्यधिक ऊँचे या नीचे हो अथवा बहुत बडे हो, जिनमे से वस्तु निकालने मे नि सरणी आदि की आवश्यकता तो नही पडती है किन्तु कठिनाई से वस्तु निकाली जाती है, अर्थात् ऊँचे होना, नीचे झुकना आदि कष्टप्रद क्रिया करनी पडती है तो ऐसे कोठे आदि से आहारादि लेने का निषेध आचा श्रु २ अ १ उ ७ मे किया गया है और यहाँ इसका प्रायश्चित्त कहा गया है।

आचाराग में मालापहृत वर्णन के अनतर सूत्र से ही इस विषय का कथन करके इसे एक प्रकार का मालापहृत दोष माना है और यहाँ प्रायश्चित्त कथन मे भी मालापहृत के अनतर ही इसका कथन है। टीका मे इसे तिर्यक् मालापहृत भी कहा गया है। अन्य विवेचन आचारागसूत्र में देखे।

उद्भिन्न आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त

१२७. जे भिक्खू मट्टिओलित्त असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा उब्भिदिय निब्भिदिय देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

१२७ जो भिक्षु मिट्टी से उपलिप्त बर्तन मे रहे अशन, पान, खादिम या स्वादिम को लेप तोड कर दिये जाने पर ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—मट्टिओलित्त से यहाँ उद्गम का "उब्भिन्न" दोष ग्रहण किया गया है। इसका निषेध आचा श्रु २, अ १ उ ७ तथा दशवै अ ५, उ १ मे भी है। उन दोनो स्थलो के वर्णन से सभी प्रकार के ढक्कन द्वारा बद किये हुए बर्तनो मे से ढक्कन खोल कर दिया जाने वाला आहार साधु के लिये अकल्पनीय होता है। इसमे भारी पदार्थ या बर्तन तथा मिट्टी एव वनस्पति पत्र आदि से बनाया हुआ ढक्कन (छादा) एव लोहे आदि से पैक किए हुए ढक्कनो का भी समावेश हो जाता है। सभी प्रकार के ढक्कनो के समाविष्ट होने के कारण ही उनके खोलने पर त्रस-स्थावर जीवो की विराधना होने का कथन है। केवल मिट्टी से लिप्त मे अग्नि आदि सभी त्रस-स्थावर जीवो की विराधना सम्भव नही है। अत "मट्टिओलित्त" शब्द होते हुए भी उपलक्षण से अनेक प्रकार के ढक्कन या लेप आदि से बन्द किए आहार का निषेध और प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिए।

साधु को देने के बाद कई ढक्कनो को पुन लगाने मे भी आरम्भ होता है, जिससे पश्चात्कर्म दोष लगता है। अत· ऐसा आहार आदि ग्रहण नही करना चाहिए।

भारी पदार्थ से ढके आहार को देने मे दाता को वजन उठाने-रखने मे कष्ट का अनुभव हो तथा जिसे रखने आदि मे जीव-विराधना सम्भव हो, ऐसा भारी आवरण समझना चाहिए।

यदि सामान्य ढक्कनो को खोलने, बन्द करने मे कोई विराधना न हो तथा जो सहज ही खोले या बन्द किए जा सकते हो, उनको खोलकर दिया जाने वाला आहार ग्रहण करने पर प्रायश्चित्त नही आता है।

निक्षिप्त-दोषयुक्त आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त

१२८. जे भिक्खू असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पुढवि-पइट्ठियं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

१२९ जे भिक्खू असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा आउ-पइट्ठिय पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ।

१३०. जे भिक्खू असण वा, पाणं वा, खाइम वा, साइम वा तेउ-पइट्ठिय पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ।

१३१. जे भिक्खू असणं वा, पाणं वा, खाइम वा, साइमं वा वणप्फइ-पइट्ठिय पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

१२८ जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी पर स्थित अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

१२९. जो भिक्षु सचित्त जल पर स्थित अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

१३० जो भिक्षु सचित्त अग्नि पर स्थित अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

१३१ जो भिक्षु सचित्त वनस्पति पर स्थित अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार को लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

(उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—भिक्षु को सचित्त नमक, मिट्टी आदि पर, सचित्त पानी पर या पानी के बर्तन पर, अगारो पर या चूल्हे पर तथा सचित्त घास सब्जी आदि पर कोई खाद्य पदार्थ या खाद्य पदार्थ युक्त बर्तन पडा हो तो उसमे से लेना नही कल्पता है ।

आचा श्रु २, अ १, उ ७ मे पृथ्वी आदि पर रखा आहार लेने का निषेध है, यहाँ उसी का प्रायश्चित्त विधान है । ऐसा निक्षिप्त-दोषयुक्त आहार लेने पर उन एकेन्द्रिय जीवो की विराधना होती है । अनन्तर-निक्षिप्त का यह सूत्रोक्त प्रायश्चित्त है । भाष्य मे परस्पर-निक्षिप्त का मासिक प्रायश्चित्त कहा है और यदि अनतकाय पर निक्षिप्त आहार हो तो उसे ग्रहण करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है ।

प्रश्न—सचित्त पृथ्वी आदि पर से खाद्य पदार्थ उठाने पर तो उन जीवो पर से भार हटता है और उन्हे शाति मिलती है । अत उस आहार को ग्रहण करने का निषेध क्यो किया गया है ?

समाधान—एकेन्द्रिय जीवो को स्पर्श मात्र से महान् वेदना होती है । उस पर से खाद्य पदार्थ या बर्तन साधु के लिये उठाने से कुछ जीवो का सघट्टन होता है । जिससे उनको साधु के निमित्त से महती वेदना होती है । इस विराधना के कारण ऐसा आहार लेने का निषेध व प्रायश्चित्त कहा गया है । —(चूर्णि)

यहाँ पर निक्षिप्तदोष का प्रायश्चित्त विधान है, फिर भी एषणा के "पिहित" दोष का प्रायश्चित्त भी इसी सूत्र से समझ लेना चाहिये, अर्थात् खाद्य पदार्थ पर रखे सचित्त पदार्थ को हटाकर दिया जाने वाला आहार ग्रहण करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

यहाँ पृथ्वी आदि की विराधना होने के कारण प्रायश्चित्त कहा गया है । सस्पृष्टदोष का कथन इस सूत्र मे या एषणा दोषो मे भी कही नही है, तथापि उसमे पृथ्वीकाय आदि की विराधना होने के कारण पिहितदोष के समान सचित्त से सस्पृष्ट आहार लेने का प्रायश्चित्त भी इसी सूत्र से समझ लेना चाहिये ।

अनतर-सस्पर्श में तो विराधना होना स्पष्ट ही है । किन्तु परपर-स्पर्श मे कभी विराधना हो सकती है और कभी नही । अत विराधना सभव न हो तो परपर-स्पर्श वाले खाद्य पदार्थ ग्रहण करने में प्रायश्चित्त नही आता है । खाद्य पदार्थ के समान ही वस्त्र आदि सभी उपकरणो के ग्रहण करने मे भी सूत्रोक्त विवेक व प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिए ।

आचाराग टीका मे निक्षिप्तदोष के निषेध से एषणा के दस ही दोषो का निषेध समझ लेने का कथन किया है। क्योकि वे सभी दोष आहार ग्रहण करते समय पृथ्वी आदि की विराधना से सबधित है, इसलिए उन दसो दोषो का प्रायश्चित्त भी इसी सूत्र से समझा जा सकता है।

शीतल करके दिया जाने वाला आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त

१३२ जे भिक्खू अच्चुसिणं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा—

१. सुप्पेण वा, २. विहुणेण वा, ३. तालियंटेण वा, ४. पत्तेण वा, ५ पत्तभगेण वा, ६. साहाए वा, ७. साहाभगेण वा, ८. पिहुणेण वा, ९ पिहुणहत्थेण वा, १०. चेलेण वा, ११. चेलकण्णेण वा, १२. हत्थेण वा, १३. मुहेण वा फुमित्ता वीइत्ता आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

१३२ जो भिक्षु अत्यन्त उष्ण अशन, पान, खादिम या स्वादिम पदार्थ को—

१ सूप से, २ पखे से, ३ ताडपत्र से, ४ पत्ते से, ५ पत्रखड से, ६ शाखा से, ७ शाखाखड से, ८ मोरपख से, ९ मोरपीछी से, १० वस्त्र से, ११ वस्त्र के किनारे से, १२ हाथ से या १३. मुह से फूक देकर या पखे आदि से हवा करके लाकर देने वाले से ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—पखे आदि से हवा करने पर वायुकाय के जीवो की विराधना होना निश्चित्त है तथा उडने वाले छोटे प्राणियो की भी विराधना होना सम्भव है। अत. इस प्रकार (वायुकाय की) विराधना करके शीतल किया गया आहार लेना भिक्षु को नही कल्पता है। आचा श्रु २, अ १, उ ७ मे इसका निषेध किया गया है और प्रस्तुत सूत्र में इसका प्रायश्चित्त कहा गया है।

चौड़े बर्तन मे उष्ण आहारादि डालकर कुछ देर रख कर ठण्डा करके दे तो परिस्थितिवश वह आहारादि लिया जा सकता है, किन्तु उसमे भी सपातिम जीव न गिरे ऐसा विवेक रखना आवश्यक है।

दशवै अ. ४ मे भिक्षु को मुह से फूक देने का और पखे आदि से हवा करने करवाने एव अनुमोदन करने का पूर्ण त्यागी कहा गया है।

वायुकाय की विराधना होने के कारण उष्ण आहार पानी के लेने का यहाँ प्रायश्चित्त कहा गया है, आचारागसूत्र मे वायुकाय की विराधना किये बिना उष्ण आहारादि ग्रहण करने का विधान किया गया है, तथापि अत्यन्त उष्ण आहारादि ग्रहण नही करना चाहिये, क्योकि उसे देने मे उसके छीटे से या भाप से दाता या साधु का हाथ आदि जल जाय या उष्णता सहन न हो सकने से हाथ मे से बर्तन आदि छूट कर गिर जाय या साधु के पात्र का लेप (रोगानादि) खराब हो जाय अथवा पात्र फूट जाय, इत्यादि दोष सम्भव हैं। अत: वैसे अत्यन्त गर्म आहार-पानी साधु को नही लेने चाहिए। कुछ समय बाद उष्णता कम होने पर ही वे ग्राह्य हो सकते हैं।

गर्मागर्म पानी से दाता या भिक्षु के अधिक जल जाने पर धर्म की अवहेलना होती है। पात्र फूट जाने पर परिकर्म करने से या अन्य पात्र की गवेषणा करने मे समय लगने से स्वाध्यायादि सयम

प्रवृत्तियो मे बाधा आने से अथवा अन्य भी ऐसे कारणो से गर्मागर्म आहार-पानी को ग्रहण करने का निषेध समझना चाहिये तथा सामान्य गर्म अशनादि को वायुकाय आदि की विराधना किये बिना ग्रहण किया जा सकता है, ऐसा समझना चाहिये।

यहा अनेक प्रतियो में गर्म आहार-पानी सम्बन्धी प्रायश्चित्त के दो सूत्र मिलते हैं, किन्तु भाष्य एव चूर्णि मे एक ही सूत्र की व्याख्या करके विषय पूर्ण किया गया है एव आचारागसूत्र मे भी एक ही सूत्र है। अत यहाँ भी मूलपाठ मे एक सूत्र ही रखा गया है।

तत्काल धोये पानी को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त—

१३३. जे भिक्खू—१. उस्सेइमं वा, २. ससेइमं वा, ३. चाउलोदग वा, ४. वारोदग वा, ५. तिलोदग वा, ६. तुसोदगं वा, ७. जवोदगं वा, ८. आयाम वा, ९. सोवीरं वा, १०. अबकजिय वा, ११. सुद्धवियडं वा।

१. अहुणाधोय, २. अणंबिल, ३. अवुक्कत, ४. अपरिणय ५. अविद्धत्थं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

१३३ जो भिक्षु—१ उत्स्वेदिम, २ सस्वेदिम, ३. चावलोदक, ४ वारोदक, ५ तिलोदक, ६ तुषोदक, ७ यवोदक, ८ ओसामण, ९ काजी, १० आम्लकाजिक, ११ शुद्ध प्रासुक जल।

१ जो कि तत्काल धोया हुआ हो, २ जिसका रस बदला हुआ न हो, ३ जीवो का अतिक्रमण न हुआ हो, ४ शस्त्रपरिणत न हुआ हो, ५ पूर्ण रूप से अचित्त न हुआ हो।

ऐसे जल को ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—आगमो मे अनेक जगह अचित्त शीतल जल अर्थात् धोवण पानी के नामो का कथन है। उनमे ग्राह्य पानी ग्यारह ही है, जो इस सूत्र मे कहे गये है। इससे अधिक नाम जो भी उपलब्ध हैं वे सब अग्राह्य कहे गये है।

ग्राह्य धोवण पानी बनने के बाद तुरन्त ग्राह्य नही होता है। करीब आधा घण्टा या मुहूर्त के बाद ग्राह्य होता है। चूर्णिकार ने समय-निर्धारण न करते हुए बुद्धि से ही समय निर्णय करने को कहा है। तत्काल लेने पर तो प्रस्तुत सूत्रानुसार प्रायश्चित्त आता है।

आगमो मे अनेक प्रकार के अचित्त एव एषणीय पानी लेने का विधान है और सचित्त एव अनेषणीय पानी लेने का निषेध है।

१ लेने योग्य पानी के १० नाम है—देखिए—आ० सू० २, अ० १, उ० ७, सू० ३६९-३७०
—दश० अ० ५, उ० १, गा० १०६ (७५)

२ न लेने योग्य पानी के १२ नाम है—देखिए—आ० सू० २, अ० १, उ० ८, सू० ३७३।

लेने योग्य पानी के आगमपाठ मे और न लेने योग्य पानी के आगमपाठ मे निश्चित सख्या सूचित नही है, किन्तु लेने योग्य पानी के आगमपाठ मे अन्य भी ऐसे लेने योग्य पानी लेने का विधान

है तथा न लेने योग्य पानी के आगमपाठ मे भी अन्य ऐसे न लेने योग्य पानी लेने का निषेध है। अतः कल्पनीय अकल्पनीय पानी अन्य अनेक हो सकते है, यह स्पष्ट है।

पानी शस्त्र-परिणमन होने पर भी तत्काल अचित्त नही होता है, अत वह लेने योग्य नही होता है। वही पानी कुछ समय बाद अचित्त होने पर लेने योग्य हो जाता है।

फल आदि धोए हुए अचित्त पानी मे यदि बीज, गुठली आदि हो तो ऐसा पानी छान करके दे, तो भी वह लेने योग्य नही है।

धोवण-पानी सूचक आगमस्थल इस प्रकार है—

१ दशवैकालिक अ० ५, उ० १, गा० १०६ (७५) मे तीन प्रकार के धोवण-पानी लेने योग्य कहे हैं। इनमे दो प्रकार के धोवण-पानी आचाराग श्रु० २, अ० १, उ० ७, सू० ३६९ के अनुसार ही कहे गए है और 'वार-धोयण' अधिक है।

२ उत्तराध्ययन सूत्र अ० १५, गा० १३ मे तीन प्रकार के धोवण कहे गए हैं। इन तीनो का कथन आ० श्रु० २, अ० १, उ० ७, सू० ३६९-३७० मे है।

३ आचाराग श्रु० २, अ० १, उ० ७, सू० ३६९-३७० मे अल्पकाल का धोवण लेने का निषेध है, अधिक काल का बना हुआ धोवन लेने का विधान है तथा गृहस्थ के कहने पर स्वत लेने का भी विधान है।

४ आ० श्रु० २, अ० १, उ० ८, सू० ३७३ मे अनेक प्रकार के धोवण-पानी का कथन है। इनमे बीज, गुठली आदि हो तो ऐसे पानी को छान करके देने पर भी लेने का निषेध है।

५ ठाण० अ० ३, उ० ३, सू० १८८ मे चउत्थ, छट्ठ, अट्ठम तप मे ३-३ प्रकार के ग्राह्य पानी का विधान है।

६ दशवैकालिक अ० ८, गा० ६ मे उष्णोदक ग्रहण करने का विधान है।

आचाराग व निशीथ मे वर्णित 'सुद्ध वियड' उष्णोदक से भिन्न है, क्योंकि वहाँ तत्काल बने शुद्ध वियड ग्रहण करने का निषेध एव प्रायश्चित्त कहा गया है। अत उसे अचित्त शुद्ध शीतल जल ही समझना चाहिये।

आगमो मे वर्णित ग्राह्य अग्राह्य धोवण पानी के सक्षिप्त अर्थ इस प्रकार हैं—

ग्यारह प्रकार के ग्राह्य धोवण-पानी—

१ उत्स्वेदिम—आटे के लिप्त हाथ या बर्तन का धोवण,
२ सस्वेदिम—उबाले हुए तिल, पत्र-शाक आदि का धोया हुआ जल,
३ तन्दुलोदक—चावलो का धोवण,
४ तिलोदक—तिलो का धोवण,
५ तुषोदक—भूसी का धोवण या तुष युक्त धान्यो के तुष निकालने से बना धोवण,
६ जवोदक—जौ का धोवन,
७ आयाम—अवश्रावण—उबाले हुए पदार्थों का पानी,

८ सौवीर—काजी का जल, गर्म लोहा, लकडी आदि डुबाया हुआ पानी,
९. शुद्धविकट—हरड बहेडा राख आदि पदार्थों से प्रासुक बनाया गया जल,
१० वारोदक—गुड आदि खाद्य पदार्थों के घडे (बर्तन) का धोया जल,
११ आम्लकाजिक—खट्टे पदार्थों का धोवण या छाछ की आछ।

बारह प्रकार के अग्राह्य धोवण-पानी—

१ आम्रोदक—आम्र का धोया हुआ पानी,
२ अम्बाडोदक—आम्रातक (फलविशेष) का धोया हुआ पानी,
३ कपित्थोदक—कैथ या कवीठ का धोया हुआ पानी,
४ बीजपूरोदक—बिजोरे का धोया हुआ पानी,
५ द्राक्षोदक—दाख का धोया हुआ पानी।
६ दाडिमोदक—अनार का धोया हुआ पानी,
७ खर्जूरोदक—खजूर का धोया हुआ पानी,
८ नालिकेरोदक—नारियल का धोया हुआ पानी,
९ करीरोदक—कैर का धोया हुआ पाना,
१० बदिरोदक—बेरो का धोया हुआ पानी,
११ आमलोदक—आवलो का धोया हुआ पानी,
१२ चिचोदक—इमली का धोया हुआ पानी।

इनके सिवाय गर्म जल भी ग्राह्य कहा गया है, जो एक ही प्रकार का होता है। पानी के अग्नि पर पूर्ण उबल जाने पर वह अचित्त हो जाता है। अर्थात् गर्म पानी मे हाथ न रखा जा सके, इतना गर्म हो जाना चाहिये। इसमे कम गर्म होने पर पूर्ण अचित्त एव कल्पनीय नही होता है। टीका आदि मे तीन उकाले आने पर अचित्त होने का उल्लेख मिलता है।

उक्त आगमस्थलो से स्पष्ट है कि धोवण-पानी अर्थात् अचित्त शीतल जल अनेक प्रकार का हो सकता है। आगमोक्त नाम तो उदाहरण रूप मे है। आटा, चावल आदि किसी खाद्य पदार्थ को धोया हुआ पानी या खाद्य पदार्थ के बर्तन को धोया हुआ पानी अथवा अन्य किसी प्रकार के पदार्थों से पूर्ण अचित्त बना हुआ पानी भिक्षु को लेना कल्पता है।

दशवैकालिक अ० ५ उ० १ गा० ७६-८१ के कथनानुसार अचित्त पानी को ग्रहण करने के साथ यह विवेक भी अवश्य रखना चाहिये कि क्या यह पानी पिया जा सकेगा? इससे प्यास बुझेगी या नही? इसका निर्णय करने के लिए कभी पानी को चखा भी जा सकता है। कदाचित् ऐसा पानी ग्रहण कर लिया गया हो तो उसे अनुपयोगी जानकर एकान्त निर्जीव भूमि मे परठ देना चाहिए।

इस सूत्र मे 'सोवीर' और आम्लकाजिक दोनो शब्दो का प्रयोग है जबकि अन्य आगमो मे एक 'सौवीर' शब्द ही कहा गया है। इसका अर्थ टीका आदि मे—काजी का पानी, आरनाल का पानी आदि किया गया है। हिन्दी शब्दकोष मे काजी के पानी का स्पष्टीकरण करते हुए—नमक जीरा आदि पदार्थों से बनाया गया स्वादिष्ट एव पाचक खट्टा पानी कहा है। इससे यह अनुमान होता है कि सौवीर शब्द का ही पर्यायवाची 'आम्लकाजिक' शब्द है, जो कभी पर्यायवाची रूप में यहाँ जोड़ा

गया हो। क्योकि अन्य आगम मे यह शब्द नही है एव इस सूत्र की चूर्णि मे भी इसकी व्याख्या नही है।

दोनो शब्दो का पृथक् अस्तित्व स्वीकार करने पर सौवीर का अर्थ काजी का पानी और अम्बकजिय का अर्थ छाछ का आछ आदि ऐसा किया जाता है।

आगमपाठ के विषयो का विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सौवीर' का टीका एव कोष आदि मे किया गया अर्थ प्रसग सगत नही है। क्योकि सूत्र मे कहे गए अचित्त जल तृषा शान्त करने के पेय जल है और इन्हे तेले तक तपस्या मे पीने का विधान है। जबकि काजी का पानी तो स्वादिष्ट बनाया गया पेय पदार्थ है जो आयम्बिल मे भी पीना नही कल्पता है। उसे उपवास, बेला एव तेला की तपस्या मे पीना तो सर्वथा अनुचित होता है।

आवला, इमली आदि खट्टे पदार्थों के धोवण-पानी का भी उल्लेख आचा श्रु २, अ १, उ. ८ मे पृथक् किया गया है, अत यहाँ एक सौवीर शब्द मानकर उसका छाछ की आछ अर्थ मानना प्रसग सगत हो सकता है। अथवा दोनो शब्द स्वीकार करके 'सौवीर' शब्द लोहे आदि गर्म पदार्थों को जिस पानी मे डुबा कर ठण्डा किया गया हो, वह पानी एव 'अम्लकाजिक' शब्द से छाछ के ऊपर का नितरा हुआ आछ ऐसा अर्थ करने पर भी सूत्रगत दोनो शब्दो की सगति हो सकती है।

फलो का धोया हुआ पानी भी अचित्त तो हो सकता है, क्योकि पानी मे कुछ देर रहने या धोने पर कुछ फलो का रस तथा उन पर लगे अन्य पदार्थों का स्पर्श पानी को अचित्त कर देता है। किन्तु फलो की गुठलियाँ, बीज या उनके बीटके जल मे होने से आचा० श्रु० २, अ० १, उ० ८ मे ऐसा पानी अकल्पनीय कहा गया है। फिर भी कभी बीज आदि से रहित अचित्त पानी उपलब्ध हो तो ग्रहण किया जा सकता है।

प्रस्तुत सूत्र मे 'शुद्धोदक' शब्द का भ्राति से गर्म पानी अर्थ भी किया जाता है, किन्तु गर्म पानी के लिये आगमो मे उष्णोदक शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ तत्काल के धोवण (अचित्त जल) का विषय है तथा आचा० श्रु० २, अ० १, उ० ७ मे भी ऐसे ही धोवण-पानी के वर्णन मे शुद्धोदक (शुद्ध अचित्त जल) का कथन है।

अन्न के अश से रहित तथा अनेक अमनोज्ञ रसो वाले धोवण-पानी के अतिरिक्त अचित्त बने या बनाये गये शीतल जल को शुद्धोदक समझना चाहिए। इसमे लौग, काली-मिर्च, त्रिफला, राख आदि मिलाये हुए पानी का समावेश हो जाता है। किन्तु शुद्धोदक का गर्म पानी अर्थ करना अनुचित ही है। क्योकि उसका सूत्रोक्त प्रायश्चित्त से कोई सम्बन्ध नही है।

आचा० श्रु० २, अ० १, उ० ७ मे अचित्त पानी भिक्षु को स्वय ग्रहण करने का भी कहा है। इसका कारण यह है कि भिक्षु के लिये निर्दोष अचित्त पानी मिलना कुछ कठिन है तथा पानी के बिना निर्वाह होना भी कठिन है। अत अचित्त निर्दोष पानी उपलब्ध हो जाने पर कभी पानी देने वाला वजन उठाने में असमर्थ हो या पानी देने वाली बहन गर्भवती हो अथवा उनके आने के मार्ग मे सचित्त पदार्थ पडे हो या उनके आने से जीव-विराधना होने की सम्भावना हो इत्यादि कारणो से भिक्षु गृहस्थ के आज्ञा देने पर या स्वय उससे आज्ञा प्राप्त करके अचित्त जल ग्रहण कर सकता है। यदि पानी का परिमाण अधिक हो, बर्तन उठाकर नही लिया जा सकता हो तो भिक्षु स्वय के पात्र से या गृहस्थ के

लोटे आदि से भी पानी ले सकता है किन्तु आहार के लिये इस प्रकार का कोई विधान आगम मे नही है एव न ही इस प्रकार से आहार के स्वय लेने की परम्परा है ।

एक बार अचित्त बना हुआ पानी पुन कालान्तर से सचित्त भी हो सकता है । क्योकि एकेन्द्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक के जीव पुन उसी काय के उसी शरीर में उत्पन्न हो सकते हैं । —सूय० श्रु० २, अ० ३

दशवैकालिक के पाचवे अध्ययन की चूर्णि मे कहा गया है कि गर्मी मे एक अहोरात्र से एव सर्दी और वर्षाकाल मे पूर्वाह्न (सुबह) मे गर्म किये जल के अपराह्न (सायकाल) मे सचित्त होने की सम्भावना रहती है ।

यथा—गिम्हे अहोरत्तेण सच्चित्ती भवति, हेमन्त वासासु पुव्वण्हे कत अवरण्हे सचित्ती भवति । —दश चूर्णि पृष्ठ ६१, ११४

धोवण-पानी के विषय मे कुछ समय से ऐसी भ्रात धारणा प्रचलित हुई है कि इसके अचित्त रहने का काल नही बताया गया है अथवा इसमे शीघ्र जीवोत्पत्ति हो जाती है, अत. वह साधु को अकल्पनीय है ।

इस प्रकार का कथन करना आगम प्रमाणो से उचित नही है । क्योकि आगमो मे अनेक प्रकार के धोवण-पानी लेने का विधान है, साथ ही तत्काल बना हुआ धोवण-पानी लेने का निषेध है एव उसके लेने का प्रायश्चित्त भी कहा गया है । उसी धोवण-पानी को कुछ देर के बाद लेना कल्पनीय कहा गया है । अत धोवण-पानी का ग्राह्य होना स्पष्ट है ।

कल्पसूत्र की कल्पान्तर वाच्य टीका मे अनेक प्रकार के धोवण-पानी की चर्चा करके उन्हे साधु के लिये तेले तक की तपस्या मे लेना कल्पनीय कहा है और निषेध करने वालो को धर्म एव आगम निरपेक्ष और दुर्गति से नही डरने वाला कहा है । यथा—

"परकीयमवश्रावणादिपानमतिनीरसमपि यदशनाहारतया वर्णयति काजिक चानतकाय वदति तत्तेषामेवाहारलापट्य धर्मागमनिरपेक्षता दुर्गतेरभीरूता केवल व्यनक्ति ।" —कल्प समर्थन पृ ५०

यहाँ उल्लेखनीय यह है कि इस व्याख्या के करने वाले तपगच्छ के आचार्य है, उन्होने अवस्रावण आदि का निषेध करने वाले खतरगच्छ एव अचलगच्छ वालो को लक्ष्य करके बहुत कुछ कहा है । —कल्प समर्थन प्रस्तावना ।

इसके प्रत्युत्तर में खरतरगच्छीय आचार्य जिनप्रभसूरि ने आधाकर्मी गर्म पानी लेने का खडन एव अचित्त शीतल जल लेने का मण्डन करने वाला 'तपोटमतकुट्टन' श्लोकबद्ध प्रकरण लिखकर तपगच्छ के आचार्यों को आक्रोश की भाषा मे बहुत लिखा है । देखे—प्रबन्ध पारिजात पृ० १४५-१४६

आचाराग श्रु० १, अ० १, उ० ३ की टीका मे धोवण-पानी के अचित्त होने का एव साधु के लिये कल्पनीय होने का वर्णन है । वहा पानी को अचित्त करने वाले अनेक प्रकार के पदार्थों का वर्णन भी है ।

प्रवचनसारोद्धार द्वार १३६ गाथा ८८१ मे प्रासुक अचित्त शीतल जल के ग्राह्य होने का कथन है तथा गाथा ८८२ मे उष्ण जल एव प्रासुक शीतल जल दोनो के अचित्त रहने का काल भी

कहा है। उसकी टीका में स्पष्ट किया गया है कि उष्ण पानी जितना ही चावल आदि के धोवण का भी अचित्त रहने का काल है।

उसिणोदगं तिदंडुक्कालियं, फासुयजलाति जइ कप्पं।
नवरि गिलाणाइकए पहरतिगोवरि वि धरियव्व ।। ८८१ ।।

त्रिभिर्दण्डे—उत्कालैरूत्कालित आवृत यदुष्णोदक तथा यत्प्रासुक-स्वकाय परकाय शस्त्रोपहृतत्वेन अचित्तभूत जल तदेव यतीनाम् कल्प्य, गृहीतुमुचित।

जायइ सचित्तया से गिम्हमि पहरपंचगस्सुवरि।
चउपहरोवरि सिसिरे वासासु पुणो तिपहरूवरि ।। ८८२ ।।

तदूर्ध्वमपि ध्रियते तदा क्षार प्रक्षेपणीयो, येन भूय सचित्त न भवतीति।

लघुप्रवचन सारोद्धार की मूलगाथा ८५ मे भी दोनो प्रकार के अचित्त पानी का काल समान कहा है। यथा—

खाइमि तले विवच्चासे, ति-चउ-पण जाम उसिणनीरस्स।
वासाइसु तम्माणं, फासुय-जलस्सावि एमेव ।। ८५ ।।

इस प्रकार टीका-ग्रन्थो मे दोनो प्रकार के जलो के प्रासुक रहने का काल भी मिलता है और आगमो मे तो दोनो प्रकार के प्रासुक जलो को ग्रहण करने का विधान है ही। अत पूर्वोक्त प्रचलित धारणा भ्रात है और वह आगमसम्मत नही है।

स्थानागसूत्र के तीसरे स्थान मे उपवास आदि तपस्या मे भी धोवण-पानी पीने का विधान किया गया है तथा कल्पसूत्र के समाचारी प्रकरण मे चातुर्मास मे किये जाने वाले उपवास, बेला, तेला मे चावल, आटे, तिल आदि के धोवण-पानी का तथा ओसामण या काजी आदि कुल ९ प्रकार के पानी का उल्लेख करके समस्त प्रकार के अचित्त जलो को लेने का विधान किया गया है। इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि धोवण पानी को अकल्पनीय या शकित मानना या ऐसा प्रचार करना उचित नही है।

साराश यह है कि एषणा दोषो से रहित आगमसम्मत किसी भी अचित्त जल को ग्राह्य समझना चाहिए एव उसका निषेध नही करना चाहिए। साथ ही उन्हे ग्रहण करने मे वह पानी अचित्त हुआ है या नही, इसकी परीक्षा करने का तथा मौसम के अनुसार उसके चलितरस होने का एव पुन सचित्त होने के समय का विवेक अवश्य रखना चाहिए।

अपने आपको आचार्य-लक्षणयुक्त कहने का प्रायश्चित्त

१३४ जे भिक्खू अप्पणो आयरियत्ताए लक्खणाइ वागरेइ, वागरंतं वा साइज्जइ।

१३४ जो भिक्षु स्वय अपने को आचार्य के लक्षणो से सम्पन्न कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—कोई भिक्षु अपने शरीर के लक्षणो का इस प्रकार कथन करे कि 'मेरे हाथ-पाव आदि मे जो रेखाए है या जो चन्द्र, चक्र, अकुश आदि चिह्न हैं तथा मेरा शरीर सुडौल एव प्रमाणोपेत है, इन लक्षणो से मैं अवश्य आचार्य बनू गा,' इस प्रकार कथन करने पर उसे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

आचार्य होने का अभिमान करना ही दोष है। इस प्रकार अभिमान करने से कदाचित् कोई क्षिप्तचित्त हो जाता है, निमित्त लक्षण ज्ञान असत्य भी हो जाता है। कोई वैरभाव रखने वाला उसका आचार्य होना जानकर उसे जीवनरहित करने का प्रयास कर सकता है इत्यादि दोषो की सम्भावना जानकर तथा भगवदाज्ञा समझकर भिक्षु अपने ऐसे लक्षणो को प्रकट न करे किन्तु गम्भीर व निरभिमान होकर सयमगुणो मे प्रगति करता रहे।

घमड करने से तथा स्वय अपनी प्रशसा करने से गुणो की तथा पुण्याशो की क्षति होती है।

नवीन आचार्य स्थापित करते समय स्थविर या आचार्यादि जानकारी करना चाहें अथवा कभी अयोग्य को पद पर स्थापित किया जा रहा हो तो सघ की शोभा के लिये स्वय या अन्य के द्वारा अपने लक्षणो की जानकारी दी जा सकती है, किन्तु उसमे मानकषाय, कलह या दुराग्रह के विचार नही होने चाहिये।

गायन आदि करने का प्रायश्चित्त

१३५. जे भिक्खू—१. गाएज्ज वा, २. हसेज्ज वा, ३ वाएज्ज वा, ४ णच्चेज्ज वा, ५. अभिणएज्ज वा, ६ हय-हेसियं वा, ७ हत्थिगुलगुलाइयं वा, ८. उक्किट्ठसीहणायं वा करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

१३५ जो भिक्षु—१ गाये, २ हँसे ३ वाद्य बजाये, ४ नाचे, ५ अभिनय करे, ६ घोडे की आवाज (हिनहिनाहट), ७ हाथी की गर्जना (चिघाड) और ८. सिहनाद करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—उक्त सभी प्रवृत्तियाँ कुतूहलवृत्ति की द्योतक हैं तथा मोहकर्म के उदय एव उदीरणा से जनित है। भिक्षु इन्द्रियविजय एव मोह की उपशाति मे प्रयत्नशील होता है अत उसके लिये ये अयोग्य प्रवृत्तियाँ है।

धर्मकथा मे यदि धर्मप्रभावना के लिये कभी गायन किया जाय तो उसे प्रायश्चित्त का विषय नही कहा जा सकता है। किन्तु जनरजक, धर्मनिरपेक्ष गीत हो तथा गायन कला प्रदर्शन का लक्ष्य हो तो प्रायश्चित्तयोग्य होता है।

हँसना, वादित्र आदि बजाना, नृत्य करना, नाटक करना, कुतूहल से किसी की नकल करना तथा हाथी, घोड़े, बदर, सिह आदि पशुओ की आवाज की नकल करना इत्यादि सयम-साधनामार्ग में निरर्थक प्रवृत्तियाँ होने से त्याज्य है तथा इन प्रवृत्तियो मे आत्म-सयम एव जीवविराधना भी सभव है। ऐसा करने वाले को उत्तरा अ० ३५ मे कादर्पिकभाव करने वाला कहा है, जो सयम-विराधक होकर दुर्गति प्राप्त करता है। इसलिए सूत्र मे ऐसी प्रवृत्तियो का प्रायश्चित्त कहा गया है।

किन्तु आपत्ति से रक्षाहेतु किसी प्रकार की आवाज करनी पड जाय तो उसका प्रायश्चित्त नही समझना चाहिए।

शब्दश्रवण-आसक्ति का प्रायश्चित्त

१३६. जे भिक्खू १. भेरि-सद्दाणि वा, २ पडह-सद्दाणि वा, ३. मुरज-सद्दाणि वा, ४ मुइंग-सद्दाणि वा, ५. णंदि-सद्दाणि वा, ६. झल्लरी-सद्दाणि वा, ७ वल्लरि-सद्दाणि वा, ८ डमरुय-सद्दाणि वा, ९ मड्डुय-सद्दाणि वा, १०. सद्दुय-सद्दाणि वा, ११ पएस-सद्दाणि वा, १२. गोलुकि-सद्दाणि वा अन्नयराणि वा तहप्पगाराणि विततााणि सद्दाणि कण्णसोय-वडियाए अभिसधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

१३७. जे भिक्खू १. वीणा-सद्दाणि वा, २. विपंचि-सद्दाणि वा, ३. तूण-सद्दाणि वा, ४ वव्वीसग-सद्दाणि वा, ५. वीणाइय-सद्दाणि वा, ६ तुंबवीणा-सद्दाणि वा, ७ झोडय-सद्दाणि वा, ८. ढंकुण-सद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि तताणि सद्दाणि कण्णसोय-वडियाए अभिसधारेइ अभिसंधारेंत वा साइज्जइ।

१३८. जे भिक्खू १. ताल-सद्दाणि वा, २. कसताल-सद्दाणि वा, ३. लित्तिय-सद्दाणि वा, ४. गोहिय-सद्दाणि वा, ५ मकरिय-सद्दाणि वा, ६ कच्छभि-सद्दाणि वा, ७ महति-सद्दाणि वा, ८ सणालिया-सद्दाणि वा, ९ वलिया-सद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि घणाणि सद्दाणि कण्णसोय-वडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

१३९ जे भिक्खू—१ सख-सद्दाणि वा, २ वंस-सद्दाणि वा, ३ वेणु-सद्दाणि वा, ४ खरमुही-सद्दाणि वा, ५ परिलिस-सद्दाणि वा, ६ वेवा-सद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि झुसिराणि सद्दाणि कण्णसोय-वडियाए अभिसंधारेइ, अभिसधारेंत वा साइज्जइ।

१३६ जो भिक्षु—१ भेरी के शब्द, २ पटह के शब्द, ३ मुरज के शब्द, ४ मृदग के शब्द, ५ नान्दी के शब्द, ६ झालर के शब्द, ७ वल्लरी के शब्द, ८ डमरू के शब्द, ९ मड्डुय के शब्द, १० सदुय के शब्द, ११ प्रदेश के शब्द, १२ गोलुकी के शब्द या अन्य भी ऐसे वितत वाद्यो के शब्द सुनने के सकल्प से जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

१३७ जो भिक्षु—१ वीणा के शब्द, २ विपची के शब्द, ३ तूण के शब्द, ४ वव्वीसग के शब्द, ५ वीणादिक के शब्द, ६ तुम्बवीणा के शब्द, ७ झोटक के शब्द, ८ ढकुण के शब्द या अन्य भी ऐसे तार वाले वाद्यो के शब्द सुनने के सकल्प से जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

१३८. जो भिक्षु—१ ताल के शब्द, २ कसताल के शब्द, ३ लत्तिक के शब्द, ४ गोहिक के शब्द, ५ मकर्य के शब्द, ६ कच्छभि के शब्द, ७ महती के शब्द, ८ सनालिका के शब्द, ९ वलीका के शब्द या अन्य भी ऐसे घनवाद्यो के शब्द सुनने के सकल्प से जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

१३९ जो भिक्षु—१ शख के शब्द, २ बास के शब्द, ३ वेणु के शब्द, ४ खरमुहि के शब्द, ५ परिलिस के शब्द, ६ वेवा के शब्द या अन्य भी ऐसे भुसिरवाद्यो के शब्द सुनने के सकल्प से जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—बारहवे उद्देशक मे रूपो की आसक्ति के प्रायश्चित्तों का कथन है और यहाँ शब्दो की आसक्ति का प्रायश्चित्त कहा गया है।

प्रस्तुत सूत्रचतुष्क मे चार प्रकार के वाद्यो का नामोल्लेख है।

आचा० श्रु० २, अ० ११ मे शब्दासक्ति-निषेध सूत्रो मे भी यह सूत्र-चतुष्क है किन्तु वहाँ वाद्यो के नाम कम है और यहाँ अधिक है।

निशीथचूर्णि मे बहुत कम शब्दो की व्याख्या की गई है, शेष शब्द 'लोकप्रसिद्ध है' ऐसा कह दिया गया है। इनका विस्तृत विवेचन आचारागसूत्र के विवेचन मे देखे। सक्षेप मे—

वितत—बिना तार वाले या चर्मावृत वाद्य—तबला, ढोलक आदि।

तन—तार वाले वाद्य—वीणा आदि।

घन—परस्पर टकरा कर बजाये जाने वाले वाद्य—जलतरग आदि।

भुसिर—मध्य मे पोलर (छिद्र) वाले वाद्य—बासुरी आदि।

'इन वाद्यो की आवाज यदि बिना चाहे ही कानो मे पड जाय तो भिक्षु को उसमे रागभाव नही करना चाहिये' यह पाचवे महाव्रत की प्रथम भावना है। अत उन्हे सुनने के सकल्प से जाना तो सर्वथा अकल्पनीय ही है। इस विषय का विस्तृत वर्णन १२वे उद्देशक के इन्द्रियविजय सबधी विवेचन से जानना चाहिए। रोगनिवारणार्थ भभा (भेरी) आदि वाद्यो की आवाज सुनने का प्रायश्चित्त नही आता है। ऐसे ही अन्य कारण भी समझ लेने चाहिये।

विभिन्न स्थानों के शब्द-श्रवण एवं आसक्ति का प्रायश्चित्त

१४०-१५४ जे भिक्खू वप्पाणि वा जाव भवणगिहाणि वा कण्णसोयवडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंत वा साइज्जइ। एव बारसमुद्देसग गमेणं सव्वे सुत्ता सद्दालावगेण भाणियव्वा जाव जे भिक्खू बहुसगडाणि वा जाव अण्णयराणि वा विरूवरूवाणि महासवाणि कण्णसोयवडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

१५५. जे भिक्खू—

१. इहलोइएसु वा सद्देसु, २. परलोइएसु वा सद्देसु, ३ दिट्ठेसु वा सद्देसु, ४. अदिट्ठेसु वा सद्देसु, ५. सुएसु वा सद्देसु, ६ असुएसु वा सद्देसु, ७. विण्णाएसु वा सद्देसु, ८. अविण्णाएसु वा सद्देसु सज्जइ, रज्जइ, गिज्झइ, अज्झोववज्जइ, सज्जमाणं, रज्जमाणं, गिज्जमाणं, अज्झोववज्झमाणं साइज्जजइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

१४०-१५४. जो भिक्षु खेत यावत् भवनगृहो के शब्द सुनने के सकल्प से जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है इत्यादि १२वे उद्देशक के समान यहाँ भी सभी सूत्र, 'शब्दश्रवण के आलापक' से जानना यावत् जो भिक्षु अनेक बैलगाडियो के यावत् अन्य अनेक प्रकार के महाआश्रव वाले स्थानो मे शब्द सुनने के सकल्प से जाता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

१५५. जो भिक्षु—

१ इहलौकिक शब्दो मे, २ पारलौकिक शब्दो मे, ३ दृष्ट शब्दों मे, ४ अदृष्ट शब्दो मे, ५. पूर्व सुने हुए शब्दो मे, ६ अश्रुत शब्दो मे, ७ ज्ञात शब्दो मे, ८. अज्ञात शब्दो मे आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध और अत्यधिक गृद्ध होता है या आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध और अत्यधिक गृद्ध होने वाले का अनुमोदन करता है।

इन १५५ सूत्रो मे कहे गये स्थानो का सेवन करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—इन १६ सूत्रो का सपूर्ण विवेचन १२वे उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए, चूर्णिकार ने भी यही सूचन किया है।

सत्रहवें उद्देशक का सारांश—

सूत्र १-२ कुतूहल से त्रस प्राणी को बाधना, खोलना।
३-१४ कुतूहल से मालाए, कडे, आभूषण और वस्त्रादि बनाना, रखना और पहनना।
१५-६८ साध्वी, साधु का शरीरपरिकर्म गृहस्थ द्वारा करवावे।
६९-१२२ साधु, साध्वी का शरीरपरिकर्म गृहस्थ द्वारा करवावे।
१२३-१२४ सदृश निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को स्थान नही देना।
१२५-१२७ अधिक ऊँचे-नीचे स्थान मे से या बडे कोठे मे से आहार लेना अथवा लेप आदि से बद बर्तन खुलवाकर आहार लेना।
१२८-१३१ सचित्त पृथ्वी आदि पर रखा हुआ आहार लेना।
१३२ पखे आदि से ठडा करके दिया गया आहार लेना।
१३३ तत्काल बना हुआ अचित्त शीतल जल (धोवण) लेना।
१३४ अपने आचार्यपद योग्य शारीरिक लक्षण कहना।
१३५ गाना, बजाना, हँसना, नृत्य करना नाटक करना, हाथी, घोडे, सिह आदि जानवरो के जैसे आवाज करना।
१३६-१३९ वितत, तत, घन और झुसिर वाद्यो की ध्वनि सुनने जाना।
१४०-१५५ अन्य अनेक स्थलो के शब्द सुनने के लिए जाना। शब्दो मे आसक्ति रखना इत्यादि प्रवृत्तिया करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

इस उद्देशक के २९ सूत्रो के विषयो का कथन निम्नांकित आगमो मे है, यथा—

१२५-१२७ मालोपहृत, कोठे मे रखा और मट्टियोपलिप्त आहार लेने का निषेध।

—आचा श्रु. २, अ. १, उ ७

१२८-३२	पृथ्वी आदि की विराधना करके दिया गया आहार लेने का निषेध। —आचा श्रु. २, अ १, उ ७
१३४	तत्काल बनाया हुआ अचित्त शीतल जल लेने का निषेध और चिरकाल का लेने का विधान। —आचा श्रु २, अ १, उ. ७
१३७-१५६	शब्दश्रवण के लिये जाने का निषेध। —आचा श्रु. २, अ ११

इस उद्देशक के १२६ सूत्रो के विषयो का कथन अन्य आगमो मे नहीं है—

सूत्र १ से १२४ तक तथा सूत्र १३५, १३६ के विषयो का कथन अन्य आगमो मे नही है, किन्तु माला, आभूषण आदि पहनने का दश अ ३ मे सामान्य निषेध है तथा अन्य साभोगिक साधु आ जाय, उसे शय्या-सस्तारक देने वा विधान—आचा श्रु २, अ. ७, उ २ मे है, किन्तु यहाँ सदृश निर्ग्रन्थ का कथन है।

।। सत्रहवां उद्देशक समाप्त ।।

अठारहवां उद्देशक

नौकाविहार करने का प्रायश्चित्त

१. जे भिक्खू अणट्ठाए णावं दुरुहइ दुरुहंतं वा साइज्जइ ।

२ जे भिक्खू णावं किणइ, किणावेइ, कीयं आहट्टु देज्जमाणं दुरुहइ, दुरुहंतं वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू णावं पामिच्चइ, पामिच्चावेइ, पामिच्चं आहट्टु देज्जमाणं दुरुहइ, दुरुहंतं वा साइज्जइ ।

४. जे भिक्खू णावं परियट्टेइ, परियट्टावेइ, परियट्टं आहट्टु देज्जमाणं दुरुहइ, दुरुहंतं वा साइज्जइ ।

५. जे भिक्खू णावं अच्छेज्जं, अणिसिट्ठं, अभिहडं आहट्टु देज्जमाणं दुरुहइ, दुरुहंतं वा साइज्जइ ।

६ जे भिक्खू थलाओ णावं जले ओक्कसावेइ, ओक्कसावेंतं वा साइज्जइ ।

७ जे भिक्खू जलाओ णावं थले उक्कसावेइ, उक्कसावेंतं वा साइज्जइ ।

८ जे भिक्खू पुण्णं णावं उस्सिचावेइ, उस्सिचावेंतं वा साइज्जइ ।

९. जे भिक्खू सण्णं णावं उप्पिलावेइ, उप्पिलावेंतं वा साइज्जइ ।

१०. जे भिक्खू पडिणावियं कट्टु णावाए दुरुहइ, दुरुहंतं वा साइज्जइ ।

११ जे भिक्खू उड्ढगामिणिं वा णावं, अहोगामिणिं वा णावं दुरुहइ, दुरुहंतं वा साइज्जइ ।

१२ जे भिक्खू परं जोयणवेलागामिणिं वा परं अद्धजोयणवेलागामिणिं वा णावं दुरुहइ, दुरुहंतं वा साइज्जइ ।

१३ जे भिक्खू णावं उक्कसेइ वा, वोक्कसेइ वा, खेवेइ वा, रज्जुए वा गहाय आकसेइ, उक्कसंतं वा, वोक्कसंतं वा खेवंतं वा, रज्जुए वा गहाय आकसंतं वा साइज्जइ ।

१४ जे भिक्खू णावं अलित्तएण वा, पप्फिडएण वा, वंसेण वा, वलएण वा वाहेइ, वाहेंतं वा साइज्जइ ।

१५. जे भिक्खू णावाओ उदगं भायणेण वा, पडिग्गहणेण वा, मत्तेण वा, नावाउस्सिचणेण वा उस्सिचइ, उस्सिचत वा साइज्जइ ।

१६. जे भिक्खू णाव उत्तिगेण उदग आसवमाणि उवरुवरि वा कज्जलमाणि पेहाए हत्थेण वा, पाएण वा, आसत्थपत्तेण वा, कुसपत्तेण वा, मट्टियाए वा, चेलकण्णेण वा पडिपिहेइ पडिपिहेंतं वा साइज्जइ ।

१७. जे भिक्खू णावागओ णावागयस्स असणं वा, पाण वा, खाइम वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेतं वा साइज्जइ ।

१८. जे भिक्खू णावागओ जलगयस्स असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

१९. जे भिक्खू णावागओ पंकगयस्स असणं वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेतं वा साइज्जइ ।

२०. जे भिक्खू णावागओ थलगयस्स असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

२१ जे भिक्खू जलगओ णावागयस्स असणं वा, पाणं वा, खाइम वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

२२. जे भिक्खू जलगओ जलगयस्स असण वा, पाण वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

२३ जे भिक्खू जलगओ पकगयस्स असणं वा, पाण वा, खाइमं वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

२४. जे भिक्खू जलगओ थलगयस्स असणं वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

२५. जे भिक्खू पंकगओ णावागयस्स असण वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेतं वा साइज्जइ ।

२६. जे भिक्खू पकगओ जलगयस्स वा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइम वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

२७ जे भिक्खू पंकगओ पंकगयस्स असणं वा, पाणं वा, खाइम वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

२८. जे भिक्खू पंकगओ थलगयस्स असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

२९. जे भिक्खू थलगओ णावागयस्स असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

३०. जे भिक्खू थलगओ जलगयस्स असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

३१. जे भिक्खू थलगओ पंकगयस्स असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

३२. जे भिक्खू थलगओ थलगयस्स असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

१. जो भिक्षु बिना प्रयोजन नावा पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है ।

२. जो भिक्षु नावा खरीदता है, खरीदवाता है या खरीदी हुई नावा दे तो उस पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है ।

३. जो भिक्षु नावा उधार लेता है, उधार लिवाता है या उधार ली हुई नावा दे तो उस पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है ।

४. जो भिक्षु नावा को अदल-बदल करता है, करवाता है और अदल-बदल की हुई नावा दे तो उस पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है ।

५. जो भिक्षु छीनकर ली हुई, थोडे समय के लिए लाकर दी हुई और सामने लाई गई नावा पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है ।

६. जो भिक्षु स्थल मे नावा को जल मे उतरवाता है या उतरवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

७. जो भिक्षु जल से नावा को स्थल पर रखवाता है या रखवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

८. जो भिक्षु पानी से पूर्ण भरी नावा को खाली करवाता है या खाली करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

९. जो भिक्षु कीचड मे फँसी नावा को निकलवाता है या निकलवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

१० जो भिक्षु प्रतिनावा करके नावा मे बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

११ जो भिक्षु ऊर्ध्वगामिनी नावा पर या अधोगामिनी नावा पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

१२ जो भिक्षु एक योजन से अधिक प्रवाह मे जाने वाली अथवा अर्धयोजन से अधिक प्रवाह मे जाने वाली नावा पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

१३ जो भिक्षु नावा को उपर की ओर (किनारे) खीचता है, नीचे की ओर (जल में) खीचता है, लगर डाल कर बाधता है या रस्सी मे कस कर बाधता है या ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४ जो भिक्षु नावा को नौ-दड (चप्पू) से, नौका पण्फिडक (नौका चलाने के उपकरण-विशेष) से, बास से या बल्ले से चलाता है या चलाने वाले का अनुमोदन करता है।

१५ जो भिक्षु नाव मे मे भाजन द्वारा, पात्र द्वारा, मिट्टी के बर्तन द्वारा या नावा उसिचनक द्वारा पानी निकालता है या निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

१६ जो भिक्षु नाव के छिद्र मे से पानी आने पर अथवा नाव को डुबती हुई देखकर हाथ से, पैर से, पीपल के पत्ते (पत्र समूह) से, कुस के पत्ते (कुससमूह) से, मिट्टी से या वस्त्रखड से उसके छेद को बन्द करता है या बद करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७ नाव मे रहा हुआ भिक्षु नाव मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८ नाव मे रहा हुआ भिक्षु जल मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९ नाव मे रहा हुआ भिक्षु कीचड मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२० नाव मे रहा हुआ भिक्षु भूमि पर रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२१ जल मे रहा हुआ भिक्षु नाव मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२ जल मे रहा हुआ भिक्षु जल मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३ जल मे रहा हुआ भिक्षु कीचड मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४ जल मे रहा हुआ भिक्षु भूमि पर रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५ कीचड मे रहा हुआ भिक्षु नाव मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६ कीचड मे रहा हुआ भिक्षु जल मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७ कीचड के रहा हुआ भिक्षु कीचड मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८ कीचड मे रहा हुआ भिक्षु भूमि पर रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९ स्थल पर रहा हुआ भिक्षु नाव मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३० स्थल पर रहा हुआ भिक्षु जल मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१ स्थल पर रहा हुआ भिक्षु कीचड मे रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३२ स्थल पर रहा हुआ भिक्षु स्थल पर रहे हुए गृहस्थ से अशन, पान, खादिम या स्वादिम ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—१ अप्काय के जीवो की विराधना का भिक्षु पूर्णत त्यागी होता है, अत. उसे नौकाविहार करना नही कल्पता है।

आचारागसूत्र, बृहत्कल्पसूत्र तथा दशाश्रुतस्कध मे अपवादरूप विशेष प्रयोजनो से नौका द्वारा जाने का विधान है, इसका स्पष्टीकरण १२वे उद्देशक मे किया गया है।

इन सूत्रो मे कहे गये नौकाविहार करने का प्रमुख कारण तो कल्पमर्यादा पालन करने का है, साथ ही १ सेवा मे जाना, २ भिक्षा दुर्लभ होने पर सुलभ भिक्षा वाले क्षेत्रो मे जाना, ३ स्थल-मार्ग जीवाकुल होने पर, ४ स्थलमार्ग अत्यधिक लम्बा होने पर (इसका अनुपात भाष्य से जानना), स्थलमार्ग मे चोर, अनार्य या हिंसक जन्तुओ का भय हो, ६ राजा आदि के द्वारा निषिद्ध क्षेत्र हो तो नौका द्वारा पार करने योग्य नदी को पार करने के लिये नावा मे बैठना आगमविहित है अथवा सप्रयोजन माना गया है, उनका इस सूत्र से प्रायश्चित्त नही आता है किन्तु अप्काय आदि की होने वाली विराधना का प्रायश्चित्त बारहवे उद्देशक मे कहे अनुसार समझ लेना चाहिए।

ठाणांग सूत्र अ ५ मे वर्षाकाल मे विहार करने के कुछ कारण कहे हैं, उन कारणों से विहार करने पर कभी नौका द्वारा नदी आदि पार करना पडे तो वह भी सकारण नौकाविहार है, अत उसका सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है।

नावा देखने के लिये या नौकाविहार की इच्छापूर्ति के लिये, ग्रामानुग्राम विचरण करने के लिए या तीर्थस्थानो मे भ्रमण करने हेतु अथवा अकारण या सामान्य कारण से नावा मे बैठना निष्प्रयोजन बैठना कहा जाता है, उसी का इस प्रथम सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा गया है।

२-५ आगाढ (प्रबल) कारण से नौकाविहार करना पडे तो भी सूत्रोक्त क्रीतादि दोष से युक्त नौका मे जाना नही कल्पता है अर्थात् नाविक अपनी भावना से ले जावे, किराया नही लेवे तो प्रायश्चित्त नही आता है। क्रीतादि दोष लगने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

६-९ साधु के लिये नौका को किनारे से जल मे ले जावे या जल से स्थल मे लावे, कीचड मे से निकाले, नावा मे से जल को निकालकर साफ करे, ऐसी नावा मे जाने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है अर्थात् अन्य यात्रियो के लिये पूर्व मे सब तैयारी हो जाय, वैसी नावा मे जाने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है।

१० यदि पार जाने वाली नौका बडी हो और वह किनारे से बहुत दूर हो तो वहाँ तक पहुँचने के लिये स्वय के लिये ही दूसरी छोटी (प्रतिनावा) नौका आदि साधन करके जाए तो भी प्रायश्चित्त आता है, अर्थात् जो नौका किनारे के निकट है और आचा० श्रु २, अ० ३, उ० १ मे कही विधि से पैदल चलकर पहुँच सकता है, ऐसी नावा मे जाने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है।

११ जो नौका प्रवाह मे या प्रवाह के सन्मुख जाने वाली हो उसमे जाना नही कल्पता है, किन्तु जो नदी के विस्तार को काटकर सामने तीर पर जाने वाली हो, उसी नौका में जाना कल्पता है। आचा० श्रु० २, अ० ३, उ० १ मे भी उक्त नौका मे जाने का निषेध है और यहाँ उसी का प्रायश्चित्त कहा है।

१२ नदी का विस्तार कम होते हुए भी पानी के प्रवाह का वेग तीव्र होने से यदि नौका को तिरछा लम्बा मार्ग तय करना पडे, जिससे नौका आधा योजन से अधिक या एक योजन से भी अधिक चले तो वैसी नावा मे और वैसे समय मे जाना नही कल्पता है। जाने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है। अत जब जो नावा आधा योजन से कम चल कर नदी पार करे तब उस नावा मे जाने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है।

यहाँ "जोयण" एव "अद्धजोयण" ये दो शब्द दिए गए है, इसका तात्पर्य यह है कि सामान्य रूप से तो अर्ध योजन से अधिक चलने वाली नावा मे भी नही जाना चाहिये, किन्तु अत्यन्त विकट स्थिति मे कभी अनिवार्य रूप से जाने का प्रसग आ जाए तो भिक्षु एक योजन चलने वाली नावा मे जा सकता है, किन्तु एक योजन से अधिक जाने वाली नावा का तो उसे पूर्णतया वर्जन करना चाहिए।

१३-१४ आचारांगसूत्र में नौकाविहार के वर्णन मे कहा है कि यदि नौका मे बैठने के बाद नाविक नौका चलाने मे मदद करने के लिए कुछ भी कहे तो भिक्षु उसे स्वीकार न करे किन्तु मौन

पूर्वक रहे । उन्ही आगे-पीछे खीचने आदि नौका चलाने सम्बन्धी प्रवृत्तियो के करने का इन सूत्रो मे प्रायश्चित्त कहा गया है ।

१५-१६ नौका मे किसी कारण से पानी भर जाए तो उसे पात्र आदि मे निकालना तथा किसी छिद्र आदि से पानी आता दीखे तो उसे किसी भी साधन से बन्द करना या नाविक को सूचना देना भिक्षु को नही कल्पता है । भिक्षु को वहाँ एकाग्रता पूर्वक ध्यान मे लीन रहकर शान्तचित्त से धैर्य रखते हुए समय व्यतीत करना चाहिए ।

परिस्थितिवश नौका सम्बन्धी ये कार्य करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है ।

१७-३२ १ नदी के किनारे स्थल मे (सचित्त भूमि मे), २ कीचड मे, ३ जल मे, ४ नावा में,

—इन चार स्थानो मे रहा हुआ भिक्षु इन चार स्थानो मे रहे हुए गृहस्थ से आहार ग्रहण नही कर सकता है ।

आचा० श्रु० २, अ० ३, उ० १ मे विधान है कि जब भिक्षु नदी किनारे नौकाविहार के लिए पहुँचे तब चारो प्रकार के आहार का त्याग करके सागारी सथारा कर ले एव साथ मे आहारादि न रखे, किन्तु सभी वस्त्र-पात्रादि को एक साथ बाध ले । तब फिर नया आहार ग्रहण करने का तो विकल्प ही नही रहता है । क्योकि भिक्षु अप्काय जीवो की विराधना के स्थान पर स्थित है, उस समय उसे आहार करना उपयुक्त नही है । स्थिरकाय होकर योग-प्रवृतियो से निवृत्त रहना होता है । सामान्यतया भी यदि गोचरी मे वर्षा आदि से जल की बू दे शरीर पर गिर जाये तो उनके सूखने तक आहार नही किया जाता है ।

प्रथम सूत्र के विवेचन मे बताये गये कारणो से जाना आवश्यक होने पर नौका-सतारिम जल-युक्त मार्ग होने पर अन्य कोई उपाय न होने से नौकाविहार का सूत्र मे विधान है । यदि जघासतारिम जल हो तो उसे पार करने के लिए पैदल जाने की विधि आ० श्रु० २, अ०३, उ० २ मे बताई गई है ।

जघाबल क्षीण हो जाने पर या अन्य किसी शारीरिक कारण से विहार न हो सके तो भिक्षु एक स्थान पर स्थिरवास रह सकता है ।—व्यव० उ० ८, सु० ४

सूत्रोक्त नौकाविहार का विधान प्रवचनप्रभावना के लिए भ्रमण करने हेतु नही है, क्योकि निशीथ उ० १२ मे तथा दशा० द० २ मे महिने मे दो बार और वर्ष मे ९ नव बार की ही छूट है । जिसका केवल कल्पमर्यादा पालन हेतु नदी पार करने से सम्बन्ध है । इसके सिवाय प्रवचनप्रभावना के लिए पादविहारी भिक्षु को वाहनो के प्रयोग का सकल्प करना भी सयम जीवन मे अनुचित है ।

उत्सर्ग विधानो के अनुसार सयमसाधना करने वाले भिक्षु को पादविहार ही प्रशस्त है और अपवाद विधानो के अनुसार परिमित जल-मार्ग को नौका द्वारा पार करने का आगम मे विधान है । अन्य वाहनो के उपयोग करने का निषध प्रश्न. श्रु० २ अ० ५ मे है । वहाँ हाथी घोड़े आदि वाहन, रथ आदि यान तथा डोली पालकी आदि वाहन का निषेध है । विशेष परिस्थिति में उनके आपवादिक उपयोग का निर्णय गीतार्थ की निश्रा मे विवेक पूर्वक करना चाहिए । यान-वाहन के कारणो को और क्रीतादि दोष सबधी प्रायश्चित्तो को इन नावा सूत्रो के अनुसार जान लेना चाहिए ।

विशेष कारण होने पर नौका द्वारा जल-मार्ग पार करने मे अप्कायिक जीवो की विराधना अधिक होती है और अन्य कायिक जीवो की विराधना अल्प होती है ।

सकारण अन्य यानो के उपयोग मे वायुकायिक जीवो की विराधना अधिक तथा तेजस्कायिक जीवो की विराधना अल्प एव शेष कायिक जीवो की विराधना और भी अल्प होती है । उद्देशक १२, सूत्र ८ के अनुसार इन जीव-विराधनाओ का प्रायश्चित्त आता है ।

अपवादो के सेवन का, उनके सेवन की सीमा का और प्रायश्चित्तो का निर्धारण तो गीतार्थ ही करते है ।

आगमोक्त एव व्याख्या मे कहे अपवादो के अतिरिक्त यानो का उपयोग करना अकारण उपयोग माना जाता है, अत उनके अकारण उपयोग का प्रायश्चित्त यहाँ प्रथम सूत्र के अनुसार समझना चाहिए एव सकारण वाहन उपयोग का प्रायश्चित्त नही आता है । यह भी इस प्रथम सूत्र मे स्पष्ट होता है ।

किन्तु गवेषणा आदि दोषो का एव विराधना सम्बन्धी दोषो का प्रायश्चित्त सकारण या अकारण दोनो प्रकार के वाहनप्रयोग मे आता है, यह इन सूत्रो का तात्पर्य है ।

नौकाविहार सम्बन्धी विधि-निषेध तथा उपसर्गजन्य स्थिति का विस्तृत वर्णन आचा० श्रु० २, अ० ३, उ० १-२ मे स्वय सूत्रकार ने किया है । अत तत्सम्बन्धी अर्थ विवेचन एव शब्दार्थ वही से जानना चाहिए ।

वस्त्रसम्बन्धी दोषो के सेवन का प्रायश्चित्त—

३३-७३ जे भिक्खू वत्थ किणइ, किणावेइ, कीय आहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ । एव चउद्दसम उद्देसगगमेण सव्वे सुत्ता वत्थाभिलावेणं भणियव्वा जाव जे भिक्खू वत्थणीसाए वासावास वसइ, वसतं वा साइज्जइ ।

त सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाणं उग्घाइय ।

३३-७३ जो भिक्षु वस्त्र खरीदता है, खरीदवाता है या साधु के लिए खरीदकर लाया हुआ ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है, इत्यादि चौदहवे उद्देशक के समान सभी सूत्र वस्त्रालापक से कहन चाहिए यावत् जो भिक्षु वस्त्र के लिए (प्रतिबद्ध होकर) चातुर्मास मे रहता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है ।

इन सूत्रो मे कहे दोषस्थानो का सेवन करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

विवेचन—वस्त्रसम्बन्धी इन ४१ सूत्रो का विवेचन १४वे उद्देशक के पात्रसम्बन्धी ४१ सूत्रो के विवेचन के समान ही विवेकपूर्वक समझ लेना चाहिए ।

४१ सूत्रो के स्थान पर चूर्णिकार ने २५ सूत्रो का उच्चारण करने का कहा है तथा १४वे उद्देशक के समान अर्थ समझने की सूचना भी की है। चूर्णिकार ने सूत्रसख्या २५ कहने मे—पुराने एव दुर्गन्धयुक्त वस्त्र के आठ सूत्रो की सख्या को दो सूत्रो में गिना है तथा पात्र सुखाने के ग्यारह सूत्रो को भी एक सूत्र गिना है, जिससे १६ सूत्र कम हो जाने से ४१ के स्थान पर २५ ही शेष रहते हैं। इस प्रकार सूत्रसख्या गिनने मे केवल अपेक्षाभेद है, किन्तु सूत्रसख्या मे कोई मौलिक अन्तर नही समझना चाहिए।

पात्र मे जो कोरणी करने का सूत्र है, उससे यहाँ वस्त्र मे कसोदा करना आदि अर्थ समझ लेना चाहिये।

अठारहवें उद्देशक का सारांश

सूत्र १	अत्यावश्यक प्रयोजन के बिना नौकाविहार करना या अन्य वाहन विहार करना।
२-५	क्रीतादि दोषयुक्त नौका मे चढना।
६-९	नौका मे चढने के लिये नावा को जल से स्थल मे, स्थल से जल मे मगाना, कीचड मे से निकलवाना या नावा में भरा जल निकलवाना।
१०	नौका तक जाने के लिये दूसरी नौका आदि करना।
११	अनुस्रोत या प्रतिस्रोत मे जाने वाली नौका मे जाना।
१२	आधा योजन या एक योजन से अधिक लम्बा मार्ग तय करने वाली नौका मे जाना।
१३-१४	नौका चलाना या उसमे सहायता करना।
१५	नौका मे आने वाले जल को बाहर उलीचना।
१६	नौका मे छिद्र हो जाने पर उसे बन्द करना।
१७-३२	नौकाविहार के प्रसग मे स्थल, जल, कीचड या नावा मे आहार ग्रहण करना।
३३-७३	वस्त्रसम्बन्धी दोषो का सेवन करना। इत्यादि प्रवृत्तियो का लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

इस उद्देशक के ४२ सूत्रो के विषय का कथन आचारांगसूत्र मे है—

२-१६ नौकासम्बन्धी विधि निषेधो का क्रमबद्ध वर्णन है।

—आचा श्रु २, अ ३, उ १-२

३३-३६ तथा ४०-६२ इन २७ सूत्रो के विषय चौदहवे उद्देशक के सूत्र १-४ तथा ८-३० तक के समान वस्त्र के लिये समझना। —आचा. श्रु. २, अ. ६, उ. १-२

इस उद्देशक के ३१ सूत्रो के विषय का कथन अन्य आगमों मे नहीं है, यथा--

१ अत्यावश्यक प्रयोजन के बिना नौका विहार का निषेध ।

१७-३२ नौका विहार के समय जल, स्थल, कीचड एव नौका मे आहार ग्रहण नही करना ।

३७-३९) इन चौदह सूत्रो के विषय चौदहवे उद्देशक के सूत्र ५-७ तथा ३१ से ४१ तक के
६३-७३) समान वस्त्र के लिये समझना ।

इस उद्देशक मे वस्त्र एव नौका इन दो विषयो का प्रायश्चित्त ७३ सूत्रो मे कहा गया है, अन्य कोई विषय नही है यह इस उद्देशक की विशेषता है ।

।। अठारहवाँ उद्देशक समाप्त ।।

उन्नीसवां उद्देशक

औषध सम्बन्धी क्रीतादि दोषों के प्रायश्चित्त

१. जे भिक्खू वियडं किणइ, किणावेइ, कीय आहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंत वा साइज्जइ ।

२ जे भिक्खू वियडं पामिच्चइ, पामिच्चावेइ, पामिच्च आहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

३. जे भिक्खू वियडं परियट्टइ, परियट्टावेइ, परियट्टिय आहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

४. जे भिक्खू वियड अच्छेज्ज, अणिसिट्ठं, अभिहड आहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

५. जे भिक्खू गिलाणस्स अट्ठाए पर तिण्ह वियड दतीण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

६. जे भिक्खू वियडं गहाय गामाणुगाम दुइज्जइ दुइज्जत वा साइज्जइ ।

७. जे भिक्खू वियड गालेइ, गालावेइ, गालिय आहट्टु देज्जमाण पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत वा साइज्जइ ।

१ जो भिक्षु औषध खरीदता है, खरीदवाता है या साधु के लिए खरीद कर देने वाले से ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२ जो भिक्षु औषध उधार लाता है, उधार लिवाता है या उधार लाने वाले से ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३ जो भिक्षु औषध को बदलता है, बदलवाता है या बदलवाकर लाने वाले से ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

४ जो भिक्षु छीनकर लाई हुई, स्वामी की आज्ञा के बिना लाई हुई अथवा सामने लाई हुई औषध ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५ जो भिक्षु ग्लान के लिए तीन मात्रा (तीन खुराक) से अधिक औषध ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६ जो भिक्षु औषध साथ में लेकर ग्रामानुग्राम विहार करता है या विहार करने वाले का अनुमोदन करता है।

७ जो भिक्षु औषध को स्वय गलाता है, गलवाता है या गला कर देने वाले से ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे प्रयुक्त "वियड" शब्द का प्रयोग अनेक आगमो मे अनेक अर्थों मे हुआ है। यथा—

१ बृहत्कल्प सूत्र उद्देशक २, सु ४-७ मे—शीतल पानी, गर्म पानी, सुरा और सौवीर के विशेषण रूप मे प्रयोग हुआ है, यथा—

१. सीओदग वियड कुंभे वा, २. उसिणोदग वियड कुंभे वा, ३. सुरा वियड कुंभे वा, ४. सोवीर वियड कुंभे वा, इत्यादि।

२ बृहत्कल्प सूत्र उद्देशक २, सु ११-१२ में—खुले गृह के अर्थ मे "वियड" शब्द का प्रयोग हुआ है। निर्ग्रन्थ को ऐसे खुले गृह मे ठहरने का विधान किया गया है और निर्ग्रन्थी को वहाँ ठहरने का निषेध किया गया है।

३ दशाश्रुत स्कन्ध की दशा ६ मे श्रावक की छट्ठी प्रतिमा मे दिवस भोजन के अर्थ मे "वियडभोजी" शब्द प्रयुक्त है।

४ प्रज्ञापना पद ९ मे—जीवो के उत्पन्न होने के स्थान रूप एक प्रकार की "योनि" के अर्थ मे "वियड" शब्द प्रयुक्त है, यथा—"वियडा जोणी"।

५. ठाणाग सूत्र अ ३ मे—ग्लान भिक्षु के लिए किसी एक प्रकार की औषध के अर्थ मे "वियड" शब्द का प्रयोग है। वहाँ ग्लान के लिए तीन प्रकार की "वियडदत्ति" ग्रहण करने का विधान है।

६ दशा द ८ मे—गोचरी गए साधु के मार्ग मे कही वर्षा आ जाने पर वही सुरक्षित स्थान मे बैठकर आहार-पानी के सेवन कर लेने के विधान मे "वियडग भोच्चा पेच्चा" ऐसा पाठ है।

७ आचा श्रु १, अ ९, उ. १, गा १८ मे भगवान् महावीर स्वामी ने किसी भी प्रकार का पाप कर्म न करते हुए, आधाकर्म दोष का सेवन न करते हुए "अचित्त भोजन किया था" इस अर्थ मे "वियड" शब्द का प्रयोग है यथा—**त अकुव्वं वियडं भुंजित्था**। यहाँ स्वतन्त्र "वियड" शब्द आहार का बोधक है।

इस प्रकार आगमो मे जहाँ "वियड" शब्द अचित्त गर्म पानी का, अचित्त शीतल पानी का विशेषण है वही सुरा-सौवीर आदि "मद्य" का भी विशेषण है। औषध, आहार-पानी, दिवस भोजन तथा शय्या एव योनि अर्थ मे भी है।

प्रस्तुत प्रकरण मे ठाणाग सूत्र अ. ३ में कहे गए विधान से सम्बन्धित प्रायश्चित्त का विषय है। दोनो स्थलो मे "वियड" ग्रहण करने का सम्बन्ध बीमार के लिए किया गया है अतः यहाँ औषध रूप अनेक पदार्थों को ही "वियड" शब्द से समझना चाहिए।

इन सूत्रो मे दत्ति—खुराक का भी उल्लेख है, विहार मे न ले जाने का भी कथन है तथा गलाने का भी प्रतिपादन है। अत यहाँ औषध रूप मे अफीम आदि का समावेश भी "वियड" शब्द मे समझा जा सकता है।

अफीम का प्रयोग दस्तो को बन्द करने के लिए या बीमार को शान्ति हेतु निद्रा के लिए किया जाता है। इन कार्यों के लिए यह सफल औषध मानी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसकी खुराक भिन्न-भिन्न होती है। अत ठाणाग सूत्र कथित जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट खुराक के कथन की सगति भी हो जाती है। कई बार लोग अफीम को पानी मे गलाकर खरल मे घोटकर भी उपयोग करते है। जिससे अफीम का अत्यल्प मात्रा मे उपयोग किया जा सकता है। आवश्यक होने पर इसे विहार मे भी सहज ही ले जाया जाना सम्भव है।

गलाने के सूत्र तथा तीन खुराक के सूत्र के सिवाय शेष पाँच सूत्र तो अन्य अनेक औषधियो मे घटित हो सकते है। अत यहा "वियड" शब्द से कोई एक पदार्थ विशेष न समझकर सामान्य या विशिष्ट सभी प्रकार की औषधियाँ समझ लेने से प्रस्तुत सूत्रो का अर्थ घटित हो जाता है।

"वियड" शब्द का भाष्य चूर्णि मे शब्दार्थ नही किया गया है और व्याख्या मद्य अर्थ को लक्ष्य रखकर ही की गई है किन्तु बृहत्कल्प सूत्र आदि मे मद्य के लिए "मज्ज", "सुरा", "सौवीर" शब्दो का प्रयोग हुआ है और "वियड" शब्द उनके साथ विशेषण रूप मे आया है। जो कि वहाँ पानी के विशेषण रूप मे भी प्रयुक्त है। अत ऊपर कहे गए सात आगम प्रमाणो से वियड शब्द का मद्य के लिए प्रयोग किया जाना सम्भव नही है। दशवैकालिक अ ५, उ २ गाथा ३६ मे भी मद्य के लिए 'सुर वा मेरग वावि, अण्ण वा मज्जग रस' ऐसा प्रयोग है किन्तु 'वियड' ऐसा शब्दप्रयोग नही है।

आगमो मे मद्य-मास साधु के लिए अभक्ष्य एव वर्जनीय कहे है। इनके सेवन को ठाणाग सूत्र मे नरक गति का कारण बताया है एव मद्य सम्बन्धी आगम पाठो मे कही भी मद्य के स्थान मे केवल "वियड" शब्द का प्रयोग नही किया गया है। अत "वियड" का मद्य अर्थ करना आगम सगत नही कहा जा सकता।

उपर्युक्त आगम उल्लेखो से यह भी स्पष्ट है कि "वियड" शब्द अधिकाशत किसी अन्य शब्द के साथ विशेषण रूप मे प्रयुक्त हुआ है। स्वतन्त्र "वियड" शब्द का प्रयोग केवल दशा द ८ मे आहार-पानी के अर्थ मे तथा ठाणाग व निशीथ के प्रस्तुत प्रकरण मे औषध के अर्थ मे और आचाराग मे निर्दोष आहार के अर्थ मे है।

१—४ इन सूत्रो मे एषणा के दोषो का प्रायश्चित्त कथन है। भिक्षु को सहन शक्ति, रोग परीषह जय की भावना एव उत्साह होने पर तो उत्तरा अ २, गा ३३ के अनुसार औषध की इच्छा भी नही करनी चाहिए। किन्तु यदि किसी भिक्षु को समाधि बनाए रखने के लिए औषध लेना आवश्यक हो तो इन सूत्रो मे कहे गए क्रीत आदि दोषो का सेवन न करते हुए शुद्ध निर्दोष औषध की गवेषणा करनी चाहिए। उक्त दोषो से युक्त औषधी ग्रहण करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है। पथ्य आहारादि भी उक्त दोषयुक्त ग्रहण करने पर यही प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिए। इन दोषो का विशेष विवेचन चौदहवे उद्देशक मे देखे।

५ प्रत्येक भिक्षु की अफीम आदि विशिष्ट औषधियो की जघन्य मध्यम उत्कृष्ट खुराक (सहज पाचन क्षमता) भिन्न-भिन्न होती है अत उन्हे उसमे अधिक ग्रहण नही करना चाहिए । अथवा तीन खुराक से अधिक एक दिन मे ग्रहण नही करना चाहिए । क्योंकि कई औषधी मात्रा से अधिक ले लेने पर नशा या अन्य हानि उत्पन्न करती है । अत इस सूत्र मे औषधी की मात्रा के विषय मे सावधान रहने का सूचन किया गया है ।

अन्यत्र आगमो मे "दत्ति" शब्द का प्रयोग "एक अखण्ड धार" अर्थ मे हुआ है । किन्तु यहा औषध प्रकरण मे "औषधी की खुराक" करना ही पसग सगत है । क्योकि औषधी की मात्रा तोला, माशा, रत्ती आदि मे कही जाती है किन्तु "एक धार" या एक पसली आदि से नही । वर्तमान मे भी विशिष्ट औषधी की मात्रा "ग्राम" के अथवा पेय औषधी की मात्रा ढक्कन या बून्द के रूप मे कही जाती है ।

यद्यपि प्रत्येक औषधी मे मात्रा का ध्यान रखना आवश्यक होता है तथापि अफीम या अन्य रासायनिक औषधो मे मात्रा का ध्यान रखना अधिक आवश्यक होता है ।

इस सूत्र मे जो तीन खुराक से अधिक ग्रहण करने का प्रायश्चित्त विधान है वह अफीम अम्बर आदि मादक पदार्थो या स्वर्ण भस्म आदि रसायन की अपेक्षा से समझना चाहिए । अधिक ग्रहण करने पर दाता को या अन्य देखने वालो को साधु के विषय मे शका उत्पन्न हो सकती है । अधिक मात्रा से कोई साधु आत्मघात भी कर सकता है, अत ऐसे पदार्थ अधिक मात्रा मे लाने ही नही चाहिए ।

६ पूर्व सूत्र मे तीन खुराक का कथन है जो एक-एक खुराक लेने से तीन दिन तक ली जा सकती है । तब तक उत्पन्न रोग प्राय शान्त हो जाता है ।

विहार मे भिक्षु जिस तरह आहार-पानी दो कोश के बाद नही ले जा सकता उसी प्रकार औषध भी ग्रामानुग्राम नही ले जा सकता । आवश्यक होने पर भिक्षु एक स्थान पर रुककर औषध ले सकता है । विहार मे औषधी साथ मे लेने से अनेक दोष-परम्परा की वृद्धि होती है, सग्रहवृत्ति बढती है, राज्य सम्बन्धी या चोर सम्बन्धी भय भी रहता है । इत्यादि कारणो से प्रस्तुत सूत्र मे विहार मे औषध साथ लेने का प्रायश्चित्त कहा गया है ।

७ किसी भी औषध को पानी मे भिजोना, गलाना, खरल मे घोटना तथा अन्य भी कूटना-पीसना आदि प्रवृत्ति करने पर प्रमाद की वृद्धि होती है, सपातिम आदि जीवो की विराधना तथा अनेक प्रकार की अयतना होती है । अत ये क्रियाएँ भिक्षु को नही करनी चाहिए । सहज रूप मे मिलने वाली औषध का प्रयोग करना ही उपयुक्त है । अन्य क्रियाएँ करने मे स्वाध्याय आदि के समय की भी हानि होती है । यदि साधु के लिए गृहस्थ ये प्रवृत्तिया करके औषध देवे तो भी ये दोष समझ लेने चाहिए । इन्ही कारणो से इस सूत्र मे प्रायश्चित्त कहा गया है ।

सध्याकाल मे स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त

८. जे भिक्खू चउहिं संझाहिं सज्झायं करेइ, करेंत वा साइज्जइ ।

त जहा—१. पुव्वाए संझाए, २. पच्छिमाए संझाए, ३. अवरण्हे, ४. अड्ढरत्ते ।

८. जो भिक्षु प्रात काल सध्या मे, सायकाल सध्या मे, मध्याह्न मे और अर्धरात्रि मे इन चार सन्ध्याओ मे स्वाध्याय करता है या स्वाध्याय करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—सन्ध्याएँ चार कही गई है, यथा—

१ पूर्व सन्ध्या—सूर्योदय के समय जो पूर्व दिशा मे लालिमा रहती है उसे 'पूर्व सन्ध्या' कहा जाता है। यह रात्रि और दिवस का सधिकाल है। इसमे सूर्योदय के पूर्व अधिक समय लालिमा रहती है और सूर्योदय के बाद अल्प समय रहती है। यह समय लगभग एक मुहूर्त का होता है।

२ पश्चिम सन्ध्या—पूर्व सन्ध्या के समान ही पश्चिम सन्ध्या सूर्यास्त के समय समझनी चाहिए। इसमे सूर्यास्त के पूर्व लाल दिशा कम समय रहती है और सूर्यास्त के बाद लाल दिशा अधिक समय तक रहती है। इस सम्पूर्ण लाल दिशा के काल को 'पश्चिम सन्ध्या' कहा गया है।

३ अपराह्न-मध्याह्न—दिवस का मध्यकाल। जितने मुहूर्त का दिन हो उसके बीच का एक मुहूर्त समय मध्याह्न कहा जाता है। उसे ही सूत्र मे "अपराह्न" कहा है। यह समय प्राय बारह बजे से एक बजे के बीच मे आता है। कभी-कभी कुछ पहले या पीछे भी हो जाता है।

४ अड्ढरत्ते—रात्रि के मध्यकाल को "अर्द्ध रात्रि" कहा गया है। इसे "अपराह्न" के समान समझना चाहिए।

दिवस और रात्रि का मध्यकाल लौकिक शास्त्र-वाचन के लिए भी अयोग्य काल माना जाता है। शेष दोनो सध्याकाल को आगम मे प्रतिक्रमण और शय्या उपधि के प्रतिलेखन करने का समय कहा है, इस समय मे स्वाध्याय करने पर इन आवश्यक क्रियाओ के समय का अतिक्रमण होता है।

ये चारो काल व्यन्तर देवो के भ्रमण करने के हैं। अत किसी प्रकार का प्रमाद होने पर उनके द्वारा उपद्रव होना सम्भव रहता है। लौकिक मे भी प्रात -साय भजन स्मरण के और मध्याह्न एव अर्द्ध रात्रि प्रेतात्माओ के भ्रमण के माने जाते हैं।

इन चार कालो मे भिक्षु को स्वाध्याय न करने से कुछ विश्रान्ति भी मिल जाती है।

इन चारो सन्ध्याओ का काल स्थूल रूप मे इस प्रकार है—

१ पूर्व सन्ध्या—सूर्योदय से २४ मिनिट पहले और २४ मिनिट बाद अथवा ३६ मिनिट पूर्व और १२ मिनिट बाद।

२ पश्चात् सन्ध्या—सूर्यास्त से २४ मिनिट पहले और २४ मिनिट बाद अथवा १२ मिनिट पूर्व और ३६ मिनिट बाद।

सूक्ष्म दृष्टि से इन सन्ध्याओ का काल लाल दिशा रहे जब तक होता है जो उपरोक्त कालावधि से हीनाधिक भी हो जाता है।

३-४ मध्याह्न एव अर्द्ध रात्रि—परम्परा से स्थूल रूप मे दिन और रात्रि के १२ बजे से एक बजे तक का समय माना जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से दिन या रात्रि के मध्य भाग का एक मुहूर्त समय होता है।

इन चारो सन्ध्याओ मे आगम के मूल पाठ का उच्चारण, वाचन एव स्वाध्याय नही करना चाहिए। क्योकि स्वाध्याय करने पर ज्ञान के अतिचार (अकाले कओ सज्झाओ) का सेवन होने से तथा अन्य दोषो के होने से प्रस्तुत सूत्र के अनुसार लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

उत्काल में कालिकश्रुत की मर्यादा-उल्लंघन का प्रायश्चित्त

९ जे भिक्खू कालियसुयस्स पर तिण्हं पुच्छाण पुच्छइ, पुच्छंतं वा साइज्जइ।

१०. जे भिक्खू दिट्ठिवायस्स पर सत्तण्ह पुच्छाण पुच्छइ, पुच्छत वा साइज्जइ।

९ जो भिक्षु कालिकश्रुत की तीन पृच्छाओ से अधिक पृच्छाएँ अकाल मे पूछता है या पूछने वाले का अनुमोदन करता है।

१० जो भिक्षु दृष्टिवाद की सात पृच्छाओ से अधिक पृच्छाएँ अकाल मे पूछता है या पूछने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—कालिकश्रुत के लिए दिवस और रात्रि का प्रथम और अन्तिम प्रहर स्वाध्याय का काल है और दूसरा तीसरा प्रहर उत्काल है। अत उत्काल के समय कालिकश्रुत का स्वाध्याय नही किया जाता है किन्तु नया अध्ययन कठस्थ करने आदि को अपेक्षा से यहाँ कुछ आपवादिक मर्यादा बतलाई गई है, जिसमे दृष्टिवाद के लिए सात पृच्छाओ का और अन्य कालिकश्रुत आचाराग आदि के लिए ३ पृच्छाओ का विधान किया है।

तिहिं सिलोगेहिं एगा पुच्छा, तिहिं पुच्छाहिं णव सिलोगा भवति एयं कालियसुयस्स एगतर। दिट्ठिवाए सत्तसु पुच्छासु एगवीस सिलोगा भवति।। —चूर्णि भा गा ६०६१

तीन श्लोको की एक पृच्छा होती है, तीन पृच्छा से ९ श्लोक होते हैं। ये प्रत्येक कालिक सूत्र के लिए है। दृष्टिवाद के लिए सात पृच्छाओ के २१ श्लोक होते है। अर्थात् दृष्टिवाद के २१ श्लोक प्रमाण और अन्य कालिकश्रुत के ९ श्लोक प्रमाण पाठ का उच्चारण आदि उत्काल मे किया जा सकता है। "पृच्छा" शब्द का सामान्य अर्थ प्रश्नोत्तर करना होता है। किन्तु प्रश्नोत्तर के लिए स्वाध्याय या अस्वाध्याय काल का कोई प्रश्न ही नही होता है अत यहाँ इस प्रकरण मे यह अर्थ प्रासगिक नही है।

"पृच्छा" शब्द के अन्य अनेक वैकल्पिक अर्थ भी होते है, उन्हे भाष्य से जानना चाहिए।

दृष्टिवाद सूत्र मे अनेक सूक्ष्म-सूक्ष्मतर विषय, भग भेद आदि के विस्तृत-वर्णन होने से उसकी पृच्छा अधिक कही गई है जिससे उसके अधिक पाठ का उच्चारण एक साथ किया जा सके।

कालिकश्रुत और उत्कालिकश्रुत की भेद-रेखा करने वाली कोई स्पष्ट परिभाषा आगमो मे उपलब्ध नही है। किन्तु नन्दीसूत्र मे कालिक और उत्कालिक सूत्रो की सूची उपलब्ध है। उससे यह तो स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि कौन से आगम कालिक है और कौनसे उत्कालिक है। किन्तु ये आगम उत्कालिक या कालिक क्यो है, इसका कारण वहाँ स्पष्ट नही किया गया है।

उपलब्ध ३२ आगमो मे ९ सूत्र उत्कालिक हैं यथा—

१ उववाईसूत्र, २ रायपसेणियसूत्र, ३ जीवाजीवाभिगमसूत्र, ४ प्रज्ञापनासूत्र, ५ सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र, ६ दशवैकालिकसूत्र, ७ नन्दीसूत्र, ८ अनुयोगद्वारसूत्र, ९ आवश्यकसूत्र। शेष ग्यारह अग आदि २३ आगम कालिकसूत्र है।

नन्दीसूत्र मे २९ उत्कालिकसूत्रो के नाम है और ४२ कालिकसूत्रो के नाम है। आवश्यक सूत्र मिलाने से कुल ७२ सूत्र होते है।

आवश्यकसूत्र को अनुयोगद्वारसूत्र मे उत्कालिकसूत्र कहा है। नन्दीसूत्र मे १२ उपाग सूत्रो मे से ५ को उत्कालिक और सात को कालिक कहा है तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति एव सूर्यप्रज्ञप्ति मे से भी क्रमश. एक को कालिक और एक को उत्कालिक कहा है। अत इसस भी कोई परिभाषा निश्चित नही की जा सकती है।

गणधरो द्वारा रचित आगम तो कालिक ही होते है और दृष्टिवाद आदि अगसूत्रो मे से भाषा-परिवर्तन के विना ज्यो का त्यो उद्धृत किया गया आगम भी कालिकश्रुत कहा जाता है, क्योकि वह तो उन अग सूत्रो का मौलिक रूप ही होता है। किन्तु अन्य पूर्वधरो के द्वारा अपनी शैली मे रचित आगम को उत्कालिकश्रुत समझना चाहिए। क्योकि इसमे अर्थ की मौलिकता रह सकती है किन्तु सूत्र की मौलिकता नही रहती है।

आगमो की ३२ या ४५ सख्या मानने की परम्परा भी अलग-अलग अपेक्षा से तथा किसी क्षेत्र-काल मे की गई कल्पना मात्र ही समझनी चाहिए। वास्तव मे नन्दीसूत्र मे ७२ सूत्रो के जो नाम है, वह नन्दीसूत्र की रचना के समय उपलब्ध आगमो की सूची है। उसमे स्वय नन्दीसूत्र का भी नाम है जो एक पूर्वधर श्री देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण (देव वाचक) द्वारा रचित है। तथा अन्य भी एक पूर्वधर द्वारा रचित अनेक आगमो के नाम वहाँ दिए गये हैं।

अनेक आगमो के रचनाकाल या रचनाकार का कोई प्रामाणिक इतिहास भी नही मिलता है। नन्दीसूत्र मे कहे गए महानिशीथ आदि सूत्रो के खण्डित हो जाने पर उन्हे पूरक पाठो से पूरा किया गया है।

ग्रन्थो मे आगमो की परिभाषा इस प्रकार कही गई है-

सुत्त गणहर रइय, तहेव पत्तेय बुद्ध रइय च।
सुय केवलिणा रइयं, अभिन्न दस पुव्विणा रइय ॥१५४॥

—बृहत्सग्रहणी

इस गाथा के अनुसार प्रत्येक बुद्ध, गणधर, १४ पूर्वी तथा सम्पूर्ण दस पूर्वधरो की रचना-सकलना को सूत्र या आगम कहा जा सकता है।

नन्दीसूत्र के अनुसार भी भिन्न दस पूर्वधरो का श्रुत, सम्यग् भी हो सकता है और असम्यग् भी। किन्तु १० पूर्व सम्पूर्ण धारण करने वालो का श्रुत (उपयोगयुक्त होने पर) सम्यग् ही होता है।

उपलब्ध आगमो मे चार छेदसूत्र, दशवैकालिकसूत्र तथा प्रज्ञापनासूत्र के रचनाकार ज्ञात है जो १० पूर्व तथा १४ पूर्वधर माने जाते हैं। आवश्यकसूत्र एवं ग्यारह अगसूत्र गणधर रचित माने जाते है तथापि प्रश्नव्याकरणसूत्र आदि मे गणधर रचित सम्पूर्ण विषय हटाकर अन्य विषय ही रख दिए गए है, जिनका नन्दीसूत्र मे निर्देश भी नही है। अन्य अनेक उपलब्ध सूत्रो के कर्ता अज्ञात है

इस प्रकार आगम(सूत्र) की परिभाषा मे आने वाला श्रुत बहुत ही अल्प है। वर्तमान मे ३२ आगम अथवा ४५ आगम कहने की परम्परा प्रचलित है, जिसमे सूत्र की परिभाषा के अतिरिक्त अनेक आगम सम्मिलित किए जाते हैं और इनमे किसी-किसी व्याख्या ग्रन्थ को भी सूत्र गिन लिया गया है यथा— ओघनिर्युक्ति पिंडनिर्युक्ति आदि।

दस पूर्व से कम यावत् एक पूर्व तक के ज्ञानी द्वारा रचित श्रुत भी सम्यग् हो सकता है और उसे आगम कहा जा सकता है। यह नन्दीसूत्र के उत्कालिकश्रुत एव कालिकश्रुत की सूची से स्पष्ट होता है। नन्दीसूत्र की रचना के समय उपलब्ध ७२ सूत्रों को नन्दीसूत्र के रचनाकार ने आगम रूप मे स्वीकार किया है। उनमें कई एक पूर्वधारी बहुश्रुतो के द्वारा रचित या सकलित श्रुत भी है।

अत इन ७२ सूत्रो मे से जितने सूत्र उपलब्ध है और जिनमे कोई अत्यधिक परिवर्तन या क्षति नही हुई है, उन्हे आगम न मानना केवल दुराग्रह है, एव उससे नन्दीसूत्रकर्ता की आसातना भी स्पष्ट है। इन ७२ सूत्रो मे से उपलब्ध जिन सूत्रो मे अहिसादि मूल सिद्धान्तो के विपरीत प्ररूपण प्रक्षिप्त कर दिया है उन्हे शुद्ध आगम मानना भी उचित नही है।

इन ७२ सूत्रो के सिवाय अन्य सूत्र, ग्रन्थ, टीका, भाष्य, निर्युक्ति, चूर्णी, निबन्धग्रन्थ या सामाचारी-ग्रन्थ आदि को आगम या आगम तुल्य मानने का आग्रह करना तो सर्वथा अनुचित है।

नन्दीसूत्र की रचना के समय ७२ सूत्रो के अतिरिक्त अन्य कोई भी पूर्वधरो द्वारा रचित सूत्र, ग्रन्थ या व्याख्या-ग्रन्थ उपलब्ध नही थे यह निश्चित है। यदि कुछ उपलब्ध होते तो उन्हे श्रुत-सूची मे अवश्य समाविष्ट किया जाता, क्योकि इस सूची मे अज्ञात रचनाकारो के तथा एक पूर्वधारी बहुश्रुतो के रचित श्रुत को भी स्थान दिया गया है। तो अनेक पूर्वधारी या १४ पूर्वधारी आचार्यो द्वारा रचित और उपलब्ध श्रुत का किसी भी रूप मे उल्लेख नही करने का कोई कारण ही नही हो सकता। अत शेष सभी सूत्र, व्याख्याए, ग्रन्थ आदि नन्दीसूत्र को रचना के बाद मे रचित है यह स्पष्ट है। फिर भी इतिहास सम्बन्धी वर्णनो के दूषित हो जाने से व्याख्या ग्रन्थ भी चौदह पूर्वी आदि द्वारा रचित होने की भ्रात धारणाए प्रचलित है।

प्रस्तुत प्रायश्चित्त सूत्र मे नन्दीसूत्र मे निर्दिष्ट आगमो मे से उपलब्ध कालिकसूत्रो के स्वाध्याय के विषय मे तीन पृच्छाओ अर्थात् ९ श्लोक का प्रमाण समझना चाहिए।

दृष्टिवाद नामक बारहवे अगसूत्र का अभी विच्छेद है। अत ७ पृच्छा अर्थात् २१ श्लोक का प्रमाण वर्तमान मे उपलब्ध किसी भी सूत्र के लिये नही समझना चाहिए। जो सूत्र दृष्टिवाद मे से निर्यूढ (उद्धृत-सकलित) किये गये है और वे कालिकसूत्र है तो उनके लिए भी स्वतन्त्र लघुसूत्र बन जाने से तीन पृच्छा [९ श्लोक] का प्रमाण ही समझना चाहिए।

इन सूत्रो के मूलपाठ का उत्काल मे उच्चारण करना आवश्यक हो तो एक साथ ९ श्लोक प्रमाण उच्चारण करने पर प्रायश्चित्त नही आता है। इससे अधिक पाठ का उच्चारण करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

महामहोत्सवों मे स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त

११. जे भिक्खू चउसु महामहेसु सज्झाय करेइ, करेंत वा साइज्जइ। त जहा—१. इंदमहे, २ खंदमहे, ३. जक्खमहे, ४ भूयमहे।

१२. जे भिक्खू चउसु महापाडिवएसु सज्झाय करेइ, करेंत वा साइज्जइ। तजहा—१. आसोय-पाडिवए, २. कत्तिय-पाडिवए, ३. सुगिम्हग-पाडिवए, ४. आसाढी-पाडिवए।

११ जो भिक्षु इन्द्रमहोत्सव, स्कन्दमहोत्सव, यक्षमहोत्सव, भूतमहोत्सव, इन चार महोत्सवो मे स्वाध्याय करता है या स्वाध्याय करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२ जो भिक्षु आश्विन प्रतिपदा, कार्तिक प्रतिपदा, चैत्री प्रतिपदा और आषाढी प्रतिपदा इन चार महाप्रतिपदाओ मे स्वाध्याय करता है या स्वाध्याय करने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—आषाढी पूर्णिमा, आसौजी पूर्णिमा, कार्तिकी पूर्णिमा और चैत्री पूर्णिमा के दिन और उसके दूसरे दिन की प्रतिपदा [एकम] इन आठ दिनो मे स्वाध्याय करने का इन दो सूत्रो मे प्रायश्चित्त कहा गया है।

ठाणाग अ. ४ मे चार प्रतिपदा को स्वाध्याय करने का निषेध किया गया है। वहाँ उनके नाम इस क्रम से कहे है—

"आसाढ पाडिवए, इदमह पाडिवए, कत्तिय पाडिवए, सुगिम्हग पाडिवए।"

निशीथभाष्य की गाथा ६०६५ मे भी ऐसा ही क्रम कहा गया है, यथा—

१ आसाढी, २ इंदमहो, ३ कत्तिय, ४ सुगिम्हओ य बोद्धव्वो।
एते महा महा खलु, एतेसिं चेव पाडिवया॥

ठाणाग सूत्र और निशीथभाष्य की इस गाथा मे कहा गया क्रम समान है। इनमे इन्द्र महोत्सव का द्वितीय स्थान है जो आषाढ के बाद क्रम से प्राप्त आसौज की पूनम एव एकम का होना स्पष्ट है।

प्रस्तुत सूत्र ११ मे कहे शेष स्कन्द, यक्ष और भूत तीन महोत्सव क्रमश कार्तिक, चैत्र और आषाढ इन तीन पूनम-एकम को समझ लेना उचित प्रतीत होता है। किन्तु इसका स्पष्टीकरण ठाणाग टीका एव निशीथचूर्णि दोनो मे नही किया गया है।

प्रस्तुत सूत्रो के मूल पाठ मे उपलब्ध प्रतियो मे महामहोत्सवो मे इन्द्र महोत्सव का क्रम पहला कहा है और महाप्रतिपदा मे आसोजी पूनम (इन्द्र महोत्सव) और एकम का क्रम तीसरा कहा है, जबकि उपर्युक्त भाष्य-गाथा मे ठाणाग सूत्र के पाठ के अनुसार व्याख्या की गई है। अत निशीथ सूत्र का मूल पाठ भी ठाणाग के अनुसार ही रहा होगा। इस प्रकार सूत्र मे इन्द्र महोत्सव—आसोज की पूनम के दिन का प्रथम स्थान है यह स्पष्ट है और स्कन्ध महोत्सव कार्तिक पूनम का द्वितीय स्थान माना जा सकता है क्योकि स्कन्ध को कार्तिकेय कहा जाता है। शेष यक्ष और भूत महोत्सव

का दिन निश्चित करने का कोई आधार नहो मिलता है तथापि क्रम के अनुसार यक्ष महोत्सव चैत्र की पूनम एव भूत महोत्सव आषाढ की पूनम का माना जा सकता है।

आचा श्रु २, अ. १, उ २ मे अनेक महोत्सवो का कथन है। प्रस्तुत ग्यारहवे सूत्र मे कहे गये चारो महोत्सवो के नाम भी वहा है किन्तु क्रम भिन्न है, यथा—

१. इंद महेसु वा, २. खंद महेसु वा, ३. रूद्द महेसु वा, ४. मुगुंद महेसु वा, ५ भूय महेसु वा, ६. जक्ख महेसु वा, ७. नाग महेसु वा।

यहाँ भी महोत्सव कथन मे इन्द्र और स्कन्ध महोत्सव को प्रथम एव द्वितीय स्थान मे कहा गया है। अत निष्कर्ष यह है कि ग्यारहवे सूत्र के इन्द्र, स्कन्ध, यक्ष और भूत महोत्सव के अनुसार बारहवे सूत्र के शब्दो का क्रम इस प्रकार होना चाहिए।

आसोजी प्रतिपदा, कार्तिकी प्रतिपदा, चैत्री प्रतिपदा और आषाढी प्रतिपदा।

इसलिए प्रस्तुत सूत्र १२ मे यही क्रम स्वीकार किया है।

ये चारो महोत्सव क्रमश इन्द्र से, कार्तिकेय देव से, यक्ष एव भूत व्यन्तर जाति के देवो से सम्बन्धित हैं अर्थात् इन्हे प्रसन्न रखने के लिए लोग इनका पूजा-प्रतिष्ठा करते हुए दिन भर खाना-पीना, गाना-बजाना, नाचना-घूमना, मद्यपान करना आदि मौज शौक करते हुए प्रमोद पूर्वक रहते हैं। ये महोत्सव पूनम के दिन होते है। देवो का आवागमन भी इन दिनो मे बना रहता है तथा अनेक लोगो का भी इधर-उधर आवागमन रहता है। प्रतिपदा के दिन भी इन महोत्सवो का कुछ कार्यक्रम शेष रह जाता है अत उसे भी महामहोत्सव की प्रतिपदा का दिन कहा गया है।

स्वाध्याय-निषेध का कारण यह है कि उन दिनो मे भ्रमण करने वाले देव छोटे-बडे अनेक प्रकार के होते हैं तथा भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले एव कौतूहली भी होते है। वे देव स्वाध्याय मे स्खलना हो जाने पर उपद्रव कर सकते है। स्खलना न होने पर भी अधिक ऋद्धिसम्पन्न देव उपद्रव कर सकते है।

मौज-शौक मनोरजन आनन्द के दिन शास्त्रवाचन लोक मे अव्यावहारिक समझा जाता है। लोग भी अनेक प्रकार के नशे मे भ्रमण करते हुए कुतूहल या द्वेषवश उपद्रव कर सकते हैं। इत्यादि कारणो से इन आठ दिनो मे स्वाध्याय करने की आगम आज्ञा नही है।

इन चार महोत्सवो के निर्देश से आचारागसूत्र कथित अन्य अनेक महोत्सव, जो सर्वत्र प्रचलित हो उनके प्रमुख दिनो मे भी स्वाध्याय नही करना चाहिए या उच्चस्वर से नही करना चाहिए।

सूत्र १२ मे जो 'आषाढी प्रतिपदा' आदि शब्द है उनका अर्थ आषाढी पूनम के बाद आने वाली प्रतिपदा अर्थात् श्रावण वदी एकम ऐसा समझना ही उपयुक्त है। किन्तु 'आषाढो पूनम के बाद पुन आषाढ वदी एकम हो' ऐसा नही समझना चाहिए। इसी प्रकार शेष तीनो प्रतिपदा भी उस महोत्सव को पूनम के बाद आने वाली प्रतिपदा को ही मानना उचित है।

आगमो मे अनेक स्थलो मे कथित तीर्थंकर आदि के वर्णनो मे स्पष्ट रूप से प्रत्येक मास में प्रथम कृष्णपक्ष और द्वितीय शुक्लपक्ष कहा जाता है। यथा—आचाराग श्रु. २, अ १५ मे—

"गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चेत्त सुद्धे, तस्सण चेत्त सुद्धस्स तेरसी पक्खेणं" ।

यहाँ चैत्र सुदी तेरस को भगवान् महावीर का जन्म बताते हुए ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास का द्वितीय पक्ष चैत्र सुद्ध (सुदि) कहा है। इसी तरह अन्यत्र भी वर्णन है। अत· पूनम के बाद अगले महीने को एकम समझना ही शास्त्रसम्मत है।

लौकिक प्रचलन मे अमावस्या के लिए (३०) तीस का अक लिखा जाता है और इसे ही मास का अन्तिम दिन माना जाता है। किन्तु यह मान्यता शास्त्रसम्मत नही है। कई विद्वान् प्रस्तुत सूत्र (१२) के आधार से भी इस लौकिक मान्यता का निर्देश मानते है किन्तु इस सूत्र से ऐसा अर्थ समझना भ्रमपूर्ण है। क्योकि ठाणाग टीका व निशीथ चूर्णी मे भी वैसा अर्थ नही किया गया है, तथा उक्त आचाराग अ १५ के पाठ से भी ऐसा अर्थ करना आगम विरुद्ध है।

अत आषाढ, आसोज, कार्तिक और चैत्र की पूनम एव श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष और वैशाख की एकम ये आठ दिन ही अस्वाध्याय के समझने चाहिये।

यद्यपि इन्द्र महोत्सव के लिये आसोज की पूनम जैनागमो की व्याख्याओं मे तथा जैनेत्तर शास्त्रो मे भी कही गई है तथापि भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे कुछ भिन्न-भिन्न परम्पराए भी कालान्तर से प्रचलित हो जाती हैं। यथा—लाट देश मे श्रावण की पूनम को इन्द्र महोत्सव होना चूर्णिकार ने बताया है। ऐसे ही किसी कारण से भादवा की पूनम को भी महोत्सव का दिन मानकर अस्वाध्याय मानने की परम्परा प्रचलित है। जिससे कुल १० दिन महोत्सव सम्बन्धी अस्वाध्याय के माने जाते हैं। किन्तु इसे केवल परम्परा ही समझना चाहिए क्योकि इसके लिए मौलिक प्रमाण कुछ भी नही है।

प्रस्तुत सूत्र मे उपर्युक्त वर्णन के अनुसार आठ दिन ही कहे गये हैं उनमे स्वाध्याय करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है।

स्वाध्यायकाल में स्वाध्याय नहीं करने का प्रायश्चित्त

१३. जे भिक्खू चाउकाल उवाइणावेइ, उवाइणावेंत वा साइज्जइ।

१३ जो भिक्षु चारो स्वाध्यायकाल को स्वाध्याय किये बिना व्यतीत करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—दिन की प्रथम व अन्तिम पौरुषी और रात्रि की प्रथम और अन्तिम पौरुषी, ये चार पौरुषिया कालिकश्रुत की अपेक्षा से स्वाध्यायकाल हैं। इन चारो काल मे स्वाध्याय नही करना और अन्य विकथा प्रमाद आदि मे समय व्यतीत कर देना यह ज्ञान का अतिचार है, यथा—"**काले न कओ सज्झाओ, सज्झाए न सज्झाइय**"। आव अ ४

इस अतिचार के सेवन करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है। तात्पर्य यह है कि भिक्षु को आवश्यक सेवाकार्य के सिवाय चारो ही पौरुषियो मे स्वाध्याय करना आवश्यक होता है।

स्वाध्याय न करने से होने वाली हानि

१. स्वाध्याय नही करने से पूर्वग्रहीत श्रुत विस्मृत हो जाता है।

२. नए श्रुत का ग्रहण एव उसकी वृद्धि नही होती है।

३ विकथाओं तथा अन्य प्रमादो मे सयम का अमूल्य समय व्यतीत होता है ।
४ सयम गुणो का नाश होता है ।
५ स्वाध्याय-तप और निर्जरा के लाभ मे वचित होना पडता है । परिणामत· भव-परम्परा नष्ट नही हो सकती है । अत· स्वाध्याय करना भिक्षु का परम कर्तव्य समझना चाहिए ।

स्वाध्याय करने से होने वाले लाभ—

१ स्वाध्याय करने से विपुल निर्जरा होती है ।
२ श्रुतज्ञान स्थिर एव समृद्ध होता है ।
३ श्रद्धा, वैराग्य, सयम एव तप मे रुचि बढती है ।
४ आत्म गुणो की पुष्टि होती है ।
५ मन एव इन्द्रिय निग्रह मे सफलता मिलती है ।
६ स्वाध्याय धर्म ध्यान का आलम्बन कहा गया है एव इससे चित्त की एकाग्रता सिद्ध होती है । फलत धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान की प्राप्ति होती है ।

स्वाध्याय के लिए प्रेरक आगम वाक्य

१ **सज्झायम्मि रओ सया**—भिक्षु सदा स्वाध्याय मे रत रहे । —दशवै अ. ८, गा ४

२ **भोच्चा सज्झायरए जे स भिक्खू**—प्राप्त निर्दोष आहार करके जो स्वाध्याय मे रत रहता है वह भिक्षु है । —दशवै. अ १०, गा ९

३. **सज्झाय-सज्झाणरयस्स ताइणो**—स्वाध्याय और सद्ध्यान मे रत रहने वाले छः काय रक्षक का कर्ममल शुद्ध हो जाता है । —दशवै अ ८, गा. ६२

४. **सुत्तत्थ च वियाणइ जे स भिक्खू**—जो सूत्र और अर्थ का विशेष ज्ञान करता है वह भिक्षु है । —दशवै अ १० गा १५

५. **णाण एगग्गचित्तो य ठिओ य ठावई पर ।**
सुयाणि य अहिज्जित्ता रओ सुय समाहिए ।।

ज्ञान से चित्त एकाग्र होता है, ज्ञानी स्वय धर्म मे स्थिर होता है और अन्य को भी धर्म मे स्थिर करता है अत श्रुतो का अध्ययन करके श्रुत समाधि मे लीन रहना चाहिए ।
—दशव अ ९ उ ४, गा ३

६ उत्तरा अ २९ मे स्वाध्याय से तथा वाचना आदि पाचो भेदो से होने वाले फल की पृच्छा के उत्तर मे निर्जरा आदि अनेक लाभ बताए है ।

७ उत्तरा अ २६ मे साधु की दिनचर्या का वर्णन करते हुए अत्यधिक समय स्वाध्याय मे ही व्यतीत करने का विधान है । उसी का विश्लेषण निशीथ चूर्णि मे इस प्रकार किया है—

"दिवसस्स पढम चरिमासु, णिसीए य पढमचरिमासु य एयासु चउसु वि कालियसुयस्स गहणं गुणणं च करेज्ज । सेसासु त्ति—दिवसस्स बितीयाए उक्कालियसुयस्स गहण करेति, अत्थ वा सुणेति, एसा चेव भयणा । ततियाए भिक्खं हिंडइ, अह ण हिंडइ तो उक्कालियं पढइ, पुव्वगहियं

उक्कालिय वा गुणेइ, अत्थं वा सुणेइ। णिसिस्स बितियाए एसा चेव भयणा, सुवइ वा। णिसिस्स ततियाए णिद्दाविमोक्खं करेइ, उक्कालिय गेण्हइ गुणेइ वा, कालिय वा सुत्तं अत्थं वा करेइ।

भावार्थ—चारो काल मे कालिकश्रुत का स्वाध्याय करना तथा अन्य प्रहरो मे उत्कालिकश्रुत का स्वाध्याय करना या अर्थग्रहण करना अर्थात् वाचणी लेना। दिन के तीसरे प्रहर में भिक्षा न लाना हो तो उत्कालिकश्रुत के स्वाध्याय आदि मे लगे रहना। रात्रि के दूसरे प्रहर मे भी उक्त स्वाध्याय करे या सोये। रात्रि के तीसरे प्रहर मे निद्रा लेकर उससे निवृत्त हो जाए और उस प्रहर का समय शेष हो तो उत्कालिकश्रुत आदि का स्वाध्याय करे। फिर चौथे प्रहर मे कालिकश्रुत का स्वाध्याय करे।

यह साधु की दिनचर्या एव रात्रिचर्या का वर्णन स्वाध्याय से ही परिपूर्ण है। उत्काल की पौरूषी मे सूत्रो का स्वाध्याय, सूत्रो का अर्थ, आहार, निद्रा आदि प्रवृत्ति की जा सकती है। किन्तु चारो काल, पौरूषी—मे केवल स्वाध्याय ही किया जाता है। उत्तरा अ २६ के अनुसार उस स्वाध्याय के समय मे यदि गुरु आदि कोई सेवा का कार्य कहे तो करना चाहिए और न कहे तो स्वाध्याय मे ही लीन रहना चाहिए।

यह स्वाध्याय कालिकश्रुत का है। इसमे नया कठस्थ करना या उसी का पुनरावर्तन करना आदि समाविष्ट है। जब नया कठस्थ करना पूर्ण हो जाय तब उसकी केवल पुनरावृत्ति करना ही होता है।

व्यव उ ४ मे साधु-साध्वी को सीखे हुए ज्ञान को कठस्थ रखना आवश्यक बताया है और भूल जाने पर कठोरतम प्रायश्चित्त कहा गया है अर्थात् प्रमाद से भूल जाने पर उसे जीवन भर के लिए किसी भी प्रकार की पदवी नही दी जाती है और पदवीधर हो तो उसे पदवी से हटा दिया जाता है। केवल वृद्ध स्थविरो को यह प्रायश्चित्त नही आता है।

अत श्रुत कठस्थ करना और उसे स्थिर रखना, निरन्तर स्वाध्याय करते रहने मे ही हो सकता है।

उत्तरा अ २६ मे स्वाध्याय को सयम का उत्तरगुण बताया है। सर्व दु खो से मुक्त करने वाला तथा सर्वभावो की शुद्धि करने वाला कहा है।

इन सब आगम वर्णनो को हृदय मे धारण करके भिक्षु सदा स्वाध्यायशील रहे और सूत्रोक्त प्रायश्चित्त स्थान का सेवन न करे अर्थात् स्वाध्याय के सिवाय विकथा प्रमाद आदि मे समय न बितावे।

अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त

१४. जे भिक्खू असज्झाइए सज्झायं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

१४. जो भिक्षु अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय करता है या स्वाध्याय करने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—दिन मे तथा रात्रि मे स्वाध्याय करना आवश्यक होते हुए भी आगमो मे जब जहाँ स्वाध्याय करने का निषेध किया गया है उस अस्वाध्यायकाल का सदा ध्यान रखना चाहिए।

निम्न आगमो मे अस्वाध्याय स्थानो का वर्णन है—

१ ठाणाग सूत्र अ ४ मे—४ प्रतिपदाओ और ४ सध्याओ मे स्वाध्याय करने का निषेध किया है।

२ ठाणाग सूत्र अ १० मे—१० आकाशीय अस्वाध्याय और १० औदारिक अस्वाध्याय कहे है।

३ यहाँ प्रस्तुत उद्देशक मे ४ महा महोत्सव ४ प्रतिपदा और ४ सध्या मे स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त कहा है।

४ व्यव उ ७ मे स्वशरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय करने का निषेध किया है।

इन सभी निषेध स्थानो का सग्रह करने से कुल ३२ अस्वाध्याय स्थान होते है। यथा—

आकाश सम्बन्धी	—	१०
औदारिक सम्बन्धी	—	१०
महोत्सव एव प्रतिपदा सम्बन्धी	-	८
सध्याकाल सम्बन्धी	—	४
	कुल	३२

इनमे से १२ अस्वाध्यायो का विवेचन पूर्व सूत्रो मे किया जा चुका है। शेष २० अस्वाध्याय इस प्रकार है—

१. उल्कापात—तारे का टूटना अर्थात् स्थानान्तरित होना। तारा विमान के तिर्यक् गमन करने पर या देव के विकुर्वणा आदि करने पर आकाश मे तारा टूटने जैसा दृश्य होता है। यह कभी लम्बी रेखायुक्त गिरते हुए दिखता है, कभी प्रकाशयुक्त गिरते हुए दिखता है। सामान्यत आकाश मे तारे टूटने जैसा क्रम प्राय सदा बना रहता है, अत विशिष्ट प्रकाश या रेखायुक्त हो तो अस्वाध्याय समझना चाहिए। इसका एक प्रहर तक अस्वाध्याय होता है।

२. दिग्दाह—पुद्गल परिणमन से एक या अनेक दिशाओ मे कोई महानगर जलने जैसी अवस्था दिखाई दे उसे दिग्दाह समझना चाहिए। यह भूमि से कुछ ऊपर दिखाई देता है। इसका एक प्रहर का अस्वाध्याय होता है।

३ गर्जन—बादलो की ध्वनि। इसका दो प्रहर का अस्वाध्याय होता है। किन्तु आर्द्रानक्षत्र से स्वातिनक्षत्र तक के वर्षा-नक्षत्रो मे अस्वाध्याय नही गिना जाता।

४ विद्युत्—बिजली का चमकना। इसका एक प्रहर का अस्वाध्याय होता है। किन्तु उपर्युक्त वर्षा के नक्षत्रो मे अस्वाध्याय नही होता है।

५. निर्घात—दारुण—[घोर] ध्वनि के साथ बिजली का चमकना। इसे बिजली कडकना या बिजली गिरना भी कहा जाता है। इसका आठ प्रहर का अस्वाध्याय होता है।

६. **यूपक**—शुक्ल पक्ष की एकम, बीज और तीज के दिन सूर्यास्त होने एव चन्द्र अस्त होने के समय की मिश्र अवस्था को यूपक कहा जाता है। इन दिनो के प्रथम प्रहर मे अस्वाध्याय होता है। इसे बालचन्द्र का अस्वाध्याय भी कहा जाता है।

७. **यक्षादीप्त**—आकाश मे प्रकाशमान पुद्गलो की अनेक आकृतियो का दृष्टिगोचर होना। इसका एक प्रहर का अस्वाध्याय होता है।

८. **धूमिका**—अधकारयुक्त धुअर का गिरना। यह जब तक रहे तब तक इसका अस्वाध्याय-काल रहता है।

९. **महिका**—अधकार रहित सामान्य धुअर का गिरना। यह जब तक रहे तब तक इसका भी अस्वाध्याय रहता है। इन दोनो अस्वाध्यायो के समय अप्काय की विराधना से बचने के लिए प्रतिलेखन आदि कायिक-वाचिक कार्य भी नही किए जाते। इनके होने का समय कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष और माघ मास है। अर्थात् इन गर्भमासो मे कभी-कभी, कही-कही धुअर या महिका गिरती है। किसी वर्ष किसी क्षेत्र मे नही भी गिरती है।

पर्वतीय क्षेत्रो मे बादलो के गमनागमन करते रहने के समय भी ऐसा दृश्य होता है। किन्तु उनका स्वभाव धुअर से भिन्न होता है अत उनका अस्वाध्याय नही होता है।

१०. **रज-उद्घात**—आकाश मे धूल का आच्छादित होना और रज का गिरना। यह जब तक रहे तब तक अस्वाध्याय होता है। भाष्य मे बताया है कि तीन दिन सचित्त रज गिरती रहे तो उसके बाद स्वाध्याय के सिवाय प्रतिलेखन आदि भी नही करना चाहिए क्योकि सर्वत्र सचित्त रज व्याप्त हो जाती है। ये दस आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय है।

११-१२-१३. **हड्डी-मास-खून**—तिर्यच की हड्डी या मास ६० हाथ और मनुष्य की १०० हाथ के भीतर दृष्टिगत हो तो अस्वाध्याय होता है। हड्डिया जली हुई या धुली हुई हो तो उसका अस्वाध्याय नही होता है। अन्यथा उसका १२ वर्ष तक अस्वाध्याय होता है। इसी तरह दात के लिए भी समझना चाहिए।

खून जहाँ दृष्टिगोचर हो या गध आवे तो उसका अस्वाध्याय होता है अन्यथा अस्वाध्याय नही होता है। अर्थात् ६० हाथ या १०० हाथ की मर्यादा इसके लिए नही है। तिर्यच पचेन्द्रिय के खून का तीन प्रहर और मनुष्य के खून का अहोरात्र तक अस्वाध्याय होता है।

उपाश्रय के निकट के गृह मे लडकी उत्पन्न हो तो आठ दिन और लडका हो तो ७ दिन अस्वाध्याय रहता है। इसमे दीवाल से सलग्न सात घर की मर्यादा मानी जाती है। तिर्यंच सम्बन्धी प्रसूति हो तो जरा गिरने के बाद तीन प्रहर तक अस्वाध्याय समझना चाहिए।

१४ **अशुचि**—मनुष्य का मल जब तक सामने दीखता हो या गध आती हो तब तक वहाँ अस्वाध्याय समझना चाहिए। तिर्यच के मल की दुर्गंध आती हो तो अस्वाध्याय होता है, अन्यथा नही। मनुष्य के मूत्र की जहाँ दुर्गंध आती हो ऐसे मूत्रालय आदि के निकट अस्वाध्याय होता है। जहाँ पर नगर की नालिया-गटर आदि की दुर्गंध आती हो वहाँ भी अस्वाध्याय होता है। अन्य कोई भी मनुष्य तिर्यंच के शारीरिक पुद्गलो की दुर्गंध आती हो तो उसका भी अस्वाध्याय समझना चाहिए।

१५. **श्मशान**—श्मशान के निकट चारो तरफ अस्वाध्याय होता है ।

१६ **सूर्यग्रहण**—अपूर्ण हो तो १२ प्रहर और पूर्ण हो तो १६ प्रहर तक अस्वाध्याय होता है, सूर्यग्रहण के प्रारम्भ से अस्वाध्याय का प्रारम्भ समझना चाहिए । अथवा जिस दिन हो उस पूरे दिन-रात तक अस्वाध्याय होता है, दूसरे दिन अस्वाध्याय नही रहता है ।

१७. **चन्द्रग्रहण**—अपूर्ण हो तो आठ प्रहर और पूर्ण हो तो १२ प्रहर तक अस्वाध्याय रहता है । यह ग्रहण के प्रारम्भ काल से समझना चाहिए । अथवा उस रात्रि मे चन्द्रग्रहण के प्रारम्भ से अगले दिन जब तक चन्द्रोदय न हो तब तक अस्वाध्याय समझना चाहिए । उसके बाद अस्वाध्याय नही रहता है ।

१८ **पतन**—राजा मन्त्री आदि प्रमुख व्यक्ति की मृत्यु होने पर उस नगरी मे जब तक शोक रहे और नया राजा स्थापित न हो तब तक अस्वाध्याय समझना और उसके राज्य मे भी एक अहोरात्र का अस्वाध्याय समझना चाहिए ।

१९. **राज-व्युद्ग्रह**—जहाँ राजाओ का युद्ध चल रहा हो उस स्थल के निकट या राजधानी मे अस्वाध्याय रहता है । युद्ध के समाप्त होने के बाद एक अहोरात्र तक अस्वाध्याय काल रहता है ।

२०. **औदारिक कलेवर**—उपाश्रय मे मृत मनुष्य का शरीर पडा हो तो १०० हाथ के भीतर अस्वाध्याय होता है । तिर्यंच का शरीर हो तो ६० हाथ तक अस्वाध्याय होता है । किन्तु परम्परा से यह मान्यता है कि औदारिक कलेवर जब तक रहे तब तक उस उपाश्रय की सीमा मे अस्वाध्याय रहता है । मृत या भग्न अडे का तीन प्रहर तक अस्वाध्याय रहता है ।

ये दस औदारिक सम्बन्धी अस्वाध्याय हैं । इन सभी (२० ही) अस्वाध्यायो का विवेचन प्राय भाष्य के आधार से किया गया है अत प्रमाण के लिए देखे—निशीथ भाष्य गा. ६०७८-६१६२, व्यव उ ७ भाष्य गा २७२-३८६, अभि रा. कोष भाग १ पृ ८२७ 'असज्झाइय' शब्द ।

इन ३२ प्रकार के अस्वाध्यायो मे स्वाध्याय करने पर जिनाज्ञा का उल्लघन होता है और कदाचित देव द्वारा उपद्रव भी हो सकता है । तथा ज्ञानाचार की शुद्ध आराधना नही होती है अपितु अतिचार का सेवन होता है ।

धूमिका, महिका मे स्वाध्याय आदि करने से अप्काय की विराधना भी होती है ।

औदारिक सम्बन्धी दस अस्वाध्याय मे स्वाध्याय करने पर लोक व्यवहार से विरुद्ध आचरण भी होता है तथा सूत्र का सम्मान भी नही रहता है ।

युद्ध समय और राज मृत्य-समय मे स्वाध्याय करने पर राजा या राज कर्मचारियो को साधु के प्रति अप्रीति या द्वेष उत्पन्न हो सकता है ।

अस्वाध्याय मे स्वाध्याय के निषेध करने का प्रमुख कारण यह है कि भग श ५, उ ४ मे देवो को अर्धमागधी भाषा कही है और यही भाषा आगम की भी है । अत: मिथ्यात्वी एव कौतुहली देवो के द्वारा उपद्रव करने की सम्भावना बनी रहती है ।

अस्वाध्याय के इन स्थानो से यह भी ज्ञात होता है कि स्पष्ट घोष के साथ उच्चारण करते हुए आगमों की पुनरावृत्ति रूप स्वाध्याय करने की पद्धति होती है । इसी अपेक्षा से ये अस्वाध्याय कहे

हैं। किन्तु इनकी अनुप्रेक्षा मे या भाषातरित हुए आगम का स्वाध्याय करने मे अस्वाध्याय नही होता है।

अस्वाध्याय के सम्बन्ध मे विशेष विधान यह है कि आवश्यक सूत्र के पठन-पाठन में अस्वाध्याय नही होता है क्योंकि यह सदा उभयकाल सध्या समय मे ही अवश्य करणीय होता है। अत 'नमस्कार मन्त्र', "लोगस्स" आदि आवश्यक सूत्र के पाठ भी सदा सर्वत्र पढे या बोले जा सकते है।

किसी भी अस्वाध्याय की जानकारी होने के बाद शेष रहे हुए अध्ययन या उद्देशक को पूर्ण करने के लिए स्वाध्याय करने पर प्रायश्चित्त आता है।

तिर्यंच पचेद्रिय या मनुष्य के रक्त आदि की जल से शुद्धि करना हो तो स्वाध्याय स्थल से ६० हाथ या १०० हाथ दूर जाकर करनी चाहिए। त्रिन्द्रिय चतुरिद्रिय के खून या कलेवर का अस्वाध्याय नही गिना जाता है।

औदारिक सम्बन्धी अशुचि पदार्थों के बीच मे राजमार्ग हो तो अस्वाध्याय नही होता है। उपाश्रय मे तथा बाहर ६० हाथ तक अच्छी तरह प्रतिलेखन करके स्वाध्याय करने पर भी कोई औदारिक अस्वाध्याय रह जाय तो सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नही आता है।

अत भिक्षु दिन मे सभी प्रकार के अस्वाध्यायो का प्रतिलेखन एव विचार करके स्वाध्याय करे और रात्रि मे स्वाध्यायकाल प्रतिलेखन करने योग्य अर्थात् जहा पर खडे होने पर सभी दिशाए एव आकाश स्पष्ट दिखे ऐसी तीन भूमियो का सूर्यास्त पूर्व प्रतिलेखन करे। वर्षा आदि के कारण मे कभी मकान मे रहकर भी काल प्रतिलेखन किया जा सकता है।

बहुत बडे श्रमण समूह मे दो साधु आचार्य की आज्ञा लेकर काल प्रतिलेखन करते है, फिर सूचना देने पर सभी साधु स्वाध्याय करते हैं। बीच मे अस्वाध्याय का कारण ज्ञात हो जाने पर उसका पूर्ण निर्णय करके स्वाध्याय बन्द कर दिया जाता है।

स्वाध्याय आभ्यन्तर तप एव महान् निर्जरा का साधन होते हुए भी अस्वाध्याय मे स्वाध्याय करने पर जिनाज्ञा का उल्लघन होता है, मर्यादा भग आदि से कर्मबन्ध होता है, कभी अपयश भी होता है इसलिए सयम विराधना की एव प्रायश्चित्त की प्राप्ति होती है। —निशीथचूर्णि प्रस्तुत सूत्र।

अत स्वाध्याय-प्रिय भिक्षु को अस्वाध्यायो के सम्बन्ध में भी सदा सावधानी रखनी चाहिए।

स्वकीय अस्वाध्याय मे स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त—

१५. जे भिक्खू अप्पणो असज्झाइए सज्झायं करेइ, करेंत वा साइज्जइ।

१५ जो भिक्षु अपनी शारीरिक अस्वाध्याय मे स्वाध्याय करता है या स्वाध्याय करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।)

विवेचन—स्वय का अस्वाध्याय दो प्रकार का होता है—१. व्रण सम्बन्धी २ ऋतुधर्म सम्बन्धी। इसमे भिक्षु के एक प्रकार का एव भिक्षुणी के दोनो प्रकार का अस्वाध्याय होता है।

शरीर मे फोडे-फुन्सी, भगदर, मसा आदि से जब रक्त या पीव बाहर आता है तब उसका अस्वाध्याय होता है। उसकी शुद्धि करके १०० हाथ के बाहर परठकर स्वाध्याय किया जा सकता

है। शुद्धि करने के बाद भी रक्त आदि निकलता रहे तो स्वाध्याय नही किया जा सकता। किन्तु उसके एक-दो उत्कृष्ट तीन पट वस्त्र के बाधकर परस्पर आगम की वाचनी ली-दी जा सकती है, तीन तट के बाहर पुन खून दीखने लग जाए तो फिर उन्हे शुद्ध करना आवश्यक होता है।

ऋतुधर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक रहता है। किन्तु व्यवहार सूत्र के उद्देशक ७, सूत्र १७ मे अपने अस्वाध्याय मे परस्पर वाचणी लेने-देने का विधान किया गया है। उसकी भाष्य मे विधि इस प्रकार बताई है कि—रक्त आदि की शुद्धि करके आवश्यकतानुसार एक-दो अथवा उत्कृष्ट सात वस्त्र पट लगाकर साधु-साध्वी परस्पर आगमो की वाचणी दे-ले सकते हैं। प्रमाण के लिए देखे—व्यव उ ७, भाष्य गा ३९०-३९४ तथा निशीथभाष्य गा. ६१६७-६१७० तथा अभि. राजेन्द्र कोश भाग १ पृ ८३३ "असज्झाइय" शब्द।

सूत्र १४ और १५ मे वर्णित सभी अस्वाध्याय आगमो के देव वाणी मे होने से उसके मूल-पाठ के उच्चारण से ही सम्बन्धित जानने चाहिए।

अत मासिक धर्म आदि अवस्था में आगमो के अर्थ वाचना या अनुप्रेक्षा, पृच्छा, व्याख्यान श्रवण आदि करने का निषेध नही है तथा गृहस्थ को सामायिक आदि संवर प्रवत्ति एव नित्य नियम तथा प्रभ-स्तुति-स्मरण करने का निषेध भी नही है।

आगम स्वाध्याय के नियम यदि सामायिक प्रतिक्रमण आदि धर्म प्रवृत्तियो के लिए भी लागू किए जावे तो यह प्ररूपणा का अतिक्रमण होता है एव समस्त धर्मक्रियाओ मे अतराय होता है। एक विषय के नियम को अन्य विषय मे जोडना अनुचित प्रयत्न है।

व्यव उद्देशक ७ मे जब स्वय आगमकार मासिक धर्म आदि के अपने अस्वाध्याय में आगम की वाचणी लेने का भी विधान करते हैं तो फिर किसी भी आचार्य के द्वारा सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रभुस्मरण, नमस्कार मन्त्र एव लोगस्स आदि के उच्चारण का निषेध किया जाना कदापि उचित नही कहा जा सकता है।

क्योकि इस प्रकार की आगम विपरीत मान्यता रखने पर सवत्सरी महापर्व के दिन भी सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, व्याख्यानश्रवण, मुनि दर्शन एवं नमस्कार मन्त्रोच्चारण आदि सभी धार्मिक प्रवृत्तियो से वचित रहना पडता है। सभी प्रकार की धर्म प्रवृत्तियो से वचित गृहस्थ पर्व दिनो मे भी सावद्य प्रवृत्ति एव प्रमाद मे ही सलग्न होता है इसलिए ऐसी प्ररूपणा करना सर्वथा अनुचित है।

अत स्वकीय अस्वाध्याय मे श्रावक श्राविका विवेकपूर्वक सामायिक प्रतिक्रमण आदि क्रिया करे तो इसमे कोई दोष नही समझना चाहिए और गृह कार्यो से निवृत्ति के इन तीन दिनो मे उनको सवर आदि धर्मक्रिया मे ही अधिकतम समय व्यतीत करना चाहिये। साध्वियो को भी अन्य अध्ययन, श्रवण, सेवा, तप, आत्मचिन्तन, ध्यान आदि मे समय व्यतीत करना चाहिये।

विपरीत क्रम से आगमों की वांचना देने का प्रायश्चित्त

१६. जे भिक्खू हेट्ठिल्लाइं समोसरणाइ अवाएत्ता उवरिल्लाइं समोसरणाइ वाएइ वायंतं वा साइज्जइ।

१७. जे भिक्खू णव बंभचेराइ अवाएत्ता उत्तम-सुयं वाएइ वाएंतं वा साइज्जइ।

१६. जो भिक्षु पहले वाचना देने योग्य सूत्रो की वाचना दिए बिना बाद मे वाचना देने योग्य सूत्रो की वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

१७. जो भिक्षु नव ब्रह्मचर्य अध्ययन नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध की वाचना दिए बिना उत्तम-श्रुत की वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—जिस प्रकार जनसमूह कही पर बैठकर किसी का प्रवचन सुनता है उस स्थान को "समवसरण" कहा जाता है वैसे ही अनेक तत्त्वो की चर्चाओ का जिस आगम मे सग्रह हो उस आगम को भी "समवसरण" कहा जाता है ।

जिस प्रकार मकान की प्रथम (या नीचे की) मजिल को हेट्ठिल्ल (अधस्तन) कहा जाता है और दूसरी मजिल को "उवरिल्ल" कहा जाता है, उसी प्रकार यहाँ सूत्र मे प्रथम वाचना के आगम को "हेट्ठिल्ल" और उसके बाद की वाचना के आगम को "उवरिल्ल" कहा गया है ।

अत आगम, श्रुतस्कन्ध, अध्ययन, उद्देशक आदि जो अनुक्रम से पहले वाचना देने के है उनकी वाचना पहले दी जाती है और जिनकी वाचना बाद मे देने की है उनकी वाचना बाद मे दी जाती है । यथा—

१. आचारागसूत्र की वाचना पहले दी जाती है और सूयगडागसूत्र की वाचना बाद मे दी जाती है ।

२ प्रथम श्रुतस्कन्ध की वाचना पहले दी जाती है और द्वितीय श्रुतस्कन्ध की वाचना बाद मे दी जाती है ।

३ प्रथम अध्ययन की एव उसमे भी प्रथम उद्देशक की वाचना पहले दी जाती है और आगे के अध्ययन उद्देशको की वाचना बाद मे दी जाती है ।

चूर्णिकार ने यहाँ बताया है कि दशवैकालिक की अपेक्षा आवश्यकसूत्र प्रथम वाचना-सूत्र है । उत्तराध्ययनसूत्र की अपेक्षा दशवैकालिकसूत्र प्रथम वाचना-सूत्र है । आवश्यक सूत्र मे भी सामायिक अध्ययन प्रथम वाचना योग्य है, शेष अध्ययन क्रम से पश्चात् वाचना योग्य है ।

व्यव उ १० मे कालिक सूत्रो की वाचना का क्रम दिया है तथा साथ ही दीक्षा पर्याय का सम्बन्ध भी बताया गया है । उस क्रम मे उत्कालिकश्रुत एव ज्ञाताधर्मकथा आदि अगो का उल्लेख नही है । आचारशास्त्र एव सग्रह शास्त्रो का ही क्रम दिया है । अत· कथा या तपोमय सयमी जीवन के वर्णन वाले ज्ञातादि कालिकसूत्र एव उववाई आदि उत्कालिक सूत्रो का कोई निश्चित क्रम नही है, ऐसा समझना चाहिए तथा कितने ही सूत्रों की रचना-सकलना भी व्यवहारसूत्र की रचना के बाद मे हुई है । जिसमे उनका अध्ययनक्रम वहाँ नही है । अत गीतार्थ मुनि उनकी वाचना योग्य अवसर देखकर कभी भी दे सकते है । प्रस्तुत सूत्रगत प्रायश्चित्त, व्यवहारसूत्र मे कहे गए अनुक्रम की अपेक्षा उत्क्रम करने पर समझना चाहिए ।

आवश्यकसूत्र एव उत्तराध्ययनसूत्र का उपर्युक्त क्रम जो चूर्णिकार ने बताया है उसे आचाराग के पूर्व का क्रम ही समझना चाहिए ।

आचारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध के नव अध्ययनों में संयम में दृढता, वैराग्य एवं श्रद्धा, परीषहजय आदि के विचारों को प्रोत्साहन देने वाले उपदेश का वर्णन है। ब्रह्मचर्य संयम का ही एक पर्यायवाची शब्द है अथवा यह संयम का मुख्य अंग है। इसलिए प्रथम श्रुतस्कन्ध का "नव बंभचेर" नाम प्रसिद्ध है। एक देश से सम्पूर्ण का ग्रहण हो जाता है। अतः चूर्णिकार ने कहा है—**"नव बंभचेर गहणेण सव्वो आयारो गहितो अहवा सव्वो चरणाणुओगो"** अर्थात् नव-ब्रह्मचर्य के कथन से सम्पूर्ण आचारांग सूत्र अथवा सम्पूर्ण चरणानुयोग (आचार शास्त्र को) ग्रहण कर लेना चाहिए।

"उत्तमश्रुत" से छेदसूत्र तथा दृष्टिवाद सूत्र का निर्देश भाष्य गा. ६१८४ में किया गया है।

उत्सर्ग, अपवाद कल्पों का तथा प्रायश्चित्त एवं संघ व्यवस्था का वर्णन होने से छेदसूत्रों को "उत्तमश्रुत" की संज्ञा दी गई है।

चारों अनुयोगों का तथा नय और प्रमाण आदि से द्रव्यों का सूक्ष्मतम वर्णन होने से तथा अत्यन्त विशाल होने से दृष्टिवाद को भी उत्तमश्रुत कहा जाता है।

१७वें सूत्र का आशय यह है कि संयम के आचार का ज्ञान एवं पालन करने में दृढता हो जाने पर विशेष योग्यता वाले भिक्षु को "उत्तमश्रुत" की वाचना दी जाती है।

अथवा १६वें सूत्र में यह १७वां अपवाद सूत्र है ऐसा भी समझ सकते हैं, क्योंकि १७वें सूत्र में "उत्तमसुय" के स्थान पर "उवरिमसुय" पाठ प्रायः सभी प्रतियों में उपलब्ध होता है।

इस अपेक्षा से दोनों सूत्रों का सम्मिलित भावार्थ यह होता है कि किसी भी सूत्र आदि को व्युत्क्रम से पढाने पर प्रायश्चित्त आता है, किन्तु विशेष कारणों से आगे के सूत्रों की वाचना करना अत्यावश्यक हो तो कम से कम आचारांगसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का अध्ययन तो अवश्य करा ही देना चाहिए और उसका अध्ययन कराये बिना अपवाद रूप से भी आगे के सूत्र पढाने पर प्रायश्चित्त आता है।

इस अपवाद स्थिति में सूत्रार्थ-विच्छेद या वाचनादाता का समयाभाव आदि अनेक कारण हो सकते हैं। किन्तु बिना किसी अपवादिक परिस्थिति के किसी भी क्रम को भंग करने पर वाचनादाता को प्रायश्चित्त आता है।

व्युत्क्रम से वाचना देने में होने वाले दोष—

१. पूर्व के विषय को समझे बिना आगे का विषय समझ में नहीं आना, २. उत्सर्ग-अपवाद का विपरीत परिणमन होना, ३. आगे का अध्ययन करने के बाद पूर्व का अध्ययन नहीं करना, ४. पूर्ण योग्यता बिना बहुश्रुत आदि कहलाना, इत्यादि। अतः आगमोक्त क्रम से ही सभी सूत्रों की वाचना देना चाहिए।

इन सूत्रों में तथा आगे भी आने वाले अनेक सूत्रों में, वाचना देने वाले को प्रायश्चित्त कहा है, वाचना ग्रहण करने वाले के प्रायश्चित्त का यहाँ विधान नहीं है। इसका कारण यह है कि यह वाचना देने वाले की जिम्मेदारी का ही विषय है कि किसे क्या वाचना देना?

सूत्रों में अर्थ का अध्ययन कराने के लिए "वाचना" शब्द का प्रयोग किया गया है, और मूल आगम का अध्ययन कराने के लिए "उद्देश, समुद्देश" शब्दों का प्रयोग किया गया है। किन्तु यहाँ

अलग-अलग सूत्र न होने से सक्षेप में वाचनासूत्र से मूल एव अर्थ दोनो ही प्रकार की वाचना विषयक यह प्रायश्चित्त है ऐसा समझ लेना चाहिए ।

इन दोनो सूत्रो से एव उनके विवेचन से वाचना का क्रम इस प्रकार से समझा जा सकता है—

१ आवश्यक सूत्र
२ दशवैकालिक सूत्र
३ उत्तराध्ययन सूत्र
४ आचारागसूत्र
५ निशीथसूत्र
६ सूयगडागसूत्र
७ तीन छेदसूत्र (दशाश्रुतस्कन्धसूत्र, बृहत्कल्पसूत्र, व्यवहार सूत्र)
८ ठाणाग सूत्र, समवायाग सूत्र
९ भगवती सूत्र

शेष कालिक या उत्कालिकसूत्र इस अध्ययन क्रम के मध्य मे या बाद मे कही भी गीतार्थ मुनि की आज्ञा से अध्ययन करना या कराना चाहिए । इस क्रम मे ही मूल और अर्थरूप आगम को कठस्थ करने की आगम प्रणाली समझनी चाहिए ।

अयोग्य को वाचना देने एव योग्य को न देने का प्रायश्चित्त

१८ जे भिक्खू अपत्तं वाएइ, वाएत वा साइज्जइ ।

१९. जे भिक्खू पत्तं ण वाएइ, ण वाएत वा साइज्जइ ।

२०. जे भिक्खू अव्वत्त वाएइ, वाएत वा साइज्जइ ।

२१ जे भिक्खू वत्त ण वाएइ, ण वाएत वा साइज्जइ ।

१८ जो भिक्षु अपात्र (अयोग्य) को वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

१९ जो भिक्षु पात्र (योग्य) को वाचना नही देता है या नही देने वाले का अनुमोदन करता है ।

२० जो भिक्षु अव्यक्त को वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

२१ जो भिक्षु व्यक्त को वाचना नही देता है या नही देने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—पूर्व सूत्रो मे, सूत्रो की तथा अध्ययन, उद्देशक आदि की क्रमपूर्वक वाचना न देने का प्रायश्चित्त कहा गया है । क्योकि आगम निर्दिष्ट प्राथमिक सूत्र, अध्ययन या उद्देशक आदि की वाचना ले लेने से ही आगे के सूत्र अध्ययन या उद्देशक आदि के वाचना की योग्यता प्राप्त होती है एव

क्रमश योग्यता की वृद्धि भी होती है। अत उन सूत्रो मे भी अपेक्षा से वाचना के योग्यायोग्य का ही विषय है।

प्रस्तुत चार सूत्रो मे भी "पात्र" और "व्यक्त" शब्द से दो प्रकार की योग्यता सूचित की गई है।

१. पात्र—जिसने कालिकसूत्रो की वाचना ग्रहण करने की पूर्ण योग्यता प्राप्त करली है अर्थात् जो वाचना के योग्य गुणो से युक्त है उसे "पात्र" कहा गया है और जो वाचना के योग्य गुणो से युक्त नही है उसे "अपात्र" कहा गया है।

बृहत्कल्प सूत्र के चतुर्थ उद्देशक मे तीन गुणो से युक्त को वाचना देने का विधान है और तीन अवगुण वाले को वाचना देने का निषेध है—

तीन गुण	**तीन अवगुण**
१ विनीत।	१ अविनीत
२ विगयो का त्याग करने वाला।	२ विगय त्याग नही करने वाला।
३ कषाय क्लेश को शीघ्र उपशान्त कर देने वाला।	३ कषाय क्लेश को उपशान्त नही करने वाला।

इन तीन गुणो मे प्रथम विनय गुण अत्यन्त विशाल है एव धर्म का मूल भी कहा गया है। फिर भी कम से कम वाचनादाता के प्रति पूर्ण श्रद्धा भक्ति निष्ठा हो, उनके प्रति विनय का व्यवहार हो, उनसे वाचना ग्रहण करने मे पूर्ण रुचि एव प्रसन्नता हो तथा उनकी आज्ञा शिरोधार्य करते हुए अध्ययन करने का विवेक हो, ऐसा विनयी शिष्य वाचना के योग्य होता है।

नवदीक्षित शिष्यो को सर्वप्रथम प्रवर्तक मुनिराज सयम सम्बन्धी समस्त प्रवृत्तियो का ज्ञान, विनय व्यवहार एव सामान्य ज्ञान कराते है। स्थविर मुनिवर उन्हे सयम गुणो से स्थिर करते हैं। इस प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा के बाद जो उपर्युक्त योग्यताप्राप्त पात्र होते है उन्हे उपाध्याय के नेतृत्व मे अध्ययन करने के लिए नियुक्त किया जाता है। जो योग्यता प्राप्त नही कर पाते है वे प्रवर्तक एव स्थविर के नेतृत्व मे क्रमश ज्ञान ध्यान की वृद्धि करते रहते है।

उपाध्याय के पास शुद्ध उच्चारण एव घोषशुद्धि के साथ मूल पाठ का अध्ययन पूर्ण किया जाता है, साथ ही आचार्य उन्हे योग्यतानुसार अर्थ-परमार्थयुक्त सूत्रार्थ की वाचना देते है।

व्यवहार भाष्य उद्देशक १ मे बताया गया है कि प्रत्येक गच्छ मे पाँच पदवीधरो का होना आवश्यक है, जिनमे चार उपरिवर्णित एव पाँचवे गणावच्छेदक होते है। ये गणावच्छेदक गण सम्बन्धी सभी प्रकार की सेवा आदि की व्यवस्था करने वाले होते है तथा आचार्य के महान् सहयोगी होते है। इन पाँच पदवीधरो से युक्त गच्छवासी साधुओ के ज्ञान दर्शन चारित्रादि के आराधन की समुचित व्यवस्था हो सकती है। अत सयम समाधि के इच्छुक भिक्षु को ऐसी व्यवस्था से युक्त गच्छ मे ही रहने की प्रेरणा करते हुए वहा भाष्य मे विस्तार से उदाहरण सहित समझाया गया है।

अपात्र के लक्षणो की सग्राहक भाष्य-गाथा इस प्रकार है—

तितिणिए चलचित्ते, गाणंगणिए य दुब्बल चरित्ते।
आयरिय परिभासी, वामावट्टे य पिसुणे य।

आहार, उपकरण, शय्या एव स्थान आदि मे आसक्ति होने के कारण मनोनुकूल लाभ न होने पर उसके लिए लालायित रहने वाला एव न मिलने पर तिनतिनाट करने वाला, खड़े रहने मे बैठने मे, भाषा और विचार में चचल वृत्ति रखने वाला, आगमोक्त कारणो के बिना गच्छ परिवर्तन करने वाला, चारित्र पालन मे मद उत्साह वाला, आचार्य आदि पदवीधरो के तथा रत्नाधिक के सामने बोलने वाला अर्थात् उनका तिरस्कार करने वाला, उनकी आज्ञा एव इच्छा के विपरीत आचरण करने वाला तथा दूसरो की निन्दा चुगली करके उनका पराभव करने मे आनन्द मानने वाला इत्यादि अवगुणो से युक्त भिक्षु वाचना के लिए अपात्र होता है।

घमण्डी, अपशब्द भाषी तथा कृतघ्न आदि भी अपात्र कहे गये है।

बृहत्कल्प उद्दे ४ मे कहे गए विधि-निषेध का उल्लघन करने पर प्रस्तुत प्रथम सूत्रद्विक से प्रायश्चित्त आता है। अर्थात् पात्र को वाचना न देने वाले और अपात्र को वाचना देने वाले दोनो ही वाचनादाता प्रायश्चित्त के पात्र होते है।

पात्र को वाचना न देने पर श्रुत का ह्रास होता है और अपात्र को वाचना देने का श्रुत का दुरुपयोग होता है। अत दोनो प्रकार का विवेक रखना आवश्यक है।

२. **व्यक्त**—पूर्व सूत्रद्विक मे भाव व्यक्त अर्थात् गुणो से व्यक्त का वर्णन "पात्र" शब्द से किया गया है और बाद के सूत्रद्विक मे द्रव्य से व्यक्त अर्थात् शरीर से व्यक्त का कथन किया गया है।

"जाव कक्खादिसु रोमसभवो न भवति ताव अव्वत्तो, तस्संभवे वत्तो। अहवा जाव सोलसवरिसो ताव अव्वत्तो, परतो वत्तो।" —चूर्णि

काख, मूँछ आदि के बालो की उत्पत्ति होने पर व्यक्त कहा जाता है और उसके पूर्व अव्यक्त कहा जाता है। अथवा १६ वर्ष की उम्र तक अव्यक्त कहा जाता है उसके बाद व्यक्त कहा जाता है।

ऐसे अव्यक्त भिक्षु को कालिकश्रुत (अगसूत्र तथा छेदसूत्र) की वाचना नही दी जाती है।

इसका कारण स्पष्ट करते हुए भाष्य मे बताया है कि अल्प वय मे पूर्ण रूप से श्रुत ग्रहण करने की एव धारण करने की शक्ति अल्प होनी है तथा भाष्यकार ने कच्चे घड का दृष्टान्त देकर भी समझाया है। जिस प्रकार कच्चे घडे को अग्नि मे रखा जाता है और पकाया जाता है किन्तु उसमे पानी नही डाला जाता है, उसी प्रकार अल्पवय वाले शिष्य को शिक्षा अध्ययन आदि से परिपक्व बनाया जाता है किन्तु उक्त आगमो की वाचना व्यक्त एव पात्र होने पर दी जाती है।

इस सूत्रद्विक मे आए "पत्त" शब्द के पात्र या प्राप्त ऐसे दो छायार्थ होते है, तथा "व्यक्त" के भी "वय प्राप्त" एव "पर्याय प्राप्त" ऐसे दो अर्थ होते हैं, १६ वर्ष वाला "वय प्राप्त व्यक्त" होता है और तीन वर्ष की दीक्षा पर्याय अथवा सयम गुणो मे स्थिर भिक्षु "पर्याय व्यक्त" होता है। इस प्रकार से वैकल्पिक अर्थ चूर्णि मे किये हैं। इन वैकल्पिक अर्थों के कारण से अथवा अन्य किसी प्राप्त परम्परा से इन चार सूत्रो के स्थान पर कही छ और कही आठ सूत्र प्रतियो मे मिलते है। वहाँ "पत्त—अपत्त" के सूत्रद्विक का दुबारा या तिबारा उच्चारण किया गया है एव वैकल्पिक अर्थों को अलग-अलग सूत्रों से सम्बन्धित किया है।

वास्तव मे चार सूत्र ही उपयुक्त है क्योकि एक समान सूत्रो का एक ही प्रकरण मे एक साथ पुन पुन उच्चारण किया जाना सूत्र रचना के योग्य नही होता है ।

अर्थ की दृष्टि से विनय आदि योग्यता का कथन प्रथम सूत्रद्विक मे एव वय आदि की योग्यता का कथन द्वितीय सूत्रद्विक मे हो जाता है । अन्य सूत्र-क्रम-प्राप्त आदि विषय का कथन पूर्व सूत्रो मे हो गया है । अतः यहाँ छ. या आठ सूत्रों के विकल्प वाले पाठ स्वीकार नही किये गए हैं ।

इस प्रकार सूत्र १६ से २१ तक दो-दो सूत्रो मे तीन विषय क्रम से कहे गये है—१. सूत्र आदि की क्रम से ही वाचना देना, २ वह भी विनय गुण आदि से योग्य को ही देना, ३ योग्य मे भी वय प्राप्त को ही वाचना देना । इन विधानो से विपरीत आचरण करने पर प्रायश्चित्त आता है ।

वाचना देने से पक्षपात करने का प्रायश्चित्त

२२ **जे भिक्खू दोण्हं सरिसगाण एक्कं सचिक्खावेइ, एक्कं न सचिक्खावेइ, एक्कं वाएइ, एक्क न वाएइ, त करत वा साइज्जइ ।**

जो भिक्षु दो समान योग्यता वाले शिष्यो मे से एक को शिक्षित करता है और एक को नही करता है, एक को वाचना देता है और एक को नही देता है अथवा ऐसा करने वाले का अनुमोदन करता है (उसे लघुचोमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—पूर्व सूत्रो मे कहे गये पात्रता के एव व्यक्तता के गुणो से युक्त तथा सूत्र का सही परिणमन करने के शुभ लक्षणो से युक्त शिष्यो को निष्पक्ष होकर समभाव से वाचना देना चाहिए ।

योग्यता या अयोग्यता के निर्णय मे विवेक के अतिरिक्त पदवीधरो की सभी शिष्यो के प्रति समान दृष्टि भी होनी चाहिए । किसी के साथ पूर्व या पश्चात् का कुछ सम्बन्ध हो तो राग-भाव से पक्षपात हो सकता है अथवा किसी के साथ या पश्चात् का अप्रिय सम्बन्ध हो तो द्वेष-भाव भी हो सकता है किन्तु पद प्राप्त एव अध्यापन का दायित्व प्राप्त बहुश्रुत ऐसे रागद्वेष से युक्त व्यवहार न करे, यह इस सूत्र का तात्पर्य है ।

ऐसा करने मे शिष्यो मे वैमनस्य एव गच्छ मे अशान्ति-अव्यवस्था की वृद्धि होती है । अत ऐसा करने पर वाचनादाता को सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है । ऐसे प्रायश्चित्तो के देने की व्यवस्था आचार्य या गणावच्छेदक करते है ।

अदत्त वाचना ग्रहण करने का प्रायश्चित्त

२३. **जे भिक्खू आयरिय—उवज्झाएहिं अविदिण्ण गिर आइयइ, आइयत वा साइज्जइ ।**

जो भिक्षु आचार्य और उपाध्याय के दिए बिना वाचना लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है । (उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।)

विवेचन—निर्धारित क्रम के कारण किसी सूत्रादि की वाचना न देने पर, वाचना देने के अयोग्य होने से वाचना न देने पर; व्यक्त वय के अभाव में वाचना न देने पर अथवा पक्षपात की

भावना से वाचना न देने पर या कभी किसी गच्छ मे योग्य वाचना देने वाला न होने पर भिक्षु को स्वय सूत्रार्थ का अध्ययन करना नही कल्पता है। अथवा आचार्य उपाध्याय के निषेध कर देने पर हठपूर्वक वाचना ग्रहण करना भी नही कल्पता है। यदि किसी विशेष कारण से आचार्य या उपाध्याय ने मूल पाठ या अर्थ की वाचना लेने के लिए मना किया हो तो उनकी आज्ञा प्राप्त होने के बाद ही आगम की वाचना लेनी चाहिए। जब तक आचार्यादि की आज्ञा न मिले तब तक योग्यता की प्राप्ति के लिए तप सयम मे वृद्धि करनी चाहिए।

यदि आचार्यादि ने द्वेष भाव से निषेध किया हो तो उन्हे विनय के द्वारा प्रसन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए अथवा गच्छ के अन्य गीतार्थ गणावच्छेदक आदि से निवेदन करना चाहिए। किन्तु जब तक आज्ञा न मिले तब तक अविधि से श्रुत ग्रहण नही करना चाहिए। सामान्य या विशेष स्थिति मे भी अदत्त श्रुत ग्रहण करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त तो आता ही है।

सूत्र मे "गिर" शब्द से जिनवाणी को ही आगम माना गया है, तथा आचार्य-उपाध्याय दोनो का निर्देश इसलिए किया गया है कि दोनो वाचना देने वाले होते है। उपाध्याय मूल सूत्रो की वाचना देने वाले होते है एव आचार्य सूत्रार्थ-परमार्थ की वाचना देने वाले होते है।

वर्तमान मे कई गच्छ और कई सम्प्रदाय ऐसे है जिनमे कोई आचार्य एव उपाध्याय ही नही है और जो है उनमे बहुश्रुत एव उत्सग अपवादो के विशेषज्ञ अल्प है। वे भी सामाजिक व्यवस्थाओ मे व्यस्त रहने से योग्य शिष्यो को आगमो की नियमित वाचना दे नही पाते। इसलिए योग्य शिष्यो को गुरुदेवो से आज्ञा प्राप्त करके आगमो का वाचन-चिन्तन-मनन करना श्रेयस्कर है। क्योकि आगमो के आधुनिक प्रकाशनो मे शब्दार्थ, भावार्थ एव विस्तृत विवेचन होते है इसलिए उन सूत्रो का स्वत अध्ययन करने से विशेष लाभ ही सभव है।

अत गुरुदेवो से आज्ञा प्राप्त करके अध्ययन क्रम के अनुसार सूत्रो का वाचन विवेकपूर्वक करना चाहिए।

गुरुदेवो की आज्ञा लेने के बाद स्वत वाचन करने पर सूत्रोक्त "अदत्त वाचना" का प्रायश्चित्त भी नही आता है एव श्रुत परिचय तथा स्वाध्याय का लाभ भी हो जाता है।

गृहस्थ के साथ वाचना के आदान-प्रदान का प्रायश्चित्त

२४ जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा सज्झाय वाएइ, वाएत वा साइज्जइ।

२५. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा वायण पडिच्छइ, पडिच्छतं वा साइज्जइ।

२४ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

२५ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से वाचना लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है। [उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।]

विवेचन—जिस प्रकार दूसरे उद्देशक मे गृहस्थ एव अन्यतीर्थिक शब्द का 'भिक्षाचर गृहस्थ

एव भिक्षाचर अन्यतीर्थिक' ऐसा विशिष्ट अर्थ किया गया है अर्थात् उनके साथ गोचरी आदि मे गमनागमन करने पर प्रायश्चित्त कहा है, उसी प्रकार प्रस्तुत सूत्रो मे भी मिथ्यात्वभावित गृहस्थ एव अन्यतीर्थिक लिंगधारी के साथ वाचना के आदान-प्रदान का प्रायश्चित्त समझना चाहिए।

भाष्यकार ने बताया है कि—उनके पास से वाचना ग्रहण करने पर इस प्रकार से निन्दा होती है कि—"इनके धर्म मे शास्त्र-ज्ञान नही है इस कारण से दूसरो के पास ज्ञान लेने जाते हैं और उन्हे वाचना देने पर वे विवाद पैदा कर सकते हैं, अनुचित्त आक्षेप करके जिनधर्म के विरुद्ध प्रचार कर सकते है, कई आगम विषयो को विकृत करके प्रचार कर सकते हैं अथवा वे अपने मिथ्यात्व को और अधिक पुष्ट कर सकते है तथा उस वाचना लेन-देन के व्यवहार का कथन करके लोगो को मिथ्यात्वी बना सकते है।

भाष्य कथित इन कारणो से भी यही स्पष्ट होता है कि यह निषेध सम्यग्दृष्टि या श्रमणोपासक के लिए नही है किन्तु मिथ्यादृष्टि के लिए है।

नन्दीसूत्र एव समवायागसूत्र मे श्रमणोपासको के श्रुत अध्ययन करने का एव सूत्रो के उपधान [तप] का कथन है यथा—

उवासगदसासु णं उवासगाण नगराइ जाव पोसहोववास पडिवज्जणयाओ सुय परिग्गहा, तवोवहाणा, पडिमाओ । —सम

इसी प्रकार का पाठ नन्दीसूत्र मे भी है तथा आगमो मे श्रमणोपासक के लिए बहुश्रुत एव जिनमत मे कोविद आदि विशेषण भी आए है। चार तीर्थ मे और चार प्रकार के श्रमण सघ में उन्हे समाविष्ट किया गया है अत यह प्रायश्चित्त श्रमणोपासक की अपेक्षा नही समझना चाहिए।

मिथ्यादृष्टि यदि धर्म के सन्मुख होने योग्य हो तो उसे योग्य उपदेश अथवा आगम वर्णन बताने एव समझाने मे भी दोष नही समझना चाहिए किन्तु यह कार्य गीतार्थ एव विचक्षण भिक्षु के योग्य है, अन्यथा परिचय सम्पर्क करना भी सम्यकत्व का अतिचार कहा गया है।

श्रमण वर्ग मे वाचनादाता के अभाव मे अथवा कभी आवश्यक होने पर बहुश्रुत श्रमणोपासक से वाचना ग्रहण करना भी प्रायश्चित्त योग्य नही है, क्योकि इसमे दोष का कोई कारण नही है तथा ठाणाग सूत्र के "चउव्विहे समणसघे" इस पाठ मे श्रमणोपासक का बहुत सम्माननीय स्थान कहा गया है।

अत प्रसगानुकूल अर्थ करते हुए यहाँ मिथ्यात्व भावित गृहस्थ आदि के साथ वाचना के आदान-प्रदान का प्रायश्चित्त समझना चाहिए।

पार्श्वस्थ के साथ वाचना के आदान-प्रदान का प्रायश्चित्त

२६. **जे भिक्खू पासत्थस्स वायण देइ, देंतं वा साइज्जइ।**

२७ **जे भिक्खू पासत्थस्स वायण पडिच्छइ, पडिच्छंत वा साइज्जइ।**

२८. **जे भिक्खू ओसण्णस्स वायणं देइ, देंतं वा साइज्जइ।**

२९ जे भिक्खू ओसण्णस्स वायणं पडिच्छइ, पडिच्छतं वा साइज्जइ ।

३० जे भिक्खू कुसीलस्स वायणं देइ, देंत वा साइज्जइ ।

३१ जे भिक्खू कुसीलस्स वायणं पडिच्छइ, पडिच्छत वा साइज्जइ ।

३२. जे भिक्खू संसत्तस्स वायणं देइ, देंतं वा साइज्जइ ।

३३. जे भिक्खू ससत्तस्स वायण पडिच्छइ, पडिच्छंत वा साइज्जइ ।

३४. जे भिक्खू णितियस्स वायणं देइ, देंत वा साइज्जइ ।

३५ जे भिक्खू णितियस्स वायण पडिच्छइ, पडिच्छतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

२६. जो भिक्षु पार्श्वस्थ को वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

२७ जो भिक्षु पार्श्वस्थ से वाचना लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

२८ जो भिक्षु अवसन्न को वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

२९ जो भिक्षु अवसन्न से वाचना लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

३० जो भिक्षु कुशील को वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

३१. जो भिक्षु कुशील से वाचना लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

३२ जो भिक्षु ससक्त को वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

३३ जो भिक्षु ससक्त से वाचना लेता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

३४ जो भिक्षु नित्यक को वाचना देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है ।

३५ जो भिक्षु नित्यक से वाचना लेता है या लेने वाले अनुमोदन करता है ।
इन ३५ सूत्रो मे वर्णित दोष स्थानो का सेवन करने पर लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

विवेचन—जिस प्रकार मिथ्यात्वी गृहस्थ से वाचना लेने-देने मे दोषो की सम्भावना पूर्व सूत्र मे कही है उसी प्रकार पार्श्वस्थ आदि के साथ भी समझना चाहिए किन्तु यहा मिथ्यात्व के स्थान पर शिथिलाचार का पोषण एव प्ररूपण करने सम्बन्धी दोष समझने चाहिए । पूर्व उद्देशो मे भी इनके साथ वन्दन, आहार, शय्या आदि के सम्पर्क करने सम्बन्धी प्रायश्चित्त कहे है । अत विशेष विवेचन एव दोषो का वर्णन उद्देशक ४, १० तथा १३ से जान लेना चाहिए । यदि कभी कोई गीतार्थ मुनि पार्श्वस्थ आदि को सयम मे उन्नत होने की सम्भावना से वाचना दे तो प्रायश्चित्त नही समझना चाहिए ।

उन्नीसवें उद्देशक का सारांश—

सूत्र १-७	औषध के लिए क्रीत आदि दोष लगाना, विशिष्ट औषध की तीन मात्रा (खुराक) से अधिक लाना, औषध को विहार मे साथ रखना तथा औषध के परिकर्म सम्बन्धी दोषो का सेवन करगा,
८	चार सध्या मे स्वाध्याय करना,
९-१०	कालिकसूत्र की ९ गाथा एव दृष्टिवाद की २१ गाथाओ से ज्यादा पाठ का अस्वाध्याय काल मे (अर्थात् उत्काल मे) उच्चारण करना,
११-१२	चार महामहोत्सव एव उनके बाद की चार महा प्रतिपदा के दिन स्वाध्याय करना,
१३	कालिकसूत्र का स्वाध्याय करने के चार प्रहरो को स्वाध्याय किए बिना ही व्यतीत करना,
१४	३२ प्रकार के अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय करना,
१५	अपने शारीरिक अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय करना,
१६	सूत्रो की वाचना आगमोक्त क्रम से न देना,
१७	आचाराग सूत्र की वाचना पूर्ण किए बिना छेदसूत्र या दृष्टिवाद की वाचना देना,
१८-२१	अपात्र को वाचना देना और पात्र को न देना अव्यक्त को वाचना देना और व्यक्त को वाचना न देना।
२२	समान योग्यता वालो को वाचना देने मे पक्षपात करना,
२३	आचार्य उपाध्याय द्वारा वाचना दिए बिना स्वय वाचना ग्रहण करना,
२४-२५	मिथ्यात्व भावित गृहस्थ एव अन्यतीर्थिको को वाचना देना एव उनसे लेना,
२६-३५	पार्श्वस्थादि को वाचना देना एव उनसे लेना,

इत्यादि प्रवृत्तियो का लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

उपसहार—इस उद्देशक के प्रारम्भ मे औषध विषयक कथन किया गया है। शेष सभी सूत्रो मे स्वाध्याय एव अध्ययन-अध्यापन सम्बन्धी विषयो का कथन है। एक साथ इतनी स्पष्टता के साथ किए गए प्रायश्चित्त विधान से यहा पर श्रुत स्वाध्याय एव अध्यापन सम्बन्धी पूर्ण विधियो का क्रमिक एव स्पष्ट निर्देश किया गया है। इस प्रकार कुल दो विषयो मे उद्देशक पूर्ण हो जाता है। इसमे स्वाध्याय सम्बन्धी अन्य आगमो मे उक्त या अनुक्त सामग्री का एक साथ अनुपम सग्रह हुआ है, यह इस उद्देशक की विशेषता है।

इस उद्देशक के १२ सूत्रो के विषयो का कथन निम्न आगमो मे है, यथा—

सूत्र ६	ग्लान के लिए औषध की तीन दत्ति से अधिक लेने का निषेध	—ठाण अ ३
८	चार सध्या मे स्वाध्याय नही करना	—ठाण अ ४
१२	चार प्रतिपदा मे स्वाध्याय नही करना,	—ठाण अ ४

१३	चारो कालो मे स्वाध्याय नही करना अतिचार कहा है	—आव अ ४
१४	अस्वाध्याय मे स्वाध्याय करने का निषेध	—व्यव उ ७
१५	अपनी शारीरिक अस्वाध्याय मे स्वाध्याय करने का निषेध	—व्यव. उ. ७
१६-१७	आगमो के वाचना-क्रम का विधान	—व्यव उ १०
१८-१९	अपात्र को वाचना देने का निषेध एव पात्र को वाचना देने का विधान	—बृहत्कल्प उ ४
२०-२१	अव्यक्त को वाचना देने का निषेध और व्यक्त को वाचना देने का विधान	—व्यव उ १०

इस उद्देशक के २३ सूत्रों के विषय का कथन अन्य आगमो मे नहीं है, यथा—

सूत्र १-५, ७	औषध सम्बन्धी उक्त समस्त वर्णन अन्यत्र नही है।
९-१०	कालिकश्रुत की ९ गाथाओ एव दृष्टिवाद की २१ गाथाओ को उच्चारण करने का विधान
११	चार महामहोत्सवो मे स्वाध्याय करने का निषेध
२२	वाचना देने मे पक्षपात नही करना
२३	अदत्त वाचना ग्रहण नही करना
२४-३५	मिथ्यात्व भावित गृहस्थो को एव पार्श्वस्थादि को वाचना नही देना और उनसे वाचना नही लेना।

॥ उन्नीसवां उद्देशक समाप्त ॥

बीसवां उद्देशक

कपट-सहित तथा कपट-रहित आलोचक को प्रायश्चित्त देने की विधि

१. जे भिक्खू मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचिय आलोएमाणस्स मासियं, पलिउंचिय आलोएमाणस्स दोमासियं।

२. जे भिक्खू दो मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचिय आलोएमाणस्स दो मासियं, पलिउंचिय आलोएमाणस्स तेमासियं।

३. जे भिक्खू तेमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचिय आलोएमाणस्स तेमासियं, पलिउंचिय आलोएमाणस्स चाउम्मासियं।

४. जे भिक्खू चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचिय आलोएमाणस्स चाउम्मासियं, पलिउंचिय आलोएमाणस्स पंचमासियं।

५. जे भिक्खू पंचमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अपलिउंचिय आलोएमाणस्स पंचमासियं पलिउंचिय आलोएमाणस्स छम्मासियं।

तेण परं पलिउंचिए वा, अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा।

६. जे भिक्खू बहुसो वि मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अपलिउंचिय आलोएमाणस्स मासियं, पलिउंचिय आलोएमाणस्स दो मासियं।

७. जे भिक्खू बहुसो वि दो मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचिए आलोएमाणस्स दो मासियं, पलिउंचिय आलोएमाणस्स तेमासियं।

८. जे भिक्खू बहुसो वि तेमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचिय आलोएमाणस्स तेमासियं, पलिउंचिय आलोएमाणस्स चाउम्मासियं।

९. जे भिक्खू बहुसो वि चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचिय आलोएमाणस्स चाउम्मासियं, पलिउंचिय आलोएमाणस्स पंचमासियं।

१०. जे भिक्खू बहुसो वि पंचमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचिय आलोएमाणस्स पंचमासियं, पलिउंचिय आलोएमाणस्स छम्मासियं।

तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा।

११. जे भिक्खू मासियं वा जाव पंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाण अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अपलिउंचिय आलोएमाणस्स मासियं वा जाव पचमासियं वा ।

पलिउंचिय आलोएमाणस्स दो मासियं वा जाव छम्मासियं वा ।

तेण पर पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा ।

१२. जे भिक्खू बहुसो वि मासियं वा जाव बहुसो वि पचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—

अपलिउंचिय आलोएमाणस्स मासियं वा जाव पचमासियं वा,

पलिउंचिय आलोएमाणस्स दो मासियं वा जाव छम्मासियं वा ।

तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा ।

१३ जे भिक्खू चाउम्मासियं वा, साइरेग-चाउम्मासियं वा, पचमासियं वा साइरेग-पचमासियं वा, एएसिं परिहारट्ठाणाण अण्णयरं परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा ।

अपलिउंचिय आलोएमाणस्स चाउम्मासियं वा, साइरेग-चाउम्मासियं वा पचमासियं वा साइरेग-पचमासियं वा,

पलिउंचिय आलोएमाणस्स पचमासियं वा, साइरेग पचमासियं वा, छम्मासियं वा,

तेण पर पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा ।

१४ जे भिक्खू बहुसो वि चाउम्मासियं वा, बहुसो वि साइरेग-चाउम्मासियं वा, बहुसो वि पचमासियं वा, बहुसो वि साइरेग-पचमासियं वा, एएसिं परिहारट्ठाणाण अण्णयरं परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा—

अपलिउंचिय आलोएमाणस्स चाउम्मासियं वा, साइरेग-चाउम्मासियं वा, पचमासियं वा, साइरेग-पचमासियं वा,

पलिउंचिय आलोएम्माणस्स पचमासियं वा, साइरेग-पचमासियं वा छम्मासियं वा ।

तेण पर पलिउंचिए वा, अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा ।

१ एक भिक्षु एक बार मासिक-परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे माया-रहित आलोचना करने पर एक मास का प्रायश्चित्त आता है और माया-रहित आलोचना करने पर दो माम का प्रायश्चित्त आता है ।

२ जो भिक्षु एक बार द्विमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे माया-रहित आलोचना करने पर द्वैमासिक प्रायश्चित्त आता है और माया-सहित आलोचना करने पर त्रैमासिक प्रायश्चित्त आता है ।

३ जो भिक्षु एक त्रैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो माया-

रहित आलोचना करने पर त्रैमासिक प्रायश्चित्त आता है और माया-सहित आलोचना करने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

४ जो भिक्षु एक बार चातुर्मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे माया-रहित आलोचना करने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है और माया-रहित आलोचना करने पर पचमासिक प्रायश्चित्त आता है।

५ जो भिक्षु एक बार पचमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे माया-रहित आलोचना करने पर पचमासिक प्रायश्चित्त आता है और माया-सहित आलोचना करने पर षाण्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त मायासहित या मायारहित आलोचना करने पर भी वही षाण्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

६ जो भिक्षु अनेक बार मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर एक मास का प्रायश्चित्त आता और मायासहित आलोचना करने पर द्वैमासिक प्रायश्चित्त आता है।

७ जो भिक्षु अनेक वार द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर द्वैमासिक प्रायश्चित्त आता है और मायासहित आलोचना करने पर त्रैमासिक प्रायश्चित्त आता है।

८ जो भिक्षु अनेक बार त्रैमासिक परिहारस्थान की प्रतिवेदना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर त्रैमासिक प्रायश्चित्त आता है और मायासहित आलोचना करने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

९ जो भिक्षु अनेक बार चातुर्मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है और मायासहित आलोचना करने पर पचमासिक प्रायश्चित्त आता है।

१० जो भिक्षु अनेक बार पचमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर पचमासिक प्रायश्चित्त आता है और मायासहित आलोचना करने पर षाण्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त मायासहित या मायारहित आलोचना करने पर भी वही षाण्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

११. जो भिक्षु मासिक यावत् पचमासिक इन परिहारस्थानो मे से किसी परिहारस्थान की एक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर आसेवित परिहार-स्थान के अनुसार मासिक यावत् पचमासिक प्रायश्चित्त आता है और मायासहित आलोचना करने पर आसेवित परिहारस्थान के अनुसार द्वैमासिक यावत् षाण्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त मायासहित या मायारहित आलोचना करने पर वही षाण्मासिक प्रायश्चि आता है।

१२. जो भिक्षु मासिक यावत् पचमासिक इन परिहारस्थानो मे से किसी एक परिहारस्था की अनेक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर आसेवि परिहारस्थान के अनुसार मासिक यावत् पचमासिक प्रायश्चित्त आता है और मायासहित आलोचन करने पर आसेवित परिहारस्थान के अनुसार द्वैमासिक यावत् षाण्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त मायासहित या मायारहित आलोचना करने पर वही षाण्मासिक प्रायश्चि आता है।

१३ जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पचमासिक या कुछ अधि पचमासिक—इन परिहारस्थानो मे से किसी एक परिहारस्थान की एक बार प्रतिसेवना कर आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर आसेवित परिहारस्थान के अनुसा चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पंचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक प्रायश्चित्त आत है और मायासहित आलोचना करने पर आसेवित परिहारस्थान के अनुसार पचमासिक या कु अधिक पचमासिक या षाण्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त मायासहित या मायारहित आलोचना करने पर वही षाण्मासिक प्रायश्चि आता है।

१४ जो भिक्षु अनेक बार चातुर्मासिक या अनेक बार कुछ अधिक चातुर्मासिक, अनेक बा पचमासिक या अनेक बार कुछ अधिक पचमासिक परिहारस्थान मे से किसी एक परिहारस्थान क प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर आसेवित परिहारस्थान अनुसार चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक प्रायश्चि आता है और मायासहित आलोचना करने पर पचमासिक या कुछ अधिक पंचमासिक या छमासि प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरात मायासहित या मायारहित आलोचना करने पर वही छमासिक प्रायश्चि आता है।

विवेचन—उन्नीस उद्देशको में कहे हुए दोषो के सेवन करने के बाद आलोचक को आलोचन के अनुसार प्रायश्चित्त देने के विभिन्न विकल्पो का वर्णन इन चौदह सूत्रो मे किया गया है।

आलोचना करने वाला एक प्रायश्चित्त स्थानो को एक बार या अनेक बार तथा अने प्रायश्चित्त स्थानो को एक बार या अनेक बार सेवन करके उनकी एक साथ भी आलोचना कर सकत है और कभी अलग-अलग भी।

कोई आलोचक निष्कपट यथार्थ आलोचना करनेवाला होता है और कोई कपटयु आलोचना करने वाला भी होता है अत ऐसे आलोचको को दिए जाने वाले प्रायश्चित्त देने की विधि यहाँ कही गई है।

उन्नीस उद्देशको मे मासिक, चौमासी और इनके गुरु या लघु यो चार प्रकार के प्रायश्चित्त का कथन है तथापि कुछ विशेष दोषो के प्रायश्चित्तो में पांच दिन, दस दिन की वृद्धि भी होती है। इसीलिए सूत्र १३-१४ मे चार मास या चार मास साधिक, पाच मास या पाच मास साधिक ऐसा कथन है, किन्तु चौमासी प्रायश्चित्त स्थानो के समान पचमासी या छमासी प्रायश्चित्त स्थानो का स्वतत्र निर्देश आगमो मे नही है। प्रस्तुत उद्देशक मे भी उनका केवल सकेत मिलता है।

इन प्रायश्चित्त स्थानो मे से किसी एक प्रायश्चित्त स्थान का एक बार या अनेक बार सेवन करके एक साथ आलोचना करने पर प्रायश्चित्त स्थान वही रहता है किन्तु तप की हीनाधिकता हो जाती है।

यदि प्रायश्चित्त स्थान अनेक हो तो उन सभी स्थानो के प्रायश्चित्त की प्राप्ति होती है और उन सभी प्रायश्चित्त स्थानो के अनुसार यथा योग्य तप प्रायश्चित्त दिया जाता है।

सरल मन से आलोचना करने पर प्रायश्चित्त स्थान के अनुरूप प्रायश्चित्त आता है और कोई कपट युक्त आलोचना करे तो कपट की जानकारी हो जाने पर उस प्रायश्चित्त स्थान से एक मास अधिक प्रायश्चित्त आता है अर्थात् कपट करने का एक गुरु मास का प्रायश्चित्त और सयुक्त कर दिया जाता है।

९ पूर्वी से लेकर १४ पूर्व तक के श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी ये आगम-विहारी भिक्षु आलोचक के कपट को अपने ज्ञान से जान लेते है अत· इनके सन्मुख ही आलोचना एव प्रायश्चित्त करना चाहिये। इनके अभाव मे श्रुतव्यवहारी साधु तीन बार आलोचना सुनकर भाषा तथा भावो से कपट को जान सकते हैं क्योकि वे भी अनुभवी गीतार्थ होते हैं।

यदि कपटयुक्त आलोचना करने वाले का कपट नही जाना जा सके तो उसकी शुद्धि नही होती है। इसलिए आगमो मे आलोचना करने वाले को एव सुनने वाले की योग्यता कही गई है तथा आलोचना सबधी अन्य वर्णन भी है। यथा—

१ ठाणाग अ १० मे आलोचना करने वाले को १० गुणयुक्त होना अनिवार्य कहा गया है। यथा—

१ जातिसपन्न, २ कुलसपन्न, ३. विनयसपन्न, ४ ज्ञानसपन्न, ५ दर्शनसपन्न, ६ चारित्र-सपन्न, ७ क्षमावान्, ८ दमनेन्द्रिय, ९ अमायी, १० आलोचना करके पश्चाताप नही करने वाला।

२ ठाणाग अ १० मे आलोचना सुनने वाले के १० गुण इस प्रकार कहे है यथा—

१ आचारवान्, २ समस्त दोषो को समझ सकने वाला, ३ पाच व्यवहारो के क्रम का ज्ञाता, ४ सकोच-निवारण मे कुशल, ५ आलोचना कराने मे समर्थ, ६ आलोचना को किसी के पास प्रकट न करने वाला, ७ योग्य प्रायश्चित्त दाता, ८ आलोचना न करने के या कपटपूर्वक आलोचना करने के अनिष्ट परिणाम बताने मे समर्थ। ९ प्रियधर्मी, १० दृढधर्मी।

उत्तरा. अ ३६ गा. २६२ मे आलोचना सुनने वाले के तीन गुण कहे हैं—

१ आगमो का विशेषज्ञ, २. समाधि उत्पन्न कर सकने वाला, ३. गुणग्राही।

३. ठाणाग अ. १० में आलोचना के १० दोष इस प्रकार कहे है—

१. सेवा आदि से प्रसन्न करने के बाद उसके पास आलोचना करना।

२ मेरे को प्रायश्चित्त कम देना इत्यादि अनुनय करके आलोचना करना।

३. दूसरो के द्वारा देखे गये दोषो की आलोचना करना,

४ बडे-बडे दोषो की आलोचना करना,

५ छोटे-छोटे दोषो की आलोचना करना,

६. अत्यत अस्पष्ट बोलना,

७. अत्यन्त जोर से बोलना,

८ अनेकों के पास एक ही दोष की आलोचना करना।

९ अगीतार्थ के पास आलोचना करना,

१० अपने समान दोषो का सेवन करने वाले के पास आलोचना करना।

उपरोक्त स्थानो का योग्य विवेक रखने पर ही आलोचना शुद्ध होती है। यदि आलोचना सुनने वाला योग्य न मिले तो अनुक्रम से स्वगच्छ, अन्य गच्छ या श्रावक आदि के पास भी आलोचना की जा सकती है, अत मे अरिहत-सिद्धो की साक्षी से भी आलोचना करने का विधान व्यव उ १ मे किया गया है।

ठाणाग अ. ३ मे कहा है कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र की शुद्ध आराधना के लिये आलोचना-प्रायश्चित्त किया जाता है। दोषो की आलोचना एव प्रायश्चित्त नही करने वाला इहलोक और परलोक दोनो ही बिगाडता है और वह विराधक होकर आत्मा को अधोगति का भागी बनाता है।

आलोचना नही करने के अनेक कारणो मे मुख्य कारण अपमान एव अपयश के होने का होता है किन्तु यह विचारो की अज्ञानदशा है। क्योकि आलोचना करके शुद्ध होने वाला इस भव मे और परभव मे पूर्ण समाधि को प्राप्त करता है और आलोचना नही करने वाला इस भव मे अदर ही अदर खिन्न होता है एव उभयलोक मे असमाधि को प्राप्त करता है और आलोचना न करके सशल्य मरण से दीर्घससारी होता है।

जो भिक्षु मूलगुणो मे अथवा उत्तरगुणो मे एक बार या अनेक बार दोष लगाकर उन्हे छिपावे, लगे हुए दोषो की न आलोचना करे और न प्रायश्चित्त ले तो गणनायक उसे लगे हुए दोषो के सबध मे पूछे।

यदि वह असत्य बोले, अपने आपको निर्दोष सिद्ध करे तो दोष सेवन करते हुए उसे देखने के लिए किसी को नियुक्त करे और प्रमाणपूर्वक उसके दोष सेवन का उसी के सामने सिद्ध करवाकर प्रायश्चित्त दे।

उन्नीस उद्देशको मे ऐसे मायावी को दिए जाने वाले प्रायश्चित्तो का विधान नही है। इनमे केवल स्वेच्छा से आलोचना करने वालो को दिए जाने वाले प्रायश्चित्तो का विधान है। उक्त मायावी भिक्षु लगे हुए दोषो को सरलता से स्वीकार न करे तो गच्छ से निकाल देना चाहिए।

यदि वह लगे हुए दोषो को सरलता से स्वीकार कर ले, गच्छ प्रमुख को उसकी सरलता पर विश्वास हो जावे तो उसे निम्न प्रायश्चित्त देकर गच्छ में रखा जा सकता है।

१. यदि उसने अनेक बार दोष सेवन न किए हो, अनेक बार मृषा भाषण करके उसने अपने

दोष न छिपाये हो और उसके दोष-सेवन की जानकारी जनसाधारण को न हुई तो उसे दीक्षा छेद का प्रायश्चित्त देना चाहिए।

२ यदि उसने बार-बार ब्रह्मचर्य आदि महाव्रत भग किया हो, बार-बार माया-मृषा भाषण किया हो, उसके बार-बार ब्रह्मचर्य आदि भग की जानकारी जनसाधारण को हो गई हो तो उसे मूल अर्थात् नई दीक्षा देने का प्रायश्चित्त देना चाहिए।

उत्तराध्ययन सूत्र अ २९ मे दोषो की आलोचना निंदा एव गर्हा का अत्यत शुभ एव श्रेष्ठ फल कहा है।

ठाण० अ० १०, भगवती श० २५ उ० ७, उव० सूत्र० ३० और उत्तरा० अ० ३० मे १० प्रकार के प्रायश्चित्त कहे है उनमे आलोचना करना प्रथम प्रायश्चित्त स्थान कहा गया है।

प्रायश्चित्त—चारित्र के मूल गुणो मे या उत्तर गुणो मे की गई प्रतिसेवनाओ अर्थात् दोष सेवन का प्रायश्चित्त किया जाता है। निशोथसूत्र मे तप-प्रायश्चित्त के चार मुख्य विभाग कहे हैं और भाष्य मे उसी की विस्तार से व्याख्या करते हुए पाँच दिन के तप से लेकर छ मास तक तप तथा छेद मूल अनवस्थाप्य एव पाराचिक प्रायश्चित्त तक का कथन किया है।

प्रतिसेवना के भावो के अनुसार एक ही दोष-स्थान के प्रायश्चित्तो की वृद्धि या कमी की जाती है।

भगवती श० २५ उ० ७ एव ठाणाग अ० १० मे प्रतिसेवना दस प्रकार की कही है। यथा--

१ दर्प से (आशक्ति एव धृष्टता से), २ आलस्य से, ३ असावधानी से, ४ भूख प्यास आदि की आतुरता से, ५ सकट आने पर ६ क्षेत्र आदि की सकीर्णता से, ७ भूल से, ८ भय से, ९ रोष से या द्वेष से, १०. शिष्य आदि की परीक्षा के लिए।

प्रत्येक दोष-सेवन के पीछे इनमे से कोई भी एक या अनेक कारण होते है।

इन कारणो मे से किसी कारण से लगे दोष की केवल आलोचना से ही शुद्धि हो सकती है तो किसी की आलोचना और प्रतिक्रमण से शुद्धि होती है और किसी की तप छेद आदि से शुद्धि होती है।

दोष-सेवन के बाद आत्मशुद्धि का इच्छुक आलोचना कर प्रायश्चित्त ग्रहण करता है। जिस प्रकार वस्त्र मे लगे मैल की शुद्धि धोने से हो जाती है उसी प्रकार आत्मा के (सयमादि मे) लगे दोषो की शुद्धि प्रायश्चित से हो जाती है।

उतरा० अ० २९ मे कहा है कि प्रायश्चित्त करने से दोषो की विशुद्धि हो जाती है, चरित्र निरतिचार हो जाता है, तथा सम्यग् प्रायश्चित्त स्वीकार करने वाला मोक्षमार्ग एव आचार का आराधक होता है।

दस प्रकार का प्रायश्चित्त—

१ आलोचना के योग्य—क्षेत्रादि के कारण आपवादिक व्यवहार प्रवृत्ति आदि की केवल आलोचना से शुद्धि होती है।

२. प्रतिक्रमण के योग्य—असावधानी से होने वाली अयतना की शुद्धि केवल प्रतिक्रमण से (मिच्छामि दुक्कड से) होती है।

३. तदुभय योग्य—तप प्रायश्चित्त के अयोग्य समिति आदि के अत्यन्त अल्प दोष की शुद्धि आलोचना एव प्रतिक्रमण से हो जाती है ।

४. विवेक योग्य—भूल से ग्रहण किये गए दोषयुक्त या अकल्पनीय आहारादि के ग्रहण किये जाने पर अथवा क्षेत्रकाल सम्बन्धी आहार की मर्यादा का उल्लघन होने पर उसे परठ देना ही विवेक प्रायश्चित्त है ।

५. व्युत्सर्ग के योग्य—किसी साधारण भूल के हो जाने पर निर्धारित श्वासोच्छ्वास के कायोत्सर्ग का प्रायश्चित्त दिया जाय यह व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है । उभय काल प्रतिक्रमण मे पाचवाँ आवश्यक भी इसी प्रायश्चित्त रूप है । ये पाचो प्रायश्चित्त तपरहित हैं ।

६. तप के योग्य—मूल गुण या उत्तर गुण मे दोष लगाने पर पुरिमड्ढ से लेकर ६ मासी तप तक का प्रायश्चित्त होता है । यह दो प्रकार का है—

१. शुद्ध तप, २ परिहार तप ।

७. छेद के योग्य—दोषो के बार-बार सेवन से, अकारण अपवाद सेवन से या अधिक लोक निंदा होने पर आलोचना करने वाले की एक दिन से लेकर छ मास तक की दीक्षा-पर्याय का छेदन करना ।

८. मूल के योग्य—छेद के योग्य दोषो मे उपेक्षा भाव या स्वच्छन्दता होने पर पूर्ण दीक्षा छेद करके नई दीक्षा देना ।

९–१०. अनवस्थाप्य पारांचिक प्रायश्चित्त—वर्तमान मे इन दो प्रायश्चित्तो का विच्छेद होना माना जाता है । नई दीक्षा देने के पूर्व कठोर तपमय साधना करवाई जाती है, कुछ समय समूह से अलग रखा जाता है फिर एक बार गृहस्थ का वेष पहनाकर पुन दीक्षा दी जाती है इन दोनो मे विशिष्ट तप एव उसके काल आदि का अन्तर है और इनका अन्य विवेचन बृहत्कल्प उद्देशक ४ मे तथा व्यव. उ २ मे देखे ।

इन सूत्रो मे लघुमासिक आदि तप प्रायश्चित्तो का कथन है । भाष्य गाथा ६४९९ मे कहा है कि १९ उद्देशको में कहे गये प्रायश्चित्त ज्ञानदर्शन चारित्र के अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार एव अनाचार के हैं । इनमे से स्थविरकल्पी को किसी अनाचार का आचरण करने पर ही ये प्रायश्चित्त आते हैं और जिनकल्पी को अतिक्रम आदि चारो के ये प्रायश्चित्त आते हैं ।

१. **अतिक्रम**—दोष सेवन का सकल्प ।
२ **व्यतिक्रम**—दोष सेवन के पूर्व की तैयारी का प्रारम्भ ।
३. **अतिचार**—दोष सेवन के पूर्व की प्रवृत्ति का लगभग पूर्ण हो जाना ।
४ **अनाचार**—दोष का सेवन कर लेना ।

जैसे कि—१ आधाकर्मी आहार ग्रहण करने का सकल्प, २ उसके लिये जाना, ३ लाकर रखना, ४ खा लेना ।

स्थविरकल्पी को अतिक्रमादि तीन से व्युत्सर्ग तक के पाच प्रायश्चित्त आते है एव अनाचार सेवन करने पर उन्हें आगे के पांच प्रायश्चित्तो में से कोई एक प्रायश्चित्त आता है ।

परिहार तप एव शुद्ध तप किन-किन को दिया जाता है यह वर्णन भाष्य गाथा—६५८६ से ९१ तक में है। वहाँ पर यह भी कहा है कि साध्वी को एव अगीतार्थ, दुर्बल और अतिम तीन सघयण वाले भिक्षु को शुद्ध तप प्रायश्चित्त ही दिया जाता है।

२० वर्ष की दीक्षा पर्यायवाले को, २९ वर्ष की उम्र से अधिक वय वाले को, उत्कृष्ट गीतार्थ अर्थात् ९ पूर्व के ज्ञानी को, प्रथम सहनन वाले को तथा अनेक अभिग्रह तप साधना के अभ्यासी को परिहार तप दिया जाता है। भाष्य गाथा ६५९२ मे परिहार तप देने की पूर्ण विधि का वर्णन किया गया है।

सूत्र १ से ५ तक एक मासिक प्रायश्चित्त स्थान से लेकर पाच मासिक प्रायश्चित्त स्थान के एक बार सेवन का तथा सूत्र ६ से १० तक अनेक बार सेवन का सामान्य प्रायश्चित्त कहा गया है साथ ही कपटयुक्त आलोचना का एक गुरुमास प्रायश्चित्त विशेष देने का कहा गया है।

सूत्र ११ से १४ मे इन्ही प्रायश्चित्त स्थानो मे से अनेक स्थानो के सेवन से द्विसयोगी आदि भगयुक्त अनेक सूत्रो की सूचना की गई है, भाष्य चूर्णि मे भग-विस्तार से करोडो सूत्रो की गणना बताई गई है।

सूत्र ५, १० तथा ११ से १४ तक के सूत्रो मे "तेण पर—पलिउचिय अपलिउंचिय ते चेव छम्मासा" यह वाक्य है। इसका आशय यह समझना चाहिए कि—इसके आगे कोई ६ मास या ७ मास के योग्य प्रायश्चित्त का पात्र हो—अथवा कपटसहित या कपटरहित आलोचना करने वाला हो तो भी यही छ मास का प्रायश्चित्त आता है, इससे अधिक नही आता है।

सुबहुहि वि मासेहि, छण्हं मासाण पर ण दायव्व ॥ ६५२४ ॥

चूर्णि—तवारिहेहिं बहुहिं मासेहिं छम्मासा पर ण दिज्जइ, सव्वस्सेव एस णियमो, एत्थ कारण जम्हा अम्ह वद्धमाण सामिणो एव चेव पर पमाण ठवित।

भावार्थ—वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन मे इतने ही प्रायश्चित्त की मर्यादा निर्धारित है और सभी साधु-साध्वी के लिए यह नियम है।

अगीतार्थ, अतिपरिणामी, अपरिणामी साधु-साध्वी को ६ मास का तप ही दिया जाता है, छेद प्रायश्चित्त नही दिया जाता है। किन्तु दोष को पुन पुन. सेवन करने पर या आकुट्टी बुद्धि अर्थात् मारने के सकल्प से पचेन्द्रिय की हिंसा करने पर या दर्प से कुशील के सेवन करने पर इन्हे छेद प्रायश्चित्त दिया जा सकता है तथा छेद के प्रति उपेक्षावृत्ति रखने वालो को "मूल प्रायश्चित्त" दिया जाता है।

अन्य अनेक छोटे बडे दोषो के सेवन करने पर प्रथम बार मे छेद या मूल प्रायश्चित्त नही दिया जाता है, किन्तु जिसे एक बार इस प्रकार की चेतावनी दे दी गई है कि "हे आर्य! यदि बारबार यह दोष सेवन किया तो छेद या मूल प्रायश्चित्त दिया जायेगा।" उसे ही छेद या मूल प्रायश्चित्त दिया जा सकता है। जिसे इस प्रकार की चेतावनी नही दी गई है उसे छेद या मूल प्रायश्चित्त नही दिया जा सकता है। भाष्य मे चेतावनी दिये गये साधु को 'विकोवित' एवं चेतावनी नही दिये गये साधु को "अविकोवित" कहा गया है। विकोवित को भी प्रथम बार लघु, दूसरी बार गुरु एव तीसरी बार छेद प्रायश्चित्त दिया जाता है।

छेद प्रायश्चित्त भी उत्कृष्ट छः मास का होता है तथा तीन बार तक दिया जा सकता है उसके बाद मूल प्रायश्चित्त दिया जाता है।

यथा—**छम्मासोवरि जइ पुणो आवज्जइ तो तिण्णि वारा लहु चेव छेदो दायव्वो। एस अविसिट्ठो वा तिण्णि वारा छल्लहु छेदो।**

अहवा—जं चेव तव तियं तं छेदतियं पि—मासब्भंतर, चउमासब्भंतर, छम्मासब्भंतर च, जम्हा एव तम्हा भिण्णमासादि जाव छम्मास, तेसु छिण्णेसु छेय तियं अतिक्कतं भवति। ततो वि जति परं आवज्जति तो तिण्णि वारा मूल दिज्जति। —चूर्णि भा ४ पृ ३५१–५२

इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्धमान महावीर स्वामी के शासन मे तप और छेद प्रायश्चित्त छः मास मे अधिक देने का विधान नही है। अतः किसी भी दोष का छः मास तप या छेद से अधिक प्रायश्चित्त नही देना चाहिये। क्योंकि अधिक प्रायश्चित्त देने पर 'तेण परं' इस सूत्रांश से एव भाष्योक्त परम्परा से विपरीत आचरण होता है। मूल (नई दिक्षा) प्रायश्चित्त भी तीन बार दिया जा सकता है और छः मास का तप और छः मास का छेद भी तीन बार ही दिया जा सकता है। उसके बाद आगे का प्रायश्चित्त दिया जाता है। अन्त मे गच्छ से निकाल दिया जाता है।

प्रस्थापना में प्रतिसेवना करने पर आरोपण

१५. जे भिक्खू चाउम्मासियं वा, साइरेग-चाउम्मासियं वा, पंचमासियं वा साइरेग-पंचमासियं वा, एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—

अपलिउंचिय आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं।

ठविए वि पडिसेवित्ता, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

१ पुव्विं पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं,

२. पुव्विं पडिसेवियं पच्छा आलोइयं,

३. पच्छा पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं,

४ पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइयं,

१. अपलिउंचिए अपलिउंचियं,

२. अपलिउंचिए पलिउंचियं,

३. पलिउंचिए अपलिउंचियं,

४. पलिउंचिए पलिउंचियं,

आलोएमाणस्स सव्वमेयं सकयं साहणिय आरुहेयव्वे सिया,

जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए निव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

१६. जे भिक्खू चाउम्मासियं वा, साइरेग-चाउम्मासियं वा, पंचमासियं वा, साइरेग-पंचमासियं वा, एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा,

पलिउंचिय आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं।
ठविए वि पडिसेवित्ता, से वि कसिणे तत्थेव आरूहेयव्वे सिया।

१ पुव्विं पडिसेवियं पुव्वि आलोइयं,
२. पुव्विं पडिसेविय पच्छा आलोइयं,
३. पच्छा पडिसेविय पुव्वि आलोइय,
४. पच्छा पडिसेविय पच्छा आलोइय।

१. अपलिउंचिए अपलिउंचिय,
२ अपलिउंचिए पलिउंचिय,
३. पलिउंचिए अपलिउंचियं,
४ पलिउंचिए पलिउंचिय।

आलोएमाणस्स सव्वमेय सकय साहणिय आरूहेयव्वे सिया।

जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए निव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरूहेयव्वे सिया।

१७. जे भिक्खू बहुसो वि चाउम्मासिय वा, बहुसो वि साइरेग-चाउम्मासियं वा, बहुसो वि पंचमासिय वा, बहुसो वि साइरेग-पचमासिय वा, एएसिं परिहारट्ठाणाणं अन्नयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा,

अपलिउंचिय आलोएमाणे ठवणिज्ज ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडिय।
ठविए वि पडिसेवित्ता से वि कसिणे तत्थेव आरूहेयव्वे सिया।

१. पुव्विं पडिसेविय पुव्विं आलोइय,
२ पुव्वि पडिसेविय पच्छा आलोइयं,
३. पच्छा पडिसेवियं पुव्वि आलोइय,
४. पच्छा पडिसेविय पच्छा आलोइय।

१ अपलिउंचिए अपलिउंचिय,
२ अपलिउंचिए पलिउंचियं,
३. पलिउंचिय अपलिउंचियं,
४. पलिउंचियए पलिउंचियं।

आलोएमाणस्स सव्वमेय सकय साहणिय आरूहेयव्वे सिया।

जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए निव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरूहेयव्वे सिया।

१८. जे भिक्खू बहुसो वि चाउम्मासिय वा, बहुसो वि साइरेग-चाउम्मासियं वा, बहुसो वि पंचमासियं वा, बहुसो वि साइरेग पचमासिय वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अन्नयरं परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा,

पलिउंचिय आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्ज वेयावडियं ।
ठविए वि पडिसेवित्ता से वि कसिणे तत्थेव आरूहेयव्वे सिया ।

१. पुव्विं पडिसेविय पुव्वि आलोइय,
२. पुव्विं पडिसेविय पच्छा आलोइय,
३ पच्छा पडिसेवियं पुव्वि आलोइय,
४. पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइय ।

१. अपलिउंचिए अपलिउंचिय,
२ अपलिउंचिए पलिउंचिय,
३ पलिउंचिए अपलिउंचिय,
४. पलिउंचिए पलिउंचिय ।

आलोएमाणस्स सव्वमेय सकयं साहणिय आरूहेयव्वे सिया ।
जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए निव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरूहेयव्वे सिया ।

१५ जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक—इन परिहारस्थानो मे से किसी एक परिहारस्थान की एक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर आसेवित प्रतिसेवना के अनुसार प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित करके उसको योग्य वैयावृत्य करनी चाहिये ।

यदि वह परिहार तप मे स्थापित होने पर भी किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिये ।

१ पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो,
२ पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पीछे आलोचना की हो,
३ पीछे से प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो,
४ पीछे से प्रतिसेवित दोष की पीछे से आलोचना की हो ।

१ मायारहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो ।
२ मायारहित आलोचना करने का सकल्प करके मायासहित आलोचना की हो ।
३ मायासहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो ।
४ मायासहित आलोचना करने का सकल्प करके मायासहित आलोचना की हो ।

इनमे से किसी प्रकार के भग से आलोचना करने पर उसके सर्व स्वकृत अपराध के प्रायश्चित्त को सयुक्त करके पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिये ।

जो इस प्रायश्चित्त रूप परिहार तप में स्थापित होकर वहन करते हुए भी पुन किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे आरोपित कर देना चाहिए ।

१६ जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक इन परिहारस्थानो मे से किसी एक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायासहित आलोचना करने पर आसेवित प्रतिसेवना के अनुसार प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित करके उनकी योग्य वैयावृत्य करनी चाहिए ।

यदि वह परिहार तप मे स्थापित होने पर भी किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिए ।

१ पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो,
२ पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पीछे आलोचना की हो,
३ पीछे से प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो,
४ पीछे से प्रतिसेवित दोष की पीछे आलोचना की हो ।

१ मायारहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो,
२ मायारहित आलोचना करने का सकल्प करके मायासहित आलोचना की हो,
३ मायासहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो,
४ मायासहित आलोचना करने का सकल्प करके मायासहित आलोचना की हो ।

इनमे से किसी भी प्रकार के भग मे आलोचना करने पर उसके सर्व स्वकृत अपराध के प्रायश्चित्त को सयुक्त करके पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिए ।

जो इस प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित होकर वहन करते हुए भी पुन किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे आरोपित कर देना चाहिए ।

१७ जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक इन परिहारस्थानो मे से किसी एक परिहारस्थान की अनेक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर आसेवित प्रतिसेवना के अनुसार प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित करके उसकी योग्य वैयावृत्य करनी चाहिये ।

यदि वह परिहार तप मे स्थापित होने पर भी किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिये ।

१ पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो,
२ पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पीछे आलोचना की हो,
३ पीछे से प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो,
४ पीछे से प्रतिसेवित दोष की पीछे आलोचना की हो ।

१ मायारहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो,
२ मायारहित आलोचना करने का सकल्प करके मायासहित आलोचना की हो,
३ मायासहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो,
४ मायासहित आलोचना करने का सकल्प करके मायासहित आलोचना की हो ।

इनमें से किसी भी प्रकार के भग से आलोचना करने पर उसके सर्व स्वकृत अपराध के प्रायश्चित्त को सयुक्त करके पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिए।

जो इस प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित होकर वहन करते हुए भी पुन किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे आरोपित कर देना चाहिये।

१८ जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक—इन परिहारस्थानो मे से किसी एक परिहारस्थान की अनेक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायासहित आलोचना करने पर आसेवित प्रतिसेवना के अनुसार प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित करके उसकी योग्य वैयावृत्य करनी चाहिये।

यदि वह परिहार तप मे स्थापित होने पर भी किसी प्रकार को प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिये।

१ पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो,
२. पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पीछे आलोचना की हो,
३ पीछे से प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो,
४ पीछे से प्रतिसेवित दोष की पीछे आलोचना की हो।

१ मायारहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो,
२ मायारहित आलोचना करने का सकल्प करके मायासहित आलोचना की हो,
३ मायासहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो,
४ मायासहित आलोचना करने का सकल्प करके मायासहित आलोचना की हो।

इनमे से किसी भी प्रकार के भग से आलोचना करने पर उसके सर्व स्वकृत अपराध के प्रायश्चित्त को सयुक्त करके पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिए।

जो इस प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित होकर वहन करते हुए भी पुन किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त मे आरोपित कर देना चाहिए।

विवेचन—पूर्व सूत्रो मे प्रायश्चित्त देने सबधी वर्णन है और इन आगे के सूत्रो मे प्रायश्चित्त वहन कराने सबधी वर्णन है। इनमे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आदि का कथन किया गया है फिर भी अन्त के कथन से आदि का ग्रहण कर लेना चाहिए और मासिक आदि सभी असयोगी-सयोगी विकल्पो वाले प्रायश्चित्तो के वहन करने की भी विधि इसी प्रकार समझ लेनी चाहिए।

यहाँ सर्वप्रथम प्रायश्चित्त वहन करने को 'स्थापन करना' कहा गया है और उस वहन-काल मे दिए गये प्रायश्चित्त को 'प्रस्थापन करना' कहा गया है। प्रस्थापनाकाल मे लगाये जाने वाले दोषो के प्रायश्चित्त को भी उसमे सयुक्त करने के लिए कहा गया है। इस प्रकार प्रायश्चित्त सयुक्त करने का कथन इन सूत्रो मे है।

प्रथम सूत्र मे प्रायश्चित्त की स्थापना एक बार लगाये गये दोष के कपटरहित आलोचना की है और दूसरे सूत्र मे कपटसहित आलोचना की है। आगे के दो सूत्रो मे प्रायश्चित्त की स्थापना

अनेक बार लगाये गये कपटरहित एव कपटसहित आलोचना की है। प्रायश्चित्त वहन के बीच मे लगाये गए दोषो की आलोचना के सम्बन्ध मे चार-चार भग कहे गए हैं उनमे से किसी भी प्रकार से आलोचना की गई हो वह सब प्रायश्चित्त उसमे अर्तनिहित कर दिया जाता है।

प्रायश्चित्त वहनकाल मे प्रायश्चित्त तप करने वाले की वैयावृत्य करने का भी इन सूत्रो मे निर्देश किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि उस तप काल मे सेवा करना यदि आवश्यक हो तो सेवा की जाती है। प्रायश्चित्त वहनकर्त्ता स्वय अपना कार्य कर सके तब तक सेवा नही करवाता है। यह प्रायश्चित्त वहन विधि परिहार तप की अपेक्षा मे कही गई है। इससे सबधित विशेष विवेचन चौथे उद्देशक से जानना चाहिए।

शुद्ध तप रूप प्रायश्चित्त करने वाला प्रायश्चित्त मे प्राप्त हुए उपवास आदि को प्रायश्चित्त दाता द्वारा निर्दिष्ट अवधि मे कभी भी पूर्ण कर सकता है। अन्य दोषो की पुन कभी आलोचना करने पर भी उसी प्रकार प्रायश्चित्त पूर्ण करता है।

लघुमासिक, गुरुमासिक, लघुचौमासी, गुरुचौमासी, लघुछ मासी और गुरु छ मासी प्रायश्चित्त स्थानो के शुद्ध तप से प्रायश्चित्त देने की विधि प्रथम उद्देशक के पूर्व मे तालिका द्वारा दी गई है, उसके अनुसार सभी प्रायश्चित्त विभाग समझ लेने चाहिए।

इस बीसवे उद्देशक के इन सूत्रो मे तथा आगे के सभी सूत्रो मे जो वर्णन है वह परिहार तप प्रायश्चित्त सम्बन्धी है ऐसा समझना चाहिये। इस वर्णन से या अन्य छेदसूत्रो मे आये वर्णनो से इसके विच्छेद होने का फलितार्थ नही निकलता है, तथापि व्याख्याकार इस परिहार तप प्रायश्चित्त को आगमविहारी के लिए कहकर वर्तमान मे इसका विच्छेद बनाते है।

अत यह प्रायश्चित्त की परम्परा वर्तमान नही है।

दो मास प्रायश्चित्त की स्थापिता आरोपणा

१९. छम्मासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अतरा दो मासिय परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठ सहेऊ सकारण अहीणमइरित्त तेणं पर सवीसइराइया दोमासा।

२०. पंचमासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अतरा दो मासियं परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठ सहेउ सकारण अहीणमइरित्त तेण परं सवीसइराइया दो मासा।

२१ चाउम्मासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासिय परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठ सहेउ सकारण अहीणमइरित्त तेणं पर सवीसइराइया दो मासा।

२२. तेमासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता

आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठ सहेउ सकारण अहीणमइरित्त तेण परं सवीसइराइया दो मासा।

२३. दो मासियं परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अतरा दोमासिय परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउ सकारण अहीणमइरित्त तेणं पर सवीसइराइया दो मासा।

२४ मासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अतरा दोमासिय परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठ सहेउ सकारण अहीणमइरित्तं तेण पर सवीसइराइया दो मासा।

१९ छ मासिक प्रायश्चित्त वहन करनेवाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है, उसके बाद पुन दोष सेवन करले तो दो मास और बीस रात्रि का प्रायश्चित्त आता है।

२० पचमासिक प्रायश्चित्त वहन करनेवाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है, उसके बाद पुन दोष सेवन करले तो उसे दो मास और बीस रात्रि का प्रायश्चित्त आता है।

२१ चातुर्मासिक प्रायश्चित्त वहन करनेवाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है, उसके बाद पुन दोष सेवन करले तो दो मास और बीस रात्रि का प्रायश्चित्त आता है।

२२ त्रैमासिक प्रायश्चित्त वहन करनेवाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है, उसके बाद पुन दोष सेवन करले तो दो मास और बीस रात्रि का प्रायश्चित्त आता है।

२३ दो मासिक प्रायश्चित्त वहन करनेवाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है, उसके बाद पुन दोष सेवन कर ले तो दो मास और बीस रात्रि का प्रायश्चित्त आता है।

२४ मासिक प्रायश्चित्त वहन करनेवाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके

आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है, उसके बाद पुन दोष सेवन करले तो दो मास और बीस रात्रि का प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—इन सूत्रो मे एक मास से लेकर छ मास तक किसी भी प्रायश्चित्त को वहन करते समय लगाये गये दो मास प्रायश्चित्त स्थान रूप दोष की सानुग्रह एव निरनुग्रह आरोपण प्रायश्चित्त देने की विधि कही गई है।

प्रायश्चित्त वहन काल मे किसी कारण से प्रथम बार दोष लगाने पर उस पर अनुग्रह करके अल्प प्रायश्चित्त दिया जाता है। वह सानुग्रह आरोपणा प्रायश्चित्त कहा जाता है। पुन वही दोष सेवन करने पर अनुग्रह न करके पूर्ण प्रायश्चित्त दिया जाता है वह निरनुग्रह आरोपणा प्रायश्चित्त कहा जाता है।

इन सूत्रो का तात्पर्य यह है कि प्रायश्चित्त वहन काल मे दिये गये सानुग्रह प्रायश्चित्त को आरोपित करने के पूर्व यदि फिर प्रायश्चित्त दिया जाए तो वह निरनुग्रह होता है।

सानुग्रह प्रायश्चित्त की आरोपणा को वहन किये जाने वाले प्रायश्चित्त मे सयुक्त न करने से पूर्व की सानुग्रह बीस दिन और बाद की निरनुग्रह दो मास आरोपणा को सयुक्त करके दो मास और बीस दिन की आरोपणा सूत्र मे कही गई है।

सानुग्रह आरोपणा प्रायश्चित्त के दिनो की सख्या निकालने की विधि—

प्रायश्चित्त स्थान के मास सख्या मे दो जोडकर पाच से गुणा करने पर जो सख्या आवे उतने दिन का प्रायश्चित्त होता है। यथा—दो मास मे दो जोडने से चार हुए, उसे पाच से गुणा करने पर बीस हुए इस प्रकार दो मास के सानुग्रह दिन २० होते है। अथवा एक मास का १५ दिन, दो मास का २० दिन, तीन मास का २५ दिन, इत्यादि सानुग्रह प्रायश्चित्त के दिन समझने चाहिए।

ठाणाग सूत्र अ ५ मे आरोपणा प्रायश्चित्त पाच प्रकार के कहे गये है—

१ **प्रस्थापिता**—प्रायश्चित्त वहन करते समय अन्य प्रायश्चित्त के दिनो को जोड दिए जाने वाली आरोपणा।

२ **स्थापिता**—वहन किये जाने वाले प्रायश्चित्त मे अन्य प्रायश्चित्त के दिनो को अलग रखी जाने वाली आरोपणा।

३ **कृत्स्ना**—वहन काल मे लगे दोष के प्रायश्चित्त स्थान के सपूर्ण दिनो की दी जाने वाली निरनुग्रह आरोपणा।

४ **अकृत्स्ना**—वहन काल मे लगे दोष के प्रायश्चित्त स्थान के दिनो को कम कर दी जाने वाली सानुग्रह आरोपणा।

५ **हाडहडा**—तत्काल ही वहन कराई जाने वाली आरोपणा।

इन सूत्रो मे एक साथ चार प्रकार की आरोपणा से सबधित विषय का कथन किया गया है।

दो मास प्रायश्चित्त की प्रस्थापिता आरोपणा एवं वृद्धि

२५ सवीसइराइयं दोमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारण अहीणमइरित्तं तेण परं सदसराया तिण्णिमासा।

२६. सदसराइय-तेमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासिय परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया ओरोवणा, आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्त तेण पर चत्तारि मासा।

२७ चाउम्मासियं परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अतरा दोमासिय परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारण अहीणमइरित्त तेण परं सवीसइराइया चत्तारि मासा।

२८. सवीसइराइय-चाउम्मासियं परिहारट्ठाण पट्ठवीए अणगारे अतरा दोमासिय परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा— अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठ सहेउं सकारण अहीणमइरित्त तेण पर सदसराया पंचमासा।

२९. सदसराइय-पंचमासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अतरा दोमासिय परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउ सकारण अहीणमइरित्तं तेण परं छमासा।

२५ दो मास और बीस रात्रि का प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने पर तीन मास और दस रात्रि की प्रस्थापना होती है।

२६ तीन मास और दस रात्रि का प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त में प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने पर चार मास की प्रस्थापना होती है।

२७ चातुर्मासिक प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से चार मास और बीस रात्रि की प्रस्थापना होती है।

२८ चार मास और बीस रात्रि का प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त

वहन काल के प्रारम्भ में, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से पाच मास और दस रात्रि की प्रस्थापना होती है।

२९. पाच मास और दस रात्रि का प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से छ मास की प्रस्थापना होती है।

विवेचन—पूर्व के सूत्रो मे वहन काल के भीतर लगे दो मास के प्रायश्चित्त स्थान की स्थापिता आरोपणा कही गई है उसी को वहन किये जाने वाले प्रायश्चित्त के पूर्ण कर लेने के बाद में अलग से वहन कराने की विधि इन सूत्रो मे कही गई है और क्रमश प्रस्थापना-आरोपणा वृद्धि की विधि बताई गई है।

इसमे पूर्व प्राप्त दो मास के प्रायश्चित्त को वहन कराते हुए पुन दो मास के प्रायश्चित्त स्थान का सेवन एव उसके सानुग्रह आरोपणा का वर्णन किया गया है।

क्रमश प्रस्थापित करके दिये गये प्रायश्चित्त मे पुन पुन सानुग्रह आरोपणा हो सकती है यह इन सूत्रो मे कहा गया है। किन्तु स्थापिता आरोपणा प्रायश्चित्त मे एक बार ही सानुग्रह आरोपणा होती है यह पूर्व छ सूत्रो मे कहा गया है।

इस उद्देशक के पाचवे, दसवे, उन्नीसवे आदि सूत्रो मे "तेण पर" शब्द का स्वाभाविक ही प्रसग सगत अर्थ हो जाता है, किन्तु इन सूत्रो मे "तेण पर" शब्द का सीधा अर्थ करना प्रसग-सगत नही होता है क्योकि यह प्रस्थापिता आरोपणा है और इसमे आगे मे आगे प्रायश्चित्त दिन जोडकर कुल छ मास तक का योग किया गया है।

चूर्णिकार ने भी यही बताया है कि यहां क्रमश पूर्व और पश्चात् के प्रायश्चित्त को जोड़ा गया है अत इन सूत्रो मे "तेण पर" शब्द से "जिसे सयुक्त करने पर"—ऐसा अर्थ करना आवश्यक हो जाता है।

सभवत इन सूत्रो मे कभी लिपि दोष से पूर्व सूत्रो के समान पाठ बन गया होगा जिसका मौलिक रूप कभी उपरोक्त किये गये अर्थ का सूचक ही रहा होगा। क्योकि इस सूत्राश का चूर्णिकार ने भी उपरोक्त अर्थ ही किया है।

एक मास प्रायश्चित्त की स्थापिता आरोपणा

३०. छम्मासियं परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अंतरा मासिय परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं तेण परं दिवड्ढो मासो।

३१. पंच मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता

आलोएज्जा—अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं तेण परं दिवड्ढो मासो।

३२. चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारण अहीणमइरित्तं तेण परं दिवड्ढो मासो।

३३ तेमासिय परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउ सकारणं अहीणमइरित्तं तेण परं दिवड्ढो मासो।

३४ दो मासिय परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारण अहीणमइरित्तं तेण परं दिवड्ढो मासो।

३५ मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा—अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउ सकारण अहीणमइरित्तं तेण परं दिवड्ढो मासो।

३०. छ: मासिक प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य में या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है उसके बाद पुन दोष सेवन कर ले तो डेढ मास का प्रायश्चित्त आता है।

३१ पच मासिक प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। उसके बाद पुन दोष सेवन कर ले तो डेढ मास का प्रायश्चित्त आता है।

३२ चातुर्मासिक प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। उसके बाद पुन. दोष सेवन कर ले तो डेढ मास का प्रायश्चित्त आता है।

३३. तीन मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य में या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। उसके बाद पुन: दोष सेवन कर ले तो डेढ मास का प्रायश्चित्त आता है।

३४ दो मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ में, मध्य में या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। उसके बाद पुन. दोष सेवन कर ले तो डेढ मास का प्रायश्चित्त आता है।

३५ मासिक प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से एक मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। उसके बाद पुन. दोष सेवन कर ले तो डेढ मास का प्रायश्चित्त आता है।

विवेचन—इसका विवेचन सूत्र १९-२४ के समान समझना चाहिए। अन्तर यह है कि वहाँ प्रायश्चित्त वहन के मध्य मे 'दो मास' के प्रायश्चित्त की स्थापिता आरोपणा का कथन है और यहाँ प्रायश्चित्त वहन के मध्य मे एक मास के प्रायश्चित्त की स्थापिता-आरोपणा का कथन है।

एक मास प्रायश्चित्त की प्रस्थापिता आरोपणा एवं वृद्धि

३६ **दिवड्ढ-मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्त तेण पर दो मासा।**

३७. **दो मासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं तेण परं अड्ढाइज्जा मासा।**

३८. **अड्ढाइज्ज-मासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्त तेण पर तिण्णिमासा।**

३९ **तेमासियं परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठ सहेउ सकारण अहीणमइरित्तं तेण परं अद्धुट्ठा मासा।**

४० **अध्दुट्ठमासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउ सकारणं अहीणमइरित्त तेण परं चत्तारिमासा।**

४१. **चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता**

आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं तेण परं अड्ढपंचमासा।

४२. अड्ढ-पंचमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं तेण परं पंचमासा।

४३. पंच-मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं तेण परं अद्धछट्ठामासा।

४४ अद्धछट्ठमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठ सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं तेण पर छम्मासा।

३६. डेढ मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहनकाल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से दो मास की प्रस्थापना होती है।

३७ दो मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहनकाल के प्रारम्भ मे, मध्य में या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से ढाई मास की प्रस्थापना होती है।

३८ ढाई मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहनकाल के प्रारम्भ में, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से तीन मास की प्रस्थापना होती है।

३९ तीन मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहनकाल के प्रारम्भ मे, मध्य में या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोप सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से साढे तीन मास की प्रस्थापना होती है।

४०. साढे तीन मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्त्तित वहनकाल के प्रारम्भ मे, मध्य में या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे संयुक्त करने से चार मास की प्रस्थापना होती है।

४१. चार मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त-वहनकाल के प्रारम्भ, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से साढे चार मास की प्रस्थापना होती है।

४२ साढे चार मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहनकाल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से पाच मास की प्रस्थापना होती है।

४३ पाच मास प्रायश्चित वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहनकाल के प्रारम्भ मे, मध्य में या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से साढे पाच मास की प्रस्थापना होती है।

४४ साढे पाच मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहनकाल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से छ मास की प्रस्थापना होती है।

विवेचन—इनका विवेचन सूत्र २५ से २९ के समान समझना चाहिए अन्तर केवल यह है कि दो मास के प्रायश्चित्त स्थान की प्रस्थापिता आरोपणा के स्थान पर यहाँ एक मास के प्रायश्चित स्थान की प्रस्थापित आरोपणा समझना चाहिए।

मासिक और दो मासिक प्रायश्चित्त की प्रस्थापिता आरोपणा एवं वृद्धि

४५ दो मासियं परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्त तेण पर अड्ढाइज्जा मासा।

४६ अड्ढाइज्ज-मासियं परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अंतरा दो मासियं परिहारट्ठाण पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं, तेण परं सपचराइया तिण्णिमासा।

४७ संपचराइय-तेमासिय परिहारट्ठाण पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहाणट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं, तेण परं सवीसइराइया तिण्णि मासा।

४८. सवीसइराइय-तेमासिय परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दो मासियं परिहारट्ठाण

पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं, तेण परं सवसराइया चत्तारि मासा।

४९. सवसराइय-चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठ सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं, तेण परं पंचूणा पंचमासा।

५०. पचूण-पंच-मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दो मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा वीसइराइया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्तं, तेण परं अद्धछट्ठमासा।

५१ अद्धछट्ठमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा-अहावरा पक्खिया आरोवणा आदिमज्झावसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमइरित्त तेण परं छम्मासा।

४५ दो मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से ढाई मास की प्रस्थापना होती है।

४६ ढाई मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मासिक प्रायश्चित्त योग्य दोष सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से तीन मास और पाच रात्रि की प्रस्थापना होती है।

४७. तीन मास और पाच रात्रि प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से एक मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से तीन मास और बीस रात्रि की प्रस्थापना होती है।

४८ तीन मास और बीस रात्रि प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से चार मास और दस रात्रि की प्रस्थापना होती है।

४९ चार मास और दस रात्रि प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से एक मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से पाच मास मे पाच रात्रि कम की प्रस्थापना होती है।

५० पाच मास में पाच रात्रि कम प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ में, मध्य मे या अन्त में प्रयोजन, हेतु या कारण से दो मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक बीस रात्रि की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से साढे पाच मास की प्रस्थापना होती है।

५१. साढे पाच मास प्रायश्चित्त वहन करने वाला अणगार यदि प्रायश्चित्त वहन काल के प्रारम्भ मे, मध्य मे या अन्त मे प्रयोजन, हेतु या कारण से एक मास प्रायश्चित्त योग्य दोष का सेवन करके आलोचना करे तो उसे न कम न अधिक एक पक्ष की आरोपणा का प्रायश्चित्त आता है। जिसे सयुक्त करने से छ मास की प्रस्थापना होती है।

विवेचन—इन सूत्रो मे मासिक और दो मासिक प्रायश्चित्त स्थानो की सयुक्त प्रस्थापिता आरोपणा कही गई है। शेष विवेचन पूर्व सूत्रो के समान समझ लेना चाहिये।

एक मास और दो मास के समान ही अन्य अनेक मास सम्बन्धी प्रस्थापना आरोपणा आदि के विकल्प भी यथा योग्य समझ लेने चाहिए।

बीसवें उद्देशक का सारांश—

सूत्र १-५ एक मास प्रायश्चित्त स्थान से लेकर पाच मास तक के प्रायश्चित्त स्थान की निष्कपट आलोचना का उतने-उतने मास का प्रायश्चित्त आता है।
कपट युक्त आलोचना करने पर एक गुरु मास का प्रायश्चित्त अधिक आता है। छह मास या उससे अधिक प्रायश्चित्त स्थान की आलोचना सकपट या निष्कपट करने पर भी केवल छह मास ही प्रायश्चित्त आता है। इसके आगे प्रायश्चित्त विधान नही है, जिस प्रकार राज्य-व्यवस्था मे २० वर्ष से अधिक जेल की सजा नही है।

६-१० अनेक बार सेवन किए गए प्रायश्चित्त स्थान की आलोचना के विषय मे पूर्व सूत्रवत् प्रायश्चित्त समझना चाहिए।

११-१२ मासिक आदि प्रायश्चित्त स्थानो की द्विक सयोगी भगो से युक्त आलोचना के प्रायश्चित्त भी पूर्व सूत्रवत् समझना चाहिए।

१३-१४ पूरे मास या साधिक मास स्थानो की आलोचना का प्रायश्चित्त कपट सहित या कपटरहित आदि पूर्व सूत्र के समान समझना चाहिए।

१५ एक बार सेवित दोष स्थान की कपट रहित आलोचना के प्रायश्चित्त को वहन करते हुए पुन लगाये जाने वाले दोषो की दो चौभगी के किसी भी भग से आलोचना करने पर प्रायश्चित्त की आरोपणा की जाती है।

१६ एक बार सेवित स्थान की कपटयुक्त आलोचना का प्रायश्चित्त वहन एव उसमे आरोपणा, पूर्व सूत्रो के समान समझ लेना चाहिए।

१७-१८ अनेक बार सेवित स्थान सम्बन्धी सम्पूर्ण वर्णन उक्त दोनो सूत्र के समान ही इन दो सूत्रों का समझ लेना चाहिए।

१९-२४ एक मास से लेकर छह मास तक किसी भी प्रायश्चित्त के वहनकाल में लगे दो मास स्थान की सानुग्रह स्थापिता आरोपणा बीस दिन की तथा पुन· उस स्थान की निरनुग्रह स्थापिता आरोपणा दो मास की एव कुल दो मास और बीस दिन की स्थापिता आरोपणा दी जाती है ।

२५-२९ स्थापिता आरोपणा के दो मास और बीस दिन के प्रायश्चित्त को वहन करते हुए पुन -पुन दो मास के प्रायश्चित्त की बीस-बीस दिन की प्रस्थापिता आरोपणा बढाते हुए छह मास तक की आरोपणा की जाती है ।

३०-३५ सूत्र १९-२४ के समान सानुग्रह और निरनुग्रह स्थापिता आरोपणा जानना किन्तु दो मास प्रायश्चित्त स्थान की जगह एक मास एव २० दिन की आरोपणा की जगह १५ दिन तथा दो मास बीस दिन की जगह डेढ मास समझना चाहिए ।

३६-४४ सूत्र २५-२९ तक के समान प्रस्थापिता आरोपणा जानना किन्तु यहाँ प्रारम्भ मे दो मास बीस दिन की जगह डेढ मास की प्रस्थापना है और २० दिन की आरोपणा की जगह एक मास प्रायश्चित्त स्थान की १५ दिन की आरोपणा वृद्धि करते हुए छह मास तक की आरोपणा का वर्णन समझना चाहिए ।

४५-५१ दो मास के प्रायश्चित्त को वहन करते हुए दोष लगाने पर एक मास स्थान को १५ दिन की आरोपणा वृद्धि की जाती है । तदनन्तर दो मास स्थान की २० दिन की आरोपणा वृद्धि की जाती है । इस तरह दोनो स्थानो से आरोपणा वृद्धि करते हुए छह मास तक की प्रस्थापिता आरोपणा समझ लेनी चाहिये ।

इस प्रकार इस उद्देशक मे प्रायश्चित्त स्थानो की आलोचना पर प्रायश्चित्त देने का एव उसके वहनकाल मे सानुग्रह, निरनुग्रह, स्थापिता एव प्रस्थापिता आरोपणा का स्पष्ट कथन किया गया है ।

उपसंहार—लघुमासिक आदि प्रायश्चित्त स्थानो के चार विभागो मे जो-जो दोष स्थानो का वर्णन है तदनुसार उसके समान अन्य भी अनुक्त दोषो को समझ लेना चाहिये । दोष सेवन के भाव एव प्रायश्चित्त ग्रहण करने वाले की योग्यता आदि कारणो से इन स्थानो में दिये जाने वाले शुद्ध तप आदि के अनेको विकल्प होते हैं जिन्हे गीतार्थ मुनि की निश्रा से या परम्परा से समझना चाहिये तथा प्रथम उद्देशक के पूर्व दी गई प्रायश्चित्त-तालिका से भी समझने का प्रयत्न करना चाहिये ।

विस्तृत विकल्पो युक्त प्रायश्चित्त विधि को समझने के लिये निशीथ पीठिका का तथा बीसवे उद्देशक के भाष्य चूर्णि का अध्ययन करना चाहिये अथवा बृहत्कल्पसूत्र, व्यवहारसूत्र एव निशीथसूत्र का निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका युक्त पूर्ण अध्ययन करना चाहिये ।

निर्युक्ति एव भाष्य के अनुसार निशीथ की सूत्र सख्या २०२२ (दो हजार बावीस) होती है । प्रस्तुत सस्करण में १४०१ सूत्र हैं । यद्यपि उपलब्ध प्रतियो मे सूत्र सख्या भिन्न-भिन्न अवश्य है तो भी वह अन्तर अधिक नही है । किन्तु निर्युक्ति एव भाष्य मे कही गई सूत्र सख्या से प्रस्तुत संस्करण की सूत्र सख्या का अन्तर ६२१ सूत्रो का है । मूल सूत्रो मे इतना अधिक अन्तर विचारणीय है ।

प्रस्तुत संस्करण के सूत्रो का विवेचन प्राय भाष्य एव चूर्णि का आधार लेकर किया गया

है, फिर भी इसके सूत्रो की सख्या भाष्यगाथा ६८६९ मे ७३ तक मे कही गई पूरे निशीथ के सूत्रो की एव लघु, गुरु, मासिक, चौमासिक एव आरोपणा सूत्रो की सख्या मे भिन्न है। उपलब्ध सूत्र-सख्या से इनका समन्वय करना भी अशक्य है। यथा—

प्रथम उद्देशक मे सूत्र सख्या ५८ उपलब्ध है, भाष्यचूर्णि मे भी इतने ही सूत्रो की व्याख्या है, फिर भी इस उद्देशक की सूत्र सख्या उक्त गाथाओ मे २५२ कही गई है। अत २०२२ सूत्रो का कथन बहुश्रुत गम्य है। वर्तमान के तो स्वाध्यायप्रेमियो को १४०१ सूत्रो से ही सन्तोष करना पडेगा। अन्वेषक चिन्तनशील आगमप्रेमी बहुश्रुत इस विषय मे प्रयत्न करके समाधान प्रकट कर सकते है।

बीस उद्देशको के सूत्रो की तालिका—

उद्देशक	प्रायश्चित्त-स्थान	सूत्र-सख्या	
१	गुरुमासिक	५८	
२	लघुमासिक	५७	
३	लघुमासिक	८०	
४	लघुमासिक	१२८	३१७
५	लघुमासिक	५२	
६	गुरुचौमासी	७८	
७	गुरुचौमासी	९२	
८	गुरुचौमासी	१८	३४५
९	गुरुचौमासी	२५	
१०	गुरुचौमासी	४१	
११	गुरुचौमासी	९१	
१२	लघुचौमासी	४४	
१३	लघुचौमासी	७८	
१४	लघुचौमासी	४१	
१५	लघुचौमासी	१५४	६३०
१६	लघुचौमासी	५०	
१७	लघुचौमासी	१५५	
१८	लघुचौमासी	७३	
१९	लघुचौमासी	३५	
२०	आरोपणा	५१	
	योग	१४०१ (चौदह सौ एक)	

प्रस्तुत संस्करण के सूत्रों की और भाष्य निर्दिष्ट सूत्रों की तालिका

नोट—(भाष्य मे प्रत्येक उद्देशक की अलग-अलग सूत्र सख्या नही दी गई है।)

उद्देशक	प्रायश्चित्तस्थान	भाष्य निर्दिष्ट सूत्र सख्या	प्रस्तुत संस्करण की सूत्र संख्या	अन्तर
१	गुरुमासिक	२५२	५८	१९४
२-५	लघुमासिक	३३२	३१७	१५
६-११	गुरुचौमासी	६४४	३४५	२९९
१२-१९	लघुचौमासी	७२४	६३०	९४
२०	आरोपणा	७०	५१	१९
	योग	२०२२	१४०१	६२१

॥ बीसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ निशीथसूत्र समाप्त ॥

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते है। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा— उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा – अट्ठी, मस, सोणित्ते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहि सज्झाय करित्तए, त जहा— आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहि सझाहि सज्झाय करेत्तए, त जहा- पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गये है। जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे -

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२ दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग-सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३-४.—गर्जित-विद्युत्—गर्जन और विद्युत प्राय ऋतु स्वभाव से ही होता है। अत. आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर या बादलो सहित आकाश मे कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्यायकाल है।

६ यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धु ध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धु ध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९ मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी मांस और रुधिर—पचेंद्रिय तिर्यंच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुए उठाई न जाएँ जब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सो हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७ सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश. आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनै शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये है।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा- आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते है। इसमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रात साय मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात· सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

श्री आगमप्रकाशन-समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बैंताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६. श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७ श्री जे हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचदजी, सागरमलजी सचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, कटगी
५. श्री आर प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री दीपचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजो चोरड़िया, कटगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मागीलालजी मिश्रीलालजी सचेती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री बिरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता सिटी
४. श्री श० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागाटोला
९ श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचन्दजी झामड, मदुरान्तकम्
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) जाडन
११ श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनादगाव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढा, चागाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोला

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा डोडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३० श्री सी० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७. श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जबरचन्दजी गेलडा, मद्रास
४१. श्री जडावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसा, मेडतासिटी
२. श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५. श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकडिया, सेलम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचदजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३०. श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१ श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३९ श्री मागीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचंदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बेंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, बेंगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९ श्री भवरलालजी रिखबचदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कला
६२ श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगाँव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भंवरलालजी डूगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचदजी थानचन्दजी भरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठ
८३ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरडिया, भैरूंद
८५ श्री मोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री धुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी, बैंगलौर
९५ श्रीमती कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनादगाँव

९८. श्री प्रकाशचदजी जैन, नागौर
९९ श्री कुशालचदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराजजी कोठारी, मागलियावास
१०३ सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४. श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५. श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९. श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरडिया, भैरू दा
१११ श्री मांगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुलीचदजी बोकडिया, मेडता सिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकुवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी लोढा, बम्बई
११७ श्री मांगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बेंगलोर
११८ श्री साचालालजी बाफणा, औरगाबाद
११९ श्री भीखमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर) मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकुवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीखमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, बगडीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९ श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं, बेंगलोर
१३० श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड ☐☐